0152mN44
G2,33

0152mN44 3614
G2.33
Shukla, Devidutta, Ed
Saraswati

0152mN44
G2.33

3614 3614

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

0152mN44
G2.33

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. 3614

नववर्षांङ्क — जनवरी १९३२

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ६॥)]

सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल

[प्रति संख्या ॥=)

इस अङ्क का मूल्य १)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग से छप कर प्रकाशित

बालों का जीवन यानी

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

ईश्वर ने मनुष्यों को जो बाल दिये हैं, वे कुछ बेकार नहीं हैं, बल्कि उनकी देख-भाल करने की आवश्यकता रहती है। बालों की देख-भाल करने के लिए बहुत से लोग तेल इस्तेमाल करते हैं। परन्तु उनको यह ख़्याल नहीं रहता कि कौन सा तेल फ़ायदा पहुँचाने की ताक़त रखता है। जिस तेल में बालों को ख़ुराक पहुँचाने का तत्त्व नहीं है ऐसे तेल बजाय फ़ायदा के नुक़सान पहुँचा देते हैं, इसलिए ऐसा निकृष्ट तेल बिना भरोसे का कदापि इस्तेमाल न करना चाहिए। बल्कि

जगत्-प्रसिद्ध

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करें जो कि बालों की जड़ को पोषण देकर बाल को उगाने में मदद देता है। यह अमूल्य वनस्पतियुक्त तत्त्व से तैयार किया हुआ अत्यन्त उमदा व दिलख़ुश तेल है। बाल, दिमाग़ के लिए इससे मुफ़ीद दूसरा तेल तलाश करने पर भी आपको न मिलेगा। लाखों आदमी हमेशा इस्तेमाल करते हैं। आप भी आज ही मँगाकर आज़माइश कर लेवें।

मूल्य प्रति शीशी १) रु० डाक-व्यय ।≡)
,, तीन शीशी २॥=) डाक-व्यय १)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

पूर्वीय देशों का एक सुप्रसिद्ध सुगन्धित तोहफ़ा

इसके चन्द बूंद अपने रूमाल पर छिड़क लीजिए, फिर इसकी आकर्षक सुगन्धि आपका पीछा न छोड़ेगी! इसमें ताज़े फूलों की मीठी ख़ुशबू वहक वहक रहती है!

इस सुन्दर मनोमोहक सुगन्ध की एक बार एक शीशी मँगवा कर आप परीक्षा करें, फिर तो आप इसे हमेशा अपने पास रक्खेंगे, और दूसरे इत्र का नाम न लेंगे।

मूल्य ½ औंस शी० २) रु०, पाव औंस शी० १।) रु०, १ ड्राम शीशी ।।।) आ०, ½ ड्राम शी० ॥) आ० ख़ुशबूदार कार्ड ॥=) दर्जन, डाक-व्यय अलग।

केवल दो आने का टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजी जाती है।

कामिनिया व्हाईट रोज सोप (रजिस्टर्ड)

इस साबुन को बदन में लगाते ही गुलाब की मधुर ख़ुशबू से तबीयत बाग़ बाग़ हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाईश करें।

मूल्य प्रति बट्टी ।-) ३ बट्टी का बक्स ।।।=) डा०ख़र्च अलग।

दिलबहार सोप (रजिस्टर्ड)

यह एक अजीब क़िस्म का साबुन बदन में लगाते ही, मोगरा, चमेली की मनोमोहक ख़ुशबू से तबीयत मुग्ध हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाइश करें।

मूल्य प्रति बट्टी ।-) ३ बट्टी का बक्स ।।।=) डा०ख़र्च अलग।

सोल एजन्टः—

दी एंग्लो इन्डियन ड्रग एन्ड केमिकल कम्पनी २८५ जुमा मसजिद मार्केट, बम्बई नं० २।

क्या होगा ?

शीघ्र ही साहित्य-रत्न पं० लोकनाथ सिलाकारी साहित्याचार्य-द्वारा सम्पादित

प्रेमा का "शृङ्गार-रसाङ्क" प्रकाशित होगा।

यह अङ्क आदि से अन्त तक आनन्द से सराबोर और रस से चुहचुहाता हुआ होगा। शीघ्र ग्राहक बनिए।

हास्य-रसाङ्क
श्रीअन्नपूर्णानन्दजी के सम्पादकत्व में
प्रकाशित हो चुका है। मूल्य ।।।)

शान्त-रसाङ्क
श्रीसम्पूर्णानन्दजी, बी.ए.एल.टी. के सम्पादकत्व में
प्रकाशित हो चुका है। मूल्य ।।।)

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में एक रस-कोष तैयार हो रहा है। अभी से संग्रह कीजिए। हास्य-रसाङ्क और शान्त-रसाङ्क की थोड़ी सी प्रतियाँ बच गई हैं।

जिसका आपको इन्तज़ार था वही

"उमर ख़ैयाम"

पुस्तक रूप में प्रकाशित होने के लिए प्रेस में भेज दिया गया।

अनुवादक श्रीकेशवप्रसाद पाठक, बी० ए०

इस अनुवाद के एक एक शब्द में जादू का असर है। पढ़ते जाइए अपने आप याद होता जायगा। चित्र क्या हैं चित्रकार ने हृदय निकाल कर रख दिया है। छपाई सफ़ाई सजधज में यह पुस्तक अपना सानी नहीं रखेगी। चित्र-संख्या लगभग बारह। मूल्य ४) चार रुपये।

विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा। शीघ्र आर्डर भेजिए।

मैनेजर प्रेमा—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, जबलपुर ब्रांच, जबलपुर

लेख-सूची

(१) वान्छा (कविता)—[श्रीयुत उमेश ... १

(२) फ़ेडरल सरकार—[श्रीयुत प्रभुदयाल मेहरोत्रा, एम० ए० ... ... २

(३) विडम्बना—[श्रीयुत केशवदेव शर्मा ... ६

(४) स्वराज्य में राजस्व-सम्बन्धी समस्यायें—[श्रीयुत दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ... १४

(५) कलकत्ते का भ्रमण—[श्रीयुत चक्रधर 'हंस' बी० ए० ... ... १८

(६) शुभ स्वागत (कविता)—श्रीयुत कुमार प्रतापनारायण कविरत्न ३६

(७) राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श और उसकी मूल-नीति—[श्रीयुत गौरीशङ्कर चटर्जी, एम० ए० ३८

(८) रक्षा—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव एम० ए० ... ... ४४

(९) गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक—[श्रीयुत नरसिंहराम शुक्ल ५१

(१०) साम्प्रदायिक शान्ति—[श्रीयुत रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए० ... ... ६६

(११) अमरता (कविता)—[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ७१

(१२) आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति—[श्रीयुत मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा ... ७३

(१३) स्नेहमयी—[श्रीयुत 'युगनेत्र' ... ७७

(१४) भारत और फ़िडरल-शासन—[श्रीयुत डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० ८४

(१५) शायद हम तुम फिर मिलें—[श्रीयुत श्रीनाथसिंह ९१

(१६) विरहिणी उर्मिला (कविता)—[श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त ९८

(१७) भारत की वर्तमान अवस्था—[श्रीयुत परमानन्द, एम० ए० ... ... ९९

(१८) किसान—[श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए० ... ... १०६

अपूर्व उपहार !

विभाग नं० १८ पोस्टबक्स नं० ५५४, कलकत्ता।
५० वर्ष से प्रचलित शुद्ध भारतीय पेटेण्ट दवाएँ।

प्रतिष्ठाता

डाक्टर एस.के.बर्म्मन

डाबर (डाक्टर एस.के.बर्म्मन) लिमिटेड कलकत्ता

स्थापित डाबर ट्रेड SKB मार्क रजिस्टर्ड सन् १८८४ ई०

"नैवेद्य" (Regd.)

(उपहार में देने का शृङ्गारदान)

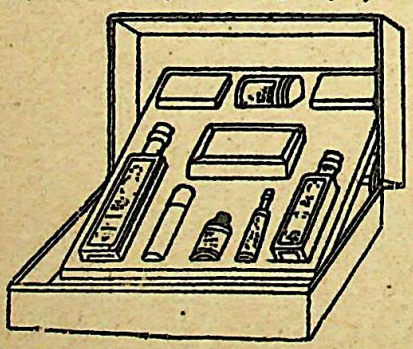

(इसमें चुनी हुई नौ शृङ्गार-सामग्रियाँ हैं)

वर्षगाँठ, विवाह आदि अन्य शुभ कार्यों में अपने प्रिय जनों को कुछ भेंट देने का सुअवसर प्रत्येक परिवार में उपस्थित होता रहता है। अतः उपरोक्त सुअवसरों पर उपहार के लिए यह नैवेद्य बनाया गया है।

इसमें नित्य प्रयोजनीय शृङ्गार-सामग्रियाँ पूरी मात्रा में सुन्दर बक्स में सजी हुई हैं। बक्स देखने में मनोहर है तथा ग्राहकों को मुफ़्त पड़ता है। मूल्य—एक बक्स का ५) पाँच रुपया, डा० म० १॥)

नोट—समय तथा डाक-ख़र्च की बचत के लिए अपने स्थानीय हमारे एजेन्ट से ख़रीदिए।

बिना मूल्य—संवत् १९८८ का "डाबर पञ्चाङ्ग" एक कार्ड लिखकर मँगा लीजिए।

एजेण्टः—इलाहाबाद (चौक) मेसर्स श्यामकिशोर दुबे

(१९) बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर—[श्रीयुत कुँवर हिम्मतसिंह साहित्यरञ्जन १११
(२०) क्या भारत पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ बनेगा ?—[श्रीयुत रामधर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ... १२०
(२१) जिज्ञासा (कविता)—[श्रीयुत 'प्रणयेश' शुक्ल १२६
(२२) द्वन्द्व—[श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र... ... १२७
(२३) सार चयन १३८
(१) शान्ति (कविता)—[श्रीयुत शिवनाथ मिश्र १३८
(२) मुफ़्त की सवारी—[श्रीयुत मुंशी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल-एल०बी० १३८
(३) महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री—[श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र ... १४१
(४) साईंसवालों की स्वराज्य-कांक्षा—[श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बी० ए० ... ... १४३

श्रीस्वामी सन्तदास बावाजी व्रज-विदेही महन्त-प्रणीत

तीन आध्यात्मिक पुस्तकें

१—वेदान्तदर्शन—(श्रीनिम्बार्काचार्यकृत वेदान्त-पारिजात-सौरभ नामक भाष्य-सहित) इस पुस्तक में द्वैताद्वैत-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमें प्रत्येक सूत्र के नीचे संस्कृत भाष्य है और उसके नीचे हिन्दी में विस्तृत व्याख्या है। मूल्य ५)

२—गुरु-शिष्य-संवाद—इस पुस्तक में दर्शन-शास्त्र के गूढ़ प्रश्नों पर बड़ी सरलता के साथ प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।)

३—श्रीस्वामी रामदास काठिया बावाजी—इस पुस्तक में एक महात्मा की जीवनी का विवरण है। इसे पढ़ने से हृदय में अनायास ही आध्यात्मिक भावों का सञ्चार होता है। मूल्य १।)

मैनेजर (बुकडिपो),
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

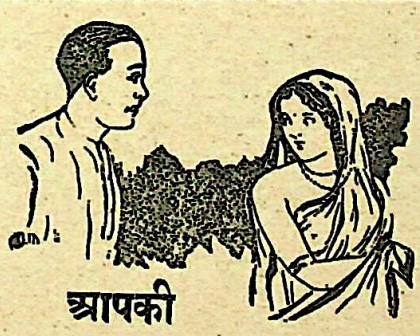

आपकी

स्त्री का मिजाज़ जब बहुत चिड़चिड़ा हो जाय तब उसको "अशोक" का सेवन करना बहुत ज़रूरी है।

बात यह है कि वह अपनी शिकायतों को अच्छी तरह से समझा नहीं सकती। 'अशोक' देशी सामग्रियों से बनाया गया है। डाक्टर, वैद्य तथा हकीम आदि चिकित्सा के सभी प्रकार के व्यवसायी स्त्री-रोगों में ख़ास तौर से इसका सेवन करने की सलाह देते हैं। ८ औंस की शीशी २) रुपये में। सभी अच्छे कैमिस्टों के यहाँ से मिल सकती है।

एस० के० सेन
ऐंड कम्पनी लिमिटेड २९, कोलूटोला, कलकत्ता

(५) तुर्की और रोमन-लिपि—[श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल १४६
(६) काव्यालङ्कारों की उपयोगिता—[श्रीयुत मुनीश्वर पाठक साहित्याचार्य १४९
(७) बैंक ऑव् इँग्लेंड का इतिहास—[श्रीयुत लक्ष्मीकान्त झा ... १५१
(८) शिकार — [श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ... ... १५३
(९) स्वप्न या अभिशाप—[श्रीयुत कालीचरण चटर्जी, बी० ए० ... ... १५६
(१०) रेशम का व्यवसाय—[श्रीयुत डाक्टर आर० एन० बंसीकर ... १५९
(११) मयङ्क (कविता)—[श्रीयुत महन्त धनराजपुरी १६२
(२४) विचार-विमर्श १६४
(१) रामचरितमानस के घाट—[श्रीयुत चन्द्रबली पाण्डेय १६४
(२) फलित ज्योतिष—[श्रीयुत हनूमान शर्मा १६९
(२५) मातृ-मण्डल—[श्रीमती जयदेवी ... १७४
(२६) पुस्तक-परिचय १७८
(२७) हास्य और विनोद— १८४
(१) तीन (कविता) [श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ... १८४
(२) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व—[श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल-एल० बी० ... ... १८४
(२८) अपनी बात १८९

योगसाधन (सचित्र)

आसनों के पचासों सुन्दर चित्रों के साथ योग विषय पर ऐसा सरल, सुबोध और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रंथ आप को कहीं नहीं मिलेगा। यदि आपको सर्वदा नीरोग, युवा, सुन्दर, बलवान् और मेधावी बना रहना है तो योग पर इस विशाल ग्रंथ को अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल २॥) ढाई रुपया।

पता:—मैनेजर "ज्ञानशक्ति प्रेस"
गोरखपुर (यू० पी०)

सुन्दर जिल्द !

बढ़िया कागज़ !!

लीलावती का स्वप्न

कात्यायनी दत्त त्रिवेदी

बढ़िया छपाई !!!

मूल्य ।।।)

यह पुस्तक बंगभाषा के सुविख्यात धुरंधर लेखक श्रीयुत मनोमोहन राय बी० ए०, बी० एल० की "लीलारस्वप्न" का हिन्दीरूपान्तर है। रूपान्तरकार हैं हिन्दी के यशस्वी लेखक पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी। सरल और ज़ोरदार भाषा इस रूपान्तर की विशेषता है। इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं, भगवान् भास्कराचार्य्य और प्रधान पात्री हैं विदुषी लीलावती। चरित्र-चित्रण करने में उपन्यासकार का कौशल अवर्णनीय है। पुस्तक हाथ में लेकर बिना समाप्त किये छोड़ने की इच्छा नहीं होती। आसानी से समझ में आनेवाली भाषा होने के कारण पुस्तक आबाल-वृद्ध-वनिता सभी के पढ़ने योग्य है।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

हिन्दी-प्रेमियों के लिए विशेष सुविधा

हमारे यहाँ की सभी विषयों की समस्त पुस्तकें आपको नीचे लिखे स्थानों से हमारे यहाँ के नियमों के अनुसार ही मिल सकेंगी।

१—हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग-हाउस, चौक, बनारस।
२—इंडियन प्रेस, लि०, ब्रांच, जबलपुर।
३—सिटी बुक हाउस, मेस्टन रोड, कानपुर।
४—इंडियन पब्लिशिंग-हाउस, २२।१ कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता।
५—बिहार पब्लिशिंग-हाउस, चौहट्टा, पटना।
६—आगरा पब्लिशिंग-हाउस, आगरा।
७—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, गनपत रोड, अनारकली, लाहौर।
८—इंडियन प्रेस, लि०, १५९/१ए, बहू बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता।

निवेदक—इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग।

चित्र-सूची

१—म नस्तो के……हवामहे (रङ्गीन)—मुखपृष्ठ
२-१६—कलकत्ते का भ्रमण-सम्बन्धी १५ चित्र १९-३४
१७—आसा दये पुन न करिय निराश (रङ्गीन) ४८
१८-२८—गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक-सम्बन्धी ११ चित्र ... ५२-६४
२९-३४—स्नेहमयी-सम्बन्धी ६ चित्र ... ७८-८३
३५-४८—बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर-सम्बन्धी १४ चित्र १११-११९
४९—स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री १ २
५०—निठुर वालम्भु सजोला ओलसिनेहे (रङ्गीन) १४४
५१—जीवत यौवन सफल करी मानलु (,,) १६८
५२-५६—मातृ-मण्डल-सम्बन्धी ५ चित्र ... १७४-१७६
५७—श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त, 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी० ... १८५

दो बालोपयोगी पुस्तकें

बालगोपाल तथा अन्य कहानियाँ

(पण्डित देवीदत्त शुक्ल, सरस्वती-सम्पादक)

शुक्लजी ने बच्चों की रुचि का भली भाँति अध्ययन करके ये कहानियाँ बहुत ही सरल और मधुर भाषा में लिखी हैं। सभी कहानियाँ मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। मूल्य ।=) छः आने है।

दूध-मलाई

(अध्यापक मुरारीलाल शर्मा तथा श्री० कुञ्जविहारीलाल 'स्नेही')

यह रंग-बिरंगी पुस्तक इतनी सरल, मधुर और रोचक भाषा में लिखी गई है कि बच्चे आदि से अन्त तक पढ़े बिना इसे छोड़ते ही नहीं। सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ॥) आठ आने है।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ॥=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४) और प्रतिसंख्या का ॥=) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद", के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

सरस्वती के विज्ञापन-छपाई के रेट

कवर का दूसरा पृष्ठ	३६)	प्रतिमास
,, ,, ,, एक कालम ...	२१)	,,
,, ,, तीसरा पृष्ठ	३६)	,,
,, ,, ,, एक कालम ...	२१)	,,
,, ,, चौथा पृष्ठ	४८)	,,
,, ,, ,, एक कालम ...	२४)	,,
पाठ्य विषय की समाप्ति के सामनेवाला पृष्ठ	३०)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के द्वितीय पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३०)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
कवर के तीसरे पृष्ठ के सामनेवाला पृष्ठ	३०)	,,
,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
रङ्गीन चित्र से पहलेवाला पृष्ठ ...	३)	,,
,, ,, ,, ,, ,, एक कालम	१८)	,,
लेख-सूची के नीचे ½ पृष्ठ ...	१८)	,,
,, ,, ,, ½ कालम ...	१२)	,,
,, ,, ,, ¼ ,, ...	७)	,,

साधारण नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई ...	२४)	प्रतिमास
½ ,, या १ ,, ,, ...	१३)	,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ...	७)	,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ...	४)	,,

१—"सरस्वती" में अश्लील विज्ञापन नहीं छापे जाते, अतः कुरुचि-पूर्ण विज्ञापन न भेजिए।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवालों को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है, औरों को नहीं।

३—छपाई के रेट जो ऊपर दिये हैं ये अकाट्य (FINAL) हैं। इनके लिए लिखा-पढ़ी करना व्यर्थ है।

४—जितने समय तक के लिए कन्ट्रेक्ट किया गया है, उतने समय तक विज्ञापन छपाना होगा। विज्ञापन न छपाने पर भी उसका चार्ज विज्ञापक को देना होगा।

पत्र-व्यवहार करने का पता—

मैनेजर, विज्ञापन-विभाग

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।

वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः
सदमित्वा हवामहे—

श्वेताश्वतरोपनिषत्

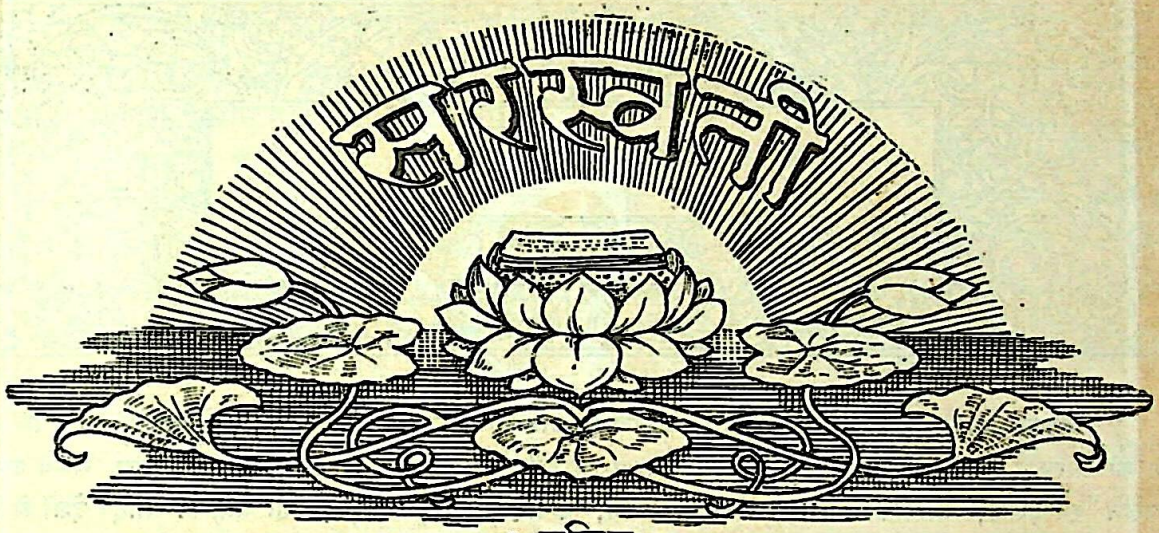

वार्षिक मूल्य ६।।)
Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ।।=)
As. 10 per copy.

भाग ३३, खण्ड १] जनवरी १९३२—पौष १९८८ [सं० १, पूर्ण-संख्या ३८५

वाञ्छा

(१)

अति कमनीय सौम्य शिशु-सा स्वभाव मेरा,
सुन्दर हो शान्त हो सरस हो सरल हो।
मेरे करतल में ही सारे सुख का हो वास,
प्राप्त मुझे स्वीय सुकृतों का सदा फल हो।
पूर्ण ज्ञान का ही आभरण हो 'उमेश' मेरा,
गंगाजल-विन्दु-सा पवित्र प्रतिपल हो।
मेरे शीश पर हो तुम्हारा कृपा-छत्र मेरी,
जीवन की रेखा चन्द्रलेखा-सी अमल हो॥

(२)

जब इस गात का सुयोग पञ्चतत्त्व से हो,
भूमि-भाग मिले हिम-अवनी निखिल में।
वारिधि में बूँद के समान वारि-सार मेरा,
लीन हो सहस्रधा के सुन्दर सलिल में।
गुप्त आरती के दिव्य दीप में हो अग्नि-तेज,
लुप्त वायु-अंश हो कैलाश के अनिल में।
व्योम-तत्त्व मेरा सम्मिलित हो तुम्हारे नाथ !,
मञ्जु मणि मन्दिर के अम्बर अखिल में॥

—उमेश

फ़ेडरल सरकार

[लेखक महोदय ने अपने इस लेख में फ़ेडरल सरकार का सङ्गठन बताया है ? इसके बाद लिखा है कि इस ढंग की सरकारें प्राचीन काल में यूनान, इटली तथा एशिया और रूस आदि देशों में थीं और इस समय उसका प्रचलन स्वीज़लैंड, अमरीका के संयुक्त-राज्य, जर्मन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ़्रीका आदि देशों में है। उन्होंने इन देशों की सरकारों का थोड़े में रूप भी निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार उन्होंने अपने इस सुन्दर लेख में संसार में प्रवर्तित फ़ेडरल सरकारों का अच्छा परिचय दिया है।]

मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह समाज में रहना ही पसन्द करता है। पर मनुष्य समाज में तभी रह सकता है जब उसे यह विश्वास हो कि समाज में उसके अधिकार सुरक्षित रहेंगे; समाज के लोग एक दूसरे पर अत्याचार न करेंगे; और कोई अनुचित लाभ न उठायेगा। इन सब बातों की देख-भाल करने के लिए समाज में एक शक्ति की आवश्यकता होती है। अन्यथा मनुष्य मनमानी कर सकता है। ऐसी शक्ति को सरकार कहते हैं।

सरकार मुख्यतः दो प्रकार की होती है। जब समाज या देश का शासन एक ही केन्द्र से होता है और देश के भिन्न-भिन्न भागों के जिन्हें बहुधा प्रान्त कहते हैं, कोई निजी स्वतन्त्र अधिकार नहीं रहते तब ऐसी सरकार को यूनिटरी सरकार कहते हैं। ऐसी सरकार के अन्तर्गत प्रान्तों के अधिकार केन्द्रीय सरकार-द्वारा दिये हुए होते हैं। जब दो या दो से अधिक स्वतन्त्र तथा स्वाधीन राज्य आपस में मिलकर कुछ स्थायी लाभों के लिए एक केन्द्रीय सरकार को स्थापना करते हैं और अपने कुछ अधिकार उस केन्द्रीय सरकार को दे देते हैं तब उस प्रकार की सरकार को फ़ेडरल सरकार कहते हैं। फ़ेडरल सरकार में शासनाधिकार आपस में बाँट दिये जाते हैं। कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार के पास रहते हैं, कुछ अधिकार प्रान्तों के पास रहते हैं। शासनाधिकार बाँटने के दो ढङ्ग होते हैं। प्रथम ढङ्ग के अनुसार कुछ स्पष्ट तथा निश्चित अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं, शेष अधिकार प्रान्तों के पास रह जाते हैं। दूसरे ढङ्ग के अनुसार कुछ स्पष्ट तथा निश्चित अधिकार प्रान्तों को दे दिये जाते हैं, शेष अधिकार केन्द्रीय सरकार के पास रह जाते हैं। जो अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं उन अधिकारों के बारे में केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध न केवल उन प्रान्तों से किन्तु उन प्रान्तों के नागरिकों से भी सीधा रहता है। जो अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं उन्हें छोड़ कर शेष अधिकार प्रान्तों के पास बने रहते हैं और उन बातों में वे पूर्णतया स्वतन्त्र तथा स्वाधीन होते हैं। फलतः नागरिकों को दो सरकारों

को आज्ञा माननी पड़ती है। कुछ बातों में वे अपने प्रान्त के शासन के अधीन होते हैं, कुछ बातों में वे केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं। उन्हें दो के क़ानून मानने पड़ते हैं—प्रान्त का क़ानून एवं फ़ेडरल सरकार का क़ानून। उपर्युक्त दोनों भाँति की सरकारों में कौन श्रेष्ठ है? यह प्रश्न पूर्णतया निरर्थक है। किसी देश के लिए कोई सरकार अच्छी है, किसी देश के लिए कोई। सरकार की उपयोगिता तो देश या समाज की हालत पर निर्भर करती है। इँग्लेंड के लिए यूनिटरी सरकार अच्छी है, अमेरिका के लिए फ़ेडरल। अस्तु।

फ़ेडरल सरकार नवीन वस्तु नहीं है। संसार के प्राचीन इतिहास में इस सरकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन काल में यूनान का प्रत्येक नगर स्वतन्त्र तथा स्वाधीन था। प्रत्येक नगर एक राज्य होता था। इन नगर-राज्यों में आपस में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न था। 'अपनी अपनी डफली अपना अपना राग' की कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती थी। इस प्रकार छोटे से यूनान-देश में सैकड़ों राज्य थे, जिनमें बहुधा आपस में एक दूसरे से युद्ध हुआ करते थे। इन राज्यों की शासन-प्रणाली भी भिन्न-भिन्न थी। किसी नगर में लोक-तन्त्र-शासन था, किसी में एकतन्त्र और किसी में शासन की बागडोर कुछ चुने लोगों के हाथों में थी। इसी यूनान-देश में प्राचीन काल में कई एक फ़ेडरल सरकारें थीं। थेसेली, ब्योटिया, अकारनेनिया, ओलिंपस, आरकेडिया, एटोलिया, एचेदया, ईटोलियन लीग और एचियन लीग आदि वहाँ का प्रधान फ़ेडरल सरकारें थीं।

ईटोलियन लीग की शासन करनेवाली कौंसिल एक स्थायी प्रतिनिधि-संस्था थी। एक आम सभा भी होती थी, जो बहुत अंशों में प्रतिनिधि-सभा भी थी। इसमें कोई भी पुरुष उपस्थित हो सकता था। प्रत्येक राज्य का एक ही सरकारी प्रतिनिधि तथा एक ही वोट होता था। यूनान में जितनी फ़ेडरल सरकारें थीं उनमें से उपर्युक्त लीग में अवश्य लोकतन्त्र था। फ़ेडरल अफ़सरों की पूरी योजना थी। प्रधान फ़ेडरल अफ़सर को सैनिक तथा सिविल दोनों अधिकार प्राप्त थे। यह अफ़सर प्रति वर्ष चुना जाता था। एचियन लीग भी सुसङ्गठित थी। प्रत्येक शहर अपने आन्तरिक मामलों में स्वाधीन तथा स्वतन्त्र था। उसमें भी फ़ेडरल अफ़सर होते थे। तमाम शहरों की सेनायें लीग के अधीन रहती थीं। फ़ेडरल ख़ज़ाना पृथक् होता था।

यूनान को छोड़ कर अन्य देशों में भी फ़ेडरल सरकारें होती थीं। लघु एशिया में भी एक फ़ेडरल सरकार थी, जिसमें तेईस शहर शामिल थे। एक कौंसिल शासन करती थी, जिसकी बैठकें समय समय पर होती थीं। ये बैठकें किसी एक नगर में न होती थीं। जब जिस नगर में सबसे अधिक सुविधा होती थी तब उसी नगर में बैठक होती थी। शहरों के प्रतिनिधि एक से तीन तक होते थे। छोटे शहर का एक प्रतिनिधि होता था। बड़े शहर के तीन प्रतिनिधि होते थे। उसी भाँति ये शहर सरकारी ख़र्च का भार भी उठाते थे।

इटली के इतिहास में भी फ़ेडरल सरकार के उदाहरण मिलते हैं। उनमें सबसे प्रधान लेटियम् नगरों की लीग थी।

रूस में भी तीसरी और चौथी शताब्दियों में नीपर और नीस्टर नदियों के बीच में एक बलवान् जाति रहती थी, जिसे आन्टे कहते थे। इन लोगों का भी अपना एक फ़ेडरेशन था।

वर्तमान समय में स्वीज़लेंड का प्रजातन्त्र सर्व-श्रेष्ठ फ़ेडरल शासन है। इसमें २२ राज्य शामिल हैं। शासन का कार्य दो धारा-सभायें करती हैं। बड़ी धारा-सभा में जिसे सिनेट या कौंसिल आफ़ स्टेट कहते हैं, प्रत्येक राज्य का समान प्रतिनिधित्व रहता है। छोटी सभा (राष्ट्रीय कौंसिल) के सदस्य जनता-द्वारा चुने जाते हैं—२०,००० पुरुषों पीछे एक सदस्य। उपर्युक्त दोनों सभायें 'फ़ेडरल ऐसम्बली'

कहलाती हैं। कार्य-कारिणी कौंसिल जिसमें सात सदस्य होते हैं, तीन वर्ष के लिए फ़ेडरल ऐसम्बली-द्वारा चुनी जाती है। इसका एक सदस्य साल भर के लिए फ़ेडरल ऐसम्बली-द्वारा ही कौंसिल का सभापति चुना जाता है। फ़ेडरल कौंसिल की दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। पहली बात तो यह है कि किसी एक राज्य का एक से अधिक प्रतिनिधि कौंसिल में नहीं रह सकता। दूसरी बात यह है कि यद्यपि यह फ़ेडरल ऐसम्बली के प्रति उत्तरदायी रहती है, तथापि इसके सदस्य किसी एक दल के नहीं होते और यदि इसकी नीति को धारा-सभा रद कर देती है तो कौंसिल त्याग-पत्र नहीं देती। आम तौर से इसके सदस्य वर्षों तक बार बार चुन लिये जाते हैं।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में भी फ़ेडरल सरकार है। प्रेसीडेन्ट चार वर्ष के लिए चुना जाता है और वह प्रजातन्त्र का उच्चतम शासक है। वह स्वयम् अपनी कैबिनट को नियुक्त करता है और बर्ख़ास्त करता है। कैबिनट के सदस्य अपने अपने विभागों की नीति और शासन के लिए धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी न होकर प्रेसीडेंट के प्रति उत्तर-दायी होते हैं। वाइसप्रेसीडेंट जो सदा सिनेट का सभापति होता है, प्रेसीडेन्ट के मरने पर या उसके त्याग-पत्र देने पर प्रेसीडेंट होता है। वहाँ कांग्रेस ही उच्चतम धारा-सभा है। कांग्रेस में दो सभायें होती हैं। सिनेट में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि होते हैं, जो ६ वर्ष के लिए चुने जाते हैं। छोटी सभा में आबादी के लिहाज़ से प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि रहते हैं, जिनका कार्य-काल दो वर्ष का होता है। 'सुप्रीम-कोर्ट' उच्चतम अदालत होती है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा आठ अन्य न्यायाधीश होते हैं। इनको प्रेसीडेंट जीवन भर के लिए नियुक्त करता है। पर इनकी नियुक्ति पर सिनेट की स्वीकृति अवश्य होनी चाहिए।

जर्मनी के शासन को भी फ़ेडरल ही समझना चाहिए। यद्यपि कुछ लोगों का कहना है कि जर्मनी का शासन फ़ेडरल नहीं कहा जा सकता। जर्मनी का उच्चतम शासक प्रेसीडेंट है, जो जनता-द्वारा सात वर्ष के लिए चुना जाता है। प्रेसीडेंट सदा विशेष बहुमत-द्वारा ही चुना जाता है, और जब प्रथम चुनाव में किसी एक उम्मेदवार के पक्ष में विशेष बहुमत नहीं रहता तो चुनाव फिर होता है। पार्लामेंट में दो सभायें होती हैं। बड़ी सभा को रीच्सरैट कहते हैं। रीच्सटैग छोटी सभा का नाम है। बड़ी सभा में जर्मनी के तमाम राज्यों और स्वतन्त्र नगरों के प्रतिनिधि रहते हैं। ये प्रतिनिधि सदा राज्यों के मन्त्रि-मण्डलों से लिये जाते हैं। प्रतिनिधियों की संख्या राज्यों की आबादी पर निर्भर करती है—१० लाख की आबादी पीछे एक प्रतिनिधि। पर यदि किसी राज्य की आबादी १० लाख से कम हो तो भी उसका एक प्रतिनिधि बड़ी सभा में अवश्य होता है। और किसी राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या सभा के दो तिहाई से अधिक नहीं हो सकती, चाहे उसकी आबादी कितनी ही अधिक क्यों न हो। छोटी सभा के सदस्य चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इनकी संख्या निश्चित नहीं रहती। सदस्यों की संख्या चुनाव के समय पड़े हुए वोटों पर निर्भर करती है। प्रत्येक साठ हज़ार पड़े हुए वोटों के पीछे एक सदस्य चुना जाता है। ये सदस्य आनु-पातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर चुने जाते हैं। जर्मनी के चुनाव एक विशेष योजना के अनुसार होते हैं, जिसे बेडन-योजना कहते हैं और जो सन् १९२० से जर्मनी में जारी है।

कनाडा की सरकार भी फ़ेडरल है। यहाँ की पार्लामेंट को भी दो सभायें होती हैं। बड़ी सभा को सिनेट कहते हैं। इसके सदस्यों को राजा नियुक्त करता है। छोटी सभा को हाउस आफ़ कामन्स कहते हैं, जिसके सदस्य भिन्न-भिन्न प्रान्तों-द्वारा उनकी आबादी के अनुसार चुने जाते हैं। गवर्नर-जनरल

को राजा पाँच वर्ष के लिए नियुक्त करता है। फ़ेडरल सरकार के तमाम मामलों में वह राजा का प्रतिनिधि माना जाता है। प्रान्तों के गवर्नरों को गवर्नर-जनरल नियुक्त करता है। प्रान्तीय पार्लामेंटें अपने अपने प्रान्तों के लिए क़ानून बनाती हैं।

आस्ट्रेलिया में भी सन् १९०१ में फ़ेडरल सरकार की स्थापना की गई थी। आस्ट्रेलिया और कनाडा की फ़ेडरल सरकारों के अधिकारों में एक उल्लेखनीय अन्तर है। कनाडा की फ़ेडरल पार्लामेंट को उन सब बातों का अधिकार है जो स्पष्ट रीति से प्रान्तीय पार्लामेंटों को नहीं दिया गया है। आस्ट्रेलिया की फ़ेडरल पार्लामेंट को केवल उन्हीं बातों पर अधिकार है जो इसे स्पष्ट रीति से दिया गया है। शेष बातों पर वहाँ के राज्यों का अधिकार रहता है। आस्ट्रेलिया में यह सिद्धान्त पूर्णतया माना गया है कि पार्लामेंट की एक सभा में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए। कनाडा में यह सिद्धान्त पूर्णतया नहीं माना गया है।

बहुत वर्ष पूर्व दक्षिणी अफ़्रीका के उपनिवेशों में भी फ़ेडरल सरकार को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था। इसी लिए सन् १८७७ में एक क़ानून भी पास किया गया था। यह क़ानून अभी कार्यान्वित भी न होने पाया था कि सन् १८८२ में इसका अन्त हो गया। पर सन् १९०८ में एकता-आन्दोलन ने अफ़्रीका में ज़ोर पकड़ा। फलतः सन् १९०९ में दक्षिणी अफ़्रीका-क़ानून-द्वारा अफ़्रीका में फ़ेडरेशन के स्थान पर एक सङ्घ की स्थापना की गई। यद्यपि कुछ बातों में फ़ेडरल को विशेषतायें भी रख ली गई थीं।

अभी तक जानबूझ कर मैंने इस लेख में भारतवर्ष का ज़िक्र नहीं किया है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में फ़ेडरेशन के उदाहरण समय समय पर मिलते हैं। इस समय भी भारतवर्ष में फ़ेडरल सरकार की स्थापना करने का भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। पर मार्ग इतना सुगम नहीं है जितना कुछ लोग समझते हैं।

—प्रभुदयाल मेहरोत्रा

योरप का इतिहास

योरप के इतिहास का अध्ययन करने पर आप रोम, यूनान आदि के उत्थान-पतन, और इंग्लैंड, जर्म्मनी आदि देशों के उलट-फेर से चकित होंगे, साथ ही, क्रमशः योरप के सभी देशों में राजा की निरङ्कुशता का अन्त होते और प्रजा के सम्मिलित और सामूहिक स्वर की प्रभावशालिता देखकर आनन्दित भी होंगे। अतएव आज ही एक पत्र लिखकर प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता और हिन्दी के सुलेखक भाई परमानन्द एम० ए० द्वारा लिखित 'योरप का इतिहास' की एक प्रति मँगा लीजिए। पचासों चित्रों से युक्त एक प्रति का मूल्य केवल ४) चार रुपये हैं।

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

विडम्बना

मंसूरी में जितनी स्वच्छ और रम्य सड़कें हैं, उतनी ही एक तंग और गन्दी गली भी है। उसके एक तरफ़ घाटी है जहाँ कूड़े और राख के ढेर लगे रहते हैं, दूसरी तरफ़ मकान हैं जहाँ अंडे और सड़े हुए फल बिका करते हैं। यहीं एक चार खन के ज्यादातर टीन और लकड़ी के बने हुए जीर्ण दुर्गन्ध-युक्त मकान में अब्दुल्ला की दूकान थी।

वह दर्ज़ी था। सड़क के पास सबसे नीचे की मंज़िल में उसकी एक कोठरी थी। मुश्किल से आठ-दस फ़ुट चौकोर भूमि होगी। उसी में जहाँ एक ओर उसकी कपड़े सीने की पुराने ढंग की मशीन और कपड़ों का एक संदूक़ रक्खा था वहाँ दूसरी तरफ़ एक खाट भी बिछी हुई थी, जिस पर उसका एक अठारह वर्ष का भतीजा अहमद सोता था। रात को सोते समय वह अपने बने-अधबने वस्त्रों को उस बाक्स में भर देता था और फिर उस गर्म जगह पर आप सो जाता था। बचे हुए स्थान पर उसके कुछ एल्यूम्यूनियम और तामचीनी के पुराने बर्तनों का अधिकार था। एक अँगीठी थी, जिसका तला बहुत दिन हुए अपनी आयु समाप्त कर चुका था, और अब अब्दुल्ला के जीवन की भाँति कोयलों से शनैः शनैः गिरती हुई ख़ाक को वह अपने अन्दर नहीं रख सकती थी।

फिर भी रात्रि होने पर जब आस-पास के दो-तीन कुँजड़े, एक टीन के बर्तनोंवाला और एक तम्बाकू-वाला जो उस समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था, आकर बैठक जमाते थे तब न जाने दिन भर उसके घर को एक गन्दा दृश्य बनाये रखनेवाली सब वस्तुएँ कहाँ किनारा कस जाती थीं। एक मैली दीवार से लेकर दूसरी मैली दीवार तक चेहरे ही चेहरे दिखाई पड़ते थे।

अब्दुल्ला की दूकान यहाँ चौदह वर्ष से थी, किन्तु ग्राहक-मण्डल बहुत ही परिमित था। रोज़ के बैठनेवालों को छोड़कर और कुछ ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें कपड़े बनवाने की आवश्यकता कभी न कभी पड़ जाती थी और वे अब्दुल्ला को ही उस कार्य के योग्य समझते थे। कम आयुवाले ज़रा शौक़ीन मिजाज़ लोग उसके यहाँ कभी न आते थे। वह पुराने फ़ैशन का दर्ज़ी था। वह यह नहीं समझता था कि कपड़े बनाने में भी विशेषता होती है और सभी दर्ज़ियों में नहीं होती है। दस वर्ष की आयु से जिस प्रकार वह सुई-क़ैंची और मशीन चलाता आया है, उसी प्रकार अब भी चलाता रहता है। जिस तरह तब वह सारे दिन कपड़े और टाँकों पर दृष्टि गड़ाये रहता था, वही वह अब भी करता है। अपने ग्राहकों को किसी नवीन कट या फ़ैशन के द्वारा ख़ुश करने का उसे कभी विचार ही नहीं हुआ। उसके मस्तिष्क में उतना आविष्कार, उतनी स्फूर्ति थी ही नहीं। उत्साह या नवीनता ने

कभी उसके जीवन को आलोकित किया ही नहीं। उसके ख़याल में हो कभी यह बात न आई कि उसके काम और जीवन में कुछ सुधार हो सकता है, या वह बुरा भी है। बहुत दिनों से रहते-रहते वह स्वयं भी उस अँधेरी कोठरी का एक भाग हो गया था। वर्ष भर में ऐसे बहुत कम दिन होते थे जब वह अपने जवानी के ढीले ख़ाकी कोट और छोटे छोटे काँचों के हास्यास्पद चश्मे को चढ़ा कर बाज़ार में घूमने निकलता था। उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया था। सुन्दर और सजीली सड़कों की चमक से उसका निर्बल हृदय भयभीत-सा होता था, आँखें घबराती-सी थीं। दिया जले बाद उस तम्बाकूवाले के आग्रह से यदि कभी चला भी जाता तो अशान्ति और चञ्चलता से ग्रस्त उसका खिन्न हृदय बार-बार उसे उसके कृत्य के लिए धिक्कारता था। वह मन ही मन दुखी होता और पछताता था, पर मुँह से कुछ न कहता था। किसी अद्भुत वस्तु के दिखाने पर वह तम्बाकू-वाले की ओर देखकर एक सूखी हँसी हँस देता था। आख़िर वह तम्बाकूवाला भी उसकी उदासीनता और जड़ता से उकता कर शीघ्र ही उसे घर लौटा लाता और उस दिन अपनी सन्ध्या को नष्ट हुई समझता।

अब्दुल्ला किसी विषय पर अपनी कोई निजी सम्मति न रखता था। अमुक कार्य इस प्रकार क्यों होता है? उस तरह क्यों नहीं होता? यह क्यों आवश्यक है? इसके बिना क्या होगा? यदि कहीं ऐसा हो सकता? इस तरह के प्रश्न उसकी विचार-सीमा से बहुत परे थे। संसार और उसमें अपने जीवन को जैसा उसने पाया वैसा ही मंज़ूर कर लिया। सुधार के लिए भाग्य से उसने कभी आन्दोलन नहीं खड़ा किया। उत्सुकता और कुतूहल के भावावेश से भी वह बिलकुल अनभिज्ञ था।

जिस मशीन पर उसने अपनी आयु भर काम किया था उसके बारे में भी उसने कभी यह न जानना चाहा कि वह कपड़ा सी कैसे देती है। मशीन का व्यक्तित्व भी उसके हृदय में एक विशेष स्थान रखता था। उसका रहस्य उसने अज्ञेय समझ रक्खा था। वह उस मशीन से ऐसा व्यवहार रखता था, मानो उसमें आत्मा हो और वह बुरा-भला मानने का विचार भी रखती हो। उसने उसके लिए भिन्न-भिन्न रंगों की कई खोलियाँ बनाई थीं और समय-समय पर उसे उन्हें पहने देखकर बहुत ख़ुश होता था। यदि उसमें कभी कुछ ख़राबी हो जाती थी तो धीरे-धीरे खोल कर उसे देखता और एक एक करके अपनी सारी पाँचों-छहों युक्तियों को क़ायदे से आज़माता। एक एक स्क्रू खोलने के पहले कई बार उस स्थान पर झुक झुककर विवशता और दुखभरी दृष्टि डालता, फिर वहाँ अपना पेचकस रखता था। कैसी विडम्बना है? इस पर भी कभी कभी वह ठीक न होती थी। बेचारा निराश होकर अपनी कुहनियों को घुटनों पर रख कर और सिर को अपने दोनों हाथों में लेकर, खिड़की के उजाले के नीचे बैठ जाता। उसका सारा दिन फिर चिन्ता और उदासी के सन्नाटे में ही गुज़रता था। रात को जब वह टीनवाला आता था तब विवश होकर अब्दुल्ला अपनी प्यारी मशीन को उसके सामने रख देता था। किन्तु जब वह मिस्त्री बड़ी निश्चिन्तता और अधिकार से मशीन के अन्तराल में अपना निर्दय पेचकस घुमाता था तब अब्दुल्ला के सोते हुए दुबले चेहरे की लकीरें क्षण-क्षण में बदलती रहती थीं। मानो लोहे का वह औज़ार मशीन के किसी दोष को नहीं बल्कि अब्दुल्ला के कायर कलेजे को ढूँढ़ रहा है।

इस मशीन के समान ही उसकी ममता का अधिकारी एक और भी था। वह था उसका भतीजा जो उसकी तिल-मात्र भी परवा न करता था और जिसकी छोटी किन्तु सख़्त खाट हर समय उस कोठरी में अपने चारों पैर जमाये रहती थी। उसका नाम अहमद था। बचपन से ही आवारा लड़कों से उसका साथ रहा था। उसका चरित्र यद्यपि अभी कुछ बन नहीं चुका था, तथापि आसार अच्छे न

थे। खूब खा-पीकर सुबह घर से निकलता तो रात को सूरत दिखाता। कभी कभी इसमें भी नागा हो जाता था। एक दिन किसी ने अब्दुल्ला से शिकायत की कि तुम्हारा लड़का दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा है। रोज़ दूर दूर के झरनों पर जाकर शरावें उड़ती हैं।

अब्दुल्ला बचपन में उसे बहुत प्यार करता था, इसलिए कभी कुछ न कहता था। पर इधर दो-तीन वर्ष से असल में वह उससे कुछ भय खाने लगा था। फिर भी यह शिकायत सुनने पर उसने उसे फटकार कर लज्जित तो किया, किन्तु बिना उसका उत्तर पाये ही शीघ्र ही नम्र भी पड़ गया और उसे समझाने लगा। अहमद शायद अब्दुल्ला को अच्छी तरह जानता था। उसने बहुत ही थोड़े से शब्दों में उसे यह अच्छी तरह समझा दिया कि ये सब झूँठी बातें हैं, परन्तु अपने समय के उपयोग या दुरुपयोग का हिसाब देने की अब भी उसने कुछ आवश्यकता न समझी, न अब्दुल्ला ने ही इस विषय में कुछ तर्क किया।

इसी प्रकार बिलकुल भिन्न प्रकृति के दो यात्रियों को लिये हुए यह नौका संसार का सफ़र कर रही थी। और यदि एक साधारण सी घटना बीच में ही न हो जाती तो शायद कुछ दिन और इसी तरह निकल जाते।

संध्या हो रही थी। सूर्य डूबने में कुछ देर थी, बादल भी घिर रहे थे, परन्तु मेह न था। लोग डर से घर के बाहर न निकलते थे। न जाने कहाँ टूट पड़े, पहाड़ी मेह ठहरा। अब्दुल्ला की गली में सिवा प्रातःकाल के जब उसमें आम के व्यापारी गला फाड़ फाड़कर अपनी टोकरियों के नीलाम की बोली बोला करते थे, प्रायः हर समय सुनसान रहता था। इस समय तो वहाँ बिलकुल ही सन्नाटा था, कीच भी काफ़ी हो रही थी। कोठरी में अँधेरा होने के कारण अब्दुल्ला से काम भी न होता था। दिन पर दिन गिरती हुई आँखों की नज़र और उँगलियों के पोरुओं पर ठीक ठीक क़ाबू नहीं, तिस पर भी सुई का काम ठहरा। दिया जलाने के नित्य के समय में अभी दो घंटे की देरी थी, इसी लिए लैम्प के तीन दिन के तेल को दो दिन में ही समाप्त करना भी उसकी नीति के प्रतिकूल था। परन्तु एक बार जब सुई इतनी चुभ गई कि उस सूखी उँगली पर भी रक्त की एक बूँद चमक आई तब उसने काम उठा कर रख दिया और दरवाज़े पर आकर बादलों की ओर देखने लगा। अँधेरा होता आ रहा था। खूब ठंडी हवा चल रही थी। उसे सर्दी-सी मालूम पड़ने लगी। मन में आया कि ओढ़ कर कुछ देर लेट रहूँ। किन्तु इसी समय गली की मोड़ पर उसे कोई आता हुआ दिखाई पड़ा। और जब वह असाधारण राही अब्दुल्ला के सम्मुख ही आकर खड़ा हो गया तब तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहने हुए, सिर पर जाली की ऊँची टोपी लगाये वह एक भद्र पुरुष जान पड़ता था। उसकी लम्बी काली दाढ़ी में कहीं कहीं सफ़ेद लकीरें मालूम पड़ती थीं, परन्तु चेहरे पर दमक थी। पोशाक सादी होते हुए भी उसे काफ़ी रोबीला बनाये हुए थी। मालूम होता था, पुरानी सभ्यता में वह अमीर रह चुका है।

अब्दुल्ला ने पूछा—क्या आप कोई कपड़ा सिलवायेंगे? आगन्तुक ने कहा—नहीं, सिलवाना तो नहीं है। फिर बग़ल से एक छोटा सा बंडल निकाला और कमख़ाब की एक पुरानी जीर्ण वासकट खोल कर कहा—सिर्फ़ इसकी मरम्मत करवानी है। कई दिन से सोचता था किसी पुराने दर्ज़ी को इसे दूँगा, पर मौक़ा ही न मिलता था। अब परसों ही इसकी ज़रूरत है। इसी लिए आज लाना पड़ा। आज-कल के ये नये दर्ज़ी इन कपड़ों की क़द्र नहीं जानते।

अब्दुल्ला ने कुछ देर तक ग़ौर से वासकट को देखा। ऐसा कपड़ा पहले उसके देखने में कभी न आया था। काम साधारण था, पर उसे अपने ऊपर भरोसा न होता था। ऐसे कपड़े पर वह सुई चला

सकेगा ? साहस का उसके चरित्र में एक-दम अभाव था। स्वाभिमान का भी उसके हृदय ने कभी अनुभव नहीं किया था, परन्तु आज उस मरम्मत के काम के लिए भी नहीं कर देने में उसे कुछ ग़ैरत-सी मालूम पड़ने लगी। वासकट ले ली। आज पहली पर उसे किसी विशेष आयोजन के भार का अनुभव हुआ।

दूसरे दिन सब काम छोड़ कर वह उसी वासकट में लगा रहा। उसमें उसे कुछ विशेष आनन्द-सा आने लगा। खाना-पीना भी उसे उस दिन विघ्नकर जान पड़ा। इधर :वासकट में काम निकलता ही चला जाता था। परन्तु अब्दुल्ला अथक होकर उसमें रत हो रहा था। उसे इसकी तनिक भी चिन्ता न होती थी कि काम बढ़ रहा है। ऐसी तन्मयता, ऐसा विस्मरण उसे कभी न हुआ था। उसके मन में यह एक अव्यक्त भाव पैदा हो गया था कि यदि यह कार्य कभी समाप्त ही न हो तो अच्छा। मानो उसे अपने जीवन की प्रतिभा का कुछ आभास मिल गया हो।

दिन छिप कर अँधेरा हुए तीन घंटे हो गये। अब्दुल्ला की धुएँ से रँगी हुई पुरानी लालटेन उसके सामने जल रही है। पास ही उसकी पीली रोशनी में किसी दार्शनिक की भाँति सिर झुकाये अब्दुल्ला वासकट को देख रहा है। जैसे वह उसके किसी रहस्य में उलझ रहा हो। एक तरफ़ देखकर फिर दूसरी ओर जाँचता। कल सुबह ही उठकर वह किधर से काम शुरू करेगा ? फिर इतने भाग को वह कब तक समाप्त कर सकेगा ? पूरा होने पर यह कैसा दिखाई पड़ेगा ? साथ ही वह उसे यदि इस प्रकार बदल दे तो बड़ा सुन्दर हो। कहीं ऐसा न हो कि यह कपड़ा यहाँ से खुल जाय। यह भाग अगर किसी तरह ज्यादा कट गया तो ? वासकट कुरूप हो जायगी। क्या कल यह पूरी हो जायगी ? फिर ? इसके बाद ? 'वह' ले जायगा ? इस विचार से उसका मन एक-दम गिर गया। उसे अपना काम निरुद्देश, निस्सार-सा जान पड़ा। पर ऐसा हुआ क्यों—वासकट का मालिक उसे लेता ही—यह वह ज़रा भी समझ न सकता था। वेदना थी, पर उसका स्थान न था।

वासकट के तरह तरह के विचार लैम्प के असंख्य भुनगों की तरह उसके सुनसान मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे, जिनका न कोई आधार था न क्रम। वासकट का सुनहरी बूटियोंवाला काला कपड़ा उसके लिए एक सघन वन हो गया। एक के बाद एक काल्पनिक समस्या उसे आकर ग्रसती और छोड़ती थी। उत्सुकता और प्रेम, क्षोभ और व्याकुलता का उसे एक विचित्र अनुभव हो रहा था। वह यह भी भूल गया कि समय क्या हो गया है और उसे सो जाना चाहिए। मेंह का शब्द जब एकाएक बन्द हो गया और गिरजे की घंटी ने टन टन करके उसके कानों में अपना शब्द भरा तब उसे ख़याल आया। एक लम्बी साँस लेकर अपना सिर उठाया। कुछ देर चुपचाप बैठकर फिर लालटेन बुझाई और सो गया।

सो गया पर नींद उस दिन अच्छी तरह नहीं आई। उसका अशान्त मन अब भी वासकट के ही भ्रमजाल में फँस रहा था। बड़ी बड़ी विचित्र घटनाओं और वस्तुओं को पीछे लगाये हुए वह वासकट उसकी आँखों के सामने घूमती थी। अनेक भयानक और मनोरम दृश्यों में वह पार्ट ले रही थी। एक बार उसने देखा कि वासकट का काला कपड़ा धीरे धीरे बढ़ कर आकाश-सा हो गया है और उसके बूटे असंख्य लाल लाल मशालों की तरह उसमें चमक रहे हैं। कभी उसे भ्रान्ति होती कि वासकट पर काम करते समय उसकी बूटियाँ एक स्थान पर नहीं रहती हैं, देखते देखते वे उसकी अँधेरी लालटेन की क्षीण रोशनी में नाचने लगते, जिससे वह डर कर भागता है।

रात्रि भर को अनेक स्वप्नमयी विभीषिकाओं का भ्रान्त दर्शक सुबह कुछ देर में सोकर उठा। कोठरी के दरवाज़े पर धूप चमक रही थी। रात्रि की अगणित विकृत घटनाओं को यद्यपि अब वह याद न कर सकता था,

तथापि उसका मन अभी उनकी छायाओं से अधिक दूर नहीं पहुँच सका था। उनसे उसका अशान्त मस्तिष्क और भी भड़क गया। शरीर की नस नस ग्लानि और क्षोभ से ऐंठी-सी जाती थी। उसे अपने चारों ओर की वस्तुओं से घृणा होने लगी।

वासकट का काम आज ही समाप्त करना था, यह उसे याद थी। आलस्य को त्याग कर शीघ्र ही उठ बैठा और अपने दैनिक कार्यों से शीघ्र ही छुटकारा पाने के लिए तेज़ी से हाथ-पैर चलाने लगा।

खिड़की के सींकचों में से होकर उसके काम करने के स्थान पर काफ़ी प्रकाश पड़ रहा था। आमवालों के नीलाम का शोरगुल भी ख़तम हो चुका था। उधर अहमद भी कोठरी से जा चुका था। इस प्रकार एकान्त पाकर अब्दुल्ला ने वासकट को पूरा करने के लिए अपना बक्स खोला। ऊपर के बिना तह किये हुए कपड़ों को निकाल कर नीचे पटका, फिर नीचे की तहों को खोल खोल कर देखा, पर वासकट का कहीं पता न था।

अब्दुल्ला का मस्तक धीरे धीरे गर्म होकर सुन्न हो गया। कुछ क्षणों के लिए उसकी आँखों से कुछ भी न देख पड़ा। चारों ओर अंधकार था। दिल बैठ रहा था। कुछ मिनिटों के बाद उसे फिर ढूँढ़ने का विचार आया। परन्तु विपत्ति की अनुवर्ती दीवार इतनी विशाल थी कि माथा चक्कर खाने लगता था और हाथ-पैर निर्जीव पड़ जाते थे। उस सन्दूक़ के सिवा उसके पास और क्या था जिसमें उसे वासकट के मिलने की आशा होती? तो भी उसने अपनी कोठरी के कोने कोने को देख डाला, जहाँ उस वासकट का एक बटन भी न समा सकता था वहाँ ख़ूब झुक झुककर तलाश किया, मगर वह कहीं न मिली। हताश होकर बैठ गया।

आशा की डोर धैर्य को अटकाये रहती है, लेकिन जब वह टूट जाती है तब वह भी अपने स्वामी को अकेला छोड़ कर चल देता है। सब तरफ़ से निराश बेचारे अब्दुल्ला की आँखों से आँसुओं का एक मूक प्रवाह बह निकला। उसके निर्बल स्वभाव में इतनी कठोरता कहाँ थी कि वह इतनी बड़ी घटना के भार को संसार के अन्य मनुष्यों की तरह साधारणतया सह लेता। बरसाती नदी से गिराये हुए पेड़ की भाँति वह निस्सहाय जीव ज़मीन पर लोटकर अपने दुर्भाग्य पर रोने लगा।

तम्बाकूवाले का वह अपने मन में कुछ अधिक भरोसा रखता था। ऐसी विपत्ति के समय उसके सिवा और किससे वह अपना दुखड़ा रोता? रुलाई का उच्छ्वास उसकी छाती में इतना भरा हुआ था कि वह उससे एक बात भी पूरी न कहने पाता था कि कंठ रुक आता था और हिचकियाँ बँध जाती थीं। तम्बाकूवाले ने उसे रोते हुए आज ही देखा था, यद्यपि उसके स्वभाव की विलक्षणता को वह सबसे अधिक पहचानता था। उसके दुख को देखकर वह मोटा लापरवाह आदमी भी एक बार आँखों में आँसू भर लाया। उसने उसे बहुत समझाया कि घबराने से कोई लाभ नहीं। वासकट को उसे उन्हीं लोगों के पास तलाश करना चाहिए जो आज उसके यहाँ आये हों।

अब्दुल्ला उस टीनवाले के पास पहुँचा। उसे भी रो रो कर अपनी सारी कहानी सुनाई। परन्तु वह ऐसा कठोर निकला कि थोड़ी देर के लिए उसने अपने लकड़ी के हथौड़े की खटखट को भी बंद करना आवश्यक नहीं समझा। उसने संक्षेप में अब्दुल्ला को यह बतला दिया कि वासकट के विषय में उसे कुछ भी नहीं मालूम है। यह भी नहीं कह सकता कि उसे कौन ले गया होगा।

अपने यहाँ बैठनेवाले प्रत्येक मनुष्य के पास अब्दुल्ला इस आशा से जाता था कि शायद उससे वासकट का पता लगाने में कुछ सहायता मिले। वह उससे अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करता, रोता, गिड़गिड़ाता, उसके पैर पकड़कर उसे समझाता—भाई अगर तुम्हें वासकट के बारे में कुछ भी मालूम हो तो बता दो, मेरे प्राण बच जायँगे। नहीं तो दीन-दुनिया कहीं का भी न रहूँगा। मुझे इस बार किसी तरह

इस विपत्ति से छुटकारा दिलवा दो तो फिर कभी ऐसा कपड़ा बनाने का नाम भी न लूँगा। मैं अपना सारा संसार बेच कर भी उसका मूल्य पूरा नहीं कर सकता। क्या तुम इससे बचने का कोई उपाय भी नहीं बता सकते हो?

परन्तु कई तो अब्दुल्ला के इस आचरण पर रुष्ट हो गये। कहा कि वह तो कपड़े की वासकट थी। यदि सोने की होती तो हम उस पर भी थूक देते। किसी की चीज़ चुराने से कोई पूरा थोड़े ही पड़ता है। दो-तीन आदमियों ने नम्रता-पूर्वक वासकट के विषय में कुछ बतलाने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

सवेरे के दस बजे से लेकर सूर्यास्त तक कृश कमज़ोर अब्दुल्ला एक से दूसरे के पास और दूसरे से तीसरे के पास भटकता रहा। खाने-पीने की कुछ भी सुध न थी। भूख-प्यास का कच्चा होने पर भी आज उसे उसका ख़याल ही नहीं रहा। मेंह का यह हाल था कि दस मिनट के लिए रुकता तो आध घंटे तक फिर बरसता रहता। उन छोटे-छोटे तंग रास्तों में जहाँ अब्दुल्ला को चलना पड़ रहा था, काफ़ी कीच हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी भरा था। परन्तु उसे इसका तनिक भी ध्यान न था। न सिर पर छतरी थी, न पर में जूता था। बचाकर पैर रखना भी वह अपने जैसे अभागे व्यक्ति के लिए व्यर्थ समझता था। शरीर का कुर्ता पानी से तर हो जाता था, किन्तु उसके भीतर जो व्याकुलता की एक भट्ठी जल रही थी उसके ताप से वह सूखता रहता था। उसका पतला लम्बा चेहरा इस समय और भी रोगी और पीला मालूम पड़ने लगा। होठ सिकुड़ रहे थे। आँखें विकलता और नैराश्य से बुझी जाती थीं। उसकी सूखी टाँगें बहुत देर से निरंतर क़दम रखते रखते अब दर्द करने लगी थीं। घर में आया और सीधा खाट पर लेट रहा।

रात हो गई पर उसने आज दिया भी नहीं जलाया। शुक्लपक्ष था। बादलों से छन कर जो थोड़ी-बहुत चाँदनी आ रही थी, वही खिड़की-द्वारा घुसकर उसकी कोठरी में प्रकाश का आभास-मात्र बनाये हुए थी। अब्दुल्ला छत की ओर शून्यभाव से ताकता हुआ नैराश्य और शोक के भीषण प्रदेश में रास्ता ढूँढ़ रहा था। उसे ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानो उसके जीवन का कोई अव्यक्त भूत आज उसके सामने आकर खड़ा हो गया है और उसका गला घोटने के लिए अपने हाथ बढ़ा रहा है। कैसी भयानक बेचैनी थी? हृदय में कैसा चीत्कार था? शरीर का एक एक रोम एक दूसरे से पृथक् होकर वायु में उड़ जाना चाहता था। क्या यही जीवन है? यही इसका रहस्य और यही इसका अंत है? क्या सभी मनुष्यों को कभी न कभी ऐसी वेदना सहनी ही पड़ती है?

बीच-बीच में उसकी यह कल्पना कि आह कहीं वासकट मिल जाती तो कितने सहज में ही मुझे इस असह्य यंत्रणा से छुटकारा मिल जाता, उसे और भी विह्वल कर देती थी। दोनों हाथों को बड़े ज़ोर से अपने सिर पर दे मारता। शरीर के ताप में ही फुक जाने को तबीयत चाहती थी।

अब्दुल्ला के ग़रीब जीवन में अकस्मात् ही कैसा घोर परिवर्तन हो गया था। कहाँ वह लकीर की तरह सीधा, नीरस किन्तु निर्विघ्न जीवन, कहाँ यह पीड़ा और आवेशों का रणस्थल। वह सन्तोष और वह सुनसान अब उसे कहाँ मिल सकता है? उसकी सुखकर शीतलता से वह कितना दूर हट चुका है?

बूँदाबाँदी होने के कारण आठ बजे से ही सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था, जिसमें अब तो रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, बादलों के पहाड़ इधर से उधर आकाश में गश्त लगा रहे थे, मानो वे किसी भीषण आयोजन की तैयारी में लगे हों। इसी तरह एक विशाल स्याह-नीला बादल चन्द्रमा के सामने आ गया। सारे पहाड़ी प्रदेश पर अँधियारी-सी एक मोटी चादर पड़ गई।

अब्दुल्ला सोया हुआ था, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। बीच बीच में बार बार कुछ बड़बड़ा उठता था। अचानक उसे मालूम हुआ कि उसकी कोठरी के किवाड़ कुछ हिल रहे हैं। दरवाज़ा खुला। धीरे-धीरे एक आकृति ने घर के भीतर प्रवेश किया। अब्दुल्ला को बड़ा डर मालूम पड़ने लगा। परन्तु उसकी दृष्टि वहीं पर लगी हुई थी। हटा भी कैसे सकता था? अब्दुल्ला ने बोलना चाहा, पर कण्ठ रुका हुआ था। फिर बड़े प्रयास से मुँह खोला और धीरे से कहा—कौन अहमद? इस पर वह मूर्ति हँस पड़ी और उसके दाँतों की ज्योति से क्षण भर के लिए एक अजीब रंग का उजेला कोठरी में फैल गया। अब्दुल्ला ने देखा ढीले-ढाले सफ़ेद कपड़े पहने हुए वह आकृति उसकी वासकट भी पहने हुए है। पहचान लिया। वही वासकट थी। उस अद्भुत अलौकिक रंग की रोशनी में वासकट की बूटियों का एक एक कण जैसे तिलमिला उठा हो। उनमें से अनेक प्रकार के डरावने रंगों की किरणें निकलने लगीं।

अब्दुल्ला को ऐसा जान पड़ा मानो पहननेवाले के चौड़े सीने पर एक-दम तनी हुई वह वासकट मसककर फट जाना चाहती है। उसे वहाँ पर एक एक क्षण असह्य हो रहा है। उसकी परिचित बूटियाँ विकलता से झल्ला रही हैं। अब्दुल्ला की प्यारभरी लम्बी पतली उँगलियाँ छिपना चाहती हैं।

वह उठ बैठा और बड़े ध्यान से उस आकृति की ओर ताकने लगा। लेकिन अँधेरे के फिर गहरा हो जाने से केवल उसका आभास-मात्र उसे होता था। खाट से उतर कर उसकी ओर वह बढ़ने लगा, पर इसी समय वह मूर्ति न जाने कहाँ खो गई। अब्दुल्ला आँखें फाड़-फाड़ कर अपने चारों तरफ़ के अँधेरे को घूरने लगा। सहसा दरवाज़े के धुँधलेपन में उसे कुछ देख पड़ा। वहाँ पहुँचा तो वह आकार कुछ आगे बढ़ गया था। वह उसी के पीछे पीछे चलने लगा। तेज़ी से उसके पास पहुँचकर उसे पकड़कर कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी।

कभी कभी चाँद गहरे बादलों से निकल कर वासकट की बूटियों को अपने क्षीण प्रकाश में चमका देता था तब अब्दुल्ला चौंक कर फिर तेज़ी से बढ़ने लगता था। किन्तु शीघ्र ही वह उसे भूल जाता और अपनी विलक्षण परिस्थिति के विचारों में खो जाता, गति धीमी पड़ जाती। असल में उसे अपना कर्तव्य न सूझता था। यह सब क्या है? मैं कहाँ जा रहा हूँ? इस व्यक्ति का क्या रहस्य है?

थोड़ी देर तक इसी प्रकार चलने के बाद वह आकृति वृक्षों से आवृत एक अँधेरे मार्ग-द्वारा पहाड़ी के शिखर पर चढ़ने लगी। अब्दुल्ला भी उसके पीछे ही था। कभी वह वृक्षों में छिप जाती, कभी उसे फिर स्वयं दिखाई देने लगती। अब्दुल्ला धीरे धीरे पहाड़ी पर चढ़ कर एक छोटे से मैदान पर आ पहुँचा। यही उस शिखर की चोटी थी। देखा वहीं उससे एक किनारे पर खड़ी हुई वह मूर्ति उसकी ओर हँस रही है। अब्दुल्ला में एक विचित्र स्फूर्ति, एक पागल का-सा उत्साह भर गया। उसे अपना शरीर फूल की तरह हलका मालूम पड़ने लगा। वह उसकी ओर तेज़ी से लपका और उसे पकड़ लिया।

लेकिन वास्तव में वह वृक्ष की हिलती हुई पत्तियों पर पड़ता हुआ चाँदनी का एक लम्बा सा टुकड़ा था। बग़ल के वृक्षों के अंतर में से होकर वह रोशनी आ रही थी। शिखर से बहुत नीचे पहाड़ी के उतार पर उन चमकती हुई टहनियों के वृक्ष की जड़ थी। नीचे ऐसी खाई थी जिसकी थाह नहीं थी।

अब्दुल्ला को ऐसा मालूम हुआ मानो उसने वासकट को पकड़ लिया है। परन्तु वह मायावी आकृति उसे बड़े वेग से किसी अनन्त अंधकार की ओर घसीटे लिये जा रही थी।

रात्रि का एक बड़ा भाग बीतने पर जब अहमद आया तब उसने चुपके से अपने शरीर पर से उस वासकट को उतारा और मशीन को उठा कर उसके नीचे उसे दबा दिया। फिर नित्य की भाँति चुपचाप अपनी खाट पर जाकर सो गया। सुबह उसने उठकर देखा, अब्दुल्ला कोठरी में न था। बाहर देखा, जान पहचानवालों से पूछा। पर वह कहाँ गया सो कोई न जानता था।

अहमद अब भी उस कोठरी में रहता है, पर अब वह बड़ा हो गया है। एक साहब का ख़ानसामा है। शराब ख़ूब पीता है। अपने जीवन से बड़ा ख़ुश है।

—केशवदेव शर्मा

[क्षेपक-रहित असली रामायण]

रामचरितमानस

टीकाकार बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०

आज तक भारतवर्ष में जितनी रामायण छपीं और आज-कल छप कर बिक रही हैं वे सब नक़ली हैं क्योंकि उनमें कितने ही दोहे-चौपाइयाँ लोगों ने पीछे से लिख कर मिला दिये हैं। हमारे यहाँ की रामायण असली है क्योंकि इस रामायण का पाठ गुसाईंजी के हाथ की लिखी पोथी से मिला कर और काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के पाँच सभासदों द्वारा मिलकर शोधा गया है। इसके सिवा और भी कितनी ही पुरानी हस्तलिखित प्रामाणिक पुस्तकों से पाठ मिला-मिला कर इसमें गुसाईंजी की रचना रक्खी गई है और क्षेपक आदि कूड़ा करकट अलग कर दिया गया है। मूल चौपाइयों के अक्षर बड़े और सुस्पष्ट हैं। अर्थ बहुत सरल और सुन्दर भाषा में किया गया है। यदि आप तुलसीदासजी की वास्तविक रामायण का रसास्वादन करना चाहते हैं तो इसे अवश्य ख़रीदिए। मोटा चिकना काग़ज़, सुन्दर जिल्द मूल्य केवल ६) रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो) इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

स्वराज्य में राजस्व-सम्बन्धी समस्यायें

[लार्ड पील की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रसङ्घ के राजस्व-सम्बन्धी नियमों पर विचार करने के लिए एक समिति नियत की गई थी। इस समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई है। इस लेख में अर्थशास्त्र के पण्डित श्री दुबेजी ने उस समिति की रिपोर्ट की मुख्य मुख्य बातों पर विचार किया है।]

आज-कल भारत में और विलायत में स्वराज्य-सम्बन्धी योजनाओं की ख़ूब चर्चा है। जब से लंदन में गोलमेज़-परिषद् का कार्य आरम्भ हुआ है, स्वराज्य-योजना के भिन्न-भिन्न भागों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। सब दलों के नेता भारत में राष्ट्रसङ्घ स्थापित करने का निश्चय कर चुके हैं। लार्ड पील की अध्यक्षता में एक समिति इस भारतीय राष्ट्रसङ्घ के राजस्वसम्बन्धी नियमों पर विचार करने के लिए नियत की गई थी। इस समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई है। इस लेख में हम इसी संक्षिप्त रिपोर्ट पर विचार करते हैं।

इस राजस्व-समिति की प्रधान सिफ़ारिशें नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) भारतीय राष्ट्र-सङ्घ-सरकार की आमदनी के साधन परोक्ष कर ही होने चाहिए। उसको केवल आयात-निर्यात-कर और नमक-कर लगाने का अधिकार हो।

(२) आयकर की आमदनी प्रान्तीय सरकारों को दे दी जाय।

(३) केवल दो ही कर लगा सकने के कारण भारतीय राष्ट्रसङ्घ-सरकार की आमदनी में जो कमी होगी उसकी पूर्ति प्रान्तीय सरकारें तथा देशी राज्यों की सरकारें करें। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार की कितनी रक़म प्रतिवर्ष राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को देना होगा इसका निर्णय विशेषज्ञों की एक समिति करे। १०-१५ वर्षों के अन्दर ही राष्ट्र-सङ्घ-सरकार की इस प्रकार की आर्थिक सहायता बन्द कर दी जाय।

(४) देशी राज्यों से जो आज-कल प्रतिवर्ष नज़राना लिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय। विशेषज्ञों की एक दूसरी समिति इस बात का निर्णय करे कि १०-१५ वर्षों तक प्रतिवर्ष देशी राज्यों की सरकारें कितनी आर्थिक सहायता राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को करें।

(५) भारत तथा प्रान्तीय सरकारों के वर्तमान ऋण के कितने भाग की ज़िम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को तथा कितने भाग की ज़िम्मेदारी प्रान्तीय सरकारों को लेनी चाहिए, इसका निर्णय भी विशेषज्ञों की समिति करे।

(६) बिना राष्ट्रसङ्घ-सरकार की आज्ञा के प्रान्तीय सरकारें या देशी राज्यों की सरकारें भारत के बाहर क़र्ज़ न लिया करें। भविष्य में क़र्ज़

किन नियमों के अनुसार लिया जाया करे, इसका निर्णय भी विशेषज्ञों की समिति करे।

राष्ट्रसङ्घ की सरकार की आमदनी के साधन परोक्ष कर ही रक्खे जाना बहुत अच्छा है। परन्तु हमारी समझ में इस सरकार को प्रान्तीय सरकारों या देशी राज्यों की सरकारों से प्रति-वर्ष १०-१५ वर्ष तक भी आर्थिक सहायता प्राप्त करना उचित नहीं है। सन् १९१९ की शासन-सुधार-योजना के अनुसार केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों से प्रतिवर्ष आर्थिक-सहायता दिये जाने की व्यवस्था की गई थी। इसका परिणाम बहुत ही ख़राब हुआ। प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा इस भार के कारण कई वर्षों तक न सुधर सकी और शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य इत्यादि विभागों के लिए पर्याप्त धन भी न मिल सका। इस प्रकार देश की आशातीत उन्नति भी न हो सकी।

हम नमक-कर के पक्ष में भी नहीं हैं। नमक जीवन-रक्षक पदार्थ है, उस पर तो किसी प्रकार का भी कर न होना चाहिए। आमदनी को दृष्टि में रखते हुए इस कर का भार ग़रीबों पर सबसे अधिक पड़ता है और धनवानों पर सबसे कम। राष्ट्रसङ्घ-सरकार का सबसे पहला कार्य यह होना चाहिए कि वह इस कर को उठा ले। इस कर के उठ जाने पर लार्ड पील की समिति की सिफ़ारिश के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ-सरकार के पास आमदनी का साधन केवल आयात-निर्यात कर ही रह जायगा। सैनिक तथा शासन-सम्बन्धी ख़र्च आशानुसार कम करने पर भी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को आयात-निर्यात कर से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वह बिना किसी आर्थिक सहायता के अपना काम चला ले। प्रान्तीय सरकारों तथा देशी राज्यों की सरकारों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने के बदले यदि राष्ट्रसङ्घ-सरकार को एक और कर लगाने का अधिकार दे दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। मादक वस्तुओं पर प्रान्तीय सरकारों-द्वारा जो कर लगाया गया है उससे आज-कल १५-२० करोड़ रुपयों की आमदनी प्रतिवर्ष होती है। यह परोक्ष कर है और इसका भारतीय राष्ट्रसङ्घ की सरकार-द्वारा लगाया जाना उचित है। अच्छा तो यह हो कि देशी राज्य भी मादक वस्तुओं पर कर लगाने का अपना अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे दें। यदि मादक वस्तुओं-सम्बन्धी कर राष्ट्र-सङ्घ-सरकार-द्वारा लगाया गया तो जैसे जैसे उसे आयात-निर्यात कर से अधिक आमदनी होने लगेगी, वैसे ही मादक वस्तुओं के निषेध-सम्बन्धी नीति का शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत करना सरल हो जायगा; और राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को भी किसी प्रान्तीय सरकार या देशी राज्य से प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता लेने की आवश्यकता न पड़ेगी।

देशी राज्यों से नज़राना न लेने का प्रस्ताव बहुत अच्छा है। राष्ट्र-सङ्घ के स्थापित हो जाने पर देशी राज्यों को सेना-सम्बन्धी किसी प्रकार का कोई ख़र्च करने की आवश्यकता न होगी। सम्पूर्ण भारत के लिए आवश्यक सेना-ख़र्च करने की पूरी ज़िम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार पर होगी। इस प्रकार देशी राज्यों के ख़र्च में प्रतिवर्ष काफ़ी कमी हो जायगी। परन्तु साथ ही साथ देशी राज्यों को आयात-निर्यात-कर तथा मादक वस्तुओं पर कर लगा देने का अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे देना होगा। यदि देशी राज्य भी आयात-निर्यात-कर लगाते रहे तो देशी राज्यों के निवासियों को यह कर दुबारा देना होगा। बाहरी वस्तुओं का मूल्य देशी राज्यों में अधिक बढ़ जायगा और प्रजा की हानि होगी।

राष्ट्रसङ्घ के स्थापित होने के साथ ही साथ यह भी ज़रूरी है कि देशी राज्यों में राजस्व-सम्बन्धी आवश्यक सुधार कार्यरूप में परिणत कर दिये जायँ। आज-कल कई देशी राज्यों में बजट (आय-व्यय का अनुमान-पत्र) ठीक समय पर नहीं तैयार किये जाते और न वे जनता के प्रतिनिधि-द्वारा प्रति-वर्ष स्वीकार ही किये जाते हैं। कई देशी नरेश राज्य की सम्पूर्ण

आमदनी को अपनी निजी सम्पत्ति समझते हैं और उसका ख़र्च अपने इच्छानुसार करते हैं। कई नरेशों का निजी ख़र्च भी बहुत अधिक होता है। देशी नरेशों को चाहिए कि वे अपना निजी ख़र्च जितना कम हो सकता है उतना कम कर दें, आय-व्यय का अनुमान-पत्र प्रतिवर्ष नियमानुसार ठीक समय पर तैयार किये जाने का प्रबन्ध करें, उसको जनता के प्रतिनिधियों-द्वारा स्वीकार करावें और उनकी स्वीकृति के अनुसार ही ख़र्च करें।

आय-कर प्रान्तीय सरकारों को दे दिये जाने का प्रस्ताव बहुत अच्छा है। इस कर के द्वारा प्रान्तीय सरकारों की आमदनी आवश्यकतानुसार बढ़ाई जा सकती है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग इत्यादि विभागों पर अधिकाधिक रुपया प्रान्तीय सरकारों को ख़र्च करना होगा और उसके लिए आय-कर-द्वारा काफ़ी आमदनी भी प्राप्त की जा सकेगी।

राष्ट्रसङ्घ के स्थापित हो जाने पर मालगुज़ारी के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। नमक-कर के समान इस कर का भार भी ग़रीबों के ऊपर सबसे अधिक पड़ता है। खेतों के छोटे छोटे टुकड़ों में दूर दूर पर बँटे हुए होने के कारण असंख्य किसानों को खेती से लाभ नहीं हो पाता। उनको खेती से इतनी उपज प्राप्त नहीं होती कि वे अपना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण कर सकें। उनको आधा पेट भोजन करके ही कई महीने प्रतिवर्ष बिता देने पड़ते हैं। तिस पर भी इन ग़रीब किसानों को अत्यधिक लगान देना पड़ता है और इसी लगान के आधार पर सरकार-द्वारा मालगुज़ारी ली जाती है। यदि सरकार-द्वारा मालगुज़ारी कम कर दी जाय और इन किसानों का लगान भी कम हो जाय तो उनको कम से कम भर पेट भोजन प्राप्त करने का अवसर तो प्राप्त हो जाय। हमारी राय तो यह है कि प्रान्तीय सरकारों को मालगुज़ारी कम करके ग़रीब किसानों का लगान आधे से भी कम करा देना चाहिए और मालगुज़ारी से जो आमदनी प्राप्त हो उसे ज़िला-बोर्डों को प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर देने के लिए दे देना चाहिए, जिससे ग्रामों से प्राप्त रक़म ग्रामों में ही शिक्षा-प्रचार के पवित्र कार्य में लगा दी जाया करे।

भारत में राष्ट्रसङ्घ स्थापित होने पर राजस्व-सम्बन्धी समस्याओं को नीचे लिखे तरीक़ों से हल करना अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से उचित होगा—

(१) नमक-कर उठा लिया जाय तथा ग़रीब किसानों के लगान में आधे से अधिक कमी कर दी जाय। इसके लिए मालगुज़ारी में भी आवश्यकतानुसार कमी कर दी जाय।

(२) मालगुज़ारी की आमदनी ज़िलाबोर्डों को ग्रामों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिए दे दी जाय।

(३) प्रान्तीय सरकारों तथा देशी राज्यों के आमदनी के साधन हों—आय-कर, स्टाम्प, रजिस्ट्री, आबपाशी, दाय-विभाग-सम्बन्धी कर इत्यादि।

(४) राष्ट्रसङ्घ की सरकार की आमदनी के साधन हों—आयात-निर्यात-कर, मादक-वस्तु-कर, रेल, डाक और तार-विभाग की आमदनी।

(५) देशी राज्यों का आयात-निर्यात-कर तथा मादक-वस्तु-कर लगाने का अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे दिया जाय।

(६) देशी राज्यों से जो आज-कल नज़राना प्रतिवर्ष लिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय।

(७) देशी राज्य आज-कल जो फ़ौज-सम्बन्धी ख़र्च करते हैं वह बन्द कर दिया जाय और सम्पूर्ण भारत के लिए फ़ौज-सम्बन्धी ख़र्च की ज़िम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को ही सौंप दी जाय।

(८) राष्ट्रसङ्घ-सरकार फ़ौजी तथा शासन-सम्बन्धी ख़र्च कम करने का पूर्णरूप से प्रयत्न करे।

(९) देशी राज्यों के नरेश अपना निजी खर्च कम करने तथा उसकी रक़म निश्चित कर देने का पूर्ण प्रयत्न करें।

(१०) देशी नरेश ऐसा प्रबन्ध करें जिससे अगले वर्ष का आय-व्यय का अनुमान-पत्र नियमानुसार ठीक समय पर प्रतिवर्ष तैयार किया जाया करे, वह जनता के प्रतिनिधियों-द्वारा स्वीकार किया जाया करे और सब खर्च उसी स्वीकृति के अनुसार किया जाया करे।

आशा है, स्वराज्य-प्रेमी सज्जन राजस्व-सम्बन्धी उपर्युक्त बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे।

—दयाशङ्कर दुबे

वाल्मीकि

हिन्दुओं का विश्वास है कि राम-नाम का जप करने और राम का गुणगान करने से मनुष्य अनेक जन्म के पापों से छुटकारा पा जाता है। वाल्मीकि इस बात के सबसे बड़े उदाहरण हैं। जीवन के प्रारम्भिक काल में डाका डालना तथा निरपराध प्राणियों की हत्या करना ही इनका मुख्य काम था, परन्तु आगे चल कर ये ही राम-नाम के प्रभाव से एक बड़े भारी ऋषि हो गये और जनसाधारण में राम-नाम का प्रचार करने के लिए रामायण नामक महाकाव्य की रचना की, जो संसार के साहित्य में अक्षय एवं अमूल्य रत्न है। इन्हीं महात्मा की जीवनी का घर घर प्रचार करने के लिए यह पुस्तक बड़ी ही सरल और रोचक भाषा में प्रकाशित की गई है। मूल्य ।) चार आने।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

कलकत्ते का भ्रमण

गत वर्ष इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के एम० ए० के संस्कृत के छात्रों को डाक्टर प्रसन्नकुमार आचार्य ने अपने प्रारम्भिक भाषण प्राचीन शिल्प-कला के विषय पर किये थे। यह विषय हमें अत्यन्त रुचिकर मालूम हुआ। अतएव अपने देश के प्राचीन ऐतिहासिक महलों, देवमन्दिरों, बौद्ध-विहारों और सुन्दर मूर्तियों के भग्नावशेष देखने के लिए हम विशेष लालायित होने लगे।

हमारे सौभाग्य से जन्माष्टमी का तीन दिन का अवकाश समीप आगया। एक बंगाली सहपाठी के परामर्श से कलकत्ते जाने का निश्चय हुआ। उन्होंने कहा कि कलकत्ता जाने से हम बुद्ध-गया, राजगिर, नालन्द, शान्तिनिकेतन, पटना, सारनाथ आदि आदि स्थान भी देख सकेंगे।

३ सितम्बर को रात के ११ बजे हम मित्र-मण्डली के साथ इलाहाबाद से गाड़ी में सवार हुए। रात के ठीक ढाई बजे हम मुग़लसराय पहुँचे। यह ई० आई० रेलवे का बड़ा भारी जंकशन है। यहाँ चाय, दूध, और अनेक प्रकार के फल अच्छे और ताजे मिलते हैं। सफ़ाई अच्छी रहती है, मुसाफ़िरों को कोई कष्ट नहीं होता। यह बनारस ज़िले में स्थित है। गया जाने के लिए यहाँ पर हमें साढ़े तीन घंटे ठहरना पड़ा। रात्रि का मध्यभाग था, बिस्तरे पर लेटते ही निद्रा ने आ घेरा। थोड़ी देर बाद ज्यों हीं आँखें खुलीं, साढ़े पाँच बज चुके थे। यहाँ से गाड़ी ठीक ६ बजे छूटी।

बिहार-प्रदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य सराहनीय था। गाड़ी की लाइन के दोनों ओर हरे-भरे धान के खेत ऐसे प्रतीत होते थे, मानो प्रकृति-देवी ने पृथ्वी के ऊपर सुन्दर हरित गलीचा बिछा दिया हो। इस सुरम्य हरियाली के अतिरिक्त मार्ग में कुछ दूर तक ऊँची-नीची पर्वत-श्रेणियाँ अपने सुहावने नैसर्गिक सौन्दर्य से दर्शकों के नेत्रों को मुग्ध कर रही थीं। इस बिहार-भूमि में प्रकृति की समस्त सुन्दरता देखने को मिलती है। कदाचित् इसी निराली प्राकृत शोभा के प्रेम से प्लावित होकर प्रकृति-प्रेमी बुद्धदेव ने इस प्रान्त को अपना निवास-केन्द्र बनाया हो। प्रातःकाल की मन्द मन्द चलती हुई शीतल हवा हमें अत्यन्त आनन्दित कर रही थी। प्रकृति की सौन्दर्य-सुधा का पान करते हुए हमने सोन-नदी के पुल को पार किया। यह पुल सारे भारतवर्ष में सब पुलों से बड़ा पुल है। कहा जाता है कि संसार भर में सब पुलों में बड़ा पुल स्काटलैण्ड में 'फ़र्थ आव फ़ोर्थ' नदी के ऊपर है। इस प्रकार अनेक दृश्य देखते हुए हम ४ सितम्बर को ८ बजे सुबह हिन्दुओं के परम पवित्र तीर्थ गया में पहुँचे।

गाड़ी से उतरकर हम स्टेशन के समीप एक धर्मशाला में ठहरे। गया में अनेक धर्मशालायें हैं। धर्मशाला में पहुँचते ही हमें अनेक पंडों ने आ घेरा। जब वे सीधी तरह न माने तब हमने कहा कि हम तो

'आर्यसमाजी' हैं, हम यहाँ इसलिए आये हैं कि पंडे जिस यात्री को तंग करें, हम उस यात्री की मदद करें। 'सो तो ठीक है' कहकर सारे के सारे पंडे दुम दबाते हुए भाग निकले। गया में कच्चा भोजन नहीं मिलता, इसलिए विवश होकर पूड़ियाँ खानी पड़ती हैं। यहाँ की दूकानें और बाजार अत्यन्त गन्दे हैं। ज्यों ही यात्री कुछ खाने के लिए दूकान में बैठता है, दूकान की ओर से भौंरे और बाजार से आकर कँगले उसे घेरकर इतना बेचैन कर देते हैं कि उसे उठने परही चैन मिलता है। यहाँ से बुद्ध-गया लगभग ८ मील की दूरी पर है। पूरी बग्घी का किराया २) लगता है, किन्तु ये लोग पहले ४) माँगते हैं। गया से फल्गु नदी के किनारे से होती हुई सीधी सड़क छोटी-छोटी पर्वत-राशि के पाद-प्रदेश को मापती हुई बुद्ध-गया तक चली जाती है। गया में प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीक है। गया तीन ओर से अत्यन्त शोभाशालिनी ऊँची-नीची पहाड़ी की शृंखलाओं से घिरी हुई है। पर्वत-श्रेणी की स्वाभाविक सौन्दर्य-छटा खिन्न हृदय को भी आनन्दित कर देती है। एक पर्वत की ऊँची चोटी पर ब्रह्मयानी का मनोहर मन्दिर है। यह मन्दिर समतल पृथ्वी से इतना सुन्दर प्रतीत होता है कि यात्री बिना इसके दर्शन किये रह नहीं सकता। मन्दिर के भीतर शिव की मूर्ति स्थापित है। फल्गु नदी में पानी बहुत कम रहता है। कहा जाता है, यह जमीन के अन्दर बहती है। अनेक मन्दिरों के अतिरिक्त गया में विशेष देखने योग्य कोई स्थान नहीं है। लगभग तीन बजे हम बुद्ध-गया में पहुँचे। महाबोधि-मन्दिर के गगन-चुम्बी शिखर बड़ी दूर से दिखाई दिये।

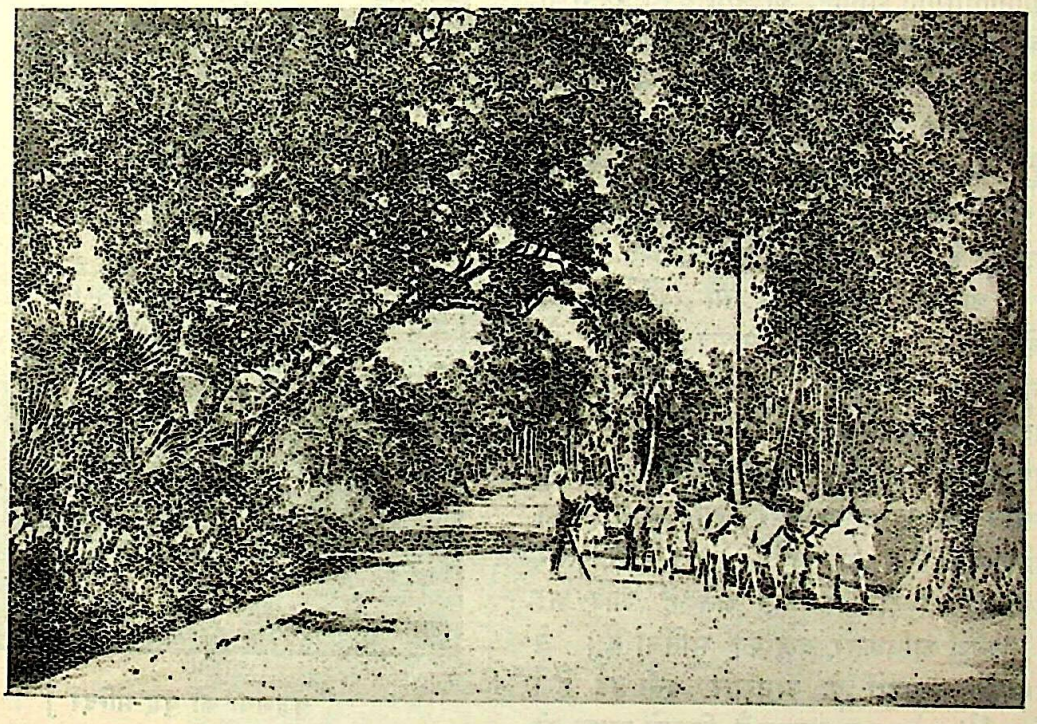

[गया से बुद्धगया को]

महाबोधि-मन्दिर के सामने सड़क के दूसरी ओर मन्दिराधीश संन्यासी का एक विशाल और सुरम्य भवन है। यदि इसे महल कहें तो अत्युक्ति न होगी।

यह महल चारों ओर से एक मजबूत दीवार से घिरा हुआ है। इसके मध्य में महन्त का निवास-स्थान है। भवन में प्रवेश के लिए एक ऊँचा और चौड़ा दरवाज़ा है, जिसमें हमेशा एक पहरेदार मौजूद रहता है। इस महल के भीतर बौद्ध-भिक्षुओं को भोजन भी मिलता है।

महाबोधि-मन्दिर—इस विशाल आकाशव्यापी सुरम्य मन्दिर में प्रवेश करने के लिए पृथक् एक अटूट पत्थर (monolithic stone) का बना हुआ दरवाज़ा है, जिसके सामने अभिन्न पत्थर की एक लाट खड़ी है। कहा जाता है, यह लाट भी अशोक ने ही खड़ी की थी। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की एक चहार-दीवारी है। यह अधिकतर टूटी हुई है। इस चहार-दीवारी पर पाली-भाषा में अशोक के समय की लिपि खुदी हुई है। इस लिपि के अतिरिक्त पाली गाथाओं के अनुसार कुछ चित्र भी खुदे हुए हैं। मन्दिर के पीछे एक पवित्र पीपल का पेड़ है, जिसके नीचे एक 'वज्रासन' है। इस पर बैठ कर बुद्ध भगवान् तप किया करते थे। वर्तमान वृक्ष दो हज़ार वर्ष के पूर्व का अर्थात् बुद्ध के समय का नहीं है। प्राचीन वृक्ष के नष्ट होने पर उसी स्थान में यह वृक्ष लगाया गया है। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की सैकड़ों मूर्तियाँ खड़ी हैं, कई क्षत हैं और कई अक्षत। उनमें अधिकतर बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पाली गाथाओं के अनुसार बनी हुई हैं। मन्दिर के बाईं ओर एक तालाब है, जिसमें पत्थर की एक लाट खड़ी है। कहा जाता है, भगवान् बुद्ध इस तालाब में स्नान किया करते थे। मन्दिर के सामने और दाहनी ओर अनेक मूर्तियों के अतिरिक्त स्तूपों के सदृश पत्थर के अनेक छोटे छोटे मन्दिर बने हुए हैं। यहाँ एक छोटा सा अजायब-घर भी है। इसमें प्राचीन शिल्प-कला के नमूने रक्खे गये हैं, जिनमें अधिकतर बुद्ध की खण्डित या अखण्डित मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के सामने दरवाज़े की ओर थोड़ी दूर पर स्वामी शंकराचार्य आदि की समाधियाँ बनी हुई हैं। ये समाधियाँ भी देखने के योग्य हैं।

वज्रासन—यह आसन एक पवित्र पीपल के वृक्ष के नीचे बना हुआ है। इसी स्थान पर बैठकर भगवान् बुद्ध तप किया करते थे। सभी इतिहासज्ञों का यही मत है कि यह वही स्थान है जहाँ

[बुद्धगया का बुद्ध-मन्दिर]

बैठ कर बुद्ध ने यहाँ तप किया था। इस स्थान पर बुद्ध के चरण का निशान भी बना हुआ है। केवल बुद्ध के यहाँ तप करने से इस स्थान का नाम बुद्धगया (बोधिगया) रक्खा गया।

चहारदीवारी और उस पर खुदी हुई शिल्प-कला—भगवान् बुद्ध के तप करने के कारण इस स्थान को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हुआ। जब अशोक ने स्वयं बौद्ध-धर्म ग्रहण किया तब उसने बौद्धों के तीर्थों, मन्दिरों और विहारों को बन-

वाया। उसने इस पवित्र स्थान (वज्रासन) के चारों ओर पत्थर की एक दृढ़ चहारदीवारी बनवाई, जिस पर स्त्रियों तथा देवों के अनेक सुन्दर चित्र खुदवा डाले। इस चित्रकारी से उस समय की शिल्पकला की कुशलता झलकती है। इस दीवार के स्तम्भों के ऊपर सुन्दर चित्रकारी बनी हुई है। इस

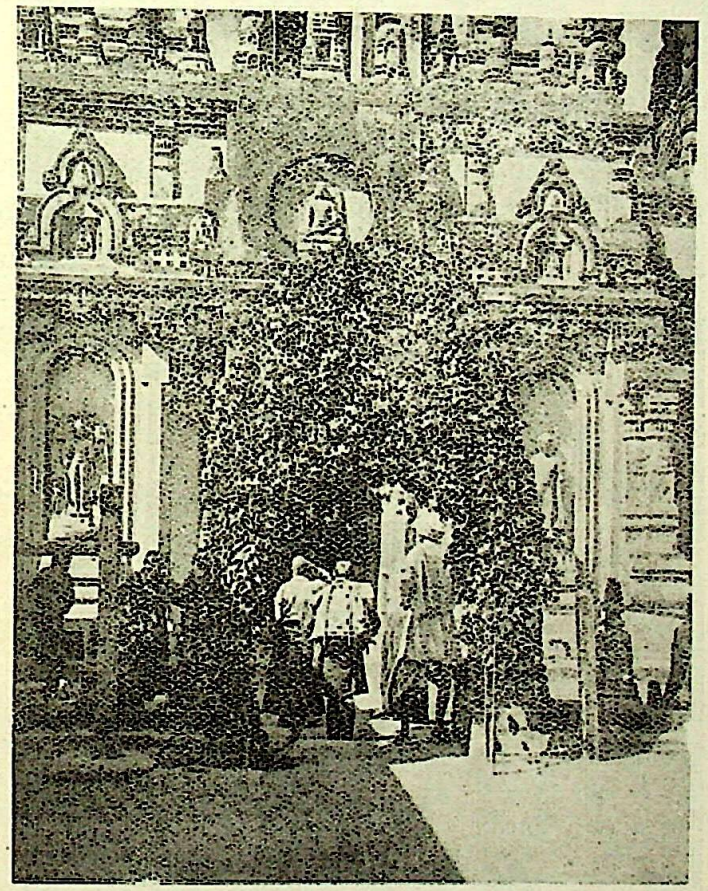

[बुद्ध-मन्दिर का प्रवेश-द्वार]

का निर्माण-काल अशोक का राज्य-काल (ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व) समझना चाहिए।

महाबोधि मन्दिर—यह मन्दिर किसने और कब बनवाया, यह विवाद-ग्रस्त है। अशोक के राज्य-काल के केवल स्तूप मिलते हैं। इस प्रकार के शिखरवाले मन्दिर उसके समय नहीं बने। डाक्टर स्पूनर तो यहाँ तक कल्पना कर बैठे हैं कि यह मन्दिर फ़ारसवालों का बनाया हुआ है और इसमें मगियन पूजा हुआ करती थी। इसी मगियन (फ़ारसी शब्द) के आधार पर उनकी यहाँ तक कल्पना है कि इस देश का नाम 'मगध' पड़ा। यह मत कहाँ तक युक्ति-युक्त या पक्षपात-युक्त है, इसका उत्तर अनेक इतिहासज्ञ दे चुके हैं। गुप्त-वंश के समय में शिखरवाले मन्दिर बनने लगे, इसलिए इस मन्दिर का निर्माण-काल गुप्त-वंश से पूर्व नहीं हो सकता। गुप्त-वंश ईसा के जन्म के अनन्तर चतुर्थ शताब्दी से माना गया है। अतएव इस मन्दिर का निर्माण-काल भी चतुर्थ या पञ्चम शताब्दी

है। इस मन्दिर के भीतर भगवान् बुद्ध की एक विशाल और मनोहर मूर्ति रक्खी गई है, परन्तु इसकी शोभा कृत्रिम वस्त्र और रंग से कुछ घट गई है। मूर्ति के निर्माण में शिल्पकार ने अपूर्व कौशल दर्शाया है। मन्दिर के बाहर अनेक धातुओं के बने

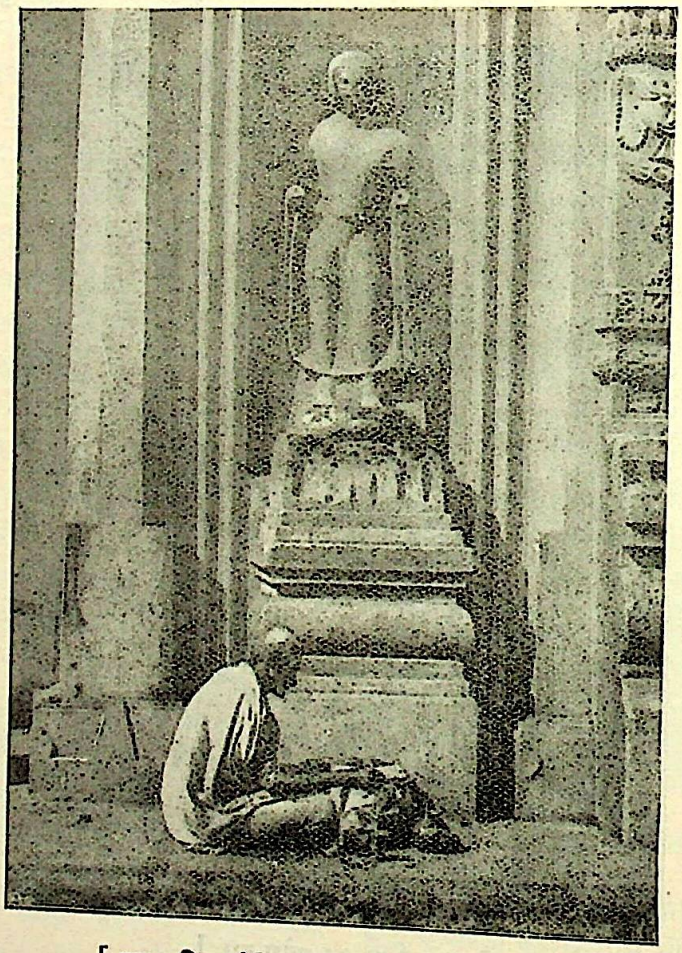

[बुद्ध-मन्दिर के भीतर भगवान् बुद्ध की मूर्ति]

हुए दो बड़े बड़े घंटे टँगे हुए हैं। ये घंटे यहाँ किसी ऐश्वर्यशाली बौद्ध-भक्त ने दान के रूप में भेजे होंगे।

महाबोधि-मन्दिर का संक्षिप्त इतिहास—ईसा के जन्म से १२वीं शताब्दी तक इस मन्दिर की महत्ता और पवित्रता न केवल समग्र भारतवर्ष में, किन्तु लङ्का, चीन, जापान और एशिया के दूर दूर देशों तक विख्यात थी। १२वीं सदी के अन्त में जिस समय बौद्ध-भिक्षु वज्रयान के तान्त्रिक साधक बन गये, बुद्ध के मूल-सिद्धान्त को भूल गये, उनमें केवल छल-कपट शेष रह गया तब वे तुर्कों की चमकती हुई तलवार का सामना न कर सके। फल यह हुआ कि तुर्कों ने पाल-वंश के राजा को मार कर बौद्धों के मठों को, बुद्ध की अनेक मनोमोहक मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर बौद्ध-धर्म की जड़ पर कुठाराघात

किया! यह मन्दिर भी मुसलमानों के हमले से न बच सका! बौद्ध-समाज इतना गिर गया कि इन मन्दिरों और मठों की मरम्मत कराना उनकी शक्ति

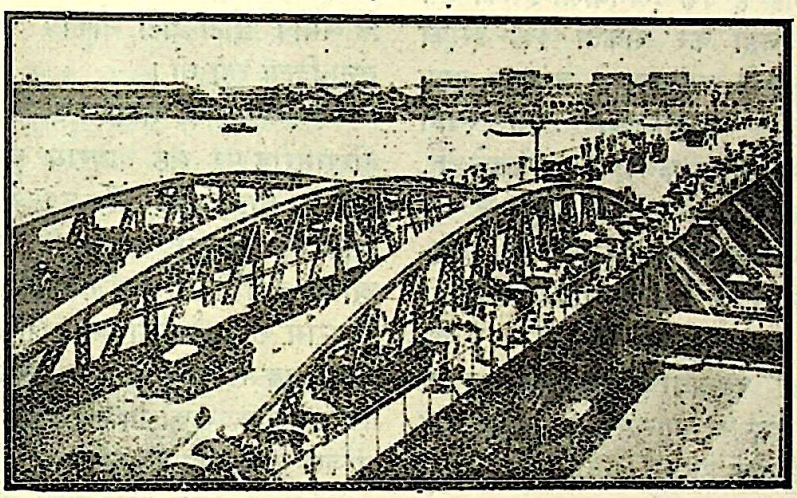

[हवड़ा का पुल]

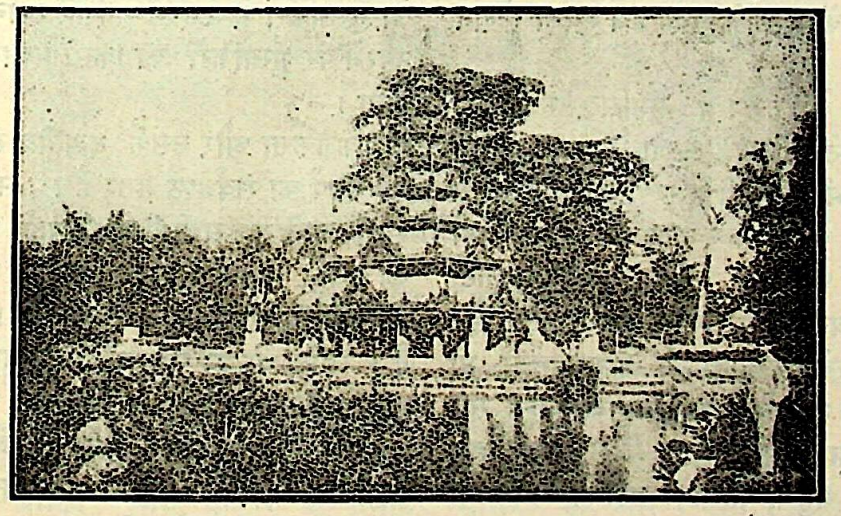

[ईडन गार्डेन में पगोडा बौद्ध-मन्दिर]

के बाहर की बात हो गई। और जब उनका यहाँ से नामशेष हो गया तब इस मन्दिर की यह नौबत पहुँची कि १९वीं सदी तक इसका आधा भाग पृथ्वी के तले दब गया। २०वीं सदी में लार्ड कर्ज़न (सन् १८-९९ से १९०५ तक) के प्राचीन-भवन-रक्षक क़ानून के अनुसार प्राचीन भवनों की रक्षा होने लगी। इस मन्दिर का भी जीर्णोद्धार हुआ। इसके तले असंख्य टूटी हुई मूर्तियाँ निकलीं, जिनमें से कुछ तो यहीं हैं और कुछ कलकत्ता आदि के

अजायबघरों में रक्खी गई हैं। बहुत सी मूर्तियाँ सीमेंट के साथ इसी महाबोधि-मन्दिर के ऊपर चिपका दी गई हैं। इस मन्दिर की मरम्मत ऐसे अच्छे ढंग से की गई है कि देखनेवाला इसको देख कर ऐसा मालूम नहीं कर सकता कि इसका बाहरी कलेवर तुर्कों के आघात से जर्जरित हुआ होगा। मन्दिर की दाहनी ओर एक स्थान है, जहाँ यात्री पिण्ड-दान करते हैं। कहते हैं, इस स्थान पर पिण्ड देने से कई पीढ़ी के मरे हुए पूर्वज सीधे पितृ-लोक चले जाते हैं। बुद्ध-गया की समग्र मूर्तियों के नमूने, चहारदीवारी की चित्रकारी, मन्दिर के लघु या दीर्घ शिखरों का निर्माण, मूर्तियों का पहनावा केवल पूर्वी ढङ्ग को दर्शाते हैं। इस ढङ्ग को गान्धार या अमरावती ढङ्ग कहना सर्वथा निर्मूल होगा।

लगभग चार बजे शाम को हम बुद्ध-गया से गया लौट आये। सात बजे शाम को भोजन आदि से निवृत्त होकर हम कलकत्ते के लिए गाड़ी में बैठे और ५ सितम्बर को ६ बजे सुबह हम हवड़ा स्टेशन पर पहुँच गये।

हवड़ा स्टेशन भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध स्टेशनों में से एक है। यह स्टेशन बहुत लम्बा-चौड़ा है। यहाँ हर समय बड़ी भीड़ रहती है। हवड़ा स्टेशन से कलकत्ता को जाने के लिए एक सुन्दर लम्बा-चौड़ा पुल है। स्टेशन पर बसें (बड़ी लारियाँ), छोटी लारियाँ, इक्के, बग्घी और रिक्सा मिल जाती हैं। पुल को पार करके कलकत्ते में ट्रामगाड़ियाँ भी मिल जाती हैं। ट्रामगाड़ी का किराया अन्य सब सवारियों से कम लगता है। जिस समय हम हवड़ा स्टेशन पर पहुँचे, वह बड़े जहाजों को निकल जाने के लिए तोड़ दिया गया था। उस समय मनुष्य या सवारियाँ पुल के ऊपर नहीं जा सकती थीं। यह दृश्य बड़ा मनोहर था। हमने जहाज कभी नहीं देखे थे, इसलिए हमारा मन जहाज को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो गया। प्रातःकाल का अत्यन्त सुहावना समय, और फिर गङ्गा के किनारे की शीतल मन्द-मन्द हवा हमारे विशेष उत्कण्ठित मन को कितना आनन्दित कर रही थी, वर्णन नहीं किया जा सकता। बड़े बड़े दानवाकार जहाजों के समीप छोटी छोटी नौकायें अपनी निराली ही छटा दिखा रही थीं।

हम मोटर पर सवार हुए और बड़े बाजार को हरिसनरोड पर सेठ बाबूराम की धर्मशाला में जा ठहरे। वाइ० एम० सी० ए० में भी मुसाफ़िरों के ठहरने का अच्छा प्रबन्ध है, किन्तु मुसाफ़िरों के अधिक होने से हमें वहाँ स्थान खाली न मिला। सेठ बाबूराम की धर्मशाला बहुत प्रसिद्ध है। यह एक सुन्दर ढङ्ग से बनी हुई है। इसमें पाँच मंजिलें हैं। हम सबसे ऊपर की मंजिल में ठहरे थे। ऊपर की मंजिल से बाजार की सुन्दरता देखने योग्य थी। इस धर्मशाला में सफ़ाई और पानी का अच्छा प्रबन्ध है। इसके कार्य-सञ्चालन के लिए एक कमेटी बनी हुई है। कमेटी की ओर से एक जमादार नियुक्त है, जो मुसाफ़िरों को ठहरने के लिए स्थान देता है। यहाँ ठहरने पर मुसाफ़िरों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

कलकत्ता और उसके दर्शनीय स्थान—कलकत्ता भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर है। समुद्र के अत्यन्त समीप होने से इसकी विशेष ख्याति है। यह व्यापार का प्रधान केन्द्र है। इसके विशाल और ऊँचे भवनों की असंख्य अट्टालिकायें दर्शकों को विस्मित कर देती हैं। पाँच या छः मंजिलोंवाले भवन यहाँ साधारण रूप से विद्यमान हैं। प्रातःकाल और सायंकाल बाजारों में इतनी मोटर, बग्घियाँ और अन्य सवारियाँ चलती हैं कि मनुष्य को बाजार पार करना असम्भव हो जाता है; पुलिस का इतना उत्तम प्रबन्ध है कि इतनी भीड़ होने पर भी सवारियों की एक दूसरे के साथ किसी प्रकार टक्कर नहीं होने पाती। ट्रामगाड़ी का किराया बहुत सस्ता है और विशेष रूप से मध्याह्न में किराया आधा होजाता

है, क्योंकि उस समय भीड़ कम रहती है। कलकत्ते में अनेक देशों के मनुष्य देखने में आते हैं, क्योंकि यह एक व्यापार का मुख्य केन्द्र है। यहाँ चाय, कपड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, शीतलपाटी आदि वस्तुएँ सस्ती मिलती हैं। काश्मीरी फल भी यहाँ सस्ते विकते हैं, क्योंकि काश्मीर से फलों से भरे हुए गाड़ी के डिब्बे यहाँ सीधे आते हैं और फिर नीलाम होते हैं। यहाँ के रसगुल्ले और संदेश बहुत विख्यात हैं। यहाँ से जहाज़ सीधा रंगून, जापान और सीलोन आदि स्थानों को जाते हैं। इँग्लेंड या अमेरिका आदि स्थानों को जानेवाले बड़े बड़े जहाज़ यहाँ नहीं आते। यहाँ अजायबघर, चिड़ियाघर, काली का मन्दिर, विक्टारिया स्मारक, बाली पुल के पास दक्षिणेश्वर का मन्दिर, शाम बाज़ार के समीप पार्श्वनाथ का मन्दिर, बेलूर में स्वामी रामकृष्ण का मठ, बोटेनिकल गार्डन, बालीगंज तालाब, फ़ोर्ट विलियम, हाईकोर्ट की इमारत, इम्पीरियल लाइब्रेरी, अदनगार्डन, लाटसाहब का निवासस्थान, कालेज-विभाग, जहाज़ों के ठहरने का स्थान, बड़ा डाकख़ाना, डलहौजी स्कायर, प्रेसीडेंसी कालेज, बैंकों के मकान विशेष दर्शनीय हैं।

५ सितम्बर मध्याह्न के अनन्तर हम उत्तरपाड़ा होकर दक्षिणेश्वर के मन्दिर को देखने गये। शाम को कलकत्ता लौट आये। हमारे सहपाठी बङ्गाली छात्र के आत्मीय स्वजन उत्तरपाड़ा में रहते हैं।

उत्तरपाड़ा—यह स्थान कलकत्ता से छः मील की दूरी पर है। यहाँ मुकर्जीपाड़ा बहुत प्रसिद्ध है। मुकर्जी-वंश प्राचीन काल से गौरव और प्रतिष्ठा का स्थान रहा है। उत्तरपाड़ा में बड़े विशाल और सुरम्य भवन, रमणीक उद्यान, छोटे छोटे तालाब, और इंटरमीडियेट कालेज देखने योग्य हैं। उत्तरपाड़ा में छोटे छोटे तालाब तो सैकड़ों हैं, किन्तु अधिकतर गन्दे हैं। यहाँ से ग्रैन्डट्रंक रोड सीधी पश्चिमोत्तर की ओर चली जाती है। यह सड़क शेरशाह (१५४० से ४५ ई०) ने प्रजा के हित के लिए बनवाई थी। उत्तरपाड़ा गङ्गा के अत्यन्त समीप तट पर स्थित है। सुबह हम गङ्गा में स्नान के लिए जाते थे। वहाँ अनेक बङ्गाली बाबू भी स्नान करने आते थे। जाते समय वे लोग हाथ में

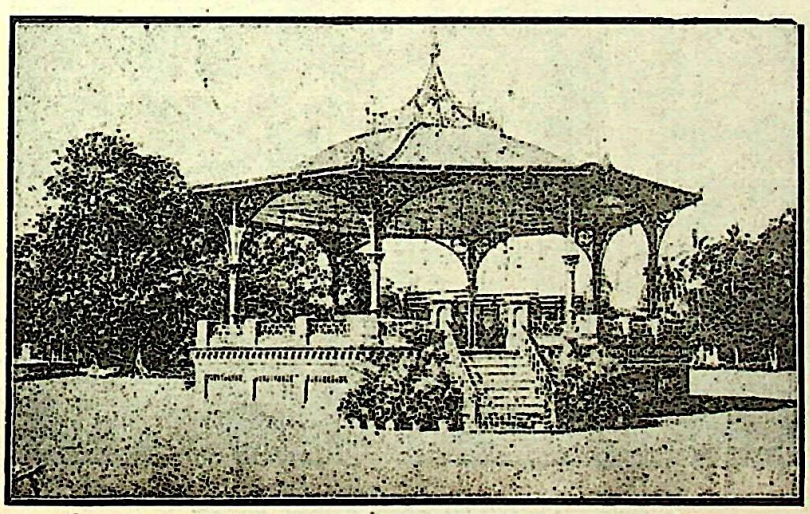

[ईडन गार्डेन का एक दृश्य]

सेर दो सेर मछली खरीद ले जाते। यहाँ मछली बहुत सस्ती बिकती है। दो आने सेर के भाव से ताज़ी मछली मिलती है। इन मच्छमारों का जीवन भी हमें अत्यन्त कौतूहलोत्पादक और असाधारण प्रतीत हुआ। ये लोग नाव में ही खाना पकाते, खाते और उसी में रहते हैं। इनकी स्त्री और बच्चे भी साथ रहते हैं। इनके लिए यह नौका ही एक-मात्र जीवन-पथ का सहारा, सांसारिक सुख की क्रीडा-स्थली अथवा मनोविनोद की एक-मात्र साधन है। उत्तरपाड़ा के निकट वाली नामक स्थान है। यहाँ गङ्गा के ऊपर वाली-पुल बन रहा है। इस पुल का सन् १९२६ में बनना प्रारम्भ हुआ था और अनुमान किया जाता है कि दिसम्बर तक बन जायगा। जनवरी में बड़े लाट इसका प्रवेशोत्सव स्वयं करेंगे। कहा जाता है कि इस पुल के बनने में लगभग एक करोड़ रुपये लगे हैं। इसके बनाने में मनुष्य-शक्ति से कम और विद्युत् तथा यन्त्रों की शक्ति से अधिक काम लिया गया है।

दक्षिणेश्वर का मन्दिर—यह मन्दिर वाली स्थान के सम्मुख गङ्गा के दूसरे तट पर स्थित है। गङ्गा के तट से मन्दिर में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दरवाज़े के दाहनी और बाईं ओर शिव के छोटे छोटे तीन मन्दिर हैं। इनके सामने एक बड़ा विस्तृत चौक है, जिसमें कटे हुए पत्थर बिछाये गये हैं। चौक के सामने काली का एक विशाल आकाश-भेदी मन्दिर है, जिसके गगन-चुम्बी लघु और दीर्घ शिखर शिल्पकार का अनुपम शिल्प-नैपुण्य प्रकट करते हैं। मन्दिर के दाहने और बायें दो बड़े बड़े नाट्य-मन्दिर हैं। इन नाट्य-मन्दिरों में कुछ समय पूर्व सुन्दरी ललनाओं के ललित नृत्य और मनोहर गान हुआ करते थे। इन मन्दिरों के मध्य में कई विशाल दृढ़ स्तम्भ खड़े हैं। मन्दिरों की दीवारों और भीतरी छतों पर चित्रकार की चित्रकला के कुछ नमूने दर्शकों की दृष्टि को अपने विचित्र सौन्दर्य से आप्यायित करते हैं। चौक के एक ओर रामकृष्ण परमहंस की समाधि है। समाधि के भीतर परमहंसजी का शयनागार है, जहाँ एक काष्ठ-मञ्च पर कुछ वस्त्र बिछे हैं। ये वस्त्र परमहंसजी के नैतिक उपयोग के थे। समाधि की दूसरी ओर पञ्चवटी (पाँच वट के वृक्षों का एक स्थान पर मेल) है।

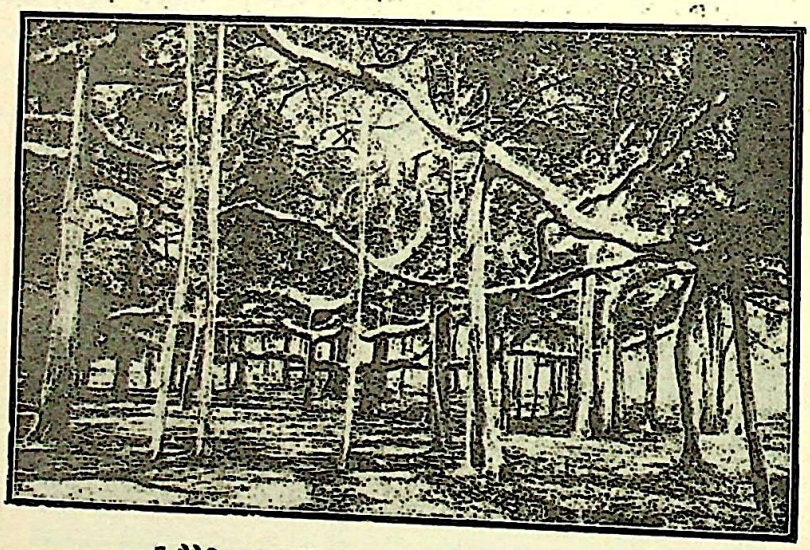

[बैटैनिकल गार्डेन का प्रसिद्ध विशाल वट-वृक्ष]

इसके नीचे बैठकर परमहंसजी समाधि लगाया करते थे। यह प्रदेश वास्तव में एकान्त और रमणीक है। वाली-पुल के बनने से इसकी नैसर्गिक एकान्तता कुछ घट गई है। आज-कल यहाँ सैकड़ों यात्री दर्शन के लिए आते हैं। बड़े मन्दिर के भीतर काली की विकराल मूर्ति है। कहते हैं, परमहंसजी काली के दर्शन करके इतने उन्मत्त और विकल हो जाते थे कि उन्हें अपने बाहरी शरीर का तनिक भी ध्यान नहीं रहता था। यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने काली के हाथ से खड्ग लिया और यह कह कर कि हे माता, यदि तू मुझे साक्षात् दर्शन नहीं देती तो मैं इसी खड्ग से अपना सिर काटे देता हूँ। ज्यों ही अपना सिर काटना चाहते थे, लोगों ने उनका हाथ पकड़ लिया। इसमें भक्ति-भाव की नितान्त पराकाष्ठा थी। भक्ति के विचार से यह स्थान बड़ा मनोरम है; इस स्थान पर प्रकृति की अनूठी लीला नित्य विविध कौतूहलमय क्रिया करती रहती है। एक ओर गङ्गा का परम-पावन तट और दूसरी ओर विस्मय-जनक प्रकृति का मनोहर उद्यान किस मानव के हृदय में भक्ति-भाव का सञ्चार न करेंगे! इस मन्दिर की शिल्पकला बहुत प्राचीन ढंग की नहीं है। मन्दिर की पिछली ओर एक छोटा सा तालाब है, जो मन्दिर की प्राकृतिक शोभा को बढ़ा रहा है।

७ सितम्बर को सवेरे हम बेलूर में रामकृष्ण परमहंस के मठ को देखने गये। यह स्थान कलकत्ता से लगभग ५ मील की दूरी पर स्थित है। गंगा के तट की मृदु, मन्द, सुगन्धित, शीतल समीर की अबाधित गति से इस मठ की रमणीयता द्विगुणित हो गई है। इस मठ की स्थापना स्वनामधन्य श्रीविवेकानन्द स्वामी ने परमहंसजी की इच्छापूर्ति के लिए की थी। यहाँ स्वामी विवेकानन्द की समाधि, पठनागार, शयनस्थान दृष्टिगोचर होते हैं। इस मठ में एक दर्शनीय ओंकार-मन्दिर है, जिसके भीतर एक अनवद्य और हृद्य ओंकार की मूर्ति स्थापित है। स्वामी विवेकानन्द इस ओंकार के अत्यन्त भक्त थे। उनका यह अटल विश्वास था कि एक-मात्र ओंकार की साधना से मानव को परमेश्वर का परम पुनीत पद प्राप्त हो सकता है।

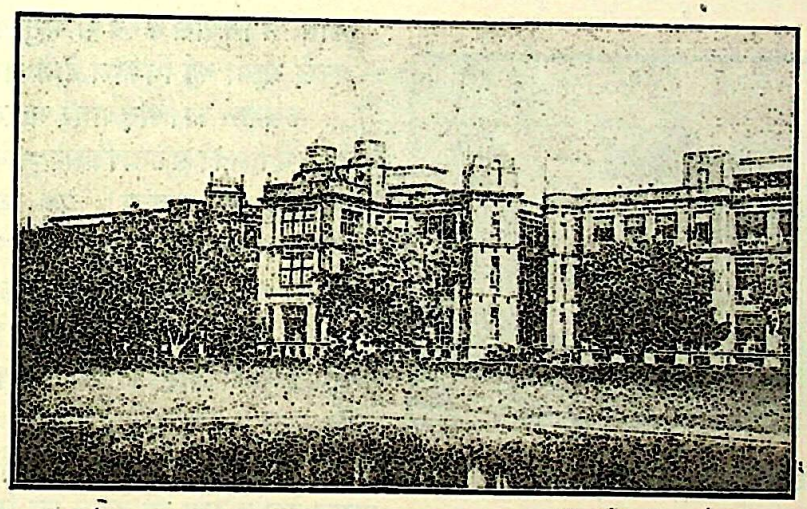

[कलकत्ते का बड़ा अस्पताल]

इस मठ में एक छोटा सा पुस्तकालय भी है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द-निर्मित पुस्तकों के अतिरिक्त दार्शनिक विषय की बहुत-सी पुस्तकें उपस्थित

हैं। पुस्तकालय में एक दर्शनज्ञ संन्यासी बैठे रहते हैं, जो छात्रों को पढ़ाने के अतिरिक्त समय-समय पर दार्शनिक चर्चा भी किया करते हैं। यहाँ एक छोटा सा निःशुल्क औषधालय भी है। इसका सञ्चालन जनता की आर्थिक सहायता से होता है। इस मठ में एक छोटा सा मन्दिर और है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द की माता का चित्र स्थापित है। इसे स्वामी विवेकानन्द के एक श्रद्धालु भक्त ने बनवाया है।

मठ की दूसरी ओर एक सुरम्य घर बना हुआ है। इस अतिथि-विश्रामालय में किसी पर्व या

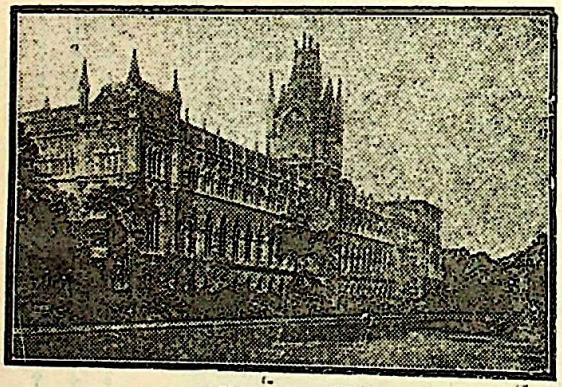

[कलकत्ते का हाईकोर्ट]

उत्सव के दिन केवल स्त्रियाँ विश्राम करती हैं। इसकी दूसरी ओर एक विस्तारयुक्त भोजनालय है, जहाँ नित्य अनेक साधु-संन्यासी और ईश्वर-प्रेमी महात्मा भोजन करते हैं। यहाँ अनेक मनुष्य आकर द्रव्य का दान या अन्य भाँति की सहायता कर जाते हैं। इसी आधार पर यह संस्था चल रही है। न केवल भारत के, किन्तु अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी इस मठ के दर्शनार्थ आते हैं। इस मठ के पार्श्व में एक ऐश्वर्यशाली मारवाड़ी का एक विशाल उद्यान है। इस उद्यान में रङ्ग-बिरङ्गे चटकीले नाना भाँति के कुसुम छोटी-छोटी ललित लताओं के साथ रँगरलियाँ करते रहते हैं।

बेलूर-मठ में हमने एक विचित्र वृक्ष देखा, जिसका नाम नाग-लिंग वृक्ष था। यह वृक्ष विस्तार या उँचाई में चम्पा या मौलसिरी के वृक्ष के समान था। इसकी विचित्रता इस बात में थी कि इस पर मूल के पास फूल लगते हैं, न कि अन्य वृक्षों की भाँति टहनियों पर। फूल का आकार कुंडलाकार नाग (साँप) का सा और मध्य में इसके एक शिव-लिङ्ग सा खड़ा रहता है। इस वृक्ष की विभिन्न प्रकृति को देख कर हमें अत्यन्त आनन्द और कौतुक के साथ सृष्टि का वैचित्र्य विज्ञान भी प्राप्त हुआ। स्थान की एकान्तता, मनोरञ्जकता, पावनता प्रशंसा के योग्य थी। ऐसे स्थानों में निवास करने से मनुष्य के हृदय में अच्छे-अच्छे भावों का विकास होने लगता है।

कलकत्ते का चिड़ियाघर भारत भर में विख्यात है। भारत में इसकी समता किसी दूसरे स्थान का चिड़ियाघर नहीं कर सकता। यह स्थान अजायबघर से लगभग तीन मील की दूरी पर स्थित है। इसको देखने के लिए एक आने का प्रवेश-टिकट लेना पड़ता है। यहाँ न केवल भारत के किन्तु अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जापान आदि अनेक देशों के पशु-पक्षी रक्खे गये हैं। यहाँ हिमालय जैसे शीत-प्रधान प्रदेश के पशु और अफ्रीका जैसे उष्णता-प्रधान देश के पशु भी देखने को मिलते हैं। यहाँ इन विभिन्न प्रकृति के पशु-पक्षियों के खाने के सुप्रबन्ध के अतिरिक्त उनके रहने के लिए स्थान का भी बहुत सुन्दर प्रबन्ध है।

हाथियों के साथ बालकों का खेल—इस चिड़ियाघर में दो विशाल शरीरवाले हाथी एक वृक्ष के तले बँधे हुए थे। बालकों को उनके साथ खेलना बहुत रुचिकर था। बालक उन्हें कहते थे—'सलाम करो'। इस पर हाथी अपनी सूँड़ नमस्कार करने के लिए सिर पर ले जाते थे और छोटे बालक उन्हें गन्ने के टुकड़े एक एक करके देते थे। इसी खेल के कारण वहाँ पर एक गन्ने की दूकान खुल गई है। यह दृश्य भी देखने योग्य था।

वनमानुष—ये आकार में मनुष्य का पूरा अनुकरण करते हैं। किन्तु एक तो इनके शरीर में रोम अधिक हैं और दूसरे इनका मुख अधिक ऊपर उठा हुआ है। इनका रस्सो के साथ व्यायाम करना बड़ा मनोरञ्जक था। इनको देखने के लिए लोगों की बड़ी भीड़ लगी रहती है।

रफ़स काँगरू—यह अद्भुत जानवर आस्ट्रेलिया के वनों में पाया जाता है। इसका आकार भेड़ के समान है, इसमें विचित्रता इस बात की है कि यह पूँछ की सहायता से चलता है। इसका चलना भी देखने योग्य है।

गोरिला—यह एक पर्वतीय जानवर है। इसका क़द भेड़ और बकरे के समान है। यह काश्मीर, भूटान, आसाम और हिमालय पर्वत में पाया जाता है। इसका रूप-रङ्ग देखने योग्य है।

महिष-गौ—यह जानवर अत्यन्त अद्भुत है। इसको देखकर मनुष्य को स्वाभाविक रूप से भ्रम होता है कि यह गौ है या महिष। इसके सींग, पूछ और मुँह गौ के से हैं, किन्तु चर्म, रोम आदि महिष के समान हैं। यह भी यहाँ विदेश से मँगाया गया है।

ब्रिडल्डघू—यह जानवर दक्षिणी अफ़्रीका में पाया जाता है। इसकी पूँछ के ऊपर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। और गले के नीचे भी सिंह की भाँति लम्बे-लम्बे बाल हैं। यह भी दर्शनीय है।

सफ़ेद रीछ—यह रीछ हिमालय जैसे शीतप्रधान स्थानों में पाया जाता है। इसका रङ्ग सफ़ेद है। कलकत्ता जैसे उष्ण प्रदेशों में यह कदापि जीवित नहीं रह सकता, किन्तु इस चिड़ियाघर में इसके लिए इसकी प्रकृति के अनुसार शीतोपचार किये गये हैं।

अमेरिका का बिसन—यह जानवर अमेरिका के पहाड़ी देशों में पाया जाता है। इसका आकार भैंस के समान है। इसका रूप अत्यन्त भयानक और विचित्र है। भारत में इसके आकार का कोई जानवर नहीं है।

जिरैफ़—इसका रूप ठीक ऊँट के समान है। इसकी पूँछ पर अधिक बाल होते हैं। यह भी अमेरिका में पाया जाता है। इसके चर्म पर एक प्रकार के चिह्न हैं। इसके पैर और गर्दन लम्बी होती हैं।

दरियाई घोड़ा—यह घोड़ा अफ़्रीका की नदियों में पाया जाता है। इसका आकार घोड़े से बहुत कम मिलता है। इसका चर्म बहुत मोटा है। इस चिड़ियाघर में इसके लिए पानी का एक बड़ा कुंड बनाया गया है। यह कभी कभी पानी से बाहर भी आ जाता है।

सर्पशाला—पशु और पक्षियों के अतिरिक्त इस

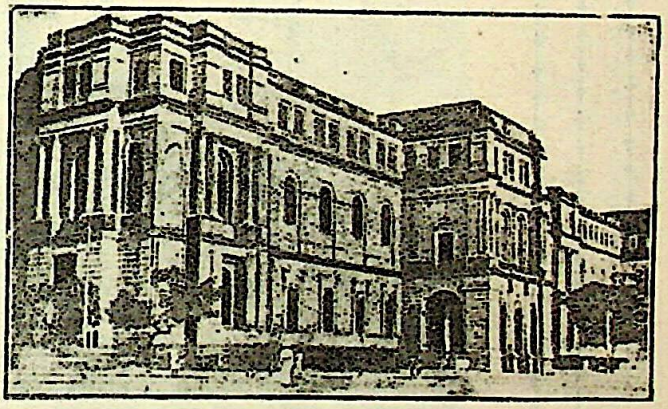

[कलकत्ते का अजायबघर]

चिड़ियाघर में एक सर्प-शाला भी है, जिसमें अनेक प्रकार के सर्प और काले रङ्ग के मगरमच्छ रक्खे गये हैं। साँप शीशे के डिब्बों में बन्द हैं और दर्शक बाहर से उन्हें भली भाँति देख सकते हैं। साँपों की सूक्ष्म गति बड़ी भयावनी प्रतीत होती है।

सर्प-भक्षक सर्प—यह सर्प अत्यन्त विषैला होता है। यह सर्पों को भी खा जाता है। इसका रूप तो अन्य सर्पों की ही भाँति है, किन्तु इसका रंग विशेष रूप से असाधारण है।

रंग-परिवर्तक सर्प—यह सर्प अत्यन्त ही विचित्र है। यह देखते ही देखते रङ्ग परिवर्तन करता है। अभी हरा-सा है तो अभी पीला हो जाता है। इसी

प्रकार अनेक रंग बदलता है। यह वृक्ष पर भी चढ़ जाता है।

इस सर्प-शाला में अनेक प्रकार के सर्प हैं। कई ऐसे हैं जिनका शरीर बहुत भारी है और कई ऐसे हैं जिनका शरीर बहुत छोटा। कई सर्प बहुत ही विषैले हैं और कई निर्विष हैं। इन विविध प्रकार के सर्पों के अतिरिक्त इस सर्प-शाला में पानी के दो छोटे-छोटे कुंड बने हुए हैं, जिनमें हर समय पानी आता-जाता रहता है। उन्हीं कुंडों में तीन काले मगरमच्छ रक्खे गये हैं जो दो दो गज़ से अधिक लम्बे नहीं हैं। इनकी कौतुक-क्रीड़ा भी देखने के योग्य है।

काली का मन्दिर—८ सितम्बर को प्रातःकाल हमने कालीघाट में काली के दर्शन किये। कालीघाट जाने के लिए बसें, मोटर, और ट्रामगाड़ियाँ मिल जाती हैं। काली-मन्दिर-पर्यन्त लगभग चौथाई मील पैदल चलना पड़ता है। एक पण्डा जो अँगरेज़ी-भाषा में भली-भाँति बातचीत कर सकता था, काली के मन्दिर तक हमारे पीछे पीछे आया। हमने उसके साथ तय किया कि हम दो दो आने प्रतिमनुष्य के हिसाब से दर्शन करवाने के लिए उसे देंगे। उसने दो-चार पैसे का फूल-प्रसाद हमारे लिए मोल लिया, और हमारे आगे हो लिया। एक ओर से मन्दिर की आधी परिक्रमा

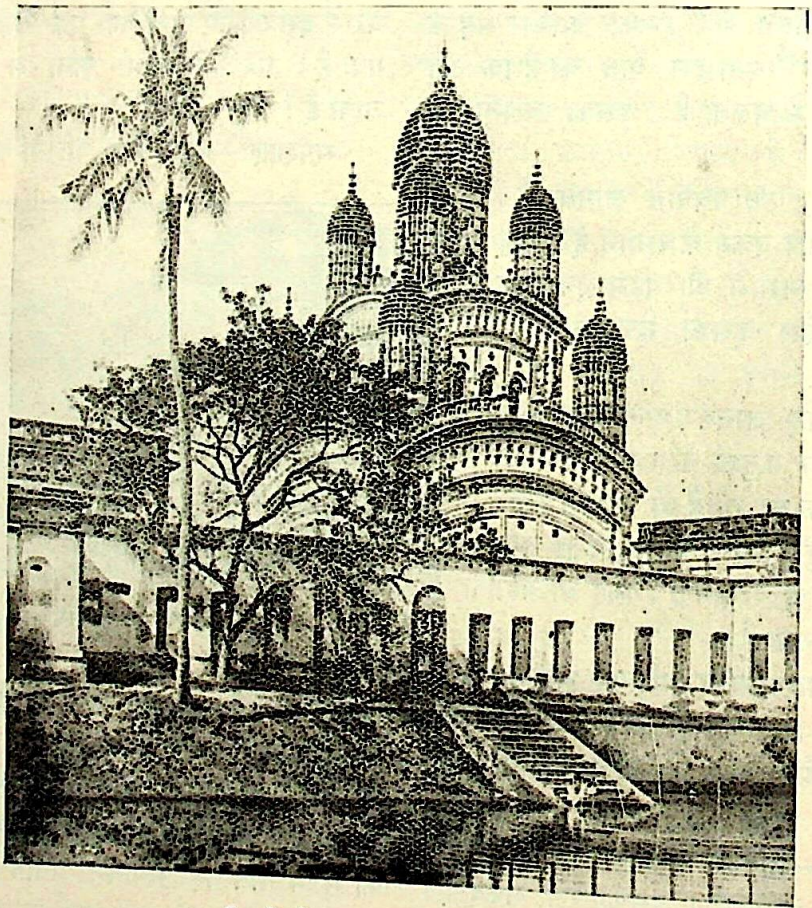

[दक्षिणेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर]

करके हम ज्यों ही मन्दिर के द्वार से प्रवेश करना चाहते थे कि हमसे दो दो पैसे प्रति मनुष्य प्रवेश-शुल्क माँगा गया। हमने प्रवेश-शुल्क दिया और दर्शनार्थ काली के मन्दिर के भीतर गये। मन्दिर के भीतर काली की भयावनी मूर्ति स्थापित है। मूर्ति के गले में फूलों के अनेक हार पड़े हुए थे। मूर्ति की जिह्वा सोने के एक बहुत पतले पत्ते की बनी हुई है और इसी कारण वह स्वाभाविक रूप से कुछ हिलती रहती है। भोले-भाले श्रद्धालु यहाँ तक विश्वास कर बैठते हैं कि काली उनके सम्मुख जिह्वा हिलाती हुई उग्ररूप दिखा रही हैं। काली के दर्शन करने के उपरान्त यात्री को वहाँ अधिक काल तक खड़ा नहीं होने देते, क्योंकि ऐसा करने से अधिक भीड़ होजाने का डर रहता है।

मन्दिर के मुख के सामने एक बहुत लम्बा-चौड़ा ऊपर से छाया हुआ स्थान है, जिसके तले सैकड़ों पण्डित सप्तशती का पाठ करते रहते हैं। इसी स्थान के सम्मुख एक खुला चौक है, जिसमें दो-चार लकड़ी की कीलें गाड़ दी गई हैं, जिसके मध्य में स्थान खाली है जिसमें बकरों और भैंसों के सिर रक्खे जाते हैं और फिर एक चोट में काट दिये जाते हैं। कीलों के आस-पास रक्त की धारायें बहती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। यह स्थान वास्तव में वीभत्स-रस का एक केन्द्र है। जिस समय हम इस स्थान को देखने के लिए गये उस समय भी यहाँ अनेक पशु मारे जाने के लिए खड़े किये गये थे।

मनसा वृक्ष—जिस समय हम मन्दिर की परिक्रमा करके उसकी दूसरी ओर गये, हमें एक विचित्र वृक्ष दिखाई दिया। हमारे साथी पंडे ने कहा—यह मनसा वृक्ष है। यदि किसी स्त्री को सन्तान न होती हो, वह बाँझ हो और यहाँ आकर इस वृक्ष की पूजा करे तो उसके सन्तान हो जायगी। उसके कथन में कहाँ तक सत्यता थी, ईश्वर ही जाने। वृक्ष की उँचाई तीन-चार गज़ से अधिक नहीं थी, किन्तु वह अधिक फैला हुआ था। वृक्ष पर पत्ते नहीं थे, टहनियाँ कुछ मोटी और काँटेदार थीं।

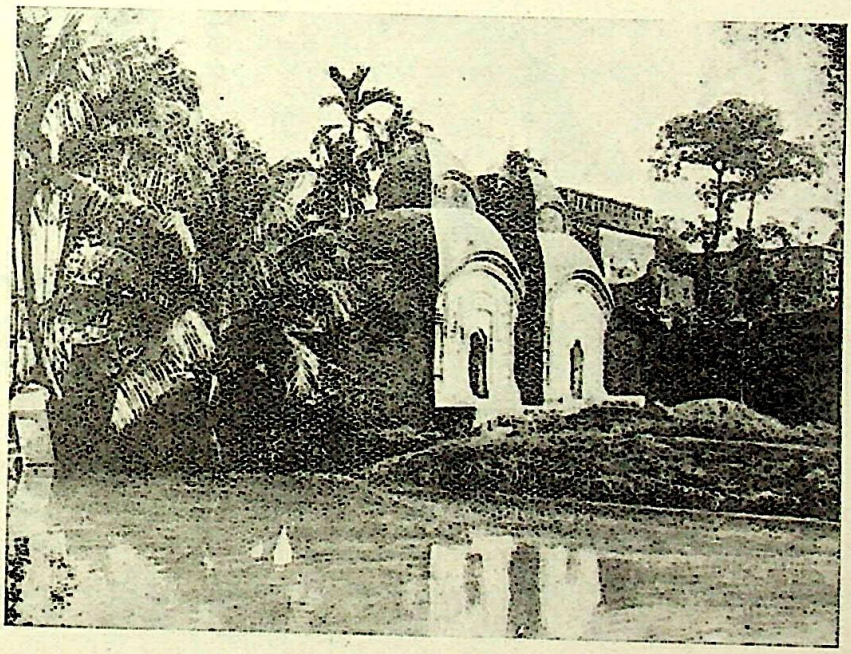

[कालीघाट के मन्दिर के समीप मन्दिर और तालाब]

मन्दिर की चित्र-कला—कालीघाट में छोटे घरों के अतिरिक्त केवल काली का मन्दिर ही देखने योग्य है। इस मन्दिर की उँचाई बहुत अधिक नहीं, किन्तु इसके ऊपर की चित्रकारी बहुत ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। चित्रकार ने मन्दिर के ऊपर इतने सुन्दर फूलों के चित्र बनाये हैं कि देखते ही बनता है। विशेषरूप से परिक्रमा के ऊपर अनुपम कौतुकोत्पादक चित्रण किया गया है। इतनी मनोहर चित्रकारी बहुत कम स्थानों में देखने में आती है।

बालीगंज तालाब—८ सितम्बर को सायंकाल हम बालीगंज में तालाब देखने गये। बालीगंज अजायबघर से लगभग तीन मील की दूरी पर है। यहाँ जाने के लिए मोटर, रिक्सा आदि सवारियाँ मिल जाती हैं, किन्तु ट्राम-गाड़ी यहाँ नहीं जाती। सायंकाल था, मन्द और मृदु शीतल हवा चल रही थी। तालाब के चारों ओर प्रकृति-प्रेमी अपनी प्रेम-पिपासा की पूर्ति कर रहे थे। सड़क के किनारे के विद्युत्-दीपक तालाब के जल में प्रतिबिम्बित होकर ऐसे प्रतीत होते थे मानो निर्मल गगन में चारों ओर से तारकमाला अपूर्व सुन्दरता का आभास कर रही हो। तालाब के एक ओर पानी के बीच में एक छोटी सी मस्जिद बनी हुई है, उसके चारों ओर अनेक बेंचें बिछी हुई हैं जिन पर बैठ कर प्रकृति के उपासक प्रकृति के प्रेम की आराधना में इतने लवलीन हो जाते हैं कि उन्हें प्रकृति की लीला के अतिरिक्त समस्त विश्व में कुछ नहीं दीखता।

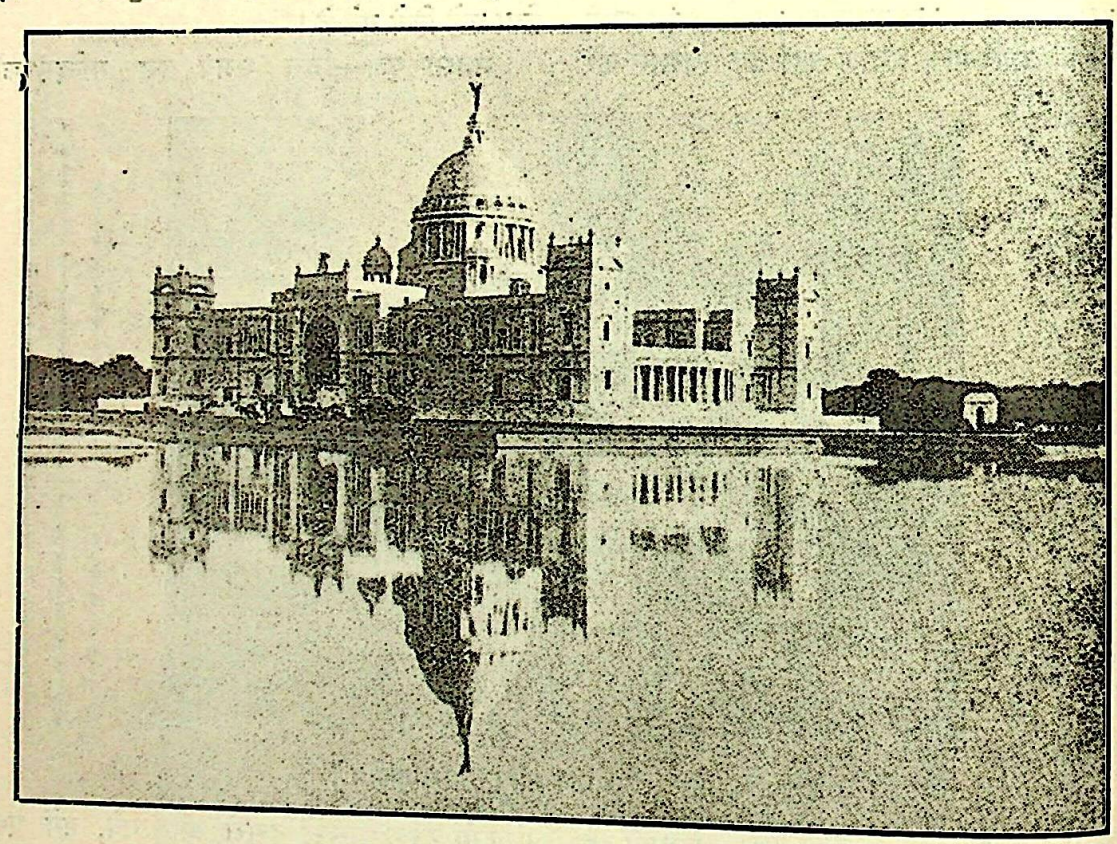

[विक्टोरिया मेमोरियल]

इस तालाब में केवल अँगरेज़ ही नौकाओं में बैठ कर सैर कर सकते हैं। छोटी छोटी नौकायें पानी के ऊपर तैरती हुई बहुत सुहावनी लगती हैं। डाँड़ों के निरन्तर आघात उसकी ललित लहरों को इतना विचलित कर देते थे कि उन्हें तटों का सहारा लेना पड़ता था। मन्द पवन की उन लोल लहरों के साथ बहुत ही सुन्दर लीला दृष्टिगोचर होती थी। तालाब के तट की भूमि पर प्रकृति देवी के स्वागत के लिए कोमल हरी हरी घास के रूप में हरे गलीचे बिछे हुए थे। प्रकृति के राज्य में समग्र वस्तुओं की रमणीयता लोचनों को लुभानेवाली थी, जिसको देखकर मन अघाता ही नहीं।

विक्टोरिया-स्मारक—यह स्मारक अजायबघर से लगभग आधा मील की दूरी पर स्थित है, और महारानी विक्टोरिया की याद में बना है। इस स्मारक पर चित्रकला का अधिक काम है। स्मारक एक विचित्र प्रकार से बना हुआ है, आगे और पीछे दोनों ओर से आने-जाने के मार्ग हैं। स्मारक के गुम्बज़ की भीतरी ओर अनुपम और अद्भुत चित्रकारी की गई है। यहाँ के भिन्न-भिन्न चित्र महारानी विक्टोरिया के राज्य-सम्बन्धी उत्सवों या विशेष कार्यों को प्रदर्शित करते हैं।

गुंबज़ के आस-पास ऊपर की मंज़िल में अनेक छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं। इन कोठरियों में अनेक चित्र रक्खे हुए हैं जिनमें अधिकतर फ़ोटो हैं। कई चित्र ४ × ३ गज़ लम्बे-चौड़े हैं। कुछ चित्र हिमालय आदि भारतीय प्रदेशों के अच्छे दृश्य प्रदर्शित करते हैं और कुछ १८५७ के ग़दर के दृश्य का चित्रण करते हैं। कुछ लखनऊ के सैनिकों का विद्रोह, लखनऊ का आक्रमण, और लखनऊ के विजय को दर्शाते हैं। एक विशाल चित्र में हैवेलौक, औट्रम और सर कोलिन कैंपबेल के विजय के उपरान्त उनके मिलने का चित्रण किया गया है। कानपुर, दिल्ली, इलाहाबाद के विद्रोह के भी यहाँ अनेक चित्र रक्खे गये हैं। एक बड़े चित्र में सम्राट् जार्ज का १९११ का राज्याभिषेक अत्यन्त उत्तम प्रकार से चित्रित किया गया है। इनके अतिरिक्त बड़े लाटों के भी यहाँ अनेक विशाल चित्र हैं।

स्मारक के नीचे के भाग में अनेक कोठरियाँ हैं। एक कोठरी में अनेक अँगरेज़ शासकों के चित्र रक्खे गये हैं। एक दूसरी कोठरी में महारानी विक्टोरिया के चित्र अन्य स्त्रियों के साथ हैं। ये चित्र महारानी का स्त्रीत्व के साथ आदरभाव प्रकट करते हैं। एक कोठरी में महारानी की कुर्सी और मेज़ लगी हुई है। इनके अतिरिक्त रेशमी वस्त्रों के नमूने, ऊनी वस्त्रों के नमूने, गलीचे और अन्य वस्तुओं के नमूने भी यहाँ रक्खे गये हैं। इस स्मारक के भीतर एक नहीं, अनेक संगमरमर की विशाल मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इन मूर्तियों में महारानी की मूर्ति, बड़े लाटों की मूर्तियाँ भारतीय राजा-महाराजाओं ने और नवाबों ने भेंट के रूप में इस स्मारक में प्रदान की हैं। स्मारक के बाहर सेना के चित्र बने हुए हैं।

स्मारक के गुंबज़ के ऊपर एक बहुत भारवाली परी की मूर्ति रक्खी गई है। कुछ समय पूर्व यह मूर्ति स्वयं पंखों-द्वारा वायु के वेग से घूमा करती थी, किन्तु आज-कल यह कुछ बिगड़ी हुई है। इस स्मारक में सिक्ख सैनिकों का पहरा लगा रहता है।

स्मारक के बाहर बड़े मनोहर उद्यान बने हुए हैं। इन उद्यानों के मध्य में तालाब बने हुए हैं। इन तालाबों और उद्यानों से इस स्मारक की सुन्दरता बहुत बढ़ गई है। उद्यानों की हरी भूमि अत्यन्त सुहावनी प्रतीत होती है। उद्यान में अनेक रंग के सुगन्धित पुष्प अपनी चमक-दमक से दर्शकों के लोचनों को तृप्त करते हैं। पुष्पों की सुगन्धि मन्द, मृदु, शीतल पवन के साथ मिलकर स्मारक के आस-पास वायु-मण्डल को शुद्ध करती है। स्मारक के उद्यानों में तालाबों का जल अतीव निर्मल और स्वच्छ रहता है। जिस समय तालाब में स्मारक का प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्मारक के

साथ प्रतिद्वन्द्विता के लिए पाताल से एक मणिमय स्मारक पृथ्वी के ऊपर आ रहा है। सायङ्काल के समय हज़ारों दर्शक इस स्मारक के उपवन में आकर बैठते हैं और इसकी सुलभ सुगन्धि आदि का लाभ उठाते हैं।

पार्श्वनाथ का मन्दिर—पार्श्वनाथ का मन्दिर शामबाज़ार के अत्यन्त समीप है। शामबाज़ार तक ट्रामगाड़ी भी जाती है और फिर लगभग आधा मील पैदल जाना पड़ता है। यह मन्दिर जैन-सम्प्रदाय का है। यहाँ पार्श्वनाथ (जैन-धर्म-प्रवर्तक) की पूजा होती है। मन्दिर के गगनचुम्बी शिखर बहुत दूर से दिखाई पड़ते हैं। मन्दिर के स्थान का क्षेत्रफल अधिक नहीं; किन्तु मन्दिर का स्थापत्य और चित्रकला-कौशल अतीव प्रशंसनीय है।

मन्दिर में प्रवेश-तोरण पर सदैव एक पहरेदार बैठा रहता है। मन्दिर के ऊपर चढ़ने के लिए कुछ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। मन्दिर के मध्य-भाग में पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है जो अनेक वस्त्रों और आभूषणों से सजाई रहती है। मन्दिर का स्थान अनेक झाड़-फानूसों और विविध प्रकार के सुन्दर चित्रों से जगमगाता रहता है। मन्दिर की सजावट को देखकर दर्शक आश्चर्यान्वित हो जाता है। मन्दिर में पिरोये हुए काँच के छोटे टुकड़े हीरे, मणियों और रत्नों की भ्रान्ति पैदा करते हैं। इस छोटे से आकारवाले मन्दिर में शिल्पकला बड़ी उत्तमता से प्रदर्शित की गई है। जब इन काँच के टुकड़ों पर विद्युत्प्रकाश पड़ता है तब असंख्य प्रज्वलित प्रदीप दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

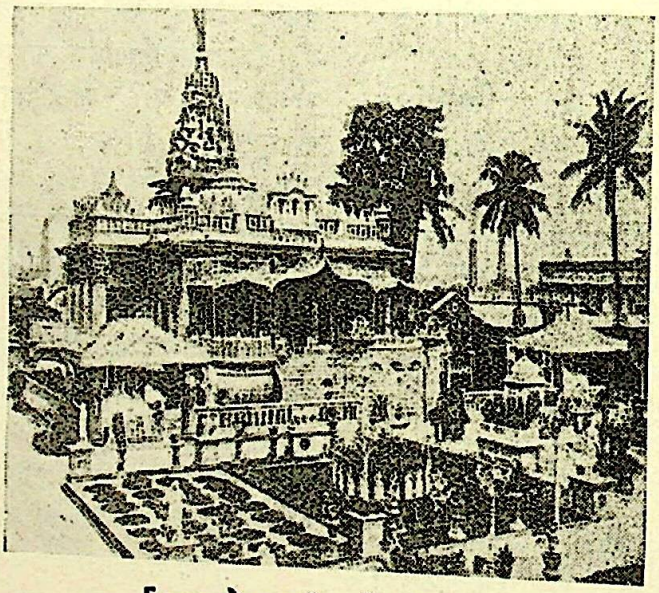

[कलकत्ते का प्रसिद्ध जैन-मन्दिर]

मन्दिर के चौक में भी अद्भुत शिल्प-कला का चातुर्य प्रकट किया गया है। स्थान स्थान पर अप्सराओं की मूर्तियाँ सजीव सी जान पड़ती हैं। मूर्तियों का लचकदार खड़े होने का ढंग, मूर्तियों के प्रति अङ्ग की सुन्दर बनावट अत्यन्त चित्ताकर्षक है, दर्शक की दृष्टि जिस चित्र पर पड़ती है वहाँ से बड़ी कठिनता से हटती है। मन्दिर की सीढ़ियों के दोनों ओर दो बड़े बड़े हाथी बनाये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता

है, ये श्वेत हाथी ऐरावत हैं और यहाँ अमरावती के भ्रम से आगये हैं।

अनेक स्थानों पर संगमरमर के कौतुकोत्पादक जँगले और सुन्दर मूर्तियाँ इस मन्दिर की मनोरञ्जकता को बहुत अधिक बढ़ा रही हैं। मन्दिर के सामने एक छोटा सा तालाब बना है। उसने मन्दिर की शोभा चौगुनी बढ़ा दी है। सायङ्काल के समय जब यह मन्दिर विद्युत्प्रकाश से जगमगाता है, इसका ठीक प्रतिबिम्ब पानी में दूसरे मन्दिर का भ्रम पैदा करता है। छोटी लहरों के हिलने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सारा मन्दिर पानी के ऊपर तैर रहा है। स्थान स्थान पर दर्शकों के बैठने के लिए बेंचें लगी हुई हैं।

मिस्टर स्मिथ ने लिखा है कि गुप्तकाल के उपरान्त भारतीय शिल्प-कला का ह्रास होता जाता है। यह कथन भले ही किसी अंश में ठीक हो, किन्तु पार्श्वनाथ के मन्दिर को देखकर मानना पड़ेगा कि गुप्तकाल के उपरान्त शिल्पकला ने कई अंशों में उन्नति भी की है। अस्तु।

हमें १३ सितम्बर को यूनिवर्सिटी में उपस्थित होना था और हम ११ तारीख़ तक अधिक समय लगा चुके थे। हमारे बङ्गाली साथी का मन अभी नहीं भरा था। वे हमसे अधिक ठहरने के लिए कहने लगे। उनके सौभाग्य से उन्हें एक अच्छा बहाना भी मिल गया। 'शेष बहादुरी' बङ्गाल के एक अद्वितीय नाटक खेलने के पात्र हैं। १३,१४ सितम्बर को इनका खेल होना था। हमारे साथी ने कहा, हम बिना खेल देखे कलकत्ता से कदापि न जायँगे। हमारे एक पहाड़ी साथी भी कहने लगे कि 'शेष बहादुरी' का खेल तो हम भी अवश्य देखेंगे। इन्होंने अपना कार्यक्रम बनाया कि नालन्द, राजगिर, शान्तिनिकेतन आदि इस भ्रमण में न देखे जायँगे। हमने सोचा, नाटक तो जीवन में अनेक बार देखेंगे, किन्तु ये स्थान नहीं देखे जा सकेंगे, और आचार्यजी की आज्ञा का भी हमें ध्यान था। अतएव अपने कार्यक्रम के अनुसार हम अपने बङ्गाली मित्र के यहाँ से बिदा हुए और शान्ति-निकेतन जाने के विचार से हम अन्य साथियों से 'बख़्तियारपुर स्टेशन' पर जा मिले।

—श्रीचक्रधर 'हंस'

मक्खियों की करतूतें

पुस्तक छोटी-सी है परन्तु बहुत उपयोगी है। मक्खियों के कारण कैसे कैसे भयानक रोग पैदा हो जाते हैं यह किसी से छिपा नहीं है। इस पुस्तक में खुलासा सब बातों का वर्णन किया गया है। ज़रा पढ़कर देखिए। मूल्य केवल ।≈) छः आने।

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शुभ स्वागत

(१)

स्वागत बारम्बार तुम्हारा,
आओ आओ नूतन वर्ष !
बड़ा हर्ष होता है हमको,
देख तुम्हारा यह उत्कर्ष ॥

(२)

मङ्गलदायक मोद-विधायक,
जो करता विघ्नों का नाश ।
वही विनायक विघ्नराज बन,
करता तू बल-बुद्धि-विकाश ॥

(३)

भरे हुए हैं मोह-लोभ के,
सागर के सागर जो आज ।
तू उनको पीनेवाला है,
बलधारी कुम्भज ऋषिराज ॥

(४)

जो अपने कर में रखते हैं,
दुष्ट-विदारक परशु ललाम ।
शोक-सहस्रबाहु-संहारक,
तू है वही परशुधर राम ॥

(५)

क्रोध-द्वेष-दशकन्धर का जो,
है वर वीर वाम बलधाम ।
वही महा अभिराम राम बन,
तू आया देने आराम ॥

(६)

हमें चैन की वंशी की नित,
सुघर सुनाता है जो तान।
वही श्याम तू यहाँ लुटाने,
आया गीता-ज्ञान-निधान॥

(७)

सत्य-युधिष्ठिर-बन्धुजनों को,
जो देता आनन्द असीम।
वही कष्ट-कीचक-नाशक तू—
महामहिम है भीषण भीम॥

(८)

तृप्ति-दान कर जो हरता है,
शुद्ध सुधा का गर्व बलात।
पारतन्त्र्य-पावक-क्षय-कारक,
तू है वही विमल जल-पात॥

(९)

कान्त-कामनाओं का कानन,
साहस-शौर्य-सदन जयमाल।
तू उत्साह-शक्ति-बल-निधि है,
दुःख-निराशाओं का काल॥

(१०)

जो साहित्य-सुधा का सन्तत—
सिन्धु बहाती सदा सहर्ष।
प्यारी मेरी सरस्वती वह,
अजर-अमर हो हे नव वर्ष!॥

—प्रतापनारायण

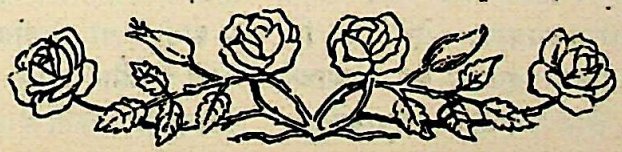

राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श और उसकी मूलनीति

[जनतन्त्र-राष्ट्र-सम्बन्धी दो पृथक् शासन-प्रणालियों का उल्लेख करके राष्ट्र-सङ्घ की रचना एवं तत्सम्बन्धी विशेषताओं का विद्वान् लेखक ने अपने इस लेख में विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसके बाद उन्होंने भारत की आधुनिक दशा को दृष्टि में रखकर यह लिखा है कि राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श भारत के लिए कहाँ तक उपयोगी है। अन्त में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि प्रान्तों और देशी राज्यों को जब तक स्वायत्त शासन नहीं प्राप्त होगा तब तक भारत में राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना हितकर न होगी।]

अँगरेज़ सरकार ने गोलमेज़-सभा की बैठक में यह स्वीकार कर लिया है कि समग्र भारतवर्ष के शासन-यन्त्र का संस्कार राष्ट्र-सङ्घ के आदर्श को सामने रखते हुए किया जायगा। राष्ट्र-सङ्घ क्या है, इसकी मूलनीति क्या है और भारतवर्ष की आधुनिक दशा की दृष्टि से राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श कहाँ तक उसकी कठिन शासन-समस्या के समाधान करने में समर्थ है—इन बातों का जनसाधारण को स्पष्ट ज्ञान नहीं है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि ये सब लोगों के लिए स्पष्ट हो जायँ।

जनतन्त्र-राष्ट्र के शासन का स्वरूप दो प्रकार का होता है। इनमें से राजनीति-शासन के आचार्यों ने दो भेद रक्खे हैं—एक को तो वे एकात्मक प्रणाली (यूनीटरी फ़ार्म) का शासन कहते हैं। और दूसरे को संयुक्त प्रणाली कहते हैं। जहाँ जिस राष्ट्र की शासन-व्यवस्था ऐसी हो कि सम्पूर्ण शासन-शक्ति केन्द्रीय शासन की संस्थाओं में ही प्रतिष्ठित हो और स्थानीय संस्थाओं को केन्द्रीय शासन-यन्त्र से ही अपने अधिकार प्राप्त होते हों, उस राष्ट्र को एकात्मक प्रणाली के नियमाधीन कह सकते हैं। ऐसे राष्ट्र में स्थानीय सरकार का अपने अस्तित्व के लिए भी केन्द्रीय सरकार के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार के शासन की यह विशेषता है कि राष्ट्र के केन्द्रीय और स्थानीय संस्थाओं में पूर्वनिर्दिष्ट राजनीति या विधानानुसार शासनाधिकारों का बँटवारा नहीं होता। संक्षेप से यह कहा जा सकता है कि शक्ति का एक ही मूलाधार होता है और वह केन्द्रीय सरकार होता है। शासन की सुगमता के लिए इस प्रकार के राष्ट्रों के भी छोटे-छोटे भाग किये जाते हैं जैसे कि प्रान्त, म्यूनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड इत्यादि में से प्रत्येक का अपना एक सीमाबद्ध स्वतन्त्रता का क्षेत्र या मण्डल रहता है और स्थानीय शासन का भी अधिकार रहता है। परन्तु साधारणतः यह स्थानीय शासन का क्षेत्र केन्द्रीय शासन के द्वारा ही परिवर्तित या स्थापित होता है और जो कुछ भी स्वतन्त्रता उसके अंश में होती है वह केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही सौंपी हुई होती है और उसके इच्छानुसार सङ्कुचित अथवा विस्तृत हो सकती है। संक्षेप से यह कहा जा सकता

है कि ये केन्द्रीय सरकार के ही भाग होते हैं जो केन्द्रीय सरकार से ही स्थापित होते हैं इसलिए कि वे केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि-स्वरूप कार्य करते रहें। वे केन्द्रीय सरकार के ही अधीन होते हैं। और यदि उनका कोई अलग अधिकार है तो यह समझना चाहिए कि वह केन्द्र की अनुमति या आज्ञा से ही उन्हें प्राप्त है।

योरप और एशिया के भिन्न भिन्न देशों में प्रायः इसी श्रेणी के राष्ट्र पाये जाते हैं। ग्रेटब्रिटेन में कौन्टी और नगरों को स्थानीय स्वतन्त्रता अधिक परिमाण में प्राप्त तो सही है, परन्तु यह पार्लियामेंट के नियमों से ही प्राप्त होती है। पार्लियामेंट के इच्छानुसार यह स्वतंत्रता घटाई-बढ़ाई जा सकती है—स्थानीय सरकार की बहुत सी कार्यवाही केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के ही हाथों में होती है।

योरप में फ्रांस एक ऐसा देश है जो एकात्मक शासन-प्रणाली का मुख्य उदाहरण गिना जा सकता है। फ्रांस में केन्द्रीय शासन का प्रभुत्व स्थानीय शासन के ऊपर सुदृढ़रूप से जमा हुआ है। फ्रांस की स्थानीय शासन-विधि बहुत उत्तम है और उसका प्रभाव दूसरे देशों पर भी पड़ा है।

अब देखना चाहिए कि संयुक्त शासन-प्रणाली किसे कहते हैं? जिस राष्ट्र में शासन-व्यवस्था ऐसी हो कि उसकी समग्र शासन-शक्ति केन्द्रीय और प्रान्तीय अथवा स्थानीय सरकारों में सम्पूर्णतः अलग अलग प्रथम से ही राज-विधानानुसार बाँट दी गई हो तो उसको संयुक्त शासन-प्रणाली के अधीन कह सकते हैं। ऐसी प्रणाली में प्रान्तीय शासक-सम्प्रदाय केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं होता है। प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकार का ही एक अंश-मात्र नहीं होती किन्तु उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अपने क्षेत्र में वह सम्पूर्ण स्वाधीन होती है। उसकी स्वतन्त्रता का क्षेत्र केन्द्रीय सरकार नियत नहीं करती है। किन्तु वह तो पूर्व-निर्मित नियमानुसार निर्दिष्ट हो जाता है। केन्द्रीय शासन के हाथ में कुछ भी नहीं होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि संयुक्त शासन-विधि एक विशेष प्रकार की शासन-विधि है, जिसमें स्थानीय और केन्द्रीय शासन एक सामान्य या साधारण प्रभुत्व-शक्ति के अधीन एकत्र हो—इसमें केन्द्रीय और स्थानीय शासन-संस्थायें दोनों अपनी अपनी सीमा के भीतर प्रधान होती हैं। यह विभिन्न सीमा शासन-व्यवस्था के द्वारा प्रथम से ही निर्दिष्ट हो जाती है। संयुक्त शासन एक प्रकार का द्वैध शासन है। केवल केन्द्रीय शासन का ही नहीं, किन्तु इसमें सम्पूर्ण स्वतन्त्र स्थानीय शासन का स्थान है। इसमें स्थानीय शासन का प्रादेशिक क्षेत्र केवल-मात्र शासन की सुगमता के लिए निर्मित रहता है। यह क्षेत्र ज़िले के बराबर ही नहीं होता है, किन्तु यह तो एक स्वतन्त्र राजनैतिक मण्डल होता है जो स्वयं प्रधान और एक अर्थ में स्वयं स्थापित होता है। उसकी राज्य-व्यवस्था अलग होती है— केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों में केवल संयोगसूत्र रहता है।

इस प्रकार की शासन-विधि होने से राष्ट्र एक सङ्घ का रूप ग्रहण करता है। सङ्घ समुदाय को कहते हैं। इसमें यदि राष्ट्र अर्द्ध स्वतन्त्र देशों का या प्रान्तों के सम्मेलन से बना हो तो उसे राष्ट्र-सङ्घ कहना चाहिए। परन्तु मुख्य बात तो यह है कि राष्ट्र-सङ्घ होने से ही उसकी शासन-विधि भी संयुक्त प्रणाली की होनी चाहिए—अब देखना चाहिए कि राष्ट्र-सङ्घ बनता कैसे है। राजनीति-शास्त्र के आचार्य्य कहते हैं कि यदि कई एक स्वाधीन राष्ट्र एक साधारण प्रभुत्वशक्ति के अधीन एकत्र सम्मिलित होकर एक सामान्य या साधारण केन्द्रीय शासनयन्त्र सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में प्रबन्ध करने के लिए स्थापित करते हों तो वह एक राष्ट्र-संघ बन जाता है अथवा कई एक परतन्त्र प्रान्त एक ही प्रधान की इच्छा व कार्य से स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त करते हैं तो भी वह एक राष्ट्र-सङ्घ बन जाता है। ऐसे राष्ट्र-सङ्घ के प्रत्येक प्रदेश का अपना अपना स्वाधीन अधिकार रहता है। ये अधिकार उनमें

व्यापक रूप से रहते हैं, ये अलग नहीं किये जा सकते। राष्ट्र-सङ्घ के भिन्न भिन्न अंश शासन-कार्य की सुगमता के लिए ही निर्मित स्थानीय शासन-विभाग-मात्र ही नहीं होते, किन्तु इन अंशों को अपनी अपनी सीमा के भीतर सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इनमें के अधिकार प्रथम से ही निर्दिष्ट रहते हैं और ये किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहते हैं।

ऊपर लिखे हुए दोनों प्रकार के राष्ट्रसङ्घों के उदाहरण पाये जाते हैं। अमरीका के संयुक्त-राष्ट्र प्रथम प्रकार के राष्ट्र-सङ्घ का उदाहरण हैं। १७८९ ईसवी में १३ राष्ट्रों ने जो पहले पूर्णतया स्वाधीन थे, एकत्र मिलकर अपना एक केन्द्रीय शासन-विधान बनाया और इस तरह उनका एक राष्ट्रसङ्घ बन गया। ब्रेजिल, अँगरेज़ी उत्तरी अमरीका, मेक्सिको, आर्जेन्टाइन और वेनेज़ुला आदि द्वितीय प्रकार के राष्ट्र-सङ्घ के उदाहरण हैं। स्विट्ज़लैंड और जर्मनी भी एक पृथक् प्रकार के राष्ट्र-संघ के उदाहरण हैं।

राजनीतिज्ञ प्रोफ़ेसर डाइसी के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ बनने के लिए दो शर्तों का मौजूद होना अत्यन्त आवश्यक है। इनके बिना तो राष्ट्र-सङ्घ बन ही नहीं सकता। प्रथम शर्त यह है कि कई एक प्रदेश विद्यमान होने चाहिए जैसे कि स्विट्ज़लैंड के 'कैन्टन' या अमरीका के 'उपनिवेश' या कनैडा के 'प्रान्त' हैं, जिनमें बहुत ही घनिष्ठ ऐतिहासिक या भौगोलिक और जातीय सम्बन्ध हो—यह सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ होना चाहिए कि उनके अधिवासियों की दृष्टि में वे एक साधारण राष्ट्रीयता की छाप के प्रतीत होते हों। दूसरी बात यह है कि उनके अधिवासियों में एक बड़े विचित्र भाव का होना आवश्यक है। उनमें सङ्घीभूत होने की इच्छा तो होना ही चाहिए, परन्तु अपने अपने पृथक् अस्तित्व को मेट कर सम्पूर्ण एकता की इच्छा न होनी चाहिए—उनमें मिल जाना और अलग रहना, पार्थक्य और ऐक्य इन दोनों विरुद्ध बातों के एकत्र करने की शक्ति होनी चाहिए। राष्ट्रीय एकता और प्रान्तीय विभिन्नता में विरोध मिटाने का सामर्थ्य होना चाहिए। शक्ति के बँटवारे से हानि और राष्ट्रीय एकता से लाभ—इन दोनों बातों में अनुकूलता स्थापित करने की चेष्टा होनी चाहिए।

राष्ट्र-सङ्घ की मुख्य विशेषतायें डाइसी साहब के मतानुसार तीन हैं—प्रथम तो एक राज्य-व्यवस्था का होना जो सम्पूर्ण सङ्घ और उसके अंशों के पारस्परिक सम्बन्ध को नियत करती हो और उनका अपना अपना क्षेत्र निर्दिष्ट करती हो, अत्यन्त आवश्यक है। केन्द्रीय राज्य-व्यवस्था प्रान्तीय राज्य-व्यवस्था से श्रेष्ठ होती है। नहीं तो सङ्घ की रक्षा असम्भव हो जायगी। डाइसी के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ का आधार एक बहुत ही पेचीदा राज़ीनामा, संधिपत्र या शर्तनामा है और इसका शासन-प्रबन्ध केवल राजनैतिक समझौते के ही ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता है। इसके लिए एक लिखित राज्य-सम्बन्धी नियमपत्र होना चाहिए। और केवल यही यथेष्ट नहीं है। यह नियमपत्र ऐसा सुदृढ़ और अपरिवर्तनीय होना चाहिए कि न तो केन्द्रीय सरकार और न स्थानीय सरकार ही इसको शीघ्र बदल सके।

यह भी आवश्यक है कि एक ऐसी न्याय-सभा हो जो सङ्घ के राज्य-नियमावलियों का तात्त्विक अर्थ निर्णय कर सके—जो केन्द्रीय और स्थानीय सरकार की अपनी अपनी सीमा का निर्देश कर सके—और इनमें से किसी एक की दूसरे का अधिकार दबा बैठने की प्रचेष्टा को दमन कर सके। इस न्याय-सभा के हाथ में भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शासन के आपस के झगड़ों का निपटारा एवं उनमें और केन्द्रीय शासन में राज्य-नियम-सम्बन्धी वाद-विवाद का अन्तिम निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। उदाहरण स्वरूप अमरीका के संयुक्त राज्यों के सुप्रीम कोर्ट को लीजिए। अमरीका की यह सर्वोच्च न्याय-सभा केन्द्रीय व्यवस्थापकसभा अथवा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा के बनाये हुए नियमों को रद कर सकती है। बात यह है कि राष्ट्र-सङ्घ में कोई भी ऐसी संस्था नहीं

जिसकी प्रभुत्व-शक्ति अखण्डित हो। सबकी शक्ति सीमा-बद्ध है। यह सीमा राष्ट्रीय नियमपत्र के द्वारा ही निर्दिष्ट होती है। परन्तु यदि शासन का कोई भी अंग अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे तो उसको रोकनेवाला कौन है? यदि क़ानून बनानेवाली सभा ऐसा क़ानून बनावे जो स्पष्टतः नियम-विरुद्ध हो तो उसे कौन रद कर सकता है? इसका उत्तर यही है कि न्याय-सभाओं को यह अधिकार होना चाहिए। उनको ऐसा अधिकार दे देना चाहिए कि उन्हें नियम-विरुद्ध क़ानून को कदापि मुक़द्दमे में न प्रयोग करना पड़े। इँग्लेंड आदि देशों में जहाँ स्थानीय और केन्द्रीय शासन के अधिकारों में कोई भी बँटवारा नहीं है, ऐसी न्यायसभा का प्रयोजन नहीं है। वहाँ तो कोई भी क़ानून जो व्यवस्थापक सभा में बनाया जाता है, तुरन्त ही न्यायालयों में मान लिया जाता है। इस नीति को 'व्यवस्थापकसभा की प्रधानता' कहते हैं और दूसरी नीति को 'न्यायसभा की प्रधानता' कहते हैं।

तीसरी विशेषता राष्ट्र-सङ्घ का शक्ति-विभाग है। राष्ट्र-सङ्घ के बनाने के उद्देश में राष्ट्रीय सरकार और प्रादेशिक सरकारों में शासनाधिकारों का विभाग अन्तर्निहित रहता है। केन्द्र को जितने अधिकार समर्पित रहते हैं वे प्रान्तीय शासन के अधिकारों को सीमाबद्ध कर देते हैं। अमरीका के संयुक्त-राज्यों के शासन-विषयक नियमपत्र को देखिए—कुछ विशेष सुस्पष्ट और सुनिर्दिष्ट अधिकार सङ्घ के कार्यकर्त्ता या प्रधान, व्यवस्थापक-सभा और न्याय-सभा को सौंप दिये गये हैं और अवशिष्ट अधिकार जो राज्यव्यवस्था के द्वारा सङ्घ को नहीं सौंपे गये हैं या जो प्रान्तों के लिए उस व्यवस्था के अनुसार निषिद्ध न हों, भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लिए सुरक्षित रहते हैं।

इस सम्बन्ध में यहाँ दो-एक विषयों का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथम तो यह है कि राष्ट्र-सङ्घ के भिन्न प्रान्तों को राष्ट्र के नाम से वर्णन करना राजनीति-शास्त्र की दृष्टि से समुचित न होगा। क्योंकि ये भिन्न भिन्न प्रान्त सम्पूर्ण स्वाधीन तो नहीं होते हैं। इन प्रान्तों में प्रभुत्व-शक्ति नहीं होती है और न यह शक्ति केन्द्रीय संस्था में ही होती है। यह प्रभुत्व-शक्ति केन्द्र और प्रान्त से भिन्न समस्त जनता में ही होती है। परन्तु जनता तो प्रभुत्व-शक्ति को सदैव प्रयोग नहीं कर सकती। इसलिए यह प्रभुत्व-शक्ति एक ऐसी संस्था में प्रतिष्ठित रहती है जो सङ्घ की राज्य-व्यवस्था को परिवर्तित कर सके। सब राष्ट्र-संघों में कोई न कोई ऐसी संस्था होती है जो शासन-व्यवस्था में परिवर्तन कर सकती है।

राष्ट्र-सङ्घ में एक ही प्रभुत्व-शक्ति होती है। अतएव वह वास्तव में एक ही जातीय राष्ट्र होता है। राष्ट्र-सङ्घ में एकात्मक शासन की नीति का भी अवलम्बन होता है, क्योंकि केन्द्रीय शासन की शक्ति सम्पूर्ण जनता के ऊपर बिना किसी मध्यवर्त्ती के सीधा प्रयुक्त होती है। संयुक्त शासन की नीति तो सिर्फ़ यहीं तक है कि केन्द्र और प्रान्त में शक्ति का बँटवारा हो जाता है। वास्तव में सङ्घ के किसी भी अंश के केन्द्र से अलग होने का अधिकार नहीं होता है। इसलिए राष्ट्र-सङ्घ तो एक भ्रामक शब्द है। परन्तु और कोई भी उपयुक्त शब्द न रहने के कारण इसी शब्द का व्यवहार किया जाता है।

शासन के अधिकार जिस मूलनीति के अनुसार स्थानीय और केन्द्रीय शासनों में विभक्त किये जाते हैं यह है कि वे बातें जो सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखती हैं और जिनमें क़ानून के ऐक्य की आवश्यकता होती हो वे केन्द्रीय सरकार को सौंप दी जाती हैं। और शेष विषयों पर स्थानीय सरकार का पूरा अधिकार रहता है। अनेक राष्ट्रों में परराष्ट्र के साथ सम्बन्ध, सन्धि-विग्रह, अन्तर्प्रान्तीय वाणिज्य, सिक्का या मुद्रा-सम्बन्धी बातें, नवीन आविष्कार और नवीन ग्रन्थों के सर्वसत्वसंरक्षण करने का अधिकार, केन्द्रीय शासन के अधीन रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर राष्ट्र-सङ्घ के अंशों का कोई भी अधिकार नहीं रहता है।

शक्ति का विभाग करने में दो मार्गों का अनुसरण किया जाता है। अधिकतर राष्ट्र-सङ्घ में केन्द्रीय शासन को जितने अधिकार समर्पित रहते हैं उनका शासन-विषयक नियम-पत्र में विशेष रूप से वर्णन रहता है। अवशिष्ट अधिकार स्थानीय सरकार को प्राप्त रहते हैं। अर्थात् केन्द्रीय सरकार के पास अधिकार सौंपे हुए (delegated) होते हैं और प्रान्तीय सरकार के पास अवशिष्ट या रेज़ीडुअरी अधिकार होते हैं। केन्द्रीय शासन की अधिकार-सीमा विधान-पूर्वक (positively) निर्दिष्ट रहती है और प्रान्तीय शासन की मर्यादा निषेध-पूर्वक (negatively) निर्दिष्ट होती है। एक दूसरे प्रकार से भी अधिकारों का विभाग किया जा सकता है। कुछ राष्ट्र-सङ्घ ऐसे हैं जिनमें प्रान्तीय सरकारों को कुछ निर्दिष्ट अधिकार सौंप दिये जाते हैं और केन्द्रीय सरकार के पास निर्दिष्ट और अनिर्दिष्ट दोनों (delegated and reserved) तरह के अधिकार रह जाते हैं। इसका उदाहरण कनाडा है।

भारतवर्ष की दशा को सामने रखते हुए राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श कहाँ तक उपयोगी है, इस पर यहाँ थोड़ा विचार करना व्यर्थ नहीं होगा।

प्रथम तो यह बात स्पष्ट है कि डाइसी के मतानुसार दोनों शर्तें यहाँ मौजूद हैं। भारतवर्ष में कई एक प्रान्त हैं। इनमें ऐतिहासिक, जातीय या भौगोलिक संयोग भी है। भारत के अधिवासी इस संयोग के कारण राष्ट्रीयता के भाव से अनुप्राणित हैं। द्वितीयतः मेरी सम्मति में तो भिन्न भिन्न प्रान्त अपना अपना पृथक् अस्तित्व एक महान् राष्ट में सम्पूर्ण लय करने के लिए तैयार नहीं है। बंगाल या मदरास को ही लीजिए। इनमें प्रान्तीयता का भाव इतना प्रबल है कि एकात्मक नियमानुवर्त्ती राष्ट्र का बनना यहाँ सम्भव न होगा। भारत का प्राचीन इतिहास भी इस बात का साक्षी है। महापराक्रमी वीर राजाओं के अधीन समग्र ससागरा भारतभूमि कई बार रह ही चुकी है। अशोक, समुद्रगुप्त, राजा हर्ष, मिहिरभोज-राज चक्रवर्ती थे। परन्तु ये चक्रवर्ती ही थे। अर्थात् एक राजाओं का चक्र या मंडल होता था। इस मंडल के केन्द्राधिपति को राजचक्रवर्त्ती कहते थे। सामन्त राजाओं का एक बड़ा मंडल होता था। मंडलस्वामी सम्राट् होता था। सामन्त राजाओं को अपने अपने क्षेत्र में प्रायः पूर्ण अधिकार प्राप्त रहते थे। इस प्रकार के शासन में राष्ट्र-सङ्घ की मूलनीति सर्वथा विद्यमान थी। मौर्यों के समय, शुङ्गों के समय, तदनन्तर गुप्तों के समय, तत्पश्चात् मध्यकालीन भारत में यह राजनीति अनुसृत होती रही है। ऐसी दशा में यदि भारत में आधुनिक समय में इस आदर्श का पुनरुत्थान हो तो यह बात भारतीय इतिहास की धारा के प्रतिकूल न होगी।

अब यह विचारणीय है कि गोलमेज़सभा की बैठक में बड़े बड़े तीक्ष्णबुद्धि विचक्षण राजनीतिविशारदों ने जो प्रस्ताव किया है वह राष्ट्र-सङ्घ के आदर्श को कहाँ तक सिद्ध करता है।

इसमें दो बातों को सम्पूर्ण अलग अलग रखकर विचार करने की आवश्यकता है। एक मन्त्रियों का प्रादेशिक व केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं को उत्तरदायित्व और दूसरी बात संयुक्तराष्ट्र का आदर्श है। मन्त्रियों का उत्तरदायित्व और राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श दोनों बातों का एकत्र रहना सब समय में आवश्यक नहीं है। २६ जनवरी सन् १९३१ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में गोलमेज़सभा की बैठक के कार्य्य के सम्बन्ध में एक वादविवाद हुआ था। श्रीयुत मैकडानल्ड महोदय ने उस समय जो वक्तृता की थी वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। प्रधान मन्त्री महोदय के अनुसार सबसे कठिन प्रश्न—सबसे उलझन में डालनेवाला प्रश्न यही था कि केन्द्रीय शासन-यन्त्र में मन्त्रियों का

उत्तरदायित्व किस प्रकार स्थापित किया जाय। इस कठिन प्रश्न के हल होने के लिए देशी रियासतों का अँगरेज़ी प्रान्तों के साथ एकत्र मिल जाना आवश्यक है। बात यह है कि अँगरेज़-सरकार केवल अँगरेज़ी प्रान्तों को ही सङ्घ बनाने और साथ साथ केन्द्र में स्वायत्त शासन देने के लिए तैयार न थी। और देशी रियासतें अँगरेज़ी प्रान्तों के साथ एक सङ्घ में मिल जानें के लिए तैयार न थीं जब तक कि केन्द्रीय स्वायत्त शासन न दे दिया जाय। दोनों पक्षों का इसमें गूढ़ उद्देश था।

भारत-मन्त्री सर सेमुयेल होर ने भी हाल में हाऊस आफ़ कामन्स में व्याख्यान करते हुए कहा है कि यदि सङ्घ ही बनाना आवश्यक प्रतीत हो तो वह सर्वभारतीय राष्ट्रसङ्घ होगा, अँगरेज़ी भारत का सङ्घ न होगा।

परन्तु सर्वभारतीय सङ्घ के बनने से भारतीय स्वाधीनता की आशा और भी क्षीण हो जायगी। यह भूल न जाना चाहिए कि प्रधान मन्त्री ने २६ जनवरी १९३१ को उपर्युक्त व्याख्यान में युद्ध के पहले की जर्मनी की राज्यव्यवस्था की ओर संकेत किया था। युद्ध का प्राक्कालीन जर्मन-राष्ट्र-सङ्घ बहुत ही अपूर्ण, अधूरा और दूषित था। राष्ट्र-सङ्घ में जनता के अधिकार, स्वाधीनता इत्यादि सुरक्षित नहीं थे। इसका कारण यही था कि जर्मन-राष्ट्र-संघ के विभिन्न अंशों को पूर्ण स्वायत्त शासन नहीं प्राप्त था। उनके शासकों में स्वच्छन्दता, अन्याय और अत्याचार का अभाव नहीं था। इन्हीं शासकों को केन्द्र में भी बहुत कुछ अधिकार दे दिये गये थे। इसका विषमय फल यह हुआ कि केन्द्रीय शासन में प्रान्तीय अत्याचार और अन्याय की झलक दीखने लगीं। क्या यह कहने की आवश्यकता है कि देशीय रियासतों को भारतीय सङ्घ में मिलाने से स्वाधीन राष्ट्र सङ्घ का आदर्श तो सिद्ध होगा नहीं, उलटा जो कुछ अधिकार अँगरेज़ी भारत के केन्द्रीय शासन में अभी भारतीयों को प्राप्त है उसमें भी न्यूनता और खर्वता आ जायगी। या तो देशी रियासतों को स्वायत्त शासन देना चाहिए और नहीं तो राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श ही छोड़ देना चाहिए।

प्रान्तों और रियासतों को सम्पूर्ण स्वायत्त शासन न देकर सर्वभारतीय राष्ट्रसङ्घ के आदर्श को सिद्ध करने की चेष्टा करना भारतीय स्वाधीनता के मूल पर कुठाराघात करना है।

—श्री गौरीशङ्कर चटर्जी

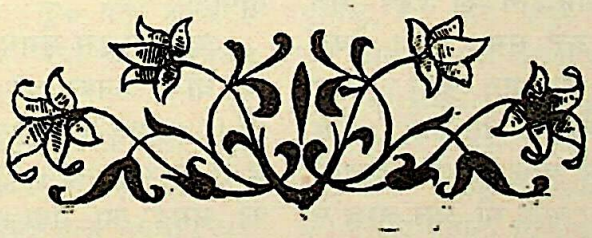

रक्षा

सेठ शादीलाल अपने दफ़्तर में बैठे हुए किसी गम्भीर चिन्ता में मग्न थे। उन्हें अपनी सुधि न थी। सहसा उठ कर उन्होंने टेलीफ़ोन उठा लिया। एक क्षण पश्चात् उन्होंने कहा—कौन? विहारीमल··· क्या तुम मेरे दफ़्तर तक आ सकते हो?·····अच्छा अच्छा छः बजे ही सही।

वे रिसीवर को मेज़ पर रख कर अपनी कुर्सी पर आ बैठे। फिर वही विचार-धारा, वही उथल-पुथल, वही भविष्य की उन्मत्त कल्पनायें! चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार! आशा-मरीचिका की झलक ही न थी!

उन्हें यह भी ज्ञात न हुआ कि विहारीमल आये हैं और उनके पास खड़े हैं। वे आनेवाली घटनाओं की चिन्ता में थे। उनके सम्मुख मकान और सारी सम्पत्ति के बिकने और नीलाम होने का दृश्य नाच रहा था। बैंक कब तक उन्हें समय देगा। केवल कल प्रातःकाल तक और तत्पश्चात् कुर्की। चार लाख कहाँ से आवें जो बैंक को दिये जायँ? और फिर इसके अतिरिक्त और भी बोझ तो था। दलालों का और अन्य कम्पनियों का ऋण भी चार लाख से कम न था। परन्तु यह कुछ समय के लिए टाला भी जा सकता था। यदि बैंक को कल चार लाख दे दिया जाय तो सम्भव है कि उनका सर्वनाश न हो।

विहारीमल स्वयम् यह सब जानते थे। इसी कारण वे शादीलाल से मिलना न चाहते थे परन्तु अभाग्यवश टेलीफ़ोन पर वे आज पकड़ ही लिये गये। मरता क्या न करता। अपनी मूर्खता पर खीजते हुए वे छः बजे शादीलाल के दफ़्तर में आ उपस्थित हुए, परन्तु अपने मित्र को विचित्र दशा में पाकर वे कुछ क्षण तक उसी की ओर देखते रहे। उनके मुख की मलीनता और उदासीनता को देखकर विहारीमल के हृदय में एक चोट-सी लगी। उन्हें वे दिन स्मरण हो आये जब पाँच वर्ष पूर्व उनकी भी वही दशा थी जो आज शादीलाल की थी। वे उन्हीं के पास सहायता के लिए गये थे और उस दयालु मित्र ने बिना सङ्कोच के उनके हाथ में तीन लाख का चेक रख दिया था। उनके धन्यवाद के बदले में शादीलाल ने कहा था—विहारी, मित्र वही है जो आड़े समय काम आये। यदि मेरी समस्त सम्पत्ति तुम्हारे काम आ जाय तो मुझे विशेष हर्ष होगा।

यह बात इस समय बिहारी के कानों में गूँज रही थी। उनका वह सौहार्द उन्हें उद्विग्न कर रहा था। उनकी वह मृदु मुस्कान, उनके हृदय को जर्जर कर रही थी। उस अपार ऋण के परिशोध का समय आ गया था, परन्तु वे मित्रता के उच्च आदर्श से बहुत नीचे थे। वे डूबते हुए को सहारा देना मूर्खता समझते थे, अपने लाभ और हित की चिन्ता छोड़ कर दूसरों की सहायता करना

उन्होंने न सीखा था। उनके लिए परस्वार्थ अयोग्य मनुष्यों को आलसी बनाने का मार्ग था।

कुछ क्षण ऐसे ही विचारों में मग्न रहने के पश्चात् विहारीमल ने कहा—शादीलाल।

शादीलाल चौंक कर उठ खड़े हुए, अपने मित्र को देख उनके मुख पर आशा की क्षीण रेखा दौड़ आई। उनका मलीन मुख प्रफुल्लता से दमक उठा। परन्तु इसका प्रभाव विहारी पर विपरीत ही पड़ा। वे जानते थे कि शादीलाल को उनसे बड़ी आशायें हैं, और वे सारी आशायें शीघ्र ही निराशा-कन्दरा में पतित हो जायँगी। उनकी एक नहीं से शादीलाल के विशाल काल्पनिक राजप्रासाद वायु में विलीन हो जायँगे।

शादीलाल ने उनसे अपनी समस्त कठिनाइयाँ कह सुनाईं और अन्त में कहा—विहारी, यदि इस समय तुम मुझे चार लाख दे सको तो मैं सर्वनाश से बच जाऊँ।

विहारी ने उत्तर दिया—प्रिय शादीलाल, मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं इस कठिन समय में तुम्हारे काम आऊँ। परन्तु क्या करूँ? विवश हूँ। मेरे पास इतना रुपया कहाँ? तुम तो स्वयम् ही जानते हो।

शादीलाल चुप थे। वे टकटकी लगाये खिड़की की ओर देख रहे थे। उनकी इस भयङ्कर निस्तब्धता ने बिहारी को विह्वल कर दिया। वे पुनः बोले—इस समय तो मेरे पास पचास हज़ार भी नहीं, लाख दो लाख की कौन कहे। मुझे बड़ा शोक है कि मैं तुम्हारे काम न आया। क्या करूँ मैं स्वयम् ऋण के बोझ से दबा हुआ हूँ।

बिहारीलाल को आशा थी कि उनका मित्र उनसे विनती करेगा, उनसे सहायता के लिए गिड़गिड़ायेगा। परन्तु यह कुछ भी न हुआ। शादीलाल चुपचाप खड़े दीवार में अपना भविष्य देखने का प्रयत्न कर रहे थे।

बिहारी को बड़ी आत्मग्लानि हुई। वे जितना शादीलाल की इस निस्तब्धता से लज्जित हो रहे थे, उतना कदाचित् उनके कटुवचनों से न होते। एक क्षण के लिए उनका हृदय पसीज उठा। परन्तु शीघ्र ही किसी ने अज्ञात भाषा में कहा—देख ऐसी भूल मत करना। तू शक्कर का ठेका ले रहा है। यदि कहीं किंचित् मात्र भी असावधानी से कार्य किया तो तेरी भी यही दशा होगी। इसके और भी मित्र तो हैं। लाला बुद्धीमल, सेठ घनश्यामदास, बाबू बाँकेलाल, सभी लाखों के असामी हैं। चार लाख देना उनके लिए कितनी बात है? फिर उन्हीं से क्यों नहीं माँगते।

शादीलाल पहली बार हँसे। भयानक हँसी थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे पागल हो गये हैं। विहारीमल भयभीत हो उठे। उन्होंने अपनी घड़ी निकाल कर देखा और तब कहा—मुझे बड़ी देर हो रही है, मैं अब जाता हूँ। तुम घबराओ नहीं। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

द्वार के निकट पहुँच कर उन्होंने देखा कि शादीलाल अपने स्थान ही पर खड़े हैं। उन्होंने उनकी ओर दृष्टि उठा कर देखा भी न था। उन्हें कदाचित् इसका ज्ञान भी न था कि विहारीमल अब कमरे में नहीं हैं।

× × × ×

कुछ समय पश्चात् शादीलाल चौंक कर इधर-उधर देखने लगे। उन्हें पहली बार ज्ञात हुआ कि वे अकेले हैं। एक बार हँसकर उन्होंने कहा—कैसी दुनिया है? जब इसी ने कोरा जवाब दे दिया तब औरों से क्या आशा की जाय?

इसी समय शादीलाल के सेक्रेटरी ने कमरे में प्रवेश किया। इस युवक पर शादीलाल का अगाध स्नेह था। वे उसकी तत्परता और सत्यता पर मुग्ध थे। उसको अपना साझीदार बनाने की उनकी हार्दिक इच्छा थी। परन्तु उनकी यह अभिलाषा हृदय ही में रह गई। फिर भी उन्होंने उसके हृदय में स्वावलम्ब का अङ्कुर उगा दिया था। करुणाशंकर बहुधा स्वतंत्र रूप से व्यापार करता और लाभ उठाता,

परन्तु अधिकतर वह शादीलाल के ही परामर्शानुसार कार्य करता था।

इधर कई दिनों से शादीलाल करुणाशंकर से सेठ घनश्यामदास के पास जाने के लिए आग्रह कर रहे थे। घनश्यामदास को एक सेक्रेटरी की आवश्यकता थी और उनकी दृष्टि करुणाशंकर ही पर लगी थी। वे भी उसके गुणों पर मुग्ध थे। वे जानते थे कि शीघ्र ही शादीलाल का दिवाला होनेवाला है और तत्पश्चात् करुणाशंकर अवश्य ही उनके यहाँ आना स्वीकार करेगा। और शादीलाल भी अपना सर्वनाश होने के पूर्व उसे किसी अच्छी जगह पर लगा देना चाहते थे।

करुणाशंकर आकर चुपचाप शादीलाल के सामने खड़ा हो गया। उन्होंने उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए पूछा—क्या है?

करुणा ने उनके सम्मुख बहुत से काग़ज़ हस्ताक्षर करने को रख दिये। शादीलाल ने हस्ताक्षर करने के पश्चात् सिर उठाया। करुणाशंकर टकटकी लगाये उन्हीं की ओर देख रहा था।

शादीलाल ने कहा—करुणा! तुम तो आज सेठ घनश्यामदास के यहाँ निमन्त्रित हो। क्या जाओगे नहीं?

करुणा ने कुछ सोच कर उत्तर दिया—जाऊँगा क्यों नहीं? किन्तु.....

शादीलाल—नहीं जाओ, सङ्कोच की बात नहीं है।

करुणा—क्या आप न चलेंगे?

शादीलाल—नहीं। मुझे अन्य आवश्यकीय कार्य हैं।

करुणा—बिहारीमलजी.....

शादीलाल—कुछ नहीं। ऐसे ही आये थे। जाओ। मैं भी शीघ्र ही जाता हूँ।

करुणा ने सन्देह-मिश्रित दृष्टि से उनकी ओर देखा और फिर धीरे धीरे बाहर चला गया।

उसके जाने के पश्चात् शादीलाल अपनी कुर्सी पर बैठकर फिर कुछ सोचने लगे। उनके हृदय में आये हुए भाव अब मुख के बाहर आने लगे। वे धीरे धीरे कहने लगे—करुणाशंकर, कैसा उच्च कोटि का मनुष्य है? परन्तु क्या इसमें भी स्वार्थपरता का चिह्न नहीं है? क्या घनश्यामदास के यहाँ जाने का स्मरण करते ही उसके मुख पर मन्द मुस्कान की रेखा नहीं दौड़ गई थी? उसने यह भी न विचार किया कि इससे मेरे हृदय पर आघात पहुँचेगा। तो भी यह उन मित्रों से अच्छा है जो बनावटी सहानुभूति की ओट में मेरी अवनति और सर्वनाश पर हँसते हैं। वे कल मेरी मृत्यु का समाचार पाकर गहरी साँस लेकर कहेंगे, शादीलाल को देखो कैसी मूर्खता का काम किया और फिर मुझे विस्मृति के अथाह गह्वर में खो देंगे, कुछ मेरे शव के साथ घाट तक जायँगे और तत्पश्चात् अपने कार्य में लग कर मेरा नाम भी न लेंगे। वाह रे संसार! धन्य है तेरी माया!

कमरे में अन्धकार फैलने लगा। शादीलाल ने उठकर अपना दुपट्टा गले में डाला और छड़ी ले दफ़्तर के बाहर निकले। चौखट के बाहर पैर रखते ही हृदय ने कहा—आज अन्तिम बार इसे देख लो।

बाहर उनका शोफ़र मोटर लिये खड़ा था। नियमित समय बीतते देखकर बेचारा मोटर में ही बैठ कर ऊँघने लगा था। शादीलाल मोटर के निकट जाकर खड़े हो गये। उन्होंने निराशा-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—कल यह मोटर किसी और की होगी।

उन्होंने शोफ़र को पुकारा। वह घबराकर उठ बैठा। शादीलाल ने मुस्कराते हुए कहा—जीवन, आज मैं मोटर पर न जाऊँगा।

जीवन ने आश्चर्य-पूर्वक उनकी ओर देखा। उसके नेत्र स्पष्ट कह रहे थे आज क्या बात है।

शादीलाल ने कहा—आज मैं पैदल ही जाऊँगा।

जीवन—हुज़ूर, जहाँ कहें मैं मोटर हाज़िर करूँ।

शादीलाल—नहीं, आज मुझे मोटर न चाहिए। अच्छा जीवन तुम बहुत दिनों से छुट्टी छुट्टी कह रहे थे। जाओ आज और कल तुम्हें छुट्टी है और लो यह रुपया लेकर छुट्टी में आनन्द मनाओ।

इतना कहकर दस रुपये का एक नोट उन्होंने जीवन के हाथ में दे दिया। जीवन की बाछें खिल गईं। उसने झुक कर सलाम किया और मोटर लेकर चल दिया।

शादीलाल ने उसके जाने के पश्चात् कहा—दस रुपये में कितना सुख? उसे क्या पता है कि उसका स्वामी कल इस संसार में न होगा।

इतना कहकर वे एक ओर को चल दिये। वे भीड़ को काटते हुए चले जा रहे थे। उन्हें अपने तन की सुधि न थी। वे सड़क की दूसरी ओर जाने की इच्छा से मुड़े। पुलिसवाले ने हाथ उठाया। परन्तु उनके नेत्र कुछ देख न रहे थे। एक मोटर सन से उनके पास से निकल गई। बाल-बाल बच गये। पुलिसवाले ने डाँट कर कहा—"देखते नहीं हो?

परन्तु वहाँ सुनता कौन था?

शादीलाल सोच रहे थे कल की। उनके स्त्री और पुत्र को क्या दशा होगी? टुकड़े-टुकड़े को तरसेंगे। परन्तु इससे क्या? वह मुझसे सीधे मुँह बोलती तक नहीं है। उसे मेरी चिन्ता ही क्या? उसे तो अपने काम से काम। और सत्य तो यह है कि वही कब उससे प्रेम-पूर्वक बोलते हैं। झिड़की के सिवा बात ही नहीं।

और लड़का? उँह! जो भी हो, शादीलाल तो कलङ्क के टीके से बच जायगा। उसे तो पुलिस के आगे न खड़ा होना पड़ेगा। वह तो अपनी सारी सम्पत्ति नीलाम होते न देखेगा। वह अनन्त की नींद में मस्त होगा।

धीरे-धीरे वे तङ्ग गलियों और गन्दी सड़कों से होकर आगे बढ़ने लगे। अब वे ऐसे स्थान में थे, जहाँ दरिद्र मनुष्य ही रहते थे। चाँदनी-चौक की विशाल अट्टालिकायें अदृश्य हो गई थीं। उनके स्थान में छोटे-छोटे मकान दीख पड़ते थे। बढ़ते बढ़ते वे एक छोटी सी दूकान के दरवाज़े पर जाकर खड़े हो गये। यह दूकान थी डाक्टर की।

शादीलाल निःसङ्कोच-भाव से भीतर चले गये। कुर्सी पर एक मनुष्य जीर्ण वस्त्र पहने बैठा था। उसकी घनी दाढ़ी, लम्बा मुख और धँसी हुई आँखें सब उसकी दरिद्र अवस्था का परिचय दे रहे थे। चारों ओर टूटा-फूटा सामान पड़ा था। तीन टाँग की कुर्सियाँ कोनों में रक्खी थीं। वहाँ रक्खी हुई वस्तुओं पर पड़ी हुई धूल से प्रकट होता था उनका बहुत ही कम प्रयोग होता है।

शादीलाल को आया देख कर वह मनुष्य घबरा-कर उठ खड़ा हुआ। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में पूछा—आपने कैसे कष्ट किया?

शादीलाल ने कहा—जुगुलकिशोर! मैं तुम्हारे पास मर्फ़िया लेने आया हूँ। उनके स्वर में किञ्चित्-मात्र भी कम्पन न था।

डाक्टर ने चकित होकर पूछा—मर्फ़िया!

शादीलाल ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—हाँ हाँ मर्फ़िया। क्या शराब के कारण कुछ कम सुनने लगे हो?

डाक्टर ने नम्र स्वर में कहा—नहीं सो बात नहीं है।

शादीलाल—फिर क्या बात है? दोगे या नहीं?

डाक्टर—दूँगा क्यों नहीं? सब आपही का दिया तो है। फिर आप से कैसे इनकार कर सकता हूँ?

इतना कहकर वह कुछ सोचने लगा।

शादीलाल ने कहा—अच्छा तो लाओ।

डाक्टर—आप क्या करेंगे? उसका स्वर करुण था। उसके नेत्रों में अश्रु के चिह्न थे।

शादीलाल ने कठोर स्वर से कहा—कुछ भी करूँगा। मुझे बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया चाहिए।

युगुलकिशोर उनकी ओर देखने लगा। उसके नेत्रों में भय था।

शादीलाल ने फिर कहा—सुनते हो या नहीं। मुझे बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया चाहिए। जल्दी करो।

बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया—डाक्टर ने कहा।

शादीलाल ने उत्तेजित होकर कहा—हाँ हाँ। उठो, मेरे पास अधिक समय नहीं।

डाक्टर उठकर भीतर चला गया। उसने मर्फ़िया निकालकर लपेटते हुए कहा—बीस चूहों को मारने के लिए!

उसका हाथ काँप रहा था और उसके ओंठ बार बार यही कह रहे थे, बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया!

वह पुनः बाहर आया और काँपते हुए हाथों से उसने मर्फ़िया की पुड़िया सेठजी को दे दी।

शादीलाल मर्फ़िया लेकर दूकान के बाहर आये। गलियों में घूमते हुए उन्होंने मन ही मन कहना आरम्भ किया—बेचारा किस कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रहा था। उसे भय था कि कहीं मैं आत्महत्या तो करने नहीं जा रहा हूँ। क्या करे। उसको मेरे सिवा और कोई आश्रय देनेवाला नहीं। मदिरा ने उसे कहीं का न रक्खा। शैशव-काल का एक यही साथी है जिसके हृदय में मेरा प्रेम है। मेरे पश्चात् यह क्या करेगा? इसकी जीविका कैसे चलेगी? यह कहते कहते उन्होंने एक गहरी साँस ली।

× × × ×

शादीलाल के आने के पश्चात् युगुलकिशोर ने दूकान बन्द कर दी और बाज़ार की ओर चला। न जाने क्यों वह आज उद्विग्न-सा दीख पड़ता था। रह रह कर वह अपने मन में कह उठता था मर्फ़िया और बीस चूहों को मारने भर को!

धीरे धीरे वह एक छोटे-से होटल में जा पहुँचा। यहाँ वह बहुधा आकर बैठा करता था। जिस स्थान पर वह बैठा था उसी के निकट ही चार मनुष्य और भी बैठे हुए खा-पी रहे थे। उनमें से एक ने कहा—क्यों जी हरी, फिर तुमने अपने विषय में क्या निश्चय किया है?

हरी—क्या बतलाऊँ। कहीं न कहीं तो नौकरी करनी ही पड़ेगी।

तीसरा—क्यों, तुम तो लाला शादीलाल के यहाँ हो।

हरी—हाँ, मगर एक ही आध दिन को और।

तीसरा—सो क्यों?

चौथा—अरे क्या तुमने सुना नहीं है? उनका दीवाला निकल गया। कल उनकी सारी जायदाद क़ुर्क़ होगी।

तीसरा—क्या बात हुई?

हरी—बात क्या थी? रुई का भाव अकस्मात् गिर गया, इसी से लाखों का घाटा आया। उधर शक्कर के व्यापार में घाटा हुआ।

तीसरा—कितना क़र्ज़ होगा?

हरी—लगभग आठ लाख।

तीसरा—बचत का कोई उपाय नहीं?

हरी—कोई नहीं।

युगुलकिशोर ने भी सुना। वह घबराकर उनके निकट जा खड़ा हुआ और पूछ बैठा—क्या आप भूलते तो नहीं हैं?

सभों ने उसकी ओर देखा। उसका पीतवर्ण मुख देखकर वे समझ गये कि यह अवश्य ही शादीलाल का कोई घनिष्ट सम्बन्धी है। हरी ने कहा—महाशयजी, मुझे शोक है कि मैंने आपको हार्दिक कष्ट दिया। परन्तु यह संवाद आपसे छिप ही कब तक सकता था?

युगुलकिशोर ने उसकी ओर घूमकर देखा और तत्पश्चात् तेज़ी के साथ किवाड़ खोलकर नीचे उतर गया। अब उसकी समझ में आया कि

आसा दये पुन न करिय निराश —विद्यापति

मर्फ़िया किसलिए ली गई है ? वह शीघ्रता से सड़कों से होता हुआ चाँदनी चौक की ओर चला। वह बार बार कहता—इतनी मर्फ़िया और किसलिए ली जा सकती है !

थोड़ी ही देर में वह शादीलाल की कोठी पर जा पहुँचा। वह सीधा उनकी बैठक में घुस गया। परन्तु उसका मित्र अभी लौट कर न आया था। वह बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा करने लगा। कुछ समय के पश्चात् शादीलाल का सेक्रेटरी करुणाशङ्कर आया। दोनों में न जाने क्या बातें हुईं और करुणाशङ्कर उठकर चला गया। किन्तु कुछ ही मिनटों के पश्चात् वह फिर लौट आया। उसके आने के बाद ही शादीलाल भी आ गये।

युगुलकिशोर को बैठा देख कर वे कुछ झिझके। उनका पीला मुख और पीला हो गया। परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने को सँभाला। करुणाशङ्कर की ओर देखकर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—कहो करुणा। क्या बात है ?

करुणा—आपसे कुछ पूछने आया हूँ।

शादीलाल—क्या तुम सेठ घनश्यामदास के यहाँ गये थे ?

करुणा—हाँ गया तो था।

शादीलाल—तुम मुझसे क्या पूछना चाहते हो ?

करुणा—अपने भविष्य के विषय में।

शादीलाल—घनश्याम ने तुम्हें अपना सेक्रेटरी बनाना स्वीकार किया है।

करुणा—हाँ, किन्तु.....।

शादीलाल—और तुम उसी के विषय में मेरी राय लेना चाहते हो।

करुणा—हाँ, किन्तु.....।

शादीलाल—अच्छा कहकर कुछ विचार करने लगे। उनके हृदय में एक चोट-सी लगी। वे सोच रहे थे कि करुणा कितना स्वार्थी हो गया है। उसे मेरी इस शोचनीय अवस्था पर किञ्चिन्मात्र दुख नहीं। वह अपने उज्ज्वल भविष्य की ही बात सोच रहा है। उसी के हर्ष से फूला नहीं समाता। और फिर मुझी से उस विषय पर परामर्श भी करना चाहता है। कैसी स्वार्थपरता है ?

शादीलाल की विचारधारा किवाड़ खुलने से भङ्ग हो गई। उन्होंने देखा कि उनकी स्त्री आकर एक किनारे खड़ी होगई। वह करुणा और युगुल से परदा नहीं करती थी।

करुणा की ओर देखकर उनकी स्त्री ने पूछा—कैसे आये करुणा ?

शादीलाल—इसकी नौकरी घनश्याम के यहाँ लग रही है। इसी के विषय में मुझसे राय लेने आया है।

करुणा—मैं आपकी सहायता चाहता हूँ, राय नहीं।

मेरी सहायता और अब—शादीलाल ने व्यंग्य-स्वर में कहा।

करुणा—हाँ, अभी तो आप मुझे सहायता दे सकते हैं और सत्य तो यह है कि आप ही पर मेरे भविष्य-सुख का भार है।

शादीलाल—मैं अब किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ ?

करुणा—मुझे अपना साझीदार बना कर।

शादीलाल (आश्चर्यपूर्वक)—मेरे पास तो अब कौड़ी भी नहीं है।

करुणा—कौड़ी की क्या आवश्यकता है ? रुपया मेरा होगा और राय आपकी। काम मैं करूँगा, आप केवल मार्ग दिखलाइएगा। मुझे आशा है कि मेरे उत्साह और आपके शुभ परामर्श से 'शादीलाल करुणाशङ्कर' का व्यापार दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ेगा। मेरा एक लाख शीघ्र ही दो लाख हो जायगा।

शादीलाल के नेत्र कृतज्ञता से भर आये। उन्होंने करुणा का हाथ पकड़कर कहा—भला एक दीवालिये का साझीदार बनकर क्यों अपना भी सर्वनाश करोगे।

करुणा—मेरे उत्साह को न मारिए। आपने ही मेरे हृदय में स्वतन्त्रता का भाव उत्पन्न किया है। आपने ही मुझे व्यापार में लगाया, आपने ही मेरी अल्प पूँजी को एक लाख कर दिया और आज जब मैं स्वतन्त्रता की सीढ़ी पर पग रखने जा रहा हूँ तब आप मुझे नीचे घसीटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शादीलाल की स्त्री—और लीजिए। मैं भी आपके इस व्यापारिक उद्योग में साझीदार बनती हूँ। इतना कहकर उसने शादीलाल के हाथ में पचास हज़ार के नोट और सारे आभूषण रख दिये।

शादीलाल के नेत्र भर आये। उन्होंने अपनी स्त्री का हाथ पकड़ कर कहा—शान्ति, आभूषण रख लो, ये रुपये ही बहुत हैं। उनके नेत्रों में प्रेम और कृतज्ञता की झलक थी।

कुछ क्षण पश्चात् शादीलाल ने युगुलकिशोर की ओर घूम कर पूछा—कहो युगुल। तुम कैसे आये?

युगुलकिशोर ने हाथ फैलाये हुए विनीत स्वर में कहा—वह मर्फ़िया मुझे लौटा दो। इतना कहते-कहते उसका कण्ठ-स्वर करुण हो गया।

शादीलाल ने एक क्षण उसकी ओर देखा और तत्पश्चात् अपनी जेब से वह पैकेट निकाल कर उसके हाथ में रख दिया।

युगुलकिशोर का मुख खिल उठा। वह उसे शीघ्र ही अपनी जेब में रख कर कमरे के बाहर चला गया।

—रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

हुएनसांग का भ्रमण-वृत्तान्त

प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग के भारत-भ्रमण का वृत्तान्त है, जो ईसा की सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष आया था। पुस्तक में बड़ी सुन्दरता से भारत के मुख्य मुख्य स्थानों का वर्णन, वहाँ की रहन-सहन, भाषा आदि का वर्णन किया गया है। पुस्तक पढ़ने से भारतीय प्राचीन सभ्यता का उज्ज्वल चित्र-पट आँखों के सामने खिंच जाता है। भारत का हाल जानने की इच्छा रखनेवाले प्रत्येक प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ४) चार रुपये।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक

(१)

पहली कान्फ़रेंस का अन्त जब गत वर्ष की फ़रवरी में हुआ था, उस समय यह घोषित किया गया था कि इस सभा की दूसरी बैठक फिर होगी। उस समय उसके भावी अधिवेशन की सूचना न दी जा सकी, परन्तु बाद को यह बताया गया कि दूसरा अधिवेशन सितम्बर में होगा।

इस दूसरे अधिवेशन के लिए वायसराय महोदय ने ७ अगस्त सन् १९३१ को शिमला से प्रतिनिधियों की एक सूची प्रकाशित की। उसमें भिन्न-भिन्न दलों के नेता इस प्रकार थे—

ब्रिटिश-सदस्य कुल १४ थे। उनमें विशेष उल्लेखनीय प्रधान मन्त्री रामज़े मैकडानल, लार्ड सैंकी, सर सैमुअल होर, कर्नल वेजवुड बेन, अर्ल पील आदि थे। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों में बड़ोदा, भोपाल, बीकानेर, अलवर, धौलपुर, सारिला, रीवाँ आदि के नरेशों के अतिरिक्त उनकी ओर से सर प्रभाशङ्कर पट्टनी, सर मनू भाई मेहता, सरदार साहबज़ादा सुलतान अहमदख़ाँ, नवाब सर मुहम्मद अकबर हैदरी, सर मिर्ज़ा महम्मद इस्माइल, सर राधावैय्या पन्तलू गारु तथा कर्नल हस्कर आदि प्रतिनिधि थे।

ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों में ४० हिन्दू, २१ मुसलमान, २ सिख, २ अछूत, तथा ६ एंगलो-इन्डियन और देशी क्रिश्चियन थे। २१ मुसलमान प्रतिनिधियों में राष्ट्रीय मुसलिम दल का एक भी सदस्य न था। बहुत आन्दोलन करने पर केवल सर अली इमाम बुलाये गये थे। कांग्रेस की ओर से केवल महात्माजी गये थे। परन्तु श्रीमती सरोजनी नायडू और महामना मालवीयजी भी महात्माजी के ही साथ बुलाये गये थे। कान्फ़रेंस में श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती सुब्बारायन तथा बेगम शाहनिवाज़ आदि स्त्री प्रतिनिधि भी थीं। सदस्यों का चुनाव किस आधार पर किया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है। डाक्टर अंसारी के सम्बन्ध में अफ़वाह थी कि वे भी बुलाये जायँगे, परन्तु यह अफ़वाह आगे चलकर असत्य ही निकली।

महात्मा गांधी ने २८ अगस्त के अन्त में निश्चय किया कि वे गोलमेज़-सम्मेलन में अवश्य उपस्थित होंगे। अतएव २९ अगस्त के १॥ बजे महात्मा गांधी राजपूताना जहाज़ से रवाना हुए और १२ सितम्बर को इँग्लेंड पहुँच गये। भारत के इन 'अर्धनग्न फ़क़ीर' किन्तु बे-मुकुट के राजा ने जब इँग्लेंड में पैर रक्खा तब सारा संसार चकित होकर उनकी घोषणाओं को सुनने को उत्सुक हो उठा। अदन, मिस्र, फ़्रान्स आदि में भारतीयों तथा अन्य देशवासियों ने उनका समुचित स्वागत किया। इस गोलमेज़ के अधिवेशन में महात्माजी का उपस्थित होना एक बड़ी भारी बात थी, क्योंकि कांग्रेस ने पिछले गोलमेज़-सम्मेलन से असहयोग किया था।

गोलमेज़-सम्मेलन के इस अधिवेशन में १—शासन-योजना, अल्पसंख्यक समुदाय का प्रश्न, सेना पर अधिकार और व्यापारिक समस्या आदि विषयों पर ख़ासा विचार हुआ।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 36[illegible]

सात सितम्बर सन् १९३१ को सेंट जेम्स पैलेस में इस सम्मेलन की शासन-योजना-समिति का अधिवेशन आरम्भ हुआ। महात्मा गांधी, मालवीयजी आदि तीन-चार सदस्यों को छोड़ कर इस उपसमिति के अन्य ३१ सदस्य उपस्थित थे। आरम्भ में लार्ड सैंकी ने कहा—

प्रधान मन्त्री ने कहा—

'मैं प्रतिनिधियों और अन्य लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे यहाँ चाहे कितना ही राजनैतिक उलट-फेर क्यों न हो जाय और हुआ हो, पर हमारे सार्वजनिक उद्देश्यों और व्यक्तिगत मित्रता में कोई भी हेर-फेर नहीं हुआ है।

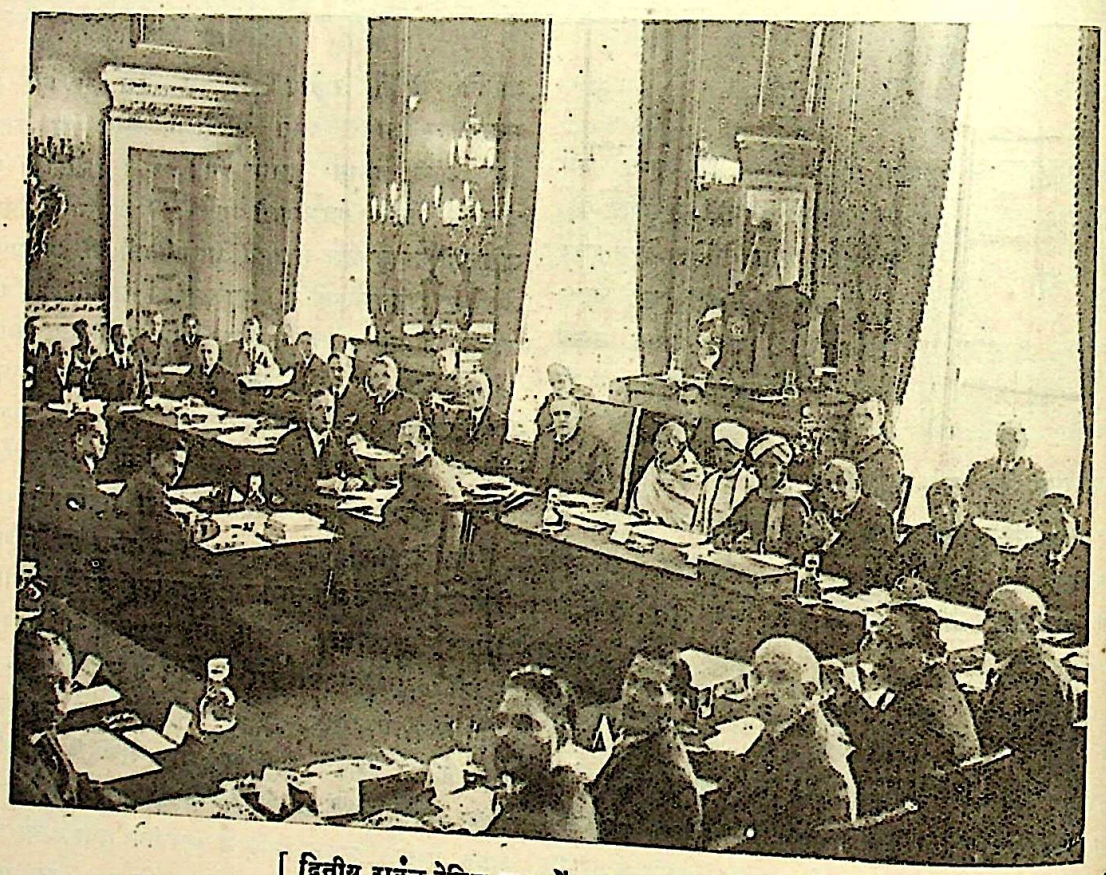

[द्वितीय राउंड-टेबिल कान्फ्रेंस की पहली बैठक]

(लार्ड सैंकी सभापति के आसन पर समासीन हैं। उनकी बाईं ओर महात्मा गान्धी तथा महामना मालवीयजी विराजमान हैं और दाहिनी ओर लार्ड पील और सर सैमुअल होर बैठे हैं।)

'भारत में शान्ति और सुख की स्थापना करना एक ऐसा कार्य है जिसके लिए जितना भी व्यक्तिगत त्याग करना पड़े, अधिक न होगा। भारत राष्ट्र-पद प्राप्त कर विश्व के सामाजिक और राजनैतिक विचारों के विकास में उचित रूप से योग देने के अपने युग-युगान्तर के स्वप्न कोसफल करते हुए देखे। यही हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा है।'

इस उपसमिति की १३वीं सितम्बर की बैठक में महात्माजी ने भाग तो लिया, पर मौन-दिवस होने के कारण कुछ बोल न सके। सभी लोग यह सुनने के लिए उत्सुक थे कि महात्माजी क्या कहते हैं। महात्माजी ने जब बम्बई से प्रस्थान किया तब से लेकर अन्त तक यही कहते रहे कि मैं तो कांग्रेस का प्रतिनिधि हूँ। मैं कुछ

अपनी बात कहने के लिए नहीं आया हूँ। मैं जो कुछ कहूँगा वह कांग्रेस की ओर से कहूँगा।

१४ सितम्बर के अधिवेशन में महात्माजी ने अपना पहला भाषण किया। आपने अपने भाषण में कांग्रेस के उद्देशों का वर्णन किया। आपने कहा—यहाँ मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह न तो अन्तिम सूचना है और न धमकी है। प्रधान मन्त्री की घोषणा कांग्रेस की माँग से बहुत कम है। सङ्घ योजना-समिति में जितनी बातें हो रही हैं वे एक भी मेरे काम की नहीं। सरकार को बता देना चाहिए कि वह कितना अधिकार देना चाहती है। पंडित मदनमोहन मालवीय ने भी शिक्षा, अछूतों तथा देशी राज्यों के सम्बन्ध में भाषण किया।

सङ्घ-योजना-समिति में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। हैदराबाद के सर अकबर हैदरी ने कहा—'ऐसी रियासतों को भी जो इस समय नरेन्द्र-मण्डल के सदस्य हैं, पृथक् प्रतिनिधित्व देना असम्भव होगा। क्षेत्रफल और जन-संख्या के ही आधार पर यह निश्चय किया जाय।'

सङ्घ-योजना-समिति में जब शासन-परिषद् के संगठन, उसके आकार और बनावट पर बहस हुई तब श्रीजोशी ने कहा कि मैं एक ही परिषद् रखने के पक्ष में हूँ। कई सदस्यों ने दोनों परिषदों (राज्य-परिषद्, व्यवस्था-परिषद्) के लिए राय दी। अध्यक्ष लार्ड सैंकी ने कहा कि इन विषयों पर पार्लियामेण्ट में विचार होगा।

"लार्ड सैंकी ने संघीय व्यवस्थापिका सभा और फ़िडरल फ़ाइनेंस पर एक मसौदा तैयार कर गोलमेज़-परिषद् के सदस्यों में वितरित किया। उसमें उन्होंने भारतीय व्यवस्थापिका सभा के लिए दो 'हाउसों' की आवश्यकता बतलाई। ठीक उसी तरह जैसे इँग्लेंड में हाउस ऑफ़ लार्ड्स और 'हाउस आफ़ कामन्स' होते हैं। यहाँ एक हाउस 'अपर हाउस' कहलायगा और दूसरा 'लोअर हाउस'। 'अपर हाउस' में तीन सौ जगहें होंगी और 'लोअर हाउस' में दो सौ। देशी राजाओं को 'अपर हाउस' में ४० प्रतिशत जगहें और 'लोअर हाउस' में पूर्ण संख्या की एक तिहाई जगहें दी जायँगी। अपर हाउस में स्टेट अपने प्रतिनिधि आप ही चुनेंगे। और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्त अपनी कौंसिलों से प्रतिनिधि भेजेंगे। 'लोअर हाउस' में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि अपनी-अपनी कांस्टीट्युएंसी (जगहों) से जनता-द्वारा चुनकर भेजे जायँगे। रियासतें इस सम्बन्ध में अपना जो निर्णय करें, उस पर ब्रिटिश भारत को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

"'अपर हाउस' में 'जगहें' इस तरह भरी जायँगी—

[अ] बम्बई, बंगाल, यू० पी०, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, और मध्यप्रान्त प्रत्येक १७, [इ] आसाम ७, [उ] पश्चिमीय सीमाप्रान्त २, [ऋ] दिल्ली, अजमेर, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान प्रत्येक को १।

"'लोअर हाउस' में जगहें इस तरह भरी जायँगी—

(१) बम्बई, पञ्जाब, बिहार और उड़ीसा २६, (२) मद्रास, बंगाल और यू० पी० ३२, (३) मध्यप्रान्त १२, (४) आसाम ७, (५) उत्तरी सीमाप्रान्त ३, (६) दिल्ली, अजमेर, कुर्ग और ब्रिटिश-बलूचिस्तान प्रत्येक को १।

"अधिकारों के सम्बन्ध में लार्ड सैंकी ने बजट और बिल के सम्बन्ध में दोनों 'हाउसों' को समान अधिकार देने की सिफ़ारिश की है। जब दोनों 'हाउसों' में किसी प्रश्न पर मतभेद होगा तब दोनों की बैठक साथ ही हुआ करेगी और बहुमत का निर्णय ही मान्य होगा।" ('सुबोधसिन्धु' से)

शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रांतीय उत्तरदायित्व बनाम केन्द्रीय उत्तरदायित्व का प्रश्न उठा था। कुछ सदस्यों का कथन था कि राष्ट्र की शक्ति एक जगह केन्द्रस्थ रहे और वह तमाम प्रान्तों पर अधिकार रक्खे। दूसरी ओर अन्य सदस्यों का कहना था कि प्रत्येक प्रान्त को स्वतन्त्र अधिकार दिया जाय। महात्मा गांधी भी प्रान्तीय स्वतन्त्रता के पक्ष में थे, परन्तु उनका कहना था कि प्रान्त अपने शासन में केवल स्थानीय मामलों में स्वतन्त्र रहें। महामना मालवीयजी ने प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का विरोध किया और यह चेतावनी दी कि इससे राष्ट्र की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जायगी। इधर इँग्लेंड

के टोरीदलवाले केवल प्रान्तीय व्यवस्था देने को तैयार दिखाई देते थे। वे केन्द्रीय शासन-सम्बन्धी एक भी बात मानने को तैयार न थे। ऐसी दशा में अन्य प्रश्नों की तरह इस प्रश्न पर भी विचार-विनिमय होकर ही रह गया।

"नागरिक अधिकार किस तरह का रक्खा जाय, मताधिकार किस किसको हो आदि विषयों पर बड़े बड़े

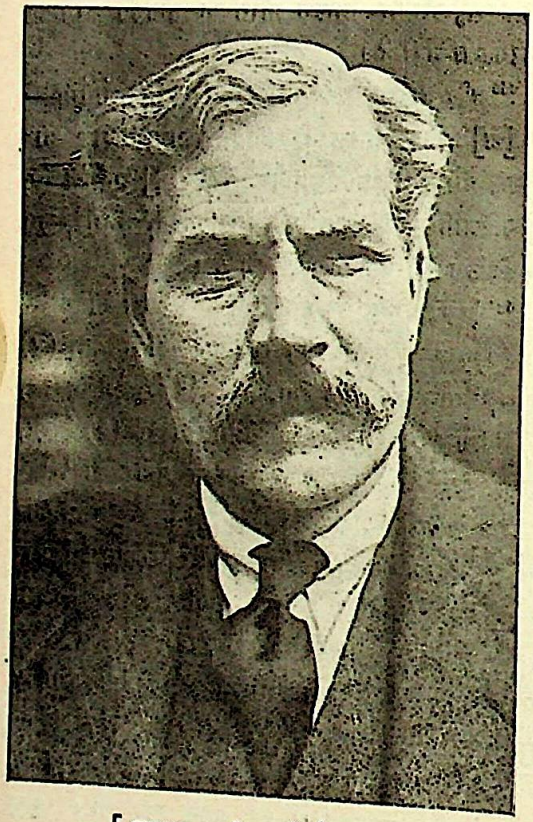

[प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानल]

गरम भाषण हुए। केन्द्रीय उत्तरदायित्व बनाम प्रान्तीय उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा कि मैं समझता हूँ कि प्रान्तीय स्वशासन की जो कल्पना मैं करता हूँ, यदि उसी के अनुसार प्रान्तीय स्वशासन रहे तो उसे ले लेने, जांचने और यह देखने में कि उससे मेरा उद्देश वस्तुतः सिद्ध होता है या नहीं, मुझे कुछ आपत्ति न होगी। पर बहस करते ही मुझे पता चला कि मैं प्रांतीय स्वशासन का जो मतलब समझता हूँ, सरकार उसका वही मतलब नहीं समझती। कटघरे में बन्द केन्द्रीय उत्तरदायित्व से मुझे सन्तोष न होगा। मैं ऐसा उत्तरदायित्व चाहता हूँ जिससे सेना और अर्थ प्रबन्ध का नियंत्रण हाथ में रहे। विदेशियों-द्वारा रचित केन्द्रीय सरकार और मज़बूत स्वायत्तशासन—दोनों परस्परविरोधी शब्द हैं। मैं समझता हूँ कि प्रांतीय स्वशासन और केन्द्रीय उत्तरदायित्व साथ साथ रहने चाहिए। पर यदि कोई मुझे यह समझा सके कि मेरे विचार का प्रान्तीय स्वशासन वास्तविक शासन है तो मैं उसे ले लूँगा। और क़ानून की किताब में से १८१८ का ३ रा रेग्युलेशन निकाल दूँगा। मुझे विश्वास है कि ऐसा प्रांतीय स्वशासन मिलने जा रहा है। मैं समझौते की शर्तों के अनुसार लन्दन आया। समझौते में यह स्पष्ट बताया गया है कि मुझे सङ्घ और उसके सारे उत्तरदायित्व पर बहस करना होगा और मुझे यही प्राप्त होगा। निःसन्देह इसके साथ भारत के हितार्थ संरक्षण रहेंगे।

"मुसलमानों की ओर से श्रीजिन्ना ने कहा कि सम्मेलन के आरम्भ में ही हमने स्पष्ट कह दिया है कि हम भारत की शासन-सम्बन्धी उन्नति के मार्ग में बाधा न डालेंगे। मैंने पिछले अधिवेशन में कहा था कि कोई भी शासन-योजना तैयार हो सकने के पहले हिन्दू-मुस्लिम-समझौता होना एक आवश्यक शर्त है। जब तक मुसलमानों के स्वार्थ की रक्षा नहीं की जाती और उनका सहयोग प्राप्त नहीं किया जाता तब तक कोई भी शासन-योजना २४ घंटे भी न चलेगी। आज यही स्थिति है। मुसलमान समझते हैं कि भारत के अच्छे लोग केवल प्रान्तीय स्वतन्त्रता का समर्थन न करेंगे। पर यह भी स्मरण रहे कि जब तक मुसलमानों की माँगें स्वीकार नहीं की जातीं तब तक उन्हें कोई योजना स्वीकार न होगी। अखिल भारतीय सङ्घ की कल्पना और मृग-जल के पीछे दौड़ते फिरने की अपेक्षा ब्रिटिश-भारत का मामला तय करके शीघ्र ही आगे बढ़ना चाहिए। यह सरकार का कर्तव्य है कि वह न केवल साम्प्रदायिक प्रश्न के भविष्य का ही फ़ैसला करे, वरंच ऐसे सब महत्त्व के विषयों का भी जिन पर समझौता होना आवश्यक हो।

"श्री गोविन्द जोन्स ने कहा कि योरपीय प्रतिनिधि केन्द्रीय उत्तरदायित्व के पहले प्रान्तीय शासन की स्थापना को पसन्द करेंगे, क्योंकि यह अवश्यंभावी है कि सङ्घ के पहले सङ्घ के अङ्गभूत राज्यों का निर्माण किया जाय। मेरा सरकार से अनुरोध है कि वह भारत के बारे में अपनी इच्छा प्रकट करे। सरकार कौन से संरक्षण रखना चाहती है, वह प्रान्तों में क़ानून और व्यवस्था के बारे में क्या करना चाहती है? साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध में मेरा कहना है कि पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त का स्वीकार करना ही समझौते की ओर और एक क़दम आगे बढ़ना है। यदि हिन्दू भी इसे स्वीकार कर लें तो सारा विरोध ही मिट जाय। सम्राट् के अधीन संयुक्त भारतीय राज्य कोरी कल्पना नहीं। यह एक महान् आदर्श है जिसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए।

"सिख-प्रतिनिधि सरदार उज्ज्वलसिंह ने कहा कि मुझे आशा है अखिल भारतीय सङ्घ सत्य सिद्ध होगा। केवल प्रान्तीय अधिकार के टुकड़े से भारत का कोई दल सन्तुष्ट न होगा। पर प्रांतीय स्वशासन या केन्द्रीय उत्तरदायित्व की कोई योजना सिखों को मंज़ूर न होगी जब तक उनके स्वार्थों की पूरी रक्षा नहीं की जाती।" ('भारत' से)

इस प्रकार इस समिति के अधिवेशन में अनेक प्रतिनिधियों ने अपने विचार प्रकट किये।

परन्तु संघ-शासन-समिति की जो रिपोर्ट लार्ड सैंकी ने प्रकाशित की वह प्रक्षिप्त कही गई है। शासन-परिषद् के सदस्यों की संख्या २०० से ३०० तक के बीच में होना अर्थात् परिषद् की सदस्य-संख्या का निर्धारित होना कोई महत्त्व-पूर्ण प्रश्न नहीं है। महत्त्व-पूर्ण प्रश्न परिषद् का विधान है। परिषद् के ऊपर यदि अधिकार अँगरेज़ों का ही बना रहा तो सदस्यों की संख्या का कोई महत्त्व ही नहीं है। गोलमेज़ के पहले अधिवेशन में सदस्यों ने इस बात का समर्थन किया था कि परिषद् पर भारत का ही अधिकार होना चाहिए। परिषद् के कुछ नियमों के विषय में रिपोर्ट में कुछ उल्लेख भी नहीं किया गया है। रिपोर्ट में ध्यान देने योग्य दो ही बातें हैं। पहली यह कि दोनों सभायें समानाधिकार पर रची जायँगी। उन दोनों सभाओं का नाम 'अपर हाउस' और 'लोअर हाउस' होगा। अपर हाउस में जनता के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि सङ्घ के मनोनीत सदस्यों के प्रतिनिधि होंगे। इसके सदस्य प्रान्तीय परिषद् के सदस्यों-द्वारा चुने जायँगे सीधे जनता-द्वारा नहीं। 'अपर हाउस' में राज्यों के प्रतिनिधि भी रहेंगे। वे प्रतिनिधि राज्य-प्रजा की ओर से चुने हुए न होकर राजा के प्रतिनिधि होंगे। ऐसी दशा में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन की व्यवस्था इसमें कहाँ की गई है? लोअर हाउस में राजाओं-द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों की समस्या है। 'लोअर हाउस' में ब्रिटिश भारतीय सदस्यों के 'राय' के भी सम्बन्ध में कुछ साफ़ साफ़ नहीं लिखा गया है। नागरिकता का अधिकार निश्चित करने का प्रश्न एक विशेष समिति के लिए रख छोड़ा गया है।

इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी प्रायः सभी महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों का निश्चय होना बाक़ी है। महात्माजी का यह कहना था कि परिषद् में एक ही हाउस की आवश्यकता है। नागरिकता के अधिकार को कांग्रेस सार्वदेशिक बनाना चाहती है। ऐसी दशा में कांग्रेस की माँग और सङ्घ की रिपोर्ट में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। जिन संरक्षणों को कांग्रेस अस्वीकार कर चुकी है वही इस रिपोर्ट में स्वीकार किये गये हैं। अब आगे देखना है कि गोलमेज़ की प्रस्तावित कार्यकारिणी समिति किस विधान की सृष्टि करती है तथा उस विधान के किन किन संशोधनों को पार्लियामेंट स्वीकार करती है।

(२)

गोलमेज़ के अधिवेशन के आरम्भ से ही हिन्दू-मुसलमान प्रश्न पर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ था। इसके समाधान का प्रयत्न भी होता रहा। २४ सितम्बर को आगाख़ाँ और महात्मा गांधी का सम्मेलन हुआ और दोनों ने अपने अपने मत-भेदों पर बात-चीत की। पर मुसलमानों की नीति में परिवर्तन न हुआ। इस सम्बन्ध में मुसलमानों को छोड़कर प्रायः सभी नेताओं ने ख़ूब प्रयत्न किया,

परन्तु देश के सौभाग्य व दुर्भाग्य से समझौता न हो सका। महात्मा गांधी को हताश होना पड़ा। एक से एक योजनायें उपस्थित की गईं। गांधी-आगाख़ाँ, आगाख़ाँ-पटेल, आगाख़ाँ-सप्रू आदि कई एक कितने सम्मेलन भी हुए। परन्तु जिन्ना की चौदह शर्तों से मुसलमान पीछे हटने को राज़ी न हुए। अल्पसंख्यक समुदायों की समिति में मुसलमानों ने जो शर्तें

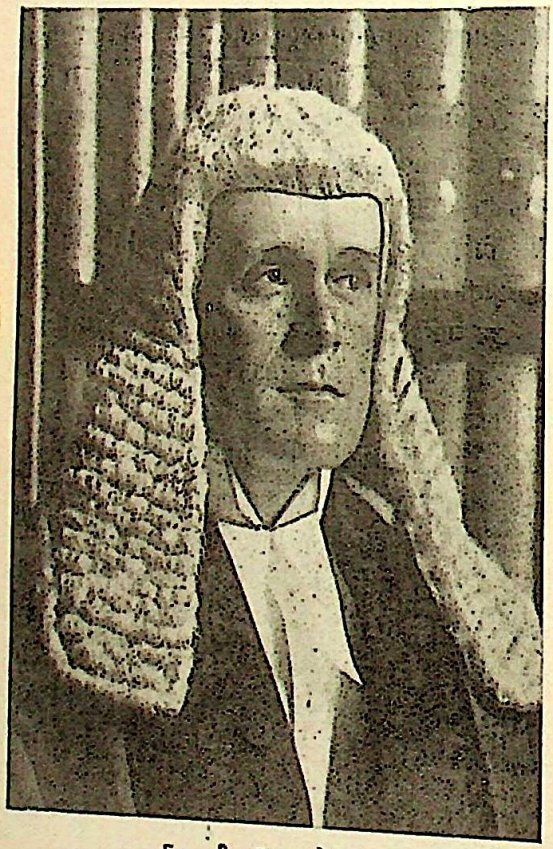

[लार्ड जस्टिस सैंकी]

स्वीकार कीं वे भी उदार न थीं। अन्त में सब लोगों को हताश होकर इस प्रश्न को छोड़ ही देना पड़ा।

अल्पसंख्यक समुदायों की समिति में निम्नलिखित सदस्य थे—

(१) प्रधान मन्त्री रामसे मैकडानल्ड चेयरमैन, (२) सर डब्ल्यू ए० जोवेट, (३) अर्ल पील, (४) मेजर हार्न, (५) मिस्टर आलिवर स्टैनली, (६) मारक्वीस आफ़ रीडिंग, (७) सर आगाख़ाँ, (८) सर सैयद अली इमाम, (९) डाक्टर अम्बेदकर, (१०) मिस्टर वेन्थाल, (११) मिस्टर ह्यूबर्टकार, (१२) नवाब अब्दुल मजीदख़ाँ क़ुतारी, (१३) श्री सी० वाई चिन्तामणि (न जा सके), (१४) मिस्टर के० दत्त, (१५) मिस्टर फ़ज़लुल हक़, (१६) महात्मा गांधी, (१७) पण्डित मदनमोहन मालवीय, (१८) सर मित्र, (१९) डाक्टर मुंजे, (२०) श्रीमती नायडू, (२१) श्रीराजेन्द्र राव, (२२) डाक्टर शफ़ाअत अहमदख़ाँ, (२३) मिस्टर सफ़ी दाउदी, (२४) बेगम शाह नवाज़, (२५) मौलाना शौकत अली, (२६) सरदार सम्पूर्णसिंह, (२७) श्री रा० श्रीनिवासन, (२८) श्री चमनलाल शीतलवाड, (२९) श्री श्रीनिवास शास्त्री, (३०) श्रीमती सुब्बारायन, (३१) सर सुल्तान महम्मद, (३२) सरदार उज्ज्वलसिंह, (३३) नवाब जफ़रुल्लाख़ाँ।

अल्पसंख्यक समिति की पहली सरकारी बैठक २८ सितम्बर को हुई। २८ सितम्बर सन् १९३१ से ५ आक्टोबर १९३१ तक इसकी कुल दो ही सरकारी बैठकें हुईं। नेताओं ने सरकारी समिति में काम को हलका करने तथा प्रश्न को अधिक स्वतन्त्रता के साथ हल करने के लिए यह तय किया कि इसकी ग़ैर सरकारी सभायें भी की जायँ। पहली ग़ैर सरकारी सभा २ आक्टोबर को गांधीजी की अध्यक्षता में बैठी।

इस समिति में सम्मिलित हुए मुसलमानों, एंग्लो इंडियनों, देशी क्रिश्चियनों, अछूतों के प्रतिनिधियों ने पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग पेश की। भारतीय ईसाइयों के प्रतिनिधि केवल मिस्टर दत्त ने अलग निर्वाचन का विरोध किया। अछूतों के प्रतिनिधि डाक्टर अम्बेदकर ने प्रान्तीय परिषद् में अछूतों के लिए १५ प्रति जगहें सुरक्षित रखने का प्रस्ताव उपस्थित किया। मुसलमानों ने पंजाब में ५१ प्रतिशत तथा बंगाल में ५५ प्रतिशत स्थान माँगे तथा यह कहा कि १९३१ की जन-संख्या के अनुसार हमें केन्द्रीय परिषद् में ३३ प्रतिशत स्थान दिये जायँ। सप्रू महोदय ने उनकी

माँग को अधिक बताकर विरोध किया। सिक्खों ने पंजाब में ३० प्रतिशत तथा सीमा-प्रान्त में ६ प्रतिशत स्थान माँगे। महात्मा गाँधी ने इन सब माँगों में अधिकांश को कांग्रेस के उद्देशों के विपरीत बताकर विरोध किया। वे मुसलमानों और सिक्खों को छोड़कर अन्य समुदायवादियों को विशेष-स्थान देने को राज़ी नहीं हुए। महात्माजी मुसलमानों की विशेष माँग इस शर्त पर स्वीकार करने को राज़ी हुए कि मुसलमान भी कांग्रेस की माँग का समर्थन करें। मुसलमानों को यह शर्त स्वीकार नहीं हुई।

इस पर ५ आक्टोबर की सरकारी बैठक में महात्माजी ने साम्प्रदायिक समिति की बैठक को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अतएव महात्माजी के प्रस्ताव पर समिति का अधिवेशन अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् यह प्रस्ताव किया गया कि प्रधान मन्त्री स्वयं निष्पक्ष न्यायाधीश बन कर इस मामले को सुलझावें। इस पर अधिकांश नेता राज़ी हो गये, परन्तु मुसलमान नहीं राज़ी हुए। उन्होंने अलग ही सभा की। सभा करके उन्होंने यह तय किया कि तमाम अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय और उसमें अपने अपने अधिकार उपस्थित किये जायँ। इस सभा में सिखों को छोड़कर और सभी अन्य अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। जो समझौता हुआ उस पर आगाख़ाँ, डाक्टर अम्बेदकर, सर हेनरी गिडनी, मिस्टर पन्नीर सेल्वम, और ह्यूवर्टकार ने हस्ताक्षर किये थे।

समिति ने इसकी अपनी रिपोर्ट प्रधान मन्त्री को समर्पित की। उस रिपोर्ट का कुछ अंश यहाँ 'अर्जुन' से दिया जाता है।

"[१] कोई भी व्यक्ति धर्म जाति और विश्वास के कारण सरकारी नौकरियों के पाने, नागरिक अधिकारों के उपभोग करने और किसी पेशे को करने से वंचित नहीं किया जायगा। [२] राजकीय संरक्षण और प्रतिबन्ध शासन-विधान में सम्मिलित किये जायँ जिससे कोई भी विभेदक क़ानून किसी धारा-सभा में, किसी जाति के सम्बन्ध में न बन सके। [३] पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता की गारण्टी दी जाय और धर्म-परिवर्तन के कारण कोई भी दण्डित न किया जाय और न नागरिक अधिकारों और विशेष अधिकारों से महरूम रक्खा जाय। [४] हर एक जाति और समाज को अपने ख़र्च से परोपकारिक, धार्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं को चलाने, नियन्त्रण करने और उसमें अपने धर्म की शिक्षा देने का हक़ होगा। [५] अल्प-संख्यक समुदायों के धर्म, संस्कृति, व्यक्तिगत क़ानून की रक्षा और उनकी भाषा, उनके शिक्षणालयों और उनकी सार्वजनिक संस्थाओं की उन्नति के लिए, स्टेट और स्वायत्त संस्थाओं से दी जानेवाली सहायता और ग्रान्ट में से उचित भाग इन्हें दिया जाय, इस सम्बन्ध में शासन-विधान में संरक्षण होना चाहिए। [६] नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए गारन्टी माँगी गई। [७] मन्त्रिमण्डल में मुसलमानों और अन्य समुदायों को अधिक से अधिक स्थान कवेन्शन-द्वारा देने के लिए कहा गया है। [८] अल्प-संख्यक समुदायों की रक्षा और उनकी भलाई के लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में राजकीय विभाग बनाने के लिए कहा गया है। [९] चुनाव का तरीक़ा बताया गया और कहा गया कि जो सब जातियाँ वर्तमान समय में किसी धारा-सभा में प्रतिनिधित्व रखती हैं वे सब धारा-सभाओं में पृथक् निर्वाचन-पद्धति-द्वारा प्रतिनिधित्व के अधिकार को पायेंगी और उनको संलग्न तालिका के अनुसार धारा-सभाओं में जगह दी जायगी। पर कोई भी बहु-संख्यक समुदाय अल्प मत में रक्खा जायगा, समान स्थिति में न रक्खा जायगा। दस साल के बाद बंगाल और पंजाब के मुसलमान और अन्य प्रान्तों में कोई अल्प-संख्यक समुदाय जगहें सुरक्षित रखते हुए व बिना रक्खे हुए संयुक्त निर्वाचन मानने को स्वतन्त्र होगा। इसी प्रकार केन्द्रीय धारा सभा के लिए कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय जगहें सुरक्षित रख कर और इसके बिना संयुक्त निर्वाचन मानने को स्वतन्त्र होगा। पर अछूतों के लिए जगहें सुरक्षित रखते हुए व इसके बिना ही संयुक्त निर्वाचन नहीं हो सकेगा, जब तक कि उन्हें पृथक् निर्वाचन-पद्धति

का २० साल का अनुभव न हो जाय और उन्हें बालिग़ मताधिकार न हासिल हो जाय। [१०] प्रांतीय और केन्द्रीय पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना के उचित भाग दिया जाय। गवर्नर जनरल और गवर्न को ख़ास तौर पर निर्देश किया जाय कि इस सिद्धां के अनुसार ठीक-ठीक नियुक्ति हो और समय

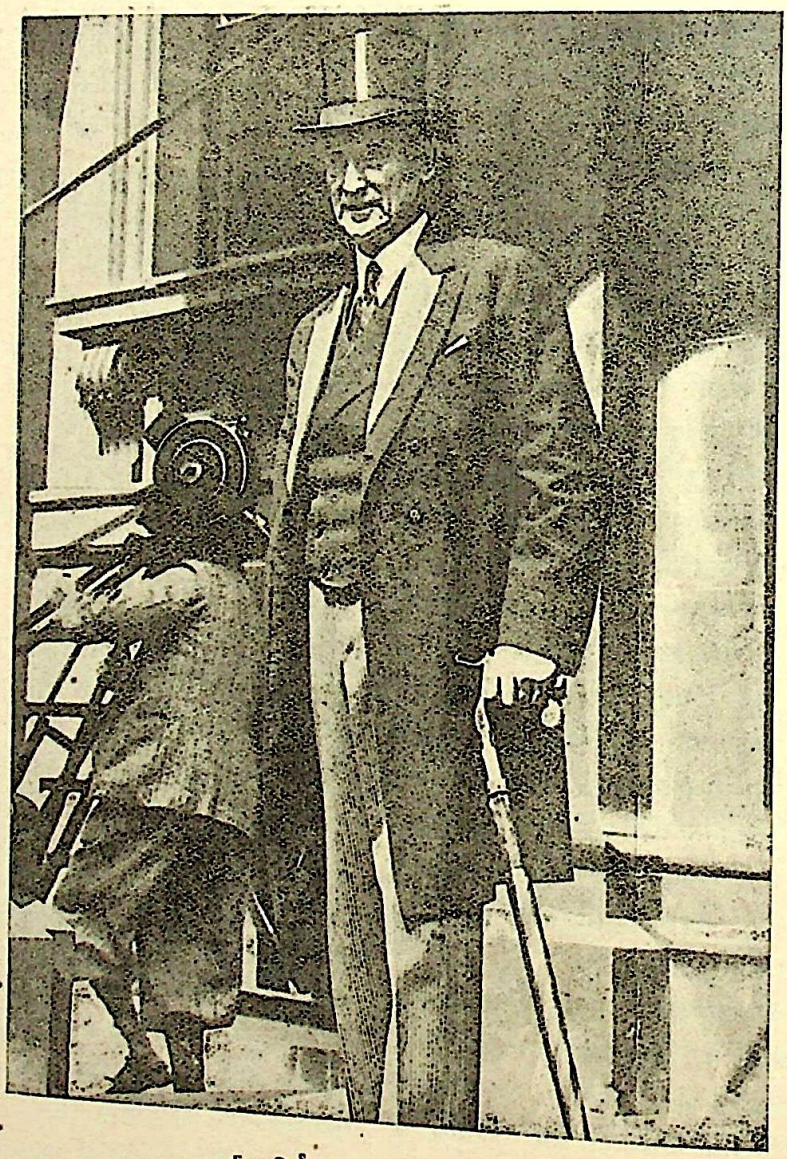

[मार्क्विस आफ़ रीडिंग]

लिए कहा गया है, जिसके द्वारा सरकारी नौकरों की नियुक्ति की जाय और जिसमें योग्यता और कार्यक्षमता का ध्यान रखते हुए हर एक समुदाय को उसका समय पर नौकरियों की नियुक्ति की समीक्षा और जाँच पड़ताल किया करें। [१०] किसी बिल के पास होने से रोकने की विधि का वर्णन किया गया है, जिसके मुताबि

किसी भी धारा-सभा के किसी समुदाय के यदि दो तिहाई मेम्बर जिनके धर्म पर या धर्म पर आश्रित सामाजिक रवाज पर [अथवा एक तिहाई मेम्बरों के मौलिक आधारभूत अधिकारों पर] बिल का असर पड़ता हो, तो वह बिल क़ानून नहीं बन सकता। साथ ही यह भी कहा गया है कि यदि साल के बाद भी धारा-सभा उठाई गई विप्रतिपत्ति के अनुसार बिल में सुधार और परिवर्तन करने से इनकार कर दे तो गवर्नर की इच्छा पर है कि उस पर अपनी स्वीकृति दे या न दे ऐसे क़ानून की वैधता की जाँच उस समुदाय के किन्हीं दो व्यक्तियों द्वारा—जिनका उस बिल से सम्बन्ध है सुप्रीम कोर्ट में की जा सकेगी।

"समझौते के साथ एक तालिका जोड़ी गई है इसके अनुसार व्यवस्थापिका सभा की बड़ी सभा में २०० मेम्बरों में से कुलीन हिन्दू १०१, अछूत २०, मुसलमान ६७, ईसाई १, सिख ६, ऐंग्लो इण्डियन १, और योरपीय ४ मेम्बर होंगे। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की छोटी सभा में ३ सौ मेम्बर होंगे, जिनमें से कुलीन हिन्दू १२३, अछूत ४५, मुसलमान १००, ईसाई ७, सिक्ख १०, ऐंग्लो इण्डियन ३ और योरपीय १२ होंगे।

"सिन्ध में हिन्दुओं को और सीमाप्रांत में हिन्दुओं और सिक्खों को वही अधिकार दिया जायगा जो उन प्रांतों में मुसलमानों को दिया गया है, जहाँ हिन्दुओं की आबादी ज़्यादा है। बम्बई से सिन्ध के अलग हो जाने पर यही सिद्धान्त मुसलमानों के साथ भी लागू होगा।"

इस समझौते पर भाषण करते हुए महात्माजी ने कहा—

मैं बहुत ही असमंजस और लज्जा के साथ अल्पसंख्यकों के इस विवाद में पड़ा हुआ हूँ। मुख्य प्रश्न साम्प्रदायिक समस्या नहीं, बरन शासन-विधान है। कांग्रेस उस समझौते को मानने को तैयार है जो हिन्दू-मुसलमान और सिक्ख आपस में तय कर लें, पर वह अन्य किसी अल्प-संख्यक समुदाय को विशेषाधिकार दिलाने की बात को स्वीकार न करेगी। मुझे दुख है कि कमेटी में एकमत नहीं हुआ। मैं फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि भारतीय शासन-विधान स्थापित करने की ओर बढ़ने का आधार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक अधिकार तथा साम्प्रदायिक संरक्षण आदि ही हैं। अतः हमें और भी दुःख है कि इसी प्रश्न को हम न सुलझा सके। अन्यान्य सम्प्रदायों के लिए जो दावे पेश किये जाते हैं उन्हें तो मैं समझता भी हूँ, पर अछूतों के लिए जो दावे पेश किये जाते हैं वे दावे अत्यन्त क्रूर हैं। उन्हें स्वतन्त्र निर्वाचन देने का मतलब यही है कि उन्हें सार्वजनिक हेल-मेल से रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरूँगा। और इस बात की घोषणा करूँगा कि पृथक् निर्वाचन में उनका हित नहीं है। इससे अछूतों का प्रश्न कभी भी हल नहीं हो सकता। कांग्रेस ही अछूतों का सच्चा प्रतिनिधि है। कांग्रेस ने जितना अछूतोद्धार के लिए किया है उतना और किसी ने नहीं किया है।

अल्पसंख्यक समुदाय-समिति के सभापति प्रधान मन्त्री के उपर्युक्त समझौते का विवरण सुना चुकने के बाद सिक्खप्रतिनिधि सरदार उज्ज्वलसिंह ने कहा कि यह समझौता लोकतन्त्र के सिद्धान्त पर कुठाराघात करता है। श्री जोशी और श्रीगिरि ने भी उसका विरोध किया।

ईसाइयों के प्रतिनिधि श्रीदत्त ने कहा कि अल्पसंख्यकों के समझौते में उनके प्रतिनिधित्व के लिए जो तरीक़ा पसन्द किया गया है उससे मेरा पूरा मत-भेद है। यदि मैं अपना धर्म बदल दूँ या यह कह दूँ कि मेरा कोई मज़हब नहीं है तो क्या मैं मताधिकार से वंचित हो जाऊँगा? अथवा एक ईसाई सदस्य यदि कुछ दिन बाद मुसलमान हो जाय तो क्या उसे अपना पद ख़ाली कर देना होगा?

अन्त में अल्पसंख्यक समुदाय-समिति स्थगित हो गई। यदि इस समस्या का समाधान भारतीय लोकनेता भविष्य में जल्दी ही न कर सकेंगे तो उसके समाधान का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार को लेना पड़ेगा। भारत में संघ-सरकार की स्थापना के लिए अल्पसंख्यकों के मसलों का निपट जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(३)

इसके बाद सङ्घ-योजना-समिति में सेना-सम्बन्धी रिपोर्ट पर विचार हुआ। सेना के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में यह कहा गया है—

"पिछले अधिवेशन में सेना-सम्बन्धी कमेटी ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि भारतीयों के हाथ में सेना का भार अधिकाधिक आता जाय। सेना-संबन्धी विचार

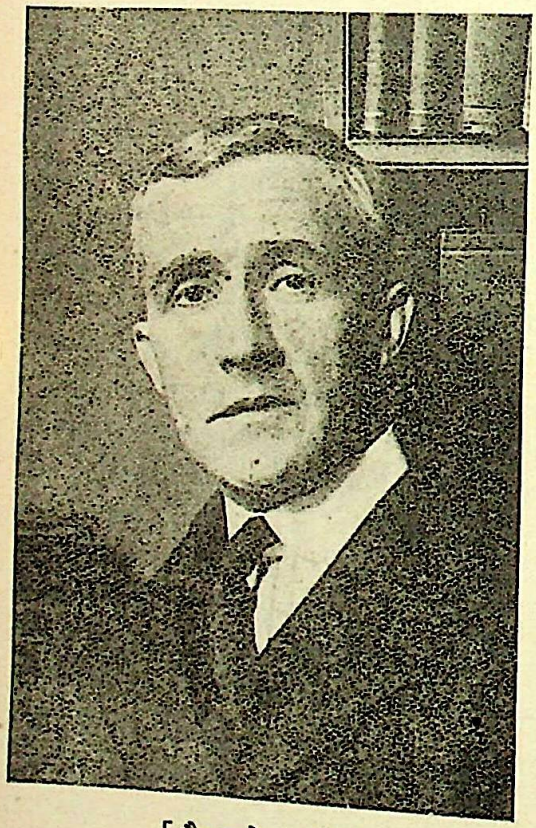

[कैप्टन वेजउड बेन]

इसी आधार पर स्थित हैं। कुछ सदस्यों का अनुरोध है कि भारत को तब तक सच्चा उत्तरदायित्व न दिया जाय जब तक भारत में सेना का नियन्त्रण (इसमें गोरी सेना भी शामिल रहेगी) तुरन्त भारतीय मन्त्री के हाथ में नहीं सौंप दिया जाता। आवश्यक हो तो इसके साथ कुछ संरक्षण भी रहें। पर बहुमत इस विचार से सहमत नहीं था। इसी लिए हम पिछले अधिवेशन की योजना-समिति के विचार का समर्थन करते हैं कि अ तक पार्लामेंट के हाथ में जो अधिकार थे वे सब भारत के एक मुश्त नहीं दिये जा सकते तथा परिवर्तन-काल में गवर्नर जनरल सेना के लिए उत्तरदायी रहेंगे और उनका सहायक मन्त्री उन्हीं के प्रति ज़िम्मेदार रहेगा, व्यवस्थापिका सभा के प्रति नहीं।

"सेना-मंत्री का अन्य मन्त्रियों और व्यवस्थापिका सभा से क्या संबंध रहेगा—यह धीरे धीरे शासन-प्रथा के अनुसार तय होने को छोड़ दिया जाय।

"सेना के ख़र्च के लिए रुपये देने के संबंध में हर साल वोट न लिये जायँ। पर निश्चित समय के लिए समझौता

[हिज़ हाईनेस महाराजा गायकवाड़, बड़ौदा]

करके एक आंकड़ा तय कर लिया जाय। उस समय के अन्त में व्यवस्थापक सभा और सम्राट् के प्रतिनिधि उस पर विचार करें तथा तात्कालिक आवश्यकता उपस्थित

होने पर गवर्नर जनरल का ख़र्च करने का विशेष अधिकार रहे। ('भारत' से)"

इस पर महात्मा गांधी ने कांग्रेस की राय प्रकट की। आपने कहा कि मैं यहाँ इसलिए भेजा गया हूँ कि मैं हर एक सुलभ उपायों-द्वारा भारत के भावी प्रश्नों को ठीक करने और कराने का प्रयत्न करूँ। कांग्रेस कहती है कि सेना का पूर्ण अधिकार भारत के हाथ में दे देना चाहिए। बाहरी रक्षा और भीतरी शान्ति दोनों बातें भारतीयों के हाथ में रहनी चाहिए। आज जो भारत में सेना है वह चाहे अँगरेज़ी सेना है या भारतीय पर मेरे ख़याल से वह भारत पर क़ब्ज़ा बनाये रखने के लिए ही है। जब तक कोई सेना में है चाहे वह मदरासी हो, गोरखा हो, राजपूत हो या कोई भी हो, हमारे लिए विदेशी है। न हम उनसे बोल सकते हैं और न वे हमसे बोल सकते हैं। हम सेना पर अपना नियन्त्रण रखना चाहते हैं, परन्तु उसके साथ साथ ब्रिटेन की सदिच्छा भी चाहते हैं। मैं यह चाहता हूँ कि जो ब्रिटिश-सेना भारत में रहे वह ब्रिटिश बनकर न रहे, बरन भारतीय बनकर रहे। अन्य देशों ही के मुक़ाबिले में नहीं, बरन मौक़ा पड़ने पर इँग्लैंड के भी मुक़ाबिले में वह भारत का रक्षक बने। यह मेरे जीवन का स्वप्न है जिसे मैं सत्यरूप में देखना चाहता हूँ।

लार्ड सैंकी ने कहा कि महात्माजी, मैंने बड़े ध्यान से आपकी बात सुनी है। आप जिसे अपना स्वप्न कहते हैं—वह और उसके आदर्श दोनों ने मुझे प्रभावित किया है। आपके स्वप्न को तो मैं अपना नहीं सकता, पर आदर्शों को अपना सकता हूँ। परन्तु मैं आपकी इस राय से सहमत नहीं हूँ कि ब्रिटिश-सेना एक-दम हटा ली जाय।

श्री शास्त्रीजी ने कहा कि सेना का अधिकार शीघ्र से शीघ्र गवर्नर जनरल के हाथ से व्यवस्थापक मंडल के हाथ में आ जाना चाहिए। परिवर्तन-काल में सेना और परराष्ट्र-सम्बन्ध संरक्षित विषय ही रहें तो अच्छा है। सेना-सदस्य भारतीय हो।

(४)

इस प्रकार जब सेना-सम्बन्धी मसले पर प्रतिनिधियों के मत प्रकाश में आ गये तब व्यापारिक मसले पर बहस शुरू हुई। इस मसले पर भारत-निवासी योरपीय व्यापारियों के प्रतिनिधि मिस्टर वेंथल ने कहा कि ब्रिटिश व्यापारियों की यह कदापि इच्छा नहीं है कि भारत की शासन-विधान-सम्बन्धी योजना रोकी जाय। हाँ, विधान-योजना में अँगरेज़ व्यापारियों की रक्षा का वचन स्पष्ट शब्दों में निर्विवाद रूप से होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, वे अधिकार-परिवर्तन में अपनी सम्मति न देंगे। भारत की वर्तमान उन्नति मुख्यतः अँगरेज़ व्यापारियों की पूँजी के ही कारण हुई है। हमारा पहला दावा यह है कि हमारे अधिकार स्वीकार किये जायँ, क्योंकि इसमें राष्ट्र का भला है। यह न्याय का ही प्रश्न नहीं, आवश्यकता का भी प्रश्न है। बाहरी पूँजी राष्ट्रीय उन्नति में बाधक होती है, अब यह बात मानी नहीं जाती। सरकार अपने देश की स्वामिनी रहे। योरपीय जो कुछ माँगते हैं उससे देश के मुख्य व्यवसायों की सहायता करने और उन्हें राष्ट्र के नियन्त्रण में लाने में बाधा न पड़ेगी। यदि उसे वर्तमान कम्पनियों के अधिकार प्राप्त करना आवश्यक हो तो कम्पनियों को हरजाना दे देना चाहिए। राष्ट्र सहायता देने में पक्षपात न करे। यदि इन सामान्य सिद्धान्तों पर आपस में समझौता हो जाय तो दो देशों में एक सम्बन्ध स्थापित हो जा गा जिसका आधार समाज-हित होगा। ऐसे समझौते में न केवल राष्ट्र की बरन साम्राज्य की वस्तुओं को पहले पसन्द करने का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय।

सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा कि नेहरू-योजना एक ऐसी 'चीज़' है जो इन सब बातों का आधार बनने का दावा कर सकती है। इस योजना के जिस नागरिक शब्द पर लार्ड रीडिङ्ग ने संशय किया है उससे यह मतलब नहीं निकलता कि अँगरेज़ों को इँगलैंड के नागरिक अधिकारों से हाथ धोना ही पड़ेगा। व्यापारिक भेद-भाव के सम्बन्ध में श्री वेंथल ने जो कुछ कहा है मैं समझता हूँ कि उसका यह मतलब न होगा कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल को देशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन और सहायता देने का अधिकार न होना चाहिए।

संक्षेप में यह समझ लेना चाहिए कि योरपीय व्यापारी भारत में अपने व्यापार का सिक्का जमाये रखना चाहते हैं और वे हर प्रकार के संरक्षणों को चाहते हैं, जिससे भारत में उनका व्यापार निर्विघ्नता-पूर्वक चलता रहे। किसी तरह की बाधा न उपस्थित हो।

(५)

तदनन्तर आर्थिक प्रबन्ध का मसला उपस्थित किया गया। इस मसले पर भी प्रतिनिधियों ने समुचित रूप से अपने विचार प्रकट किये। यहाँ इस विषय की बहस पर

[मिस्टर मिरज़ा एम० इस्माइल
सी० आई० ई०, दीवान मैसूर राज्य]

प्रकाश डालने के लिए लार्ड रीडिंग और महात्माजी के कथन का कुछ अंश 'भारत से' उद्धृत करते हैं—

"आर्थिक प्रबन्ध का विषय विचारार्थ उपस्थित करने के पहले अध्यक्ष लार्ड सैंकी ने कहा कि इस सम्बन्ध में असावधानी और संरक्षणता की ढिलाई का परिणाम इस समय इँगलेंड और भारत दोनों जगहों में बुरा ही होगा। समिति को यह भी याद रखना चाहिए कि संरक्षण भारत के ही हित में होना चाहिए। इस समय बिना सोचे कोई बात कह डालने से उसका बुरा परिणाम

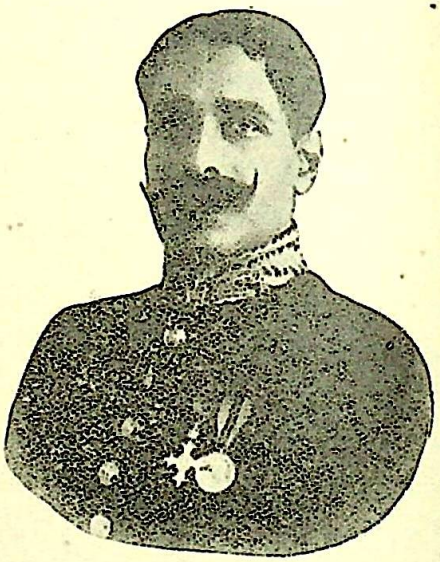

[नवाब छतारी]

इँगलेंड, भारत तथा अन्यत्र भी दिखाई देगा। यद्यपि मैं विचार की सीमा संकुचित करना नहीं चाहता, पर भारत के ही हित के लिए यह आवश्यक है कि आप लोग बहुत सोच-समझ कर कोई बात कहें।

लार्ड रीडिंग ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि भारत और ब्रिटेन का आर्थिक सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। पिछले अधिवेशन के बाद से ऐसी कोई भी बात नहीं हुई है जिससे आर्थिक संरक्षणों की आवश्यकता के विषय में मेरा विचार बदल गया हो। इस समय जब दुनिया भर की आर्थिक स्थिति में जैसी गड़बड़ी मची हुई है उसके विचार से इस समय कोई बहुत ही निश्चित व्यवस्था करना अभीष्ट नहीं है। हमें समझौता कर लेने के लिए हर तरह यत्न करना चाहिए; पर मैं अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह समझते हुए कहने को बाध्य हूँ कि अगर सरकार यह कहती है कि भारत के अर्थ-प्रबन्ध की पूरी ज़िम्मेदारी अब भारत को सौंप दी जानी चाहिए

तो वहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना होना आवश्यक होगी। भारत की आर्थिक स्थिति पर इसका क्या असर होगा इस विषय में कोई भविष्यवाणी करने में तो मुझे बहुत ज़्यादा हिचकिचाहट होगी, पर यह बात मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि यह भारत के लिए संकटजनक होगा। इसका कारण यह नहीं कि भारत में किसी बात की कमी है, बल्कि यह है कि उसकी स्थिति साख के साथ बँधी हुई है। भारत को ब्रिटेन में भारी रक़म का ऋण लेने की आवश्यकता होगी। यदि यहाँ के लोगों को डरा देनेवाली कोई भी बात हो गई तो इसका परिणाम भारत की आर्थिक स्थिति के लिए बहुत ही बुरा होगा। कमेटी को याद रखना चाहिए कि ये बातें मैंने मंत्रिमण्डल के प्रतिनिधि की हैसियत से नहीं कही हैं, बल्कि ये मेरे निजी विचार हैं, जिन्हें भारत की सच्ची भलाई की दृष्टि से प्रेरित होकर कह रहा हूँ कि कोई ऐसा तस्फ़िया हो जाय जिसे दोनों देश मान सकें और साथ ही जिससे महाजनों का विश्वास तथा भारत की साख पूर्ववत् बनी रहे।

अर्थ सम्बन्धी-संरक्षणों का विरोध करते हुए महात्मा गांधी ने कहा कि विदेशियों के हित की रक्षा करने के लिए भारतीय हित की उपेक्षा किये जाने के मैं बहुत से उदाहरण दे सकता हूँ, जैसे भारतीय अर्थविशेषज्ञों के घोर विरोध करते हुए भी रुपये की दर १ पेंस का निश्चित कर देना। मैं संभवतः ऐसे किसी भी संरक्षण का समर्थन नहीं करूँगा जिससे भारतीय अर्थमन्त्री के अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने में कोई बाधा पड़ती हो। यदि भारत को केन्द्रीय ज़िम्मेदारी मिलनेवाली हो तो मैं अर्थ-प्रबन्ध पर पूरा अधिकार चाहता हूँ। मैं तब तक किसी संरक्षण के लिए सलाह देने को तैयार नहीं हूँ जब तक भारत की सेना और सिविल सर्विस पर पूरा अधिकार न हो। मैं इस विचार का घोर विरोध करता हूँ कि भारतीयों को अधिकार देते ही भारत में गड़बड़ मच जायगा।"

(६)

इस प्रकार राउंडटेबल कान्फ़रेंस की कार्यवाही भले प्रकार वाद-विवाद के साथ समाप्त हुई और भारत के मुख्य मुख्य प्रश्नों के सुलझाने का मार्ग अधिक प्रशस्त हो गया।

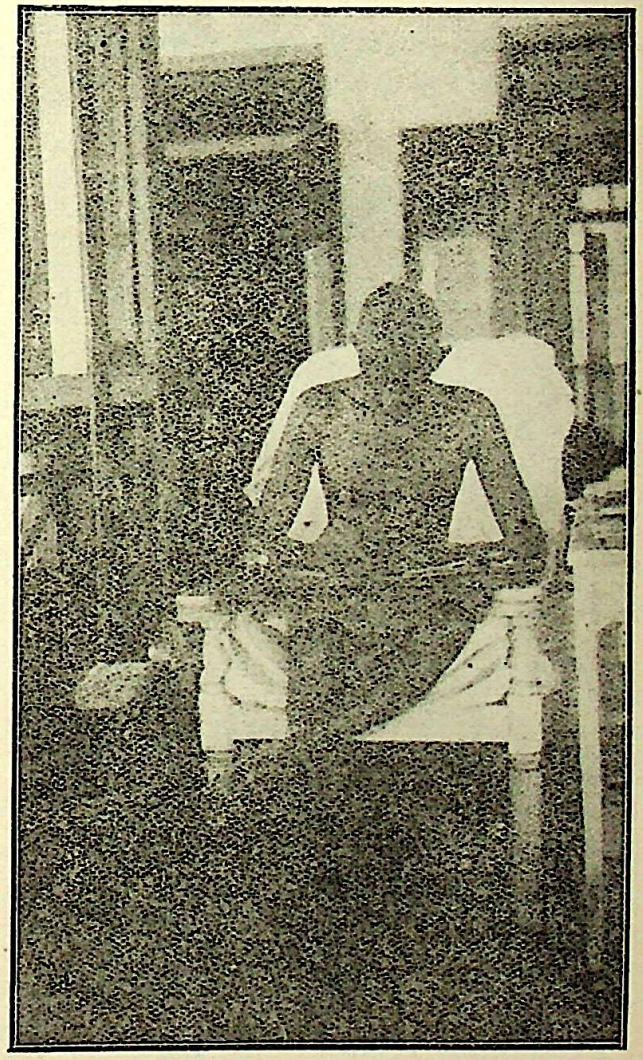

[महात्मा गान्धी]

अधिवेशन को समाप्त करते हुए प्रधान मन्त्री रामसे मैकडानल ने अपना महत्त्वपूर्ण वक्तव्य किया। उसमें उन्होंने कहा है कि—

"सम्राट् की सरकार का विचार है कि उत्तरदायित्व

शासन का भार व्यवस्थापिका सभा, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय पर एक निश्चित समय तक ऐसे संरक्षणों के साथ दे दिया जाय जो उस निश्चित समय के लिए आवश्यक समझे जायँ, उन संरक्षणों के साथ साथ अन्य आपत्तिकालिक बातों के सम्बन्ध में उचित कार्रवाई करने का अधिकार सरकार के हाथ में रक्खा जाय तथा अल्प-संख्यक समुदायों के हितों की रक्षा का प्रश्न भी संरक्षण के

[पण्डित मदनमोहन मालवीय]

रूप में रक्खे जायँ। ऐसे संरक्षणों के स्वीकार करते समय सम्राट् की सरकार भारत के भावों का पूरा ख़याल करेगी जिससे उसको स्वराज्य की ओर अग्रसर होने में कोई बाधा न खड़ी हो।

"सरकार 'फ़ैडरल-भारत' में पूर्ण विश्वास करती है। प्रान्तों को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जायगी।

"सीमा-प्रान्त शीघ्र एक गवर्नर के अधिकार में कर दिया जायगा।

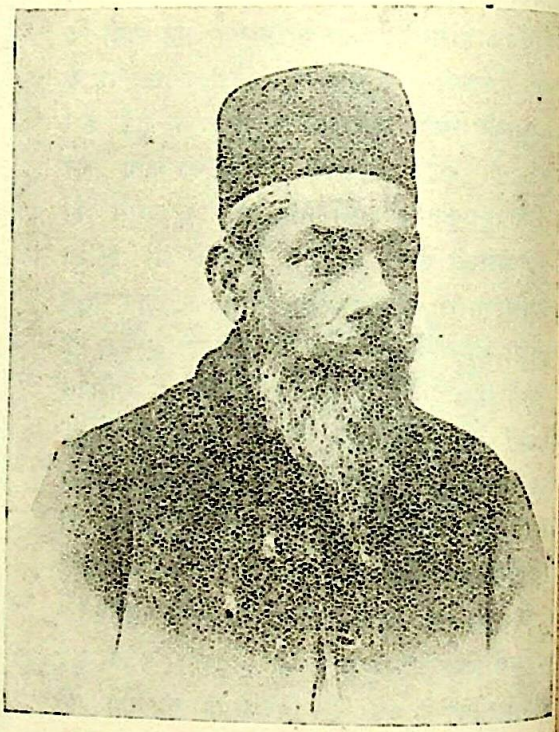

[डाक्टर बी० एस० मुंजे, नागपुर]

"सिन्ध प्रान्त भी अलग कर दिया जायगा यदि सिन्ध की आर्थिक दशा उस योग्य हुई। इसके लिए एक कान्फ़्रेंस की जायगी।

"मैं आप लोगों से फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप साम्प्रदायिक समस्या को सुलझावें नहीं तो सरकार को लाचार होकर कोई आपत्तिकालिक विधान बनाना पड़ेगा।

"एक कार्य-कारिणी समिति बनाई जायगी जो कान्फ़रेंस-सम्बन्धी कामों को भारत में करेगी उसका यह कर्त्तव्य होगा कि वह हम लोगों से सम्बन्ध बनाये रहे। अन्त में सरकार उसकी तमाम कार्रवाइयों को देखकर विचार करेगी। जो विधान बनेगा सभी जातियों और

उपजातियों के अनुकूल बनेगा। उसमें वर्ण-विभेद का विचार न किया जायगा।"

प्रधान मन्त्री की घोषणा के पश्चात् महात्मा ने धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया और प्रधान मन्त्री को उनके परिश्रम और उत्साह के लिए धन्यवाद दिया।

इस प्रकार गोलमेज़ सभा का यह शाही अधिवेशन बड़ी धूमधाम से समाप्त हुआ। इसके दोनों अधिवेशनों में भारतीय शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण विचार-विनिमय हुआ है उसका शुभ परिणाम अभी भविष्य की गोद में है। भगवान् करे इस महत् कार्य के द्वारा भारत को आत्मशासन के अधिकार प्राप्त हो जायँ।

—नरसिंहराम शुक्ल

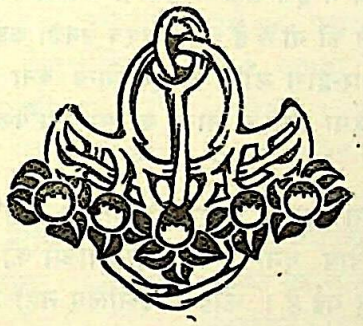

साहित्य-सदन चिरगाँव, झाँसी, की उत्तमोत्तम पुस्तकें।

(१) मेघनादवध	३॥)	(६) वीरांगना	१)
(२) गीतारहस्य	२॥)	(७) त्रिपथगा	१॥)
(३) गुरुकुल	२)	(८) पलासी का युद्ध	१॥)
(४) भारतभारती (सजिल्द)	१॥)	(९) आर्द्रा	१)
,, सादा संस्करण	१)	(१०) सुमन	१)
(५) जयद्रथवध सजिल्द	१)		
,, सादा संस्करण	॥)		

इनके अतिरिक्त कविवर मैथिलीशरण गुप्त तथा सियारामशरण गुप्त की सभी पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

साम्प्रदायिक शान्ति

[साम्प्रदायिक समस्या भारत का एक कठिन प्रश्न है। इस सम्बन्ध में अनेक राजनीतिज्ञ अपने विचार बराबर प्रकट करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में इस लेख में बताया गया है कि इस समस्या का मूल कारण मुसलमानों की राजनैतिक दृष्टि से अपनी संख्या बढ़ाने की नीति है। अतएव उनका कहना है कि ऐसी प्रवृत्ति को क़ानून बना कर रोकना चाहिए तथा बहुत शिक्षा प्रचार-द्वारा लोगों को इस योग्य बना देना चाहिए कि अपने से विरुद्ध धर्मवाले की संस्कृति का आदर करें। ऐसा करने से भारत का साम्प्रदायिक समस्या का उन्मूलन हो जायगा।]

आधुनिक युग में बात बात के लिए सरकार को दोष देना एक परिपाटी-सी हो गई है। कोई धनहीन है तो सरकार दोषी है, कोई अपढ़ है तो सरकार दोषी है, कोई बाल अथवा बेमेल विवाह करता है तो सरकार दोषी है, और यदि कोई अच्छा नागरिक नहीं है तो सरकार दोषी है। यह हमारे समय की एक विश्वव्यापी बहिर्मुखता है और हम भारतीय भी उसके काफ़ी प्रभाव में हैं, कदाचित् और देशों से अधिक हैं। इसी से हर बात के लिए हम अँगरेज़ी सरकार को भला-बुरा कह देते हैं।

कहा जाता है कि हिन्दू-मुसलमानों का कलह आधुनिक अँगरेज़ी नीति की उपज है, और पहले यहाँ इसका किसी भी रूप में नाम तक न था।

देशी राज्यों में ये झगड़े उतने नहीं होते। वहाँ हिन्दू-मुसलमान प्रजा बड़े मेल से रहती है। किन्तु इसका कारण यह नहीं है कि वहाँ अँगरेज़ी भेद-नीति नहीं चल पाती है। यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि वहाँ उनके बीच पारस्परिक द्वेष तथा कलह भावनाओं की कमी नहीं है। किन्तु लड़ वे जल्द इसलिए नहीं जाते कि उन्हें अपने शासकों की तरफ़दारी का ध्यान रहता है। बिना किसी अवज्ञा-भाव के यह कहा जा सकता है कि हिन्दू शासक मुसलमान प्रजा को अति तथा मुसलमान शासक को हिन्दू प्रजा की अति नहीं सही जायगी। सभी प्रजा जनों को इसका ध्यान रहता है। जहाँ जहाँ यह बात है, वहाँ वहाँ कलह नहीं होते। जहाँ शासकों की नीति इस विषय में ढीली है, वहाँ कलह हो ही जाती है।

प्राचीन काल के मुसलमानी साम्राज्यों की कथा निराली है। दो-एक काल को छोड़कर बाक़ी काल की बड़ी बुरा कहानी है। कोई हिन्दू अपने होश हवास में रह कर उस काल के चले जाने पर आँसू नहीं बहाता है। आँसू हमारे पूर्वज पहले काफ़ी बहा चुके हैं।

हाँ, हिन्दू-काल में एक-दम साम्प्रदायिक कलह का अभाव था, यह निर्विवाद है। परन्तु स्मरण रखने की बात उसके सम्बन्ध में यह है कि मुसलमानी सम्प्रदाय जैसा विषम सम्प्रदाय उस युग

व्यापी काल में था ही नहीं। अवैदिक सम्प्रदाय केवल बौद्धों तथा जैनियों के थे। किन्तु जैनी अथवा बौद्ध तथा वैदिक-धर्म के अनुयायियों में उतनी बड़ी विषमता नहीं है जो हिन्दू तथा मुसलमान के बीच में है। इन दो अवैदिक सम्प्रदायों का वैदिक धर्म से विरोध केवल एक विषय में है। इन्हें द्रव्य तथा पशुमय यज्ञ से घृणा है। परन्तु यह भेद कोई बड़ा भेद नहीं है। महावीर तथा बुद्ध से बहुत पहले ही भगवान् कृष्ण ने भी उनका विरोध किया था—"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप"। मूलतः भगवान् बुद्ध की शिक्षा में तथ्य देखनेवाले तथा उस पर आचरण करनेवाले इस प्रकार के कुछ वैदिक विचारक पूर्व से ही यहाँ मौजूद थे। और बाहरी व्यवहारों में जैनी अथवा बौद्ध वैदिक ही कहे जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृति उन सबकी एक है। इसलिए उनमें कलह के लिए स्थान ही नहीं है। इसी कारण 'हिन्दू भारत' में साम्प्रदायिक अशान्ति नहीं थी।

हिन्दू तथा मुसलमान धर्म ऐसे नहीं हैं। मुसलमानों के कुछ विश्वास हिन्दू-जाति के लिए घातक हैं। सभी मुसलमानों को हिन्दू को जैसे भी हो मुसलमान बनाने की बड़ी चिन्ता रहती है और इसको वे इस्लाम का अभिन्न अङ्ग समझते हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक दृष्टि से भी वे अपनी संख्या को बढ़ाने की धुन में लगे रहते हैं। उन्हें भावी विधान में अल्प-संख्यक रहना असह्य है। हिन्दू-जाति मुसलमानों की इस नीति से बहुत घबराती है। वह स्वयं अपनी संख्या बढ़ाने की चिन्ता में नहीं रहती, वरन इस भावना का विरोध भी करती है। अतः दूसरों की ऐसी हरकत उसे अनीति-मूलक मालूम होती है। यह भावना अतीत की अप्रिय स्मृति के सङ्ग हिन्दू-मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास तथा मनोमालिन्य उत्पन्न करती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू और मुसलमान के कभी कभी झगड़ पड़ने का कारण अँगरेज़ी राज्य की कोई नीति नहीं है, वरन मूलतः मुसलमान जाति की अनीति है जो कभी ऐतिहासिक घटना के रूप में और कभी प्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं को तङ्ग करती है। अनीति से हमारा मतलब है बलात्कार-प्रवृत्ति। केवल मुसलमानों के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने से हम उनसे असन्तुष्ट नहीं हैं। यदि उनका यह विश्वास है कि इस्लाम ही सभी धर्मों से उत्तम है और बिना उसे स्वीकार किये आत्मा को सद्गति नहीं मिल सकती है तो अवश्य ही उन्हें अपने धर्म का प्रचार करना चाहिए। परन्तु धर्मप्रचार तथा अपनी संख्या बढ़ाने के प्रचार में बड़ा अन्तर है। बौद्धों ने प्राचीन काल में धर्म-प्रचार किया, जिसका फल आज भी हमारे सामने है। लङ्का, ब्रह्मदेश, चीन तथा जापान आदि देशों ने भगवान् बुद्ध के आदेश को ग्रहण कर लिया और वे आज भी भारत का नैतिक उपकार मानते हैं। हिन्दुओं तथा उन देशों के निवासियों में कभी मनोमालिन्य नहीं हुआ। जिस समय प्रचार हुआ उस समय से अब तक मैत्री का भाव बराबर जारी है। आधुनिक काल में भी ईसाई पादरी धर्म-प्रचार का सुन्दर उदाहरण सामने रखते हैं। उस प्रचार की सभी प्रशंसा करते हैं। यद्यपि उनके प्रचार-कार्य से भी हिन्दुओं की संख्या प्रतिवर्ष कुछ घटती जाती है, तथापि उनसे हमारी कोई शिकायत नहीं है। हमारे और उनके बीच मनोमालिन्य अथवा अविश्वास नहीं है। हिन्दूईसाई झगड़ा नहीं होता है। स्वयं हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय आर्य-समाज दक्षिण-अफ्रीका आदि देशों में धर्म-प्रचार करता है। उपनिवेशों में हमारी कोई सत्ता नहीं है, तो भी वहाँ उसका प्रचारकार्य चलता है। आर्य-समाज से वहाँवालों का कोई झगड़ा नहीं है। इसका कारण स्पष्टरूप से यही है कि बौद्ध, ईसाई तथा आर्य-समाज की प्रचार-नीति प्रत्यक्ष तथा छलछद्म-रहित है। ये लोग किसी सत्य का जिसमें उनका पूरा विश्वास है, दूसरों

में प्रचार करते हैं। किन्तु इसकी चिन्ता नहीं करते कि वे दूसरे शीघ्रातिशीघ्र उनमें आकर मिल ही जायँ। मुसलमान ऐसा नहीं करते। उनकी यह नीति प्रतीत होती है कि पहले होनेवाले 'मुसलमान' हो जायँ, फिर इसलाम सीखेंगे। यदि हुए लोग नहीं भी सीख पाये तो उनके वंशज सीख सकते हैं। इसी भावना को लेकर अपने समय में मुसलमान-शासकों ने अनेक प्रकार के बलात्कार किये। आज जब वह सत्ता नहीं रही तब छल-छद्म का प्रयोग किया जाता है। धर्म की यह उनकी कल्पना तथा प्रचार की भावना बड़ी अटपट है। सभी अशान्तियों के मूल में कदाचित् यही वासना है। कदाचित् इसी लिए प्रायः सात-आठ वर्ष पहले डाक्टर एनी बेसेन्ट को अपने पत्र 'न्यूइंडिया' के एक अग्रलेख में लिखना पड़ा था कि इस्लाम जिस रूप में इस समय हिन्दुस्तान में है उस रूप में वह विश्वशान्ति का सदा विघातक रहेगा। बात कुछ ऐसी ही दीखती है।

मुसलमान धर्म की सत्य-भावना से उतना प्रेरित नहीं होते जितना कि सामाजिक अथवा राजनैतिक भावना से प्रेरित होते हैं। यह एक और बात से भी प्रमाणित होता है। भारत की स्वतन्त्रता की अवधि ज्यों-ज्यों निकट आती जाती है, त्यों-त्यों वे अधिकाधिक उग्र होते जाते हैं। मौलाना शौकतअली तथा जिन्ना आदि जो कुछ दिनों पहले कांग्रेस तथा महात्मा गांधी के दाहने हाथ थे, आज प्रत्यक्षरूप से कांग्रेस तथा महात्मा के ध्येय स्वराज्य में बे-सिर-पैर की अनेक बाधायें डाल रहे हैं। यहाँ तक कि एक विदेशी लार्ड सैंकी को भी श्रीयुत जिन्ना को डाँटना ही पड़ा कि आप भारत का हित नहीं चाहते। उनकी माँगें उन्हें छोड़ कर किसी अन्य को उचित नहीं जँचतीं। यदि उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता में अटल विश्वास होता तो 'विधान-संरक्षण' पर वे इतना बल न देते। पाश्चात्य देशों के माध्यमिक युग के ये विश्वास कि धर्म की रक्षा तथा भावी प्रचार के लिए राजनैतिक सत्ता का होना आवश्यक है, इस युग में शोभा नहीं देता। अब तो हम यह समझते हैं कि राजनीति तथा धर्म प्रथक् विषय हैं। दोनों का क्षेत्र अलग अलग है। राजनीति का सम्बन्ध है समाज के शासन-विषयक सङ्गठन से और धर्म का सम्बन्ध है व्यक्तियों के आत्मा से। एक सार्वजनिक जीवन का विषय है तो दूसरा व्यक्तिगत जीवन का। अर्थात् मूलतः धर्म पर राजनीति का कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए।

परन्तु हम यह भूलते नहीं हैं कि धर्म की ऐसी सूक्ष्म कल्पना अभी सबको यहाँ स्वीकार नहीं है। धर्म के नाम पर अनेक ऐसे कार्य किये जाते हैं जिससे वह एक सामाजिक रूप धारण कर लेता है। दृष्टान्त के लिए गौ की क़ुर्बानी, ताज़िया निकालना, रामलीला का बाजे-गाजे के सङ्ग जुलूस निकालना आदि व्यवहारों का नाम लिया जा सकता है। ये धर्म के अङ्ग समझे जाते हैं और इन्हें लेकर बहुत झगड़ा हुआ करते हैं। इस विषय में हिन्दू-मुसलमान दोनों समान रूप से दोषी हैं। क़साईख़ाने में हज़ारों गौवों का वध हुआ करता है। उससे हिन्दू-धर्म यदि लोप होने से बच सकता है तो मुसलमानों की क़ुर्बानी से उसका नाश कदापि नहीं हो सकेगा। वैसे ही मोटर आदि की ध्वनि से यदि इबादत नहीं बिगड़ती है जो नित्य की घटनायें हैं, तो साल में दो-एक बार हिन्दुओं के बाजे से इबादत नहीं बिगड़ जायगी। इन बातों को लेकर लड़ने से धर्म का अपमान होता है, धर्म को हीनता प्राप्त होती है। इन विश्वासों का शीघ्रातिशीघ्र नाश होना चाहिए। धर्म की स्थूल यह कल्पना भी साम्प्रदायिक अशान्ति का एक प्रधान कारण है। इसी को ध्यान में रखकर कबीर और नानक आदि ने धर्म का सुधार करना चाहा, जिससे हिन्दू-मुसलमानों में व्यर्थ का झगड़ा न हो। किन्तु मुसलमानों के वे और उनसे भी अधिक उनके अनुयायी वैरी हो गये। हिन्दू अलबत्ते उन्हें आज अपना अङ्ग ही समझते हैं। आज तक के अनुभव से यह तो कभी नहीं कहा जा सकता है कि आगे चल कर ये दोनों जातियाँ परस्पर मिल कर एक हो

जायँगी, परन्तु यह भावना अवश्य की जा सकती है कि दोनों धर्मों में ऐसे सुधार हो जायँ कि उनके माननेवाले धर्म की प्रधानता हृदय का विषय समझें, उसका सम्बन्ध अपने आन्तरिक जीवन से जोड़ें। इस विषय में हम दोनों को ईसाइयों से बहुत कुछ सीखना है। जैसे वे कहीं भी रह कर अपने धर्म की रक्षा कर सकते हैं, वैसे ही हमें भी वैसा करना सीखना चाहिए। यह बड़ी प्रशंसा की बात है कि ईसाई यहाँ 'विशेष प्रतिनिधित्व' के विरोधी हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत ही कम है। वे जानते हैं कि व्यवस्थापिका सभाओं-द्वारा महात्मा ईसा का धर्म नष्ट होने के भय में नहीं है। यह धार्मिक जीवन की स्तुत्य दृढ़ता है, और इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही होगी।

अब तक हमने साम्प्रदायिक कलहों के कारणों का विवेचन किया है। अब हमें कुछ उन उपायों का विचार करना है जिनसे भविष्य में ये न हो सकें। आज विलायत में जैसे हिन्दू-मुसलमान मैं-मैं और तू-तू में लगे हैं, अन्त में समझेंगे कि इससे काम नहीं सध सकता है। जैसे भी हो समझौता करना ही पड़ेगा। भारत में सबको सङ्ग सङ्ग रहना ही है, अँगरेज़ी सरकार का सहारा आज नहीं तो कुछ समय पश्चात् गया ही हुआ समझना चाहिए। जब हमें एक जगह रहना ही है तो मिल कर रहने के मार्ग का अनुसन्धान करना चाहिए।

ऊपर हमने कहा है कि साम्प्रदायिक अशान्ति का सबसे बड़ा कारण है मुसलमानों का दूसरों को मुसलमान बनाने का प्रयास। अतः हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि यह प्रयास बन्द हो जाय तो थोड़े ही समय में पारस्परिक सन्देह और शङ्का दूर हो जायगी और सभी मिल-जुल कर रहेंगे। दूसरों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना बन्द करने के लिए खानगी तौर से कोई सफल उपाय नहीं किया जा सकता है। इस कार्य को सरकार को ही अपने हाथ में लेना चाहिए और इसके विरुद्ध कड़े-से-कड़े नियम बनाने चाहिए। हिन्दू का मुसलमानों को हिन्दू बनाना, मुसलमानों का हिन्दुओं को मुसलमान बनाना, ईसाइयों का मुसलमानों और हिन्दुओं को ईसाई बनाना, अर्थात् किसी भी धर्मावलम्बी का अन्य को अपने धर्म में लाने की कोशिश करना नियम-विरुद्ध माना जाय और कोशिश करनेवाले को कड़ा दण्ड दिया जाय। जहाँ तक प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है, इँगलेंड में ऐसा ही नियम है। वहाँ 'कनवर्शन' नियम के विरुद्ध है। हाँ, यदि कोई व्यक्ति स्वतः अपने धार्मिक विचारों को परिवर्तित करना चाहे तो उसके लिए उसे पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी, उसमें कोई बाधा नहीं रहेगी। ऐसे पवित्तन हो सकेंगे। किन्तु परिवर्तन कराने का प्रयत्न तो और बात है। इसमें और उसमें बड़ा भेद है।

इस आशय का नियम बनाना हमें किसी भी दृष्टि से सरकार का अनुचित हस्तक्षेप नहीं प्रतीत होता है। इसे हम राज की 'धार्मिक निरपेक्षता' समझते हैं। यदि सरकार ऐसे राष्ट्र की प्रतिनिधि हो जिसमें अनेक मतमतान्तर के लोग हों तो उस दशा में सरकार का सबसे उचित तथा उत्तम यही मार्ग है। क्योंकि सिद्धान्ततः उसे सभी धर्मों और मतों के सत्य को स्वीकार करना चाहिए। और हमने जो प्रस्ताव किया है वह इसी सर्व-धर्म-सत्य-स्वीकृति का प्रत्यक्ष रूप होगा। किसी विचारवान् को इससे कोई आपत्ति नहीं होगी। यह नियम सभी प्रजा को सभी के विश्वासों का आदर करना सिखलायेगा, जिससे आगे चलकर शान्ति और सुख का लाभ होगा।

इस उपाय के सङ्ग सङ्ग एक दूसरे उपाय का भी प्रयोग होना चाहिए। वह है साधारण जनता में शिक्षा का बहुल प्रचार। ऊपर कहा गया है कि धर्म के नाम पर लोग बहुत से ऐसे कर्म करते हैं जो धर्म का कोई अङ्ग नहीं हैं और व्यर्थ के झगड़े उत्पन्न करते हैं। ऐसे झगड़ों में सम्मिलित होनेवाले प्रायः वही लोग हैं जो अशिक्षित हैं। शिक्षा-प्राप्त लोग बहुत कम लड़ते हैं। यदि योग्य शिक्षा का अच्छा प्रचार

हो तो साम्प्रदायिक झगड़े बहुत कम हो जायँगे। झगड़ते वही हैं जो न आधुनिक दुनिया को जानते हैं, न अपना दीन जानते हैं। दीन-दुनिया जाननेवाले विग्रह करते भी हैं तो उसमें सभ्यता होती है, उसमें वह उग्रता नहीं होती। हम उससे उतना नहीं डरते। हम लोग अपने को सभ्य ही कहते और हमारे अब तक के शासक अपने को और भी सभ्य घोषित करते हैं, तथापि अब तक इसमें कठिनाई से सात प्रतिशतक अपना नाम लिख सकते हैं! इससे लज्जा की बात और क्या हो सकती है? जहाँ शिक्षा को इतनी दयनीय न्यूनता हो वहाँ तो कुछ और भी भयङ्कर उपद्रव होते रहने चाहिए। यदा-कदा यत्र-तत्र सामाजिक शान्ति का भङ्ग होना कुछ भी नहीं है। यह ईश्वर की बड़ी महिमा है जो इस स्वल्प शिक्षा से भी हम इस तरह से रह रहे हैं।

इस शिक्षा के सङ्ग लोगों में अवश्य ही अपनी भाषा और साहित्य के साथ दूसरों की भाषा और साहित्य के अध्ययन की अधिकाधिक लालसा बढ़ेगी, जिससे फलतः एक दूसरे के लिए आदर-बुद्धि बढ़ेगी। उच्च शिक्षा-प्राप्त हिन्दू-मुसलमान सभी अँगरेज़ी आचार-विचार का बड़ा आदर करते हैं। उसका प्रधान कारण यही है कि हम अँगरेज़ी का विशेष रुचि से अध्ययन करते हैं। वैसे बहुत से हिन्दू मुसलमान-संस्कृति के भी प्रशंसक मिलेंगे। उसका कारण यह है कि हिन्दू उर्दू-फ़ारसी का काफ़ी अध्ययन करते हैं। यह बात मुसलमानों के लिए नहीं कही जा सकती। इस युग में मुसलमान हिन्दू-संस्कृति का एक-दम अध्ययन नहीं करते। भारत भर में ऐसे मुसलमानों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है जो हिन्दुओं की संस्कृति को समझते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उस पर यदि ध्यान दिया जाय तो हमें आशा है भावी राष्ट्र का बड़ा उपकार होगा। निकट भविष्य में हमें अपने देश का शासन-सूत्र अपने हाथों में लेना है। उसे भली भाँति चला सकने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हममें मेल हो। उस मेल की स्थापना में प्रत्येक राष्ट्र के पुत्र का सहयोग देना परम सौभाग्य की बात है।

—रामप्रसाद पाण्डे

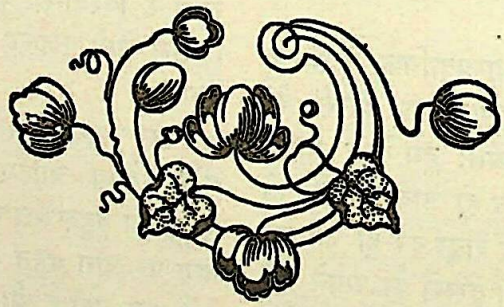

अमरता

(१)

है अमर वह मनुज जो न मरता कभी,
या अमर है वही जो कि मरकर हुआ ?
है न मरता वही जन्म पाता न जो,
है अजन्मा अमर कौन भू पर हुआ ?

(२)

है अमरता उसे ही मिली या मिले,
है मरा अन्य के हेतु या जो मरे।
है अमरता वहीं वीरता है जहाँ,
यश उसे क्यों मिले जो कि मन में डरे ?

(३)

नाम है राम का ज्यों अमर विश्व में,
नाम लंकेश का त्यों अमिट क्या नहीं ?
धर्म-रत एक था, पाप-रत दूसरा,
भेद है तो यही, खेद है तो यही ॥

(४)

चन्द की कीर्ति जग में रहेगी बनी,
चन्द्र की चन्द्रिका भी न चाहे रहे।
है अमर कवि वही जो कि प्रभु-साथ में,
प्राण देकर रहे उफ़ न मुँह से करे ॥

(५)

वीर राणा रहे ही प्रतापी रहे,
है अमरता मिली यदि उन्हें इसलिए।
"हम दबेंगे नहीं स्वप्न में शत्रु से"
प्रण निबाहा उन्होंने तो यह किसलिए ?

(६)

ध्रुव कृती था नहीं युद्ध-प्रणयी न था,
प्राण से भी अधिक पर उसे प्रण रहा।
क्या हुआ जो अमर नाम उसका हुआ।
न्याय के हेतु क्या दुख न उसने सहा ?

(७)

चक्रवर्ती महीपति शिवाजी न थे,
फिर अमर नाम कैसे उन्हें मिल गया।
बात विज्ञात यह क्या तुम्हें है नहीं ?
मुग़ल के वंश का तख़्त क्यों हिल गया ?

(८)

भोज का नाम क्यों रोज़ लेती मही ?
किस समर में कमर थी उन्होंने कसी ?
ठीक है पर गुणग्राहिता देख कर,
मुग्ध होके अमरता उन्हीं से फँसी ॥

(९)

नाम हो, सत्यवादी युधिष्ठिर रहे,
किन्तु क्यों कौरवों का बना नाम है ?
इन्दु पीयूषवर्षी बसा है जहाँ,
क्या वहीं पर नहीं राहु का धाम है ?

(१०)

क्या मिला श्रीगोसाईं को या सूर को ?
नाम की जो अमरता उन्हें मिल गई।
वीर-रस प्राप्त करके अमरता-कली,
क्या न भूषण में आकर स्वयं खिल गई॥

(११)

देव-दूषक रहा धर्म-ध्वंसक रहा,
किन्तु लंकेश क्या देश-रक्षक न था ?
नाम उसका मही पर रहे या नहीं,
पर विभीषण-सदृश देश-तक्षक न था॥

(१२)

धर्म के हेतु बाँधा गया था बली,
विश्व में नाम उसका बना है अभी।
देश के हेतु जो बलि हुआ या बँधा,
नाम उसका मिटा कौन सकता कभी ?

(१३)

हैं भले काम से नाम मिलते भले,
हैं बुरे नाम मिलते बुरे काम से।
है उजाला कहीं, है अँधेरा कहीं,
ये न दोनों हटेंगे जगद्धाम से॥

—रामचरित उपाध्याय

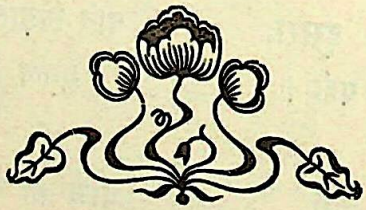

आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति

हिन्दी-साहित्य में सम्प्रति जिस प्रकार की कविता ने अपना एक स्थान अलग बना लिया है वह 'छायावाद' के नाम से पुकारी जाती है। छायावाद एक ऐसा शब्द है जिससे वर्तमान कविता का एवं तत्सम्बन्धी भावों का वास्तविक रूप में हृदयङ्गम कर लेना एक कठिन समस्या है। यही कारण है, हिन्दी में, विद्वानों ने इस कविता का बोध कराने के लिए कई नामों को सामने रखने की चेष्टा की है। किसी वस्तु का प्रारम्भ में स्वरूप अथवा नाम निर्धारित करने में ऐसी ही कठिनाइयाँ आया करती हैं और विद्वानों में बड़ा मतभेद भी हुआ करता है।

'छायावाद' शब्द से सम्प्रति तत्सम्बन्धी कविता के स्वरूप का हृदयङ्गम चाहे न हो सके, तो भी 'छायावाद' शब्द हिन्दी के कोष में आ गया है। 'छायावाद' शब्द निरर्थक तथा पङ्गु होते हुए भी रूढ़ि के रूप में प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार अनेक शब्दों को व्युत्पत्ति हुई है और वे भी इसी भाव को अभिव्यञ्जना में रूढ़ि का रूप धारण करते हैं।

छायावादी कविता ने हिन्दी में कविता के असीम रूप को सीमा-रूप में बाँधने की चेष्टा की है। उसने भावों की अभिव्यञ्जना को एक नवीन शैली में एवं नये नये प्रकार के छन्दों में व्यक्त किया है। मेरा अनुमान है, हिन्दी में इस प्रकार की कविता का आरम्भ विगत दस वर्षों के भीतर हुआ है। इन वर्षों में इस कविता का जो अमिट विकास हुआ है वह आधुनिक विद्वानों की आलोचना की सामग्री रहा है। पुराने विचार के विद्वान् एवं नये विचार के विद्वान् सबों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं। पुराने विचार के विद्वानों ने इस प्रकार की कविता होना श्रेष्ठ साहित्य की दिशा से भ्रष्ट हो जाना बताया है। और नये विचार के विद्वानों ने इस कविता को चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति एवं अनुभूति होने का एक-मात्र साधन बताया है। व्यक्तिगत रूप से इन पंक्तियों के लेखक का दोनों प्रकार के विचारों से थोड़ा थोड़ा मत-भेद है। पुराने विचारों के विद्वानों की दृष्टि से वह इस प्रकार की कविता को श्रेष्ठ साहित्य की दिशा से भ्रष्ट होना सम्पूर्णतः स्वीकार नहीं करता और न इस शैली के समर्थक विद्वानों के विचारों के अनुसार इसे सम्प्रति, चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति का साधन ही समझता है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अब इस कविता का स्वरूप एक प्रकार से निश्चित हो चुका है। इस कविता की धारा में जो गति थी वह अब एक ही वेग से चल रही है। अब इसमें न प्रारम्भ की-सी शिथिलता है और न अब इसमें एक ऐसा उद्दाम वेग है जो अत्यधिक उच्छृङ्खल होकर अपने मार्ग के कण्टकों को उखाड़ कर फेंक सकता है। इस कविता में अब

जिस प्रकार की कमी का अनुभव होने लगा है वही एक बात द्रष्टव्य है।

कवि भी साधक है और वह अपने अभिनव मार्ग से साधक की भाँति चिरन्तन सत्य को उपलब्धि करना चाहता है। चिरन्तन सत्य की एक-मात्र उपलब्धि ही उसकी सिद्धि है। चिरन्तन सत्य की उपलब्धि में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् तीनों बातों की प्रधानता रहा करती है। तीनों बातों को एक ही रूप में उपलब्ध करना ही सिद्धि है। त्रिवेणी का माहात्म्य गङ्गा, यमुना और सरस्वती की तीन भिन्न भिन्न धाराओं के कारण नहीं है। त्रिवेणी का माहात्म्य उनके सङ्गम से उनके एक रूप से ही है। त्रिवेणी में तीन धाराओं के सङ्गम ने ही इस अभिनव अपरूप वस्तु को रूप प्रदान किया है। यही कारण है, भारतीय संस्कृति में त्रिवेणी का एक महा पुनीत माहात्म्य है। त्रिवेणी की इस एकरूपता में हम सत्य भी पाते हैं, आनन्द भी पाते हैं और सौन्दर्य भी पाते हैं। तीनों धाराओं की एक रूपता ही सत्यम् शिवम् सुन्दरम् मन्त्र की प्रधान द्योतिका है। यदि हम सत्य को प्रकट करके देखना चाहते हैं तो हमें शिवम् तथा सुन्दरम् की महत्ता नहीं दिखाई पड़ती। यदि हम शिवम् को पृथक् करना चाहते हैं तो सत्यम् और सुन्दरम् को अनुभूति सम्पूर्णतया नहीं होती और इसी प्रकार यदि सुन्दरम् को देखते हैं तो सत्यम् और शिवम् की महिमा से हम अभिभूत नहीं होते। इसी प्रकार जब हम खिले हुए गुलाब की एक पँखुरी को लेते हैं तो हमें सुरभि और सुन्दरता तो मिलती है, परन्तु उसका सम्पूर्ण स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता। और तब, उसी सम्पूर्ण स्वरूप को देखना—उसी एकरूपता के आनन्द को, सौन्दर्य को और सत्य को प्राप्त करना हमारा एक-मात्र उद्देश हो जाता है। इस सम्पूर्णता को प्राप्त करने में अपूर्णता की जिस करुण वेदना की अभिव्यक्ति होती है—सीमारूप की असीमरूप में परिणति की एक जो पवित्र कामना है—उसी से और उसी की चेष्टा से हमें कविता की प्रगति के दर्शन होते हैं।

कहा गया है, 'भूमैव सुखं नाल्पे सुखमस्ति' भूमा—सम्पूर्णता ही हमारा सुख है, अल्प में—अपूर्णता में हमें सुख नहीं मिलता। यही कारण है, जब हम सत्य को, शिव को और सुन्दर को पृथक् पृथक् देखते हैं तब हमारी साधना अपूर्ण रह जाती है और हम उसके शाश्वत आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाते। हिन्दी के साधक कवियों ने इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए अनेक रूपकों को प्रतिष्ठित किया है। महात्मा कबीरदास ने 'भूमा' के शाश्वत आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए एक रूपक को हमारे सामने रख दिया है। वे कहते हैं, भाई, मैं तुम्हें इस भाव को और उसकी महत्ता को शब्दों में कैसे समझाऊँ? यह सभी जानते हैं, भारतीय स्त्रियाँ अपने स्वामी का नाम नहीं लेतीं। कारण यह है कि वे उसकी वास्तविक गरिमा को पहचानती हैं। वे जानती हैं कि यदि वे स्वामी का नाम लेंगी तो स्वामी और पत्नी दो भिन्न भिन्न वस्तु हो जायँगे। इस भिन्नता से सती के सतीत्व की महिमा नहीं पहचानी जा सकती। यदि स्त्री अपने स्वामी का नाम लेती है तो वह उससे पृथक् हो जाती है और फलतः उस स्वामी के मिलन का और उसके महत्त्व का वह आनन्द नहीं प्राप्त होगा। दोनों द्वैत होकर अद्वैत हैं और यह अद्वैत ही सम्पूर्णता है—भूमा है।

स्त्री—और विशेष कर भारतीय सती स्त्री, अपने स्वामी में इसी भूमा का दर्शन करती है। इस पवित्र दर्शन से सती के सच्चे सतीत्व की महिमा का परिचय मिलता है। अपने स्वामी में भूमा के दर्शन पाने से सती को अपने जीवन की कोई चिन्ता नहीं रहती—कोई मोह नहीं रहता। कारण कि 'नाल्पे सुखमस्ति'। अपूर्णता में उसे सुख नहीं है, पूर्णता ही उसका सुख है।

सती का स्वामी में सम्पूर्णता का प्राप्त करना एक बड़ी कठिन साधना है। कबीरदास का

हैं, यह साधना कठिन है। यह तो जैसे चौपड़ का खेल है। इस खेल में सती और स्वामी खेल खेलने के लिए बैठे हैं। जो एक को खेल में गिरा देगा उसकी विजय होगी और दूसरे की हार। परन्तु यह खेल बड़ा विचित्र है। इसमें हार होती ही नहीं है। यदि हार होती है तो भी विजय होती है और यदि विजय होती है तो फिर कहना ही क्या है?

तन मन धन बाजी लागी हो, चौसरिया के खेल में।
हारी तो पिय की भई रे जीती तो पिय मोर हो।
चौसरिया के खेल रे, जुग्ग मिलन की आस।
तन मन धन बाजी लागी हो, चौसरिया के खेल में॥

इस चौसर के खेल में मैंने अपना तन, मन, धन सब कुछ बाजी पर लगा दिया है और इस खेल को खेल रही हूँ। यदि इस खेल में हार गई तो मैं प्रियतम की हो जाऊँगी और जीत गई तो प्रियतम मेरे हो जायँगे। कहीं से भी हार होने की सम्भावना नहीं है। दोनों दिशाओं से जीत है। इस खेल में हर तरह से स्वामी मिलते हैं और स्वामी के मिलन की पूरी आशा है।

महात्मा कबीरदास ने स्वामी के इस मिलन में सत्य, आनन्द और सौन्दर्य सब कुछ उपलब्ध किया है। यह साधना—यह प्रेम-साधना सभी दिशाओं से उनके साधना-जन्य जीवन में सत्यमयी, आनन्दमयी और सौन्दर्यमयी हो उठी है। यही साधना कवि के जीवन में भी सत्यमयी, आनन्दमयी और सौन्दर्यमयी हो उठनी चाहिए। और तभी हमें कवि की कविता में सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् के दर्शन हो सकते हैं। कविता में केवल सत्य, शिव और सुन्दर शब्द लिख देने से हमें सत्य, शिव और सुन्दर की एकरूपा त्रिवेणी के दर्शन नहीं हो सकते। आधुनिक हिन्दी-कविता की अधिकांश रचनाओं में हमें यही एक बड़ी कमी दिखाई पड़ती है।

पुराने ढङ्ग की कविताओं में अलङ्कार की प्रधानता पाई जाती है। यदि कोई लड़कीवाला अपनी लड़की का विवाह करने के लिए वरपक्ष के सम्मुख अलङ्कार-आभूषणों का ढेर लगा कर यह कहे कि देखिए, मैं लड़की के विवाह में ये पचीसों प्रकार के अलङ्कार दे रहा हूँ तो उससे हमें कन्या के स्वरूप और सौन्दर्य का बिलकुल बोध नहीं होगा। जिस प्रकार लड़कीवाले अलङ्कार दिखाकर लड़की के स्वरूप और सौन्दर्य को हमें दिखाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार अनेक कवि कोमल-कान्त-पदावली से परिपूर्ण अलङ्कार दिखाकर हमें कविता-कामिनी के स्वरूप और सौन्दर्य का दर्शन कराना चाहते हैं। यह माया-मरीचिका है। माया-मरीचिका से प्यास नहीं बुझती। हिन्दी की अधिकांश आधुनिक कविता में भी यही बात पाई जाती है। पुरानी कविता के समान अनेक कवि अपनी शब्दावली और अलङ्कार से कविता-कामिनी का रूप दिखाना चाहते हैं। वस्तुतः शब्दावली से अपरूप रूप की सृष्टि होनी चाहिए और तभी हमें सत्य, शिव और सुन्दर की पवित्र त्रिवेणी की अनुभूति हो सकती है। कविगण कहते हैं, अमुक कविता में चिरन्तन सत्य का अधिवास है। परन्तु कविता में आनन्द और सौन्दर्य की कमी के कारण हमें सत्य के परिदर्शन नहीं होते।

कविता ललित-कला का एक अङ्ग है। उसकी अभिव्यक्ति भावों और छन्दों से होती है। छन्दों की भित्ति सङ्गीत की बाह्य पीठिका है। और सङ्गीत की भित्ति स्वर है। स्वर की बुनियाद पर छन्द खड़े किये जाते हैं। अतएव कविता में स्वर का सङ्गीत भी होना चाहिए। यदि हमें करुण-रस की जागृति करनी है तो हमें विहाग आदि के स्वर पर जाना पड़ेगा। तात्पर्य यह है, कविता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में सङ्गीत का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हमें कविता से सत्य की प्राप्ति होती है तो हमें छन्द और स्वर से सौन्दर्य और आनन्द की भी उपलब्धि होती है। जब सौन्दर्य और आनन्द की प्राप्ति होगी तभी हम सत्य के समग्र रूप की अनुभूति कर सकते हैं। इसी कसौटी पर आधुनिक हिन्दी-कविता की परीक्षा की जा सकती है। सम्प्रति अधिकांश कवि अपनी

कविता में सङ्गीत का आधार लेने की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं। कुछ कवि ऐसे हैं जो कविता में 'विहाग', 'सोहनी', 'पूर्वी', 'भैरवी' प्रभृति शब्द लिखकर सङ्गीत का आनन्द देना चाहते हैं। परन्तु शब्द-मात्र से आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है? कविता की धारा का आनन्द स्वर और छन्दों के अनुकूल होने से ही मिल सकता है।

पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीयुत जयशङ्कर-'प्रसाद' तथा पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रभृति कवियों ने अपनी कविता की धारा को सङ्गीत की ओर अग्रसर किया है। अपने अपने क्षेत्र में इन कवियों ने जिस कुशलता के साथ सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की त्रिवेणी की धारा बहाई है उससे उनकी अविरत साधना का एक सुस्पष्ट परिचय मिलता है।

अपूर्णता की वेदना और उसकी करुण अभिव्यक्ति से ही हमें आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति के दर्शन होते हैं। स्थिरता हमारे पतन का और प्रगति हमारे उत्थान का लक्षण है। सम्प्रति उत्थान की परिचेष्टा में हमें हिन्दी-साहित्य में अपूर्णता की वेदना का जो सकरुण अनुभव होता है वह हमारे कवि-जगत् की भावी सफलता का एक काल्पनिक रूप है। इन पंक्तियों का लेखक असीम धैर्य के साथ उस काल्पनिक रूप के सजीव रूप को देखने का एकान्त अभिलाषी है।

—मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा

रूबिया

रूस की मशहूर ज़ारशाही का करुण दृश्य व विचित्र प्रेम देखने के लिए रूबिया उपन्यास पढ़िए। पुस्तक इतनी मज़ेदार और रोचक है कि बिना पूरी पढ़े छोड़ने को जी नहीं चाहता। चित्रों ने तो दुगुनी शोभा कर दी है।

मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया।

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

स्नेहमयी

[१]

मुझे ईश्वर की भूल पर हँसी आती है। जहाँ तक मेरी सृष्टि का सम्बन्ध है, मैं उसे मूर्ख ही कहूँगा। अमरीका के न्यूयार्क नामक नगर में जन्म देने के लिए मैं उसका कृतज्ञ हो सकता हूँ। परन्तु उसकी इस भूल को मैं माफ़ नहीं कर सकता कि उसने मुझे हिन्दुस्तानी के घर में जन्म क्यों दिया? हिन्दुस्तानी संसार में, कम-से-कम अमरीका के न्यूयार्क नामक नगर में, घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। मैं सोचता हूँ कि मैंने कोई क़सूर नहीं किया जो घृणा और तिरस्कार का पात्र बनूँ। पर कानों में जैसे कोई कहता है—यहाँ हिन्दुस्तानी को मान कहाँ? मान की इच्छा थी तो अमरीकन के घर में जन्म लेता। पर इस प्रकार कहनेवाले यह नहीं सोचते कि यह क़सूर ईश्वर का है, मेरा नहीं।

ज्यों ज्यों मैं बड़ा हुआ, त्यों त्यों अपमान का यह बबूल भी मेरे हृदय में काँटे बिखेरता गया। अप-टु-डेट अमरीकन पोशाक में रहने पर भी लोग न मालूम कैसे हिन्दुस्तानी समझ लेते थे? मैं शरीर से काला नहीं था, गोरा था—काफ़ी गोरा। तब भी इस अपमान का शिकार बना हुआ था।

पर ख़ैर एक घटना से ढाढ़स हो चला था। इधर अमरीकन स्त्रियाँ हिन्दुस्तानियों से ब्याह करने लगी थीं, और खूब खुलकर ब्याह करने लगी थीं। शुरू में स्त्रियों को इस कार्य्य से कुछ अमरीकनों ने विमुख करने का प्रयत्न किया था। परन्तु अन्त में वे सफल न हो सके और हिन्दुस्तानी घरों में बहुसंख्यक अमरीकन महिलायें दिखलाई देने लगीं। न्यूयार्क में दो हज़ार से कम हिन्दुस्तानी न होंगे और वे सब अब अमरीकनों के साथ किसी न किसी प्रकार सामाजिक सूत्र में बँध रहे हैं। उन्हीं में एक मैं भी हूँ और मैं यह कह सकता हूँ कि अमरीकनों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की जितनी चेष्टा मैंने की है उतनी कदाचित् ही किसी हिन्दुस्तानी ने की हो। जब अमरीका में जन्म मिला है तब अमरीकन बन कर क्यों न रहें? यही मेरा उद्देश सदा रहा है। न्यूयार्क में हिन्दुस्तानी बनने से क्या लाभ? और फिर मुझको हिन्दुस्तान कभी जाना भी नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि वह देश दुनिया के पर्दे से ही मिट जाय! वह उन हिन्दुस्तानियों के लिए कलङ्क है जो उस देश से बाहर रहते हैं।

वयस्क होने पर एक अमरीकन लड़की से मैंने प्रेम की भिक्षा माँगी। उससे मैंने कहा—मेरी स्त्री, मेरी रानी, मेरी हृदयेश्वरी बन जाओ। तुम्हारे पीछे पागल कुत्ते की भाँति दौड़ता रहूँगा।

उसने पूँछा—तुम इण्डियन प्रिंस हो, राजा हो?

मैंने कहा—नहीं, मैं हिन्दुस्तानी की अपेक्षा अमरीकन अधिक हूँ।

"तब मैं तुम्हारे साथ ब्याह नहीं कर सकती। मुझे वह हिन्दुस्तानी चाहिए जिसे अँगरेज़ लोग राजा

या प्रिंस कहते हैं। अमरीकनों से मुझे घृणा है। इनके व्यापारिक कार्य्य मुझे पसन्द नहीं हैं। राजा से व्याह करके मैं परदेश में जाना चाहती हूँ।"

मैं अपना मन मसोस कर रह गया। जी में आया आत्म-हत्या कर लूँ, पर न जाने क्या सोच कर रह गया। अमरीका की स्त्रियाँ बड़ी ही कठोर-हृदया होती हैं। प्रेमी युवकों की पीड़ा समझने की बुद्धि ईश्वर ने उन्हें नहीं दी। इसी कारण प्रति-वर्ष हज़ारों अमरीकन पुरुष स्त्रियों से तिरस्कृत होकर आत्महत्या करते हैं। पर जब मैं पूर्णरूप से अमरीकन नहीं था तब आत्महत्या करने में ही क अमरीकन बन जाता।

मेरे भाग्य का सितारा उस दिन चमका ज पृथ्वी के गर्भ में मेरी एक गोरी महिला से भेंट हुई जो लोग न्यूयार्क के बाशिन्दे नहीं हैं उन्हें पृथ्वी के गर्भ का ज़िक्र सुनकर ज़रा आश्चर्य होगा। बहु कम यात्री अपनी यात्रा की जल्दी में न्यूयार्क नीचे बसे हुए इस दूसरे न्यूयार्क को देख पाते हैं यहाँ पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर एक ख़ासा शहर ब हुआ है। होटल, सिनेमा, क्लब किसी बात की क

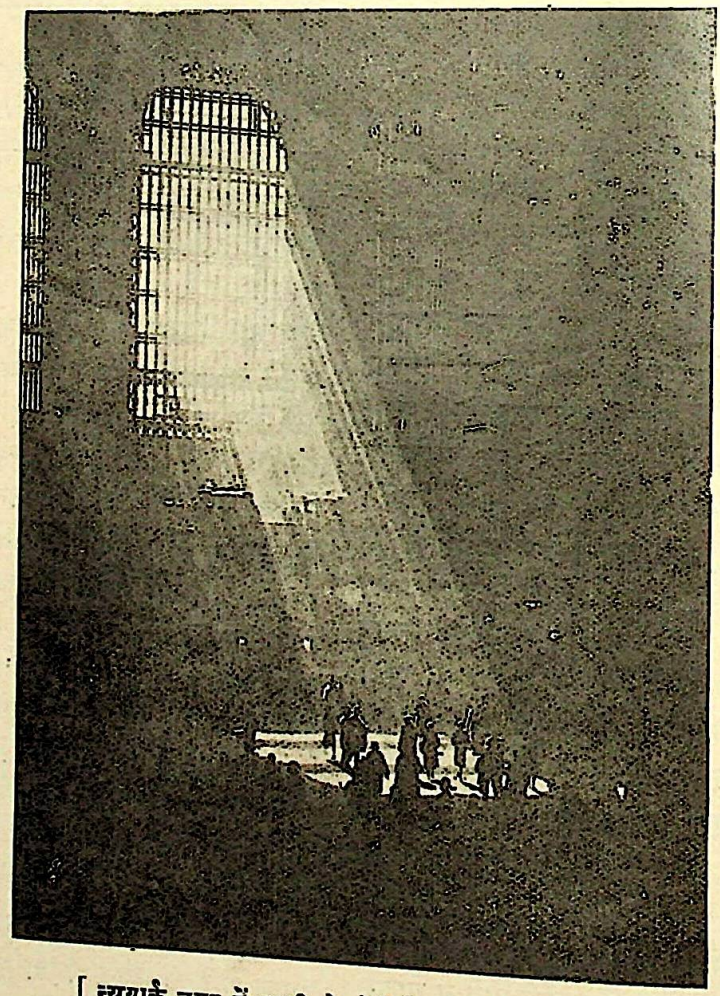

[न्यूयार्क नगर में पृथ्वी के नीचे रेल का एक स्टेशन]

नहीं है। नीचे ही नीचे बड़ी बड़ी रेलगाड़ियाँ चलती हैं। स्टेशन तो ऐसे ऐसे बड़े बने हैं कि उनमें तीस हज़ार आदमियों की भीड़ कोई भीड़ ही नहीं समझी जाती।

उस दिन ऐसे ही एक स्टेशन पर मैं बैठा हुआ पृथ्वी के ऊपर लगी खिड़की से आनेवाली धूप का मज़ा ले रहा था। मैंने अनुभव किया कि सूर्य्य के प्रकाश में चमकता हुआ मेरा मुखमंडल नीली आँखों के एक जोड़े को अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वे आँखें मुझ पर लगी थीं, मेरी ओर आकर्षित थीं। मैंने भी उस दिशा की ओर एक प्रकार के आकर्षण का अनुभव किया। मैंने देखा कि पृथ्वी के उस अन्धकारमय प्रदेश में प्रेम-देवता रवि-रश्मियों में रँग कर अपना सोने का तीर चमका रहा है। मैं स्वेच्छापूर्वक उस तीर का निशाना बन गया।

वह स्त्री मेरे कुछ क़रीब आई। कुछ मुस्कुराई और बोली—मैं आपका परिचय प्राप्त करना चाहती हूँ। न जाने क्यों आपसे बातें करने को जी चाहता है?

जीवन में यह प्रथम अवसर था जब एक गोरी रमणी ने मुझे इस प्रकार सम्बोधित किया था। मैंने उत्तर दिया—धन्यवाद। आप से बातें करके मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आपके दर्शन हुए।

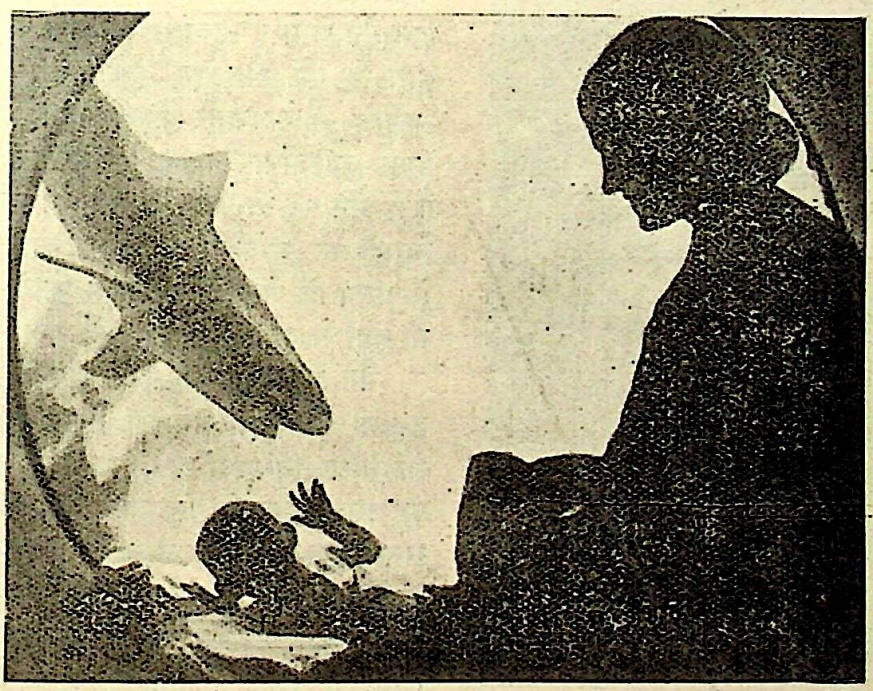

[समुद्र के गर्भ में मछलियाँ काँच से टकरा कर लौट जाती हैं।]

उसने पूछा—आप हिन्दुस्तानी जान पड़ते हैं?

"कहने को तुम चाहे जो कह सकती हो। पर अमरीका में जन्म लेने के कारण मैं अपने को अमरीकन ही समझता हूँ।"

"क्या ही अच्छा होता यदि आप पूरे हिन्दुस्तानी होते?"

"क्या आप मेरा अपमान करने के लिए इस प्रकार कह रही हैं?"

"नहीं, नहीं, हृदय से कहती हूँ। मुझे हिन्दुस्तानी बहुत पसन्द हैं। मेरा ख़याल है कि दुनिया में उनके जैसे सरल और स्नेही मनुष्य अन्यत्र नहीं मिलेंगे। ईश्वर मुझे दूसरे जन्म में हिन्दुस्तानी की कन्या और हिन्दुस्तानी की ही स्त्री बनावे।"

[स्काटलैंड में विवाह की एक पुरानी प्रथा जिसमें पति स्त्री को उसकी माँ की गोद से लेकर भागता है।]

मैंने अवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया। तुरन्त मेरे मुँह से निकल गया—दूसरे जन्म में ईश्वर तुम्हारी पहली इच्छा पूर्ण करे। पर तुम्हारी दूसरी इच्छा मैं इसी जन्म में, आज, अभी, इसी समय पूरी कर सकता हूँ।

उसके सफ़ेद गालों पर लज्जा की लाली दौड़ गई और उसके आनन्दोल्लसित अधरों से ये शब्द फूट पड़े—सच? क्या सच?

मैंने उसके क़रीब जाकर कहा—हाँ सच, हज़ार बार सच।

उसने अपने दाहने हाथ की तीनों चंचल उँगलियों को मेरे होंठों पर रख कर कहा—मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। आज से तुम मेरे हो।

[२]

ब्याह करने के बाद सबको द्रव्योपार्जन की सूझती है। प्रकृति ने मेरे लिए दूसरा नियम नहीं बना रक्खा था। ब्याह के एक वर्ष के बाद एक दिन मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि अफ़्रीका के मध्य भाग में एक खण्डहर निकला है। उसमें अनन्त सम्पत्ति—हीरे-जवाहर बिखरे पड़े हैं। साहसी लोग हवाई जहाज़ों पर जाकर वह सम्पत्ति उड़ाये ला रहे हैं। मैंने यह भी पढ़ा कि उस खण्डहर को ब्रिटिश लोग अपने अधिकार में करना चाहते हैं। मेरे जी में आया कि अँगरेज़ों का पहरा बैठने से पहले ही मैं भी वहाँ से क्यों न जाकर कुछ माल ले आऊँ।

मैंने इस बात का ज़िक्र अपनी पत्नी से किया। वह भी मेरे साथ जाने को तैयार हो गई। उसमें साहस था, निर्भयता थी, देश देखने की इच्छा थी। पर उसकी गोद में एक बच्चा भी था। मैंने बहुत समझाया, पर वह न मानी। हम दोनों अपने प्यारे बच्चे के साथ एक हवाई जहाज़ पर रवाना हुए। साथ में हम लोग एक काँच का घर भी लाये, जो समुद्र में पानी के अन्दर खड़ा किया जा सकता था और जिसमें बाहर से आक्सीजन जाने का प्रबन्ध था।

अफ़्रीका के किनारे पर मैंने गहरे समुद्र में उस में वह घर खड़ा किया। स्त्री और बच्चे को उसी में छोड़ कर मैं उसी हवाई जहाज़ पर फिर मध्य अफ़्रीका के लिए उड़ा।

इस उड़ान के लिए विदा देते समय मेरी स्त्री की आँखों में जो आँसू उमड़ आये थे वे मुझे आज तक नहीं भूले। पर यह तो सृष्टि का पहला नियम है। पुरुष साहस के कार्य्यों के लिए जीवन को

के खतरों में प्रविष्ट होता है और स्त्रियाँ आँसू बहाती हैं।

इन्हीं आदर्शों पर तर्क-वितर्क करता हुआ मैं उड़ा चला जा रहा था। मुझे जान पड़ता था, मानो मैं संसार का बादशाह बन जाऊँगा। बीच बीच में मुझे समुद्र के गर्भ में बैठी हुई अपनी पत्नी की याद आजाती थी। रेडियो के द्वारा मैं पल पल में उससे बातें करता जा रहा था। जो देश देख रहा था उसका ज़िक्र उससे करता जाता था। वह अपना और बच्चे का हाल मुझे बतलाती जाती थी। मछलियाँ उस पर किस प्रकार हमला करने के लिए आती थीं और काँच से टकराकर लौट जाती थीं, खूब धोखा खाती थीं। पहले हम लोगों का ख़याल था कि बच्चा समुद्र के जीवों को देखकर डरेगा। पर वह उन्हें पकड़ने दौड़ता था। अपनी पत्नी के मुख से यह सब समाचार सुनकर मैं ख़ुशी से मस्त होता चला जा रहा था। मैं उससे कहता था ओह! इस समय यदि मैं भी तुम्हारे साथ उस घर में होता।

जब मछलियों और समुद्री जीवों की बातचीत समाप्त हो गई तब हम लोगों ने अपने विवाह के जीवन की चर्चा छेड़ी। ऊपर मैं यह बताना भूल गया हूँ कि मेरा ब्याह स्काटलेंड में आकर हुआ था। मेरी पत्नी स्काटलेंड में ही पैदा हुई थी। अपनी माता के साथ अमरीका में वह पशुपालन की कला सीखने आई थी। उस घटना का ज़िक्र आने पर जिसमें मैं अपनी पत्नी को उसकी मा की गोद से उठा कर ले भागा था, मुझे रोमांच हो आया। स्काटलेंड में यह अच्छी प्रथा है। ब्याह के पश्चात् पति पत्नी को उसकी मा की गोद से छीन कर भागने का नाटक करता है। दुनिया के लोग बहुत सुखी हो जायँ यदि यह प्रथा सारे संसार में फैल जाय।

जब तक अफ़्रीका के मध्यभाग में उस खण्डहर के पास मैं नहीं पहुँच गया तब तक मेरी और मेरी पत्नी की बातें होती रहीं। जब जहाज़ खड़ा करके मैं उतरा तब मैंने कहा—प्रिये! वह खण्डहर आ गया। पर यहाँ हीरे और जवाहर कुछ नज़र नहीं आते। तो भी मैं यहाँ कुछ समय लगाऊँगा। स्थान भयानक है। मुमकिन है देर लगे। जब तक तुम मेरी आवाज़ न सुनना किसी प्रकार धैर्य धारण करना। अब विदा दो।

मेरे कानों में उसके सिसकने की आवाज़ आई। पर मैंने वह बहुत न सुनी। हवाई जहाज़ से उतर कर उस निर्जन वन में जा खड़ा हुआ, जहाँ उस समय मेरे सिवा और कोई मनुष्य नहीं था।

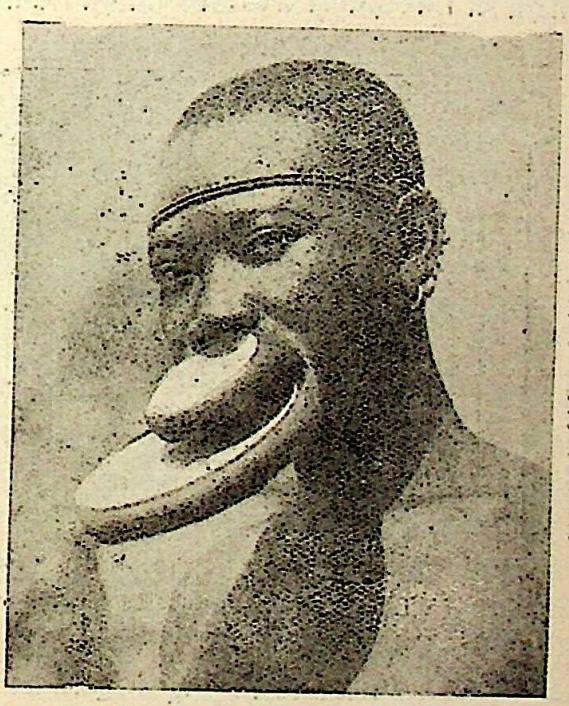

[कहाँ वह स्काट-सुन्दरी और कहाँ यह हब्शी महिला]

(३)

उस खण्डहर में घूमते घूमते मैं एक झाड़ी के पास पहुँचा। पर वहाँ जो कुछ देखा, देखकर दङ्ग रह गया। झाड़ी में बैठी एक स्त्री शृङ्गार कर रही थी। उसके दोनों होंठ जीवित खाल की दो तश्तरियों के समान सामने झूल रहे थे, जैसे पहिये लगाकर उसने उन होठों को बढ़ाया हो। बिलकुल बतख़ की चोंच के समान उसका मुँह दिख रहा था। मैं उसे देखकर आश्चर्य और भय से काँप उठा।

पर वह तो मानो मुझ पर मुग्ध हो गई थी। दौड़कर मेरे पास आई और अपनी विचित्र भाषा में अपना प्रेम-भाव प्रकट करने लगी। पहले तो मैं समझ ही न सका कि वह क्या चाहती है। उसके होठों का हिलना देखकर मुझे भय लगता था कि कहीं मुझे खा डालना तो नहीं चाहती। पर क्षण भर बाद उसके उन विचित्र अधरों पर खिंचो हास्य की रेखा से मैं उसका तात्पर्य समझ गया। वह मेरे साथ ब्याह करना चाहती थी। मेरे हाथ को लेकर बार बार चूमने लगी।

उसने मेरा हाथ पकड़ कर एक ओर को चलने का सङ्केत किया। मैंने हाथ झटक दिया। उसने फिर मेरा हाथ पकड़ा। मैंने फिर उसका तिरस्कार किया। तब उसने अपनी भाषा में न जाने क्या क्लिलुल क्लिलुलू किया।

क्षण भर बाद मैंने देखा कि मेरे सामने हबशियों की एक जमात खड़ी है। वे अपनी भाषा में मुझसे तरह तरह के प्रश्न करने लगे। पर मैं किसी प्रश्न का उत्तर न दे सका।

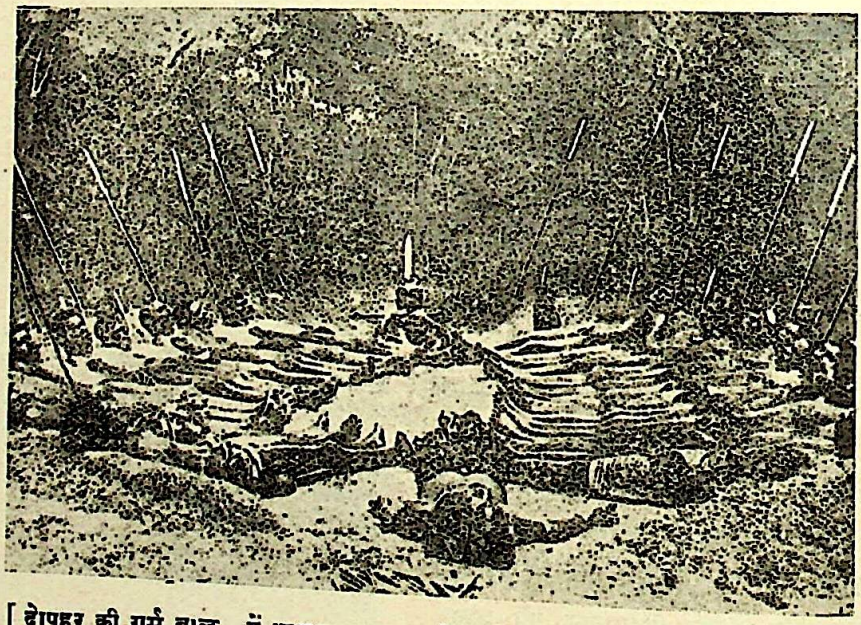

[दोपहर की गर्म बालू में झुलस कर अपनी शक्ति की परीक्षा देने वाले युवक।]

अपरिचित देश में ऐसा अनुभव कदाचित् ही किसी को हुआ हो। पर मुझे उसकी सूरत से घृणा थी। मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुस्तानी से भी अधिक घृणित जाति यहाँ पर निवास कर रही है। मैं मन ही मन कहने लगा—ओफ़! यहाँ व्यर्थ आया।

मैं आगे बढ़ा पर वह मेरे सामने आकर खड़ी होगई। जी में आया कि तमंचा निकाल कर इसका काम तमाम कर दूँ। पर सोचा—अपरिचित देश है। न मालूम कैसे लोग यहाँ रहते हैं।

वे सब मुझे घसीटते हुए एक बालू के मैदान में ले गये। सूर्य सिर पर आ गया था। बालू गरम हो रही थी। वहाँ पहुँचते ही वे सब तप्त बालू में लेट गये। इस प्रकार वे अपनी शक्ति की परीक्षा दे रहे थे। वह हब्शी-कन्या चाहती थी कि मैं भी उन्हीं की भाँति अपनी शक्ति की परीक्षा दूँ। जो उस बालू में दस दिन तक लगातार जलने के बाद न मरता उसी का उस कन्या के साथ ब्याह होता। मैं इस प्रकार जलने के लिए तैयार न था और सो भी उस मनहूस

हब्शी-कन्या के लिए! पर मेरा वश न चला। मैं झुलसाया गया।

इस प्रकार मैं कई दिन तक जलता रहा। अन्त में एक दिन शाम को मौक़ा पाकर मैं किसी प्रकार अपने हवाई जहाज़ के पास जा पहुँचा और वहाँ से भाग निकला।

चित्त ठिकाने होने पर मैंने रेडियो-द्वारा अपनी पत्नी को पुकारा और उससे सारा हाल कहा। मेरी पत्नी ने उत्तर दिया—परीक्षा पास करो और उस कन्या को अपने साथ विवाह करके लेते आओ।

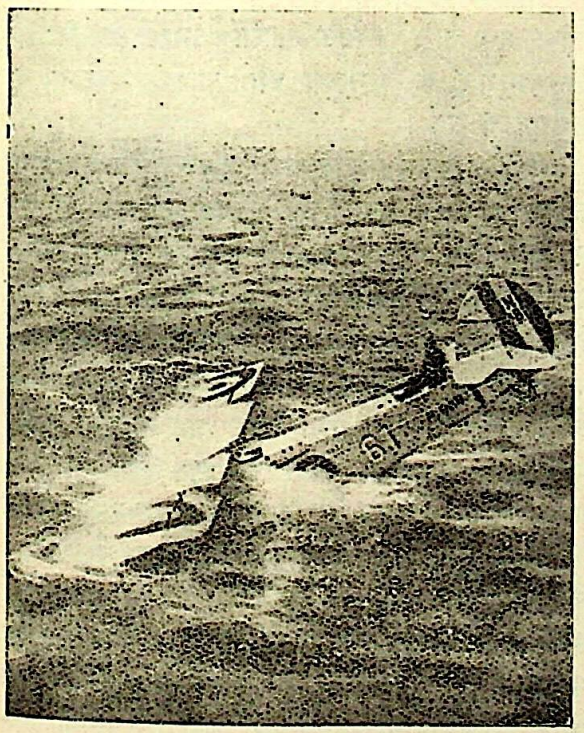

['मुझसे मरा न गया।']

मैं अचम्भे में आ गया। मैंने कहा—प्रिये ऐसा हठ न करो। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। पर वह हब्शी कन्या! ओफ़ वह घृणित चीज़ है।

मेरी पत्नी ने उत्तर दिया—हर एक मर्द को स्त्री की इच्छा पूरी करनी चाहिए, स्त्री चाहे जैसी हो। जो मर्द केवल सुन्दर स्त्री की इच्छा पूरी कर सकता है वह क्या कुरूपा की नहीं। वह मर्द मर्द ही नहीं है।

इसके बाद उसने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की घोर निन्दा की। उसने कहा—इस सभ्यता का क्या अर्थ है, यदि संसार में अब भी आधे से अधिक मनुष्य जङ्गली और घृणित अवस्था में बने हैं। मैं इस संसार में अब अधिक नहीं रह सकती। इससे तो मौत अच्छी है। मुझे जान पड़ा, मानो उसने अपना और बच्चे का दोनों का अन्त कर लिया।

तेज़ी से हवाई जहाज़ दौड़ाता हुआ मैं उसके पास पहुँचा। देखा वह सचमुच मुर्दा थी। इस बात का उस पर इतना प्रभाव पड़ेगा कि वह प्राण दे देगी, यह मैंने सोचा ही न था। मैं पागल सा होगया। उसके हृदय में संसार के सब जीवों के प्रति इतना अगाध प्यार था, वह इतनी स्नेहमयी देवी थी कि जीवों का ज़रा भी तिरस्कार नहीं सह सकती थी और ख़ास कर मेरे—अपने पति के द्वारा।

उसके बिना मैंने अपना जीवन व्यर्थ समझा और हवाई जहाज़ को तेज़ी से उड़ा कर गहरे जल में गिरा दिया। पर मौत के मुँह में पहुँचने पर मुझे जीवन के मोह ने इतना जकड़ा कि मुझसे मरा न गया। मैं केबिन से निकल कर हवाई जहाज़ की दुम पर जा बैठा। अब मेरे हृदय में यह कामना थी कि कोई जहाज़ इधर से आ निकले और मेरी रक्षा करे।

उस अगाध समुद्र में तीन दिन भूखे-प्यासे बैठे रहने के बाद हिन्दुस्तान को आनेवाले एक जहाज़ ने मेरी रक्षा की। और उस पर बैठ कर मैं हिन्दुस्तान पहुँचा।

अब मुझमें न कोई उत्साह रह गया है, न कोई इच्छा। आँखों की ज्योति सिर्फ़ यह देखने के लिए रुकी हुई है कि मेरा असफल जीवन मुझे कहाँ ले जाता है। आह यदि मैं सच्चा प्रेमी बनता! आह! यदि घृणा मेरे लिए अपरिचित वस्तु होती! मेरी स्नेहमयी देवी! क्या मैं पहली इच्छा पूरी होते समय तक जीवित रहूँगा और क्या तेरे जन्म लेने पर तुझे पहचान सकूँगा। —'युगनेत्र'

भारत और फ़ेडरल-शासन

[शास्त्रीय दृष्टि से फ़िडरल-शासन के रूप का निरूपण करके डाक्टर त्रिपाठी ने अपने इस ज्ञातव्य लेख में फ़िडरल-शासन के गुण-दोषों का विस्तार के साथ विचार किया है और यह बताया है कि भारत के लिए कैसे फ़िडरल-शासन-विधान की रचना इस समय सम्भव है।]

यों तो भारत में इस समय अनेक समस्यायें उपस्थित हैं, किन्तु उनमें राज-नैतिक समस्या अनेक कारणों से प्रमुख और जटिल है। और वह इस समय देश के एक ओर से दूसरे ओर तक सभी के सम्मुख उपस्थित है। उसके सामने अन्य प्रश्न फीके-से पड़ गये हैं। लोगों की प्राय: यही धारणा है कि राजनैतिक समस्या को हल कर लेने से अन्य बातें भी सुलझ जायँगी।

अतएव हमारी यह समस्या राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न है। इस विषय पर तो अधिक विवाद की गुञ्जाइश नहीं है कि भारत को स्वराज मिलना चाहिए। भारतीय स्वराज की माँग को ब्रिटेन की सरकार ने भी वाजिब और सर्वथा उचित स्वीकार कर लिया है। किन्तु इस विषय पर बड़ा मतभेद है कि इस स्वराज का क्या स्वरूप होना चाहिए, उसका संगठन किस आकार-प्रकार का होना चाहिए, और उसकी शक्ति और अधिकार का वितरण किन सिद्धान्तों के अनुकूल होना चाहिए। इन्हीं बातों के सिलसिले में यह भी प्रश्न उठता है कि क्या यह सम्भव है कि इसी समय या दो-तीन वर्ष के भीतर जो शासन सङ्गठित हो वह पूर्ण परिपक्व स्वराज हो अथवा इस समय केवल एक काम चलाऊ नक़्शा बना लेना चाहिए जो अनुभव के अनुकूल आगे चलकर घटाया या बढ़ाया जा सके।

उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक लेख का कलेवर काफ़ी नहीं है और लेखक का यह आशय भी नहीं है कि उन प्रश्नों में से हर एक की विवेचना यहाँ करे। इस लेख में केवल इसी विषय पर विचार किया गया है कि शासन के सङ्गठन का जो स्वरूप मताधिक्य से तजबीज़ किया जा रहा है वह कैसा है और उसके दोष-गुण क्या हैं। यह तो स्पष्ट है कि मताधिक्य भारतीय शासन को 'फ़ेडरल' रूप देना चाहता है। अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि 'फ़ेडरेशन' अथवा सङ्घातिक शासन क्या है, उसके कितने मुख्य भेद हैं, और इतिहास एवं राजनीति की दृष्टि से उनसे क्या हानि अथवा लाभ होने की सम्भावना है। इन बातों को समझ कर यदि हम भारत के 'फ़ेडरेशन' पर विचार करें तो अनेक उलझनों में फँसने से और मुख्य और गौण ध्येयों में भूल करने से बहुत-कुछ बच जायँगे।

राजनीति-विशारदों ने राज्य को दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया है। एक तो साधारण केन्द्रिक राज्य और दूसरा सङ्घात्मक राज्य। केन्द्रिक राज्य वह है जिसमें एक ही मुख्य शासन-यन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण

देश का शासन होता है। यह अनेक नाम रूप का हो सकता है। चाहे वह एक राजा हो द्वारा सञ्चालित हो और चाहे उसका सञ्चालन सभा, समिति अथवा कौंसिल-द्वारा हो। किन्तु सङ्घात्मक अथवा संयुक्त राज्य वह है जो कई ऐसे राज्यों के मेल से बना हो जो अपने अन्तरङ्ग मामलों में स्वतन्त्र-से हों। सङ्घात्मक राज्य के स्थापन में कई राज्यों का होना अनिवार्य-सा है। वस्तुतः कई राज्यों की उपस्थिति के बिना सङ्घात्मक राज्य की संस्थापना ही असम्भव है। हाँ यह आवश्यक नहीं कि ये राज्य एक से हों या पूर्णरूप से स्वतन्त्र हों। उनकी स्वतन्त्रता की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है।

सङ्घात्मक राज्य के मुख्य भेद चार हैं। पूर्ण संयुक्त, कानफ़ेडरेशन, फ़ेडरेशन और अर्द्धरक्षित अथवा संरक्षित राज्य। पूर्ण संयुक्त सङ्घ वह है जिसमें उसके अन्तर्गत जितने राज्य हैं वे अपना व्यक्तित्व कम से कम बाहरी मामलों के लिए त्याग दें, चाहे उनके निजी या भीतरी क़ानून अथवा उनकी संस्थायें अपना व्यक्तित्व कैसा ही क्यों न रखती हों। इस श्रेणी के अन्तर्गत आस्ट्रिया-हंगरी का गत साम्राज्य एवं नारवे और स्वीडन के राज्य माने जाते हैं, यद्यपि इन दोनों के स्वरूप में बहुत कुछ भेद है।

कानफ़ेडरेशन उस सङ्घात्मक राज्य को कहते हैं जिसके अन्तर्गत ऐसे स्वतन्त्र राज्य हों जिन्होंने अपनी स्वाधीनता के कुछ अंश अथवा अंशों को किसी विशेष ध्येय के साधन करने के लिए कानफ़ेडरेशन को समर्पित कर दिया हो। वस्तुतः कानफ़ेडरेशन राज्य ऐसे स्वतन्त्र राज्यों का समूह है जो किसी कार्य-विशेष के लिए कुछ दृढ़ता के साथ मिल गये हों, किन्तु अपनी आन्तरिक स्वाधीनता, अपना दबदबा और राजनैतिक सङ्गठन अक्षुण्ण रक्खें। कानफ़ेडरेशन को यदि उसके अन्तर्गत का कोई राज्य छोड़कर स्वतन्त्र होना चाहे तो हो सकता है। हाँ, यदि और सब मिलकर उसको बलपूर्वक दबा लें तो बात और है, किन्तु उसके स्वतन्त्र होने के अधिकार को मानना अनिवार्य-सा है। इस श्रेणी के अन्तर्गत प्राचीन यूनान, मध्यकालीन योरप के कुछ सङ्घ, एवं अमरीका का संयुक्त-राज्य (१७८१-१७८९) और जर्मन कानफ़ेडरेशन (१८१५-१८६६) आदि माने जाते हैं। कानफ़ेडरेशन को अपनी आज्ञाओं के पालन कराने की क्षमता उसके अन्तर्गत राज्यों की इच्छाओं पर अवलम्बित है। यदि वे चाहें तो मानें और यदि न चाहें तो न मानें।

फ़ेडरेशन उस सङ्घात्मक राज्य को कहते हैं जिसके अन्तर्गत के राज्य मिलकर एक सर्वोपरि केन्द्रिक संस्था की रचना करें, जो किन्हीं विशेष कार्यों के करने में स्वतन्त्र हो। अथवा जहाँ कई सूबे या अधीन राज्य अपने ऊपर किसी सर्वमान्यशक्ति-द्वारा ऐसे ढंग से संयुक्त कर दिये जायँ जिससे उनकी प्रान्तिक स्वाधीनता अधिकांश में सुरक्षित रहे, किन्तु बाहरी मामलों का अधिकार फ़ेडरेशन के हाथ में रहे। प्राचीन यूनान की एकियन लीग, स्वीज़रलेंड का शासन, और अमरीका (१७८९-१८६३) का संयुक्त-राज्य, कनाडा, जर्मन-साम्राज्य (१८७१), मेक्सिको, अर्जेन्टाइन ब्रेज़िल, वेनेज़ुला आदि राज्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत में माने जाते हैं।

अर्द्ध-रक्षित अथवा संरक्षित राज्य के विषय में राजनीतिविशारदों में मतभेद है। कुछ कहते हैं कि बिना पूर्ण स्वतंत्रता के भी राज्य हो सकते हैं और जो परमुखापेक्षी और दूसरे पर अवलम्बित रहते हुए भी राज्य कहे जा सकते हैं। इस विचार-धारा के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता राज्य का अनिवार्य लक्षण नहीं माना जाता। किन्तु अन्य विद्वानों का मत है कि स्वतन्त्रता अविभक्त और अक्षुण्ण हुए बिना राज्य की सत्ता ही नहीं मानी जा सकती। सैद्धान्तिक मतभेद चाहे जो हो, किन्तु ऐसे राज्यों की सत्ता कुछ विद्वान् तो मानते ही हैं। ये लोग गत बल्गेरिया, इजिप्ट, पुरानी दक्षिणी अफ्रीकन रिपब्लिक आदि को अर्द्धरक्षित श्रेणी में मानते हैं। संरक्षित राज्य वे

हैं जो अपनी कमज़ोरी के कारण किसी प्रबल राज्य की रक्षा के आश्रित हों, अपने महत्त्वपूर्ण बाहरी विषयों को उसके सुपुर्द कर दें। ऐसे राज्य अफ़्रीका, अरब-अन्तरीप, कोरिया आदि में माने जाते हैं। वस्तुतः इन शासनों को हम स्वतन्त्र और स्वाधीन राज्य नहीं कह सकते। हाँ, पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अर्द्धरक्षित अथवा संरक्षित राज्य का विधान रास्ते की एक मंज़िल अवश्य माना जा सकता है।

फ़ेडरल-शासन के लाभ अनेक हैं। पहला लाभ तो यह है कि छोटे और निबल राज्य भी मिलकर एक ऐसा सङ्गठन कर सकते हैं जो सबकी रक्षा कर सके, सबकी सेवा कर सके और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपना प्रभाव डाल सके। दूसरा लाभ यह है कि उसके द्वारा सूबा और राज्यों की आपस की खींचातानी और विभाजक शक्तियों का उचित प्रबन्ध एवं संयोजक शक्तियों का पोषण फ़ेडरल सङ्गठन-द्वारा साध्य हो सकता है। तीसरा गुण यह है कि उस विधान से केन्द्रिक शासन को जटिलता कम हो जाती है और स्थानिक शासन को अपनी उन्नति करने का अधिक अवसर प्राप्त हो सकता है। केन्द्रिक शासन के उच्चतम कर्मचारी स्थानिक समस्याओं को उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाते जितनी कि स्थानिक जनता और स्थानिक नेता समझ सकते हैं। घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण स्थानिक नेता और कर्मचारी अपने प्रान्त की उन्नति में अधिकाधिक उत्साह का प्रदर्शन करेंगे। उसके द्वारा स्थानिक स्वतन्त्रता की रक्षा अच्छे प्रकार हो सकती है और अपनी उन्नति करने के लिए अधिक संख्या को अवसर प्राप्त होता है। यदि स्थानिक उत्साह और स्वतन्त्रता का उचित पोषण किया जाय तो केन्द्रिक राज्य अधिक उत्तरदायी हो जाता है और जनता में अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के उत्साह और क्षमता की वृद्धि होती है और शासन-कला का ज्ञान भी बढ़ जाता है। गत अर्द्ध शताब्दी में फ़ेडरेशन के लाभों की ओर नीतिज्ञों का ध्यान बहुत आकर्षित था। बाज़ बाज़ नीति-शास्त्रज्ञों की राय में फ़ेडरल सङ्गठन सब शासन-विधानों में श्रेष्ठतम है। अतएव वे आशा करते हैं कि उसका भविष्य उज्ज्वल है और सम्भवतः धीरे धीरे वह विश्वव्यापी हो जायगा।

उपर्युक्त धारणा एक-पक्षीय और एकाङ्गी है। इधर कई वर्षों के अनुभव से फ़ेडरल-विधान के दोषों एवं गुणों का कुछ अधिक पता चला है। अमरीकन पोलिटिकल सायन्स के कार्य-विवरण में एक प्रसिद्ध लेखक ने फ़ेडरल-विधान की कमज़ोरियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। देश, काल और अवस्था का परिवर्तन होने पर फ़ेडरल-विधान के नष्ट होने की आशङ्का प्रतीत हुई, क्योंकि जब वे रचे गये थे तब निर्माताओं को उसके दोषों का बहुत कम ज्ञान था। उसके दोषों में सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय एवं दूसरे राज्यों से व्यवहार स्थिर करने और उसका निर्वाह करने में अधिक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। यदि फ़ेडरल-शासन के निर्णय और सन्धियों का उद्देश उससे सम्बद्ध राज्यों अथवा प्रान्तों ने पालन करने से इनकार कर दिया तब विषम समस्या उत्पन्न होने का भय है।

यही नहीं, अन्तरङ्ग विषयों के भी समीचीन सञ्चालन में भी फ़ेडरल-विधान सदा सुविधाजनक नहीं होता। व्यापार, गमनागमन, मज़दूरों की समस्या, उद्योगों का पारस्परिक संयोजन, तथा देशव्यापी उद्योग-धन्धों का, और उनके विषयों का संयोजन जिन पर एक-सूत्रता जाति या देश के लिए आवश्यक है, फ़ेडरल-विधान-द्वारा सुविधा और सुन्दरता-पूर्वक संचालन करना अधिक कठिन है। यूनाइटेड स्टेट्स को इन कठिनाइयों का पूर्णरूप से अनुभव हुआ और हो रहा है। फ़ौजी मामलों की व्यवस्था करने में तो फ़ेडरल-विधान सबसे कमज़ोर साबित हुआ है। इस अंतिम कठिनाई को दूर करने के लिए फ़ेडरल-विधान भी केन्द्रिक शासन की परिपाटी का अवलंबन करने के लिए बाध्य-सा हो गया है।

तीसरा दोष यह है कि फ़ेडरल-विधान में फ़ेडरल शासन और तद्गत राज्यों के शासन में खींचातानी होने की सम्भावना है। मान लो कि किसी राज्य ने फ़ेडरल-विधान से अपने को मुक्त करने का निश्चय किया। उस समय उसको ऐसा करने से रोकने के लिए किसी न किसी प्रकार का युद्ध करना होगा, जिससे देश में भयङ्कर सङ्घर्षण होने एवं अन्तर्राष्ट्रीय हानियों के पहुँचने की सम्भावना हो जायगी। अभी हाल में ही आस्ट्रेलिया में इस प्रकार के उपद्रव होने की घोर आशङ्का हो गई थी।

यदि संघान्तर्गत राज्यों ने अपना सम्बन्ध विच्छिन्न भी न किया तो भी उनमें प्रान्तिक भाव की ऐसी प्रधानता हो सकती है जो सार्वजनिक उद्देशों एवं एकता के भावों और सिद्धान्तों के लिए अनिष्टकारक हो सकता है। प्रत्येक राज्य अपने अपने ढङ्ग पर चलेगा, जिससे दैशिक सभ्यता में विषमता और विभिन्नता के बढ़ने की आशङ्का हो सकती है। यदि एक प्रकार के भी क़ानून हों तो भी प्रत्येक राज्य के द्वारा उनको स्वीकृत करने-कराने में अनावश्यक विलम्ब होना और बहुमूल्य समय का नष्ट होना स्पष्ट सा प्रतीत होता है।

यद्यपि इस विषय पर विचारों और मतों में भेद अवश्य है, किन्तु यह नतीजा तो अनिवार्य है कि फ़ेडरल-शासन-विधान में कई चिंत्य दोष हैं। अतएव उसके गुणों एवं दोषों को दृष्टिगोचर रखकर यह विचार करना चाहिए कि भारतवर्ष को फ़ेडरल सङ्गठन की योजना से कहाँ तक हानि और लाभ होने की सम्भावना है? क्या भारत की सामयिक स्थिति में हम फ़ेडरल-शासन की अप्रतिबद्ध योजना कर सकते हैं और यदि फ़ेडरल-शासन की रचना आवश्यक है तो हमको किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए और किन-किन कठिनाइयों के प्रतिकार के साधन एकत्र करना चाहिए?

यह स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतन्त्रता या पूर्ण स्वाधीनता के बिना हमारा फ़ेडरल-सङ्गठन रक्षित या प्रतिबद्ध शासन ही होगा। माना कि इस समय पूर्ण स्वतन्त्रता का आदर्श अन्तर्जातीय सङ्गठन के आदर्श से नीचा पड़ता है, किन्तु जब तक अन्य राज्य बाहरी राज्यों से अपने सम्बन्ध को नियन्त्रित करने के लिए स्वतन्त्र हैं तब तक उस अधिकार का न होना हमारा परमुखापेक्षी होना है, जिससे हमको अन्तर्राष्ट्रीय संसार में उचित स्थान मिलना दुस्साध्य है। इसी प्रकार यदि सेना और देश की आर्थिक नीति को अपनी इच्छा के अनुकूल सञ्चालन करने को शक्ति हममें नहीं है तो हम न स्वतन्त्र हैं और न साधारण अर्थ में स्वतन्त्र कहे भी जा सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना भारत के लिए सिद्धान्तवाद-सी प्रतीत होती है। क्योंकि न तो इँग्लेंड ही हमको अपने से दूर कर सकता है और न हमारा सङ्गठन ही ऐसा पुष्ट और प्रखर है कि हमारा इँग्लेंड से अपना पीछा छुड़ाना हमारे लिए वाञ्छनीय होगा। रजवाड़ों को अभी तक अँगरेज़ी सहायता की ऐसी आवश्यकता प्रतीत होती है कि वे उच्च स्वर से कह रहे हैं कि वे ब्रिटिश-साम्राज्य से प्रथक् होना अनिष्टकारक समझते हैं और ब्रिटिश-सम्राट् की सेवा करना अपना आदर्श और कर्तव्य समझते हैं। अधिकांश मुसलमानों, अछूतों, ईसाइयों को भी यह डर है कि कहीं पूर्ण अधिकार मिलने पर उनके साथ अन्याय न किया जाय। ऐसी परिस्थिति में पूर्ण स्वतन्त्रता को झटपट प्राप्त करने की आशा आदर्शवाद के अनुकूल भले ही जँचे, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यदि असाध्य नहीं तो दुस्साध्य तो अवश्य ही है। फलतः सामयिक फ़ेडरल-योजना हमको उस श्रेणी में नहीं पहुँचा सकती जिसमें अमरीका के यूनाइटेड-स्टेट्स हैं या जो राजनीति-शास्त्र के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता को कही जा सके। अतएव सामयिक स्थिति में बीच का मृदु मार्ग का अवलंबन करना ही एक प्रकार से उचित जान पड़ता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि "सेफ़गार्डों" को ऐसा रूप दिया जाय जो देश की उन्नति के मार्ग में कम-से-कम बाधा डालनेवाले हों

और अँगरेज़ी-राज्य की और हमारे सशङ्कित देश-बन्धुओं की आशंकाओं को यथासम्भव दूर करने-वाला हो। इस प्रकार की द्विमुखी योजना करना ही इस समय का मुख्य प्रश्न है। उसकी ओर यदि देश के नेता और ब्रिटिश-नेता अपनी पूरी शक्ति लगा दें तो बहुत सम्भव है कि कोई कामचलाऊ सूरत निकल आये। वितण्डावाद या कोरे सिद्धान्त-वाद का आश्रय लेना न तो इँग्लेंड के लिए हितकर है और न भारत के लिए। सामयिक समस्या को हल करने में ही राजनीतिज्ञता और नेतृत्व है, यही नेता और राजनीतिज्ञ की योग्यता की कसौटी है।

भारतवर्ष ऐतिहासिक कारणों से दो भागों में विभक्त है। एक ब्रिटिश इंडिया, दूसरा रजवाड़ा। ब्रिटिश इंडिया में केन्द्रिक शासन होने के कारण सूबों में बहुत-कुछ एक-सूत्रता है। किन्तु रजवाड़ों में यह बात नहीं है। उनमें शासन की एकता या तो है ही नहीं और यदि है भी तो ब्रिटिश इंडिया से भिन्न है। रजवाड़ों को कई अधिकार ऐसे प्राप्त हैं जो सूबों की सरकारों को नहीं हैं। वे उन अधिकारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। अतएव वे कानफ़ेडरेशन की कल्पना कर रहे हैं। ब्रिटिश-इंडिया के सूबे चाहते हैं कि रजवाड़े भी उनकी नीति के अनुकूल चलें। रजवाड़े अपनी समय-पोषित नीति का सहसा परित्याग करने के लिए अभी तैयार नहीं हैं। वे अनुभव करने के उपरान्त अपने सम्बन्ध को घटाने और बढ़ाने का निर्णय आगे चलकर करना चाहते हैं। परिणाम यह है कि हमारे फ़ेडरेशन के अन्तर्गत राज्यों में आरम्भ में विषमता रहना अनिवार्य हो गया है। यह विषमता यदि बढ़ गई और प्रान्तिक सूबे भी अपने अपने रास्तों पर चल पड़े तो भारत के एकता के भाव को गहरी चोट लगेगी और फ़ेडरल-शासन ऐसा निर्बल और निस्तेज हो जायगा कि न तो वह आन्तरिक समस्याओं और न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में समर्थ हो सकेगा।

उपर्युक्त आशङ्का केवल कल्पना-मात्र नहीं है। भारत के इतिहास के पाठकों से यह छिपा नहीं है कि हमारे देश में अन्तर्राष्ट्री-चेतना की बहुत कमी रही है। यद्यपि चन्द्रगुप्त, अकबर आदि ने कुछ सफलता प्राप्त की, किन्तु वह अगणनीय-सी ही है। गत दो सौ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय विधान और तज्जनित समस्यायें ऐसी जटिल और पेचीदा हो गई हैं कि उनको यथावत् चलाना दुष्कर-सा है। यदि हमारी फ़ेडरल-योजना ऐसी हुई जिससे केन्द्रिक सङ्गठन निर्बल रहा तो हमारा अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सम्भवतः वैसा ही कमज़ोर रह जायगा जैसा पहले था। हमने अपने पूर्व की अज्ञानता का जो दण्ड पाया है वह ऐसा है कि समझदार लोग फिर उसमें फँसना कभी स्वीकार नहीं कर सकते। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की कम जानकारी से अमरीका ऐसे उन्नतिशील राज्य को भी धोखे खाने पड़े और योरप में वे अपना नैतिक भाव जमाने में असफल से रहे। हमारे देश को तो कठिनाइयों का और भी बुरा सामना करना पड़ेगा। यदि केन्द्रिक शासन सुदृढ़ रहा तो कठिनाइयाँ कम पड़ेंगी और यदि वह कमज़ोर रहा तो भयङ्कर स्थिति के पैदा हो जाने की सर्वथा आशङ्का रहेगी। अतएव फ़ेडरल-योजना में इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि वह इतना बलशाली हो कि अन्तर्राष्ट्रीय कामों में अशक्त न रहे। उसके पास इतनी शक्ति अवश्य होनी चाहिए कि वह जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापन करे उसके प्रति-पालन के लिए देशी रजवाड़ों और प्रान्तिक शासनों को आवश्यकता पड़ने पर बाध्य कर सके।

दूसरा प्रश्न यह है कि हमारे देश के लिए जो फ़ेडरल-योजना की जाय उसमें कुछ बातें ऐसी होनी चाहिए जिनके द्वारा प्रान्तिक शासनों एवं रजवाड़ों की प्रजा का ध्यान सार्वदेशिक शासन की ओर निरन्तर आकर्षित रहे। उसके सार्वदेशिक भावों और भारत की एकता के भावों को बराबर जीवित, जाग्रत और चैतन्य रक्खे। यद्यपि देश में सभ्यता और आदर्श

की एकता पूर्वकाल में भी कभी कभी पाई जाती थी, तथापि वह प्रायः धार्मिक और सामाजिक ही थी। राजनैतिक एकता का स्वरूप यदि पहले था तो वह धुँधला और अस्पष्ट-सा था। किन्तु गत सौ वर्षों में यहाँ एकता के भाव का जो विकास हुआ है वह अपूर्व और श्रेयस्कर है। किन्तु वह भाव अभी उतना दृढ़ नहीं हुआ है कि अब उसकी चिन्ता छोड़ दी जाय। सच तो यह है कि वह अभी तक कोमल और तरल ही है। उसकी रक्षा और पुष्टि करना हमारा कर्तव्य है। जो योजना उस भाव को उन्नत और सुदृढ़ होने में बाधा डाले वह कदापि ग्राह्य न होनी चाहिए। एकता के भाव की कमी से हमारे देश ने जो दुःख और कष्ट सहे हैं उनकी करुण कथा इतिहास के रक्त-रञ्जित पृष्ठों में भरी पड़ी है। एकता के भाव को क़ायम रखने और पुष्ट करने के लिए यदि हमको भारी से भारी मूल्य देना पड़ जाय तो भी हमें हिचकिचाना न चाहिए। हमारे देश में जात-पाँत 'धार्मिक विभिन्नता के अलावा प्रान्तिक विभिन्नता भी मौजूद है। सच्ची राष्ट्रीयता उन पर विजय प्राप्त करना अपना ध्येय समझती है। यदि प्रान्तिक स्वराज्य ने प्रान्तिक विभिन्नता को सबल और राष्ट्रीयता को निर्बल कर दिया तो देश ने जो कुछ उन्नति एक शताब्दी में की है वह व्यर्थ हो जायगी और हमारी प्रगति आगे की ओर न होकर पीछे की ओर हो जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय-नीति का यथावत् पालन करने के लिए हमको सेना के सञ्चालन एवं व्यापार आदि की नीति निर्धारण की पूरी क्षमता अनिवार्य है। सेना और व्यापार के सम्बन्ध में केन्द्रिक शासन की शक्ति इतनी होनी चाहिए कि वह उनके लिए यथोचित साधन सूबों से प्राप्त कर सके और सूबों को बाध्य कर सके कि वे उसके निश्चय के अनुकूल चलें। इस समय स्वतन्त्रता और स्वराज्य की हवा इतनी बँधी हुई है कि कोई आश्चर्य नहीं कि उसके झोंके में हम अनेक आवश्यक बातों को भूल जायँ और भविष्य का विचार न करके वर्तमान में मस्त होकर प्रमाद-पूर्ण कार्य कर बैठें जिसके लिए पछताना पड़े। यह माना कि स्वाधीनता के उत्तेजक और पुष्टिकारक समीर से ऐसे नवजीवन का सञ्चार होगा जिसकी शक्ति से भविष्य के प्रश्नों को हल करने की शक्ति हममें आप-से-आप उत्पन्न हो जायगी। किन्तु फिर भी विवेक की अवहेलना करने का हमको कोई अधिकार नहीं। ऐतिहासिक अनुभवों को तिलाञ्जलि देकर, दूरदर्शिता को तिरस्कृत कर, विवेक के प्रकाश-पूत मार्ग को छोड़ कर स्वर्ण-युग की खोज में अन्धकार-ग्रस्त और कंटकाकीर्ण कान्तार में जा फँसें और देश और उसके भविष्य को चिन्ताजनक और आपद्ग्रस्त बना दें।

भारत की राजनीति का वास्तविक आरम्भ तो तब होगा जिस समय हमारे कन्धों पर उत्तर-दायित्व का पूरा बोझ रख दिया जायगा और हमारी जातीय नाव को राजनैतिक और सामाजिक समुद्र की उज्ज्वल तरल-तरङ्गों में होकर किसी लक्ष्य की ओर खेने का अवसर मिलेगा। उस समय यदि हमारी नाव जर्जरित और रन्ध्र-पूर्ण हुई तो हमारी दशा के दयनीय, चिन्त्य और भयावह हो जाने का भय है। यदि हम अपने साधनों का सङ्गठन सोच-समझकर और भविष्य के हिताहित पर विचार करके करें तो अवश्य अच्छा होगा। जातीय भविष्य और सन्तति के हित को विस्मृत करने का अधिकार किसी समय के व्यक्तियों अथवा जनता को नहीं है, क्योंकि सभ्यता और जातीय जीवन का सम्बन्ध भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से है।

भारत विशाल देश है। इसकी समस्यायें जटिल हैं। ऐसे देश को सुन्दर और शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिए दो हज़ार वर्ष से प्रयत्न किये जा रहे हैं। मौर्य, गुप्त, मुसलमान और मराठे शासकों ने इसका अपने अपने ढङ्ग से सङ्गठन किया, किन्तु किसी का सन्तोषजनक न हुआ और विषम समय के आते ही टूट-फूट गया। इसका कारण इतिहासकार यह।

बताते हैं कि उन सबका सङ्गठन इस ढङ्ग से नहीं किया गया कि वह अपनी स्वगत शक्ति से अपनी उन्नति कर सकता और परिवर्तनशील स्थितियों के अनुकूल अपना संशोधन कर सकता। उसने कुछ समय तक अपना काम किया, किन्तु परिस्थिति बदलते ही वह शिथिल हो गया। यदि विद्वान् इतिहासकारों की गवेषणा से यही घोषणा निकलती है तो हमको सचेत हो जाना चाहिए और प्रान्तीय, जातीय, अन्तर्जातीय, भीतरी और बाहरी समस्याओं का विचार रखते हुए अपने शासन-यन्त्र का सङ्गठन करना चाहिए, जिससे आगे का मार्ग प्रशस्त और परिष्कृत हो जाय।

यद्यपि इस प्रश्न पर और भी कई पहलुओं से विचार हो सकता है और ऐतिहासिक प्रमाणों-द्वारा विवेचन भी सरलता से किया जा सकता है, किन्तु इस लेख का आशय केवल एक चेतावनीमात्र है। लेख का सारांश यह है कि प्रान्तिक स्वाधीनता अथवा फ़ेडरल आदि योजनायें स्वयं लक्ष्य नहीं, किन्तु किसी लक्ष्य की सिद्धि के साधन हैं। अभी तक कोई शासन-विधान ऐसा नहीं बना जो दोष-रहित हो। फ़्रांस, यूनाइटेड-स्टेट्स, रूस, जर्मनी आदि के शासनयन्त्र एक तो उन उन देशों की स्थिति के अनुकूल बने, फिर भी उनके दोषों का अनुभव शीघ्र ही होने लगा। हमारे देश का शासन-यन्त्र भी हमारी देश की स्थिति के अनुकूल बनना चाहिए और अन्य देशों और समाजों के अनुभवों से पूरा लाभ उठाकर जहाँ तक सम्भव हो सके उसे ज्ञात दोषों से बचाये रखना चाहिए। दूसरी बात यह है कि प्रान्तिक स्वतन्त्रता देते समय प्रान्तों की जनता का केन्द्रिक शासन से ऐसा कोई सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए जिससे उनमें भारतीयता का, एक-देशीयता का, अखिल भारत का भाव क्षीण न होकर परिपुष्ट होता रहे। भीतरी और बाहरी आपत्तियों से देश की रक्षा करने में जहाँ तक हो सके कम से कम बाधायें पड़ सकें। अन्तर्प्रान्तिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में कम से कम अड़चनें पड़ सकें। कोई प्रान्त ऐसा न हो सके कि सारे देश के लिए काँटा बन जाय और कोई जन-समुदाय ऐसा न हो जो सारे देश की उन्नति का बाधक बन सके। इस कहने का यह तात्पर्य नहीं कि केन्द्रिक शासन को अमरबेलि के समान बढ़ाकर प्रान्तिक स्वतन्त्रता का नाश कर दिया जाय। लेख के आरम्भ में ही यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि भारत में किसी न किसी ढङ्ग का फ़ेडरल विधान ही उचित होगा, किन्तु वह बिलकुल अमरीका, रूस या जर्मनी के ढङ्ग का होना चाहिए और उसमें फ़ेडरेशन और कुछ कान फ़ेडरेशन के गुणों का देश की स्थिति के अनुकूल सम्मिश्रण करना होगा। ऐसे विधान की रचना की आवश्यकता है जिससे कोई प्रान्त भारत की भुजाओं के पाश को तोड़ न सके और न आपसी सङ्ग्राम से देश की पवित्र भूमि को रक्त-रञ्जित कर सके।

देश को ऐसे शासन-विधान की आवश्यकता है जो प्रान्तिक सङ्कीर्णता, धार्मिक उद्दण्डता, सामाजिक विशृङ्खलता और आर्थिक विषमता को यदि नष्ट न कर सके तो कम से कम मर्यादित करने में समर्थ हो। यदि संयोगवश कोई आपत्ति देश पर आवे तो उसका निवारण करने योग्य केन्द्रिक शासन होना चाहिए, जिसके द्वारा अन्तर्प्रान्तिक व्यापार, यात्रा, सुधार और व्यवसाय, विचार-विनिमय, सामाजिक संसर्ग में नई नई सुविधायें प्राप्त हो सकें। देश का शासन ऐसा होना चाहिए जिससे आशिक्षा, अज्ञान और ग़रीबी उसके कोने कोने से दूर हो सकें। पिछड़े प्रान्त सदा पिछड़े न रहकर शीघ्रतापूर्वक उन्नति कर सकें और देश भर के समष्टि बल को लाभ पहुँचा सकें, जिससे एक-देशीयता का भाव सुपुष्ट होकर मानव-समाज की सेवा कर सके और अपनी भारतीय मर्यादा की रक्षा कर सके।

—रामप्रसाद त्रिपाठी

शायद हम तुम फिर मिलें

[१]

इलाहाबाद में बदली होने पर चन्द्रभाल को अपने विद्यार्थी-जीवन की एक घटना का एकाएक स्मरण हो आया। अभी तक वे उसे भूले हुए थे। परन्तु जब उन्होंने पैर-गाड़ी पर चढ़े हुए एक युवक को किसानों के एक समूह से टकराकर गिरते देखा तब उन्हें जान पड़ा मानो वह घटना हाल ही में घटी थी। उस घटना की ज़रा ज़रा सी बात उन्हें याद हो आई। उनके कानों में गूँज उठा—शायद हम तुम फिर मिलें। इसी एक वाक्य को वे राम-नाम की भाँति मन ही मन जपने लगे। उन्होंने हिसाब लगाना शुरू किया कि उस घटना को कितने दिन हुए। उँगुलियों पर घंटों गिनने के बाद उन्होंने मन ही मन कहा—पन्द्रह वर्ष! ओह! पूरे पन्द्रह वर्ष बीत गये। मेरे जीवन का वह दिन कितना सुन्दर था, मैं उस दिन कितना सुखी था, जब उसने कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें। मुझे याद है। एक एक शब्द याद है। उसने बिलकुल यही वाक्य कहा था। आह! वह कौन थी? क्या उससे फिर भेंट हो सकती है?

यही सोचते हुए चन्द्रभाल घर पहुँचे। उन्हें चिन्तित और उदास देखकर पत्नी ने पूछा—क्या मामला है? चन्द्रभाल ने मानो इस बात को सुना ही न हो। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पत्नी ने क़रीब जाकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर और उन्हें हिला-झुला कर फिर पूछा—क्या सोच रहे हो? कुछ बताओगे?

चन्द्रभाल का जैसे नशा उतरा। बोले—कुछ नहीं। एक पुरानी बहुत दिनों की बात याद आगई थी। उसी को सोचने लगा था। तुम जानती हो, मैं यहाँ पढ़ता था। मेरे जीवन का एक अच्छा समय यहाँ बीता है। उस समय की बहुत-सी स्मृतियाँ मेरे मस्तिष्क में दबी पड़ी थीं। आज यहाँ बहुत दिनों के बाद आने से एकाएक याद हो आई। उसी पर विचार कर रहा था।

"क्या विचार कर रहे हो? मुझे भी बताओगे?"

"तुम्हारे जानने की कोई बात नहीं है। मेरे विद्यार्थी-जीवन की बातों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम सुनकर क्या करोगी?"

"नहीं मैं सब कुछ जानना चाहती हूँ। तुम्हारे सारे जीवन की एक-एक बात जानना चाहती हूँ। अभी तक तो तुमने मुझसे कोई बात नहीं छिपाई।"

"ओह! छिपाव का सवाल नहीं है। अभी तो मैं ख़ुद नहीं समझ सका कि वह घटना क्या थी। ज़रा सोच लेने दो। इस वक़्त मैं एकान्त चाहता हूँ। इसके बाद तुमसे सब बताऊँगा। एक एक बात बताऊँगा।"

"अच्छा तो पहले भोजन कर लो।"

बिना कुछ कहे चन्द्रभाल हाथ-मुँह धोकर चौके में जा बैठे। वे खाते जाते थे और सोचते जाते थे—

"वह कितनी भोली थी! कितनी चञ्चल और कितनी सुन्दर! किस तेज़ी के साथ अपने स्कूल

की गाड़ी से उतर कर वह मेरे पास आई थी। उसकी सहेलियों ने उसे रोका था। दाई ने उसका हाथ पकड़ा था। पर उसने कहा था—नहीं, चाहे जो हो, मैं इस आदमी की सहायता करूँगी। गाड़ी रोको।

"मैं उस समय ज़मीन पर पड़ा हुआ था। मेरी दोनों आँखों में उस देहाती की पीठ पर बँधी हुई लकड़ियाँ घुस गई थीं, जिससे मेरी आँखें चोट लगने से बन्द हो गई थीं। मेरी पैर-गाड़ी कहीं पड़ी थी, किताबें कहीं पड़ी थीं। उसने किताबों को इकट्ठा किया। पैर-गाड़ी को एक तार के खम्भे के सहारे खड़ा किया और मुझसे पूछा—क्या आँखों में ज़्यादा चोट आ गई है?

"कानों में सहानुभूति से भरे हुए ये मधुर शब्द पड़ते ही मैंने भरसक चेष्टा करके अपनी आँखों को खोला था। सिर्फ़ उसको देखने के लिए खोला था। मैं जानना चाहता था कि यह भोली आवाज़ किसकी है जो मेरी सहायता करना चाहती है।

"यदि बीच में वह आ न गई होती तो मैं उस देहाती को बिना पीटे न छोड़ता। बेवकूफ़ अन्धा होकर चल रहा था। न जाने किस गली से आकर मेरी बाइसिकिल के अगले पहिये से उलझ गया था। आँखें बन्द होने पर भी मैं उसका फटा हुआ कुर्ता पकड़े हुए था। उसे कुछ दक्षिणा देकर विदा करना चाहता था। पर मुझे याद है। ख़ूब याद है उसने कहा था—जाने दो। इसे मारने से क्या होगा? जो होना था वह तो हो ही गया।

"मैं मन्त्रमुग्ध की तरह उसकी आज्ञा का क्यों पालन करता चला जाता था, यह बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। न मालूम उसमें कौन-सा आकर्षण था?

"मुझे उसकी शक्ल याद है। हज़ारों की भीड़ में मैं उसे पहचान सकूँगा, ऐसा मेरा हृदय कहता है। वह एक सफ़ेद रंग की हरे किनारे की साड़ी पहने थी। किनारी का ठीक याद नहीं, पर साड़ी सफ़ेद थी, बिलकुल सफ़ेद। कहीं एक धब्बा न था। उसकी मैंने हँसी देखी थी। बिलकुल चमेली के फूलों-सी उसकी हँसी थी। मुझे उस समय की बातें भी नहीं भूली हैं। कदाचित् उसने कहा था—मैं आपकी और क्या सहायता कर सकती हूँ। और मैंने उत्तर दिया था कुछ नहीं! मुझे बिलकुल चोट नहीं आई। आँखों में मामूली खोंचा लग गया है। पर वह घर पहुँचते-पहुँचते अच्छा हो जायगा।"

खा-पी चुकने पर भी जब चन्द्रभाल चौके में बैठे रह गये तब पत्नी ने कहा—इस तरह तो तुम कभी नहीं करते थे। जान पड़ता है, तुम्हें किसी डाक्टर के पास ले चलना होगा।

कुछ शर्माते हुए चन्द्रभाल ने कहा—अभी नये नये यहाँ आये हैं। सब चीज़ें अव्यवस्थित पड़ी हैं। कुछ काम है नहीं। इसी से ज़रा आलस्य आगया है। दो-चार दिन में सब कार्य्य नियम से होने लगेंगे।

पत्नी ने फिर पूछा—कुछ ध्यान में आया? क्या सोच रहे थे?

चन्द्रभाल ने कहा—स्मृतिकारों ने यह बहुत ठीक लिखा है कि स्त्रियों में सत्र नहीं होता। जल्दबाज़ स्त्रियाँ विवाहित पुरुषों का जीवन अशान्त बना देती हैं।

पत्नी झुँझलाकर अपनी एक सहेली के यहाँ चली गई। यहाँ उसका मायका था। रापशाप करने के लिए उसे मनुष्यों की कमी न थी।

चन्द्रभाल ने कुछ आज़ादी की साँस ली। वे बिस्तर पर जा लेटे। लेटे लेटे फिर उसी घटना को सोचने लगे। वह बालिका कौन थी। मेरी सहायता करने को गाड़ी से क्यों उतरी? स्त्रियों का अपरिचित पुरुषों की सहायता करने दौड़ना ज़रा अजीब-सा मालूम होता है। पर यदि कोई स्त्री ऐसा करे तो इसमें ऐब क्या है? पर वह स्त्री नहीं थी। राम राम मैं क्या कह गया। वह बालिका थी—सरला, सुकुमारी, भोली-भाली। दया से उसका हृदय भरा था। मेरी सहायता करने के लिए उसका दौड़ना स्वाभाविक ही था।

पर उसने यह क्यों कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें ? या मुमकिन है कुछ और कहा हो और मुझे स्मरण न आता हो।

चन्द्रभाल गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गये। कुछ देर के बाद उन्होंने करवट बदली। फिर वे उठ कर बैठ गये। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। लाख यत्न करने पर भी वे स्मृति के इस बन्धन से न छूट सके। उन्हें जान पड़ा जैसे कानों में कोई कह रहा हो—आप कहाँ रहते हैं ? पलँग पर बैठे ही बैठे उन्होंने उत्तर दिया—फ़तेहपूर। "शायद हम-तुम फिर मिलें। अच्छा अब जाती हूँ नमस्कार।"

चन्द्रभाल इसी प्रकार बड़बड़ा ही रहे थे कि पत्नी ने आकर कहा—अभी तक तुम नहीं सोये। सपना देख रहे हो क्या ?

चन्द्रभाल चुप्पी साध गये।

[२]

सवेरा होते ही चन्द्रभाल ने बिस्तर छोड़ दिया। रात उन्हें नींद कब आई इसका उन्हें पता नहीं था। पर इस समय उनका चित्त कुछ स्वस्थ था। उन्हें अपने आप पर हँसी भी आई। वे सोचने लगे—कोई सुनेगा भी तो क्या कहेगा ? पन्द्रह वर्ष की बात के पीछे आज हैरान हो रहा हूँ। रात में उन्होंने सोचा था कि सवेरे इस घटना का ज़िक्र पत्नी से करूँगा। पर सवेरा होने पर उन्होंने तय किया कि नहीं, यह ठीक न होगा। इससे मेरे वैवाहिक जीवन में विषमता उत्पन्न हो सकती है। इससे मेरी पत्नी का चित्त उदास हो सकता है। वह यह सोच कर दुखी हो सकती है कि मैं अन्य स्त्रियों के प्रति भी आकर्षित हूँ। मैं बुरा हूँ।

उन्होंने उस घटना को भूल जाने की चेष्टा की। वे दृढ़ धारणा के युवक थे। अपने निश्चय से कभी टलते न थे। पत्नी से उन्होंने ख़ूब बातें कीं। इलाहाबाद में वे कहाँ रहते थे, किस प्रकार बाइसिकल पर सैर किया करते थे, किस प्रकार वे ससुराल में आकर रहना चाहते थे, पर यह सोच कर कि शायद पढ़ाई में विघ्न पड़े किस प्रकार उनके पिता ने उन्हें ससुराल में न रहने की सख़्त मनाही कर रक्खी थी ? उदारहृदया पत्नी उनकी एक दिन पूर्व की झिड़की को भूल गई और जैसे चकोरी चाँद की ओर देखती है वैसे ही उनकी ओर देखकर उनकी इस वचन-सुधा का पान करने लगी।

खा-पीकर निश्चित समय पर चन्द्रभाल दफ़्तर के लिए रवाना हुए। पर जैसे ही उन्होंने घर से बाहर क़दम रक्खा, वैसे ही पन्द्रह वर्ष पूर्व की उस घटना की उस स्मृति ने उन पर फिर आक्रमण किया। उन्होंने दफ़्तर पर ध्यान लगाया और अपनी चाल तेज़ की। संयम के सारे तीर चला डाले। पर अन्त में हार गये। उन्होंने अपने आप को एक अज्ञात स्थान में खड़ा पाया। असल में दफ़्तर न जाकर वे उस स्थान को ढूँढ़ रहे थे जहाँ पन्द्रह वर्ष पूर्व वे उस देहाती से टकरा गये थे और जहाँ एक अज्ञात बालिका उनकी सहायता करने को अपने स्कूल की गाड़ी से उतरी थी। उन्होंने सोचा, शायद वह उस रास्ते से फिर आती-जाती हो। कौन जाने उससे भेंट हो जाय ?

चन्द्रभाल उस स्थान की ओर बढ़ते भी जाते थे और मन ही मन अपने ऊपर हँसते भी जाते थे। रह रहकर वे स्वयं को समझाते भी जाते थे—चन्द्रभाल ! तुम कितने मूर्ख हो ? वह लड़की क्या तुम्हारा नाम लिये बैठी होगी ? और फिर बैठी ही हो तो क्या तुम्हारा उससे ब्याह थोड़े ही हो सकता है ? तुम विवाहित हो। अपने दफ़्तर जाओ। अपना काम देखो। तुम्हें नया प्रेम करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार सोचते हुए वे दफ़्तर की ओर मुड़ने की चेष्टा करते, उसी समय उनके हृदय में दूसरे प्रकार के ख़याल ज़ोर पकड़ते। वे एक स्थान पर खड़े होकर फिर अपने आपको समझाते—इसमें हर्ज ही क्या है ? एक बात को जान लेने में—हर्ज ही क्या है ? जानकारी प्राप्त करना मनुष्य का

स्वभाव ही है। लोग अख़बारों में पचासों क़िस्म की ख़बरें पढ़ते रहते हैं—सिर्फ़ कुछ न कुछ जानने के लिए—और ऐसी बातें जानने के लिए जिनसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यहाँ तो मैं एक ऐसी लड़की को जानना चाहता हूँ जिसने मेरी सहायता की थी, जिसने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की थी, जिसने मुझसे फिर मिलने की आशा की थी। क्या व्याह ही करने के लिए मनुष्य किसी स्त्री की तलाश करे तो करे? जिसने अपने साथ भलाई की है उसकी तलाश करके उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना क्या मनुष्य का धर्म नहीं है? मुझे इस कार्य्य को वर्षों पूर्व करना था। ओफ़! इतना लम्बा समय मैंने क्यों बीतने दिया? उसने भी अपने दिल में क्या सोचा होगा कि मैं कैसा असभ्य हूँ?

बीती बातों की स्मृति से मनुष्य को एक प्रकार का सुख मिलता है। परन्तु चन्द्रभाल से सुख बहुत दूर था। बीती बात की कल्पना करके वे अधीर हो रहे थे। जितना ही सोचते थे, उतनी ही उनकी बेचैनी बढ़ती थी।

उस दिन वे दफ़्तर न गये। पर उन्होंने वह स्थान पा लिया। सड़क के उस भाग पर खड़े होकर उन्होंने चारों तरफ़ देखा। कुछ परिचित चीजें उन्हें दीख पड़ीं। आस-पास की इमारतें ज्यों की त्यों थीं। कुछ नये मकान ज़रूर बन गये थे, पर उनसे उस स्थान की रूप-रेखा में कोई विशेष अन्तर न पड़ता था। उन्होंने तार के उस खम्भे को देखा जिसके सहारे उस बालिका ने उनकी पैर-गाड़ी खड़ी की थी। उन्हें एक प्रकार का रोमाञ्च हो आया। उन्होंने अपने मन में कहा—निर्जीव खम्भे! तुम्हें इस बात से क्या प्रयोजन कि यहाँ से कौन कब निकला? यदि तुम बोल सकते, अपने पिछले दिनों की कथा कह सकते तो आज मुझे उस बाला का कुछ पता मालूम हो जाता। उन्होंने उस खम्भे को स्पर्श किया। उस समय उनकी विचित्र अवस्था थी।

चार बजे जब स्कूलों में छुट्टियाँ हुईं और लड़के अपने अपने घरों को जाने लगे तब उनकी व्याकुलता और भी बढ़ गई। उनके सामने उनके विद्यार्थी जीवन का वह दिन और भी स्पष्ट हो उठा। उन्हें जान पड़ा मानो लड़कियों के स्कूल की गाड़ी लौट रही हो।

उन्होंने उस दिशा की ओर देखा जिधर को पन्द्रह वर्ष पूर्व वह गाड़ी गई थी। सचमुच एक गाड़ी उधर से आ रही थी। पहरे पर खड़ा सिपाही जैसे अपने अफ़सर को आने का समय जान कर मुस्तैद हो जाता है, बिलकुल उसी तरह वे मुस्तैद होकर खड़े हो गये। उनका हृदय धक धक करने लगा। वे सोचने लगे—यदि वह इस गाड़ी में होगी तो मुझे देखकर यहाँ ज़रूर उतर पड़ेगी। शायद कहेगी—आपसे बहुत दिनों में भेंट हुई। तब मैं क्या जवाब दूँगा? वे एक बढ़िया सा उत्तर सोचने लगे। तब तक गाड़ी वहाँ आकर खड़ी हो गई। एक लड़की उतरी। चन्द्रभाल ने समझा, शायद वही हो। पर उस लड़की ने उनकी ओर देखा भी नहीं। वह दौड़ कर पास के घर में चली गई।

चन्द्रभाल से अब न रहा गया। उन्होंने आगे बढ़कर गाड़ीवान से पूछा—क्यों जी तुम इस गाड़ी कितने दिनों से हाँकते हो?

"कोई ६ महीने से।"

"उसके पहले कौन हाँकता था।"

"मेरा बाप! पर अब वह नहीं रहा।"

"तुम्हारे बाप ने कितने दिन गाड़ी हाँकी थी।"

"कोई बीस वर्ष।"

चन्द्रभाल ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—ओह! कितना अच्छा आदमी संसार से उठ गया।

गाड़ीवान की आँखों में आँसू आ गये। गाड़ी के भीतर बैठी हुई दाई चन्द्रभाल की बातें सुनकर बाहर निकल आई और बोली—बाबू तुम उन्हें जानते हो। वे सचमुच बहुत अच्छे थे। शहर में ऐसा कोई रईस नहीं जो उन्हें न जानता रहा हो।

वे सबके यहाँ जाते थे। सबको सलाम कर आते थे। उनका यह लड़का उनके अनुरूप नहीं है। शर्माता है। फिर उसने गाड़ीवान को डाँट कर कहा—बातों का ठीक से जवाब क्यों नहीं देता? यह कहकर मानो उसने यह जाहिर किया कि वह उसकी माँ है। इसके बाद उसने कहना शुरू किया—इसी गाड़ी की नौकरी में उनकी जिन्दगी कटी है। ससुराल आने पर मैं भी इसी गाड़ी की छिपकली हो गई। दूसरी जगह अच्छा हो नहीं लगता।

"ऐसे आदमियों से बड़े सौभाग्य से भेंट होती है।" कहकर चन्द्रभाल उस तार के खम्भे को फिर देखने लगे। अब गाड़ी चल रही थी और सड़क पर चन्द्रभाल से बातें करने के लिए दाई नीचे उतर पड़ी थी।

चन्द्रभाल ने कहा—तब तो तुम्हें इस स्कूल की सब लड़कियों का पता होगा।

"हाँ! सब मेरी आँखों में खिंची हैं। देखते ही पहचान जाती हैं।"

"अब से पन्द्रह वर्ष की लड़कियों को भी तुम पहचान सकती हो।"

"हाँ! क्यों नहीं?"

"तुम्हें उन दिनों की वह घटना याद है जब मैं यहाँ पैरगाड़ी से गिर पड़ा था और एक लड़की मुझे बचाने उतरी थी।"

"नहीं, मैं किसी लड़की को रास्ते में गाड़ी से उतरने नहीं देती।"

"पर एक बार ऐसा हुआ है, सोचो।"

"नहीं ऐसा कभी नहीं हुआ।"

"तुम्हें याद न होगा। दाई! मुझे बातें बहुत याद रहती हैं। मेरी बात मानो।"

"शायद उतरी हो।"

"तुम उस लड़की का पता बता सकती हो।"

"नाम बताओ।"

"नाम मुझे नहीं मालूम।"

"तब मैं कुछ नहीं जानती! अच्छा जाती हूँ। अरे! गाड़ी बहुत दूर चली गई।

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"भल्ला दाई।"

चन्द्रभाल मानो उस खम्भे से कहने लगे—इससे अधिक पता तो स्कूलवाले भी न बता सकेंगे। बिना नाम जाने पता लगाना मुश्किल है। निराश होकर वे घर लौट गये।

उस दिन रात को जब वे बिस्तर पर लेटे उन्हें एक उपाय सूझा। वे तत्काल उठकर बैठ गये और स्त्री-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के लिए उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन तैयार किया—

"मिलकर धन्यवाद देना चाहता हूँ उन श्रीमतीजी को जिन्होंने अब से पन्द्रह वर्ष पूर्व त्रिवेणी को जानेवाली सड़क पर बाईसिकल पर से मुझे गिरा देखकर मेरी सहायता करने के लिए महिला-विद्यालय की गाड़ी रुकवाई थी। उस समय उनके प्रति समुचित कृतज्ञता न प्रकट करने का मुझे आज तक दुःख है। अपना पता लिखकर मेरी चिन्ता दूर करने का कष्ट करें।"

इसके अतिरिक्त विज्ञापन में और कुछ नहीं था। स्त्री से और दोस्तों से इस बात को गुप्त रखने के लिए उन्होंने विज्ञापन के साथ अपना नाम और पता नहीं लिखा था।

दूसरे महीने में उन्होंने अपने विज्ञापन के उत्तर में ये पंक्तियाँ उस पत्रिका में पढ़ीं।

"परसों! उसी स्थान पर!! उसी समय!!! जरूर।"

[३]

मिस्टर चन्द्रभाल आज साढ़े तीन बजे ही दफ़्तर से निकल खड़े हुए। उन्हें एक अत्यन्त जरूरी काम है, यह कहकर वे अपने साथियों से बिदा हुए। आज उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। आज वे स्मृति के बन्धन से मुक्त होने जा रहे थे। उनके कल्पना के संसार में जो स्त्री निरन्तर विचरण करती

रहती थी उसे आज वे प्रथम बार देखने जा रहे थे। जीवन में इतने प्रसन्न शायद वे पहले कभी नहीं हुए थे।

सड़क के उस भाग में जब वे पहुँचे तब वहाँ सन्नाटा था। उसी खंभे में पीठ का सहारा देकर वे खड़े हो गये। वह स्थान उन्हें अपने घर-सा प्रतीत हुआ। खड़े खड़े वे सोचने लगे—पर इससे लाभ क्या होगा? मैंने भारी भूल की है। मेरा उसका ब्याह नहीं हो सकता। मेरी स्त्री मेरा उसका साथ पसन्द नहीं कर सकती। यदि उसका ब्याह हो गया हो और ज़रूर हो गया होगा, क्योंकि हिन्दुस्तान में कोई स्त्री अविवाहित नहीं देखी गई, तो उसका पति भी इन बातों को न पसन्द करेगा। आह! मेरा इतना पतन क्यों हो गया है? मैं ऐसी बातें क्यों सोचता हूँ? किसी ग़ैर की स्त्री को एकान्त में बुलाकर उससे बातें करने का मुझे क्या हक़ है?

इस प्रकार सोचते-सोचते वे तिरस्कार के साथ अपने आप से कहने लगे—चन्द्रभाल तुम्हें कुछ शर्म है। तुम्हारी यह उम्र स्त्रियों की तलाश करने की है? तुम्हें क्या हो गया है? अपने घर वापस लौटो और इस दिशा की ओर पैर रखने का नाम न लो।

वे बलपूर्वक अपने आपको वहाँ से घर की ओर ले जाने की चेष्टा करने लगे। कुछ दूर वे गये भी, पर तुरन्त ही यह सोचकर फिर लौटे कि यदि वह स्त्री यहाँ आयेगी और उनको न पायेगी तो अपने मन में क्या कहेगी। यह तो और भी मूर्खता होगी। जिसने अपने साथ ऐसा उपकार किया है उसको इस प्रकार छकाना क्या उचित है?

वे आकर फिर उसी खम्भे के सहारे खड़े हो गये। अब वे कुछ और ही बात सोचने लगे। उन्हें जान पड़ा कि उनके जैसा सहृदय और उदार मनुष्य संसार में नहीं है। जो कुछ वे कर रहे हैं, बड़े आदमियों का वही काम है। वे यह क्यों सोचते हैं कि वे किसी बुरे भाव से प्रेरित होकर उस स्त्री की तलाश कर रहे हैं। उनका उद्देश है कि उसे धन्यवाद देना, एक बार उससे मिल कर उसके प्रति अपना कृतज्ञ भाव प्रकट कर देना। यह करने में कोई दोष नहीं है। कोई ऐव होता तो वह उत्तर ही क्यों देती?

चन्द्रभाल फिर गम्भीर चिन्तन में खोते लगे—सम्भव है, वह भी मेरे विषय में कुछ जानना चाहती हो। सम्भव है, उसके हृदय में भी इतनी ही व्याकुलता हो। इस मिलन से मेरा ही नहीं, दो व्यक्तियों का उद्धार होगा। इसके बाद हमें स्मृति इतना परेशान न कर सकेगी। और यदि मैं बिना जाने यहाँ से वापस चला गया तो कौन जाने ऐसा अवसर हाथ आये न आये और फिर कौन जाने स्मृति का चाबुक और भी ज़ोर से न लगने लगे। पन्द्रह वर्ष के बाद जब इस बात के जानने की इतनी इच्छा हुई है तब ज़रूर इसका कोई अच्छा ही परिणाम होगा।

उन्होंने जेब-घड़ी निकाल कर देखा। साढ़े चार हो गया था। यही तो समय था। वे सोचने लगे—वह आई क्यों नहीं? अब उसे आना चाहिए। शायद वह न आये। शायद वह सोचे कि ऐसे अपरिचित मनुष्य से मिलकर क्या होगा? परन्तु उसने यह क्यों कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें। उसके यह कहने का क्या तात्पर्य हो सकता है। बस मैं यही बात जानना चाहता हूँ और कुछ नहीं।

एकाएक उन्हें पहियों की गड़गड़ाहट मालूम हुई। वे सजग होकर खड़े हो गये। एक इक्का सामने से निकल गया। फिर वही सन्नाटा। थोड़ी देर बाद दूसरा इक्का निकला। वह भी चला गया। ज़रा ज़रा सी आहट पर वे चौंक उठने लगे। अन्त में जब ६ बज गये तब वे निराश होगये। उन्हें जान पड़ा, मानो किसी ने उनसे मज़ाक करने के लिए कोई उत्तर अख़बार में छपा दिया है। यह उत्तर छपवाने वाला कौन है, यह जानने के लिए वे अख़बार

दफ़्तर में जाने का इरादा करने लगे। पर उन्हें फिर ख़याल आया, शायद वह आती न हो। उन्होंने एक घंटा और इन्तज़ार करने का निश्चय किया।

इस बार उन्हें अधिक इन्तज़ार न करना पड़ा। उन्होंने देखा—सामने से एक टाँगा आ रहा है, और ज्यों ज्यों आगे बढ़ता है त्यों त्यों उसकी चाल मन्द होती जाती है। वे बोल उठे—आ रही है। इस बार ज़रूर वही है।

उनका अनुमान ठीक था। टाँगा वहाँ आकर खड़ा होगया और उसमें से एक स्त्री उतरी। अरे! यह तो उन्हीं की स्त्री है। शायद उनके घर न पहुँचने के कारण उन्हें तलाश करने आई है। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे। अब वह दूसरी स्त्री भी आजाय तो क्या होगा? वे आश्चर्यचकित और अपराधी-से जहाँ के तहाँ खड़े रहे। पत्नी से कुछ बोलने का उन्हें साहस न हुआ।

इधर पत्नी स्थान की निर्जनता देखकर पहले तो कुछ डरी-सी थी। पर पति को सामने पाकर उसका भय जाता रहा। और अवसर होता तो इस प्रकार निर्जन में बेवक़ूफ़ सा उन्हें खड़ा देखकर वह बेहद नाराज़ होती, पर यहाँ वह ख़ुश ही हुई। उसने आगे बढ़कर प्रसन्नमुख से उनसे पूछा—यहाँ क्या कर रहे हो?

चन्द्रभाल को भी कुछ हिम्मत आई। उन्होंने पूछा—और तुम यहाँ क्यों आई हो?

पत्नी ने उत्तर दिया—अपने एक बचपन के साथी से मिलने। पाँच बजे तक तुम्हारा इन्तज़ार किया। जब तुम घर न पहुँचे तब अकेले ही आना पड़ा। वादा कर चुकी थी। आना ज़रूरी था।

पत्नी ने अख़बार की दो कतरनें चन्द्रभाल के हवाले कर दीं।

चन्द्रभाल जैसे सोते से जाग उठे। बोले—अरे मेरे सपनों की रानी तुम हो। मुझसे घर ही में क्यों न बता दिया था।

"तुमने कभी पूछा भी तो नहीं।"

अच्छा सबसे पहले यह बताओ—तुमने यह क्यों कहा था कि शायद हम तुम फिर मिलें।

पत्नी ने कहा तुमने मेरे पूछने पर यह बताया था कि तुम फ़तेहपुर में रहते हो।

"हाँ, शायद कहा था।"

"बस इसी लिए मैंने कहा था। मैंने सोचा था, जब तुम्हारी सेवा में फ़तेहपुर पहुँचूँगी तब अपने बचपन के उस साथी से भी शायद मिल सकूँगी।"

टाँगेवाला पास की दूकान पर बीड़ी सुलगाने चला गया था। आसमान में तारे निकल आये थे। पेड़ की अँधेरी छाया के नीचे चन्द्रभाल ने पत्नी को प्रेम से अपनी ओर खींच कर कहा—मेरे कल्पना-जगत् की रानी, मेरी स्मृति की परी! तुझे मैंने आज पाया है।

पत्नी ने अपने आपको चन्द्रभाल की बलिष्ठ बाँहों के हवाले करते हुए उसी भाव से कहा—मेरे प्रत्यक्ष जीवन के सर्वस्व मैंने भी तुम्हें आज पहचाना है।

थोड़ी देर के बाद पहियों की फिर गड़गड़ाहट हुई और वह स्थान वैसा ही निर्जन हो गया। चन्द्रभाल को अब उसकी बिलकुल चिन्ता न थी। वे अपने घर निश्चिन्त वापस जा रहे थे।

—श्रीनाथसिंह

विरहिणी उर्मिला*

हरी भूमि के पात पात में मैंने हृद्गति हेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

खींच रही थी सृष्टि दृष्टि यह स्वर्णरश्मियाँ लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में सेकर।
तृण तृण को नभ सींच रहा था, बूँद बूँद रस देकर,
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय-समीरण खेकर।

बजा रहे थे द्विज दल-बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

वह जीवन-मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया,
खेद और प्रस्वेद पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया!

यह विषाद! वह हर्ष कहाँ अब, देता था जो फेरी?
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

वह कोयल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-दृष्टि करती है
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूल चरती है
उबल सूखती है जल-धारा, यह धरती मरती है

पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी तेरी
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी

आगे जीवन की सन्ध्या है, देखें क्या हो आगे
तू कहती है 'चन्द्रोदय ही' काली में उजियाली
सिर-आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद-लाली
किन्तु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली

'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच? तो कृतार्थ यह मेरी
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी

—मैथिलीशरण गुप्त

* 'साकेत' से

भारत की राजनैतिक अवस्था

किसी देश का स्वरूप ज्यादातर उसकी प्राकृतिक रूप-रेखा तथा उसके देश-काल से निश्चित किया जाता है। इस नियम का भारत अपवाद नहीं है। भारत एक विस्तृत छोटा महाद्वीप-सा है। उत्तर की ओर से एक ऊँचे पहाड़ की दीवार से वह संसार से अलग कर दिया गया है। उसकी पूर्वी सीमा दुर्गम पहाड़ियों और जङ्गलों से आवृत है। उसके उत्तर-पश्चिम में जो पहाड़ स्थित हैं वे उतने दुर्गम नहीं हैं। इस छोटे महाद्वीप के भिन्न भिन्न भाग यद्यपि बड़ी बड़ी नदियों और पहाड़ियों से अलग अलग हैं, तथापि एक भाग से दूसरे भाग में भूतकाल में आना-जाना बराबर जारी रहा है और अब तो सड़कों और रेल-मार्गों के हो जाने से आने-जाने की बहुत ही अधिक सुविधा हो गई है। इस तरह भारत-देश अपने आप एक देश होगया है और उसके किसी एक भाग के लिए अब अलग रहना या दूसरे भागों के मामलों से उदासीन हो जाना बहुत कठिन है। दूसरे शब्दों में यह कि यदि पंजाब पर विदेशियों का आक्रमण हो या दक्षिण में कोई गड़बड़ हो तो बङ्गाल चुप नहीं रह सकता। इसी कारण हमें भारत के प्रामाणिक इतिहास में मिलता है कि इस देश में सारे देश या उसके एक बड़े भाग्य को एक साम्राज्य के अन्तर्भुक्त करने की भावना सदा काम करती रही है। क्योंकि शान्ति तथा सुरक्षा केवल एक सर्व-प्रधान की शक्ति की संरक्षा में ही सम्भव हो सकती थी। देश की जब ऐसी अवस्था नहीं रहती थी तब भिन्न भिन्न प्रदेश आपस में लड़-भिड़कर अपने निवासियों की अपार क्षति करते थे और विदेशियों को उन पर आक्रमण करने का प्रलोभन देते थे।

इसी प्रसिद्ध भावना के ही फलस्वरूप भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई है। बहुत दिनों तक अँगरेज़ अधिकारी भारत पर शासन करने का भारी उत्तर-दायित्व ग्रहण करने में सचमुच आनाकानी करते रहे थे। परन्तु जब उनके कब्ज़े में एक प्रदेश आगया तब वे अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए देशी नरेशों से मित्रता करने लगे एवं अन्य भागों पर भी अधिकार किया, यहाँ तक कि सारा देश उनके शासन अथवा प्राधान्य में आगया। सन् १८५८ में भारत में अँगरेज़ों की सत्ता देश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रधान रूप से क़ायम हो गई। अपने अधिकार के प्रदेशों में उनकी सत्ता क़ायम ही हो गई थी, देशी राज्यों पर भी वह उसी रूप से क़ायम होगई।

अँगरेज़-सरकार ने यह स्थिति भिन्न भिन्न प्रकार के उपायों से प्राप्त की है। उनमें से सर्वप्रधान उपाय अँगरेज़-सरकार का शस्त्रों पर अपना एकाधिकार क़ायम कर लेना रहा है। उसने इस क्षेत्र में भारत भर में—चाहे देशी राज्यों में हो—चाहे कोई एक व्यक्ति हो—अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहने दिया। देशी नरेशों की सामरिक शक्ति पहले ही पङ्गु कर दी गई थी। कुछ रियासतें तो सेना को सब तरह से सुसज्जित रखने के साधनों से रहित हैं और जिनके पास साधन हैं

वे सन्धियों एवं प्रचलित प्रथा के अनुसार वैसा कर नहीं सकतीं। सेंधिया और मैसूर के नरेशों की सैन्य-संख्या सन्धियों-द्वारा सीमित कर दी गई है। भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग ने सैन्य-संख्या परिमित करने के सम्बन्ध में अन्य राज्यों पर भी वही नियम लागू कर दिये हैं। देशी राज्यों का बड़ी बड़ी सेनाओं, क़िलों, तोपख़ानों आदि का संग्रह करना सर्व-प्रधान सरकार के लिए चिन्ता का कारण है। ग़दर के उपरान्त अँगरेज़ी प्रदेशों की जनता पूर्णरूप से निशस्त्र कर दी गई और कड़े शस्त्र-क़ानून ने उसे शस्त्रों के प्रयोग के ज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ बना दिया। सरकार की ओर से एक विशाल सेना जिसकी वीरता और दक्षता की गत महायुद्ध में परीक्षा हो चुकी है, भारत की रक्षा करती है।

इसके सिवा सरकार ने सारे भारतीय साम्राज्य पर अपना एक प्रकार का हलका आतङ्क जमाये रखने के लिए रेलमार्गों, सड़कों, तार और डाक की व्यवस्थाओं का जाल बिछा दिया है। लार्ड कर्ज़न के शब्दों में इसलिए कि बिना दिल्ली या शिमला के आदेश के कोई गौरैया अपनी पूछ न हिलाये और न कोई पत्ती गिरे। ब्रिटेन तथा साम्राज्य के दूसरे भागों से शीघ्रगामी केबुल तथा स्टीम के यातायात के साधनों से सम्बन्धित हो जाने से उस अँगरेज़ी सत्ता की स्थिति को और भी अधिक दृढ़ता प्राप्त होगई है। रेल-मार्ग के बड़े बड़े पुलों, नहरों तथा वैसे ही दूसरे बड़े बड़े कार्यों का भारतीयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है और वे शासक जाति का लोहा मान गये हैं और उनमें उनके प्रति भक्ति का भाव पैदा हो गया है। तीसरे पार्थिविक विजय की पूर्ति सांस्कृतिक और नैतिक विजयों से भी की गई। मुस्लिम-शासन के काल में धार्मिक नेताओं का लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव था। यहाँ तक कि जब अकबर ने उनका प्रभाव बहुत कम कर दिया था तब भी बच्चों की शिक्षा का अधिकार उन्हीं के हाथों में था। सार्वजनिक शिक्षा पर राज्य अपनी सत्ता नहीं स्थापित कर सका। परन्तु ब्रिटिश सरकार इस सम्बन्ध में पूरी तरह सफल हुई। जब मैकाले ने सरकारी सहायता से पाश्चात्य शिक्षा का प्रोत्साहन देने के समर्थन में अपना ख़रीता लिखा था तब से सारी सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था सरकार के हाथ में हो गई है और वह भी उसकी शक्ति का एक साधन बन गई है। जो भारतीय सुख के साथ जीवन-यापन कर सकते हैं उनके विचार और आदर्श, उनका सामाजिक जीवन और सुरुचि इन सब ने उन्हें योरपीय बनाने में प्रवृत्त किया है। प्रत्येक पाश्चात्य वस्तु की श्रेष्ठता के—उसकी राजनैतिक व्यवस्था, उसकी सामाजिक व्यवस्था, उसकी शिक्षा-पद्धति और व्यवसाय की श्रेष्ठता के—विश्वास ने भारतीयों के मन में यह भाव भर दिया है कि अँगरेज़ी साम्राज्य के भीतर रहना उनके लिए अनिवार्य है।

ऐसे भाव के पैदा करने में भारत की सरकारी नौकरियों के मण्डलों का प्रधान हाथ रहा है। यह विशेषता उन्होंने अपनी निपुणता और कुशलता के द्वारा प्राप्त की थी। योरपीय सेना की नियमशीलता और कार्य-निपुणता का सामना करने को भारत में कुछ नहीं था। १९ वीं सदी में अपने सिविल सर्विस विभाग में भी इँग्लेंड ने अपने यहाँ के योग्यतम व्यक्तियों को भेजा था। इन्होंने अनेक अवसरों पर प्रजा-जनों की भलाई के लिए सेवा-भाव और उच्च मनस्विता से काम किया। फलतः वर्षों की अराजकता के बाद जब यहाँ अँगरेज़ी सत्ता की स्थापना हो गई तब वह एक ऐसी बात समझी गई कि उसकी श्रद्धा-भक्ति करने में राजा-प्रजा दोनों अपने को भूल गये। जिन देशी नरेशों ने सम्राट् की सेवा के लिए अपने को प्रदान किया था और अपने प्रिय सम्राट् की सेवा में अपने प्राण तक विसर्जन करने की इच्छा प्रकट की थी उनकी सचाई पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इसी प्रकार उन बड़े बड़े देश-भक्तों की सचाई पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है जिन्होंने कांग्रेस के प्रारम्भ-काल में बार बार इस बात पर अपना विश्वास प्रकट किया था कि भारत का भविष्य ब्रिटेन के साथ बँधा हुआ है और यह उसका सौभाग्य है कि उसने उसकी मुक्ति के लिए ऐसा साधन उपस्थित कर दिया है।

Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No. 3614
SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY

यह उपर्युक्त भाव इस समय स्वाधीनता तथा स्वराज्य के भाव में परिवर्तित हो गया है। इस परिवर्तन का कारण सरलता से बतलाया जा सकता है। अँगरेज़ों का सारा इतिहास और साहित्य इस बात की शिक्षा देता है कि आत्म-शासन का स्थान सुशासन नहीं ग्रहण कर सकता है। वही यह भी बताते हैं कि लाभप्रद स्वेच्छाचारी शासन का विश्वास नहीं किया जा सकता है कि वह लाभ-प्रद बना ही रहेगा। मनुष्य-स्वभाव की प्रवृत्ति स्वार्थ की ओर रहती है। और यहाँ निस्वार्थी शासकों की एक पीढ़ी के बाद भी वैसे ही स्वार्थ-रहित शासक गद्दी पर आसीन होंगे, यह कहा नहीं जा सकता। तो भी भारत की नौकरशाही अपनी सफलता का उचित गर्व करती है, उसका यह दावा है कि भारत के लिए उनका शासन उत्कृष्ट है और यदि इसमें कोई परिवर्तन हुआ तो यह भारत के लिए आपत्ति का कारण होगा। अपना यह दावा उपस्थित करते हुए वह देश की परिवर्तित अवस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देती है। इधर देश के राजे और प्रजा-जन अधिकाधिक राजनैतिक भावापन्न होते जा रहे हैं तथा सरकार ने भी भारतीय स्वार्थों की अपेक्षा अँगरेज़ी स्वार्थों की ओर अधिकाधिक पक्ष लेना प्रारम्भ कर दिया है। ऐंग्लोइंडियन अफ़सरों की पुरानी पीढ़ी का भारत से कौटुम्बिक सम्बन्ध रहा है। इसलिए वे भारतवासियों और उनकी संस्कृति के प्रति सद्भाव रखते थे। इसके बाद प्रतियोगिता-परीक्षावाले भारत के सम्बन्ध में आये। ये लोग बेशक विद्वान् और योग्य थे। परन्तु इनका उनका सम्बन्ध नहीं स्थापित हुआ। भारत और योरप के बीच द्रुतगामी स्टीमरों के द्वारा यातायात की विशेष सुविधा हो जाने से ये लोग अक्सर अपनी छुट्टियों में इँग्लैंड जा सकते थे और भारत में अपना कुटुम्ब तथा पाश्चात्य ढङ्ग से अपना रहन-सहन रख सकते थे। देश की प्रकृति से इनका जो सम्पर्क था वह कम होता गया। भारत के ग़ैर सरकारी योरपीयों के मनोभाव से यह बात भले प्रकार परिलक्षित होती है। क्योंकि इन योरपीयों ने सरकार के विरुद्ध भारतीयों का साथ दिया। वस्तुतः इन्हीं लोगों ने भारतीयों को सरकार का विरोध करने का मार्ग दिखाया। परन्तु जब सरकार ने योरपीयों और भारतीयों के बीच भेद डालना आरम्भ किया जैसा कि उसने सन् १८७८ के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट को पास करके किया था तब उसने इन दोनों को अलग अलग कर दिया। यह भेद-भाव तब और भी बढ़ गया जब सन् १८८४ में एलबर्ट बिल के कारण बड़ा कटु-विवाद छिड़ा था और अपने अधिकारों की रक्षा करने को योरपीय ख़ूब भिड़कर लड़े थे। व्यापार में और सरकारी नौकरियों में अपना एकाधिकार क़ायम रखने के लिए ये लड़े थे और सरकार ने इनका साथ दिया था। इस तरह सरकार ने विरोध के होते हुए भी लंकाशायर के सूती वस्त्रों की चुङ्गी मंसूख़ करदी थी। और फिर जब राजस्व के विचार से वह चुङ्गी फिर लगाई गई तब भारतीय बने हुए माल पर भी अतिरिक्त चुङ्गी लगा दी गई। सरकारी नौकरियों के एकाधिकार की कड़ाई के साथ रक्षा की गई—वस्तुतः सेना से भारतीय अधिक कड़ाई के साथ पहले की अपेक्षा अधिक दूर रक्खे गये और उसमें योरपीयों की मात्रा और बढ़ादी गई। ऊँची श्रेणी की नौकरियाँ भारतीयों को देने की सारी सिफ़ारिशों की यहाँ तक कि पार्लियामेंट तक की अवहेलना की गई। इस तरह नौकरशाही जो जनता के हित करने का दम भरती थी, वस्तुतः स्वार्थी हो गई।

ऐसी परिस्थिति में उत्तरदायित्व-पूर्ण सरकार की माँग का उपस्थित होना सर्वथा स्वाभाविक था। वह माँग ज़ोर पकड़ती गई। यहाँ तक कि महायुद्ध के समय में सरकार ने यथासमय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रदान करने का अपना विचार घोषित किया और यह नीति बार बार दुहराई गई है।

इधर जब नौकरशाही उदार अँगरेज़ी प्रदेशों के निवासियों की सहानुभूति सदा अपने हाथ में किये रहने में असफल हुई तब उधर दूसरी ओर देशी नरेश भी अपने ऊपर स्थापित प्रधान शक्ति की कड़ी निगरानी से छुटकारा पाने की इच्छा करने लगे। सिपाही-विद्रोह के पहले सरकार ने देशी नरेशों को अपने भीतरी मामलों का प्रबन्ध करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। उसने केवल तभी हस्तक्षेप किया था जब समस्या बहुत

विकट आकार धारण करती थी और तब सरकार उस राज्य को ब्रिटिश भारत में मिला कर कुशासन या दूसरी बुराई को दूर कर देती थी। ग़दर के बाद महारानी विक्टोरिया की घोषणा में यह नीति छोड़ दी गई। अतएव देशी राजाओं को उनके दुर्व्यवहार तथा विश्वासघात का प्रतीकार करने और कुशासन दूर करने के लिए दूसरे उपाय ग्रहण किये गये। यह काम भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग के द्वारा कई एक प्रकार से किया गया। भारत-सरकार से गद्दीनशीनी की स्वीकृति प्राप्त करना सभी देशी नरेशों के लिए आवश्यक हो गया। जिन देशी नरेशों ने ठीक ठीक शासन नहीं किया और असद् व्यवहार किया वे गद्दी से उतार दिये गये और उनके स्थान में उनके निकट सम्बन्धी गद्दी पर बिठाये गये। एक बार यह प्रयत्न किया गया था कि ऐसे मामलों का निपटारा एक ऐसी पञ्चायत किया करे जिसके सदस्य देशी नरेश भी हों। परन्तु इस प्रयत्न में सफलता नहीं हुई। अतएव इस सम्बन्ध के अपने अधिकार का प्रयोग सरकार स्वेच्छानुसार ही करती रही। उसकी यह नीति न्याय-युक्त रही है या नहीं, किन्तु इससे देशी नरेशों के आत्मसम्मान तथा मर्यादा को अवश्य ठेस पहुँची है।

इसी के साथ ही देशी नरेशों को अपने राजस्व की भी हानि उठानी पड़ी है। सरकार का नमक और अफ़ीम पर एकाधिकार होने से देशी राज्यों को अपने न्यायपूर्ण लाभों के एक अंश से वञ्चित होना पड़ा। जिन ब्रिटिश बन्दरगाहों में उनके राज्यों के प्रजा-जन बहु-संख्या में निवास करते हैं उनमें लगनेवाली चुङ्गी की अत्यधिक आय-वृद्धि के सम्बन्ध में उनकी शिकायत का कारण है, क्योंकि देशी राज्यों को इस चुङ्गी की आय में कोई भाग नहीं मिलता है।

बाहरी दुनिया से सम्बन्ध हो जाने से भारतीयों में असन्तोष अधिक फैला है। अँगरेज़ी साम्राज्य में होने का भारतीयों को बड़ा गर्व था और उसके नागरिकता के अधिकारों का अपने को पात्र समझते थे। परन्तु जब ब्रिटिश उपनिवेशों ने क़ानून बनाकर भारतीयों को अपने यहाँ से निकालना आरम्भ किया, साथ ही अन्य विदेशियों को आने दिया तब इस बात से उनके आत्म-सम्मान को बड़ी ठेस लगी—इसी के फलस्वरूप 'डोमीनियन स्टेट्स' की माँग हुई है।

इस प्रकार भारत की स्थिति यह होती है। वहाँ अँगरेज़ी सरकार एक शक्तिशाली सेना और निपुण सिविल-सर्विस के सहित दृढ़ता से स्थापित है। रेलवे, नहर आदि के सार्वजनिक कामों और जूट, चाय, कोयला, खान आदि के उद्योग-धन्धों के बढ़ाने में ब्रिटिश पूँजी लगाई गई है। अँगरेज़-सरकार देशी नरेशों का स्वेच्छा से नियन्त्रण करती है। वह उन्हें केवल चेम्बर आफ़ प्रिंसेज़ में अपने सम्बन्ध के प्रश्नों पर वाद-विवाद तथा उन पर अपनी सम्मति भर प्रकट करने देती है। अँगरेज़ी प्रदेशों के लिए जो उसने एक शासन-विधान बना दिया है उसके अनुसार सारी महत्त्व की बातों का नियन्त्रण इँग्लैंड की सरकार के द्वारा होता है। परन्तु सरकार ने भारत में यथासमय उत्तर-दायित्व-पूर्ण सरकार की स्थापना करने की भी प्रतिज्ञा की है। भारत की यही वास्तविक स्थिति है। इसके साथ-ही-साथ ब्रिटिश भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन शीघ्र स्थापित करने की माँग का आन्दोलन फैला हुआ है। और देशी नरेशों में भी आकांक्षा जागृत हुई है कि उनके भाग्यों की रचना में उनका भी हाथ रहा करे।

जो लोग ब्रिटिश-सत्ता को इस दृढ़ स्थिति से स्थानच्युत करना चाहते हैं वे मोटे हिसाब से तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। पहले तो वे लोग हैं जो आशा करते हैं कि इस स्वभाग्य-निर्णय के ज़माने में अँगरेज़ लोगों को आत्मशासन-सम्बन्धी भारतीय माँग के औचित्य का बोध हो जायगा और वे भारत को किसी शर्त के बिना आत्म-शासन का अधिकार प्रदान कर देंगे और तब भारतीय भी कृतज्ञतावश अँगरेज़ों को सबसे अधिक कृपापात्र राष्ट्र का अधिकार प्रदान करेंगे। निस्सन्देह अँगरेज़ों में एक दल है जिससे इस आशा की यथार्थता प्रकट होती है। ब्रिटिश राष्ट्र का वह भाग इस बात के लिए तैयार है कि भारत अपना शासन आप करे। परन्तु अँगरेज़ी राष्ट्र का दूसरा भाग है जो एक बहुमूल्य

देश इस तरह मूर्खता से नहीं छोड़ देना चाहता। वह कहता है कि अँगरेज़ों को भारत में स्वयं भारतीयों के हित के लिए बने रहना चाहिए, क्योंकि भारतीय बिना अँगरेज़ों की सहायता के अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे। इसके सिवा उनका विश्वास नहा किया जा सकता कि वे अपने देशवासियों में से निर्बल लोगों के साथ न्याय करेंगे। तथा उन अँगरेज़ लोगों के साथ न्याय करेंगे जिन्होंने भारत में अपनी पूँजी लगाई है और व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को समुन्नत किया है। और जिनके उद्योग-धन्धों का विनाश भारत के लिए विनाश की बात होगी। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है जो अँगरेज़ों की हित-रक्षा के लिए यथेष्ट संरक्षणों का प्रबन्ध कर देने पर अँगरेज़ों से शासन-सूत्र प्राप्त कर लेने की आशा करते हैं। ये लोग सेना, पर-राष्ट्र-विभाग, राष्ट्रीय ऋण, मुद्रा-नीति—आदि उस गवर्नर-जनरल के हाथों में सौंप देने को तैयार हैं जो इँग्लैंड की सरकार के नियन्त्रण में रहे। वे योरपीय कर्मचारियों, व्यवसायियों तथा पूँजी लगानेवालों के डर को विधानात्मक गारंटियाँ देकर दूर कर देना चाहते हैं। वे अल्प-संख्यक समुदायों के भी डर को दूर करने को तैयार हैं। इन बातों के सिवा वे सरकार की विधान को स्थगित कर स्वयं शासन करने में भी मदद करेंगे। परन्तु इस प्रकार के संरक्षण तीसरी श्रेणी के भारतीयों को पसन्द नहीं हैं। इनका कथन महात्मा गांधी-द्वारा प्रकट होता है। इनका कहना है कि ये संरक्षण भारत की हित की दृष्टि से होने चाहिए, दूसरे शब्दों में यह है कि ये लोग अँगरेज़ों से सौदा नहीं करना चाहते। ये अपनी स्वतन्त्रता को मूल्य देकर ख़रीदना नहीं चाहते। ये लोग सार्वजनिक विरोध के भाव से अँगरेज़ी शासन-चक्र का चलना असम्भव करके अँगरेज़ों को इस बात का विश्वास करा देना चाहते हैं कि भारत को स्वतन्त्र कर देने की आवश्यकता है। लंदन को छोड़ते समय गांधीजी ने जो कहा था उससे यह बात साफ़ प्रकट होती है। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय महासभा को फिर अपनी बैटरी भरनी पड़ेगी और उसे अँगरेज़ों को यह दिखा देना होगा कि वह उनके हाथों से अपनी स्वाधीनता ले लेने को काफ़ी मज़बूत है। राउंडटेबिल कान्फ़रेंस में यह प्रकट कर महात्माजी का समाधान करने का प्रयत्न किया गया था कि प्रस्तावित संरक्षण भारत के हित में हैं। इसका महात्माजी को विश्वास हुआ है या नहीं, यह बात सन्देहात्मक है।

यदि अँगरेज़ लोग अपना प्रभुत्व छोड़ने को राज़ी किये जा सकें तो शासन-विधान के निर्माण में बहुत-सी कठिन अड़चनों का सामना न करना पड़ेगा। यह स्पष्ट ही है कि आत्मशासन-प्राप्त भारत में ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के सहित एकात्मक सरकार की स्थापना नहीं हो सकती। ऐसी सरकार का केन्द्रगत अधिकार अधिक कठोर रहता है। अतएव आशा नहीं की जा सकती कि देशी रियासतों को जो अपने भीतरी मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र हैं, इस सरकार की अधीनता स्वीकार होगी। फलतः सरकार सङ्घात्मक होनी चाहिए।

सङ्घ-सरकार एकात्मक सरकार से इस बात में भिन्न है कि संघ-सरकार केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों एवं राज्यों की सरकारों की शक्ति और उनके अधिकारों को अलग अलग कर देती है। वह प्रत्येक को अपने क्षेत्र में स्वाधीनता प्रदान करती है और चाहती है कि प्रत्येक अपने व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहे।

किसी ऐसे भारतीय संघ के सम्बन्ध में पहला जटिल प्रश्न यह निश्चय करना है कि संघीभूत राज्य कैसे होने चाहिए।

अँगरेज़ी भारत के पन्द्रह प्रान्त क्षेत्रफल, आबादी, राजनैतिक उन्नति तथा व्यावसायिक महत्त्व की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। इधर कोई छः सौ देशी रियासतें आपस में एक दूसरे से और भी अधिक भिन्न हैं। इस ऐसे सामञ्जस्यहीन समूह को किसी संघ के साझीदार बनाने के लिए एकरूपता प्रदान करना सरल काम नहीं है। हैदराबाद के निज़ाम जैसे कुछ देशी नरेशों को क़रीब क़रीब 'सावरेन' के अधिकार प्राप्त हैं। उनके सेनायें, टकसाल, दीवानी और फ़ौजी अदालतें हैं। इसके विपरीत बहुत-सी ऐसी छोटी छोटी रियासतें हैं जहाँ ये राज्याधिकार-सूचक चिह्नों का अभाव ही नहीं है, किन्तु अपराधियों को

दण्ड देने की उनकी शक्ति भी सीमित है। संघ में इनके शामिल किये जाने पर इनकी अवस्थाओं में सामञ्जस्य लाना आवश्यक होगा। यही अवस्था रियासतों की सरकारों और संघ-सरकार के बीच कार्यों के विभाग की योजना के तय करने में कठिनाई उपस्थित करती है। जिन मामलों का समानरूप से सब भागों पर प्रभाव पड़ता है उनका प्रबन्ध संघ सरकार के ही हाथों से होना चाहिए। उदाहरण के लिए देश-रक्षा की व्यवस्था, वैदेशिक और व्यावसायिक मामले—वे मामले जिनमें एक-रूपता आवश्यक है जैसे करंसी, फ़ौजदारी क़ानून, तौल-माप तथा वे मामले भी जिनमें सहयोगात्मक प्रयत्न अधिक लाभदायक है जैसे औद्योगिक तथा वैज्ञानिक खोज का कार्य—सङ्घ-सरकार के ही हाथों में रहना ठीक होगा। स्थानिक हितों के मामले तथा रोज़ रोज़ का प्रबन्ध-कार्य बड़े सुभीते के साथ रियासतों की सरकारों को सौंपा जा सकता है और इनका नियन्त्रण स्थानीय व्यवस्थापक-मण्डल-द्वारा बड़े अच्छे ढङ्ग से किया जा सकता है।

परन्तु इतने से ही यह कार्य-विभाग पूर्ण नहीं हो जाता। सङ्घ और देशी रियासतों के न्याय-विभागों के बीच के झगड़ों आदि का रोकना असम्भव है। ऐसे सन्दिग्ध मामलों को तय करने के लिए एक सङ्घीय बड़ी अदालत की स्थापना करनी होगी, जिसे पूर्ण आवश्यक स्वाधीनता प्राप्त रहेगी। इस अदालत की रचना और इसका कर्तृत्व सङ्घ-विधान के लिए एक बड़े महत्त्व की बात होगी।

सङ्घ-सरकार के व्यवस्थापक-मण्डल का सङ्गठन और उसका स्वरूप अनेक नये प्रश्न उपस्थित करता है। इसको दो व्यवस्थापक-मण्डलों का होना एक साधारण बात है। उस दशा में इसके एक भवन में रियासतों की सरकारों के प्रतिनिधि रहेंगे और दूसरे में सारे देश के निवासियों के चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे। अँगरेज़ी प्रान्त प्रतिनिधित्व की इस पद्धति से परिचित हैं, परन्तु कुछ को छोड़ कर शेष भारतीय रियासतें इस पद्धति से परिचित नहीं हैं। और यह सम्भव नहीं है कि देशी नरेश अपने प्रजाजनों को चुनाव-द्वारा अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने की अनुमति देने को राज़ी होंगे। इसके सिवा एक यह भी प्रश्न है कि प्रत्यक्ष चुने हुए प्रतिनिधियों-द्वारा सङ्गठित व्यवस्थापक-मण्डल का होना सम्भव है या नहीं सम्भव है।

और इसी कारण रियासतों के व्यवस्थापक-मण्डलों में एकरूपता प्राप्त करना कठिन होगा। स्वभावतः प्रत्येक रियासत अपने यहाँ के व्यवस्थापक-मण्डल का रूप .खुद निश्चित करेगी और उसमें चुने जानेवाले प्रतिनिधियों के लिए नियम बनायेगी। परन्तु अल्पसंख्यकों के लिए समुचित संरक्षित स्थान रखते हुए सभी समाजों का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का कठिन प्रश्न सभी मामलों में विकट समस्या उपस्थित करता है। इसका निर्णय अब तक नहीं हो सका है। सङ्घ-सरकार के व्यवस्थापक-मण्डल के मामले में भी यह प्रश्न उठता है।

इसी तरह सङ्घ और राज्यों के शासक-मण्डलों का सङ्गठन तथा व्यवस्थापक-मण्डलों के प्रति उनका उत्तरदायी होना भी एक मसला है जो कठिनाइयों से भरा हुआ है। राउंडटेबल कान्फ़रेंस में यह बात स्वीकार की गई है कि प्रान्तिक शासक-मण्डल व्यवस्थापक-मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहेगा, परन्तु परिवर्तन-काल में कुछ समय तक कुछ आवश्यक अधिकार गवर्नर के हाथ में रहेंगे जो उनका प्रयोग व्यवस्थापक-मण्डल से सर्वथा स्वाधीन रहकर करेंगे। वे अपने इन अधिकारों का प्रयोग संरक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध में तथा एक समाज और दूसरे समाज के बीच के भेद-भाव के रोकने में करेंगे। केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव किया जा रहा है कि कई महत्त्वपूर्ण विभागों का नियन्त्रण वायसराय के हाथों में रहे, अर्थात् इन विभागों के नियन्त्रण का कोई अधिकार व्यवस्थापक-मण्डल को न दिया जाय। इसके साथ ही सङ्घ-सरकार को व्यवस्थापक-मण्डल के विरुद्ध कार्य करने के लिए विशेष अधिकार दिये जाने को हैं। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या शासक-मण्डल पूर्ण तथा उन लोगों का मन्त्रि-मण्डल होगा जो व्यवस्थापक-

मण्डल से ही लिये जायँगे या केवल कुछ ऐसे आदमियों का तथा उन कुछ अधिकारियों का जिन्हें गवर्नर-जनरल नियुक्त करेंगे और जो अनुत्तरदायी होंगे।

शासक-मण्डलों के सम्बन्ध में एक और प्रश्न है। वह है उसके भीतर भिन्न भिन्न समाजों के प्रतिनिधित्व का। सरकार को व्यवस्थापक-मण्डल के प्रति उत्तरदायी बना देना, साथ ही उसमें सभी समुदायों के लोगों के प्रतिनिधि भी रखना, एक व्यावहारिक बात नहीं जान पड़ती है।

राउंडटेबल कान्फ़रेंस में इन उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण मसलों के केवल कुछ अंशों पर ही बातचीत हुई है। वस्तुतः कांग्रेस ने राउंडटेबल कान्फ़रेंस में इस बात का वाद-विवाद जारी रखना चाहा था कि ब्रिटेन भारत को पूर्णरूप से स्वतन्त्र करेगा या नहीं। परन्तु इस बात का उत्तर उन निर्णयों से निकालना पड़ेगा जो भिन्न भिन्न संरक्षणों के सम्बन्ध में किये गये हैं।

—परमानन्द

संक्षिप्त कर्मयोग

यह पुस्तक गीता के गूढ़ रहस्यों को समझने की कुञ्जी है। जिस सरल और मनोरञ्जक ढंग से गीता के तत्त्वों का इसमें प्रतिपादन किया गया है, वैसा प्रायः अन्यत्र कहीं भी नहीं किया गया है। प्रत्येक अध्यात्मप्रेमी को इस विषय की और कोई पुस्तक पढ़ने से पहले इसे एक बार अवश्य पढ़ लेना चाहिए। मूल्य ॥)

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

किसान

बैरन दुत्रैली ने मुझसे कहा कि न हो तो अब के मौसम में हम लोग अपने 'मेरिन विली' के इलाके पर ही शिकार खेलें। वहाँ का शिकार अकेले के मान का नहीं। पर दोस्त! कटेगी बड़े आनन्द से। मैंने पूछा, कौन कौन चलेगा ?

तब बैरन ने कहा कि बस मैं और तुम। क्योंकि इन दिनों मैं भी अकेला ही हूँ और वहाँ का घर कुछ ऐसे पुराने ढङ्ग का है कि सिवा इष्ट-मित्रों के और किसी को वहाँ निमन्त्रित भी नहीं कर सकता।

मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

शनिवार के दिन नारमंडी की ओर हम लोग रेल गाड़ी से चल पड़े। अल्मेयर के स्टेशन पर ज्योंही उतरे, सामने ही एक देहाती छकड़ा देख पड़ा। उसमें एक बड़ा ही चञ्चल घोड़ा जुता हुआ था और एक ऊँचा-पूरा बूढ़ा साईस उसके पास खड़ा था। बैरन ने इशारा करते हुए कहा, देखो यह अपनी देहाती गाड़ी है।

साईस ने तुरन्त बैरन की ओर अपना हाथ बढ़ाया और बैरन ने भी बड़े स्नेह से उसे दबा लिया। और पूछा, कहो, क्या हाल है।

साईस ने कहा, सब अच्छा है सरकार।

हम लोग उसी बड़े बड़े पहियेवाले छकड़े में बैठ गये। घोड़े ने कुछ देर तक तो मस्ती की, पर फिर जब सरपट भगा तब हम लोगों को गाड़ी में बैठे-बैठे ऐसा मालूम होने लगा मानो हवा में उड़े जा रहे हों। उस कँकरीली सड़क पर छकड़ा भी खूब उछल रहा था। तख़्तों पर उछलते उछलते मैं तो हैरान होगया।

साईस बार-बार 'मुटार्ड' को पुचकारता था, पर 'मुटार्ड' अपनी धुन के सामने किसी की सुनता न था। हमारे दोनों कुत्ते भी छकड़े में पीछे चुपचाप खड़े हवा को सूँघ सूँघ कर आस-पास शिकार की टोह लगा रहे थे।

बैरन नारमंडी की ऊँची-नीची भूमि की ओर विचारपूर्वक देख रहा था। वहाँ चारों तरफ़ निरे वृक्ष देख पड़ते थे। कहीं उम्दा हरी-भरी खेती का दृश्य था, तो कहीं सेब के छोटे छोटे झुँड के झुँड अपनी आड़ में घरों को छिपाये हुए थे। जिधर देखिए उधर यही सुहावना दृश्य था। देखते देखते बैरन सहसा कह बैठा, मुझे यह देश बड़ा ही प्रिय है। मेरी तो जड़ यहीं से है।

उसकी नसों में पवित्र 'नार्मन' रक्त बहता था। वह लम्बा-चौड़ा तुंदारा जवान उसी वंश का था जिसके आदि-पुरुष चारों ओर समुद्री तटों पर राज्य स्थापित करने जाया करते थे। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की थी और उस देहाती साईस से वह लगभग दस वर्ष छोटा था। उस किसान की हड्डी हड्डी देख पड़ती थी। उसके शरीर में हड्डी और चमड़ी को छोड़कर और कुछ था ही नहीं। और देहाती किसानों की तो प्रायः यही दशा रहती भी है।

उसी पथरीली सड़क पर दौड़ते-दौड़ते लगभग दो घंटे बीत गये तब कहीं हम लोग उस हरे-भरे मैदान में

पार करके सेब के बाग़ से निकलते हुए 'मेयर दुत्रैली' के उस पुराने मकान पर पहुँचे। यहाँ पर एक पुरानी बुढ़िया नौकरानी काम कर रही थी और एक लड़के ने तुरन्त उठकर घोड़ा थाम लिया।

हम लोग घर के भीतर गये। उसका लम्बा चौड़ा रसोई-घर धुयें से बिलकुल काला हो रहा था। चूल्हे पर पीतल और चीनी के बर्तन चमक रहे थे। एक कुर्सी पर एक बिल्ली सो रही थी और एक कुत्ता मेज़ के नीचे पड़ा सो रहा था। चारों तरफ़ कहीं दूध और सेब की सुगन्ध आ रही थी—कहीं ज़मीन पर गिरा हुआ शोरबा बसा रहा था—कहीं से धुयें और ज़मीन की सोंधी सोंधी बास आ रही थी।

मैं वहाँ से बाहर निकल कर खलियान की ओर चल दिया। वहाँ बड़े घने सेब के पेड़ लगे थे और सबके सब फलों से बिलकुल लद रहे थे। फूल बार बार चारों ओर घास पर टप टप गिर रहे थे।

धीरे धीरे रात घिर आई और मैं भी घर लौट आया। बैरन बैठा हुआ अपने पैर सेंक रहा था और बूढ़ा किसान बैठा हुआ देहात का हाल सुना रहा था कि कहाँ ब्याह हुआ, कहाँ लड़का पैदा हुआ, कौन मरा, गेहूँ का भाव कैसे गिर गया, कौन सी गाय कब जनी, चीड़ को अब कोई नहीं पूछता, नाशपाती की फ़सल कम हो गई, इत्यादि, इत्यादि।

तब हम लोग भोजन करने बैठे। देहाती भोजन बड़ा सादा पर अत्यन्त पुष्ट एवं स्वादिष्ट था और हम लोगों ने ख़ूब खाया। खाते खाते मेरा ध्यान बैरन तथा उस किसान की पारस्परिक घनिष्टता की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

बाहर पेड़ों के बीच से हवा सन सन चल रही थी और हमारे कुत्ते अस्तबल में बन्द चिल्ल-पों मचाये हुए थे। बुढ़िया नौकरानी सो गई थी। इतने में उस बूढ़े किसान ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो अब जाकर सो रहूँ, क्योंकि रात में देर तक नहीं जाग सकता। बैरन ने तुरन्त हाथ बढ़ाया और कहा, हाँ हाँ! अवश्य सो जाओ। परन्तु बैरन ने यह बात इतनी नम्रता से कही कि बूढ़े के उठते ही मैं बैरन से बिना पूछे न रह सका कि मालूम होता है इस किसान से आपकी विशेष घनिष्टता है।

बैरन ने कहा—यार! इससे भी कहीं अधिक। इसका बड़ा पुराना इतिहास है, जिससे मैं इसकी ओर इतना अधिक खिंचा रहता हूँ। बात बड़ी सीधी है, पर दुख-दायक भी वैसी ही है। तुम तो जानते हो, मेरे पिता सेना में कर्नल थे। यह बूढ़ा किसान उस समय लड़का ही था और उन्हीं की अर्दली में था। जब उन्होंने नौकरी छोड़ दी तब इसे भी अपने साथ ही लेते आये। उस समय इसकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की हो गई थी और मैं भी लगभग ३० वर्ष का था। उस समय हम लोग अपने गाँववाले बँगले में रहते थे।

मेरी मा के पास 'लूसी' नाम की एक बड़ी ही सुन्दरी नौकरानी थी। वैसी अच्छी लड़की तो अब देख भी नहीं पड़ती। ऐसा सुडौल बदन था कि क्या कहूँ। वैसी लड़कियाँ अब कहाँ मिलती हैं? क्योंकि अब तो यदि कहीं कोई हुई भी तो लोगों के चङ्गुल में पड़कर तुरत नष्ट हो जाती है। और फिर रेलगाड़ियों के चल जाने से तो और भी ख़राबी हो गई है। क्योंकि अब तो लड़-कियाँ ज़रा बड़ी हुईं कि चट-पट शहर की हवा खाने चल देती हैं और वहाँ इनके फँसाने के बड़े बड़े सामान हैं। प्रायः जो कोई भी अब इधर से निकलता है वह फ़ौजी भर्तीवालों की तरह बस इन छोकरियों की ही ताक में रहता है। जहाँ कोई ज़रा भी अच्छी देख पड़ी कि चटपट फाँस-फूँस कर लेकर चल देता है। इसी लिए अब घरों में काम करने के लिए बस वही भोंड़ी सूरतें रह जाती हैं जिन्हें कोई पूछनेवाला नहीं।

यार वह लड़की बड़ी ही सुन्दरी थी और कुछ लुक-छिप कर मैं भी उसका चुम्बन कर लिया करता था। बस और कुछ नहीं—इससे अधिक और कुछ नहीं—मैं शपथ खा सकता हूँ कि बस इससे अधिक और नहीं। वह स्वयं बड़ी सुशील थी और फिर मुझे भी अपनी मा के घर का पूरा ध्यान था। मानो आज-कल के लड़के ऐसी बातों का विचार प्रायः नहीं करते।

कुछ ऐसा हुआ कि हमारा यह नौकर उस पर बेतरह लट्टू हो गया। हम लोगों ने देखा कि यह कुछ अधिक सुल्लड़ सा हो गया था और मन-ही-मन कुछ सोचा-विचारा करता था। पिताजी प्रायः इससे पूछा करते थे कि क्यों जीन क्या हाल है? तबीयत तो ठीक है? यह कह दिया करता था, सरकार कुछ नहीं, सब ठीक है।

धीरे धीरे यह गलता जाता था और कभी कभी परोसते समय ग्लास तोड़देता, कभी तश्तरियाँ पटक देता था। हम लोग समझे, इसे कमज़ोरी की बीमारी हो गई है, और हम लोगों ने डाक्टर को बुलवाया। उसने इसे 'रीढ़' की बीमारी बतलाया। तब पिताजी ने इसे अस्पताल भेजने का विचार किया। जब इसे यह पता चला तब इसने सचसच बतलाने का विचार किया।

एक दिन सवेरे पिताजी डाढ़ी बना रहे थे तब इसने डरते डरते उनसे कहा।

हुज़ूर।

'हाँ 'गारशों'*।

'सरकार! मुझे दवा नहीं चाहिए'।

'हाँ। तब फिर'?

'मैं ब्याह करना चाहता हूँ'।

पिताजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे घूम पड़े।

'तुमने क्या कहा? क्या?'

'मैं ब्याह करना चाहता हूँ सरकार'।

'ब्याह। तो तुम—तुम कहीं फँस चुके हो। क्यों?

'बस सरकार! बात तो यही है।'

इतना सुनते ही मेरे पिताजी इतनी ज़ोर से हँसने लगे कि मा चिल्ला पड़ीं कि क्या हो गया है?

उन्होंने कहा—ज़रा यहाँ आओ कैथरिन। जब वे भीतर आईं तब पिताजी ने उनसे 'जीन' की प्रेम-पीड़ा का वर्णन किया। मा को हँसी तो नहीं आई, पर दया अवश्य आगई।

उन्होंने पूछा—गारशों तुम किससे प्रेम करते हो?

उसने बेधड़क कह दिया—सरकार मैं लूसी से प्रेम करता हूँ।

तब मा ने कहा—अच्छा हम सब ठीक करने का प्रयत्न करेंगे।

माँ ने लूसी को बुलाया और उससे पूछा। उसने कहा—हाँ, मुझे 'जीन' की इस सनक का पता अवश्य है और वह बहुत बार कह भी चुका है, पर कुछ कारण ऐसे हैं जिससे मैं उसे नहीं चाहती।

दो महीने बीत गये और मा और पिताजी लूसी को दबाते रहे कि वह 'जीन' से विवाह कर ले। और उसने भी शपथपूर्वक कहा कि वह भी किसी और से प्रेम नहीं करती थी, परन्तु जीन से विवाह न करने का कारण नहीं बताती थी। परन्तु पिताजी ने कुछ ले-देकर उससे स्वीकृति प्राप्त ही कर ली और ये दोनों यहीं जहाँ इस समय हम लोग बैठे हैं, बसा दिये गये।

कुछ दिनों के बाद इन्होंने हमारा बँगला छोड़ दिया और दो-तीन वर्षों तक मुझे नहीं मालूम कहाँ रहे। लगभग तीन वर्ष के बाद मैंने सुना कि लूसी क्षय-रोग से मर गई। और मेरे माता-पिता भी नहीं रहे। फिर दो वर्ष तक मैंने 'जीन' को नहीं देखा।

अन्त में एक दिन मेरे चित्त में आया कि इस इलाके में भी शिकार खेलने जाना चाहिए, क्योंकि मेरे किसान कहा करते थे कि यहाँ बड़ा शिकार है। अतः एक दिन खूब पानी बरस रहा था और मैं इसी घर में आ पहुँचा। यहाँ पर अपने पिता के पुराने अर्दली को देखकर जो अब बिलकुल बूढ़ा हो गया था, मुझे बड़ा आश्चर्य एवं कुतूहल हुआ। इस समय इसकी अवस्था लगभग ४५ या ४६ वर्ष की थी।

यहीं जहाँ इस समय हम लोग बैठे हुए हैं, मैंने इसे अपने साथ ही भोजन कराया। उस समय बाहर बड़े वेग से वर्षा हो रही थी। छत पर और दीवार और खिड़कियों पर बौछारें बड़े ज़ोर से पड़ रही थीं। और अस्तबल में मेरा कुत्ता इसी प्रकार चिल्ला रहा था। जैसे इस समय ये कुत्ते आफ़त मचाये हुए हैं।

*फ्रेंच में होटल के नौकर को 'गारशों' कहते हैं।

जैसे ही बुढ़िया नौकरानी सोने चली गई, यह बूढ़ा बोल उठा।

'सरकार'

'कहो जीन'

'मुझे आपसे कुछ कहना है।'

'कहो, कहो, क्या बात है' ?

'वह—क्या कहूँ बड़ा कष्ट होता है।'

'ख़ैर—कहो तो'।

'आपको मेरी स्त्री—लूसी की याद है' ?

'हाँ ! हाँ ! मुझे याद है'।

'उसने आपसे कुछ कहने को कहा था'।

'क्या' ?

'अ—अ—आप इसे एक प्रकार का 'कन्फ़ेशन' ही समझिए'।

'तो क्या बात है' ?

'मैं—मैं—तो चाहता हूँ कि न कहूँ—परन्तु कहना ही पड़ेगा।'

'वह-सरकार ! क्षय-रोग से नहीं मरी, बरन दुख के कारण मरी। यह बात बिलकुल अन्त में मालूम हुई। वह जैसे ही यहाँ आई कि बिलकुल ही बदल गई। छः महीने में ही पहचानी नहीं जाती थी। इतना परिवर्तन हो गया कि क्या बताऊँ ? मैंने डाक्टर को बुलवाया—उसने कहा, दिल की बीमारी है। मैंने सैकड़ों रुपये की दवा ख़रीद डाली, पर वह उन्हें खाना ही नहीं चाहती थी—उसने कहा 'प्यारे ! ये सब व्यर्थ में क्यों कर रहे हो ? इसका कुछ भी अच्छा परिणाम न होगा।

'और मैंने भी देखा कि भीतर कोई गुप्त बीमारी अवश्य थी। वह प्रायः पड़ी-पड़ी रोया करती थी। मुझे सूझ ही नहीं पड़ता था कि क्या करूँ। मैं इसके लिए तरह तरह के कपड़े, तथा शृङ्गार की चीज़ें भी ले आया कि किसी प्रकार उसका दिल बहल जाय। पर सब व्यर्थ हुआ। तब मैं समझ गया कि वह बच नहीं सकती थी।

'एक दिन नवम्बर में रात के समय जब ख़ूब बरफ़ गिर रही थी और दिन भर वह उठ न सकी थी, वह मुझसे बोली कि एक पुरोहित को बुला लाओ। मैं जाकर बुला लाया। वह जैसे ही आ गया, तैसे ही वह कहने लगी—देखो जीन ! मैंने तुम्हें कभी भी धोखा नहीं दिया है—कभी नहीं। न कभी ब्याह के पहले और न उसके पश्चात्। ये पुरोहितजी जो मेरी आत्मा को जानते हैं यही मेरे साक्षी हैं। यदि मेरी मृत्यु हो गई तो इसका कारण यह था कि मैं 'उस' बँगले से हट कर जी नहीं सकती थी। क्योंकि मेरे हृदय में 'बैरन दुत्रैली' के लिए अत्यन्त स्नेह था—बहुत ही अधिक स्नेह था समझे ? बस केवल स्नेह और कुछ भी नहीं। बस यही मुझे खाये जाता है। जब मैं उनके दर्शनों से भी वञ्चित हो गई तभी मैं समझ गई कि अब जीना कठिन है। यदि उनके दर्शन हो जाते तो अवश्य बच जाती। बस केवल दर्शन और कुछ नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ कि जब मैं न रहूँ तब तुम एक दिन उनसे यह कह देना। अवश्य कहोगे न ? अच्छा शपथ खाओ कि अवश्य कह दोगे। अच्छा तो पुरोहित के सामने शपथ खाओ यदि वे जान जायँगे कि मैं उन्हीं के कारण मरी तो मेरी आत्मा को अवश्य सन्तोष होगा। अच्छा बस शपथ खाओ।

'तब सरकार ! मैंने वचन दे दिया। और मैंने अत्यन्त सचाई से अपना वचन पालन किया है'।

यह कह कर वह चुप हो गया और मेरी आँखों की ओर घूरने लगा।

तुम तो अनुमान भी नहीं कर सकते कि उस विकट रात में इसकी यह करुणाजनक कहानी सुन कर मेरे हृदय में कैसे कैसे भाव उठे होंगे ?

बस मैं तो केवल 'जीन ! जीन !' चिल्ला पड़ा। वह धीरे से कह उठा—अब तो जो होना था सो हो चुका। हम लोग कर ही क्या सकते हैं ? सब कुछ हो चुका !

उसका हाथ पकड़ कर बस मैं रोने लगा।

उसने पूछा—'क्या उसकी क़ब्र देखोगे ?

मैंने धीरे से सिर हिला दिया—कुछ बोल तो सकता ही न था।

उसने उठके बत्ती जलाई और उस विकट अँधेरी रात में जब वेग से बड़ी बड़ी बूँदें गिर रही थीं हम और वह दोनों जन उसी टिमटिमाते प्रकाश में चल पड़े। उसने फाटक खोल दिया और मुझे सामने कुछ काले-काले लकड़ी के 'क्रास' देख पड़े। वह सहसा कह उठा।

"बस यही है।" और एक कब्र पर संगमरमर का पत्थर लगा हुआ था उसी पर उसने लालटेन रख दी कि मैं उस पर खुदे अक्षर पढ़ सकूँ।

'लूसी हार्टेन्सी मेरिनेट
किसान 'जीन फ्रान्सो' की स्त्री थी।
वह अत्यन्त पति-परायणा पत्नी थी
परमात्मा उसकी आत्मा को शान्ति दे।'

बत्ती के दोनों ओर हम दोनों कीचड़ में ही घुटने टेक कर खड़े हो गये। मेरी आँखें संगमरमर की शिला पर गिरकर बिखर जानेवाली वर्षा की बूँदों को देख रही थीं और चित्त उस मृत ललना के हृदय की स्नेह-मयी पवित्रता की कल्पना कर रहा था।

तब से मैं प्रतिवर्ष यहाँ आता हूँ। और न जाने क्यों मैं स्वयं ही इस किसान के सामने अपने आपको अपराधी-सा समझने लगता हूँ, यद्यपि इसके नेत्र सदा ही क्षमा-शीलता से भरे रहते हैं।*

—ललिताप्रसाद सुकुल

* एक फ्रेन्च कहानी के आधार पर।

यदि आप हिन्दू-संस्कृति का सच्चा स्वरूप जानना चाहते हैं तो आज ही हमारे यहाँ से प्रकाशित

सचित्र हिन्दी-महाभारत

की ग्राहक-श्रेणी में अपना नाम लिखा लीजिए। इससे आप तथा आपके स्त्री-बच्चों का मनोरञ्जन तो होगा ही साथ ही आपकी ज्ञान-वृद्धि भी होगी। सबसे बढ़कर लाभ यह होगा कि इसके अनुशीलन से आपके परिवार में सदाचार और सद्भावनाओं की वृद्धि होगी। हमारा महाभारत लाखों हाथों में पहुँच चुका है। तमाम भारत में दिनोंदिन इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है। इसकी सरसता, सरलता और रोचकता ने हर एक को मोहित कर लिया है। प्रत्येक अङ्क का मूल्य १।), स्थायी ग्राहकों से केवल १)

मैनेजर—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर

संसार का इतिहास मानव-जाति के उत्थान-पतन का इतिहास है। संसार की सभी जातियों को प्रकृति के उत्थान और पतन के रहस्य का अनुभव करना पड़ा है। परन्तु खेद की बात है कि वह सारा का सारा इतिहास आज हमें उपलब्ध नहीं। उसका अधिकांश काल के गाल में समा गया है। उसका जो अंश हमें उपलब्ध है वह केवल कुछ महापुरुषों की प्राचीन कृतियों से ही सुलभ है। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा निर्मित बड़े बड़े मन्दिरों और दुर्गों को विशेष महत्त्व प्राप्त है। यदि उनकी बनवाई हुई प्राचीन इमारतें सदियों की वर्षा-धूप सह कर बच न रह जातीं तो आज उनके निर्माता पुरुषों का पता हमें कैसे होता। फलतः ऐसी ही प्राचीन कृतियों के द्वारा हम अपने भूतकालीन इतिहास का जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसका अधिकांश हमें प्राचीन ध्वंसावशेषों से ही प्राप्त हो रहा है। अतएव इस सम्बन्ध में वे महापुरुष वास्तव में महापुरुष हैं, क्योंकि उनकी उत्कृष्ट महान् रचनायें भूतकाल की जातियों की उच्च संस्कृतियों का इतिहास प्रकट करती हैं।

अन्य देशों की भांति भारत में भी यहाँ के महापुरुषों ने अपनी कीर्ति अक्षुण्ण व स्मृति-शेष रखने के विचार से प्रसिद्ध व सर्वोत्कृष्ट शिल्पियों-द्वारा अपार धन-राशि व्यय कर अपने आराध्य देवों के देवालय निर्माण कराये थे। उनका विश्वास था कि उनके इस काम से उनकी सभ्यता व उनके धार्मिक

[साहित्यरंजन कुँवर हिम्मतसिंहजी, भैंसरोड़गढ़, मेवाड़]

भावों का संसार को परिचय होगा, साथ ही उनके गगनचुंबी देवालयों व प्रासादों से उनकी कीर्ति चिरस्थायी

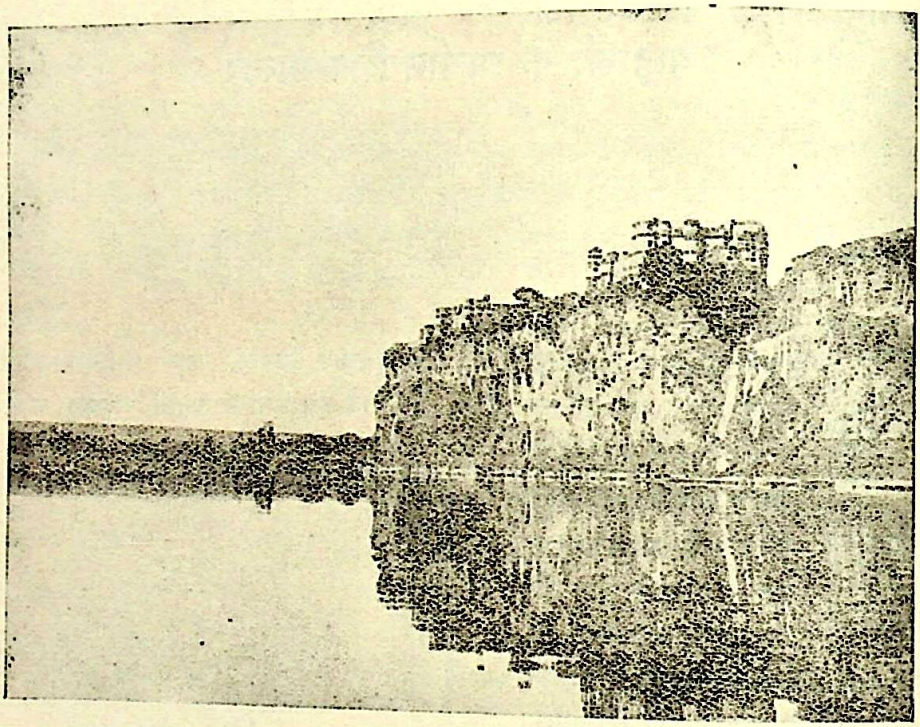

[भैंसरोड़गढ़ का राजप्रासाद और चम्बल-नदी का दृश्य]

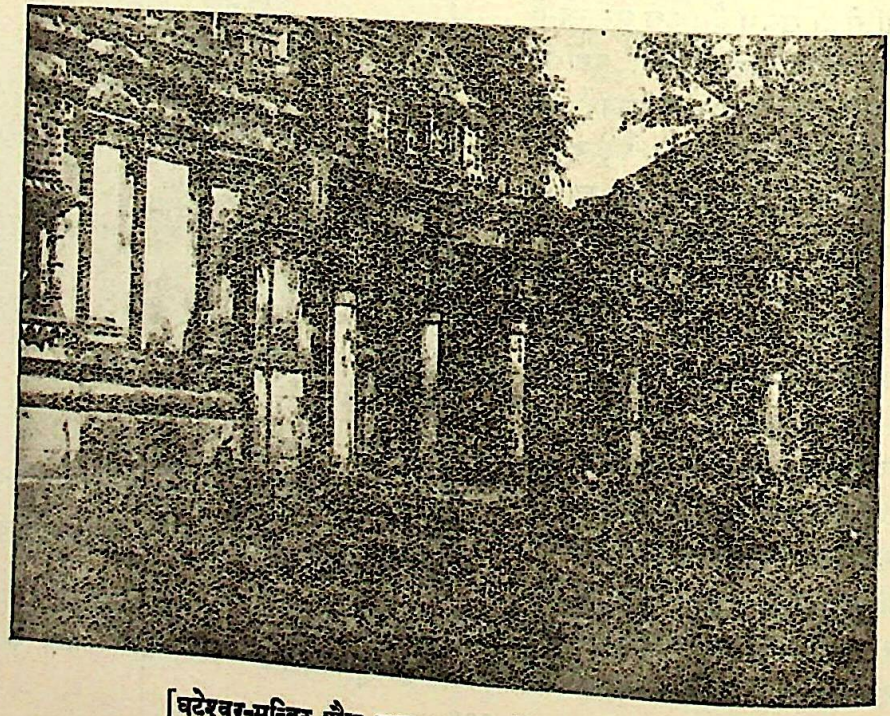

[घटेश्वर-मन्दिर और हूणराज की चौंरी का एक दृश्य]

होगी। परन्तु हमारी शताब्दियों की निर्बलता और विधर्मियों के आक्रमण तथा अन्य दैवी प्रकोपों से हमारे पूर्वजों के वे देवोपम मन्दिर आदि धराशायी हो गये हैं, केवल उनके ध्वंसावशेष रह गये हैं। तो भी उनकी अत्यंत कठोर पाषाणों पर की हुई तक्षण-कला हमारे नेत्रों को तृप्त करती है और हमें अपने प्राचीन गौरव की याद दिलाती है। यही नहीं, सात समुद्र के पार रहनेवाले संसार के प्रसिद्ध

इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़राज्य में 'भैंसरोड़गढ़' नाम का एक ठिकाना है। ठिकाने के दुर्ग से आग्नेय कोण में चम्बल-नदी के पार तीन मील के अन्तर पर जङ्गल के भीतर हूण-राज की उक्त रचना आज भी उसके गौरव का गान कर रही है। वह रचना इस समय यहाँ बाड़ोली के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के मन्दिरों में शिव आदि की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनसे प्रकट होता है कि

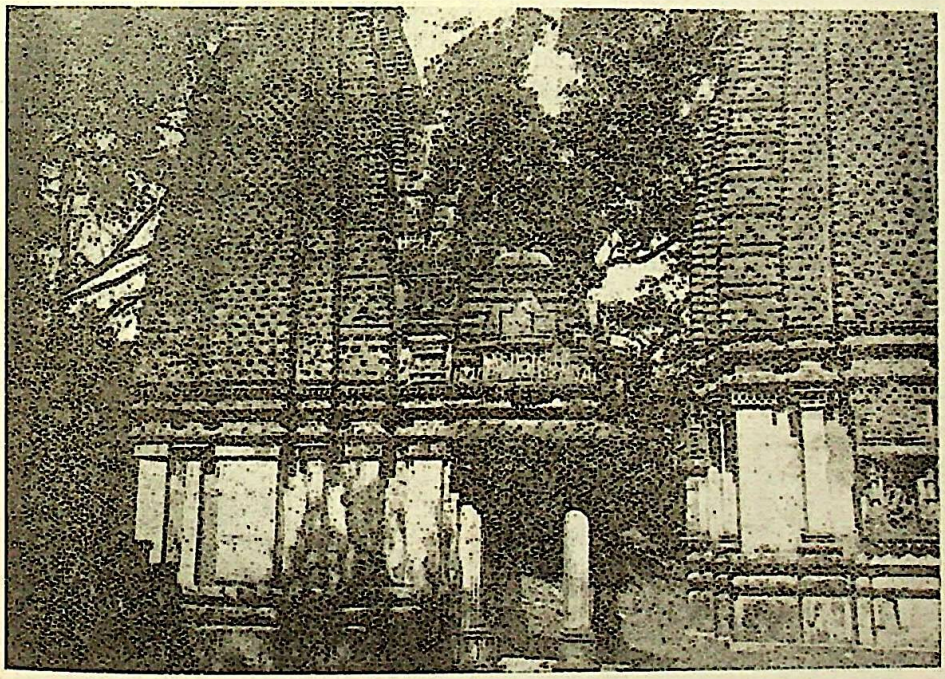

[घटेश्वर-मन्दिर के पास भगवती पार्वती का मन्दिर]

पुरातत्त्ववेत्ता तक को घोर परिश्रम व अपार धन के व्यय से निर्मित उन विचित्र और भव्य मन्दिरों के भग्नावशेष मुग्ध करते हैं। हमारा भारत ऐसे ही प्राचीन ध्वंसावशेषों का आकर है। उसमें उसकी अपनी संस्कृति के निदर्शक ही भव्य कृतियों के ध्वंसावशेष सुरक्षित नहीं हैं, किन्तु कतिपय विदेशी महापुरुषों की भी कृतियाँ यहाँ विद्यमान हैं। इस लेख में हम ऐसे ही एक महापुरुष की रचना का सचित्र वर्णन करेंगे। यह चारु रचना हूणराज मिहिरकुल की है।

इन देवालयों का निर्माता सम्राट् मिहिरकुल हूण परम शिवभक्त था।

हूण लोग मध्य-एशिया के रहनेवाले थे। अपने अभ्युदयकाल में इन लोगों ने एशिया और योरप के कई देशों को विजय किया था और उन विजित देशों पर अपना अधिकार भी जमा लिया था। चीनी ग्रन्थकारों ने यून् यून् यूनानी इतिहास-लेखकों ने उन्होंने और भारतीयों ने हूण और श्वेत हूण के नाम से इन लोगों का उल्लेख

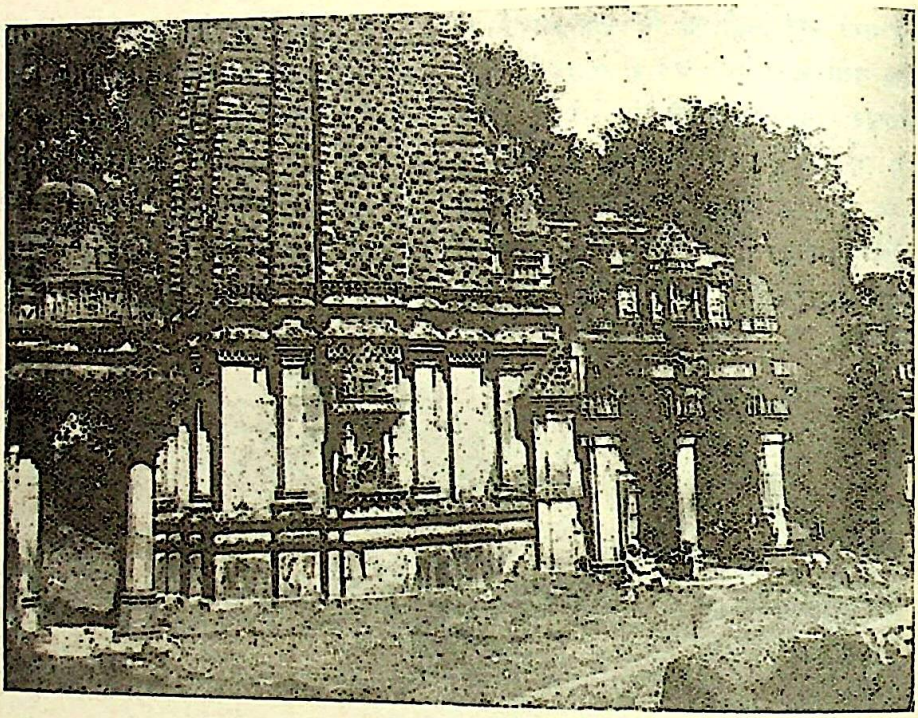

[घटेश्वर महादेव के मन्दिर का एक पार्श्व भाग]

[घटेश्वर महादेव के मन्दिर के सामने स्थित यज्ञ-मण्डप का एक दृश्य—इसको आज भी लोग हूणराज की चौंरी कहते हैं]

किया है। महाभारत तथा पुराणों में भी हूणों का उल्लेख मिलता है। मध्य-एशिया से भारत में इनका आना विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक नहीं पाया जाता। मध्य-एशिया में बौद्ध-धर्म का प्राबल्य था। हूणों ने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार किया था। इसी धर्म-द्वेष के कारण ब्राह्मण लेखकों ने मध्य-एशिया की अन्य जातियों के साथ साथ हूणों की भी गणना म्लेच्छों में की।

विक्रमी संवत् ४७७ के आस-पास मध्य-एशिया की वैक्ष नदी के पास रहने वाली हूण-जाति ने ईरान के ससानिमन् वंशी राजाओं से लड़ना प्रारम्भ किया और (दूसरे) मजज़र्द (विक्रमी संवत् ४९५-५१४) और फ़ीरोज (विक्रमी संवत् ५१४-५४१) को परास्त कर उनका ख़ज़ाना लूटा और उनका कुछ देश भी अपने अधीन किया। फिर ये लोग भारत की ओर मुड़े और गांधारदेश को विजय कर शाकल नगर को अपनी राजधानी बनाया और क्रमशः आगे बढ़ते गये। चीनी यात्री सुंगयुन् विक्रमी संवत् ५७७ में गांधार में आया था। वह लिखता है कि यहाँ का राजा एथोलेटो हूण है जो बड़ा योद्धा है। उसकी सेना में ७०० हाथी रहते हैं। हूणों ने गांधार में लेलिह को अपना राजा बनाया था। वर्तमान राजा तीसरा राजा है। विक्रम-संवत् ५६७ के आस-पास हूणराज तोरमाण ने गुप्तवंशी राजा भानुगुप्त से मालवा, राजपूताना आदि देश छीन लिये थे। इसी तोरमाण का उत्तराधिकारी मिहिरकुल बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसके चाँदी के सिक्कों पर 'जयतु वृषभध्वज' लेख के अतिरिक्त त्रिशूल, वृष (नन्दी) और छत्र के चिह्न हैं, जो उसका शैव होना प्रकट करते हैं। इन सब उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मिहिरकुल की राजधानी शाकल नगर (पंजाब) में थी। इसके सिवा एक हंगेरीनिवासी पादरी साहब का कहना है कि मिहिरकुल की राजधानी ग्वालियर थी और वह बाड़ोली में अपने इष्टदेव के मन्दिरों के निर्माण कराने में और उनके बन जाने के बाद भी बहुत समय तक रहा था। ये पादरी साहब अपने को हूण-वंशी कहते हैं इस प्रकार उसने बाड़ोली को अपनी उपराजधानी बना दिया था। इस बात के प्रमाण-स्वरूप बाड़ोली से कुछ फ़ासले पर हूणों के एक क़िले के भग्नावशेष मिलते हैं। मिहिरकुल पहले बौद्ध-धर्मानुयायी था। किन्तु पीछे से वह बौद्ध साधुओं से अप्रसन्न हो गया और उन पर अत्याचार करने लगा था, यहाँ तक कि बौद्ध-धर्म को समूल

[भगवती का मन्दिर]
(इस मन्दिर की देवी की मूर्ति खण्डित है।)

नष्ट कर देने का भी प्रयत्न किया था। उसने गांधारदेश में बौद्धों के १६०० स्तूप और मठ तुड़वा दिये थे। इसके साथ ही कई लक्ष मनुष्यों का वध भी करवा दिया था। कहा जाता है कि वह बड़ा निर्दय था। शिव का अनन्य भक्त हो जाने से वह शिव को छोड़कर और किसी के आगे नतमस्तक नहीं होता था। इसी शिव-भक्ति की प्रेरणा से उसने विक्रम-संवत् ५७० और ५७५

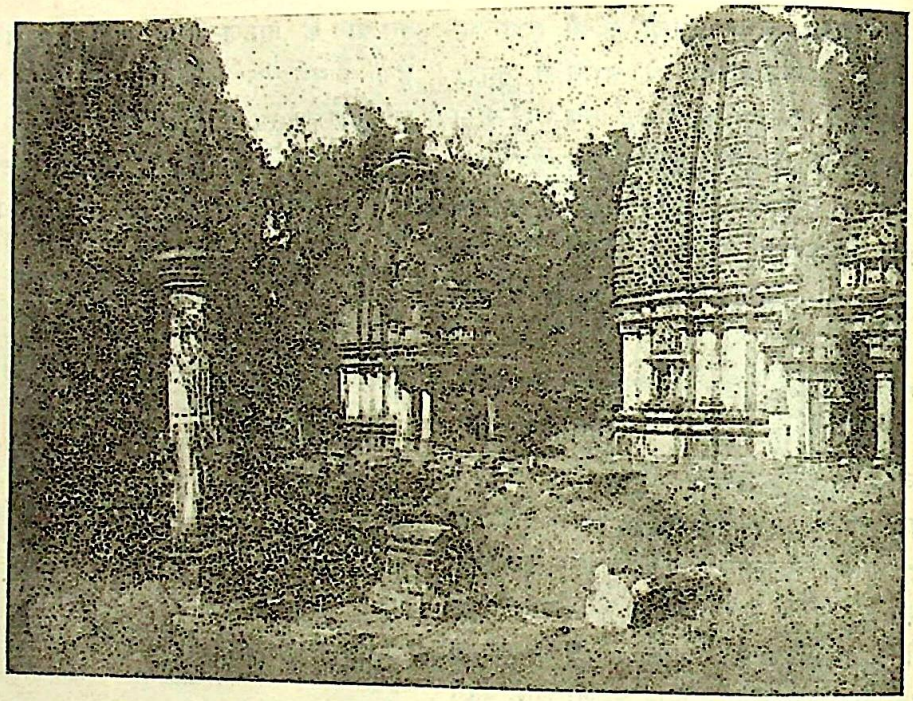

[देवी का मन्दिर, लकुटेश्वर त्रिमूर्ति महादेव तथा तोरण का स्तम्भ]

[प्राकृतिक दृश्य बाड़ोली]

के आस-पास बाड़ोली में शिवालय का निर्माण कर अपनी विजय और प्रगाढ़ शैव होने का ज्वलन्त उदाहरण दिया।

हूणराज मिहिरकुल के ये प्राचीन मन्दिर एक २५० फुट लम्बे-चौड़े आहाते के भीतर बने हुए हैं। इनके

[शेषशायी नारायण के मन्दिर के भीतर की खण्डित मूर्ति का चित्र]

चारों तरफ़ किले सा कोट और बुर्ज भी थे, जो अब खण्डहर के रूप में गिरे पड़े हैं। इस स्थान के आस-पास का वनवृक्ष गुल्म-लता आदि से ऐसा आच्छादित है कि जेष्ठ की धूप यहाँ अपना प्रभाव नहीं जमा सकती। अनेक द्रुम-समूहों की सघन छाया होने से यहाँ भगवान् अंशुमाली की प्रखर रश्मियों के भी दर्शन नहीं होते। यह स्थान मानो राजपूताने का 'नन्दन-कानन' है। इसकी यहाँ के लोग कैलास से उपमा देते हैं। आहाते के बाहर एक जल-कुंड है, जिसके बीच में एक शिवालय बना हुआ है। कुमुदिनी से पूर्ण जलकुंड के मध्य में यह देवमन्दिर अपनी सुन्दरता और प्राचीनता दोनों का दिग्दर्शन कराता है। इसके दक्षिण-पार्श्व में भगवान् शेषशायी नारायण का मन्दिर है। इसकी नारायण की मूर्ति भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में अपने ढङ्ग की एक मूर्ति है। उसकी तक्षण-कला के विषय में कई एक प्रसिद्ध योरपीय पुरातत्त्ववेत्ताओं की यह सम्मति है कि यह भारत भर में अद्वितीय हिन्दू-मन्दिर है।

शेषशायी नारायण का दर्शन करके यात्री आहाते के भीतर प्रवेश करता है। वहाँ घटेश्वर महादेव का बड़ा

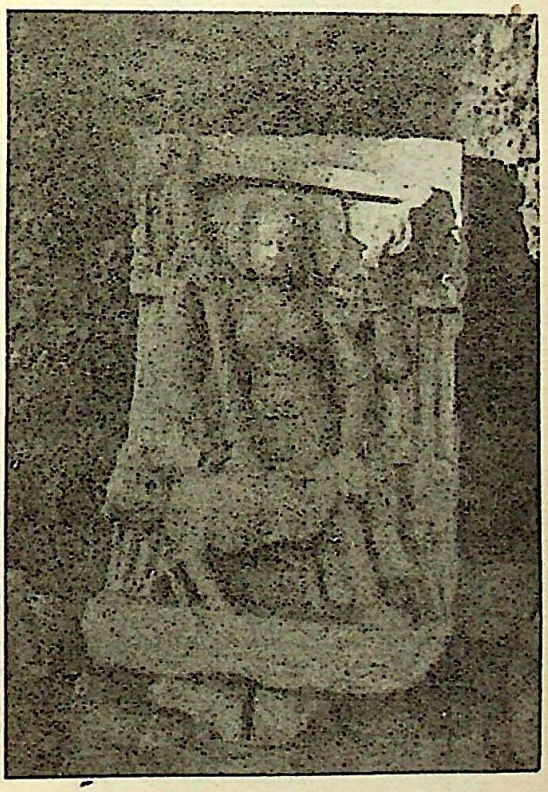

[घटेश्वर के पास के प्रधान देवी-मन्दिर के भीतर की देवी की खण्डित मूर्ति का चित्र]

मन्दिर दृष्टिगत होता है। इस मन्दिर के सामने जो सभामंडप है उसे आज भी 'हूण की चौंरी' कहते हैं। यही मन्दिर यहाँ का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसके निर्माण में अद्वितीय तक्षण-कला का निदर्शन किया गया

है। मन्दिर के प्रत्येक स्तम्भ पर और मन्दिर के प्रत्येक पत्थर पर नाना प्रकार की सुन्दर मूर्तियाँ क्रमबद्ध खड़ी की गई हैं। ये सब नाना प्रकार के वाद्यों और गायन के उपकरणों को अपने हाथों में लिये हुए हैं, मानो भगवान् शूलपाणि के किसी नाटक का अभिनय कर रही हैं।

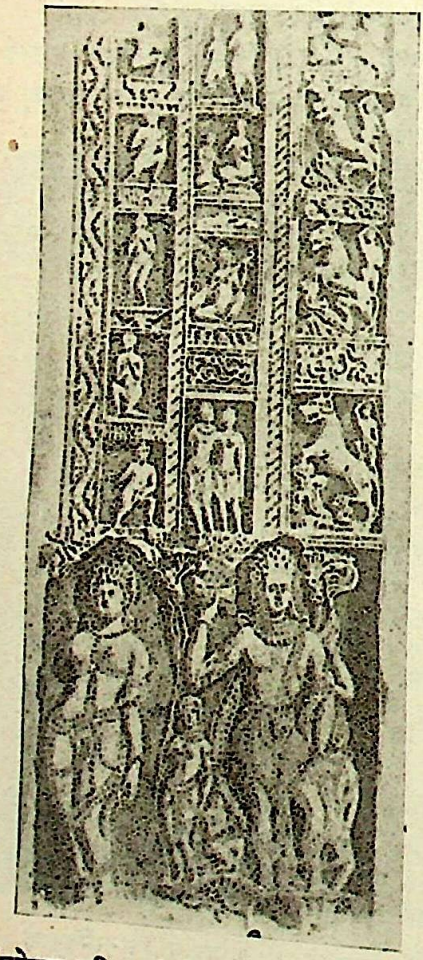

[घटेश्वर मन्दिर की चित्रकारी का एक नमूना]

नीचे से ऊपर शिखर तक मन्दिर का प्रत्येक पत्थर बिना चूने की लाग के ऐसा जमाया गया है जो किसी भी तरह वैसा मज़बूत चूने से भी नहीं जमाया जा सकता। इस मुख्य मंदिर के दक्षिण एक दूसरा मंदिर श्रीलकुटेश्वर महादेव का है। यह भी एक बड़ा मन्दिर है। इसकी भी शिल्पकला अनुपम है। प्रधान मन्दिर घटेश्वर के पार्श्व में देवर्षि नारद का एक छोटा मन्दिर और पास ही श्रीभगवती पार्वती का विशाल मन्दिर है। इन मन्दिरों की भी रचना में घटेश्वर के मन्दिर का सा ही शिल्प-चातुर्य प्रकट किया गया है। यद्यपि अब इन मन्दिरों की पहले की सी शोभा नहीं रह गई है और उनमें की कतिपय उत्कृष्ट मूर्तियाँ भग्न हो गई हैं, तथापि उनकी विशेषता उनकी इस अवस्था में भी दृष्टिगत हो जाती है। घटेश्वर के मंदिर के उत्तर में भगवान् गजानन का भी एक मंदिर है और इसके पास ही श्रीहनूमान्‌जी की भी एक विशाल प्रतिमा विराजमान है। हनूमान की मूर्ति के पीछे २५ फ़ुट के अंतर पर एक वापी है, जिसका जल अत्यन्त शीतल रहता है। इन मन्दिरों के बीच (मध्य) में दो स्तम्भ तोरण के बने हुए हैं, जिनमें एक खड़ा है और एक टूटा हुआ पड़ा है। पास में ही सप्तमातृका प्रभृति अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इन सब मंदिरों की तक्षण-कला का विशद वर्णन करने के लिए एक बड़े भारी पोथे की ज़रूरत है। यहाँ केवल इनका उल्लेख भर किया गया है। यह स्थान प्राचीन शिल्पकला-प्रेमियों के देखने योग्य है।

इन मंदिरों की मूर्तियों की अर्चा-पूजा का आज भी समुचित प्रबन्ध है। भैंसरोड़गढ़ के अधिपति की तरफ़ से इन मूर्तियों की पूजा आदि के लिए 'बाड़ोली' नामक मौज़ा लगा हुआ है, जो नाथ साधु के अधिकार में है। उसी ग्राम की आमदनी से मंदिरों की बराबर पूजा होती और भोग लगता है। ये मंदिर जब से बने हैं, वैसी ही स्थिति में आज भी हैं। १५०० वर्ष से ये मंदिर ज्यों के त्यों खड़े हैं। किन्तु इन मंदिरों के स्तम्भों व दीवारों पर तक्षण-कला-युक्त जो अनेक देवी-देवता-गंधर्व-देवाङ्गना-किन्नरियों आदि की मूर्तियाँ अभिनय-सा करती हुई दिखाई गई हैं वे प्रायः सब खंडित कर दी गई हैं। तो भी अवशिष्ट मूर्तियाँ दर्शनीय हैं, जो अतीत काल के हमारे देश के शिल्प-कला-कोविदों के अथक परिश्रम व हस्तकौशल का दिग्दर्शन करा रही हैं। इन मंदिरों को प्रसिद्ध मूर्तिभञ्जक महमूद ग़ज़नवी ने तोड़ा-फोड़ा था। सोमनाथ का मंदिर

तोड़ कर जब वह जाने लगा था तब वह इन मंदिरों को तोड़ता हुआ गया था। कर्नल टाड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है कि बाड़ोली के मंदिरों की भव्य और विचित्र रचना का यथावत् वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। यहाँ मानो कारीगरी का कोष ख़ाली कर दिया

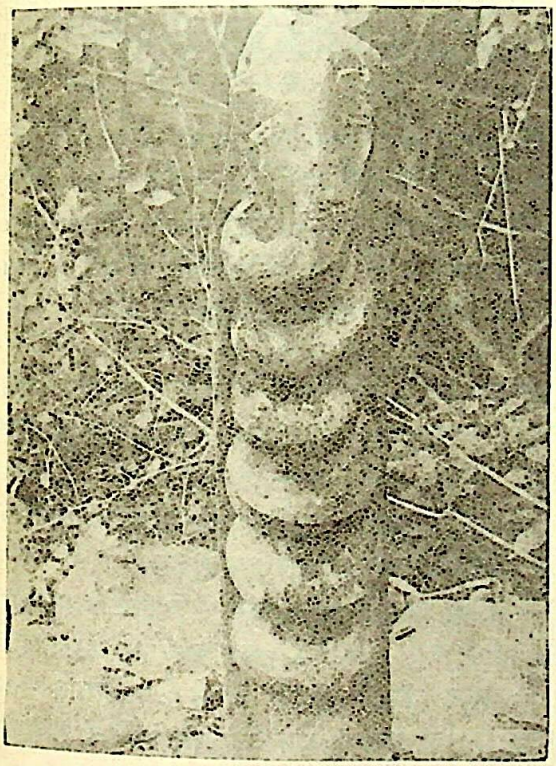

[नाग-स्तम्भ]

(आहाते के बाहर आहाते और जल-कुण्ड के बीच में यह स्थित है। यह स्तम्भ विलायत गया था। वहाँ से स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह ने वापस मँगा लिया था)

गया है। बाड़ोली के मंदिरों के स्तम्भों, छतों और शिखरों का प्रत्येक पत्थर छोटे से मंदिर का अलौकिक दृश्य बतलाता है। हर एक स्तम्भ पर खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। ये मंदिर सैकड़ों वर्षों के पुराने होने पर भी अब तक अच्छी हालत में खड़े हैं।

इसी प्रकार प्रसिद्ध तक्षण-कला-विशारद फ़र्गुसन साहब का कहना है कि उनकी देखी हुई हिन्दू-देव-मूर्तियों में यहाँ की शेषशायी नारायण की मूर्ति एक सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने भी अपने राजपूताने के इतिहास में बाड़ोली के विषय में लिखा है कि मेवाड़ में ही नहीं, किन्तु भारतवर्ष में भी

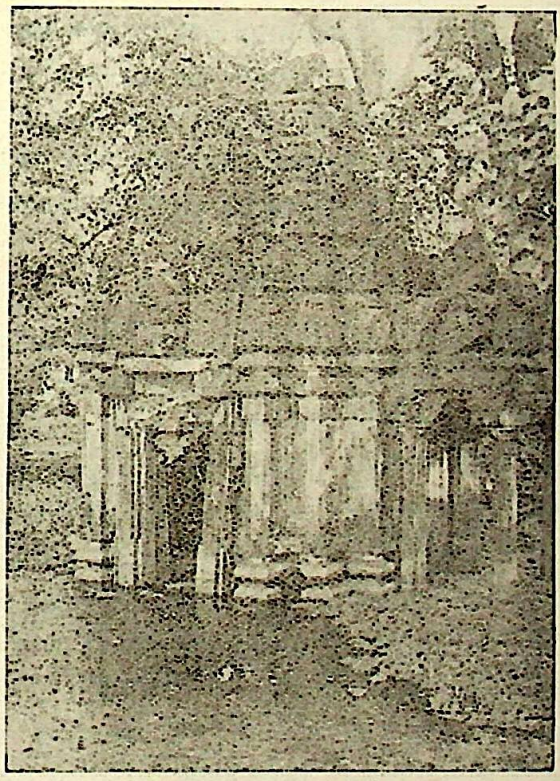

[जलकुण्ड के भीतर महादेव का मन्दिर]

कारीगरी के विचार से इन मंदिरों की समता करनेवाले आबू का प्रसिद्ध जैन-मंदिर तथा नागदा (मेवाड़) का 'सास का मंदिर' को छोड़ कर और कोई नहीं है।

—कुँवर हिम्मतसिंह

क्या भारत पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ बनेगा ?

[लेखक महोदय ने प्रस्तुत लेख में वर्तमान समय के भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित स्वेच्छाचारी और पञ्चायती शासन-प्रणाली की रूप-रेखा का दिग्दर्शन कराया है। इसमें उन्होंने पञ्चायती सरकार में राष्ट्रीय सरकार, और न्यायालयों के अधिकार की आलोचना बहुत ही सुन्दररूप में की है। अमेरिका के संयुक्त-राज्य के पञ्चायती शासन-विधान की विशेषता बतलाते हुए लेखक ने यह दर्शाया है कि देशी रियासतों और ब्रिटिश-भारत के बीच पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ स्थापित हो सकता है यदि वह सम्राट् की सरकार तथा देशी रजवाड़ों को मंजूर हो।]

वर्गीकरण

संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में जो शासन-प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनका वर्गीकरण दो श्रेणियों में हो सकता है। एक तो उन देशों की शासन-प्रणालियाँ जिनमें स्वेच्छाचारी सरकार की प्रधानता है और दूसरी ऐसी शासन-प्रणालियाँ जिनका सञ्चालन लोकमत-द्वारा होता है। पहली श्रेणी के देशों में राष्ट्र के शासन की बागडोर किसी एक व्यक्ति के हाथ में होती है अथवा किसी व्यक्ति या संस्था-द्वारा सङ्गठित किसी ऐसी संस्था के हाथ में होती है जिसकी रचना में देश की जनता का कुछ भी हाथ नहीं रहता। ऐसी संस्था-द्वारा देश पर उस व्यक्ति अथवा संगठित संस्था का स्वेच्छाचारी शासन होता है। दूसरी श्रेणी के देशों में राष्ट्र की प्रभुत्व-शक्ति जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों में रहती है और उन प्रतिनिधियों के द्वारा जनता देश पर शासन-कार्य का सञ्चालन करती है। इस लोकप्रिय शासन को पञ्चायती शासन-प्रणाली कह सकते हैं, क्योंकि ऐसी सरकार बिना जनता के बहुमत को प्राप्त किये हुए बहुत दिनों तक न्यायतः नहीं टिक सकती। स्वेच्छाचारी शासन के उदाहरण ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, अबीसीनिया, स्याम, नेपाल आदि देश हैं।

जिन दो श्रेणियों की शासन-प्रणालियों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनकी अनेक शाखायें-प्रशाखायें हैं। प्रस्तुत लेख में दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत पञ्चायती शासन-प्रणाली के रूप का उल्लेख किया गया है।

राष्ट्रपुञ्ज

पञ्चायती शासन-सङ्घ के निर्माण के लिए अनेक देशों के एक ऐसे समुदाय की आवश्यकता होती है जिनके अधिवासियों की एक व्यापक संस्कृति हो और जिन पर भौगोलिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक सम्बन्धों के कारण एक-जातीयता की छाप हो। इस शासन-प्रणाली की जरूरत उस देश में होती है जो वास्तव में एक बड़ा देश होता है, किन्तु छोटे छोटे अनेक स्वतन्त्र भागों में बँटा हुआ होता है। इन छोटे छोटे भागों को हम छोटे छोटे राष्ट्र कह सकते हैं। बाहरी बड़े राष्ट्रों के हमलों से ये छोटे राष्ट्र अपनी

रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। साथ ही परिमित आमदनी के होने से ये अपनी शक्ति से परे आवश्यक बड़ी सेना रखने और अपने देश की उन्नति के व्ययसाध्य साधनों से लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं। अपनी इस असहायावस्था से त्राण पाने के उद्देश से ही इनको अपनी स्वतन्त्रता को क़ायम रखते हुए एक ऐसे बड़े राष्ट्र के निर्माण की ज़रूरत पड़ती है जो सङ्कट के अवसर पर उनकी सहायता करे और संसार की महती शक्तियों के साथ बैठकर विश्व के मामलों में उनका प्रतिनिधित्व भी करे। वह सङ्घ में शामिल राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा ही नहीं करेगा, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण हो जायगी। इसी से अनेक छोटे छोटे राष्ट्र स्वतः समझौता करके पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अमरीका के संयुक्त-राज्य हैं। परन्तु सभी तरह की रियासतें मिलकर पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण नहीं करतीं। यदि यह बात होती तो योरप और एशिया के सभी बड़े बड़े राष्ट्र मिलकर पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण कर लेते। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में केवल वही रियासतें सम्मिलित होकर सङ्घ का निर्माण करती हैं जो देशीय, ऐतिहासिक और जातीय अथवा अन्य किसी दृष्टि से परस्पर इस प्रकार हिली-मिली रहती हैं कि उनके अधिवासी आपस में एक-जातीयता के सूत्र में बँधे रहने का अनुभव करते हैं। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घों का निर्माण अकारण नहीं, बरन सदा सकारण ही हुआ करता है।

सहकार की अभिलाषा

जिन देशों को राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण करना अभीष्ट हो उनमें पारस्परिक सहकार की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। बिना इस इच्छा के राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण असम्भव है। उन देशों में एकता के सूत्र में बँधने की तो प्रबल इच्छा होनी ही चाहिए, साथ ही यह भी टेक रहनी चाहिए कि अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बनी रहे। अगर इस दृढ़ता का अभाव रहा तो वह राष्ट्र-सङ्घ का नहीं, वरन एक राष्ट्र अथवा साम्राज्य का निर्माण होगा, जिसमें छोटी-छोटी रियासतें अपने अस्तित्व को एक बड़े राष्ट्र में तिरोहित कर देंगी अथवा पराधीन होकर किसी बड़े राष्ट्र का एक प्रान्त बनेंगी। अतएव स्वतन्त्र पंचायती राष्ट्र के निर्माण के लिए विभिन्न रियासतों के अधिवासियों में दो भावों की प्रधानता होनी चाहिए। प्रथम तो यह कि कतिपय उद्देशों के साधनार्थ पारस्परिक सहकार से एक विशाल राष्ट्र के निर्माण की अभिलाषा और दूसरा यह कि उस विशाल राष्ट्र में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे। उसकी पंचायती शासन-प्रणाली का लक्ष्य इन दोनों भावों को कार्यरूप में परिणत करना होगा।

राष्ट्रीय सरकार

इन्हीं दोनों भावों की रक्षा के उद्देश से पंचायती शासन-प्रणाली के अनुसार एक राष्ट्रीय सरकार का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है। राष्ट्र-सङ्घ में शामिल होनेवाली रियासतें ही इस प्रकार की सरकार का निर्माण करती हैं। इस सरकार के अधीन उन समस्त विषयों का शासन रहता है जिनका सम्बन्ध सामूहिक रूप से समस्त राष्ट्र से होता है। जिन विषयों का सम्बन्ध समस्त रियासतों से सामूहिक रूप से नहीं, बरन व्यक्तिगत रूप से होता है वे विषय रियासतों की स्थानीय सरकारों के अधीन रहते हैं। अपने आभ्यन्तरिक शासन के सम्बन्ध में रियासतें उस हद तक पूर्ण स्वतन्त्र रहती हैं जिस हद तक पञ्चायती शासन-विधान-द्वारा उनका अधिकार निर्धारित कर दिया जाता है। राष्ट्रीय सरकार भी रियासतों के शासन में केवल उसी हद तक हस्तक्षेप कर सकती है जिस हद तक उस शासन-विधान-द्वारा अधिकार प्राप्त होता है।

शासन-विधान की सर्वमान्यता

अतएव पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण में शासन-विधान मुख्य चीज़ है। उसका अस्तित्व ही एक

शासन-विधान के आधार पर होता है। केन्द्रस्थ सरकार और स्थानीय सरकारों की समस्त कार्य-कारिणी समितियों, व्यवस्थापिका सभाओं और न्याय-विभागों का निर्माण शासन-विधान-द्वारा होता है और उनकी शक्तियों का नियन्त्रण और शासन भी एक ऐसे विधान-द्वारा होता है जिसे समस्त रियासतें मिलकर बनाती हैं और जो असाधारण उपायों का उपयोग किये बिना बदला नहीं जा सकता। शासन-विधान का निर्माण सङ्घ की समस्त रियासतें मिलकर करती हैं, अतएव अपने विधान की पाबन्दी वे बड़ी निष्ठा से करती हैं।

अधिकारों का विभाजन

पञ्चायती राष्ट्र की एक महती विशेषता यह है कि सरकार की शक्तियाँ बँटी रहती हैं। पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण ही इस सिद्धान्त पर होता है कि राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों की शक्तियाँ स्पष्ट रूप से निर्धारित रहें। परन्तु सरकार के समस्त विभागों की शक्तियाँ सीमित रहती हैं। उदाहरणार्थ अमरीका के संयुक्त राज्यों के अधिकारों को ही लीजिए। वहाँ के शासन-विधान के अनुसार राष्ट्र को जो अधिकार प्राप्त हैं वे किसी एक व्यक्ति या किसी एक संस्था में सीमित नहीं हैं। अमेरिकन कांग्रेस के अध्यक्ष जिसे राष्ट्रपति कहते हैं, और न्याय-विभाग के अधिकार एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र हैं। दोनों के अधिकारों की सीमायें निर्धारित हैं और अपनी सीमाओं में दोनों पूर्ण स्वतन्त्र हैं। न तो राष्ट्रपति के अधीन न्याय-विभाग है और न न्याय-विभाग के अधीन राष्ट्रपति ही हैं। इस शासन-विधान के विपरीत इँग्लेंड के शासन-विधान में सर्वशक्तिशालिनी संस्था ब्रिटिश-पार्लामेण्ट है और अँगरेज़ी सरकार के समस्त विभाग वैध रूप से पार्लामेण्ट के अधीन और उसी के एकाधिकार से शासित हैं। पार्लामेण्ट का अधिकार अनियन्त्रित है। वह अँगरेज़ी सरकार के किसी भी विभाग में सहज ही स्वेच्छानुसार हस्तक्षेप कर सकती है।

न्यायाधीशों के कर्त्तव्य

पञ्चायती राष्ट्र-संघ के दृढ़ अस्तित्व के लिए एक कठोर शासन-विधान की परम आवश्यकता होती है। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में कई भिन्न राष्ट्रों का एक कृत्रिम सहयोग रहता है, अतएव उनमें आपस में अधिकारों की खींचातानी का होना स्वाभाविक ही है। यह खींचातानी एक कठोर शासन-विधान के द्वारा ही रोकी जा सकती है। यहाँ कठोर शासन-विधान से तात्पर्य उस विधान से है जिसमें समस्त सरकारी विभागों के अधिकार स्पष्ट रूप से निर्धारित हों और जो टूट भले ही जाय, परन्तु झुकाया न जा सके। अधिकारीवर्ग विधान की आड़ में निरङ्कुश शासन न कर सके। संयुक्त-राज्यों का शासन-विधान ऐसा ही है। वहाँ के विधान में यह एक स्पष्ट धारा है कि कांग्रेस और अमेरिकन प्रजातन्त्र में शामिल विभिन्न रियासतों की व्यवस्थापिका सभाओं अथवा वहाँ के अन्य किसी वैध विभाग के द्वारा निर्मित वे समस्त क़ानून मान्य नहीं होंगे, जो संयुक्त-राज्यों के शासन-विधान के प्रतिकूल अथवा उसके भाव के विरुद्ध होंगे। अतएव संयुक्त-राज्यों के प्रत्येक न्यायाधीश और इसी लिए सभी पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घों के न्यायाधीशों का कर्त्तव्य स्पष्ट है। कांग्रेस और रियासतों की व्यवस्थापिका सभाओं-द्वारा बनाये गये उन समस्त क़ानूनों को जो शासन-विधान के प्रतिकूल होंगे, अमान्य कर देना उनका कर्त्तव्य है। शासन-विधान की रक्षा के सम्बन्ध में न्यायाधीशों की इस महती ज़िम्मेदारी के कारण यह आवश्यक है कि न्यायाधीश और न्यायालय अपनी सीमा के अन्दर पूर्ण स्वतन्त्र रहें और किसी सरकारी विभाग के अधीन न रहें। यदि न्यायाधीश केन्द्रस्थ सरकार अथवा स्थानीय सरकार के अधीनस्थ रहेंगे तो शासन-विधान की रक्षा का प्रश्न जोखिम में पड़ जायगा। राष्ट्रीय सरकार के अधीनस्थ न्यायाधीश राष्ट्रीय सरकार के पक्ष में और स्थानीय सरकार

के अधीनस्थ न्यायाधीश स्थानीय सरकार के पक्ष में उपस्थित विषयों पर निर्णय देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। और परिणाम यह होगा कि राष्ट्रीय सरकार को रियासतों की सरकारों पर अनुचित दबाव डालने के लिए मौक़ा मिलेगा और रियासतें उस स्वतन्त्रता का उपभोग करने में असमर्थ होंगी, जिसकी रक्षा के लिए उन्होंने पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में स्वेच्छा से शामिल होना अपना कर्त्तव्य समझा। यदि न्याय-सम्बन्धी यह गड़बड़ बहुत दिनों तक जारी रहे तो रियासतें राष्ट्र-संघ से विद्रोह करने के लिए उत्साहित होंगी और सारा बना-बनाया खेल नष्ट हो जायगा। इस गड़बड़ को दूर करने के लिए ही पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय और पञ्चायती अदालत के निर्माण की ज़रूरत पड़ती है।

प्रधान न्यायालय

पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय का निर्माण भ राष्ट्र-सङ्घ के शासन-विधान-द्वारा ही होता है। यह संस्था भी अपने अधिकारों के सम्बन्ध में उसी प्रकार स्वतन्त्र होती है जिस प्रकार राष्ट्रपति, केन्द्रस्थ सरकार की राष्ट्रसभा और रियासतों की सरकारें अपनी सीमा में स्वतन्त्र होती हैं। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के न्याय-विभाग का शासन प्रधान न्यायालय-द्वारा होता है। संयुक्त-राज्यों के सारे न्यायाधीशों की नियुक्ति इसी के द्वारा होती है। जिस देश में कठोर शासन-विधान लागू होता है अर्थात् जिस देश के शासन-विधान की धारायें साधारण क़ानूनों के निर्माण से संशोधित नहीं की जा सकतीं उनकी रक्षा के लिए कुछ ऐसे साधनों की ज़रूरत होती है जो उन क़ानूनों से शासन-विधान की रक्षा करें जिनका भाव शासन-विधान के विपरीत हो। संयुक्त-राज्यों के शासन-विधान को निर्माताओं ने उसमें एक ऐसा प्रबन्ध किया है जिसके अनुसार उनका शासन-विधान राष्ट्र के समस्त क़ानूनों से श्रेष्ठ बन गया है। उस शासन-विधान की छठी धारा में यह स्पष्ट सूचना है—

"अमरीका के संयुक्त-राज्यों का शासन-विधान और उसके अन्तर्गत जितने क़ानून बनाये जायँगे वे सब राष्ट्र के श्रेष्ठतम क़ानून होंगे और रियासतों के समस्त न्यायाधीशों को मान्य होंगे....."।

इस धारा से वहाँ के न्यायाधीशों का कर्त्तव्य स्पष्ट हो जाता है। वे किसी भी मामले का ऐसा निर्णय नहीं कर सकते जिससे वहाँ के शासन-विधान को कोई क्षति पहुँच सके। यदि कोई जज ऐसा फ़ैसला करे भी तो वह क़ानून से मान्य न होगा और उसके फ़ैसले के अनुसार कार्रवाई करने को मुल्की या फ़ौजी अधिकारी बाध्य न होंगे। कौन सा क़ानून शासन-विधान के विपरीत है और कौन उसके अनुकूल है, इस बात का निर्णय प्रधान न्यायालय करता है। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय ही उसके न्याय-विभाग का सर्वेसर्वा होता है और बिना सरकारी अफ़सरों की मदद लिये वह अपने अफ़सरों के द्वारा समस्त रियासतों को अपना फ़ैसला और देश का क़ानून मानने के लिए बाध्य करता है। शासन-विधान की धाराओं के ठीक अर्थ को नियत करने के लिए प्रधान न्यायालय का फ़ैसला ही अन्तिम फ़ैसला होता है और समस्त रियासती और पञ्चायती अदालतों की अन्तिम अपील भी इसी अदालत में होती है। संयुक्त-राज्यों की कांग्रेस अथवा किसी रियासत की व्यवस्थापिका सभा के द्वारा बनाया गया कोई क़ानून वैध है या अवैध, इस बात का अन्तिम फ़ैसला देने का अधिकार यहाँ के प्रधान न्यायालय को है। रियासतों की प्रधान अदालतों के उन फ़ैसलों की भी अपील संयुक्त-राज्यों के प्रधान न्यायालय में होती है, जो कांग्रेस के किसी क़ानून की धारा या शासन-विधान के अर्थ को निर्णय करने के सम्बन्ध में होती है। अवैध क़ानूनों से शासन-विधान की रक्षा करने का इससे बढ़िया कोई दूसरा प्रबन्ध

नहीं हो सकता कि देश के न्यायाधीश शासन-विधान के संरक्षक बना दिये जायँ। इस प्रकार व्यक्तिगत और संस्थागत स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखते हुए छोटी छोटी रियासतें पारस्परिक सहयोग और समझौते से एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

भारतीय परिस्थिति

पञ्चायती शासन-प्रणाली की विशेषताओं पर विचार करने के अनन्तर यदि हम भारत की वर्तमान शासन-पद्धति पर विचार करें तो हमको मालूम होगा कि भारत पंचायती शासन-विधान के अनुसार शासित होने के लिए पूरी तरह तैयार है। यही नहीं, उसकी वर्तमान शासन-व्यवस्था भी पंचायती शासन-विधान के अनुकरण पर हो रही है। भारत का शासन एक विधान के अनुसार हो रहा है जो उसे ब्रिटिश-पार्लामेण्ट के द्वारा प्राप्त हुआ है।

भारत एक विशाल देश है। शासन-सम्बन्धी सुविधाओं और ऐतिहासिक, भौगोलिक, जनता के आचार-विचार और भाषा की विभिन्नताओं के कारण वह कई प्रान्तों में विभक्त है। प्रत्येक प्रान्त का एक पृथक् और निजी शासन है। शासन-सम्बन्धी समस्त अधिकार शासन की सहकारी संस्थाओं में विभक्त हैं। समस्त प्रान्तों में बड़ी अदालतें हैं और वे सभी एक-दूसरी से पूर्ण स्वतन्त्र होते हुए भी इँगलेंड की प्रिवी कौंसिल-द्वारा शासित हैं। भारत में वाइसराय, प्रान्तीय गवर्नरों, हाईकोर्ट के जजों और कमाण्डर इन चीफ़ की नियुक्ति सीधे सम्राट् के द्वारा होती है, जिसका परिणाम यह है कि ये एक दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र हैं और आपस में पारस्परिक सहयोग की शृङ्खला में आबद्ध हैं। तो भी भारत पञ्चायती राष्ट्र नहीं है। भारत में केन्द्रस्थ सरकार ज़रूर है, किन्तु वह राष्ट्रीय नहीं है। प्रान्तों को स्थानीय स्वराज्य प्राप्त है, किन्तु उत्तरदायी शासन वहाँ नहीं है। प्रान्तों का शासन हस्तान्तरित और ग़ैर हस्तान्तरित विषयों में बँटा हुआ है, किन्तु ग़ैर हस्तान्तरित विषयों के शासन में लोकमत का प्रभाव नहीं है। प्रान्तीय मिनिस्टर प्रजा के प्रतिनिधियों में से ज़रूर चुने जाते हैं, किन्तु प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित नहीं, बरन गवर्नर-द्वारा मनोनीत होते हैं। प्रजा के प्रतिनिधियों के बहुमत की यदि गवर्नर उपेक्षा करना चाहें तो बहुमत का सम्मान करने के लिए वे लाचार नहीं किये जा सकते। प्रान्तीय मिनिस्टरों के अधिकार भी बहुत परिमित हैं। वे केवल पूछे जाने पर ग़ैर हस्तान्तरित विषयों के शासन के सम्बन्ध में गवर्नर को सलाह भर दे सकते हैं। अपनी सलाह के अनुसार कार्रवाई कराने के लिए वे गवर्नर को विवश नहीं कर सकते। भारतीय लोकमत का इस तरह का अनुत्तरदायित्व भारत-सरकार के प्रत्येक विभाग में मौजूद है। इस अनुत्तरदायित्व को दूर करना ही स्वराज्य की स्थापना है। परन्तु उत्तरदायी शासन की स्थापना-मात्र से भारत की समस्यायें हल नहीं हो जायँगी और न भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र ही हो सकेगा।

देशी रजवाड़े

भारत के पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण में देशी रजवाड़ों की समस्या बड़ी जटिल और अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। ये संख्या में अनेक और कई श्रेणियों में विभक्त हैं। समस्त देशी नरेशों के समान अधिकार भी नहीं हैं। उनमें समानता केवल इस विषय में है कि वे सब ब्रिटिश के संरक्षण में हैं। उनका सीधा सम्बन्ध भारत-सरकार से नहीं, बरन ब्रिटिश सम्राट् से है। सम्राट् के नाम पर ही उनसे सन्धियाँ हुई हैं और वे सन्धियाँ एक सी नहीं हैं। ब्रिटिश सम्राट् के नाम पर भारत-सरकार देशी नरेशों की रक्षा करती है और इस रक्षा के लिए ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के प्रति देशी नरेशों के कुछ निश्चित कर्त्तव्य हैं। सम्राट् की सरकार देशी रियासतों की रक्षा और उनके परराष्ट्र-सम्बन्धी मामलों का नियन्त्रण करती है। इसके बदले में रजवाड़ों का कर्त्तव्य है

कि वे युद्ध के अवसर पर अपने भरसक सम्राट् की सरकार की मदद करें और शान्ति के अवसर पर साम्राज्य की सेना को आवश्यक सहायता दें। रियासतों में इतनी सेना सर्वदा तैयार रखना राजाओं का कर्त्तव्य है जितनी उनके निजी शासन के लिए पर्य्याप्त हो और इतनी न हो कि उनसे पड़ोसी राजाओं को ख़तरा का अन्देशा हो और निजी रियासत की अन्दरूनी शान्ति सङ्कट में पड़ जाय। रजवाड़ों का यह भी कर्त्तव्य है कि रियासत में साम्राज्य को जो सेना मौजूद हो उसके साथ साम्राज्य की बाहरी सेनाओं से सम्पर्क रखने की समस्त सुविधायें दें। परराष्ट्रों अथवा दूसरी रियासतों के साथ सम्राट् की सरकार देशी नरेशों की तरफ़ से जो सन्धि-विग्रह करे उनका पालन करना देशी नरेशों का कर्त्तव्य है। रियासतों के नाश, आभ्यन्तरिक विद्रोह और कुशासन के अवसर पर सम्राट् की सरकार के हस्तक्षेप को स्वीकार करना देशी रजवाड़ों का धर्म है। साम्राज्य के हितों की रक्षा के लिए सम्राट् की सरकार को अधिकार है कि देशी रियासतों के भीतरी मामलों में—यथा मुद्रा के सञ्चालन, व्यापार-प्रसार अथवा पोस्टल सङ्घों की स्थापना आदि विषयों में—भी दख़ल दे। परन्तु प्रत्येक हस्तक्षेप के लिए वास्तविक आवश्यकता का होना जरूरी है। उत्तराधिकार के विषय में देशी नरेशों को वायसराय की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। उनको सम्राट् के प्रतिनिधियों के साथ बड़े सम्मान और सत्कार से पेश आना चाहिए। नाबालिग़ी के अवसर पर सम्राट् की सरकार के संरक्षण को प्राप्त करना और सर्वदा राजभक्ति को प्रदर्शित करना देशी नरेशों का परम कर्तव्य है। सम्राट् की सरकार की आज्ञाओं को न मानना सम्राट् के प्रति बग़ावत करना है। देशी रियासतों में सम्राट् के प्रतिनिधियों की हत्या करनेवालों को प्राणदण्ड देने का अधिकार भी सम्राट् को है।

इस प्रकार सम्राट् की सरकार का देशी नरेशों पर भी एक प्रकार से पूरा नियन्त्रण है। भारत-सरकार से उनका कोई सरोकार नहीं है। यह एक जटिल भेद है। इसका अर्थ यह है कि देशी रियासतें भारत की अनैक्यता के कारण हैं।

नरेशों के निश्चय का महत्त्व

नरेशों के द्वारा भारत विभिन्न रियासतों में बँटा हुआ है। यह प्रसन्नता की बात है कि देशी रजवाड़ों ने स्वेच्छा से उस पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में शामिल होना स्वीकार कर लिया है जिसका प्रस्ताव अँगरेज़-सरकार की ओर से लन्दन की राउण्डटेबुल कानफ़रेन्स में उपस्थित किया गया था। निस्सन्देह देशी रजवाड़ों का यह मनोभाव प्रशंसनीय है और इससे समग्र भारत के एक स्वतन्त्र राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण की पूरी सुविधा हो गई है।

परन्तु देशी रजवाड़ों की सदिच्छा और भारतीय महत्त्वाकांक्षा को वास्तविक स्वरूप देना सम्राट् की सरकार का काम है। भारत को एक पञ्चायती राष्ट्र-संघ में संगठित करने ही से भारत की समस्त कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। पर क्या सम्राट् की सरकार भारत में पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना करेगी ? भारत को राष्ट्र-सङ्घ में परिणत करने से ब्रिटिश साम्राज्य का पाया मज़बूत हो सकता है।

—रामधर दुबे।

जिज्ञासा

(१)

जीवन निरीह जल-कण-कण संकुल-सा,
होके प्रवाहित कभी सिंधु लहराता-सा।
बनकर वाष्प घन-घन में समाता कभी,
कमल-दलों में मुक्त-विन्दु बिखराता-सा।
'प्रणयेश' हिमकर-द्वारा हिम-राशि होके—
दीखता हिमालय है तुङ्ग मदमाता-सा।
कौन जान सकता है इस तत्त्व का महत्त्व,
किसका विधान यह किसका विधाता-सा ?

(२)

किसकी प्रभा से दीप्तमान रवि, शशि, तारे,
किसके प्रकाश से प्रकाशित भुवन है ?
किससे मिला है रङ्ग ऊषा को सुनहरा-सा,
सप्त-रङ्ग पाके बनी किससे किरन है ?
चाँदनी के मिस मुसकान बिखराता कौन—
'प्रणयेश' सुधा सरसाता शान्त-मन है ?
लाता है कहाँ से यह पाता रत्न-राशि कहाँ,
फिर उसे व्यर्थ ही लुटाता क्यों गगन है ?

—प्रणयेश शुक्ल

द्वन्द्व

[अरुण के साथ वीणा के विवाह का प्रस्ताव जब भङ्ग हो गया तब वह किरण को अपनी ओर आकर्षित करने का फिर से प्रयत्न करने लगी। वीणा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कितने ही सुशिक्षित युवक उसका प्रणय प्राप्त करने के लिए असाध्य साधना कर रहे थे, किन्तु उसकी वह रूप-राशि किरण के हृदय पर अधिकार नहीं कर सकी। लीला को ही वह अपनी एक-मात्र सहचरी समझता था और उसी के साथ हृदय खोल कर मिला करता था। वास्तव में लीला तथा किरण में इतनी घनिष्टता थी कि वे परस्पर एक दूसरे को छोड़ कर संसार में और किसी से प्रायः कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते थे। परन्तु अरुण के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए जब लीला उसके पास गई और उसे वीणा समझ कर वह आनन्द के मारे गद्‌गद हो गया तब लीला ने उस असहाय अन्धे का आनन्द भङ्ग करना उचित नहीं समझा। वीणा के ही रूप में वह उससे बात-चीत करती रही और भविष्य में भी जब तक वीणा अपना मत परिवर्तित करके अरुण के साथ विवाह करने को फिर न तैयार हो जाय, उसी रूप में उसके साथ व्यवहार करने का, यहाँ तक वीणा के सर्वथा परित्याग कर देने पर अरुण के साथ विवाह तक करने का निश्चय कर लिया। इस घटना से किरण के हृदय पर बड़ी चोट पहुँची और वह सोचने लगा कि वीणा ने यदि अपने विचारों में परिवर्तन न किया तो लीला फिर मेरी न रह जायगी। यह सोच कर वीणा से मनोभावों का अध्ययन करने के लिए वह उसके पास गया। जिस समय एकान्त में वह उससे बातें कर रहा था, उस समय लीला भी उधर से निकली थी, किन्तु उसकी ओर दृष्टिपात न करके किरण वीणा से ही बातें करता हुआ चला गया।]

(१७)

किरण जब वीणा के साथ चला गया तब लीला कुछ समय तक चुपचाप वहीं खड़ी रही। उस दिन का सारा आनन्द-उत्सव और खेल-कूद मानो क्षण भर में ही मिट्टी में मिल गया। पहले कौन जानता था कि जीवन का परिपूर्ण सुधापात्र पल भर में इस तरह सूख जा सकता है।

अनेक प्रयत्न करने पर भी लीला अपनी वर्तमान अवस्था का ठीक-ठीक अनुभव नहीं कर सकी। उसका चुटीला अभिमान मन ही मन गरज उठता था। किरण यदि व्यर्थ में रुष्ट होकर उसकी इस तरह उपेक्षा करके उसका तिरस्कार कर सकता है तो इसमें उसी की क्या हानि है? वह भी उसके साथ अब कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेगी। किरण की मित्रता से वञ्चित हो जाने पर सारा संसार तो उसके लिए अँधेरा हो न जायगा। इसके अतिरिक्त भी संसार में सोचने और करने के लिए काफ़ी काम हैं। किन्तु इस संकल्प में अपने अन्तः-करण में से उसे कहीं किसी प्रकार का बल नहीं मिला।

किरण का तमतमाया हुआ चेहरा और यह बेढंगी उपेक्षा उसकी अन्तरात्मा में बाण-सी लग रही थी। उसके मन में यही बात आती कि दौड़ कर वह किसी एकान्त स्थान में जाय और एक बार ख़ूब जी भर कर रो आवे। परन्तु वहाँ से वह एक पग भी हिल न सकी। केवल नीरव भाव से सन्ध्या के नक्षत्रों से सुशोभित आकाश की ओर ताकती हुई खड़ी रह गई।

अरुण से जब भेट हुई थी तब से एक सप्ताह बीत गया। उसके बीच में किरण से लीला की भेट नहीं हुई। अरुण से मिलने के लिए जब वह बसन्तपुर जाती तब किरण उससे पहले ही घर से निकल चुका रहता। साँझ को क्लब में खेलने आना भी किरण ने छोड़ दिया था। जहाँ जिस समय लीला से भेट हो जाने की सम्भावना रहती, किरण चेष्टा करके उस समय के लिए वह स्थान बचा जाता। उसकी इस स्पष्ट विरक्ति से लीला दिन दिन सूखती चली जाती थी। फिर भी अभी तक उसे आशा थी कि किरण से भेट होने पर उसे अच्छी तरह समझा-बुझा कर शान्त कर दूँगी। परन्तु आज जब इन लोगों के ही निमन्त्रण पर किरण इनके यहाँ आया और लीला के आह्वान की उपेक्षा करके वीणा के साथ लौट गया तब उसे आशा करने की कोई भी बात न रह गई।

इसके अतिरिक्त लीला की समझ में एक बात किसी तरह भी नहीं आती थी। किरण के रुष्ट रहने के कारण लीला के अन्तःकरण में जो वेदना काँटे की तरह बिध रही थी वह अरुण के पास पहुँचते ही न जाने कहाँ विलीन हो जाती। जब तक वह अरुण के पास रहती, हँसी-ठट्ठा, गपशप और गाने-बजाने में मस्त रहती। अरुण के प्रति अगाध प्रेम से उसका हृदय परिपूर्ण रहता, उस समय भूल कर भी उसे किरण की याद न आती। परन्तु जैसे ही वह अरुण के पास से हट कर बाहर निकलती, उस घर के चारों ओर कितने दिन के कितने परिचित दृश्य कितने दिन पहले की सुखमय स्मृति जागृत हो उठती और उस समय उसके हृदय की छिपी हुई व्यथा फिर से उसे व्याकुल करने लगती। खेल-कूद या पढ़ने-लिखने में उसे किसी तरह भी शान्ति न मिलती। उसका हृदय सदा ही किरण के लिए रोता रहता। यह कैसी विषम समस्या उसके सामने आ पड़ी। इसकी मीमांसा किस तरह और कहाँ हो सकेगी, यह उसकी समझ में ही नहीं आता था।

लीला के खेलने के साथी इतने समय में खेल से निवृत्त होने और ज़रा सा विश्राम करने के बाद जलपान के लिए दल के दल तम्बू में आ रहे थे। उनके कलरव से सचेत होकर लीला घूमकर ताकने लगी। वहाँ से कुछ दूरी पर वीणा और किरण तम्बू के सामने खड़े होकर बातचीत कर रहे थे। लीला ने देखा कि वीणा ने आज कैसा अच्छा शृंगार किया है। उसकी काली काली आँखों की लज्जा और अनुराग से भरी हुई दृष्टि किरण के मुँह पर थी। किरण क्या कह रहा था, यह तो लीला सुन नहीं सकी, किन्तु उसके मुख पर वीणा के सम्बन्ध में पहले का सा उदासीन भाव नहीं था।

लीला यह दृश्य अधिक समय तक नहीं देख सकी। मुँह फेर कर वह वहाँ से सीधे अपने कमरे में चली गई और अँधेरे में ही बिस्तरे पर जाकर लेट गई।

कुछ समय के बाद बत्ती जलाने के लिए चान्त के कमरे में आई और लीला को इस तरह बिस्तरे पर पड़ी देख कर कहने लगी—अरे बिटिया रानी, आज अभी से बिस्तरे पर आकर लेट गई हो? तबीयत तो नहीं कुछ ख़राब होगई?

लीला ने चित्त को ज़रा सा दूसरी ओर फेरने के लिए कहा—नहीं, तबीयत नहीं ख़राब है। यों ही ज़रा सा लेट गई हूँ! खेलते-खेलते दिमाग़ में चक्कर आगया है। तू ज़रा देर तक यहीं बैठी रह। कुछ बातचीत तो की जाय।

लीला की यह बात सुनकर चान्त के चित्त को बहुत कुछ आश्वासन मिला। पैर फैला कर वह ज़मीन पर बैठ गई और कहने लगी—दिमाग़ में चक्कर क्यों आवेगा? रात-दिन उपद्रव तो मचाये रहती है। हज़ार हो लड़की ही तो हो। चौबीस घंटे इस तरह पुरुषों से होड़ लगा कर दौड़ने में कहाँ शरीर बना रहे

सकता है? ख़ैर, थोड़ी देर तक लेटी रहो। जी हलका हो जाय।

लीला ने कहा—तुझे इस समय कोई काम तो नहीं है? हाथ हिलाकर क्षान्त ने उत्तर दिया—काम की बात तो न पूछो बिटिया। काम का भी कभी अन्त होता है? जितना ही करती जाती हूँ, उतना ही बढ़ता जाता है! ख़ैर, यह सब भाड़ में जाने दो। तुम इस समय यहाँ अकेली हो ना? अच्छा, बिटिया रानी एक बात याद आगई। तुम तो इतनी जगह आती जाती हो। यहाँ के डिप्टी साहब की स्त्री को कभी देखा है?

"नहीं तो क्यों?" लीला समझ गई कि क्षान्त आज कोई नई बात खोज लाई है।

"यों ही कह रही हूँ। यहाँ के सब लोग उन्हें जानते हैं न! बड़ी अच्छी स्त्री हैं। देखने में भी बड़ी सुन्दर हैं। इसके अतिरिक्त सब स्त्रियों में डिप्टी साहब की स्त्री का प्रवेश भी है। परन्तु तुम उन्हें कैसे देखोगी? डिप्टी साहब बाहर तो बिलकुल साहबी ठाठ-बाट में रहते हैं, किन्तु घर के भीतर वे बिलकुल पुराने ढंग के हिन्दू की ही तरह रहते हैं। तुम्हारे यहाँ की तरह उनके घर में ईसाईपन का ठिकाना नहीं है। बाबू लोग बाहर चाहे जो करें, स्त्रियाँ अपने क़ायदे पर रहें तो कोई हानि नहीं है। उनके यहाँ की स्त्रियाँ पालकी छोड़ कर क्या कभी एक पग भी चलती हैं? ख़ैर, यह सब जाने दो, इस समय मैं जो कह रही थी वह यह है कि उनके घर में एक दुर्घटना हो गई है।"

क्षान्त ने एक छोटे से सन्दूक़चे से एक पान निकाला और डिबिया से चूना निकाल कर उस पर लगाया। तब पान को लपेट कर मुँह में डाल लिया और फिर कहने लगी—डिप्टी साहब के भाई विलायत गये हैं। जानती हो न? शायद कुछ पढ़ने गये हैं। और उनकी जो स्त्री है वह इतनी सुन्दरी है कि उसकी तारीफ़ करते नहीं बनता। ऐसी सुन्दरता तो मैंने कभी देखी ही नहीं। मानो वह साक्षात् स्वर्ग की देवी है। विवाह के बाद उसका स्वामी उसे छोड़ कर जब विदेश गया है तब वह छोटी ही थी, परन्तु अब काफ़ी बड़ी हो गई है। उसका नाम है ज्योत्स्ना। ज्योत्स्ना की तरह दिव्य उसका चेहरा भी है।

लीला ने कहा—लोगों के घर का हाल तू इतना कैसे जानती है? क्या संसार भर की ख़बरें तेरे पास आती हैं?

"वाह, मैं कैसे न जानूँ! शहर भर में कौन सा ऐसा घर है जहाँ का हाल मुझे नहीं मालूम है? और उनके यहाँ तो मेरी बहन काम ही करती है। एक दिन मैं अपनी बहन से मिलने गई थी तब उस बहू को भी देख आई थी। हाय, उस सुन्दरता के ही कारण उस बेचारी की ऐसी दुर्दशा हुई। मेरी बहन उसे बहुत चाहती थी। अब वह रो रो कर मर रही है।

लीला ने व्यग्र होकर पूछा—क्यों? उसे क्या हुआ है?

उत्साह के साथ हाथ हिलाकर क्षान्त ने कहा—हुआ है मेरा सिर। एक दिन बात ऐसी हुई कि लड़कों ने चन्दा करके शहर में सरस्वती-पूजा की। उसी दिन प्रतिमा के सामने उन लोगों ने एक थिएटर भी किया। शहर भर में जितनी भी बड़े बड़े घरानों की स्त्रियाँ थीं, वे सभी वहाँ गई थीं। डिप्टी साहब की स्त्री भी अपनी देवरानी को लेकर थिएटर देखने गई थीं। उस समय क्या किसी को ख़ास पता था कि ऐसी भी घटना हो सकेगी? अन्यथा इस अभागे थिएटर को देखने ही कौन दौड़ा जाता! इसी लिए लोग अब कह रहे हैं कि वहाँ क्यों गई? न गई होती तो ऐसा न होता। मैं कहती हूँ कि मरो। पहले से क्या कोई ब्रह्मा का कोप बाँचता रहता है? भावी का तो कोई पार नहीं पा सकता। इतनी स्त्रियाँ गई थीं, और तो किसी को कुछ नहीं हुआ, सारी आफ़त इसी के भाग्य में थी।

लीला ने अधीर भाव से कहा—क्या हुआ, पहले यही क्यों नहीं बतला देती। तुझसे तो मैं हैरान हो गई हूँ। जहाँ एक बात में सारा मामला तय हो सकता है, वहाँ क्यों इस तरह बक बक करके प्राण देती है? उस बहू को हुआ क्या?

"वही बात तो इतनी देर से बता रही हूँ भाई। परन्तु तुम सुनोगी क्या ख़ाक। सभी बातों में तो तुम्हें

उतावली पड़ी रहती है। मानो सदा ही घोड़े पर ज़ीन कसे सवार रहती हो। चार बातें मिला कर न कहूँगी तो भला समझोगी क्या? यही तो कहती हूँ कि सब लोग थिएटर देखने गये थे। समाप्त होते होते बिलकुल सवेरा हो गया। तब स्त्रियाँ अपनी अपनी गाड़ी पर सवार होने लगीं। उस भीड़ में ही न जाने कहाँ का एक लुच्चा खड़े खड़े सब स्त्रियों का मुँह देख रहा था। पड़ते पड़ते उस मुँहजले की दृष्टि एकाएक पड़ी ज्योत्स्ना के ऊपर। मेरी बहन उन लोगों के साथ ही थी। वह कह रही थी कि उस बदमाश की आँखें बाघ की सी थीं। उस स्त्री को वह इस तरह घूर घूर कर ताक रहा था, कि मानों खा जायगा। बेचारी का क्या हाल होगा, इसी चिन्ता में मैं रो रो कर मर रही हूँ। बामा के तो रात-दिन आँसू ही नहीं बन्द होते। डिप्टी साहब के भाई विलायत से लौटने पर न जाने कैसी आपदा खड़ी करें? मेरा तो अभी से हृदय काँप रहा है।

"व्यर्थ की बातें बक बक कर मर रही है। परन्तु हुआ क्या, यह अभी तक न सुनने में आया। केवल बातें बना रही है और एक झूठी कहानी गढ़ रही है।"

बहुत ही उत्तेजित होकर क्षान्त ने कहा—झूठी कहानी तो गढ़ ही रही हूँ। चेन्नी महरिन झूठ बोलनेवाली स्त्री नहीं है। मैं यदि झूठ बोल रही हूँ तो भगवान् मेरे ऊपर वज्र छोड़ दें। सारे शहर में इस बात का ढिंढोरा पिट गया है और मैं तुम्हारे सामने झूठ बोल रही हूँ। अच्छा सुनो उन लोगों की गाड़ी के पीछे पीछे जाकर वह बदमाश डिप्टी साहब का घर देख आया था। कुछ दिन के बाद भोजन करके ज्योत्स्ना अपने कमरे में सोई थी। द्वार बन्द था। इसी तरह वह रोज़ सोया करती थी। दिन में सोने की उसकी आदत थी। उस दिन साँझ हो गई, फिर भी द्वार नहीं खुला। तब बड़ी चिल्ल-पों मची, परन्तु भीतर से कोई आहट नहीं मिली। दरवाज़ा तोड़ कर लोगों ने जब देखा तब कमरा ख़ाली पड़ा था, वहाँ ज्योत्स्ना नहीं थी। खिड़की तोड़ कर कोई उसे निकाल ले गया था। खिड़की के सीख़चे कटे हुए थे। देखो, कैसी गज़ब की बात हो गई।

लीला अभी तक साँस बन्द करके यह कहानी सुन रही थी। अन्त में उसने अत्यन्त उत्कण्ठित होकर पूछा—वह गई कहाँ? कौन उसे ले गया?

क्षान्त ने गम्भीरभाव से कहा—यह बात किसी को नहीं मालूम है। केवल मैं और मेरी बहन जानती हैं। वही आदमी उसे लेकर भागा है।

"तुम लोगों को यह बात कैसे मालूम हुई?"

"इसमें बहुत सी बातें हैं। तार का एक चपरासी है। वह रोज़ एक लाल रंग की साइकिल पर सवार होकर बहुत दूर तक तार बाँटने जाया करता है। उसी से उसका पता चला है। बाज़ार में बरगद का एक पेड़ है न। उसी के नीचे लेटे लेटे मेरी बहन एक दिन धूप ले रही थी। वहीं एक दूकानदार रहता है। वह तार का चपरासी उसी दूकानदार का भाञ्जा है। वे दोनों डर डर कर चुपके चुपके बातें कर रहे थे। यह बात यदि डिप्टी साहब के कान में पहुँची तो बंदूक खड़ा हो सकता है न। यहाँ से बड़ी दूरी पर आमबाग़ नाम की एक जगह है। वह आदमी वहीं का ज़मींदार है। उसके नाम का एक तार था। चपरासी वहीं देने जब गया था तब ज्योत्स्ना को भी देख आया था। दरवाज़े के सामने वह खड़ी थी। शरीर पर उसके बहुत से जड़ाऊ गहने थे और एक बहुत कीमती रेशमी साड़ी थी। उस समय देखने में वह अप्सरा को भी मात कर रही थी।"

लीला ने बहुत ही चिन्तित होकर कहा—यह तो बहुत बुरी घटना हुई क्षान्त। वह स्त्री बेचारी ऐसे आदमी के चंगुल में पड़ गई है। मेरे विचार से उसकी बड़ी दुर्दशा होगी।

"दुर्दशा तो होगी ही। लौट कर आने पर उसके स्वामी को जब सारी बातें मालूम होंगी तब वह स्त्री और पुरुष दोनों की हत्या कर डालेगा। कुछ अतिरिक्त लोग कहते हैं कि वह आदमी भी बड़ा पाजी है। उसके अत्याचार के कारण उसकी स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है।"

"आत्महत्या उसने कब की है?"

"उसको तो दो महीने हो गये। परन्तु तुम्हारा शरीर अच्छा न होने के कारण इतने दिनों से मैं कहीं आ-जा तो सकी नहीं, इसी से कोई समाचार नहीं पा सकी। मेरी बहन आज-कल वहीं है। ज्योत्स्ना का पता लगते ही वह उसके पास पहुँच गई। एक तरह से वह आदमी अच्छा भी मालूम पड़ता है। बामा को उसके पास रहने देने में उसने ज़रा भी आपत्ति नहीं की। बामा आज शहर में कुछ चीज़ें ख़रीदने आई थी। उसी से मैंने ये सारी बातें सुनी हैं।"

अपनी सारी बातें भूलकर लीला एकाग्रचित्त से ज्योत्स्ना की ही परिस्थिति पर विचार करने लगी। बेचारी ज्योत्स्ना! बिलकुल ही अबोध है। वह जीवन की कठोरता को ज़रा भी नहीं जानती। सम्भव है कि वह उस आदमी पर ही अगाध विश्वास रखकर निश्चिन्त बैठी रहे। अब वह उस विश्वास की रक्षा करके चले तभी अच्छा है। अन्यथा उस अभागी स्त्री को न जाने कितनी दुर्दशा भोगनी पड़ेगी। सोचते-सोचते वह कहने लगी—अच्छा क्षान्त, तेरी बहन तो वहाँ रहती है। वह उस आदमी के सम्बन्ध में क्या कहती है? ज्योत्स्ना को क्या वह सचमुच चाहता है? उसका वह समुचित आदर-सत्कार तो करता है?

अपने काले काले ओठों को उलट कर क्षान्त ने अवज्ञा के साथ कहा—हाय रे अभाग्य! यह सब आदमी और प्रेम! झाड़ू मारना चाहिए ऐसे प्रेम को। तुम लोग तो ये सब बातें जानती नहीं हो बिटिया रानी। ज़्यादा से ज़्यादा दस बीस पुस्तकें पढ़ी हैं। संसार के रंग-ढंग देखते मस्तक के बाल पक गये। ऐसे आदमी क्या कभी किसी से प्रेम कर सकते हैं? ऐसे लोगों के दो दिन के आमोद-प्रमोद दो ही दिन में समाप्त हो जाते हैं। बाद को फिर उनका हाल और ही हो जाता है। फिर सुनती हूँ कि वह आदमी तो यहाँ का है भी नहीं। वह बंगाल का रहनेवाला है। वहाँ का वह बहुत बड़ा ज़मींदार है। यहाँ भी उसका मकान और कुछ सम्पत्ति है। कभी-कभी आकर थोड़े दिनों तक रहता है और फिर चला जाता है। बामा ने उसके नौकरों से उसका सारा भेद ले लिया है। अभी थोड़े ही दिन हुए वह यहाँ आया है और आते ही यह कीर्ति भी ले ली। चार दिन के बाद फिर लौट जायगा और लड़की बेचारी सड़क के किनारे पड़ी रह जायगी। इसके अतिरिक्त और क्या होगा? ऐसे काम का फल तो अन्त में इसी तरह का हुआ करता है न।

लीला ने कहा—परन्तु यह बात जब मेरे कान में पड़ गई है तब कोई ऐसी व्यवस्था अवश्य कर दूँगी, जिससे उस लड़की को कोई क्लेश न हो। तेरी बहन तो वहीं रहती है। उससे कह दे कि यदि उस लड़की को कोई क्लेश हो तो वह पहले-पहल आकर तुझे सूचना दे दिया करे।

क्षान्त ने मन ही मन प्रसन्न होकर कहा—सूचना तो वह दे जाया करेगी। बेचारी लड़की का कोई सहारा हो जाता तो उसके जी में जी आता। उसकी दुर्दशा की बात सोच सोच कर वह रात-दिन रोते-रोते मरी जा रही है। इस बार जब वह इधर आवेगी तब मैं उससे कह दूँगी।

किरण से अनबन हो जाने के कारण लीला फिर मन ही मन बहुत दुखी रहने लगी। उसका सखा, सहायक और स्नेही किरण ही था। सभी कामों और सभी बातों में वह छोटे से बच्चे की तरह सदा किरण के ही सबल आश्रय पर निर्भर रहा करती थी। आज ज्योत्स्ना के लिए लीला के हृदय में जो चिन्ता हो रही थी, उससे निवृत्त होने के लिए कौन सत्परामर्श दे सकता था? जिसके अभाव में उसके जीवन का एक भी दिन नहीं व्यतीत होता उसका परित्याग कर देने पर सारा जीवन कैसे व्यतीत होगा? बहुत कुछ सोच-विचार करने पर भी लीला किसी किनारे पर नहीं लग सकी।

(१८)

अरुण को समय काटने के लिए लीला जो उपाय निर्दिष्ट कर आई थी उसके अनुसार वह बड़े आग्रह के साथ कार्य करने लगा। जो व्यक्ति अनन्त सागर में ग़ोते खा रहा हो वह साधारण से अवलम्बन को भी अपनी समस्त शक्ति से जकड़ रखने का प्रयत्न करता है,

ठीक वही अवस्था उस समय अरुण की भी थी। अरुण के पास समय की कमी थी नहीं। पहले वह कुछ दिन तक केवल अन्दाज़ा लगा लगा कर ही लिखने का अभ्यास करता रहा, किन्तु उसकी एकाग्र चेष्टा—अध्यवसाय के कारण लिखने में उसका हाथ बराबर बैठता गया। उसके टेबिल पर लिखने की सारी सामग्री किरण ने ख़ूब सजा कर रख दी थी। अरुण उसी टेबिल के पास बैठकर समान उत्साह से घंटों बैठा लिखता रहता। उसके चेहरे पर कभी श्रान्ति या अवसाद का चिह्न तक न दिखाई पड़ता।

अरुण को जब लिखने का अभ्यास हो गया तब उसने रचना की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। इन दिनों वह बाह्यजगत् के अन्य समस्त विषयों को हृदय से निकाल कर केवल लिखने और कल्पना में ही तन्मय रहा था। उसे यह भी विश्वास हो गया कि इस प्रकार उसे बड़ी सान्त्वना मिली है। कल्पना की बदौलत वह सदा ही अपने को किसी और ही संसार में देखा करता। वह संसार सत्य था और वहाँ उसकी कल्पना से उत्पन्न हुए सजीव नर-नारी सदा ही विराजमान रहा करते थे। उनके सुख-दुख तथा आशा-आकांक्षा के फेर में पड़ कर वह बाह्यजगत् के अस्तित्व को एक प्रकार से भूल ही जाया करता था। अपनी निज की सृष्टि के आनन्द में कल्लोल करते-करते उसका सारा समय किस प्रकार कट जाया करता, यह अरुण स्वयं भी न समझ पाता। अपने अन्धकारमय जीवन तथा उसकी वेदना को वह उत्तरोत्तर भूलता जा रहा था।

लीला बीच-बीच में आकर संशोधन के लिए अरुण की रचनायें पढ़कर सुनाया करती और उसकी लिखने की अद्भुत शक्ति तथा भाषा-सम्बन्धी निपुणता देखकर मुग्ध हो जाया करती। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि किसी दिन जनता इस अन्धे लेखक की प्रतिभा पर मुग्ध और चमत्कृत हो उठेगी। वह अरुण से कहा करती कि तुम्हारे अन्दर अभी तक कितनी शक्ति छिपी हुई थी। ये सब रचनायें जिस दिन प्रकाशित होंगी उस दिन लोग बिलकुल अवाक् हो जायँगे। वे समझेंगे कि तुममें यह ईश्वर की दी हुई प्रतिभा थी। वह नेत्रों के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं हुई। जिस दिन तुम्हारी पुस्तक प्रकाशित होगी, उस दिन की कल्पना करके मेरा हृदय आनन्द के मारे उछल रहा है।

लीला के हृदय में आनन्द का जो उच्छ्वास आता उसके कारण अरुण भी हँसा करता। उसका हँसना तृप्ति और शान्ति का हँसना होता था। वह कहता—तुम न होती तो मैं कुछ भी न कर सकता। मेरी सब कुछ तुम्हीं हो। चाहे शक्ति समझो या भरोसा समझो, तुम सब कुछ हो।

लीला के प्रेम और स्नेह के कारण शरीर उत्तरोत्तर स्वस्थ होता गया, साथ ही चित्त की प्रसन्नता भी बढ़ती गई। उसकी अवस्था में बड़े वेग से परिवर्तन हो रहा था। उसकी मुखाकृति पर से निराशा और वेदना का चिह्न लुप्त होगया और उसका स्थान नवजीवन के आनन्द तथा आग्रह ने दख़ल कर लिया। दूसरे के प्रति प्रेम करने तथा उसका प्रेम प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को जो सुख और तृप्ति हुआ करती है, उसी की आभा अरुण के मुख-मण्डल पर विशेष रूप से उदित हो उठी थी। लीला के प्रेम, सुख और आशा से उसका हृदय परिपूर्ण था। उसका सुख मानो सदा के लिए स्थायी हो गया था और उसका जीवन अब निरर्थक नहीं रह गया।

आनन्द के उच्छ्वास से परिपूर्ण होकर उसका हृदय कभी-कभी खिल कर प्रकाशित हो उठना चाहता था। उस आनन्द के दुर्जय वेग को अब मन में ही रोक रखने में वह असमर्थ हो रही थी।

अरुण ने एक दिन किरण से कहा कि हम लोगों की बातचीत में तुम क्यों नहीं सम्मिलित हुआ करते? सच मुच वह कौन है, किस तरह मैं उसका वर्णन करूँ और किन शब्दों में उसकी ठीक-ठीक प्रशंसा की जा सकती है, यह मैं समझ ही नहीं पाता। ऐसा तेजस्वी और स्वाधीन मन है। प्रेम और करुणा से भरा हुआ उसका हृदय है। इसके अतिरिक्त उसकी शिक्षा भी कितनी उच्च है। सब बातों में वह ठीक हमारे ही समान है या यों कहिए कि बातचीत करने और कल्पना करने की शक्ति उसकी हमारी अपेक्षा भी अधिक है। उस शक्ति का परिचय

शब्दों के द्वारा नहीं दिया जा सकता। इसी से मैं समझता हूँ कि यदि तुम भी रहो तो बड़ा आनन्द आवे। उस दशा में हम तीनों बड़े आनन्द से समय काट सकेंगे।

किरण के हताश हृदय की तीव्र ज्वाला ने मानो उसके मुँह पर स्याही डाल दी। उसने बड़े अनुत्साह के साथ उत्तर दिया कि मुझे तो समय नहीं मिलता भाई। तुम्हें तो मालूम ही है कि प्रातःकाल कितने काम रहते हैं। इसके बाद उसने साहस करके कहा—क्या तुम्हें पहले की अपेक्षा इन कुछ महीनों में वीणा में कोई परिवर्तन मालूम पड़ रहा है?

किरण को यह जानने का बड़ा कौतूहल हो रहा था कि लीला में वीणा की अपेक्षा कहाँ और क्या अन्तर है, अरुण यह समझ सका है या नहीं। इसी मतलब से उसने यह बात भी पूछी थी। इसके उत्तर में अरुण ने उच्छ्वासित होकर कहा—ओह, बड़ा परिवर्तन हुआ है। कहता तो हूँ। वह क्या है, यह कहकर मैं नहीं समझा सकता। पहले-पहल हम दोनों ही शायद बाहरी सुन्दरता और एक उदास प्रेम में ही विह्वल हो गये थे, अन्तःकरण का परिचय प्राप्त करने या देने का उस समय क्या किसी को अवसर था? परन्तु अब? शायद तुम्हें आश्चर्य होगा, वीणा इतनी सुन्दर है कि मैं उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसकी अनुपम सुन्दरता का यदि एक अंश भी न रह जाय तो अब मेरी कोई हानि न होगी। अब मैं उसके हृदय का परिचय पा गया हूँ। वह हृदय सुन्दर से भी सुन्दर है। लाखगुना सुन्दर है, वह क्या है, यह मेरा हृदय ही जानता है।

किरण को ऐसा जान पड़ने लगा, मानो कलेजे को कोई कुन्द छुरी से काट रहा है। मर्मान्तक वेदना के मारे दाँत पीसता हुआ वह खिड़की से बाहर निकल गया। अरुण उस समय एक नीला चश्मा रूमाल से पोंछ रहा था। वह कहने लगा कि यहाँ आने से पहले ही यह चश्मा यहाँ भेज देने को मैं लिख आया था। आज इतने दिन के बाद यह मिला है। मेरी धारणा है कि इस चश्मे से मुझे लाभ हो सकेगा। प्रकाश से टकराने पर दोनों नेत्रों में बड़ी पीड़ा होती है।

"प्रकाश से टकराने पर?"—अपनी व्यथा भूल कर किरण ने विस्मितभाव से मुँह फेर लिया। उसने कहा—मेरी तो धारणा थी कि तुम बिलकुल ही नहीं देख पाते हो।

"पहले ऐसा ही मालूम पड़ता था। किन्तु इधर कुछ दिनों से सवेरा होने पर नेत्रों पर से गाढ़ अन्धकार का पर्दा हट जाता है और नेत्रों में कुछ पीड़ा होने लगती है। यह लक्षण कुछ अच्छा सा मालूम पड़ रहा है। जान पड़ता है कि इतने दिन के बाद हमारे पंगु स्नायुओं में फिर से सजीवता आ गई है। बम्बईवाले अस्पताल के डाक्टर ने मुझसे क्या कहा था, जानते हो?

किरण को इस विषय में कोई भी बात नहीं मालूम थी। बात यह थी कि अरुण पहले इतना गम्भीर और उदास रहा करता था कि अपने सम्बन्ध में वह कभी किसी तरह की बात ही नहीं करता था। अतएव उसकी यह बात सुनकर किरण ने कहा—क्यों, क्या कहा था? तुमने तो मुझसे कभी कुछ बतलाया नहीं।

अरुण ने प्रसन्नमुख से कहा—वे लोग कह रहे थे कि तुम्हारे नेत्रों के तारों में कोई ख़राबी नहीं आई है। केवल दृष्टि के स्नायु में धक्का लग जाने के कारण तुम अन्धे हुए हो। तुम्हारा शरीर यदि स्वस्थ और सबल रह सका, साथ ही चित्त भी ख़ूब प्रसन्न रहा, तो समय पाकर ये स्नायु फिर भी सबल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा था कि यह आशा इतनी साधारण है कि इसके बल पर तुमसे कुछ कह नहीं सकता। किन्तु मन यदि स्वस्थ रहा और उसमें स्फूर्ति बनी रही तो तुम्हारी दृष्टि का फिर से लौट आना असम्भव नहीं है। दुख, संशय, व्यथा तथा स्नायविक दुर्बलता आदि हमारी दृष्टि के फिर से लौट आने में बड़े बाधक हैं। नेत्रों के आरोग्य हो जाने पर भी जीवन में यदि ये सब बाधक फिर से आ पड़ें तो नेत्रों के स्नायु फिर पंगु हो जायँगे और मैं सदा के लिए अन्धा हो जाऊँगा। ये बातें कहते-कहते अरुण अपनी बातों से स्वयं ही भयभीत होकर काँप उठा।

किरण ने मन ही मन ज़रा सी शान्ति और आनन्द का अनुभव किया। वह सचमुच ही अरुण से स्नेह करता

था। उसकी इस शोचनीय अवस्था से किरण के हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा था। किन्तु उसकी दृष्टि के फिर से लौट आने की आशा है, यह जानकर उसने कहा—आज यह बात सुनकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, यह मैं कैसे व्यक्त करूँ? तुमने तो आज तक इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं था। यह बात समाप्त करके किरण ज़रा देर तक चुप रहा, बाद को अपने आप ही कहने लगा—और किसी को, अर्थात् उन्हें भी यह बात बतलाई है या नहीं? अब अरुण के सामने लीला का नाम किरण स्वाभाविक रूप में नहीं ले सकता था।

चश्मे को अच्छी तरह से पोंछ कर अरुण ने अपनी आँखों पर लगा लिया और दो-एक बार इधर-उधर आँख घुमाकर वह कहने लगा—नेत्रों को अब कुछ आराम मिल रहा है। कितनी पीड़ा हो रही थी! इसके बाद उसने किरण से कहा—वीणा के सम्बन्ध में कह रहे हो? नहीं, मैंने उससे कुछ नहीं कहा। झूठी आशा देने में लाभ क्या है भाई? यदि किसी दिन मेरे भाग्य से असम्भव भी सम्भव हो जायगा तब तो सभी को मालूम हो जायगा। परन्तु इस समय तो मैं इसकी कल्पना तक नहीं कर सकता हूँ। क्या सचमुच कभी ऐसा दिन आवेगा जब मैं उसका वही सुन्दर मुँह फिर से देख सकूँगा? इतना कष्ट कर मैं रोज़ रोज़ जो तमाम लिखता जा रहा हूँ, यह सब और लोगों की तरह मैं भी कभी देख कर पढ़ सकूँगा? क्या यह कभी सम्भव होगा? मन में तो ऐसी आशा करते डर लगता है।

किरण मन ही मन व्यथित होकर अरुण के आशा और निराशा से कातर तथा उद्वेग से चञ्चल मुँह की ओर ताकता हुआ मस्त मारे बैठा रहा। वह स्वयं भी अरुण की इस बात पर पूर्णरूप से विश्वास नहीं कर पाता था। जो नेत्र इतने दिनों तक चिकित्सा तथा तरह तरह के अन्य उपाय करने पर भी दृष्टिहीन हो गये वे फिर अपने आप ही स्वस्थ होकर कार्यक्षम हो जायँगे, यह बात तो उस समय विश्वास के योग्य मालूम नहीं पड़ रही थी। तो भी वह सोचने लगा कि यदि चिकित्सा-विज्ञान के विद्वानों ने कहा है तो ऐसा हो जाना भी कठिन नहीं है। किन्तु प्रयत्न करने पर भी सान्त्वना की कोई बात उसे नहीं मिल सकी। हृदय को व्यथा से परिपूर्ण करके वह चुपचाप बैठा रहा।

थोड़ी देर के बाद ज़रा सा शान्त होकर अरुण अपने आप ही कहने लगा—इसी से कहता हूँ कि इधर कई दिनों से मानो थोड़ा-थोड़ा प्रकाश का आभास मिलता है। इसका यदि कुछ अच्छा परिणाम हुआ तो उसका भी श्रेय वीणा को ही होगा। उसी ने मेरे निर्जीव शरीर में प्राणों का सञ्चार किया है। निराशा दुख और मानसिक वेदना के मारे, मैं तो चलने पर ही उतारू हो गया था। मेरे शरीर के सभी स्नायु अशक्त होकर मर चुके थे। यह जो मैं नवीन जीवन प्राप्त कर सका हूँ वह केवल स्नायुओं की अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्यकरी शक्ति है। मुझमें इस तरह की शक्ति का सञ्चार किसने किया है? उसी ने न? दृष्टि लौटा सका तो बहुत अच्छा है, यदि न लौटा सका तो भी मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है। अब मैंने जीवन की एक नवीन दिशा प्राप्त कर ली है। वीणा ने कई बिलकुल नये ढंग की पुस्तकें ला रक्खी हैं, हम दोनों साथ-साथ पढ़ेंगे और साथ-साथ पुस्तकें लिखेंगे। मैं जो कुछ लिख रखता हूँ उसे वह आने पर शुद्ध कर देती है। आगे चल कर मैं बोल दिया करूँगा, वह लिख लेगी। रात-दिन वह मेरे पास ही पास रहा करेगी। इन सारे सुखों की कल्पना से मेरा हृदय बहुत हलका हो गया है भाई, उसे पाकर मैं बिलकुल एक नया आदमी हो गया हूँ।

लीला की बातें कहते-कहते आनन्द के उच्छ्वास और सुख के मारे अरुण एक-दम से विह्वल हो गया, उसे किसी बात की ख़बर न रह गई।

"किरण, तुम्हीं मेरे, एक-मात्र प्रिय मित्र हो। इतने दुख में पड़ कर भी मैंने जो ऐसी शान्ति प्राप्त की है, इससे तुम्हें भी ख़ूब सुख मिला है न? कष्ट सहे बिना दुर्लभ वस्तु नहीं प्राप्त की जा सकती भाई! कभी-कभी मैं यही सोचता हूँ कि दृष्टि से यदि न वञ्चित होता तो शायद उसे इस रूप में मैं न प्राप्त कर सकता। पहले जिस रूप में उसे पाता, वह पाना तो स्त्री-पुरुष के साधारण

मिलन के समान निर्जीव होता। इधर यह मिलन क्या है, इसका सुख मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ? इसके कारण तुम भी सुखी हुए हो न भाई ?

"अवश्य" अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता के ही साथ किरण ने यह वाक्य कहने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके कण्ठ से वह स्वर न निकल सका। अरुण के पास से उठकर वह अपने कमरे में चला आया और खिड़की के पास खड़ा हो गया। आज वह कहीं किसी काम पर न जा सका।

कुछ दिनों से किरण अपने में एक अतृप्ति, एक अपूर्णता का अनुभव कर रहा था। किसी प्रकार भी, कोई काम-काज करके या लिखने-पढ़ने में चित्त लगा कर उस अपूर्णता को वह दूर नहीं कर पाता था। इस दिशा में किरण को जो असफलता हो रही थी, उसके कारण उसका हृदय सदा ही दुखी रहता। वह कोई भी काम करता या अपना चित्त बहला रखने के लिए कितना भी प्रयत्न करता, किन्तु अन्तस्तल की निराशा दूर न होती। वह सदा ही अनुत्साहित और आनन्दहीन बना रहता।

शरीर से किरण सदा से ही हृष्ट-पुष्ट रहता आया है, साथ ही चित्त भी उसका सदा प्रफुल्लित रहा करता था। उसकी जो भी आवश्यकतायें होतीं उन्हें पूर्ण करने की उसमें यथेष्ट शक्ति थी। आज तक किसी बात के लिए किसी और से उसे सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। अतः स्वभावतः वह किसी भी विषय में आसक्त नहीं रहता था। सबसे वह बेखटके मिलता, खेलता-कूदता और आमोद-प्रमोद की बातों में भाग लेता, किन्तु किसी भी विषय में वह कभी घनिष्ट भाव से नहीं प्रवेश करता था। उसके इस निर्विकार अटल-अचल-भाव में कोई परिवर्तन नहीं कर सका।

लीला ने ही पहले-पहल किरण के प्रशान्त हृदय में भावों की तरङ्गें उत्पन्न की थीं। जिस प्रकार वसन्त-ऋतु की हवा लगते ही मुरझाई वनस्थली लहलहा उठती है और वृक्ष फल-फूलों से लद जाते हैं, ठीक वैसे ही लीला के संसार में पड़ कर किरण की स्वाभाविक गम्भीरता भी हवा हो गई और वह एकाएक आनन्द और उमङ्ग के कारण चञ्चल होकर बोल उठा। उसका शरीर और अन्तःकरण मानो एक अनिर्वचनीय नये रस से अभिषिक्त हो उठा।

इस नये भाव की तरङ्गों में पड़ कर किरण ने तीन महीने वहाँ और किस प्रकार काट दिये, इसका कोई हिसाब नहीं था। लीला के साथ उसकी इस तरह बढ़ती हुई घनिष्ठता देखकर समाज में सभी लोगों ने तरह-तरह की कानाफूसी की है। घर में माता से लीला को इसके लिए काफ़ी फटकार सुननी पड़ी है, किन्तु इन सब बातों से उन दोनों को कोई हानि नहीं हुई। वे दोनों ही कभी किसी की बात पर कर्णपात न करके अपनी रुचि के अनुसार चलते आये हैं। उन लोगों ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा कि हम दोनों का यह सम्बन्ध साधारण स्त्री-पुरुष का सा है, जैसा कि सदा से चला आ रहा है या इसमें पवित्रता होने पर भी लोग बदनाम कर सकते हैं। लीला के सम्बन्ध में किरण की वास्तविक धारणा क्या थी, इसको स्वयं किरण भी नहीं जानता था। न तो कभी उसने इस सम्बन्ध में विचार किया था और न विचार करने का उसके पास समय था। ठीक यही हाल लीला का भी था। वे केवल इतना ही जानते थे कि हम दोनों परस्पर एक दूसरे के मित्र हैं। इसके अतिरिक्त आज तक उनके मन में कभी और कोई बात नहीं आई।

प्रातःकाल सोकर उठते ही किरण के मन में यह बात आती कि लीला के साथ घूमने जाना है। उतावली के साथ आवश्यक कामों से निवृत्त होकर वह कपड़े पहनता और फिर घूमने के लिए निकल पड़ता। उसे बराबर यह चिन्ता लगी रहती कि कहीं विलम्ब न हो जाय। दोपहर को घर लौटने पर वह भोजन करके विश्राम भी बड़ी कठिनाई से करता, ज़रा सा दिन झुकते ही फिर लीला के यहाँ के लिए रवाना हो जाता। दोपहरी में जितनी भी देर वह घर में रहता, उतनी देर तक का समय उसे पर्वत-सा मालूम पड़ता। साँझ को दोनों क्लब में जाते और खेल-कूद तथा गाना-बजाना समाप्त होने पर घर लौटते। नौ बजते-बजते किरण लीला को उसके घर पहुँचाकर तब अपने घर जाता। रात को जब तक उसे नींद न

आती तब तक का समय केवल दूसरे दिन का कार्यक्रम तैयार करने में ही काटता था। इस प्रकार आत्मविस्मृति में निमग्न होकर चलते-चलते एकाएक एक बहुत करारी ठोकर खाकर किरण लौट पड़ा और दृष्टि फेरकर देखा।

वह लीला के साथ किरण की जान-पहचान का पहला दिन था। उस दिन की बातें उसके हृदय में मानो अग्नि के स्फुलिंगों से खुदी हुई थीं।

वह बात सुनकर उसका न्यायनिष्ठ हृदय लीला की वञ्चना और प्रतारणा के कारण घृणा और क्रोध के मारे जल उठा था। बाद को उसके मन में यह बात आई कि उसका इतने दिनों का सञ्चित किया हुआ अपना निजी धन अनजान में ही बड़ी आसानी से दूसरे के हाथ में चला गया। किरण चकित और भयभीत हो उठा।

जिस तरह भटका हुआ पथिक रास्ते में चलते-चलते कोई अकस्मात् कठोर बाधा पाकर ठमक कर खड़ा हो जाता है, ठीक वैसे ही यह आघात पाने के बाद किरण भी इतने दिनों की स्वप्नमयी निद्रा से सचेत होकर अपने हृदय को परखने की चेष्टा करने लगा। तब उसे मालूम हुआ कि मेरे चित्त पर लीला का ही अधिकार है। इन कुछ ही महीनों में मुझे पूर्ण रूप से तृप्त करके अखण्ड प्रताप से लीला राज्य कर रही है। यह देख कर किरण चकित हो गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या वह अभी तक सोया था?

किरण ने लीला को समझाया, तरह-तरह की युक्तियाँ प्रदर्शित करके उसके कार्य की असारता दिखलाई, साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया कि उसका यह व्यवहार न्याय के विरुद्ध है। परन्तु लीला ने किसी प्रकार भी अपने मत का परिवर्तन नहीं किया। तब क्रोध और ईर्ष्या के मारे किरण अधीर होगया, उसने लीला के साथ अपना सारा सम्बन्ध त्याग दिया।

आज एक सप्ताह से किरण ने लीला के यहाँ का आना-जाना बन्द कर रक्खा था। तब से उसने क्लब में जाना भी बन्द कर रक्खा था। प्रातःकाल लीला जब अरुण के पास आती थी तब उसके आने के पहले ही किरण घर से निकलने के लिए उतावला हो जाता और उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही निकल जाया करता था। लीला जब तक वहाँ से जाती नहीं थी, तब तक लौट कर घर नहीं आया करता था। परन्तु इतना सावधान रहने पर भी फल क्या हुआ? बाहर से लीला से वह बचता अवश्य रहा, किन्तु इस एक सप्ताह में किरण क्या कभी क्षण भर के लिए भी उसे अपने हृदय से पृथक् कर सका है? उसकी अन्तरात्मा इतने दिनों में ही कितनी तृषित और बुभुक्षित हो उठी थी, इसे मुँह से न स्वीकार करने पर भी हृदय से अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं था। परन्तु लीला तो बड़ी आसानी से ही उसे त्याग कर दूसरे की हो गई तब किरण के लिए उपाय ही क्या था?

खिड़की के पास खड़ा होकर किरण शून्य हृदय से बग़ीचे के ऊँचे-ऊँचे नारियल के पेड़ों की ओर ताक रहा था। लीला अतिथि के रूप में अपने आप ही उसके हृदय के द्वार पर आई थी। दो दिन हँस-खेलकर और उसे आनन्दित करके फिर वापस चली गई तो इसमें किरण का क्या हानि-लाभ था? जिस तरह पहले उसके पास कोई साथी-संगी नहीं था, वह अकेला था, ठीक वैसे ही आज भी अकेला रह गया था। तो इसमें उसके हृदय के इस तरह शून्य और व्याकुल होने की क्या बात थी? कौन सी ऐसी बात थी जिसके कारण वह अपने पहले के ही जीवन में नहीं लौट जा पाता था। उसके पहले जो अवस्था थी वह अब भी तो ज्यों की त्यों बनी थी। उसके काम-काज, मित्रमण्डली, शिकार, खेल-कूद सभी तो वही थे। परन्तु उसमें यह शुष्कता और शून्यता कैसे आगई थी? क्या लीला के लिए? परन्तु वह तो उसका परित्याग करके आनन्द से ही अपना दिन व्यतीत कर रही थी?

किरण इस सोच-विचार में पड़ा ही था कि धीरे-धीरे उसके हृदय में लीला की उस दिन की वही लज्जा और भय से कातर मुखच्छवि उदित हो उठी। वही शक्ति, दर्प और तेज से भरा हुआ मुँह था। वह मुख उस दिन उसकी विरक्ति की आशङ्का से कितना कातर और कुण्ठित हो उठा था? उस दिन उसने किरण के प्रति कितनी नम्रता प्रकट की थी। एक एक करके

सारी बातें उसके हृदय में आकर छुरी के समान उसे वेधने लगीं। क्रोधान्ध होकर उसने लीला को कैसी कैसी बातें कही थीं। उसे स्वेच्छाचारिणी आदि कहकर गाली भी दी थी। तो भी वह किरण के सामने कितनी नम्र, कितनी कुण्ठित बनी रही! लीला की उस दिन की अभिमान और व्यथा से भरी हुई सजल दृष्टि याद आकर किरण को व्याकुल करने लगी।

"लीला!" "मेरी लीला।" वह अपने आप ही अस्फुट स्वर से अपने इस प्रिय नाम का उच्चारण करके मन्त्र के समान बार-बार दोहराने लगा। "मैं भला तुझे कभी कष्ट दे सकता हूँ?"

किरण का हृदय व्यग्र हो उठा। उसी समय उसके जी में आया कि दौड़कर लीला के पास जाऊँ। किन्तु हाय, लीला तो अरुण की है। अरुण लीला का है! बीच में पड़नेवाला वह कौन है। एक दिन जो सर्वस्व का अधिकारी था, वह क्या आज केवल मित्रता की सान्त्वना से ही खड़े खड़े स्वयं अपना सर्वनाश देख सकता है? लीला के पास जाने से अब फल क्या होगा?

किरण और नहीं स्थिर रह सका। अधीर तथा व्याकुल होकर वह कमरे में टहलने लगा। वह क्या कर सकता है? बे-समझे-बूझे केवल दया के वश में होकर लीला जो काम कर बैठी है उसका अन्तिम परिणाम होगा अरुण के साथ विवाह। हृदय की ज्वाला से अधीर होकर किरण एक बार अन्तिम प्रयत्न करने के लिए वीणा के पास गया था। वही यदि लौट कर रास्ते पर आजाती, तो सारा काम बन जाता। परन्तु उसके पास से भी तो किरण को असफल ही लौटना पड़ा है! अब और कोई उपाय रहा नहीं! न जाने किस अशुभ मुहूर्त में वसन्तपुर आकर अरुण उसका अतिथि हुआ है। वही उसके सारे दुख और निराश का कारण है! किरण फिर स्थिर होकर खड़ा हुआ। अहा असहाय, अन्धा दुखिया अरुण! जो एक दिन किरण का अभिन्न-हृदय मित्र था वह आज उसके प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी है। साथ ही वह इस बात को जानता भी नहीं। उसके इस उभड़े हुए प्रेम की कहानी किरण के हृदय में कैसा दावानल धधका रही थी।

किरण सोचने लगा कि जिस दिन मैंने लीला को नीच, धोखेबाज़ आदि कह कर गालियाँ दी थीं उस दिन लीला ने यही युक्ति उपस्थित की थी कि मेरे इस कार्य का उद्देश केवल अन्ध अरुण के हृदय में फिर से आनन्द की आशा उत्पन्न करके उनकी जीवन-रक्षा करना है। मुझे धोखा देने की उसकी इच्छा नहीं थी। उसके इस उद्देश में कितनी सफलता हुई है यह तो अरुण के चेहरे और शरीर से ही मालूम हो जाता है। आज-कल प्रसन्नता के मारे कैसा उसका चेहरा खिला रहता है। लीला ने उसके जीवन की गति परिवर्तित कर दी है। ऐसी उसमें अद्भुत शक्ति है! ऐसा प्रबल उसका व्यक्तित्व है! इस अतुलित प्रतिभा और शक्तिशालिनी लीला को तुच्छ समझ कर मैंने गालियाँ दी हैं!

लीला ने जो कुछ कहा था उसे कार्यरूप में परिणत करके दिखा दिया। वह यह भी कह चुकी थी कि मैं अन्त तक जाने को तैयार हूँ। ऐसा करेगी भी वह। किरण आदि से अन्त तक इस मामले को सोचता रहा। लीला की आशा वह अन्त तक त्याग नहीं सकता था, इधर उसे प्राप्त करने का किरण की दृष्टि में कोई उपाय भी नहीं था। उसका समस्त हृदय निराशा और वेदना के कारण क्षुब्ध और पीड़ित होने लगा। प्रतीकार का कोई भी मार्ग न देखकर वह किं कर्तव्यमूढ़ होने लगा।

जो लीला किरण को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी, वही आज अपनी इच्छा से दूसरे को वरण करके उससे दूर हो गई है! साथ ही जो किरण के प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी था, जिसने उसके जीवन की सारी सुख-शान्ति अपहरण कर ली थी, वह उसी का परम प्रिय मित्र, बिलकुल असहाय, अन्धा अरुण था। ख़ास किरण के घर में ही उसकी आँखों के ही सामने उसके मित्र की यह प्रेमलीला चल रही थी। इस सम्बन्ध में वह केवल श्रोता भर रह गया था, प्रतीकार का कोई उपाय नहीं था। उसे धैर्यपूर्वक यह कहानी सुननी पड़ रही थी।

[क्रमशः

—ठाकुरदत्त मिश्र

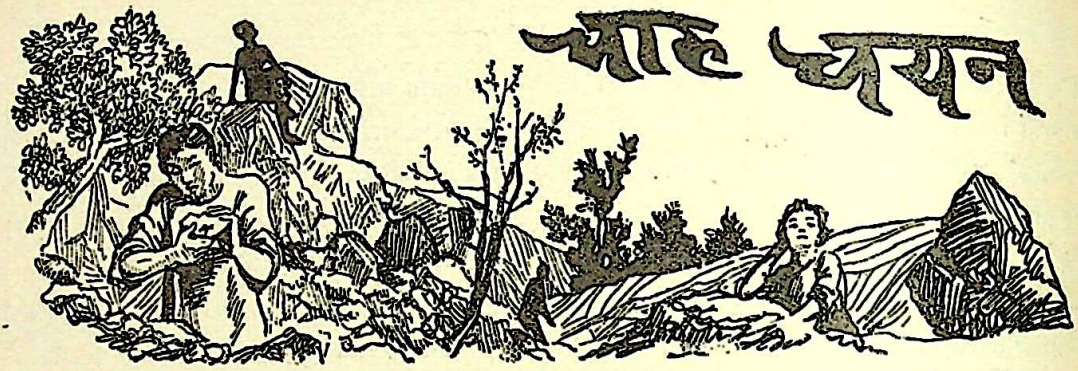

१—शान्ति

(१)

"प्रेम की प्रतिमा परम पवित्र।
त्याग की तनया तप का मित्र।
आत्म-विस्मृति की सुरा विचित्र।
रचे कवि कैसे तेरा चित्र?
व्याप्त तू है जग में, पर शान्ति!
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति?"

(२)

कामना सदा योगियों की।
वासना विषय-भोगियों की।
यातना चिर-वियोगियों की।
चिकित्सा जीर्ण रोगियों की।
प्रकृति की सुखद, सुमञ्जुल कान्ति।
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति?

(३)

किये तेरे हित यत्न अनेक।
हुए सब व्यर्थ विचार-विवेक।
मार्ग बाक़ी अब रहा न एक।
खोज में मर भी मिटे अनेक।
मिली तू; मिली किन्तु बन क्लान्ति।
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति?

(४)

दुर्लभे! तेरा किञ्चित् लेश
कहीं यदि पा सकते अखिलेश;
छोड़कर क्षीर-सिन्धु-सा देश,
न करते जग-सर्जन का क्लेश;
व्याप्त हो जिसमें रही अशान्ति
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति?

(५)

नहीं तत्त्वों की अवगति में।
नहीं तू उन्नति-अवनति में।
नहीं है तू जग की गति में।
छिपी है कहाँ लाज-प्रतिमे?
शान्ति! अयि विश्वमोहिनी शान्ति!
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति?

—शिवनाथ मिश्र

२—मुफ़्त की सवारी

'उतरा' 'उतरा' का शोर गाँव भर में मच गया। मर्द, औरत, बच्चे, बुड्ढे सभी हवाई जहाज़ को उतरते देखकर दौड़ पड़े। जो हल जोत रहा था वह हल-बैल छोड़कर दौड़ा, जो तम्बाकू पी रहा था वह अपना नारियल लिये हुए दौड़ा जो घास काट रही थी वह अपनी खुरपी लिये हुए दौड़ी, जो बच्चे को दूध पिला रही थी वह बच्चे को रोता छोड़कर भागी चली आई। मतलब यह कि हवाई-जहाज़ गाँव में गड़गड़ाता हुआ आसमान से उतरा क्या, मानो गाँव में प्रसन्नता व कौतूहल मूसलाधार बरसने लगा। इसी कुतूहल में एक दस वर्ष का लड़का अपनी कापी-पेन्सिल लिये दौड़ता-हाँफता हवाई जहाज़

के पास आया। उसने पाठशाला में ज्यों ही सुना कि उसके गाँव में हवाई जहाज़ उतरा है, वहाँ से सीधा दौड़ पड़ा, जहाज़ के पास जाकर वह खड़ा हो गया। मन में सोचने लगा कि इस विमान में बैठनेवालों को वैकुण्ठ का सुख मिलता है। वह बड़े कुतूहल से जहाज़ के चारों ओर घूम घूमकर उसे देखने लगा। एक बार मन में आया, कूदकर चढ़ जाऊँ तो कैसा मज़ा हो। यह सोचकर वह उदास हो गया और फिर जहाज़ के चारों ओर घूमने लगा।

हवाई जहाज़ के यात्री इधर-उधर लोगों की भीड़ को टहल-टहलकर देख रहे थे। मेकैनिक जहाज़ को दुरुस्त करने में भिड़ा था। अतएव उस लड़के को मौक़ा मिल गया। वह चुपचाप तेज़ी के साथ केबिन में कूद गया। उसने देखा, केबिन ख़ाली है। इससे उसे बड़ी ख़ुशी हुई। इतने में उसके मन में यह विचार आया कि यात्री लोग यहाँ आकर बैठेंगे, वह हवाई जहाज़ के पिछले भाग की ओर चला गया। उसके इस भाग में बैग आदि भरे थे। भाग्य उसके साथ था, भावी उसे मदद कर रही थी। वह चुपके से उन्हीं बैगों के बीच में अपने को छिपाकर बैठ गया, मानो वह बड़ा ख़ुशी था। जहाज़ के चलने में जितनी ही देर हो रही थी उसका हृदय उसी प्रकार धड़कने लगा। एक बार तो हड़बड़ाकर वह उठ खड़ा हुआ और सोचा कि निकल कर भाग जाऊँ। परन्तु तुरन्त ही इस विचार के आने से कि विमान छोड़कर अब कहाँ जाओगे, वह फिर अपने स्थान पर जमकर बैठ गया। उसने झुककर सुना और हँस पड़ा। पाइलट यात्रियों को अपनी अपनी जगह पर बैठने का आदेश कर रहा था। उसका हृदय उछला पड़ता था। मालूम होता था कि जीवन का आनन्द आज ही मिला है। वह स्वप्न—वह हृदय की आकांक्षा जिसको सोच-सोचकर वह आनन्द में मग्न हो जाया करता था, आज वास्तविक रूप में उसको मिलनेवाला था। मिलनेवाला ही नहीं था, मिल ही गया। भाग्य ने उसका साथ दिया। हवाई जहाज़ दुरुस्त हो गया। इंजन की भर्र भर्र की आवाज़ सुनाई देने लगी। उसी के साथ साथ उस लड़के का हृदय भी कूदने लगा। चुपके से झाँककर देखा। यात्री अपनी अपनी जगह पर बैठ गये थे। उसके जी में जी आया। उसने परमात्मा की ओर हाथ उठाकर कहा—धन्य हो भगवान् कि वे लोग इधर नहीं आये। इंजन भरभराकर ऊपर को ओर उड़ा। लड़के को ऐसा मालूम हुआ कि अब वह वैकुण्ठ की ओर जा रहा है। वह इधर-उधर देखने लगा कि कहीं कोई खिड़की आदि हो तो उससे नीचे प्रकृति का आनन्द लिया जाय। परन्तु कुछ न मिला। अन्त में उसे दो-तीन छेद दिखाई दिये, जो शायद हवा आने-जाने के लिए थे। उसने बड़ी उत्सुकता से उसमें उँगुली डालकर चाहा कि उन्हें बढ़ा दे, परन्तु वे बढ़ न सके। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। कभी सोचता कि वह कैसा भाग्यवान् है जो जहाज़ पर चढ़ा है। कभी सोचता कि अब कैसे इस पर से उतरूँगा। वह यह सोच ही रहा था कि किसी ने गरज कर कहा—ख़बरदार! अगर कोई यात्री हिला तो मेरी गोली का निशाना बन जायगा।

लड़के ने केबिन की ओर झाँक कर देखा। यात्रियों में से एक मनुष्य—एक हट्टा कट्टा जवान—पिस्तौल हाथ में लिये यात्रियों को धमका रहा था। पहले तो वह काँप उठा। फिर यह विचारकर कि हवा में डकैती हो रही है, उसके मन में कुतूहल पैदा हो गया और वह उत्सुकता से उन लोगों को देखने लगा। डाकू पाइलट की ओर बढ़ रहा था और सब यात्री भय, अचम्भे व घबराहट के कारण सन्नाटे में आ गये थे, वे चुपचाप मूर्ति के समान बैठे थे। "चुपचाप बैठे रहो मैं इंजिन चलाऊँगा अगर चुपचाप बैठे रहोगे तो जान बच जायगी नहीं तो....."। लड़के ने देखा कि डाकू यात्रियों को धमका रहा था।

डाकू इंजिन के पास चला गया। उसने जाकर पाइलट को एक घूसा ज़ोर से मारा और उससे इंजिन चलानेवाला पहिया अपने हाथ में ले लिया। अब जहाज़ एक-दम घूमकर दूसरी ओर चलने लगा। लड़का समझ गया कि डाकू हवाई जहाज़ को अपने स्थान की ओर लिये भागा जाता है। उसको यह विचारकर बड़ा ही आनन्द आया कि जब वह पहले-पहल जहाज़ पर चढ़ा तब उसे ऐसी अनोखी घटना—हवा में डकैती—के देखने का अवसर प्राप्त हुआ। जब वह इस प्रकार की कल्पना कर रहा था तब उसके चित्त में एक-दम एक नया विचार प्रकट हुआ और वह उस विचार के आते ही मारे ख़ुशी के उछल पड़ा। वह अपने हाथ से अपनी पीठ ठोकने लगा, मानो वह अपने इस नूतन विचार के लिए अपने आप को शाबासी देने लगा।

उसने जेब से अपनी कापी निकालकर उस पर कुछ लिखा और उस पृष्ठ को फाड़ लिया। फिर उसको लपेटकर एक पुल्ली सी बनाकर उसने उसे छेद से बाहर गिरा दिया। उसने फिर अपनी कापी के दूसरे पृष्ठ पर कुछ लिखा, और उसे भी पहले की तरह पुल्ली बनाकर बाहर डाल दिया। यह कार्रवाई वह बराबर करता रहा। यहाँ तक कि वह कापी ख़त्म होगई।

हवाई जहाज़ बड़े शान के साथ आगे को बढ़ता चला जा रहा था। डाकू मिनट-मिनट पर अपना तमंचा यात्रियों की ओर करके कह रहा था कि ज़रा हिले तो जान गई। बेचारे यात्री इस विचार से कि देखो भाग्य उन्हें कहाँ ले जाता है, उनकी क्या गति होती है, अधमरे से चुप बैठे थे। इधर यात्रियों की यह दशा थी, उधर वह लड़का अपनी कार्रवाई में लगा था।

कापी के ख़त्म हो जाने पर वह लड़का सोचने लगा कि अब क्या करे। उसका चित्त ऊबने लगा। उसको उड़ने का आनन्द नहीं मिल रहा था। उसके चित्त में रह-रहकर यह बात उठने लगी कि देखें जहाज़ पृथ्वी पर उतरता कैसे है और ये यात्री कैसे लूटे जाते हैं। तुरन्त ही यह विचार हुआ कि जब डाकू यात्रियों को लूटना शुरू करेगा तब वह मुझे भी ढूँढ़ लेगा। मुझे पाने के बाद डाकू मुझे भी शायद मारे। परन्तु मुझे डाकू मारेगा क्यों? मैंने उसका क्या बिगाड़ा है? यदि कोई कुछ कह सकता है तो पाइलट कह सकता है। पर वह ख़ुद ही बन्दी है। वह मेरा क्या करेगा? इस तरह के तर्क-वितर्क से लड़के को कुछ ढाढ़स हुआ। अब उसके मन में प्रकट हो जाने का विचार उठा। परन्तु शीघ्र ही उसने यह सोचा कि इन झंझटों में क्यों पड़ूँ। जो भाग्य में होगा, होगा।

× × ×

लड़का फिर चौकन्ना हो उठा, मानो झपकी से जाग पड़ा हो। उसने झाँककर देखा। यात्रियों में खलबली मची हुई थी। डाकू घूमकर उन यात्रियों को घूर घूरकर देख रहा था। डाकू ने हवाई जहाज़ को पूरी गति पर छोड़ दिया था।

यात्रियों में से एक चिल्ला उठा—डाकू अब तू क्या कर सकता है? देखता नहीं, दो हवाई जहाज़ तेरा पीछा किये दौड़े आ रहे हैं।

जैसे ही यात्रियों को दो हवाई जहाज़ों की झलक देख पड़ी उनमें नया जीवन-सा आ गया।

डाकू ने घुड़ककर यात्रियों से कहा—घबराओ नहीं। ये बेचारे क्या जान सकते हैं कि कोई डाकू जहाज़ लिये भागा जाता है। तुम लोगों की ख़बर स्थान पर पहुँचने पर अच्छी तरह ली जायगी।

वह लड़का उन दोनों जहाज़ों के देखने के लिए उतावला हो रहा था, परन्तु उन छेदों से उसको कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उसका दिल बाहर जाने के लिए उछला पड़ता था, परन्तु किसी कारण-वश वह बाहर न गया।

कुछ और मिनट बीत गये। यह समय ऐसे घटनामय था कि यात्रियों की अवस्था का अन्दाज़ा उनके देखने से लग सकता था। उन लोगों को

आशा थी, परन्तु वह आशा क्या थी यह वे निश्चित न कर सकते थे। डाकू विचलित होकर इंजन को पूरी गति से चला रहा था। लड़के के चित्त में कुतूहल छलाँगें मार रहा था।

एकाएक लड़के को एक धक्का लगा। मालूम हुआ, मानो इंजन में ब्रेक लगा दिया गया है। फिर उसे मालूम हुआ, मानो जहाज़ ज़मीन की ओर उतर रहा है। कुछ ही पल में हवाई जहाज़ एक बड़े मैदान में उतरा। डाकू के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, यात्री लोग प्रसन्न थे, परन्तु उन्हें यह न मालूम था कि बचानेवाला उनका हितैषी है या उनका दुश्मन है।

कुछ ही देर में पुलिसमैन ने दरवाज़ा खोलकर पूछा—कौन काग़ज़ फेंक रहा था?

एक-दम सन्नाटा छा गया, किसी ने कुछ नहीं कहा। कुछ देर के बाद डाकू ने कड़ककर कहा कि तुम लोगों को मेरे जहाज़ को रोकने का क्या अधिकार है?

इतने में चारों ओर से पुलिसमैन डाकू पर टूट पड़े और उसे पकड़ लिया। डाकू ने सोचा कि अब बचाव करना व्यर्थ है, वह चुपचाप क़ैद हो गया।

पुलिसमैन ने कुल हाल सुनने के बाद कहा कि जो तुम लोग कह रहे हो मैं जानता हूँ। परन्तु यह बताओ कि वह कौन आदमी है जिसने काग़ज़ गिराये हैं। सब लोग चुप थे। वे लोग चाहते थे कि वे अपने रक्षक को धन्यवाद दें। परन्तु धन्यवाद लेनेवाले का पता तक न था।

"मैं इस हवाई जहाज़ की तलाशी लूँगा"—एक पुलिसमैन ने कहा। इसके पहले कि कोई तलाशी ली जाय वह लड़का मुस्कराता हुआ बाहर चला आया। उसे शायद मालूम था कि उसने अपनी कार्रवाई से कितने लोगों को अपना आभारी बनाया। उसी ने अपनी कापी को फाड़ कर यह लिख कर नीचे गिराया था कि जिस हवाई जहाज़ पर हम उड़ रहे हैं उसे एक डाकू लिये भागा जाता है। दौड़ो। बचाओ।

— कन्हैयालाल

३—महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री भारत के उन कृती-सन्तानों में थे जिनकी टक्कर के विद्वान् संसार में विरले ही हैं। जैसे वे एक आदर्श और उत्तम श्रेणी के अध्यापक थे, वैसे ही परम-पटु साहित्यकार और सत्समालोचक भी थे। इतिहास और पुरातत्त्व के क्षेत्र में तो उन्होंने इतना अधिक और महत्त्व का काम किया है कि अपनी असाधारण प्रतिभा तथा एकान्त साधना की बदौलत उन्होंने भारत की अतीत स्मृति को विस्मृति के अगाध सागर से समुद्रोन्मथित रत्न के समान जन-साधारण के समक्ष लाकर रख दिया है। वास्तव में इतिहास और पुरातत्त्व की आलोचना तथा अनुसन्धान के लिए भारत में जिस नवीन वैज्ञानिक प्रथा का प्रचलन हुआ है, पण्डित हरप्रसाद शास्त्री थे उसके प्रधान प्रवर्तक। क्या साहित्य, क्या इतिहास, क्या पुरातत्त्व, क्या दर्शन और क्या समाज-विज्ञान, सभी विषयों के अध्ययन और अनुशीलन के लिए शास्त्री महोदय ने नये-नये और सुविधापूर्ण मार्गों का अनुसन्धान किया है, जिनका अनुसरण करके सुधी-समाज कृत-कृत्य हो रहा है।

शास्त्री जी का जन्म ६ दिसम्बर सन् १८५३ ईसवी को बंगाल के एक सुप्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। अपनी विद्वत्ता तथा धर्मपरायणता के लिए वह परिवार बङ्गाल में सदा से ही प्रसिद्ध था और उस परिवार के पूर्व-पुरुषों से शिक्षा-ग्रहण करके तथा धार्मिक दीक्षा लेकर उस प्रान्त के कितने ही लोगों ने अपना जीवन सार्थक किया था। पूर्वजों को इस मर्यादा की रक्षा करने में हरप्रसाद शास्त्री ने ज़रा भी नहीं उठा रक्खा। वर्तमान समय में बङ्गाल में जितने भी संस्कृताध्यापक तथा पुरातत्त्ववेत्ता हैं, प्रायः उन सबसे शास्त्री महोदय का तो

शिष्य-प्रशिष्य का सम्बन्ध है ही, साथ ही भारत के अन्यान्य प्रान्तों में भी उनके शिष्यों का अभाव नहीं है।

शास्त्रीजी आरम्भ से ही बड़े विद्या-व्यसनी, कष्टसहिष्णु तथा अध्यवसायशील थे। संसार का कोइ कष्ट उन्हें अपने नियमित स्वाध्याय से विरत करने में समर्थ नहीं हो सकता था। उनका यह स्वाध्याय जीवन के अन्त तक बराबर जारी रहा, यही कारण था कि उनके समान अगाध पण्डित, विशेषतः संस्कृत जैसे विशाल साहित्य के भिन्न भिन्न विभागों के ज्ञाता उनके जैसे विरले ही हुए हैं।

शास्त्रीजी को विद्यार्थी-जीवन में अर्थाभाव के कारण बड़ा क्लेश सहना पड़ा था। उनकी प्रखर बुद्धि तथा अदम्य उत्साह से मुग्ध होकर पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उनकी बड़ी सहायता की थी। कालेज की शिक्षा समाप्त करके भी शास्त्री महोदय आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा नहीं पा सके।

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने पहले-पहल एक साधारण स्कूल मास्टर के रूप में कर्म-क्षेत्र में पदार्पण किया था। इस पद से उन्नति कर वे शीघ्र ही कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के प्रिंसिपल के पद पर पहुँच गये थे। परन्तु इस पद पर पहुँचकर भी उनकी ज्ञान-पिपासा निवृत्त नहीं हुई, वे पढ़ने में एक साधारण विद्यार्थी के ही समान लगे रहते थे।

शास्त्रीजी की पढ़ाने की शैली बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी। संस्कृत-कालेज में वे विशेषरूप से साहित्य ही पढ़ाया करते थे। अँगरेज़ी-साहित्य की वैज्ञानिक शैली के ही अनुसार वे संस्कृत-साहित्य की आलोचना भी बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया करते थे। पढ़ाते समय कठिन से कठिन विषय की विवेचना वे ऐसे आकर्षक ढङ्ग से किया करते थे कि वह विद्यार्थियों के हृदय में अनायास ही बैठ जाता था। विद्यार्थियों के प्रति उनकी ममता भी असाधारण थी।

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री की विशेष प्रसिद्धि का कारण है बँगला तथा संस्कृत के कितने ही दुष्प्राप्य तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसन्धान तथा सम्पादन। इन दोनों भाषाओं के हज़ारों हस्त-लिखित दुर्लभ पुस्तकों का अनुसन्धान कर उन्होंने उनका अध्ययन किया था। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता राजा राजेन्द्रलाल मित्र के साथ उन्होंने पहले-पहल प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान का कार्य आरम्भ किया था। मित्र महो-

[स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री]

दय की मृत्यु के बाद प्राचीन पुस्तकों के अनुसन्धान के काम में सरकार ने उन्हीं को नियुक्त किया। इस सिलसिले में उनको नैपाल-दरबार के विशाल ग्रन्थागार का निरीक्षण करने का अवसर मिला था, जहाँ उन्हें संस्कृत तथा बँगला के अतिरिक्त अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के भी बहुत से ग्रन्थ मिले। इस कार्य में शास्त्रीजी ने जिस अनन्त ज्ञान की उप-

लब्धि की थी उसका थोड़ा-बहुत परिचय एशियायटिक सोसाइटी से प्रकाशित 'डिस्क्रिप्टिव कैटालाग आफ़ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट, की भूमिका से मिलता है। इस ग्रन्थ के छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। खेद का विषय है कि अपना यह ग्रन्थ वे समाप्त नहीं कर सके, अन्यथा इसकी भूमिका से संस्कृत-साहित्य का एक विस्तृत इतिहास तैयार हो जाता।

कार्य की इस प्रकार अधिकता होने पर भी शास्त्री जी अपनी मातृ-भाषा बँगला के प्रति उदासीन नहीं हो सके। अपनी आकर्षक तथा सरस रचना-शैली में लिखकर उन्होंने जिन अमूल्य ग्रन्थ-रत्नों से मातृ-भाषा के साहित्य-भाण्डार की पूर्ति करने का उद्योग किया है उसके लिए बँगला-भाषी सदा गौरव के साथ उनका स्मरण करेंगे।

शास्त्रीजी की विद्वत्ता तथा साहित्य-सेवा पर मुग्ध होकर सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय तथा सी० आई० ई० की उपाधि दी थी और ढाका-विश्वविद्यालय ने डी० लिट की। वे दो वर्ष तक बङ्गाल की एशियायटिक सोसाइटी के सभापति तथा कई वर्ष तक उपसभापति रह चुके थे। बङ्गाल-साहित्य-परिषद् के तो वे प्रधान स्तम्भ ही थे। विलायत की रायल एशियायटिक सोसायटी ने भी उनको अपने सम्मानित सदस्यों की सूची में स्थान दिया था। शास्त्रीजी की कीर्ति देश-विदेश में सर्वत्र समान थी।

स्वभाव के बड़े ही सरल और उदार थे। छोटे-बड़े सब से वे समानरूप से मिला करते थे और जिसके प्रति उनका जैसा मनोभाव होता उसे वे स्पष्ट कह दिया करते थे। कोई बात मन में छिपा रखने का अभ्यास उनको नहीं था। खेद है कि गत १७ नवम्बर को ७८ वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान होगया। शास्त्रीजी की मृत्यु से देश की विद्वन्मण्डली में जो स्थान सूना हुआ है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं। ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

—ठाकुरदत्त मिश्र

४—साईप्रसवालों की स्वराज्यकांक्षा

भूमध्य-सागर के पूर्वी भाग में, सीरिया के पश्चिमी किनारे के पास, साईप्रस नाम का एक छोटा सा द्वीप है। इसकी बड़ी से बड़ी लम्बाई १४० मील और अधिक से अधिक चौड़ाई ४० मील है। इसका क्षेत्रफल साढ़े तीन हज़ार वर्ग मील और आबादी लगभग ३ लाख ४४ हज़ार है। यहाँ के निवासी प्रधानतया ग्रीक जाति के हैं, पर कोई ६४ हज़ार अर्थात् एक पञ्चमांश मुसलमान भी यहाँ रहते हैं।

पहले यह टापू रोम-सम्राट् के अधिकार में था। जब इँग्लेंड का राजा प्रथम रिचर्ड शूली की लड़ाई (क्रूसेड) के लिए जेरूसलेम गया तब उसने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु बाद में यहाँ का शासन-सूत्र जेरूसलेम के राजा के हाथ में दे दिया गया। कुछ समय के पश्चात् यह फिर रोम-साम्राज्य के पूर्वी भाग में सम्मिलित कर लिया गया। सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक (१५७१ से १८७८ तक) यह तुर्कों की अधीनता में रहा और अब पिछले पचास वर्षों से यहाँ ग्रेटब्रिटेन की सत्ता स्थापित है। इस प्रकार समय समय पर भिन्न भिन्न जाति के शासकों के अधिकार में रहने के कारण यहाँ के लोगों को ख़ूब धक्के खाने पड़े हैं और बड़े बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा है। तीन सौ वर्ष के तुर्की शासन में तो इनकी पूरी दुर्दशा ही हो गई। कृषिप्रधान देश होते हुए भी साईप्रस को चावल, चीनी, पिसान इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ काफ़ी मात्रा में बाहर से मँगानी पड़ती हैं।

जब साईप्रस में अँगरेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो गया तब यहाँ के ग्रीकनिवासियों को (सहधर्मी होने के कारण) उनसे स्वभावतः बड़ी आशा बँध गई। उन्होंने शीघ्र ही स्वायत्त शासन के लिए आन्दोलन करना शुरू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि सन् १८८२ ईसवी में वहाँ एक व्यवस्थापिका सभा स्थापित कर दी गई। इसमें कुल १८ सदस्य

रक्खे गये, छः सरकारी और बारह ग़ैरसरकारी जो जनता के द्वारा चुने जाते थे। इन निर्वाचित सदस्यों में से एक चौथाई अर्थात् तीन तो मुसलमानों की ओर से चुने जाते थे और शेष नौ सदस्य ग़ैर-मुस्लिम लोगों के प्रतिनिधि होते थे।

अब यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि यह द्वीप अँगरेज़ों के अधिकार में कैसे आ गया। जब १८७८ ईसवी में रूस-तुर्की-युद्ध की समाप्ति हुई तब सैन स्टीफ़नो की सन्धि के अनुसार तुर्कों को विवश होकर अरमेनिया का एक बड़ा भाग रूस को समर्पित कर देना पड़ा। उस समय रूस का रुख़ आगे बढ़ने की ओर देखकर तुर्की के सुलतान ने अपने राज्य की रक्षा के ख़याल से अँगरेज़ों के साथ मैत्री कर ली और एक शर्त्तनामे पर हस्ताक्षर कर दिया जिसके अनुसार अँगरेज़ों ने तो यह प्रतिज्ञा की कि यदि रूस एशिया में आगे बढ़कर तुर्की के अधीन किसी भू-भाग को हड़प लेने की चेष्टा करेगा तो हम सेना लेकर उसकी मदद के लिए चढ़ आवेंगे और रूस को रोकेंगे, तथा सुलतान ने अँगरेज़ों को अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकने का सुभीता देने के इरादे से साईप्रस-द्वीप का शासन उनके सिपुर्द कर दिया।

यद्यपि इस सन्धि के अनुसार वहाँ का शासन पूरी तौर से अँगरेज़ों के हाथ में आ गया था, फिर भी कहने के लिए तुर्की का सुलतान तब भी साईप्रस का अधिपति माना जाता था, किन्तु सन् १९१४ के बाद यह बात भी नहीं रह गई। महायुद्ध का प्रारंभ होने पर जब तुर्की ने मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तब ब्रिटेन खुल्लमखुल्ला इस द्वीप का मालिक बन बैठा और उसने इसे बाक़ायदा अपने साम्राज्य में मिला लिया।

अँगरेज़ लोग पक्के राजनीतिज्ञ तो होते ही हैं, उनका कोई भी कार्य स्वार्थनीति के प्रतिकूल नहीं हो सकता, इसी से यद्यपि साईप्रस के ग्रीक अधिवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए १८८२ में उन्होंने वहाँ एक व्यवस्थापिका सभा स्थापित कर दी थी और सन् १९०९ में भी शासन-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किये थे, तथापि यह स्पष्ट है कि उनकी आन्तरिक इच्छा कभी स्वराज्य देने की नहीं थी; हाँ, यदि परिस्थिति-विशेष के कारण उन्हें ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ता तो बात दूसरी थी।

महायुद्ध के समय उन्होंने देखा कि यदि ग्रीस शत्रु-पक्ष की ओर न जाकर हमारे पक्ष में आ जाय और शत्रुओं से लड़ाई की घोषणा कर दे तो हमारा बड़ा काम निकले, हमें तुर्की को परास्त करने में विशेष सुभीता हो जाय। इसी ख़याल से उन्होंने ग्रीस को यह प्रलोभन दिया कि यदि तुम हमारी ओर से युद्ध में शामिल हो जाओ तो हम साईप्रस-द्वीप तुम्हारे सिपुर्द कर देंगे, किन्तु जब १९१६ में उन्हें विदित हुआ कि ऐसा करने से फ़्रांस असन्तुष्ट हो जायगा तब उन्होंने अपना वादा पूरा करने से इनकार कर दिया। युद्ध समाप्त होते ही साईप्रस-वालों ने फिर आन्दोलन शुरू किया। उन्हें शान्त करने के लिए अब लायड जार्ज ने यह चाल चली कि थ्रेस और स्मरना पर कब्ज़ा करने के प्रयत्न में ग्रीस के सर्वप्रधान नेता वेनेज़िलास का समर्थन करना शुरू किया, किन्तु इससे भी साईप्रसवालों का सन्तोष नहीं हुआ। सन् १९२१ में वहाँ की अधिकांश जनता ने व्यवस्थापिका सभा के चुनाव का बहिष्कार किया। जिन थोड़े से लोगों ने चुनाव में भाग लिया अथवा जो लोग चुनाव के लिए खड़े हुए उन्हें जनता ने बहुत धिक्कारा और खुले आम उनका अपमान करना शुरू किया।

ब्रिटेन की इस कूटनीति के कारण यद्यपि साईप्रसवालों का आन्दोलन बिलकुल बन्द नहीं हुआ, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उसमें कुछ शिथिलता अवश्य आ गई। किन्तु तुर्की की राष्ट्रीय सरकार द्वारा ग्रीस का पराभव होने के बाद आन्दोलन ने फिर ज़ोर पकड़ा। निदान कुछ समय के लिए उनका मुँह बन्द कर देने के ख़याल से १९२५ में ब्रिटेन ने फिर एक टुकड़ा उनके सामने फेंक दिया।

निठुर वालम्भु सजो लाओल सिनेहे —विद्यापति

साईप्रस को उपनिवेश का पद दे दिया गया और वहाँ 'हाईकमिश्नर' के बजाय एक गवर्नर रहने लगा। इसके अतिरिक्त शासन-सम्बन्धी मामलों में गवर्नर की सहायता करने के लिए एक कार्य-कारिणी परिषद् नियुक्त की गई, जिसमें तीन ग़ैर-सरकारी सदस्यों को भी स्थान दिया गया। किन्तु इस प्रकार ब्रिटेन ने जो कुछ 'दान' दिया, दूसरे हाथ से मानो उसका सारा भाग छीन भी लिया। पहले जहाँ व्यवस्थापिका सभा में केवल छः सरकारी तथा बारह ग़ैरसरकारी सदस्य थे, वहाँ अब ९ सरकारी तथा १५ ग़ैरसरकारी सदस्य रहने लगे। अर्थात् सरकारी सदस्य तो संख्या में ड्योढ़े कर दिये गये, पर ग़ैरसरकारी सदस्यों की संख्या सवाई से अधिक नहीं की गई।

सन् १९१९ में श्री राम्से मैकडानल्ड ने बर्नवाले मज़दूर-सम्मेलन में कहा था कि 'मज़दूर-दल की नीति साईप्रसवालों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में स्वयं ही निर्णय कर लेने की आज़ादी देने की होगी। वे राष्ट्रसंघ के चाहे जिस सदस्य के अंग होकर रहना पसन्द करें, उसी के होकर रह सकेंगे।' यही कारण है कि जब ब्रिटेन का शासन-सूत्र मज़दूर-दल के हाथ आया और स्वयं राम्से मैकडानल्ड ही प्रधान मन्त्री हुए तब साईप्रसवासियों को आशा बँध गई कि सम्भवतः अब हमारी आकांक्षा पूरी हो जायगी। जुलाई (१९२९) में वहाँ की व्यवस्थापिका सभा के ग्रीक सदस्यों ने इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र उपनिवेश-मन्त्री (कोलोनियल सेक्रेटरी) के पास भेजा कि हम लोग ग्रेटब्रिटेन की अधीनता से अलग होना चाहते हैं और यदि यह सम्भव न हो तो हम उत्तरदायी शासन चाहते हैं; इसके अतिरिक्त ९२,८०० पौण्ड का जो वार्षिक कर तुर्की को अभी तक दिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय एवं १९१४ के बाद इस सम्बन्ध में जितनी रक़म दी गई हो वह हम लोगों को लौटा दी जाय। इन माँगों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के लिए और इनकी ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट कराने के ख़याल से एक प्रतिनिधि-मण्डल भी उपनिवेश-मन्त्री से मिलने के लिए लन्दन गया। किन्तु उस मज़दूर-सरकार पर भी जिसके अधिनेता श्री राम्से मैकडानल्ड थे, उनकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा।

कुछ समय के बाद, ख़ूब सोच-विचार कर, उपनिवेश-मन्त्री ने जो उत्तर दिया उससे साईप्रस-वालों को बड़ी निराशा हुई। ब्रिटेन से अलग होने का प्रश्न तो थोड़े में ही चलता कर दिया गया, और अब वह हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया। स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में उन्हें भी वैसा ही उत्तर मिला जैसा भारतवासियों को अनेक बार मिल चुका है, अर्थात् अभी आप लोगों ने काफ़ी उन्नति नहीं की है, अतः बहुत शीघ्र आप स्वायत्त शासन के योग्य हो सकेंगे, ऐसी आशा नहीं है। ९२,८०० पौण्ड की वार्षिक रक़म के सम्बन्ध में भी उन्हें कोरा जवाब मिला। उपनिवेश-मन्त्री की ओर से कहा गया कि 'साईप्रस उत्तराधिकारी राज्य है, अतः तुर्की से पृथक् होने के समय उसका जो राष्ट्रीय ऋण था, उसके एक अंश की ज़िम्मेदारी साईप्रस को अपने ऊपर लेनी ही होगी। ९२,९०० पौण्ड की उक्त रक़म उसी क़र्ज़ का सूद अदा करने में लगाई जाती है। किन्तु व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का मत इससे भिन्न है। उनका कथन है कि तुर्की का शासन समाप्त होने के बाद साईप्रस ब्रिटिश-साम्राज्य में मिला लिया गया, अतः वस्तुतः ब्रिटेन ही उत्तराधिकारी राज्य है, साईप्रस नहीं और तुर्की के राष्ट्रीय ऋण के उक्त अंश की अदायगी का भार भी उसी पर पड़ना चाहिए, साईप्रस पर नहीं, अस्तु।

उपनिवेश-मन्त्री ने अपने उत्तर में एक और मज़ेदार बात कही थी। साईप्रस की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सरकारी नीति का समर्थन करते हुए उन्होंने यह विचित्र दलील पेश की थी कि एक तो व्यवस्थापिका सभा में ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या ज़्यादा है, दूसरे सिविल कर्मचारियों को बहुत कम तनख़्वाह दी जाती है, इसी से साईप्रस की आर्थिक

उन्नति करने में सरकार को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आपने ग़रीब साईप्रस-वालों को यह बहुमूल्य सलाह देकर भी सम्मानित किया कि यदि आप लोग साईप्रस की आर्थिक अवस्था सुधारना चाहते हैं तो आप सरकार के साथ पूर्ण सहयोग कीजिए और अच्छी अच्छी तनख़्वाहें देकर अधिक योग्य अँगरेज़ कर्मचारियों को नियुक्त करना स्वीकार कीजिए, मानो उस छोटे से द्वीप के लिए अपनी समूची आमदनी का ४७ प्रतिशत भाग भी केवल इन कर्मचारियों के वेतन में ख़र्च कर देना काफ़ी नहीं था!

सन् १९२९ वाली माँगों के अस्वीकृत किये जाने और उपनिवेश-मन्त्री के इस रूखे व्यवहार का ही फल है कि साईप्रस में स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। पिछले आक्टोबर मास में एक दिन सहसा यह समाचार आया कि साईप्रस की जनता ने खुल्लमखुल्ला बग़ावत कर दी है और कमिश्नर के बँगले तथा गवर्नमेण्ट-हाऊस तक को जला डाला। यद्यपि अत्यन्त शक्ति-शालिनी ब्रिटिश सरकार को इस छोटे से द्वीप के उपद्रवों का दमन करने में अधिक समय नहीं लगा और न कोई कठिनाई ही हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि विद्रोह की आग बिलकुल शान्त हो गई। यह तो तभी हो सकता है जब असन्तोष का मूल-कारण दूर कर दिया जाय। यद्यपि अभी कुछ ही दिन पहले कामन्स सभा में किये गये एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से कहा गया था कि फ़िलहाल साईप्रस की शासन-व्यवस्था में ऐसा कोई सुधार करने का विचार नहीं है जिससे वह स्वायत्त शासन के मार्ग में अग्रसर हो सके, फिर भी यह असम्भव नहीं है कि इस घटना से शिक्षा ग्रहण कर ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अपना नीति बदल दें और साईप्रसवालों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करें, अस्तु।*

—मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

*इस लेख की अधिकांश सामग्री 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित एक लेख से ली गई है—लेखक

५—तुर्की और रोमन-लिपि

(१)

तुर्की-भाषा एक स्वतंत्र भाषा है, पर इसके तत्व अरबी व फ़ारसी के अनेक शब्द एक दूसरे में प्रचलित हैं। तुर्की-वर्ण-माला में ३३ अक्षर हैं, जिनमें से २८ अरबी, चार फ़ारसी और केवल १ तुर्की का अपना है।

लगभग १३०० वर्ष पहले तुर्क लोगों में चुग़ताई-लिपि का चलन था। मुसलमान होने पर उन्होंने अरबी-लिपि को ग्रहण कर लिया। पर पहली दिसम्बर सन् १९२८ ईसवी से तुर्कों ने अरबी लिपि को छोड़ कर रोमन-लिपि ग्रहण की है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

अक्षर		उच्चारण	अक्षर		उच्चारण
A, a	ا	(अ)	G, g	گ	(ग:)
B, b	ب	(ब:)	Ğ, ğ	غ	(ग़:)
C, c	ج	(ज:)	H, h	ه	(ह:)
Ç, ç	چ	(च:)	i	ي	(इ)
D, d	د	(द:)	I	ى	(ई)
E, e	ئ	(ए)	J, j	ژ	(ज़:)
F, f	ف	(फ़:)	K, k	ك-ك	(न:-क:)
			L, l	ل	(ल:)

*तुर्की में काफ़ (ك—क) से 'न' की भी ध्वनि निकलती है और यह अक्षर तुर्की-वर्ण-माला का विशेष अक्षर है, इस कारण यह उसी प्रकार रक्खा गया है।

लेखक

M m	مـ	(मः)	Ş ş	شـ	(शः)
N n	نـ	(नः)	T t	تـ	(तः)
O o	او	(ओ)	U u	اُ	(उ)
Ö ö	ئو	(औ)	Ü ü	أُ	(ऊ)
P p	پـ	(पः)	V v	ۋ	(वः)
R r	ر	(रः)	Y y	يـ	(यः)
S s	سـ	(सः)	Z z *	ز	(ज़ः)

अब यह जानना चाहिए कि Q, W व X को क्यों नहीं लिया। क्यू (Q) वास्तव में क़ाफ़ (ق) का बाधक है, परन्तु कहा जाता है कि काफ़ के बदले प्रायः काफ़ (ك) ही बोला जाता है, इस कारण उसकी आवश्यकता न समझी गई होगी।

मुझे ऐसा भी पता लगा है कि खे (خ) का उच्चारण वास्तव में 'हे' से होता है। सम्भवतः इस कारण खे भी नहीं रक्खा गया है। प्रायः यह बात प्रसिद्ध है कि तुर्की में रोमन-लिपि का चलन हो गया है, वहाँ अब अरबी-लिपि नहीं रही। परन्तु उक्त अक्षरों पर तनिक ध्यान देने से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि तुर्की-भाषा की केवल लिपि ही नहीं बदली है, बल्कि वर्णमाला, उच्चारण-क्रम और मात्राओं में भी बड़ा परिवर्तन हुआ है।

(क) तुर्की-वर्णमाला में पहले कुल ३३ अक्षर थे। उनमें से २८ अरबी-वर्णमाला के, ४ फ़ारसी के और केवल एक तुर्की का अपना था, किन्तु अब तो कुल अक्षर केवल २९ ही रह गये हैं। कारण यह कि अरबी के अनेक अक्षर जैसे ذ-ز-ض-ظ (ज़ाल, ज़े, ज़ाद, ज़ो) में से जो एक ध्वनि देते हैं, केवल एक ज़े रक्खा गया है। इसके सिवा जो अक्षर उनके काम के थे वही रक्खे गये हैं।

(ख) जिस प्रकार उर्दू-वर्णमाला के अक्षरों का उच्चारण अलिफ़, बे आदि होता है, उसी प्रकार वहाँ भी अक्षरों के उच्चारण की ऐसी ही शैली थी। किन्तु अब वैसी शैली नहीं रही। अतः ऊपर जो उच्चारण बतलाया गया है उससे यह बात स्पष्ट ही है।

(ग) अलिफ़, बे, पे आदि का जो कर्म यहाँ है वही कर्म वहाँ भी था। पर वर्तमान लिपि के परिवर्तन में उस कर्म में भी परिवर्तन हो गया है।

(घ) अरबी, फ़ारसी व उर्दू में मात्राओं का अस्तित्व अक्षरों से पृथक् हुआ करता है। तुर्की में ज़बर, ज़ेर, पेश, दो ज़बर, दो ज़ेर, दो पेश व जज़्म कुल ७ मात्रायें और एक चिह्न तशदीद (ـّ) का था। पर अब इन आठों की आवश्यकता नहीं रही। उन्हीं २९ अक्षरों से जिनका वर्णन हो चुका है, मात्राओं का काम भी चल सकेगा। अब ३३ अक्षरों व आठ मात्राओं के बदले केवल २९ अक्षर ही रह गये हैं।

(ङ) मात्रा, बिन्दी व अक्षरों के अनेक रूपों के कारण टाइप के मार्ग में जो कठिनाइयाँ थीं वे सबकी सब भी दूर होगई हैं।

तुर्कों ने रोमन-लिपि क्यों ग्रहण की, अरबी-लिपि क्यों छोड़ दी, उसमें कैसी कठिनाइयाँ थीं, इसका खुलासा इस प्रकार है।

(१) अरबी-लिपि दाहने ओर से बायें ओर लिखी जाती है। परन्तु ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उसके सब अक्षरों की दशा ऐसी नहीं है, क्योंकि ح ع ط ص ع ع अक्षर बाँयें से दाहने ओर चलते हैं। उक्त अक्षरों के सिवा उसमें कुछ अक्षर गोलाईवाले भी होते हैं। अनेक अक्षर लम्बे होते हैं। अनेक

* उक्त सारे अक्षर एक 'सालनामः पारस' (پارس شالنامه) के आधार पर दिये गये हैं। जब मैं भ्रमणार्थ ईरान गया था तब उसकी एक प्रति मुझे वहाँ मिली थी।

अक्षरों की दशा दोनों बातों से भिन्न होती है। अतः इस प्रकार के भेद-भाव के कारण लिखने में क़लम को कभी दाहने, कभी बायें, कभी ऊपर, कभी नीचे ले जाने की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

(२) अनेक अक्षर ऐसे हैं कि जब वे किसी शब्द के आदि, मध्य या अन्त में आते हैं तब उनका स्वरूप बहुत कुछ बदल जाता है और कुछ अक्षरों की दशा तो यह है कि आदि में ही उनकी सूरत किसी में कुछ और किसी में कुछ होती है। जैसे بکری (बकरी) بچہ (बच्चा) व بوتل [बोतल] में बे [ب—ब] अक्षर।

(३) अक्षरों की विचित्रता और टुकड़े होने की दशा में उनकी भिन्नता के कारण छापने के लिए टाइप बनाने या इसका टाइपरायटिङ्ग तैयार करने में बड़ी कठिनाई है।

(४) बहुत से अक्षरों से बननेवाले शब्द के लिए कहना ही क्या है? केवल दो अक्षर दाल और रे (د—द = र) से बननेवाला शब्द मात्रा न होने पर कई ढंगों से पढ़ा जा सकता है और प्रत्येक दशा में उसका अर्थ भी बदल जाता है जैसे—

دَر दर अर्थ में, बीच, दरवाजा
دُر दुर „ मोती
دِر दिर „ .....

फलतः डायरेक्टर ڈائرکٹر शब्द को कम से कम डायर-कटर पढ़ा जा सकता है, चाहे कोई अर्थ निकले या न निकले। इसके सिवा इस वाक्य—بکری اچھی ہے। بکری के तो अनेक पाठ हो सकते हैं, जिनमें से दो ये हैं—(१) बकरी अच्छी है। (२) बिकरी अच्छी है। इस प्रकार 'बाबा अजमेर गये' वाली समस्या उपस्थित हो सकती है।

(५) नुक़्तः (बिन्दी) का अस्तित्व ही क्या? पर वर्णमाला में इससे ग़ज़ब का हेर-फेर हो जाता है। ऊपर व नीचे का ख़याल छोड़ दिया जाय तो भी तनिक हटने से पाठ व अर्थ दोनों में भारी अन्तर हो जाता है। जैसे—

शब्द	हिन्दी-उच्चारण	अर्थ
نعت	(नात)	प्रशंसा, विशेषतः हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा
لغت	(लोग़त)	कोश
نبي	(नबी)	ईश्वरीय दूत
بني	(बनी)	बेटे, पुत्र

(६) ह की ध्वनि के निमित्त दो 'हे' (ह-ھ-ح) हैं। इनमें से इसे ح बड़ी हे और इसे ھ छोटी हे कहते हैं। अँगरेज़ी के हाल (Hall) शब्द का अर्थ है—बड़ा कमरा और हाईकोर्ट (High Court) का अर्थ है बड़ा न्यायालय। उक्त दोनों शब्दों में यद्यपि बड़प्पन का भाव है, पर हाल और हाईकोर्ट दोनों छोटी हे से ही लिखे जाते हैं, क्योंकि इसी में सुगमता है। इसके सिवा केवल एक ध्वनि देनेवाले अक्षरों का विवरण यह है—

स के लिए ص س ث [से, सीन, साद]
त के लिए ط ت [ते, तो]
अ के लिए ا, ع, ء [अलिफ़-ऐन-हमज़ः]

फलतः कहाँ पर कौन सा अक्षर प्रयोग में लाया जाय, इसका ध्यान रखना अथवा याद रखना कोई आसान काम नहीं है।

(७) न की ध्वनि नून (ن न) के सिवा दो ज़बर दो ज़ेर व दो पेश (ً ٍ ٌ) से भी पैदा होती है। जैसे फ़ौरन (فوراً), जबरन (جبراً) में। अतः यह बात भी गड़बड़ पैदा करती है कि कहाँ किससे काम लिया जाय, क्योंकि एक के बदले में दूसरे को लिखना अशुद्ध है।

(८) अलिफ़ लाम (ال) लिखा जाता है इनमें से अलिफ़ तो कदापि उच्चारण में नहीं आता, पर लाम कभी आता है और कभी नहीं आता। जैसे अब्दुस्समद (عبدالصمد) व अबदुलग़फ़ूर عبدالغفور में। इस प्रकार की बातों से तुर्कों ने अरबी-लिपि के बोझ को अपने सिर से उतारा है। अब उनकी

नई लिपि में जो शब्द जैसा बोला जाता है वह उसी प्रकार लिखा भी जाता है और एक ध्वनि के लिए जो कई अक्षर थे उनसे उन्होंने सरोकार ही नहीं रक्खा।

इसमें सन्देह नहीं कि तुर्की का साहित्य जो कुछ अरबी-लिपि में है वह आनेवाली सन्तानों के लिए एक विचित्र वस्तु होगी, उसका पढ़ना या समझना टेढ़ी खीर होगी। पर नई लिपि के ग्रहण करने में जो लाभ हैं उनके मुक़ाबिले में उक्त हानि का कोई अस्तित्व नहीं है। अन्त में यह भी जतला देना उचित है कि अरबी-लिपि के जो दोष ऊपर दिखाये गये हैं वे सबके सब उर्दू-लिपि पर भी लागू हैं, जिसकी आधार-शिला अरबी-लिपि ही है।

—महेशप्रसाद

६—काव्यालङ्कारों की उपयोगिता

अलङ्कारिक विद्वानों ने काव्यालङ्कारों का प्रणयन बड़ी युक्ति और ख़ूबी से किया है। इसी से कवियों ने अपने काव्य में अलङ्कारों को ऊँचा स्थान दिया है और अब भी दिया जाता है। लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि क्या अलङ्कारों के बिना काव्य नहीं हो सकता, दुनिया को काव्यालङ्कारों से क्या फ़ायदा और कवि-समुदाय काव्यालङ्कारों के पीछे क्यों व्यर्थ ही अपनी कुशाग्र बुद्धि कुण्ठित करता है उनसे उनका कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है? अलङ्कारों के विषय में ऐसे ही अनेकानेक आक्षेप किये जाते हैं। पर असल में काव्यालङ्कारों को लोक में इतनी धाक जम गई है कि बोलचाल में भी वे प्रयुक्त किये जाते हैं। चिट्ठी-पत्री भी उनसे ख़ाली नहीं रहती है। वास्तव में उनकी अपनी उपयोगिता होती है। और व्यङ्ग्य-कथन के लिए तो उनकी परख और भी आवश्यक है।

नहिं पराग नहिं मधुर रस नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही में फस्यौ आगे कौन हवाल॥

इस समासोक्ति की उपयोगिता इतिहास-सिद्ध है। यही बात बिहारी लट्ठमार भाषा में कहते तो शायद उन्हें कारागार की हवा खानी पड़ती। बिहारी कवि थे, अतएव उन्होंने अलि-कलिका की समासोक्ति से काम लिया। ऐसे मौक़े जीवन में आते ही रहते हैं जब सीधी बात घुमा-फिराकर कहनी पड़ती है ऐसे ही मौक़ों के लिए समासोक्ति अलङ्कार अपना महत्त्व प्रकट करता है।

कोऽत्र भूमिवलये जनान्
मुधा तापयन् सुचिरमेति संपदम्।
वेदयन्निति दिनेन भानुमा-
नाससाद चरमाचलं ततः॥

संसार में कोई भी मनुष्य किसी को तकलीफ़ देता हुआ सुचिर स्थिर नहीं हो सका, यह बात यथार्थ है—प्रत्यक्ष है। सूर्य-सदृश कितने ही राजा प्रजापीड़न से अस्त हो गये। सूर्य का अस्ताचल-गमन ऐसे लोगों के लिए प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करता है। जो राजा प्रजा को दुःख देता है उसको इससे शिक्षा लेनी चाहिए। उद्दण्ड प्रकृति को शान्त बनाने के लिए यह निदर्शना अमृत-वटी है। निदर्शना अलङ्कार की इससे बढ़कर और उपयोगिता क्या हो सकती है?

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
पर्यायमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

यदि मनुष्य किसी कार्य को सन्देहयुक्त देखता है, सशङ्कित दृष्टि से देखता है तो वह यह निर्णय करने में समर्थ नहीं होता कि क्या करना चाहिए। विशेषकर उस समय जब कि किसी से राय लेने की गुञ्जायश न हो अथवा वह कार्य राय लेने में प्रकट करने के लायक़ न हो। उस समय उसकी बुद्धि कृतनिश्चय नहीं होती। वह व्यग्र हो उठता है, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, जिस प्रकार कि राजा दुष्यन्त मूढ़धी हो गये थे।

उस वक्त—सज्जनों को सन्देह उपस्थित होने पर उनका अन्तःकरण ही प्रमाण होता है—यह अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार उसको उचित कार्य में तत्पर करता है। उस हताश को जीने की आशा हो जाती है, उन्माद-रोग से छुटकारा पा जाता है। इतना गुण इस अर्थान्तर न्यास में होते हुए हम कैसे कह सकते हैं कि अलङ्कार व्यर्थ हैं।

सौजन्याम्बु मरुस्थली सुजनता
लेख्यद्युभित्तिर्गुण-
ज्योत्स्ना कृष्णचतुर्दशी सरलता
योगश्च पुच्छच्छटा।
यैरेषाऽपि दुराशया कलियुगे
राजावली सेविता
तेषां शूलिनि भक्तिमात्र सुलभे
सेवा कियत्कौशलम्।

राज-सेवा से निर्विण्ण व्यक्ति के लिए यह रूपक है, किन्तु आजकल तो मामूली से मामूली व्यक्ति भी यदि वह रुपये-पैसे से खुशहाल है या पूँजीपति है, यदि उसके दो-चार नौकर हैं तो वह उनके नाक में दम कर देता है। बेचारे ग़रीब नौकर अपने मालिक से बड़ी बड़ी आशायें करते हैं, बड़ी तत्परता से उसका काम करते हैं, यदि मालिक दिन को रात या रात को दिन कहे तो—यह जानते हुए कि मालिक का ग़लत ख़याल है—ज़रूर 'हाँ' कहेंगे। पर यदि मालिक से अपने पेट की कथा कहें तो अवश्य निकाल दिये जावें। ऐसे नौकरों को सहसा राजावली (धनिक) का रूपक याद आ जाता है। वह एकाएक सोचने लगता है—अरे राजावली [धनिक-समूह (ललचाया)] सौजन्य जल की मरुस्थली है। सुजनता चित्र की आकाशीय दीवाल है। गुणरूपी ज्योत्स्ना के लिए कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है, सिधाई के लिए कुत्ते की पूँछ (प्रसिद्ध है कि कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती) है। ऐसी राजावली की जिन्होंने सेवा की है उनको भला भगवान् शिव की सेवा में कौनसी कठिनाई है।

यह मालारूपक अपने रङ्गबाज़ मालिक से ऊबे हुए मनुष्य की इज़्ज़त रखता है, उसको भगवान् में विश्वास दिलाता है और ईश्वर के ऊपर निर्भर रहने के लिए कटिबद्ध करता है। क्या यह रूपक की उपयोगिता मान्य नहीं है?

वक्त्राम्भोजं सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते।
बाहुः काकुस्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः॥
वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपि भवतो नैवमुञ्चत्यभीक्ष्णम्।
स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते तेऽम्बुपानाभिलाषः॥

श्लेषालङ्कार भी बड़ा उपयोगी है। विक्रमादित्य राजा ने पानी माँगा। पानी किसी नौकर—मामूली नौकर—से माँगा होगा न कि राज-प्रतिनिधि या किसी बड़े गवनर से। यदि श्लेषालङ्कार न होता तो उसकी हिम्मत न पड़ती कि—कथमवनिपते तेऽम्बु पानाभिलाषः—कहे।

प्रकरणार्थ से तुम्हारे मुँह में सरस्वती रहती है। तुम्हारा ओष्ठ लाल है। तुम्हारा बाहु उदार (दाता) है तथा अङ्गुलीयक-युक्त है। सेनाएँ तुम्हें घेरे रहती हैं, तुम्हारा मन स्वच्छ है। लेकिन बिना श्लिष्ट के चतुर्थ चरणार्ध की सङ्गति—तुम्हें पानी पीने की इच्छा क्यों हुई—किसी प्रकार नहीं होती; लेकिन सरस्वती नदी, सोन-नद, दक्षिण-समुद्र, मानसरोवर की स्थिति में—पानी के बड़े बड़े नद-नदी तथा समुद्र के पास होते हुए—पानी की इच्छा अवश्य आश्चर्यकारी है। अगर बड़े से बड़े को भी यदि कुछ कहना है तो श्लिष्ट से कहा जा सकता है और कहनेवाले को कोई बुरा भी नहीं कह सकता; परन्तु छोटी से छोटी अप्रिय बात श्लिष्ट नहीं है तो उसका कहना अनुपयुक्त है। श्लेषालङ्कार की सृष्टि ऐसे ही मौक़ों के लिए हुई है।

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान्
वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे।
बद्धुमिच्छति वने मदोत्कटं
हस्तिनं कमल-नाल-तन्तुना॥

जो पुरुष व्याकरण के विना जाने हुए सभा में बोलना चाहता है वह वन में उन्मत्त हाथी को कमल-नाल-तन्तु से बाँधना चाहता है। जिस प्रकार कमल-नाल-तन्तु से हाथी बाँधा जाता है उसी प्रकार सभा में विना व्याकरण-ज्ञान के बोलना असंभव है। अवैयाकरण हज़ारों ग़लतियाँ करेगा, भयभीत होगा, विद्वत्समाज में उसकी हँसी होगी, इसलिए सभा में बोलने की इच्छा की भी मुमानियत है। बात बहुत सच्ची है। निदर्शनालङ्कार का उपयोग इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

यहाँ अलङ्कारों की उपयोगिता का दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है। सभी अलङ्कारों का उपयोग दिखलाने से एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जायगी।

काव्यालङ्कार लौकिकालङ्कारों की तरह नहीं है। शब्दार्थ-ज्ञान के अतिरिक्त इनमें दार्शनिक निष्कर्ष (विशेषकर न्यायशास्त्र) का रहस्य भी भरा हुआ है। उन निष्कर्षों में साहित्यिक फेरफार भी है। इसलिए इन अलङ्कारों के जानने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। सहृदयता तथा काव्यभावना की बुद्धि परिपक्व हुए विना पद्यों में इनकी स्थिति नहीं समझी जा सकती।

आशा है, साहित्यरसिक इनकी मार्मिकता से अवगत होकर इनके महत्त्व का अपनी रचनाओं-द्वारा प्रतिपादन कर अपने साहित्य को इनसे अलङ्कृत करेंगे।

—मुनीश्वर पाठक

७—बैंक ऑव् इँग्लेंड का इतिहास

यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि "बैंक ऑव् इँग्लेंड" जैसी अन्तर्राष्ट्रीय और विश्वस्त संस्था का सूत्रपात एक जुआरी विलियम पेटर्सन-द्वारा हुआ था।

पेटर्सन को सिवा अपने लाभ के और किसी बात की परवा न थी। इसने अपने देश स्काटलेंड को बड़ी कठिनाई में फँसा दिया था। युवावस्था में इसने पनामा-डमरुमध्य के पास जानेवाले जहाज़ों में लूटमार मचाई थी। पीछे यह स्काटलेंड लौट आया। इसका विश्वास था कि प्रयत्न करने से पनामा में बहुत धन पैदा किया जा सकता है। इसने स्काटलेंड लौटने पर एक 'स्कीम' के अनुसार काम शुरू किया। स्काटलेंड के धनी लोगों से इसने ख़ूब पैसे पैदा किये, और दलबल के साथ धनोपार्जन के लिए यह पनामा को गया। पर इसकी 'स्कीम' एक-दम असफल हुई और स्काटलेंड की आर्थिक दशा इसके फलस्वरूप बहुत बिगड़ गई।

हार खाने पर भी इसने हार न मानी और स्काटलेण्ड छोड़ इँग्लेंड में अपनी क़िस्मत आज़माने आया। यहाँ इसने जो 'स्कीम' उपस्थित की उस पर उस समय के 'चान्सेलर ऑव् दि एक्सचेकर' मान्टेगू मुग्ध हो गये।

इँग्लेंड के इतिहास में यह ज़माना बहुत ही बुरा था। १६६८ में स्टुअर्ट-वंश का अन्तिम राजा जेम्स (द्वितीय) पदच्युत कर दिया गया था, और उसने भाग कर फ़्रांस के राजा के पास शरण ली थी। और जेम्स की लड़की एनी, उसके पति विलियम, पार्लियामेंट की सलाह के मुताबिक़ शासन करते थे।

अब विलियम को चारों ओर से शत्रुओं का सामना करना पड़ा। स्टुअर्ट-वंश को स्काटलेंड-वाले चाहते थे, अतः उन लोगों ने जेम्स की तरफ़ से बलवा शुरू किया। इधर फ़्रांस का राजा चौद-हवाँ लुई जिसकी शरण में जेम्स भाग गया था, इँग्लेंड के विरुद्ध खड़ा हुआ।

फ़्रांस से लड़ने के लिए विलियम को धन की आवश्यकता पड़ी। लंदन के व्यापारी क़र्ज़ तो देना चाहते थे, पर बहुत ही ऊँचे सूद की दर पर। इसी समय विलियम पेटर्सन ने अपनी 'स्कीम' पेश की। उसने कहा कि मुझे एक 'कम्पनी' खोलने की आज्ञा दी जाय, और मुझे सोना-चाँदी आदि में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने की अनुमति दी जाय, जिससे मैं सरकार को आठ पौंड सैकड़ा सूद पर रुपया क़र्ज़ दे सकूँ।

एक 'चार्टर' निकाला गया, जिससे पैटर्सन को कम्पनी खोलने का अधिकार दिया गया। पैटर्सन ने १२,००,००० पौंड की पूँजी के शेयर बेचकर जमा इकट्ठा की और युद्ध के लिए सरकार को रुपया दिया।

तीन वर्ष के बाद सुलहनामे पर हस्ताक्षर हुआ। इसमें लुई को यह स्वीकार करना पड़ा कि विलियम इँग्लेंड का राजा है।

इस सन्धि का फल यह भी हुआ कि पार्लियामेंट के द्वारा चुने हुए राजा की शक्ति स्वीकार की गई, साथ ही इससे उस कम्पनी की नींव मज़बूत हो गई और १६९४ में उसी का नाम 'बैंक आव् इँग्लेंड' पड़ा। पर इस संस्था की उन्नति राष्ट्रीय धन के व्यय आदि के सम्बन्ध में बढ़ता हुआ अधिकार बहुत लोगों को अखरता था, ख़ासकर उन पूँजीवालों को जो ऊँचे सूद की दर पर रुपया लगाया करते थे। उन लोगों ने इसका विरोध शुरू किया। पर सरकार की सहायता के कारण यह संस्था दिनोंदिन उन्नति करती गई।

फिर भी इसके जीवन के पहले पचास वर्षों में इस पर तीन बड़ी बड़ी आफ़तें आईं। १७१५ का 'स्टुअर्ट विद्रोह' सबसे प्रथम था। द्वितीय जेम्स का पुत्र स्काटलेंड आया और वहाँ लड़ाई की तैयारी शुरू की। यद्यपि यह विद्रोह बहुत ही मामूली था, फिर भी इससे लंदन में हलचल मच गई और यदि सरकार सहायता न करती तो बैंक का दिवाला निकल जाता।

दूसरी विपत्ति इससे कहीं अधिक भयङ्कर थी। १७११ में एक कम्पनी दक्षिण-अमरीका और दक्षिणी समुद्र में व्यापार करने के लिए खोली गई थी। १७२० तक इस कम्पनी की काफ़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी। इसी समय तरह तरह की अफ़वाहें—दक्षिणी समुद्र के सम्बन्ध में सुनाई पड़ने लगीं। लोगों ने समझा कि उधर असीमित धन उपार्जन किया जा सकता है। जनता का यह अन्ध-विश्वास देखकर ढोंगी कम्पनियाँ खुलने लगीं। लोग आँख मूँद-मूँदकर ऐसी कम्पनियों में अपना रुपया लगाने लगे। यह देखकर सरकार ने ढोंगी कम्पनियों को दबाना शुरू किया और ८६ कम्पनियाँ बन्द हो गईं। लंदन भर में तहलक़ा मच गया। असली कम्पनियों से भी लोगों का विश्वास उठ गया। पर इस बार भी बैंक बड़ी चेष्टा करके सँभल गया।

तीसरी विपत्ति १७४५ में आई जब स्टुअर्ट-वंशीय कुमार चार्ली स्काटलेंडवालों की सहायता से इँग्लेंड पर चढ़ाई करने के लिए डर्बी तक बढ़ आया। लंदन में खलबली मच गई। फ्रांस में युद्ध करने के लिए अँगरेज़ी सेना बाहर चली गई थी। राजा भागने के लिए तैयार बैठे थे और लोग अपना धन बैंक से निकालने के लिए व्याकुल हो रहे थे।

इस समय बैंक के डाइरेक्टरों ने बड़ी होशियारी से काम लिया। उन लोगों ने कुछ मज़बूत आदमियों को बैंक से बड़ी बड़ी रक़में निकालने के लिए नियुक्त किया। इन लोगों को छः पेंस के सिक्के दिये जाने लगे, जिससे एक आदमी को पूरी रक़म देने में ही बहुत समय लग जाय। इनके पीछे लोग व्याकुल खड़े थे, पर जहाँ चेक भुनाया जाता था वहाँ तक पहुँच नहीं पाते थे। यही हालत तीन दिन तक रही। तीसरे दिन चार्ल्स कुलोडेन में हरा दिया गया। जनता शान्त हो गई। इसके बाद से यह बैंक केवल राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था हो रहा है। इस पर अब भी बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं। गत युद्ध के समय में इस बैंक पर कई विपत्तियाँ आईं। हाल में ही संसार की आर्थिक सङ्कट के कारण और फ्रांस और अमेरिका की आर्थिक नीति के कारण इसे एक बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा, जिसके कारण इँग्लेंड को गोल्ड स्टैंडर्ड छोड़ना पड़ा है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि बैंक आव् इँग्लेंड की नींव पर धक्का पहुँचना असम्भव है—कम से कम जब तक इँग्लेंड के साम्यवादियों की शक्ति के

कारण वर्तमान बैंक-प्रणाली ही न ध्वंस हो जाय या इँग्लेंड की स्वतन्त्रता न छिन जाय।

—लक्ष्मीकान्त झा

८—शिकार

शिकार खेलने की प्रथा बहुत प्राचीन है। जो लोग मांसाहारी नहीं हैं वे भी सिंह, बाघ और चीता आदि हिंस्र जन्तुओं के शिकार को बुरा नहीं समझते। रामायण और महाभारत आदि प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों में मृगया का उल्लेख मिलता है। आखेट में मनोरञ्जन के साथ-साथ जहाँ व्यायाम होता है, वहाँ साहसिक कार्यों के करने की शक्ति भी बढ़ती है।

कल-कारखानों और रेल-मोटर के प्रचार से अब सिंह, चीता, बाघ, हाथी और रीछ आदि जन्तु बस्तियों से बहुत दूर चले गये हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली के इर्द-गिर्द पचास मील के अन्दर इस प्रकार के शिकार का मिलना कठिन है। परन्तु देशी रजवाड़ों में अभी कल-कारखानों का उतना प्रचार नहीं है। वहाँ मोटर और रेल की सड़कों का जाल भी कम ही फैला है। इसलिए वहाँ अब तक भी घने जङ्गल हैं और उनमें शिकार की बहुतायत है। इस समय शेर जूनागढ़-राज्य में और जङ्गली हाथी मैसूर में ही मिलते हैं। राजा और नवाब लोग अँगरेज़ अफ़सरों को प्रसन्न करने के लिए अपने यहाँ शिकार खेलाने के लिए निमन्त्रित करते हैं। इकट्ठे शिकार खेलने से तकल्लुफ़ दूर होकर घनिष्ठता बढ़ जाती है।

वन का राजा निस्सन्देह शेर ही है। यह शेर ववर से भी अधिक मक्कार और अधिक उग्र होता है। चुस्ती और मज़बूती में भी उससे कम नहीं। शेर को मारने की दो विधियाँ हैं। एक विधि तो यह है कि एक विशेष रूप से ऊँचा मचान बनाया जाता है। उसके निकट ही बकरी आदि कोई पशु बाँध दिया जाता है। रात को जब शेर उसे खाने आता है तब शिकारी मचान पर से उस पर गोली चलाता है। दूसरी विधि यह है कि लोग एक विशेष ढङ्ग से शेर को ससकारकर जङ्गल के एक खुले स्थान में ले आते हैं। वहाँ शिकारी हाथियों पर बैठे हुए दिन के समय उसे बंदूक़ का निशाना बनाते हैं।

शिकारी लोग पहली विधि को उतना पसन्द नहीं करते। यह विधि तो बस्ती के आस-पास से चीतों और बाघों के भगाने के लिए ही उपयुक्त समझी जाती है। दूसरी विधि हाथी पर से दिन के समय शेर को गोली से मारना सब प्रकार से अच्छी है। इस में शिकारी की वीरता भी देखी जाती है।

राजा लोग जब हाथी पर सवार होकर शेर का शिकार खेलने जाते हैं तब उनके साथ बहुत से सशस्त्र सिपाही और झाड़ियों को हिलाकर शेर को हाँकने वाले एक विशेष जाति के मनुष्य भी रहते हैं। ये लोग शिकारी कहलाते हैं। कई पीढ़ियों से ये यही काम करते हैं। इनको शेर के स्वभावों का पैतृक ज्ञान रहता है। शेर जब रात की मार के बाद सवेरे वापस आता है तब ये उसका ध्यान रखते हैं। इनके हाथ में लम्बी लम्बी लाठियाँ होती हैं। लाठी के सिरे पर भाला लगाने के लिए जगह बनी होती है, ताकि झाड़ियों को हिला कर शेर को आगे हाँकते समय यदि वह किसी मनुष्य पर आक्रमण कर दे तो इस भाले से रोका जा सके। शेर जब गोली खाकर भाग जाता है तब हाथी पर चढ़ कर ही उसके पास पहुँचते हैं।

शिकार के घने जङ्गल बड़े बड़े टुकड़ों में बँटे रहते हैं। इनके बीच बड़े चौड़े रास्ते बने होते हैं। एक रास्ता कोई पचास गज़ चौड़ा होता है और पर्वत के पैर से आरम्भ होकर उसकी पीठ तक चला जाता है। जङ्गल से लकड़ी और घास इन्हीं मार्गों से काट कर लाई जाती है। ये मार्ग शेरों को एक जङ्गल से हाँक कर दूसरे जङ्गल में ले जाने में भी काम देते हैं। इस मार्ग को पार करते समय ही शेर पर गोली चलाई जा सकती है। घने जङ्गल में, वृक्षों की ओट के कारण निशाना लगाना कठिन होता

है। शिकारी लोग शेर को ससकारकर इन खुले रास्तों में ले आते हैं। तब राजा लोग हाथी पर से उस पर गोली चलाते हैं। शेर को हाँकने के लिए सबसे अच्छा समय दिन का तीसरा पहर होता है।

हाथी ऐसे सधे होते हैं कि वे शेर के झुँझला-कर आक्रमण करने पर भी अपने स्थान से नहीं हिलते। प्रत्येक हाथी पर महावत के अतिरिक्त तीन चार बन्दूक़वाले मनुष्य भी रहते हैं।

रात को पेट भर खाने के बाद दिन में सोये हुए शेर को जगाने से वह क्या कुछ नहीं कर डालेगा? यह कहना कठिन है। शेर इस खुले मार्ग को पार करते समय घुड़-दौड़ के घोड़े के समान सरपट दौड़ता है। परन्तु उसको गोली की मार में लाना आवश्यक है। इसलिए इसके भाग निकलने के मार्गों को परिमित बनाने के लिए एक निराला उपाय किया जाता है।

लकड़ी के आदमी बनाकर—उनके सिर पर पगड़ी, गले में कमीज़ और नीचे पायजामा पहना-कर—इस खुले रास्ते के साथ-साथ एक पंक्ति में गाड़ दिये जाते हैं। कहते हैं, एक बार एक शेर ने, इन को सचमुच का आदमी समझ कर, इन पर आक्रमण कर दिया था। पर उनको अचल खड़ा देख कर वह डरकर पीछे भाग आया था।

शिकारी लोग इन बनावटी आदमियों को बड़े चुपके से गाड़ते हैं, क्योंकि ज़रा सी भी आहट होने पर 'धारियोंवाले जन्तु' को संदेह हो जाता है और वह चट पहाड़ के ऊपर भाग जाता है।

शिकारी लोग जब शेर को हाँकने लगते हैं तब बिगुल का एक शब्द किया जाता है। ससकारते समय अवस्थाओं के अनुसार कभी तो शिकारी बिलकुल चुपचाप रहते हैं और कभी शोर करते हैं। शेर का शिकार करते समय कभी कभी लकड़बग्घे और साँभर आदि दूसरे जन्तु भी निकल आते हैं।

शेर का सबसे कमज़ोर भाग उसके कन्धे होते हैं। यहीं गोली का घातक घाव लगता है। घायल होकर शेर कभी कभी इतने ज़ोर से आक्रमण करता है कि वह उछल कर हाथी के हौदे पर पहुँच जाता है। शेर के आक्रमण करने पर हाथी भय से चिंघाड़ने लगता है। गोली खाते ही शेर वहीं गिर नहीं पड़ता। मरकर गिरने से पहले वह पाँच पाँच गोलियाँ खाकर भी कई गज़ तक भाग जाता है।

कई लोग अहङ्कार से पैदल शेर पर गोली चलाने की डींग हाँका करते हैं। पर घने जङ्गल में पैदल शेर पर गोली चलाना पागलपन से कम नहीं है। जब तक शेर के ठीक हृदय या मस्तिष्क में गोली न लगे वह सीधा गोली चलानेवाले पर झपटता है और प्रायः बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसके दाँतों और पंजों के घाव सदा सड़ जाते हैं। वे आसानी से चङ्गे नहीं होते।

शेर और चीता बिल्ली की जाति के जन्तु हैं। वे अपना ही मारा हुआ शिकार खाते हैं। जिस बैल को शेर आज मारता है उसे वह सारा का सारा आज ही नहीं खा लेता। उसका कुछ भाग कल रात के लिए भी छोड़ देता है। इसलिए उस मारे हुए बैल के निकट किसी वृक्ष पर मचान बनाया जाता है। रात को जब शेर उस बैल के अवशिष्टांश को खाने आता है तब मचान पर से वह गोली का निशाना बनाया जाता है। इस मतलब के लिए शिकारी जङ्गल में किसी जगह एक बैल या बकरी बाँध देते हैं। जब शेर उसे खाने आता है तब वे उसका शिकार करते हैं।

कई मचान स्थायी होते हैं। वे मीनार के सदृश पत्थर के बनाये जाते हैं। पर अब ऊँचे मचान न बनाकर भूमि ही पर लोहे के मज़बूत तार के पिंजरे बनाये जाते हैं, ये झाड़ियों से ढँक दिये जाते हैं। शेर को फँसाने के लिए बाँधे हुए बैल के ऊपर मध्यम सा प्रकाश लटका दिया जाता है। जब तक यह प्रकाश बहुत ही तेज़ न हो ये मांसाहारी जन्तु उसकी कुछ परवा नहीं करते। एक बार खाना शुरू कर देने पर फिर चाहे उस बिजली के प्रकाश को—यदि यह

बिजली का प्रकाश हो—कितना भी तेज़ कर दो, ये जन्तु डरते नहीं। इस प्रकाश की सहायता से निशान बाँधने में बड़ी आसानी रहती है।

बिल्ली की जाति के जन्तुओं की सँघने की शक्ति उतनी तेज़ नहीं होती, परन्तु इनकी सुनने की शक्ति आश्चर्यजनक है। तनिक सी आहट, खाँसी, या काना-फूसी से ही शेर या चीता दूर भाग जाता है और फिर सारी रात वहाँ नहीं आता। ये हिंस्र जन्तु बड़े चुपके से अपने शिकार के इर्द-गिर्द रेंगते हैं। फिर धीरे-धीरे पीछे से जाकर उस पर झपटते और एक ही बार पञ्जा मारकर उसका काम तमाम कर देते हैं। पशु को मार डालने के बाद बाघ (panther) लौट आता है और फिर किसी दूसरे समय उसे खाने जाता है। इस समय यदि बाघ शिकारी की गोली से घायल हो जाय, तो शिकारी को दिन चढ़ने से पहले अपने मचान या पिंजरे को छोड़ने का साहस नहीं करना चाहिए। जिस समय घायल बाघ निकट ही खुला फिर रहा हो, उस समय अँधेरे में मचान से नीचे उतर कर जङ्गल में चलना मानो मृत्यु का आह्वान करना है।

एक बार एक शेर घायल होकर एक पेड़ पर चढ़ गया था और वहाँ से उसने मचान में बैठे हुए शिकारी को नीचे घसीटकर मार डाला था। घायल चीता कभी-कभी पिंजरे पर भी चढ़ जाता है और गोली चलाने के सूराख़ों में पञ्जे डाल कर शिकारी पर आक्रमण करता है। फिर भी पिंजरा मचान से अच्छा है।

अन्धकारमय निस्तब्ध वन में चुपचाप बैठकर इन भीषण जन्तुओं के आने की प्रतीक्षा करना बड़ा रोमाञ्चकारी होता है। पिंजरे में बन्द बाघ एक लम्बा चौड़ा जन्तु देख पड़ता है। पर जङ्गल में उसके पीले और काले धब्बे उसके इर्द-गिर्द की चीज़ों के साथ पूर्णरूप से मिल जाते हैं। वृक्षों के घने पत्तों में से छनकर पड़नेवाले सूर्य के प्रकाश के कारण उसका पहचानना और भी कठिन हो जाता है।

अब एक दूसरे प्रकार के शिकार का हाल सुनिए। मगर भारत की नदियों में बहुत पाया जाता है। जो भी जन्तु या मनुष्य इसके पञ्जे में फँस जाय यह उसे घसीटकर पानी में ले जाता है। प्रतिवर्ष बीसियों स्त्रियाँ और बच्चे, नदियों में नहाते हुए, बड़े बड़े घड़ियालों का ग्रास बनते हैं। यह हिंस्र जन्तु अपनी मज़बूत पूँछ की लपेट से अपने आखेट को पानी में गिरा देता है। फिर उसका हाथ या पैर पकड़कर उसे पानी के नीचे घसीट ले जाता है। जब वह डूब-कर मर जाता है तब यह उसे फ़ुर्सत के वक़्त निगल जाता है।

मगर दोपहर के समय नदी से निकलकर किनारे की रेत पर धूप तापने आता है। तब शिकारी हाथ में बन्दूक़ लिये चुपचाप रेंगता हुआ, सावधानी के साथ, पानी के किनारे पर जा पहुँचता है और जहाँ मगर का सिर धड़ से मिलता है वहाँ ताककर गोली मारता है। मगर की यही जगह सबसे कमज़ोर होती है।

गोली खाकर मगर अनेक बार नदी में भाग जाता है। फिर इसका पकड़ना कठिन होता है। नदियों के किनारे एक विशेष जाति के लोग रहते हैं। वे मगरों से बिलकुल नहीं डरते। वे लङ्गोटी पहन कर, हाथ में बाँस लिये, घड़ियालों से भरी हुई नदी में घुस जाते हैं, और जहाँ पानी में से ऊपर को लहू निकलता दीखता है वहाँ बाँस से टटोलकर डुबकी लगाते हैं और घायल जन्तु को किनारे पर घसीट लाते हैं। कहते हैं, इन लोगों के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। इससे मगर इनको नहीं खाता।

जङ्गली सूअर बड़ा भयानक जन्तु है। घायल हो जाने पर यह शिकारी पर बहुत बुरी तरह से आक्र-मण करता है। यह सवार के घोड़े की टाँगों को अपने मज़बूत और तीक्ष्ण दाँतों से चीरकर उसे गिरा देता है। तब शिकारी का बचना कठिन हो जाता है। इस समय शिकारी के लिए प्राण-रक्षा

है। शिकारी लोग शेर को ससकारकर इन खुले रास्तों में ले आते हैं। तब राजा लोग हाथी पर से उस पर गोली चलाते हैं। शेर को हाँकने के लिए सबसे अच्छा समय दिन का तीसरा पहर होता है।

हाथी ऐसे सधे होते हैं कि वे शेर के झुँझलाकर आक्रमण करने पर भी अपने स्थान से नहीं हिलते। प्रत्येक हाथी पर महावत के अतिरिक्त तीन चार बन्दूक़वाले मनुष्य भी रहते हैं।

रात को पेट भर खाने के बाद दिन में सोये हुए शेर को जगाने से वह क्या कुछ नहीं कर डालेगा? यह कहना कठिन है। शेर इस खुले मार्ग को पार करते समय घुड़-दौड़ के घोड़े के समान सरपट दौड़ता है। परन्तु उसको गोली की मार में लाना आवश्यक है। इसलिए इसके भाग निकलने के मार्गों को परिमित बनाने के लिए एक निराला उपाय किया जाता है।

लकड़ी के आदमी बनाकर—उनके सिर पर पगड़ी, गले में कमीज़ और नीचे पायजामा पहनाकर—इस खुले रास्ते के साथ-साथ एक पंक्ति में गाड़ दिये जाते हैं। कहते हैं, एक बार एक शेर ने, इन को सचमुच का आदमी समझ कर, इन पर आक्रमण कर दिया था। पर उनको अचल खड़ा देख कर वह डरकर पीछे भाग आया था।

शिकारी लोग इन बनावटी आदमियों को बड़े चुपके से गाड़ते हैं, क्योंकि ज़रा सी भी आहट होने पर 'धारियोंवाले जन्तु' को संदेह हो जाता है और वह चट पहाड़ के ऊपर भाग जाता है।

शिकारी लोग जब शेर को हाँकने लगते हैं तब बिगुल का एक शब्द किया जाता है। ससकारते समय अवस्थाओं के अनुसार कभी तो शिकारी बिलकुल चुपचाप रहते हैं और कभी शोर करते हैं। शेर का शिकार करते समय कभी कभी लकड़बग्घे और साँभर आदि दूसरे जन्तु भी निकल आते हैं।

शेर का सबसे कमज़ोर भाग उसके कन्धे होते हैं। यहीं गोली का घातक घाव लगता है। घायल होकर शेर कभी कभी इतने ज़ोर से आक्रमण करता है कि वह उछल कर हाथी के हौदे पर पहुँच जाता है। शेर के आक्रमण करने पर हाथी भय से चिंघाड़ने लगता है। गोली खाते ही शेर वहीं गिर नहीं पड़ता। मरकर गिरने से पहले वह पाँच पाँच गोलियाँ खाकर भी कई गज़ तक भाग जाता है।

कई लोग अहङ्कार से पैदल शेर पर गोली चलाने की डींग हाँका करते हैं। पर घने जङ्गल में पैदल शेर पर गोली चलाना पागलपन से कम नहीं है। जब तक शेर के ठीक हृदय या मस्तिष्क में गोली न लगे वह सीधा गोली चलानेवाले पर झपटता है और प्रायः बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसके दाँतों और पंजों के घाव सदा सड़ जाते हैं। वे आसानी से चङ्गे नहीं होते।

शेर और चीता बिल्ली की जाति के जन्तु हैं। वे अपना ही मारा हुआ शिकार खाते हैं। जिस बैल को शेर आज मारता है उसे वह सारा का सारा आज ही नहीं खा लेता। उसका कुछ भाग कल रात के लिए भी छोड़ देता है। इसलिए उस मारे हुए बैल के निकट किसी वृक्ष पर मचान बनाया जाता है। रात को जब शेर उस बैल के अवशिष्टांश को खाने आता है तब मचान पर से वह गोली का निशाना बनाया जाता है। इस मतलब के लिए शिकारी जङ्गल में किसी जगह एक बैल या बकरी बाँध देते हैं। जब शेर उसे खाने आता है तब वे उसका शिकार करते हैं।

कई मचान स्थायी होते हैं। वे मीनार के सदृश पत्थर के बनाये जाते हैं। पर अब ऊँचे मचान न बनाकर भूमि ही पर लोहे के मज़बूत तार के पिंजरे बनाये जाते हैं, ये झाड़ियों से ढँक दिये जाते हैं। शेर को फँसाने के लिए बाँधे हुए बैल के ऊपर मध्यम सा प्रकाश लटका दिया जाता है। जब तक यह प्रकाश बहुत ही तेज़ न हो ये मांसाहारी जन्तु उसकी कुछ परवा नहीं करते। एक बार खाना शुरू कर देने पर फिर चाहे उस बिजली के प्रकाश को—यदि यह

बिजली का प्रकाश हो—कितना भी तेज़ कर दो, ये जन्तु डरते नहीं। इस प्रकाश की सहायता से निशान बाँधने में बड़ी आसानी रहती है।

बिल्ली की जाति के जन्तुओं की सँघने की शक्ति उतनी तेज़ नहीं होती, परन्तु इनकी सुनने की शक्ति आश्चर्यजनक है। तनिक सी आहट, खाँसी, या काना-फूसी से ही शेर या चीता दूर भाग जाता है और फिर सारी रात वहाँ नहीं आता। ये हिंस्र जन्तु बड़े चुपके से अपने शिकार के इर्द-गिर्द रेंगते हैं। फिर धीरे-धीरे पीछे से जाकर उस पर झपटते और एक ही बार पञ्जा मारकर उसका काम तमाम कर देते हैं। पशु को मार डालने के बाद बाघ (panther) लौट आता है और फिर किसी दूसरे समय उसे खाने जाता है। इस समय यदि बाघ शिकारी की गोली से घायल हो जाय, तो शिकारी को दिन चढ़ने से पहले अपने मचान या पिंजरे को छोड़ने का साहस नहीं करना चाहिए। जिस समय घायल बाघ निकट ही खुला फिर रहा हो, उस समय अँधेरे में मचान से नीचे उतर कर जङ्गल में चलना मानो मृत्यु का आह्वान करना है।

एक बार एक शेर घायल होकर एक पेड़ पर चढ़ गया था और वहाँ से उसने मचान में बैठे हुए शिकारी को नीचे घसीटकर मार डाला था। घायल चीता कभी-कभी पिंजरे पर भी चढ़ जाता है और गोली चलाने के सूराख़ों में पञ्जे डाल कर शिकारी पर आक्रमण करता है। फिर भी पिंजरा मचान से अच्छा है।

अन्धकारमय निस्तब्ध वन में चुपचाप बैठकर इन भीषण जन्तुओं के आने की प्रतीक्षा करना बड़ा रोमाञ्चकारी होता है। पिंजरे में बन्द बाघ एक लम्बा चौड़ा जन्तु देख पड़ता है। पर जङ्गल में उसके पीले और काले धब्बे उसके इर्द-गिर्द की चीज़ों के साथ पूर्णरूप से मिल जाते हैं। वृक्षों के घने पत्तों में से छनकर पड़नेवाले सूर्य के प्रकाश के कारण उसका पहचानना और भी कठिन हो जाता है।

अब एक दूसरे प्रकार के शिकार का हाल सुनिए। मगर भारत की नदियों में बहुत पाया जाता है। जो भी जन्तु या मनुष्य इसके पञ्जे में फँस जाय यह उसे घसीटकर पानी में ले जाता है। प्रतिवर्ष बीसियों स्त्रियाँ और बच्चे, नदियों में नहाते हुए, बड़े बड़े घड़ियालों का ग्रास बनते हैं। यह हिंस्र जन्तु अपनी मज़बूत पूँछ की लपेट से अपने आखेट को पानी में गिरा देता है। फिर उसका हाथ या पैर पकड़कर उसे पानी के नीचे घसीट ले जाता है। जब वह डूब-कर मर जाता है तब यह उसे फ़ुर्सत के वक़्त निगल जाता है।

मगर दोपहर के समय नदी से निकलकर किनारे की रेत पर धूप तापने आता है। तब शिकारी हाथ में बन्दूक़ लिये चुपचाप रेंगता हुआ, सावधानी के साथ, पानी के किनारे पर जा पहुँचता है और जहाँ मगर का सिर धड़ से मिलता है वहाँ ताककर गोली मारता है। मगर की यही जगह सबसे कमज़ोर होती है।

गोली खाकर मगर अनेक बार नदी में भाग जाता है। फिर इसका पकड़ना कठिन होता है। नदियों के किनारे एक विशेष जाति के लोग रहते हैं। वे मगरों से बिलकुल नहीं डरते। वे लङ्गोटी पहन कर, हाथ में बाँस लिये, घड़ियालों से भरी हुई नदी में घुस जाते हैं, और जहाँ पानी में से ऊपर को लहू निकलता दीखता है वहाँ बाँस से टटोलकर डुबकी लगाते हैं और घायल जन्तु को किनारे पर घसीट लाते हैं। कहते हैं, इन लोगों के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। इससे मगर इनको नहीं खाता।

जङ्गली सूअर बड़ा भयानक जन्तु है। घायल हो जाने पर यह शिकारी पर बहुत बुरी तरह से आक्र-मण करता है। यह सवार के घोड़े की टाँगों को अपने मज़बूत और तीक्ष्ण दाँतों से चीरकर उसे गिरा देता है। तब शिकारी का बचना कठिन हो जाता है। इस समय शिकारी के लिए प्राण-रक्षा

का एक ही उपाय रह जाता है। वह यह कि वह निश्चल पड़ा रहे। उसके ज़रा-सा हिलने-डुलने पर सूअर तीर की तरह उस पर झपटता है और एक सेकंड में उसको चीर डालता है। दूसरे सवार साथ हों तो भालों और बर्छियों से सूअर को परे हटा भी ले जा सकते हैं, पर साथियों को सहायता के लिए शिकारी के पास पहुँचने में जितनी देर लगती है उतने में सूअर मनुष्य का काम तमाम कर देता है। इसलिए रक्षा की आशा चुपचाप पड़े रहने ही में है।

पञ्जाब में एक विशेष जाति के लोग जाल लगाकर डण्डों से ही सूअर को मार डालते हैं। कुछ वर्ष हुए रावी-नदी के किनारे इन लोगों को सूअर का शिकार करते देखने का अवसर लेखक को भी मिला था। सूअर के जाल में फँसते ही उन लोगों ने इसे कौली भरकर गिरा दिया और डण्डे मार-मार कर मार डाला। इस कुश्ती में एक आदमी का हाथ सूअर के दाँतों से घायल भी हो गया था।

ख़रगोश और हिरण के शिकार में बाज़ों, शिकरों और कुत्तों से सहायता ली जाती है। एक समय एक शिकारी दल में सम्मिलित होने का मुझे भी मौक़ा मिला था। वहाँ एक ख़रगोश कुत्तों से बचकर छिप गया। परन्तु ऊपर उड़ते हुए बाज़ ने उसे देख लिया। वह उस पर झपटा और कानों को पकड़ कर उसे आकाश में ले उड़ा। जब तक कुत्ते वहाँ न पहुँच गये वह उसे आकाश में ही उठाये रहा। उनके पहुँच जाने पर उसने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और कुत्तों ने उसे दबोच लिया।

—सन्तराम

९—स्वप्न या अभिशाप

(१)

पुत्र ने कहा—अगर किसानी का काम कराना था तो आपने मुझे अँगरेज़ी क्यों पढ़ाई?

पिता ने जवाब दिया—जिससे तुम कृषि-कार्य की देख-भाल भली-भाँति कर सको। मुझे विश्वास है कि इस कर्म से तुमको अन्न-वस्त्र का कष्ट कभी उठाना नहीं पड़ेगा।

उद्दण्ड लड़का धृष्टता से बोला—परन्तु इस काम में मान-सम्भ्रम क्या है? भविष्य में उन्नति की क्या आशा है?

पुत्र अपने हठ पर डटा रहा। उसने पिता का निषेध नहीं माना। एक दिन नौकरी करने के लिए वह गाँव छोड़कर अन्य स्थान को चला गया।

(२)

वेदराम किसान का लड़का था। उसका पिता ५० बीघा ज़मीन का मालिक था; कृषि-वृत्ति से ही संसार-यात्रा निर्वाह करता था। बहुत व्यय करके, नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करके, उसने अपने लड़के को अँगरेज़ी स्कूल में पढ़ाया था। लड़का भी बहुत उद्योग और परिश्रम से हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था। पिता को उसे और अधिक अँगरेज़ी पढ़ाने की प्रबल इच्छा थी। परन्तु लड़के के विवाह-बन्धन में फँस जाने के कारण उसके विद्योन्नति-मार्ग में कठिन अड़चन पड़ गई। दुलारे लड़के को आगे पढ़ने के लिए पिता ने भी विशेष आग्रह नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लड़के के दिमाग़ में स्वतन्त्रता के विचार चक्कर मारने लगे और वह अपने को बहुत कुछ समझने लगा। कहना अनावश्यक है कि ग्राम्य-जीवन अब उसको नितान्त नीरस मालूम होने लगा, यद्यपि वेदराम आबाल्य गाँव का रहनेवाला था।

आज तक उस खेतिहर गाँव में किसी ने हाई स्कूल की परीक्षा पास नहीं की थी। इससे उस गाँव में वेदराम का बड़ा सम्मान था। बाप की खेती को देखने-भालने के लिए एक अलग नौकर नियत हुआ; क्योंकि उसके 'शिक्षित' और 'बाबू' लड़के को कृषि-कार्य की देख-रेख के काम से घृणा थी और वह स्वयं वृद्धावस्था के कारण सब काम अपनी आँखों से देखने में लाचार था। लड़का पास होने के बाद अधिक समय गाँव के मुखिया के यहाँ आवारा लड़कों के

साथ चौसर-ग्लास खेलकर अपना अमूल्य समय नष्ट किया करता था।

ऐसी दशा में एक दिन पिता ने पुत्र को अपने पास बुलाकर कहा—हम अब वृद्ध हो चुके हैं, बेटा; अब तुम हमसे सब काम-धन्धा समझ लो। इसके बाद पिता और पुत्र में जो बातचीत हुई थी उसका वर्णन पहले हो चुका है।

(३)

जब से परीक्षा का नतीजा निकला था तब से वेदराम की छाती पर साँप लोट रहा था। आज गँवार पिता का गँवारू प्रस्ताव सुन कर उसके दिल में भरा हुआ ग़ुबार निकल पड़ा। उसके जवाब से व्यथित होकर और उसका रुख़ देखकर वृद्ध चुप हो गया। लेकिन नौकरी के लिए तरसने से होता क्या है? ख़ैर कुछ दिन तक इधर-उधर अर्ज़ी भेजने और भटकने के बाद सौभाग्यवश वेदराम को कासगञ्ज के म्युनिसिपल आफ़िस में एक नौकरी मिल गई। पहले उसकी यह इच्छा थी कि प्रत्येक सप्ताह में एक बार घर जायगा; किन्तु ऐसा करने से ख़र्च बढ़ ही जायगा, साथ ही चेरमैन साहब भी नाराज़ होंगे। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि एक छोटा सा किराये का मकान लेकर स्त्री के साथ रहेगा। जब नौकरी का नियुक्ति-पत्र मिल गया तब वह स्त्री को यह आश्वासन देकर कि मकान का प्रबन्ध शीघ्र ही करके तुमको ले जाऊँगा, वह कासगंज को रवाना हुआ।

(४)

रात्रि के नौ बजे वेदराम कासगञ्ज पहुँचा। अभी तक वह कहीं मकान ठीक नहीं कर सका था। यहाँ पर उसकी जान-पहचान का कोई आदमी भी नहीं था। अतः बाध्य होकर उसको एक अपरिचित होटल की शरण लेनी पड़ी। रेलगाड़ी में तीसरे दर्जे का दरवाज़ा खुला हुआ मिलने से उसमें प्रवेश करने के लिए उसके सामने मुसाफ़िरों का जिस प्रकार ताँता लगा रहता है, उसी प्रकार चिन्ता-राशि ने उसके अपरिपक्व मस्तिष्क के अन्दर भीड़ लगा दी। बिस्तर का पुलिन्दा बिना खोले होटल के बरामदे के एक प्रान्त में उसने आश्रय लिया। क्षण भर में शान्तिमयी निद्रादेवी ने उसके भ्रमण-क्लान्त शरीर का सस्नेह आलिङ्गन किया।

(५)

रात्रि के बारह बज चुके थे। होटल के बाबू लोग एक एक करके सब-के-सब अपने-अपने 'रूम' में सो गये थे। शहर का कोलाहल क़रीब क़रीब बन्द हो गया था। कभी कभी दो-एक मोटर की भों-भों आवाज़ या कुत्तों के भौंक के सिवा और कोई शब्द कर्णगोचर नहीं होता था। होटल के सामने सरकारी सड़क पर रोशनी टिम-टिमा रही थी। सड़क पर लोगों का चलना-फिरना बिलकुल बन्द हो गया था। केवल होटल के रसोइया मिश्र महाराज दिन भर का काम समाप्त करके अपनी लालटेन के क्षीण प्रकाश में गा-गाकर रामायण पढ़ रहे थे और बीच बीच में आँसू बहा रहे थे।

(६)

सहस्रों चिन्ताओं के बीच उस दिन की घर की घटना वेदराम के दिल में विशेषरूप से प्रकट हुई—

विदाई के दिन वह मुझसे कितनी विनती करके बोली कि हमें कृपाकर साथ ले चलो। उस वक़्त मैं किसी तरह नहीं सोच सका कि आख़िरकार ऐसा मामला होगा। तब मैंने उसे समझाया था कि वहाँ जाकर बहुत जल्दी एक मकान किराये पर लूँगा और तुमको ले जाऊँगा। लेकिन अब देखता हूँ कि मेरी कामना के पूरी होने में कितनी रुकावटें हैं! कहाँ भीखमपुर और कहाँ कासगञ्ज! मेरी तनख़्वाह सिर्फ़ २०) है। उसको यहाँ लाकर रक्खूँगा कहाँ? मुझे तो फ़िलहाल किसी तरह इस होटल में जगह मिली है। जब तक कोई सुविधा नहीं होती तब तक मेरा क्या बस है!

(७)

वेदराम को नवाब मोहल्ले के होटल में आये दस दिन हो गये। यह होटल सड़क के किनारे

था। उस सड़क से हो भीखमपुर जाने की 'लारी' आया-जाया करती थी। 'लारी' को देख कर वह सोचने लगता, आज चला जाऊँ। किन्तु थोड़ी देर बाद यह आशङ्का होती कि यह मेरी नई नौकरी है; इसे भी खो बैठूँगा तो मेरी सारी आशायें धूल में मिल जायँगी और मैं कहीं का नहीं रहूँगा।

एक दिन वेदराम को अकस्मात् बुखार आ गया। रात को १२ बजे तक बुखार की तेज़ी के कारण वह बहुत ही बेचैन रहा; उसने करवट पर करवट बदलीं, पर नींद के नाम पलक तक न झपके; आख़िर एक बार आँखें लग ही गईं। उस दशा में उसको मालूम हुआ मानो किसी ने उसकी शय्या के बग़ल में बैठकर सुकोमल हस्त के स्पर्श से धीरे-धीरे उसके वेदना-व्यथित चरणों को अपने अङ्क पर खींच लिया है।

"तुम कौन ?"

यह बात सुनते ही नवागन्तुक के सारे मुखमण्डल पर घोर लालिमा छा गई; वेदराम को मालूम हुआ, मानो उसके मुखमण्डल पर ज्योति के समान प्रकाश की एक मनोहर रेखा विकसित हो उठी है।

उसने सिर नीचा करके मृदुस्वर में उत्तर दिया—मैं सरबतिया।

"तुम ? अरे यहाँ—होटल में क्यों ?"

"तुम तो मुझे ले नहीं आये। लेकिन मेरा हृदय व्याकुल हो उठा, चञ्चल हो उठा, लालायित हो उठा। इसी लिए दौड़कर आई हूँ। अब देखूँ, किस तरह तुम मुझे दूर रख सकते हो।"

"ऐं—यह क्या किया ? माताजी क्या सोचती होंगी ? पिताजी को अकेले कैसे छोड़ आई ?"

उसके होठों पर मुसकराहट की हल्की सी रेखा झलक गई और उसने अपना लज्जारुण मुख केवल नीचा कर लिया।

वेदराम मुग्ध-नेत्रों से उसके चेहरे की तरफ़ ताकने लगा। आह! क्या ही मनोहर छवि है! क्या ही अनुपम सौन्दर्य है! क्षुद्र ललाट पर घन-कृष्ण, कुञ्चित कुन्तलराशि असंलग्न अवस्था में इधर-उधर तितर-बितर हो रही थी। ठीक उसी के ऊपर शुभ्र वसनाञ्चल के नीचे ही, उसकी माँग के बीच, वेदराम ने देखा कि दो साल पहले के एक मिलन-मुखर वैशाख के उजियाले सन्ध्याकाल में उसी से अङ्कित की हुई सेंदुर की रेखा उतर आई है। उस रेखा को तो वह आजीवन नहीं भूल सकता। उसकी लाल किनारी-वाली खद्दर की साड़ी, उसके महावर से रञ्जित चरण-युगल, उसके कङ्कण-शोभित दो हाथ, उसके स्वेद-बिन्दु सिञ्चित गुलाबी कपोल, उसके रक्ताभ अधरों पर कुन्द-कुसुम-निन्दित दन्त-पंक्ति, उसी के बीच मनोरम भावराज्य की सरल और मृदु-मधुर मुसकान ने वेदराम को एक-दम विचलित कर दिया।

वेदराम उसकी चम्पक-कली सदृश उँगुलियों से शोभायमान, लोहिताभ, रुई से कोमल दोनों हाथों को बड़े आवेग से अपने हाथों में खींचकर धीरे धीरे हिलाने लगा। वह मानो उसके हाथों की क्रीड़नक थी। वह मन-ही-मन सोचने लगा, वे हमारे खिलौने अवश्य हैं। जिस प्रकार हम खिलाते हैं, उसी प्रकार वे खेलते हैं—अपनी ही जान पर खेल जाते हैं। खेलते-खेलते भ्रान्ति के वश में आकर उन खिलौनों को पछाड़कर हम स्वयं तोड़ डालते हैं, उनका सदुपयोग करना नहीं जानते—न सीखते हैं, फल यह होता है कि जीवन भर 'हाय' 'हाय' करना पड़ता है।

(८)

कुछ समय इसी प्रकार सुखद स्वप्न में अतिवाहित होने के बाद हठात् किसी की कर्कश पुकार से स्वप्न, तन्द्रा, नींद सब के सब बिदा हो गये और उसके साथ ही वेदराम की प्रिया चिर काल के लिए उसके नयनों से ओझल हो गई।

बाहर के आदमी की पुकार से हक्का-बक्का होकर वेदराम उठ बैठा। उसका शरीर आज बहुत ही दुर्बल था और मन दुर्भावनाओं से विकल था; इसलिए उस आदमी की बात की वह सम्यक् उपलब्धि न कर

सका और आँखें मलते हुए कम्पित-स्वर से कहा, अरे, तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?

वह बोला—मैं चिट्ठी-रसा हूँ ! आपकी एक चिट्ठी है।

वेदराम चौंक पड़ा, क्योंकि आज बहुत ही विलम्ब हो गया था, मकान के चारों ओर सूर्य की रोशनी भर गई थी।

चिट्ठी-रसा विस्तर पर चिट्ठी डालकर चला गया था। पत्र घर से आया था। शीघ्रता से लिफ़ाफ़ा खोलते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। उसके मुख पर एक रङ्ग आया, एक चला गया। लिफ़ाफ़ा खोलकर वेदराम ने पढ़ा—उसका सर्वनाश हो गया है। वह चिन्ता-सागर में डूब गया। उसकी चिन्ता का सारांश यह था—उसके समान कुटिल, निर्मम हृदयहीन को सारा जीवन जलाकर खाक करने के लिए विधाता ने उसके सिर पर कराल कुठार मारा है।

वेदराम की मा ने लिखा था—"प्यारे वेदराम, बहू कल रात १२ बजे मेरे वक्षःस्थल पर दारुण शैलाघात करके हैज़े की बीमारी से सतीधाम को चली गई है। उसकी अन्तिम वाणी यह थी—मैं पतिदेव की सेवा करने जा रही हूँ।"

वेदराम का सिर चकरा गया और पैर डगमगा गये; वह मौन होकर विस्तर पर बैठ गया। उसके चित्त में अनुताप और अनुशोचना की ज्वाला सुलग रही थी; उसके रोग-क्लिष्ट मुख पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। घटना-पट का यह परिवर्तन देखकर उसका चित्त डाँवाडोल हो गया। अन्त में उसका पत्थर से जड़ा हुआ दिल पसीज कर आँखों से आँसू बनकर निकल पड़ा। थोड़ी देर बाद होटल के रहनेवाले बाबू लोगों ने उसके कमरे में आकर देखा कि वेदराम के अश्रु-सिन्धु में उसकी जीवन-लीला को अन्तिम यवनिका गिर गई है।

—कालीचरण चटर्जी

१०—रेशम का व्यवसाय

भारत को इसकी आवश्यकता है।

रेशम के व्यवसाय की आवश्यकता हिन्दुस्तान जैसे ग़रीब देश में, जहाँ के अधिकांश वासी मुश्किल से एक शाम भोजन पा सकते हैं, अत्यन्त अधिक है। कारण; (१) यह उद्यम कृषि से सम्बन्ध रखता है जो देश का प्रधान धन्धा है; (२) यह प्रत्येक अवस्था में गृह-व्यवसाय है; (३) प्रति एकड़ ज़मीन स प्रथम स्टेज अर्थात् कोश की फ़सल (Cocoon production) की कम से कम आमदनी औसत गन्ने की फ़सल से अधिक है, और अधिक से अधिक आय अच्छे गन्ने की फ़सल से चार गुनी अधिक हो सकती है; (४) यह गन्ने की खेती से आसान है और घर में ही की जा सकती है; (५) एक फ़सल करने में ६ सप्ताह से अधिक नहीं लगते, और स्त्रियाँ भी इस काम को बड़ी आसानी से कर सकती हैं; (६) भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ रेशम की ६ फ़सलें हो सकती हैं—जब कि इटली और फ़्रांस में सिर्फ़ एक फ़सल, और चीन और जापान में केवल तीन फ़सलें होती हैं; (७) भारतवर्ष में इस काम को बड़े पैमाने पर करने के सभी साधन उपस्थित हैं; (क), पर्याप्त बृहत् भूमि; (ख), सस्ती मज़दूरी; (ग), उपयुक्त जलवायु; (८) यदि हिन्दुस्तान आज इतना रेशम तयार कर सके जिससे देश की वर्तमान माँग भी पूरी हो जाय, तो इससे १५ लाख परिवारों को हमेशा के लिए एक अच्छी आमदनी का धन्धा मिल सकता है। और यदि इस व्यवसाय की और भी वृद्धि की जा सके, तो इसकी बदौलत करोड़ों परिवारों की रोटी चलाई जा सकती है।

तीसरे कारण को सिद्ध करने के लिए कुछ व्याख्या आवश्यक है:—(१) मैसूर-रेशम-विभाग के हाल की रिपोर्ट में लिखा है कि, "आज-कल मैसूर का एक साधारण किसान आध एकड़ ज़मीन में

तूत की खेती करता है जिससे साल में रेशम की ६ फ़सलें उपजाकर, सब ख़र्च निकालने के बाद, कम से कम १००) रुपये पैदा कर लेता है। यद्यपि बीज की ख़राबी और विषय की जानकारी की कमी के कारण उसकी दो फ़सलें ख़राब हो जाती हैं" (२) जापान में १३ लाख एकड़ ज़मीन का औसत पैदावार प्रति एकड़ १० मन कोश (Cocoons) हर फ़सल में होती है। और यदि हम जापान के कीड़ा पालने की उत्तम रीतियों का अपने यहाँ उपयोग कर सकें, तो हमारी आमदनी १२००) रुपये सालाना प्रति एकड़ से भी अधिक हो सकती है। जापान की पैदावार की औसत वहाँ के दस साल की उपज से निकाली गई है जिसका पूरा ब्योरा जापान की रिपोर्ट में देख सकते हैं। (३) जापान, इटली और फ़्रांस, जहाँ की मज़दूरी बहुत अधिक है, के लोग भी इस काम को बड़े लाभ और चाव से करते हैं।

हिन्दुस्तान के रेशम के व्यवसाय की दशा पहले कैसी थी, और अब क्या से क्या हो गई इसका दिग्दर्शन तो नीचे लिखी बातों से हो जायगा:—

(१) जहाँ १८३१ ई० में सिर्फ़ बङ्गाल से इँग्लेंड को रेशम का निर्यात ९,००,००० पाउंड था, वहीं १९१४ ई० में कुल ५०,००० पाउंड रह गया। आज हिन्दुस्तान भर के रेशम का निर्यात प्रायः दो लाख पाउंड है। जिसमें एक लाख पाउंड से अधिक माल केवल काश्मीर से ही जाता है, और बाक़ी एक लाख से कुछ कम ही मैसूर, मद्रास और बङ्गाल-तीनों से मिलाकर जाता है। उसमें भी मैसूर और मद्रास का हिस्सा बङ्गाल से कहीं अधिक है। इस तरह से बङ्गाल का भाग नहीं के बराबर रह जाता है। (२) पहले तूत की खेती के लिए ८०,००० एकड़ ज़मीन सिर्फ़ मैसूर में थी, और यह घटते-घटते २५,००० एकड़ तक चली आई थी। परन्तु अब वहाँ की सरकार के प्रयत्न और प्रोत्साहन के फल-स्वरूप यह फिर बढ़कर ५०,००० एकड़ तक पहुँच गई है। बङ्गाल में ११ ज़िले के लोग यह व्यवसाय करते थे। उस समय कितने एकड़ खेत में तूत की खेती होती थी इसका हिसाब नहीं मिलता। इसकी गणना केवल एक बार १९१३ ई० में की गई थी जिससे मालूम हुआ था कि, ऊपर के ११ ज़िलों में से तीन का व्यवसाय तो सर्वथा नष्ट हो गया था, ५ का क़रीब क़रीब नष्ट होने के बराबर था; और बाक़ी ४ ज़िलों में जहाँ यह व्यवसाय अभी कुछ बच रहा था, वहाँ भी इतनी तेज़ी से घट रहा था कि इसका अनुमान केवल इस बात से लग सकता है कि, जहाँ १९०८ ई० में भी मुर्शिदाबाद में ५,००० एकड़ से अधिक तूत की खेती होती थी, १९१३ ई० में यह घटकर केवल ३,००० एकड़ रह गई। बिहार प्रान्त में जहाँ भागलपुर और पटने में मुर्शिदाबाद से यह काम किसी तरह भी कम न था, अब बिलकुल लुप्त हो गया। इस व्यवसाय के पतन के तीन मुख्य कारण ये हैं:—(१) किसी ऐसी अवस्था का अभाव जो रेशम के व्यवसायियों को उचित सहायता तथा प्रोत्साहन देती। (२) रेशम के व्यवसायियों में विषय की जानकारी की कमी तथा परस्पर सहयोग का अभाव। (३) तागा निकालने का प्रचलित भद्दा और ख़राब तरीक़ा। यदि इन तीनों अवगुणों का सुधार हो सके, तो हमारा रेशम का व्यापार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगेगा। मालदह का रेशमकार (Rearer) इस कला को सर्वथा भूल गया है। परिणाम यह होता है कि उसकी फ़सल या तो एक-दम मारी पड़ती है, या बचते बचते प्रायः चौथाई रह जाती है। इसके प्रतिकूल जापान की पैदावार ९० प्रतिसैकड़ा तक हो जाती है। फलतः जहाँ मालदह में ५।६ फ़सल करने के बाद रेशमकार कुल ४ मन कोश प्रति एकड़ पैदा करता है, उसका जापानी भाई साल में कुल ३ फ़सल करके उतनी ही ज़मीन से ३६ मन कोश पैदा कर लेता है।

तागा निकालने के जो तरीक़े बङ्गाल में प्रचलित हैं वे ऐसे हैं कि उनसे तैयार किया हुआ सूत बहुत

घटिया और बेनाप होता है। फल यह होता है कि साधारणतः सब जुलाहे इसका उपयोग नहीं करते। भागलपुर के जुलाहे तो इसके लच्छे को खोल तक नहीं सकते। मालदह और मुर्शिदाबाद के जुलाहे इससे काम कर लेते हैं परन्तु कठिनाई से।

भारत में रेशम का व्यवसाय आदि-काल से है। वेद में भी इसका विवरण मिलता है। लेकिन शोक है कि, वही व्यवसाय, जो मुसलमान राजाओं के समय में भी लाखों परिवारों का पालन करता था, आज इस तरह नष्ट होता जा रहा है। इसके विपरीत जापान जैसा देश, जहाँ यह व्यवसाय सन् १०५ ई० तक नाम को भी नहीं था, आज संसार भर की माँग का ६४ प्रतिशत पूरा कर रहा है। उसी साल जापान की सरकार ने कुछ देशभक्त सरकारी अफ़सरों की सलाह से थोड़े से कुशल रेशमकारों को चीन से बुलाकर देश के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में काम करने की आज्ञा दी थी। तब से अनेक असुविधाओं से लड़ते हुए भी उन देश-प्रेमी कर्मचारियों के अदम्य उत्साह की बदौलत आज जापान का स्थान इस व्यवसाय में सबप्रथम है। उनके परिश्रम की अधिकता का अनुमान सिर्फ़ इसी बात से लग जाता है कि जापान जैसे छोटे देश, जो हमारे एक प्रान्त के बराबर भी नहीं है, में कम से कम ४२१ स्कूल और कालेज हैं जहाँ कौशेय विज्ञान (Sericulture) पढ़ाया जाता है। इन स्कूलों से पढ़कर प्रतिवर्ष १३ लाख लड़के निकलते हैं। राष्ट्र के लिए इस रेशम के व्यवसाय का प्रश्न कितना विचारणीय है इसका कुछ ज्ञान प्रतिवर्ष के भारी आयात के कुछ अङ्कों से हो जायगा:—

रेशम का आयात

सन्		१९२६	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०
Reeled silk (खेवा)	...	९,६३३	१,१३,७७०	१४,५३२	१२,३३१	१२,३१२
Waste silk (गूदड़)	...	६	८०	८	·२	...
Noilsa Warps	...	३,५३६	६,३१३	५,६४५	८,५६१	७,१८२
Mixed silk cloth (फेंट)	...	२,४५९	३,०८९	३,५२१	४,०२२	३,४७६
Pure silk cloth (शुद्ध रेशम)	...	२१,१०२	२४,२९६	२५,८०६	२४,४३१	२२,२५९
Sewing thread (सिलाई के सूत)	...	२२९	२४५	२२१	१७५	१६९
भिन्न प्रकार	...	४३७	५६३	५४३	५१५	४४८
जोड़	...	२८,०२९	३४,५०९	३६,०३७	३७,७०७	३३,०३०

कृत्रिम रेशम का आयात

सन्		१९२६	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०
सूत	...	७,४७१	१०,२६४	१४,९२०	१३,५३०	९,९१०
कपड़ा	...	१३,७८२	३०,८७४	३८,६४२	३३,०४२	३१,४९८
अन्य प्रकार	...	६२०	९३४	१,३१८	१,१३४	१,७९२
जोड़	...	२१,८७४	४२,१७३	५४,८८२	४७,७०७	४३,२०१

ऊपर के अङ्क हज़ार रुपयों में हैं।

जब मैं इटली में था उस समय मैंने इस व्यवसाय को अत्यन्त उन्नत अवस्था में देखा। सौभाग्य से वहाँ मैसूर के एक विद्वान् से मेरी भेंट हो गई। उन्होंने मुझे बताया कि इस व्यवसाय के सुधार में मैसूर ने कैसे-कैसे उपाय किये और किन कारणों से उत्तर-भारत में इसका नाश हो रहा है। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस व्यवसाय से क्या लाभ है, और राष्ट्र का इसके प्रति क्या कर्त्तव्य होना उचित है। उसी समय मैंने भारत में रेशम के व्यवसाय के पुनरुत्थान के निमित्त प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया। ज्यों ही मैं घर लौटा, मैंने अपने लड़के को कौशेय विज्ञान अध्ययन करने के लिए भेजा। जब वह इस विज्ञान में पूरे जानकार होकर लौट आये, तब मैं उनके साथ इस व्यवसाय की वर्तमान दशा का अवलोकन करने तथा उसके सुधार के उपायों को सोच निकालने के लिए बाहर निकला। इस सिलसिले में मैंने रेशम के प्रायः सब केन्द्रों का निरीक्षण किया। बहुत कठिन अन्वेषण के बाद जो युक्तियाँ मैंने ढूँढ़ निकालीं उनको कार्य रूप में परिणत करने के लिए मुझे एक कापरेटिव सिल्क गाइड की स्थापना करने की आवश्यकता जान पड़ी। जो रेशम के व्यवसाय-विभाग का प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक रीति से करे। साथ ही लोगों को समझावे कि इस काम से आर्थिक लाभ क्या है, और यह कैसे किया जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक प्रचार-द्वारा लोगों को उत्साहित करे कि वे इस काम को स्वयं करने लगें। इस तरह क्रमशः एक सहयोगिक संस्था बन जावे जिसमें हर एक काम को अलग-अलग करते हुए भी इसके सदस्य परस्पर प्रेम और सहयोग के बन्धन में बँधे हों।

मैंने यह स्कीम बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी के सत्परामर्श के हेतु उनके सम्मुख उपस्थित की। उन्होंने इस युक्ति के महत्त्व का अनुभव किया और इसे पसन्द किया। अतएव मैंने भागलपुर में आकर यह कार्य आरम्भ किया है। यहाँ कोश उपजाना (Cocoon production), तागा बनाना, कपड़ा बिनना आदि सभी काम किये जाते हैं। इसके मुख्य अङ्ग का नाम शुद्ध रेशमी खादी-भण्डार रखा गया है जिसका उद्घाटन बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने स्वयं किया है। आशा है, जनता इससे लाभ उठावेगी।

—बी० एन० वंसीकर

११—मयङ्क

(१)

चुपके-से नभ में आकर,
तुम किसे लखा करते हो?
नीरव भाषा में अपनी,
विधु! किससे क्या कहते हो?

(२)

इस नूतन जग को लखकर,
क्या विस्मय-सा होता है?
जो अपलक देखा करते,
दृग बन्द नहीं होता है!!

(३)

तुम तारों की कौड़ी से,
विधु! कौन खेल हो करते?
जिसको अपलक आँखों से,
प्रति रजनी देखा करते!

(४)

जब ताप-तप्त-सा होकर,
है सारा जग घबराता।
तब शीतल किरणें शशि! क्या,
बरसाने को तू आता?

(५)

तेरी छाती पर यह है,
कैसा कलङ्क का टीका?

जिसने सौन्दर्य तुम्हारा,
कर दिया इन्दु ! है फीका ?

(६)

क्या तूने सार हृदय का,
तारों को बाँट दिया है ?
जिससे काला-सा तेरा,
लख पड़ता आज हिया है ?

(७)

कितनी पङ्कज-कलिका को,
कर से असमय मुरझाया !
क्या तेरी छाती पर है,
यह उसी पाप की छाया ?

(८)

या निशा-सुन्दरी सोई,
है तव छाती पर सिर रख ?
उसके ही काले-काले—
क्या लख पड़ते हैं ये कच ?

(९)

यह प्रकृति आह-सी भरती—
है घूम रही मँडराती !
क्या उसकी ही आहों से,
जल गई तुम्हारी छाती ?

(१०)

किसलिए छीजते जाते,
प्रतिनिश तुम थोड़ा-थोड़ा ।
किस दुखने कान्त कलेवर—
तेरा, यों मींज मरोड़ा ?

(११)

है कौन वेदना ऐसी,
चुप रहते, ज़रा न कहते !
क्या ओस-रूप से प्रतिनिश,
तेरे ही आँसू बहते ?

(१२)

क्या जग की आहों से ही,
तव तन जल जल गिरता है ?
फिर पा निसर्ग से औषध,
धीरे-धीरे बढ़ता है ?

(१३)

या पति-प्राणा कोई को—
मुरझी लख, जब चल पड़ते !
आँसू ढलका तव दृग से,
दुख प्रकट इन्दु ! तुम करते ?

(१४)

यों शोकाकुल होने से,
तुम छीज-छीज उठते हो !
विरही सुधांशु ! तुम अपना—
तन मिट्टी कर देते हो !

(१५)

तव उर में रूप निरख कर,
अपना-सा काला-काला !
विधु ! अतः घेर क्या लखती—
है तुम्हें कभी घन-माला ?

(१६)

या विकल वेदना से हो,
जलधर को स्वयं बुलाते ?
कुछ देर उसी के उर में—
रह अपनी आग बुझाते ?

—महन्त धनराजपुरी

विचार-विमर्श

रामचरितमानस के घाट

रामायण की प्रशंसा सुनते-सुनते न जाने कितने दिन बीत गये पर लोगों का जी उससे कुछ भी न भरा। यदि जी भरने ही की बात होती तो हम भी उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते फिरते और लोगों की तन्मयता को व्यग्र करने के अपराध से बच भी जाते। पर यहाँ की बात ही कुछ निराली है। मानव-जीवन में भावुकता और रसिकता ही सब कुछ नहीं है। उसमें बुद्धि और विवेक को भी स्थान मिलता है। अन्य कवियों की तो हम नहीं कहते पर महात्मा तुलसीदास की कविता में जो रसधारा वही है वह बुद्धि और विवेक के आधार पर ही मुक्त रहने का साहस कर सकी है। उसका ध्येय अनन्त सागर में निमग्न होने का नहीं है। वह तो कण-कण को सरस करने में ही व्यस्त है। हाँ, यह बात अवश्य ही है कि महात्माजी ने संस्कारवश अथवा किसी भी कारण से, अपने 'रामरसायन' को, अपनी 'रसधारा' को, कुछ अधिकारियों के लिए सीमित कर दिया है। यही वह सीमा है जो असीम का भान कराती है। जहाँ तक हम समझ सके हैं, इसी अधिकारी-भेद के कारण गोस्वामीजी ने रामचरित को 'मानस' की उपाधि दी है, सागर या सिंधु की नहीं।

खेद का विषय तो यह है कि साहित्य-संसार महात्मा तुलसीदास के आदर-सत्कार में अपने यहाँ तक मग्न कर दिया कि उनकी रचनाओं अपना रङ्ग चढ़ा कर उनको भ्रष्ट कर दिया। रामचरितमानस को ही लीजिए। गोस्वामीजी ने रामायण के स्थान पर अपने ग्रंथ का नाम रामचरितमानस रक्खा। यही नहीं उन्होंने सांग रूपक अपने नामकरण को उचित सिद्ध भी कर दिया उन्होंने यह भी कहा—"रचि महेस निज मानस राखा पाइ सुसमउ उमा सन भाखा ॥ तातें रामचरितमानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर॥" उनकी बातों पर कान ही किसने दिया। सब लोगों ने रामायण कहना आरम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि गोस्वामीजी के प्रयत्न पर पानी फिर गया। रामचरितमानस की महिमा तो रह गई पर रामरसायन चला गया।

हिन्दी-साहित्य में विद्वानों की भरमार है। अभाव है तो विद्यार्थियों का। यही कारण है हिन्दी-भाषा के प्रचार के साथ ही साथ हिन्दी-साहित्य बढ़ने में असमर्थ हो रहा है। हिन्दी में भी किस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है, उसका कोई संस्कृति या इतिहास है? आदि ऐसे प्रश्न हैं उठने ही नहीं पाते। ऐसी परिस्थिति में कुछ बैठने का साहस करना धृष्टता नहीं तो क्या है?

तुलसीदासजी अपने मानस के विषय में कहते हैं—"सुठि सुन्दर संवाद बर बिरचे बुध विचारि। तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनो

चारि।" किन्तु हिन्दी के धुरन्धर समालोचक इसका कुछ विलक्षण ही अर्थ लगा लेते हैं। उनको समझ में इसकी उपयोगिता यही है कि तुलसीदास 'पिंगल' के पंजे से इन्हीं संवादों के कारण बच सके।

भारत की साहित्य-परम्परा से जो परिचित हैं वे यह भली भाँति जानते हैं कि संवाद ऋग्वेद में भी पाये जाते हैं। बहुत से विद्वानों ने तो इन्हीं संवादों से नाटक की उत्पत्ति मानी है। संवाद आदि-कवि की रामायण में भी है, पर 'मानस' के संवाद में कुछ विशेषता है। रामचरितमानस में चार घाट हैं। पुराणों तथा गीता के संवादों से भी इसकी यही विशेषता है।

हिन्दी के कतिपय विद्वानों, विशेष कर मानस के भक्तों ने, इन घाटों पर विचार भी किया है। जहाँ तक हम समझ सके हैं ये घाट ही रामचरितमानस के मर्म हैं। अतः इन पर सूक्ष्म विवेचन अभीष्ट है।

मुंशी सुखदेवलाल, मैनपुरी ने बहुत ही परिश्रम के साथ घाटों का जो विवरण दिया है वह हमारी दृष्टि से किसी काम का नहीं है। वे तो 'सतपंच चौपाई' के फेर में पड़ गये हैं। कुछ भी हो, उनका परिश्रम सराहनीय है। हिन्दी के अन्य विद्वानों ने इन संवादों को कुछ विशेष महत्त्व नहीं दिया है। काशी के प्रसिद्ध रामायणी 'भूषणजी' का कथन है कि इन संवादों में ज्ञान, कर्म, उपासना तथा दैन्यकांड का विवेचन है। हिन्दी-साहित्य में सामान्यतः यह कहा जाता है कि शङ्कर-पार्वती ज्ञानकांड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज कर्मकांड, काग-भुशुण्डि-गरुड़ उपासनाकांड तथा तुलसीदास दैन्यकांड का प्रतिपादन अपने अपने घाटों पर कर रहे हैं।

आज से कुछ दिन पहले, जब हम रामायण का पाठ किया करते थे, तब हमारी भी यही धारणा थी। किन्तु एक बार तुलसीदास के मानस का अध्ययन करने के उपरान्त हमारी धारणा कुछ और ही हो गई। यदि सत्य कहना गर्हित नहीं है तो हम इतना कहने का साहस तो अवश्य ही कर सकते हैं कि इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। 'भूषणजी' कथा कहते समय पद्यांशों तक में घाट-परिवर्तन कर देते हैं। यदि इसका कारण जनता की रुचि अथवा मनोरञ्जन हो तो कोई बात नहीं; किन्तु, यदि यह उनका विचार हो तो उस पर उचित ध्यान देना चाहिए।

हमने अपने 'रघुवर' नामक लेख में कुछ इस ओर संकेत कर दिया था। हमें आशा थी कि हिन्दी के विद्वान् इस पर ध्यान देंगे। पर यह हमारा भ्रम था। हिन्दी के विद्वानों का काम तो कुछ और ही है। वे इन बातों पर कब विचार कर सकते हैं?

रामचरितमानस में केवल तुलसीदास का घाट ही ऐसा है जो आदि से अन्त तक सभी सोपानों में है। 'मानस' में एक भी सोपान अथवा कांड ऐसा नहीं है जिसमें तुलसीदास का नाम न आया हो। शङ्कर और पार्वती का संवाद द्वितीय सोपान अथवा अयोध्याकांड को छोड़ कर सभी सोपानों में है। याज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज का संवाद केवल प्रथम सोपान अथवा बालकांड में है। भुशुण्डि तथा गरुड़ का संवाद प्रथम तथा द्वितीय सोपान अथवा बाल तथा अयोध्याकांड को छोड़ शेष सभी कांडों में है।

उपर्युक्त विवरण में जो सबसे आश्चर्य की बात है वह यह है कि द्वितीय सोपान अथवा अयोध्याकांड में केवल तुलसीदास ही हैं अन्य 'श्रोता-वक्ता-गण' नहीं। मानस में यह परिस्थिति 'रामजन्म' प्रथम सोपान ही से आरम्भ हो जाती है। मानस का यह बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है। इसी के आधार पर मुन्शी सुखदेवलाल मैनपुरी ने यह निश्चित किया था कि सम्पूर्ण मानस की रचना क्रम से एक ही बार नहीं हुई थी। हम इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश 'रघुवर' नामक लेख में डाल चुके हैं। अस्तु उसको यहीं छोड़ देते हैं।

रामचरितमानस को हम पुष्पिका की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम खण्ड में प्रथम और द्वितीय सोपान तथा द्वितीय में शेष सोपान हैं। आकार की दृष्टि से हम विभाजन नहीं कर

रहे हैं। हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि प्रथम तथा द्वितीय सोपान विस्तार में आधे से अधिक हैं। हमारा कथन तो यह है कि उनकी पुष्पिका में केवल "श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने" ही लिखा है। शेष सोपानों में यह बात नहीं है। उनमें क्रमशः 'विमल वैराग्य', 'विशुद्ध संतोष', 'ज्ञान', 'विमल विज्ञान', 'अविरल हरिभक्ति संम्पादनों' का समावेश है।

मानस की पुष्पिका के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानस के प्रथम तथा द्वितीय सोपान प्रस्तुत विषय के परिचायक हैं। उनको एक प्रकार से भूमिका कह सकते हैं। प्रतीत यह होता है कि मानस का ध्येय 'अविरल हरिभक्तिसम्पादन' ही है। उस भक्ति की प्राप्ति के लिए क्रमशः विमल वैराग्य, विशुद्ध संतोष, ज्ञान तथा विमल विज्ञान का होना परम आवश्यक है। 'मानस' के विमल जीवन में निमज्जन के लिए उक्त सोपानों से अवतरित होना अनिवार्य है। यही मानस का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रसङ्गवश हम तुलसी के 'स्वान्तःसुखाय' पर भी कुछ प्रकाश डालना उचित समझते हैं। इस स्वान्तःसुखाय' को लेकर हिन्दी-साहित्य में मनमाना सुधार क्रान्ति का पल्ला पकड़ रहा है और बहुत से विद्वान् तुलसीदास को स्वार्थी सिद्ध करते हैं। मानस के अन्त में स्वान्तस्तमः शान्तये' का प्रयोग तुलसीदास ने किया है। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास अन्तःकरण के तम अथवा कलिकलुष से दुखी थे। वे कहते भी हैं वरनौं रघुबर बिसद जस, सुनि कलि-कलुष नसाय।" कलि के ताप से संतप्त जीवों के लिए ही रामचरितमानस का निर्माण हुआ है। उन्होंने कहा भी है—"श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः"।

हम ऊपर कह ही चुके हैं कि भारतीय साहित्य-परम्परा में संवाद की प्रथा प्राचीन है। पर इतने ही से यह व्यक्त नहीं हो पाता कि तुलसीदास ने अपने 'मानस' में संवादों का जमघट क्यों लगा दिया है उसमें बार बार 'सोइ राम, सोइ राम' की रट क्यों लगा दी। जो लोग सन्त-संप्रदाय अथवा निर्गुण उपासकों के आन्दोलन से अपरिचित हैं वे कुछ भी कहते रहें, उनकी बातें अब अधिक दिनों तक हिन्दी साहित्य में मान्य नहीं हो सकतीं। सच बात तो यह है कि तुलसीदास इस अभारतीय पद्धति से चिढ़ते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि—"सब ही साखी दोहरा, कहि कहनो उपखान। भगत निरूपन भगति कलि, निन्दहिं वेदपुरान" यह तो कहना व्यर्थ ही होगा कि इसी वेद पुराण की रक्षा के लिए सगुण भक्ति-प्रतिपादन के लिए ही उन्होंने मानस की रचना की। "नानापुराणनिगमागमसम्मतं" का 'लोक-वेद' की बारम्बार की प्रतिध्वनि हमारे कथन प्रमाण हैं। यही क्यों! कबीर ने कहा था "दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। रामनाम का मरम आना।" इस प्रकार एक दाशरथि राम और सत्यलोक के राम स्थापित हो चले थे। मानस की रचना इसी के विरोध को लेकर, दाशरथि राम को ही परब्रह्म प्रतिपादन करने की दृष्टि हुई है।

तुलसीदास के घाट को छोड़ कर अन्य घाटों पर विचार करने से यह स्पष्ट अवगत हो जाता है कि प्रत्येक श्रोता को यही भ्रम है कि राम परब्रह्म कैसे हो सकते हैं। मानस में सबसे प्रथम इस भ्रम में भरद्वाज जी पड़ते हैं। उनका प्रश्न—"प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाइ जपत त्रिपुरारि। सत्यधाम सर्वग्य तुम्ह कहहु विवेक विचारि।" वस्तुतः यह प्रश्न विशेष गम्भीर नहीं है। याज्ञवल्क्यजी ने कहा था—"चाहहुँ सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।" स्पष्ट ही है कि तुलसीदासजी इस संवाद को विशेष स्थान देना उपयुक्त नहीं समझते थे। वास्तव में यह प्रश्न नहीं, मुनियों का मनोविनोद है। हमारी समझ में यही कारण है कि यह संवाद थोड़े ही काल में समाप्त हो गया है।

भरद्वाज के प्रश्न में त्रिपुरारि दो आये हैं। पर पार्वतीजी का प्रश्न भरद्वाज के प्रश्न से गम्भीर और जटिल है। इसमें त्रिपुरारि ही को वक्ता बनना पड़ता है। पार्वती भी इस प्रश्न को मनोविनोद अथवा समय काटने के लिए नहीं करती हैं। वे इस मोह के फंदे में फँस कर अपना एक जीवन ही नष्ट कर चुकी हैं। अतः वे शङ्करजी से उचित समय पाकर प्रश्न करती हैं—"जौं नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारिविरहमति भोरि। देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि।" यही नहीं, वे यहाँ तक आग्रह करती हैं—"तव कर अस विमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥...जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥"

गरुड़ का मोह भी कुछ इसी ढंग का है, किन्तु वह इतना गहन नहीं है। मोह के विचार से उनका स्थान भरद्वाज तथा पार्वती के मध्य में पड़ता है। उनका विषाद है—"व्यापक ब्रह्म विरज बागीसा। माया-मोह-पार परमीसा॥ सो अवतार सुनेउ जग-माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।" तथ्य की बात तो यह है कि गरुड़ को इस बात का अभिमान हो गया था कि वे राम को बन्धन से मुक्त कर सकते थे—अथवा उन्होंने किया था। इस अभिमान का पता उस समय चलता है जब शंकरजी कहते हैं—"ता तें उमा न मैं समुझावा। रघुपतिकृपा मरमु मैं पावा॥ होइहि कबहुँ कीन्ह अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खग ही कर भाखा॥" शंकरजी के कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने खगपति (राजा) को काग (प्रजा) के पास इसी लिए भेजा था कि उसके हृदय से यह तुच्छ भावना निकल जाय कि छोटों अथवा नीचों की कुछ उपयोगिता ही नहीं है।

उपर्युक्त विवेचना से यह तो व्यक्त ही है कि रामचरितमानस के श्रोता एक ही श्रेणी के नहीं हैं। एक मुनि हैं, एक स्त्री है, एक पक्षी है तो एक मन अथवा सामान्य जन। उनके प्रश्नों की विभिन्नता का कारण यही श्रेणी-भेद है। मानस के वक्ताओं में भी यही विभिन्नता काम कर रही है। प्रश्नों का समाधान भी वे भिन्न-भिन्न आधार पर करते हैं। याज्ञवल्क्यजी शिवचरित्र-कथन के उपरान्त कहते हैं—"तदपि जथाश्रुत कहौं बखानी।" शंकरजी का कथन है—"तदपि जथाश्रुति जसि मति मोरी। कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी।" भुशुंडिजी गरुड़ से कहते हैं—"नाथ जथामति भाषेऊँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।" इस प्रकार हम देखते हैं कि याज्ञवल्क्यजी 'यथाश्रुत' कहते हैं तो कागजी 'यथामति' और शंकरजी 'यथाश्रुत' एवं 'यथामति'। हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सर्वत्र इसी नियम का पालन हुआ है। कागजी स्वयं कहते हैं—"वेद पुराण संत मत भाषा" उसका आशय तो केवल यही है कि इन घाटों में प्रधानता कुछ इसी ढंग की है। शंकर तथा भुशुंडिजी अपने अनुभव पर अधिक विश्वास दिलाते हैं, पर याज्ञवल्क्यजी नहीं।

जो कुछ कहा गया है उससे हमारी समझ में यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि 'मानस' के घाटों की विशेषता ज्ञानादिकांडों के प्रतिपादन में नहीं है। मानस में शायद ही कोई स्थल ऐसा मिले जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उसका प्रतिपाद्य विषय ज्ञान, कर्म, उपासना तथा दैन्य है। यही क्यों, उसमें तो एक प्रकार से ज्ञान तथा कर्म को नीचा दिखाया गया है। रामचरितमानस के शंकर राम के कैसे भक्त हैं—"बिनु अघ तजी सती असि नारी"। फिर उनको ज्ञानकांड का उपदेशक कैसे मान लिया जाय? याज्ञवल्क्य स्वयं कहते हैं—"चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा" फिर इन्हें कर्मकांड का विधायक कैसे समझ लिया जाय? सभी तो भक्ति ही का जाप करते हैं।

रही दैन्यकांड की बात, मानस से परिचित संसार यह भली भाँति जानता है कि तुलसीदास स्वयं कहते हैं—"जेहि सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास"। यह ठीक है कि कथा आरम्भ के पूर्व, भूमिका में, वे

अपनी दीनता दिखाते हैं पर वही यह भी तो कहते हैं—"जो प्रबन्ध बुध नहिं आपरहीं। सो श्रम वादि बालकवि करहीं। सच बात तो यह है कि तुलसीदास दृढ़ता के साथ अपने मत 'हरिभक्ति' का प्रतिपादन करते हैं और अन्य लोगों से अनुरोध करते हैं कि स्वर्ग आदि की कामना को तिलांजलि देकर 'रामनाममणि' का संचय करो—"राम जपत मंगल दिसि दसहूँ"। तुलसी की दीनता 'विनयपत्रिका तथा अन्य-ग्रन्थों में इस कारण से है कि वे उनमें राम के सम्मुख हैं, लोक-भावना से बहुत कुछ मुक्त हैं। अस्तु, मानस में तुलसी का घाट दैन्य घाट नहीं है।

हम एक बार फिर यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि रामचरितमानस का प्रतिपाद्य विषय हरिभक्ति ही है, ज्ञान, कर्म या योग नहीं। तुलसीदासजी ने तो स्वयं ही स्पष्ट कह दिया है—"भगति निरूपन विविध विधाना"। मानस के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कलि के निस्तार के लिए केवल हरिभक्ति ही है, ज्ञान, जप, योग आदि नहीं। घाटों की विभिन्नता तथा परस्पर की विशेषता का निदर्शन करते समय हमने यह संकेत किया था कि पार्वती ने शंकर से स्पष्ट कहा था—"जदपि जोषिता नहिं अधिकारी"। सनातन-धर्म-परम्परा में यह चला आता था कि शूद्र और स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। पर रामानन्द ने एक सामान्य भक्तिभाव का ऐसा प्रचार किया कि स्त्रियाँ और शूद्र भी भक्त होने लगे। सम्भव है कि महात्मा तुलसीदास ने प्रकारान्तर से संवादों में इसका भी विधान किया हो। वैसे तो भुशुंडिजी भी काग ही हैं, पर भक्ति के प्रभाव से खगपति को 'नाथ' कह कह कर सुझा रहे हैं। हमें विश्वास है कि यदि संवादों पर दृष्टि रखकर मानस का अवगाहन किया जाय तो बहुत से प्रवाद, मुख्य कर स्त्रियों की निन्दा के विषय में, जो चल पड़े हैं, हवा हो जायँ।

मानस के घाटों को विशेष महत्त्व देने का कारण यह है कि महात्मा तुलसीदास स्वयं उनको 'विरचे बुद्धि विचार' कहते हैं। जब महात्माजी स्वयं मानस के घाटों को बुद्धि का प्रसव मानते हैं तब हमें कोई अधिकार नहीं है कि हम उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखें। यथाशक्य हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि महात्माजी का मन्तव्य क्या था। हमने यह भी कहा है कि महात्मा तुलसीदास का भी एक घाट है। 'हेतुवाद' के जो लोग उपासक हैं, विवेक ही जिनका बल है, वे हमारी बातों से तब तक सहमत नहीं हो सकते जब तक हम यह सिद्ध न कर दें कि उनका भी एक घाट है। कारण, उनका श्रोता है कौन? श्रोता के अभाव में 'संवाद' की कल्पना कैसे की जा सकती है? हमने उपर्युक्त विवेचन में प्रस्तुत घाट का श्रोता एक प्रकार से 'मन' अथवा 'जन' को माना है। न्याय की दृष्टि से मन को श्रोता मानना कुछ लोगों को अवश्य खटकता होगा। किन्तु करें क्या? हम भी हैरान हैं। हमारी समझ में तो यही उचित है। कारण, तुलसीदास स्वयं कहते हैं—"श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल। संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल।" अस्तु, वस्तुतः मानस में, उसके घाटों पर तीन ही श्रोता जमे हैं। चौथा श्रोता, यदि कहा जा सकता है तो, हम आप अथवा तुलसीदास का मन है।

'श्रोता त्रिविध' के रहस्य से कुछ परिचित होने का प्रयत्न हम पहले ही कर चुके हैं। यहाँ पर केवल हम यही कहना उचित समझते हैं कि इन श्रोताओं में भी कुछ भेद है। भरद्वाज का प्रश्न सामान्य है। उनकी दृष्टि में अवतार सम्भव है। उनको, लोगों के मुख से सुनकर कुछ सन्देह हो गया है। दाशरथि राम ही परब्रह्म के अवतार हैं अथवा अन्य राम? यही तो उनका प्रश्न है? इसको संत-सम्प्रदाय, विशेषतः कबीर का प्रश्न समझना चाहिए। आजकल के इतिहासवादी भी इसी विभाग में काम करते हैं।

पार्वती का प्रश्न कुछ और भी प्राचीन अथवा आधुनिक है। उसे पर्वताकार ही समझना चाहिए। उनको अवतारवाद ही तथ्यहीन जान पड़ता था।

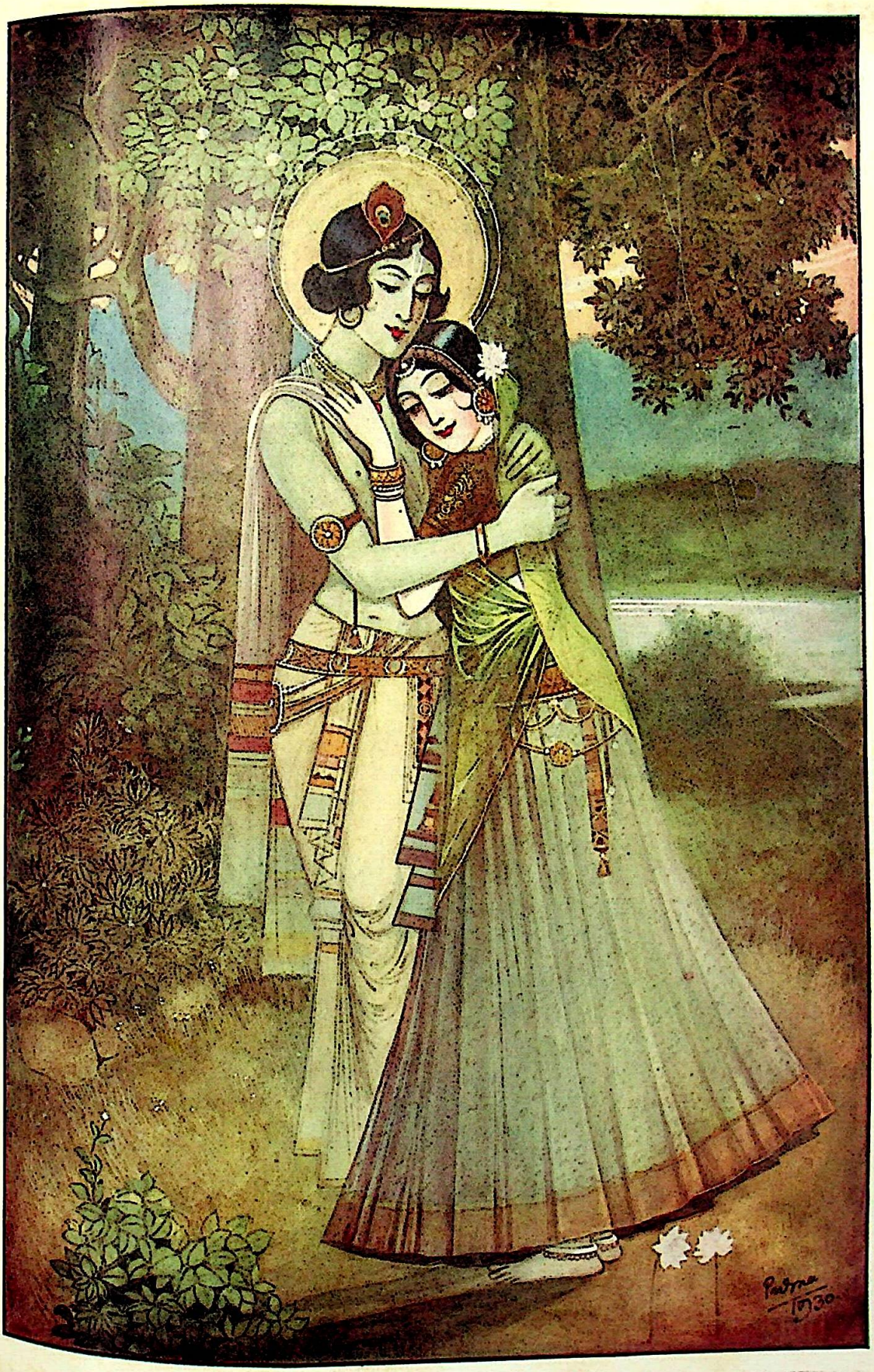

जीवन यौवन सफल करि मानलु

विद्यापति

उनकी समझ में अवतार एक प्रकार से असम्भव ही था। आज-कल का शिक्षित-समुदाय प्रायः इस प्रश्न पर विवाद किया करता है। तुलसीदास के समय में सम्भवतः नास्तिक कम थे।

खगपति का विषाद कुछ भिन्न है। वे अवतार को मानते हैं। उनकी समझ में अवतार में सब कुछ करने की शक्ति होती है। वे यही नहीं समझ पाते कि राम इस शक्ति की उपेक्षा क्यों करते हैं? राम की नर-लीला उन्हें पसन्द नहीं। वे शक्ति के उपासक हैं। उनके संमुख यह प्रश्न उपस्थित है कि परब्रह्म अवतार लेकर आता तो सही है; पर वह पृथिवी को स्वर्ग क्यों नहीं बना देता? वह अपने भक्तों को बड़ाई क्यों देता है? यह आज-कल का बहुत ही प्रचलित प्रश्न है।

यह तो उन श्रोताओं की परिस्थिति है जो हम लोगों से कहीं बढ़े हैं। हम लोगों के सम्मुख तो कलिकाल मुँह फाड़े उपस्थित है। उसके पंजे से किसी प्रकार बच जाने का उपाय ही क्या? हमें तो परमात्मा की सत्ता में सन्देह हो चला है, अवतार की बात ही क्या? हम तो कलि के तापों से सन्तप्त हैं; हमको शरण कहाँ? तुलसीदास कहते हैं कि यदि श्रद्धा के साथ मानस में अवगाहन करोगे तो सब कुछ ठीक हो जायगा, गति होगी, उन्हीं के शब्दों को स्मरण रखिए—

"पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥"

कहिए अवगाहन करेंगे?

—चन्द्रबली पाँडेय

(२) फलित ज्योतिष

(१)

त्रिकालदर्शी महर्षियों के निर्माण किये हुए सभी शास्त्र सत्य, ससत्व फलदायी, उपयोगी और महत्त्वसम्पन्न हैं। उनका समझना और उपयोग में लाना कई एकों को कठिन और कई एकों को सरल है। भारतीय आधुनिक मानव-समाज श्रम सहने में इतना शिथिल होगया है कि सरल की श्रेष्ठता और कठिन की बुराई में उसे सङ्कोच नहीं होता।

आज-कल के अधिकांश आदमी अति तुच्छ बात के लिए फलित-ज्योतिष पर भी लाञ्छन लगा देते हैं। वे इसका विचार नहीं करते कि बलाबल और चेष्टामात्र जानने में भी कितना परिश्रम किया जाता है। ग्रह निर्बल है या षड्बल-सम्पन्न, वह पाश-बद्ध है या सभा-प्रविष्ट—हँसता है या खिन्न-मनस्क—और धूमावेष्टित है या सुवर्ण-संयुक्त—इत्यादि बातें जानने के लिए एक ऐसा गणित किया जाता है जिसमें ज्योतिषियों को श्रम-भ्रम और विलम्ब बहुत होता है।

ज्योतिष के गणित-विभाग की कठिनता प्रकट है किन्तु फलित की प्रच्छन्न कठिनता को बहुत कम जानते हैं। केवल कुंडली देखकर भविष्य फल बतला दिया जाय, यह बात नहीं है। भविष्य वक्ता के लिए जातक का समय, ग्रहों की परिस्थिति, पञ्चाङ्गादि की समीचीनता, गणितागत ग्रहों की शुद्धि, देश, काल और पात्रादि का विचार, शास्त्र-ज्ञान की नवीनता, ऊहापोह की चतुराई, उपासना की सिद्धि, और प्रकृति की अनुकूलता आदि होने से ही कुछ कहा जा सकता है।

इन दिनों पञ्चाङ्गों के गणित में कितनी शिथिलता और भ्रान्ति बढ़ गई है, जातक ग्रन्थों का पठन-पाठन समझना और मिलना कितना कठिन हो गया है, स्वार्थत्याग और परमार्थ साधक तपस्वी ब्राह्मण कितने कम रह गये हैं, पूछनेवालों के कार्य-बाहुल्य, कृपणता और प्रलोभ कितने बढ़ गये हैं और इसी देश के विद्याओं के किसी एक अंश को भव्य बनाकर विदेशी विद्वान् यहाँ वालों को अपने घर से कितने विरक्त बना रहे हैं, इन सबका विचार भी बहुत आवश्यक है।

(२)

विशेषज्ञ व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि धर्म-कर्म और उपासना आदि में मनुष्यों की धारणा द्विधा विभक्त है। वे एक ओर से उनमें संलग्न और दूसरी ओर से विरक्त होते हैं। विशेषकर अँगरेज़ और अँगरेज़ी पढ़े हुए तथा उनका अनुकरण करने-वाले अग्रगण्य हैं।

जिस प्रकार इस देश के कुछ सम्प्रदायी मूर्ति-पूजा करते हुए भी उसका खण्डन करते हैं, उसी प्रकार कुछ अँगरेज़ भी हिन्दूशास्त्रों को मानते जानते और शिक्षा ग्रहण करते हुए भी उनको बुरे बतलाते हैं। उनका प्रभाव अनुवादकों पर भी पड़ता है और वे भी एतद्देशीय शास्त्रों पर लाञ्छन लगा देते हैं। एक ओर से वे फलित-ज्योतिष की खुले मुँह बुराई कर रहे हैं और दूसरी ओर से वे ही फलित-ज्योतिष की सत्यता प्रकट करने के लिए 'ग्रीनिच' आदि को दौड़े जारहे हैं और वहाँ जाकर जन्मपत्रियाँ और पञ्चांग बना रहे हैं।

ग्रीनिच में ज्योतिष के गणित और फलित-सम्बन्धी दुर्लभ, बहुमूल्य और उपयोगी अनेक यन्त्र और साधन हैं। वहाँ इँग्लेंड, अमेरिका और जर्मनी आदि के बड़े बड़े विद्वान् गणित और फलित के जटिल सिद्धान्तों को समझने-सुलझाने और समी-चीनता जानने को जाया करते हैं। वहाँ से दैनिक, मासिक और वार्षिक ट्रेक्ट पञ्चांग और भविष्य-फल भी प्रकाशित होते हैं और तद्देशीय ग्रामीणों तक की जन्मपत्रियाँ भी बनाई जाती हैं।

प्रत्येक गृहस्थ को ग्रीनिच से परिलेख फ़ार्म और इष्टबोधक घड़ी दी जाती है और फलित-ज्योतिष के प्रति उनका अनुराग बढ़ाया जाता है। भारत के साधारण ज्योतिषी सिर्फ़ बारह लग्नों से फल निका-लते हैं किन्तु ग्रीनिच में उनके तीन सौ साठ अंशों तक का फल निकाला जाता है। ऐसी दशा में वही अँगरेज़ फलित-ज्योतिष को बुरा बतलावें, यह उनकी द्विधाविभक्त मनः प्रवृत्ति का द्योतक है। वे उस काम को करते भी हैं और बुरा भी बतलाते हैं। बड़ा अद्भुत तमाशा है।

हिन्दूशास्त्र इतने सरल नहीं जो सहज ही समझ में आ जावें या कोई भी उनका पारङ्गत हो जावे। उदाह-रण के लिए आयुर्वेद का निदान-विभाग और ज्योतिष का फलित विभाग द्रष्टव्य है। इनके जानने के साधन और अङ्ग इतने कठिन हैं कि परम्परा से अनुशीलन करते आनेवाले विद्वान् भी अनेक बार अकुला जाते हैं। यही कारण है कि विलायती विद्वान् इन पर लाञ्छन लगाते हैं।

(३)

आकाश में लाखों कोस ऊँचे रहनेवाले ग्रह-नक्षत्र या ताराओं का पृथ्वी के प्राणी पदार्थ या प्रकृति पर क्यों और किस प्रकार असर पड़ता है? इसके जानने के लिए तत्वज्ञ महर्षियों ने त्रिष्कन्ध ज्योतिष के होरा और संहिता विभागों में बहुत-कुछ लिखा है। कई कारणों से होराशास्त्र के उत्कृष्ट ग्रन्थ और अठारहों संहिताएँ अस्तव्यस्त, नष्टप्राय या विलुप्त हो गई हैं। कुछ मिलती हैं, उनमें मेरठ की भृगु-संहिता जैसी ग्लानि उत्पन्न करती हैं। कुछ व्याप्त आश्रय और कुछ प्रसिद्ध सिद्धान्त शेष हैं जिनसे कहा जा सकता है कि पृथ्वी के प्राणी और पदार्थों का सूर्य और चन्द्रादि के उदय अथवा प्रकाश से पोषण और अपोषण दोनों होते हैं और साथ में प्रकृति की विकृति भी बनती है।

हम देखते हैं कि विविध प्रकार के वृक्ष-बेलि वनौषधियाँ, पौधे, अन्न और घास आदि में कई ऐसे हैं जो (१) लाखों कोस ऊँचे रहनेवाले अकेले 'सूर्य' से ही उगते, खिलते या पुष्ट और पक्व होते हैं। (२) कई ऐसे हैं जो अकेले 'चन्द्रमा' से ही विकसित, अङ्कुरित या पल्लवित होते हैं। (३) कई ऐसे हैं जो 'सूर्य और चन्द्र' दोनों से उत्पन्न या उन्नत होते हैं। (४) कई ऐसे हैं जो 'सूर्य और शशि' दोनों से ही नष्ट हो जाते हैं। (५) और कई ऐसे हैं जो केवल 'अन्य तारों' के दर्शन से ही प्रकट, प्रफुल्लित और फलदायी

बनते हैं। (६) कुछ ऐसे भी हैं जो इन सबको छिपा-कर 'अभ्राच्छन्न आकाश' होने से ही उत्पन्न होते हैं और (७) कुछ ऐसे भी हैं जो केवल 'घनगर्जन' के श्रवण से, 'बिजली' के प्रकाश से और 'इन्द्रधनुष' के स्पर्श से उत्पन्न होते हैं। प्रतीति के लिए कुछ का दिग्दर्शन करा देना यहाँ आवश्यक है।

(१) 'सहजणाँ' और 'सिरस' सूर्य से सुखी और प्रफुल्लित होते हैं। सूर्यातप के शान्त होते ही उनके अवयव मुर्झा जाते हैं। (२) 'सूर्यमुखी' एक फूल होता है। वह प्रातःकाल से सायङ्काल तक सूर्य को देखता हुआ घूमा करता है और रात्रि में अधोमुख हो जाता है। (३) 'कमल' सूर्य से और (४) 'कुमोदिनी' चन्द्र से खिलते हैं, यह प्रसिद्ध है। (५) 'सौरभ संयुक्त सभी कुसुम और कोमल कलिकाओं के सभी वृक्ष' चन्द्रमा से प्रफुल्लित होते हैं। (६) 'अनन्त मूल', जिसके पेंदे में अगणित जड़ें होती हैं, केवल तारागणों के प्रकाश से बढ़ता है। (७) 'खर्बूजा, ककड़ी, तरोई और कूष्मांड आदि की बेलें' अँधेरी रात में कई अङ्गुल बढ़ती हैं। (८) 'मिर्चाई कन्द' जैसे अलभ्य पौधे ऐसे भी हैं जो सूर्य-चन्द्र और तारागण किसी से राजी नहीं। वे बन्द कोठरी के गहरे अँधेरे में अधर लटका देने से खूब बढ़ते और फलते हैं। (९) 'बुढली', 'छत्रक' और 'भूस्फोट' केवल घनगर्जन से प्रकट होते हैं। (१०) 'विषकण्टक' इन्द्रधनुष के स्पर्श से बन जाता है। कूँचे, खैरी और खेजड़े के काँटों से इन्द्रधनुष का स्पर्श होते ही वे विषकण्टक बन जाते हैं। और (११) 'कुमारी कन्द' तथा 'रामबाँस' जैसे कुछ पौधे ऐसे धृष्ट और निष्ठुर भी होते हैं जो धूप, छाँह, अँधेरा, सर्दी, गर्मी या वर्षा अथवा सूर्य, चन्द्र और तारागण इनकी कोई परवा नहीं करते। उनको छाया में, वर्षा में या कड़ी धूप में, अँधेरे, उँजियाले कहीं पटक दीजिए बड़े प्रसन्न और स्वस्थ रहते हैं और स्वतः बढ़ते हैं। यही बात पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादि में भी होती है।

(४)

कई पक्षी दिन में ही उत्पन्न होते हैं। कई एकों का रात्रि में प्रसव होता है। कई शुक्लपक्ष में प्रसन्न होते हैं। और कई कृष्णपक्ष में पोख पाते हैं। (१) 'बागल', 'उलूक' और 'चमगादड़' सूर्य को एक आँख से भी नहीं देखते। उनके लिए अँधेरी रात ही पथभ्रष्ट को बचानेवाली है। (२) 'चक्रवाक' को चन्द्रमा से बड़ा सुख मिलता है। (३) 'मेंढक', 'मयूर' और 'वीरबहूटी' घनगर्जन और वर्षा से सजीव और प्रहृष्ट होते हैं। (४) 'चातक' स्वातिबिन्दु को चाट कर ही सन्तुष्ट होता है। (५) 'गधा' और 'गोधा' सूर्य की कड़ी धूप से उत्तेजित होते हैं। (६) 'ऊँट', 'महिष' और 'हाथियों' को पौष का चन्द्रमा उन्मत्त बनानेवाला होता है। (७) 'बिल्लियों' के लिए गहरा अँधेरा अनुकूल है और (८) 'कुत्ते' सूर्य, चन्द्र तथा तारागण किसी से नाराज नहीं। इनके अतिरिक्त वन्य तथा ग्राम्य और भी अनेकों पशु-पक्षी ऐसे हैं जिन पर सूर्यादिकों का असर पड़ता है।

मनुष्यों पर वह प्रभाव दो प्रकार से पड़ता है। एक तो अन्य पदार्थों की तरह सीधा उन पर आता है और दूसरे जितने प्रकार के प्राणी-पदार्थ, अन्न, औषध, जल, दूध और फल, पुष्प आदि ये खाते-पीते, पहनते या किसी भी प्रकार से उपयोग में लाते हैं उनके द्वारा आता है। अतः अन्य पदार्थों की अपेक्षा इन पर अधिक पड़ता है। सीधा आने में देश-भेद से, मनुष्यों को आकृति-प्रकृति और सङ्घटन आदि में जितने प्रकार की भिन्नता या भेद पाया जाता है वह सूर्यादिकों के प्रभाव का ही फल है। काले-गोरे, ठिगने, निमूँछे, सुन्दर, विकृताङ्ग और सम-विषम या न्यूनाधिक अङ्ग उपाङ्गोंवाले मनुष्य उसी प्रभाव से बनते हैं।

(१) स्वास्थ्य, भाग्य और प्रवीणता के लिए अरुणोदय और तत्कालीन उपासना में सूर्य का प्रभाव पड़ता है। (२) गर्भ के अर्भक को विकृताङ्ग बनाने में सूर्यग्रहण का देखना प्रधान होता है। (३) पित्त के

उपद्रव शान्त करने में शशि की शीतलता काम देती है। (४) शरत्पूर्णिमा के निशीथ में चन्द्र-किरणों के प्रपात से मनुष्यों के हित की गम्भीर ओषधियाँ तैयार की जाती हैं। (५) भौम के विधिवद्दर्शन से गलित कुष्ठ, गुह्यगुल्म और दृष्टि-दोष पर प्रभाव पड़ता है। (६) बुध से शैशवावस्था के बौद्धिक तत्त्व (७) गुरु से मेधा या विशेषज्ञता और (८) शुक्र से रजवीर्य का विकाश हो सकता है। और (९) शनि से शूलादि का उपशमन तथा (१०) धूम्रकेतु से अनेकों उपद्रव उत्पन्न होते हैं। (११) सप्तर्षि मण्डल से निकले हुए जलकण मनुष्यों के अनेकों कष्ट और व्याधियाँ दूर करते हैं और मृगशिरा आदि से अनेक प्रकार के मनस्ताप दूर होते हैं। यह सूर्यादिकों के स्वतन्त्र प्रभाव का किञ्चिन्मात्र दिग्दर्शन है।

जिस वस्तु या पदार्थ पर जिस ग्रह या तारा का जिस समय जिस प्रकार असर पड़ता है इसकी साङ्केतिक सूचना ऊपर दी गई है। उसके अनुसार जिन वस्तु-पदार्थों के सेवन से मनुष्यों में हर्ष, शोक, मोह, मूर्छा, धी, धारणा, मेधा, भ्रान्ति, स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य, शक्ति, अशक्ति या रज और वीर्य आदि का स्वतः सञ्चार होता है वह उन वस्तु-पदार्थों या औषध आदि में प्रविष्ट होकर आया हुआ सूर्य-चन्द्र या तारागणों का ही प्रभाव है। मनुष्य में यह स्वतःप्राप्त विशेषता है कि उसमें एक एक शक्ति के आ जाने से मेधा, महत्त्व, बल-व्यवसाय, सन्तति, सौभाग्य और शौर्यवीर्य, धैर्य आदि अनेकों शक्तियाँ स्वतःप्रवृत्त या उदय हो जाती हैं। अथवा दूषित और प्रतिकूल पदार्थों के सेवन से सब शक्तियाँ भय, भ्रान्ति और निर्बलता आदि में परिणत होकर दुःख, दुर्भाग्य या दुष्टता आदि को बढ़ा देती हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो उत्कृष्ट श्रेणी के अज्ञेय विज्ञान की क्रियाविशेष से रूपान्तर होकर सूर्य-चन्द्र और तारागणों, का वहा प्रभाव ये सब काम करता है। सन्देह सिर्फ़ इस बात का किया जाता है कि उस अज्ञेय विज्ञान का कुण्डलीगत ग्रहों से किस प्रकार ज्ञान हो जाता है। इसके लिए शास्त्रों का अनुशीलन, शास्त्रज्ञ सत्पुरुषों का अति-सेवन और समय की प्रतीक्षा आवश्यक है। साथ ही सुतीक्ष्ण बुद्धि भी।

(५)

विज्ञान के बहुत से विधान अज्ञेय या अलक्ष्य होते हैं। विशेषज्ञ विद्वानों या तत्वज्ञ ऋषियों के निश्चित किये हुए नियमों के अनुसार तैयार किये हुए कार्य का फल ही उस वैज्ञानिक क्रिया का प्रभाव हो सकता है। (१) सद्वैद्य के सम्पादकत्व में अठारह प्रकार के संस्कारों से सिद्ध किया हुआ 'पारा' मुर्दे को सजीव, पंगु को गगनगामी और ताँबे को सोना किस प्रकार बना देता है? (२) यथोक्त विधि से तैयार की हुई 'सुवर्ण भस्म' (सोने की राख) अन्य ओषधियों के मिश्रण या प्रयोग से सोना किस प्रकार बन जाती है? (३) किसी विशेष विधि से सिद्ध की हुई 'हीरे की भस्म' क्षीणकाय और वीर्यहीन व्यक्तियों को सबल, मेधावी और प्रतिभावान् किस प्रकार कर देती है? (४) वही 'हीरा' चूँसने-मात्र के दुरुपयोग से विष बनकर मनुष्यों को मार किस प्रकार देता है? (५) 'बीज' 'गर्भ' या 'अंडे' आदि तरु, मनुष्य, या पक्षी आदि के रूप में परिणत किस प्रकार होते हैं? और (६) शीशा तथा ताँबे की पट्टियों को गन्धक के तेज़ाब में डालकर उत्पन्न की हुई या अति-सङ्घर्षण की क्रिया से संङ्ग्रह की हुई 'बिजली' के संयोजन-मात्र से आधुनिक जनता को आश्चर्य में डालनेवाले अनेकों कार्य किस प्रकार होते हैं? यदि इनको प्रकृति को विकृति बतलाई जाय तो वह भी सूर्यादि के प्रभाव से ही बनती है।

अतः जिस प्रकार उपरोक्त बातें किसी अलक्ष्य या अज्ञात क्रिया से सम्पन्न होती हैं उसी प्रकार जिस समय जो प्राणी जिस स्थान में, जिस भाँति उत्पन्न होता है उस समय आकाश में जो ग्रह जिस राशि, नक्षत्र या अवस्था आदि में जिस प्रकार के बलाबल आदि से जिस भाँति स्थित

होता है उसी प्रकार वह प्रत्येक प्राणी, पदार्थ या मनुष्यों पर असर करता है। उसके जानने के लिए तत्कालीन लग्न में उसे स्थापित करके तदनुकूल भविष्य फल निश्चित कर दिया जाता है। रही यह बात कि १, १ लग्न में अनेक प्राणी उत्पन्न होकर भिन्न भिन्न भाग्य, धर्म या अवस्था के क्यों होते हैं? इसके लिए प्रत्येक लग्न के ३०-३० अंश और प्रत्येक अंश के अलग अलग फल निर्दिष्ट किये हैं, जिनसे पृथक् पृथक् प्रकृति के प्राणियों या मनुष्यों का अलग अलग फल मालूम हो जाता है।

हम लोगों को इस बात का परम आश्चर्य मानना चाहिए कि 'ग्रीनिच' आदि की विलायती वेधशालाओं में भव्य, विलक्षण और बहुमूल्य साधनों से जो काम किये जाते हैं और 'जयपुर', 'काशी', 'उज्जैन' तथा 'दिल्ली' की भारतीय वेधशालाओं से आकाश के ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का जो कुछ यथार्थ अनुसन्धान किया जाता है वह सब प्राचीन काल में बाँस, सर और तृणादि के द्वारा ऋषि-प्रणीत साधनों से सम्पन्न होते थे और आज-कल की अपेक्षा वे अधिक शुद्ध और विशेष उपयोगी समझे गये थे।

हमारे लिए यह गौरव और महत्त्व की बात है कि गर्ग, गौतम, भारद्वाज, कश्यप, वसिष्ठ, शुक्राचार्य और लोमस, पुलस्त्य, बृहस्पति आदि त्रिकालदर्शी और तत्त्वज्ञ महर्षियों ने संसार के उपकार के लिए होराशास्त्र और अठारह संहिताएँ निर्माण करके जातक, ताजक, प्राण और संवत्सर में उपलब्ध होनेवाले सुख-दुख-हानि-लाभ, शुभ-अशुभ, समर्घ, महर्घ, सन्तति-सौभाग्य और स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य आदि की प्रायः सम्पूर्ण बातों का भविष्य फल; केवल कुंडलीगत ग्रहों से या पञ्चाङ्ग की परिस्थिति से बहुत पहले मालूम हो जाने का अद्भुत, अद्वितीय और सुगम साधन तैयार कर गये हैं। अतः हमको उनके चिर-कृतज्ञ और ऋणी मानने में सङ्कुचित नहीं होना चाहिए।

इन दिनों विज्ञापन-बाज़ व्यक्तियों के आडम्बर से बहुत लोगों का वैद्यक और फलित ज्योतिष पर विश्वास घट गया है। नहीं तो ये दोनों विद्याएँ संसार के हित-साधन में अतःपर और तत्काल फल देनेवाली हैं। जातक, ताजक, प्राण और संवत्सर-सम्बन्धी फल कहने में आकाशस्थ ग्रहों को पञ्चाङ्ग में देखकर तत्कालीन लग्न-कुण्डली से उनकी जाति, अवस्था और आकृति आदि के अनुसार मनुष्यों के सभी व्यवहारों, व्यवसायों और प्रयोजनों का सम्पूर्ण फल प्रकट किया जा सकता है और उससे अनेकों काम बड़े ही अद्भुत, अलौकिक, अज्ञात और आश्चर्य-जनक रूप में सिद्ध होते हैं। किन्तु जितना फल निकाला जाता है, उतने ही साधनों से उसे उपलब्ध किया जाता है।

प्राचीन काल में इस विद्या की वृद्धि के लिए राजा, महाराजा और धनी लोग विविध उपायों से धन खर्च करते थे, वेधशाला बनवाते थे, विद्वानों को आश्रय देते थे, भविष्य-फल को ध्यान देकर सुनते और उसका अनुभव करते थे और जन्मपत्र, वर्ष-पत्र तथा पञ्चाङ्ग आदि बनवाते थे। आज से दो सौ वर्ष पहले तक के जन्म-पत्र, वर्ष-पत्र और पञ्चाङ्गों के देखने से प्रतीत होता है कि उन दिनों इनके बनवानेवाले इस विषय के कितने अनुरागी, कितने उदार और कितने श्रद्धालु थे। साथ ही बनानेवाले विद्वान् भी इस विषय के कितने भारी ज्ञाता, कितने प्रवीण और कितने परिश्रमी थे, जिन्होंने अपने समय की कई एक आदर्श, अद्वितीय और आज तक के लिए परम उपयोगी उत्कृष्ट वस्तुएँ तैयार की थीं। ऐसी दशा में कैसे कहा जा सकता है कि 'फलित-ज्योतिष निर्मूल है'। वास्तव में यह समूल और अकाट्य सिद्धान्तों पर आरूढ़ है और सिद्धि, साधक तथा साधनों की सानुकूलता में सब प्रकार का भूत, भविष्य और वर्त्तमान का सच्चा फल भलीभाँति बतला सकता है।

—हनूमान शर्मा,

क्या बच्चों के लिए माता की आज्ञा मानना आवश्यक है ?

नारी-जीवन का उद्देश क्या है ? मानव-जाति को क़ायम रखना और उसके क्रम-विकास में सहायक होना। सृष्टि के आदि से ही स्त्री को मातृत्व का उच्च पद इसी लिए प्राप्त है। उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति पर ही मानव-जाति की उन्नति निर्भर है। इस सत्य के प्रकाश को सब युग के दार्शनिकों ने एक दृष्टि से देखा है। यदि उनमें कभी मतभेद हुआ है तो वह केवल इस बात पर कि इस दिशा की ओर स्त्री अपने कर्तव्य का पालन कैसे करे। और यह तो तय है कि परिस्थितियाँ सदैव समान नहीं रहतीं। उनका प्रभाव उद्देशों पर न सही, उनकी पूर्ति के साधनों पर पड़ता है। इसलिए विभिन्न देशों और विभिन्न कालों के नारी-जीवन में यदि कोई अन्तर दिखाई पड़ता है तो उसे केवल मार्गों का अन्तर समझना चाहिए।

आधुनिक युग में नारी-जीवन को एक विशेष दिशा की ओर प्रवाहित होते हुए देखकर बहुत से लोग आश्चर्य करते हैं। वे समझते हैं कि समय

[मिसेज़ एल० जे० फ़िंच]
(आपने सारनाथ में बौद्ध-सम्मेलन के अवसर पर एक निबन्ध पढ़ा था।)

की गति ने स्त्रियों को उनके कर्तव्य से विमुख कर दिया है। पर हम कहेंगे कि वे ऊपर की चकाचौंध से ही घबरा उठते हैं और बात की गहराई तक नहीं पहुँचते। यदि वे ज़रा साहस करके इस युग की चकाचौंध के बीच से निकलें और उसके पार जाकर उस स्थान पर पहुँचें जहाँ मातृत्व की महानदी बहती है तो उसमें उन्हें स्नेह की वही गम्भीरता मिलेगी जिसके लिए वे वर्तमान को उपयुक्त नहीं समझते।

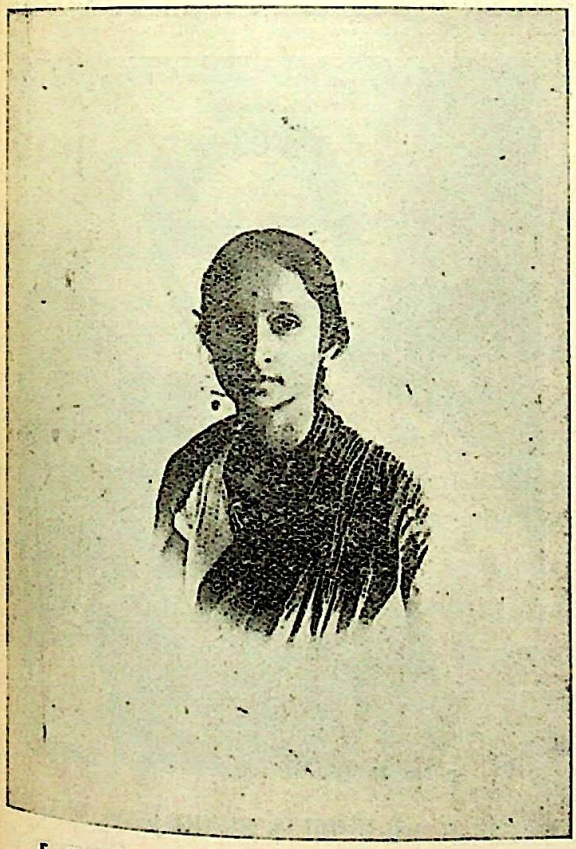

[श्रीमती कुसुमवती बाई देशपाण्डे बी० ए०]
(आप मोरिस कालेज नागपुर में इँगलिश की प्रोफ़ेसर नियुक्त हुई हैं। मध्यप्रान्त में इस पद पर आप पहली महिला हैं।)

पर यदि समय की गति को कोई न समझे तो इसमें उसका दोष क्या? उसको समझाने के लिए वह रुक थोड़े ही सकता है।

स्त्रियों के सामने यह प्रश्न शुरू से ही चला आ रहा है कि वे अपनी सन्तान का लालन-पालन कैसे करें और उसे उपयुक्त मानवीय आभूषणों से कैसे आभूषित करें? समय-समय पर विद्वानों ने इस

[मण्डी की महारानी श्रीमती ललितकुमारी देवी]
(आप हाल ही में हुए कानपुर में महिला शिक्षा-सम्मेलन की सभानेत्री थीं।)

प्रश्न को हल किया है। पर यह प्रश्न कभी पुराना नहीं पड़ा। स्मृतिकारों, विद्वानों और राह चलते व्यक्तियों तक को इसे अपने ढङ्ग से सोचने के लिए विवश होना पड़ा है। भावी संतति किस प्रकार शिक्षित की जाय, इस मामले को लेकर धर्माचार्यों और राज्यों तक ने व्यक्तियों को परेशान किया है। और अब तो यहाँ तक नौबत आ पहुँची है कि यह प्रश्न राष्ट्र का प्रश्न बना जा रहा है। कौन जाने कि वह दिन भी देखने को मिल जाय जब व्यक्तियों

को अपनी सन्तति के लालन-पालन के सम्बन्ध में ज़बान खोलने तक का अधिकार न रहे।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि व्यक्तियों का सन्तति पर कोई प्रभाव ही न पड़ेगा। सच तो

[श्रीमती जी० बी० मेहता]

(हाल ही में आपके सभानेत्रित्व में अखिल भारतवर्षीय जैन-महिला-सम्मेलन हुआ था।)

यह है कि धार्मिक या राजनैतिक बन्धन मातृस्नेह को बाँधने में कभी समर्थ नहीं हुए। लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् की व्यवस्था होते हुए भी हिन्दू माताओं ने अपने बच्चों को कभी मारा-पीटा नहीं। स्मृतिकार मातृ-हृदय को नहीं बदल सके, पर शिशु की मानसिक प्रवृत्ति बदलने में उन्हें अवश्य सफलता मिली है। बच्चों को आँख मूँद कर माता-पिता की आज्ञा मानना चाहिए, यह भाव स्मृतिकारों ने ही तो मानव-सन्तति में भरा है। हम यह मानते हैं कि इस भाव में शिशु की भावी उन्नति का लक्ष्य है। बच्चा अपने आप नहीं सोच सकता है जब तक वह समर्थ न हो जाय; मा-बाप उसके लिए सोचें। अब तक नव सन्तति का पालन-पोषण इसी नियम के अनुसार होता रहा है। परन्तु वर्तमान युग की आवश्यकताओं ने अधिकांश विद्वानों के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न कर दिया है कि यह नियम शिशु के विकास में बाधक होता है। इससे उसमें अपनी

[श्रीमती चिंफर्द वास]

(आपको मदरास सरकार ने कदूर ज़िला बोर्ड की सदस्या नामज़द किया है। इस पद पर आप पहली महिला हैं।)

शक्तियों को जानने और उनके अनुसार चलने का ज्ञान नहीं उत्पन्न हो पाता। इतने बड़े मानव-समाज के सदियों से प्राचीन रूढ़ियों के गुलाम बने रहने का यही कारण है। शिशु के मनोभावों

का अध्ययन करके उनकी शिक्षा आदि की व्यवस्था करनेवाले विद्वानों का कथन है कि यदि मा-बाप अपने बच्चों को आज्ञा न देकर केवल सलाह दिया करें तो वे बड़े होने पर और भी अच्छे नागरिक बन सकते हैं। योरप, अमरीका और रूस आदि देशों में इस प्रकार के प्रयोग भी प्रारम्भ हो गये हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में अमरीका का एक खास स्थान है। वहाँ की माताओं ने छोटे बच्चों के साथ बराबर के मित्र का-सा बर्ताव प्रारम्भ कर दिया है। वे हर बात में बच्चों को सलाह देती हैं। पर यदि बच्चे उनकी सलाह मानने से इनकार करते हैं तो वे उन्हें अपने इच्छानुसार कार्य्य करने की आज्ञा नहीं देतीं। अमरीकन मातायें अपने बच्चों के प्रति कैसा व्यवहार करती हैं उसका कुछ आभास आगे की बातों से लग जायगा।

यदि बालक को कड़वी औषधि देनी होती है तो कहा जाता है—औषधि और तुममें देखें किसकी जीत होती है? तुम इस दवा को जीत कर पी सकते हो या दवा तुमसे जीत जायेगी और तुम इससे पराजित होकर भाग जाओगे। यदि बालक अधिक मिठाई माँगता है तो कहा जाता है—"तुमको आज मिठाई बहुत मिल चुकी है। यदि और चाहते हो तो और भी मिल सकती है। पर यदि अधिक खाओगे तो तुम्हें रोगग्रस्त होना पड़ेगा। आज खाकर कल पछताना ही हो तो भले ही ले लो।" बच्चों की प्रत्येक विषय में सम्मति भी ली जाती है, जिसमें उनकी विचारशक्ति बड़ी ही तीव्र हो जाती है। स्वावलम्बी बनने और धनोपार्जन करने के लिए वे विशेष रूप से उत्साहित किये जाते हैं।

यही नहीं, वहाँ की मातायें अपनी संतान-शिक्षा के लिए ये सात बातें सदा ध्यान में रखती हैं—(१) बालक किसी समय धमकाये न जायँ। सब विषयों में आत्म-विकास के लिए अवसर दिया जाय। बच्चे स्वतन्त्रता-पूर्वक खेलते रहें। (२) बच्चे को कष्ट में अत्यन्त हताश न होने देने और गिर पड़ने से चोट लग जाने पर भी हँसते रहने की शिक्षा दें। (३) वहाँ की मातायें अपनी सन्तान के खेल-कूद तथा अध्ययन दोनों में संगिनी बनती हैं, न कि शासिका। (४) बालकों को देश-भक्त होने, सत्य बोलने, आत्म-सम्मान रखने, साहसी बनने, दूसरों के अधिकारों का मान करने और धन का सद्व्यय करने की शिक्षा दी जाती है। (५) घर के बाहर संसार की बात जानना, प्रकृति के सौंदर्य का ज्ञान, पशु-पक्षी तथा वनस्पति-शास्त्र आदि से बालकों को परिचित करना। (६) ऐतिहासिक गाथाओं का पाठ, इतिहास और साहित्य का ज्ञान बच्चों को अवश्य कराना। (७) शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए तैरना, घोड़े पर चढ़ना, शस्त्र-संचालन, मल्लयुद्ध, गेंद खेलना आदि बच्चों को अनिवार्य रूप से सिखाना। (८) काम के समय काम करना, छुट्टी के समय ख़ूब जी भर के खेलना, धूम मचाना, कूदना आदि क्रियायें कराना। (९) नियम-उल्लङ्घन के दण्ड को सहर्ष स्वीकार करने का आदी बनाना तथा उच्छृङ्खल और उद्दण्ड न होने देना। (१०) न्याय-परायणता और मातृ-पितृ-प्रेम सिखाना।

अमरीकन मातायें ऐसे ऐसे सिद्धान्तों को सावधानी से कार्य में परिणत करती रहती हैं। परिणामस्वरूप अमेरिका के बालक घर ही पर स्कूलों से कहीं अधिक उपयोगी शिक्षायें ग्रहण कर लेते हैं। बड़े होकर अपनी माता के चातुर्य से संसार में कीर्ति पाते हैं। इन्हीं गुणों से उनकी शोभा होती है न कि गहनों से। अमेरिका की विदुषी माताओं ने बहुत प्रयत्न करके ऐसे कई खेल निकाले हैं जिनसे बालक खेल ही खेल में कई विद्यायें सीख जाते हैं। अच्छा हो यदि हमारी भारतीय बहनें भी अपने घरों में कुछ इस प्रकार के प्रयोग आरम्भ करें।

—जयदेवी

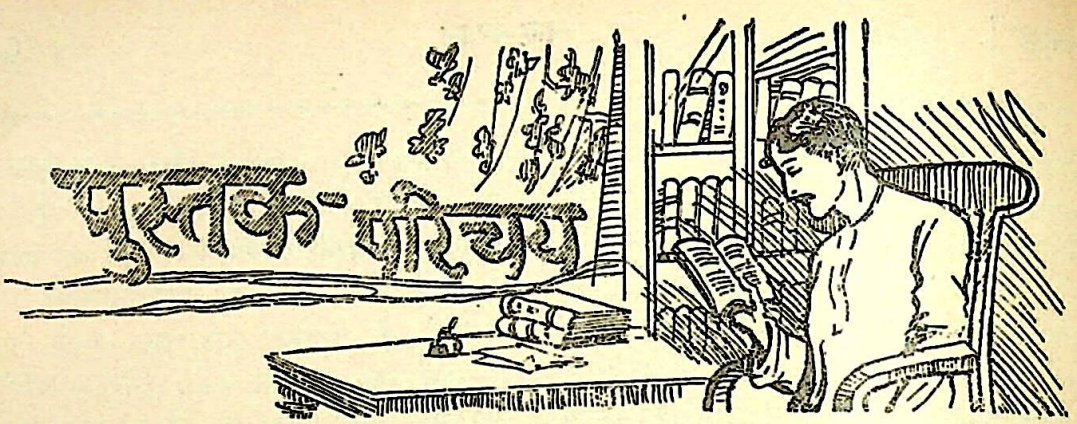

१—सत्याग्रह-गीता—लेखक, श्री वल्लभदास भगवानजी गणात्रा; प्रकाशिका, श्रीमती रमीबेन मोरारजी कामदार; कागज़ और छपाई बढ़िया; पृष्ठ-संख्या ७७ और मूल्य पाँच आने। मूल संस्कृत और टीका गुजराती।

इसमें अठारह अध्यायों में, ब्रिटान्या और रूटर के संवाद-रूप में, पिछले सत्याग्रह-युद्ध का मनोरञ्जक वर्णन है। भगवद्गीता की नकल पर यह है और शुरू में उसी प्रकार 'ध्यान' भी दिया है। नमूना लीजिए:—

राजद्रोह-तट, सुवह-सलिला पोलीस-नीलोत्पला,
दण्डग्राहवती, चरेण वहनी, सार्जण्ट-वेलाकुला।
अर्वीनाद्यधिकारि-घोरमकरा, तोपाननावर्तिनी,
सोत्तीर्णा खलु भारतैर्भय-नदी कैवर्तको मोहनः॥

बम्बई-प्रान्त में पुलिस की नीली वर्दी होती है; इसलिए 'पोलीस-नीलोत्पला' कहा है। 'चरेण' जाति में एक वचन है, अन्यथा 'चरैश्च' चाहिए।

'ध्यान' के बाद 'गीता-माहात्म्य' भी है, जिसमें भारत-माता प्रश्न करती है कि स्वराज्य कैसे मिलेगा और महात्माजी उत्तर देते हैं:—

सत्याग्रह-पराः सर्वे भवेयुर्यदि ते सुताः।
विदेशि-वस्त्र-मोहं च त्यजेयुर्मम शासनात्॥
नश्येत्तेषां महादुःखं द्रुतं बन्धनसम्भवम्।
पृथ्वीमण्डल-देशेषु वर्द्धेत च यशः सितम्॥
अहिंसाबलमाश्रित्य युध्यन्ते मानवास्तु ये।
तेषां जयो भवेदत्र न जायेत पराभवः॥

'माहात्म्य' के बाद गीता शुरू होती है:—"ब्रिटान्योवाच—

एप्रिलस्य दिने षष्ठे धर्म-युद्धं चिकीर्षवः।
सैनिका गान्धि-सैन्यस्य किमकुर्वत रूटर!

रूटर उवाच

कौटिल्य-रहिता वीराः शान्तिशस्त्र-समन्विताः।
गान्धिसेनाविशिष्टा ये संज्ञार्थं तान् ब्रवीम्यहम्॥

बस, इसी प्रकार आगे अठारह अध्यायों में यह गीता है। सुन्दर है।

२—श्री रामानुजीय-मत-खंडनम्—लेखक का नाम छपा नहीं है; प्रकाशक, 'ब्रह्मर्षि' हरेराम सुज्ञाराम पण्डित, अहमदाबाद; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ६८; छपाई और कागज़ साधारण; मूल्य चार आने।

अब से सैकड़ों या हज़ारों साल पहले एक बार ख़ूब ज़ोर से भारत में वैष्णव-धर्म का प्रचार हुआ था, यह बात सुप्रसिद्ध है और भारतेन्दु बाबू श्री हरिश्चन्द्र ने अपने 'वैष्णवता और भारतवर्ष' नामक निबन्ध में तो यहाँ तक लिखा है कि भारत का प्रकृत धर्म वैष्णव-धर्म ही है। वैष्णवों के चार मुख्य सम्प्रदाय हैं—१—निम्बार्क-सम्प्रदाय, २—रामानुज-सम्प्रदाय, ३—मध्व-सम्प्रदाय और ४—वल्लभ-सम्प्रदाय। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भक्तराज सूरदासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में ही हुए हैं। इसी प्रकार श्री रामानन्द आदि रामानुज-सम्प्रदाय में हुए हैं। जिस सम्प्रदाय के शुरू में जिनका नाम है, उसके प्रवर्तक वे ही आचार्य हैं।

जिन उद्देशों की पूर्ति के लिए वैष्णव-धर्म का उदय हुआ था, उनमें से कुछ ये हैं—१—ज्ञान और कर्म

से युक्त भगवद्भक्ति का प्रचार, २—जन्मना उत्कर्ष-अपकर्ष को दूर करना, ३—धर्म में मनुष्य-मात्र को समान अधिकार देना, ४—अछूतोद्धार और ५—शुद्धि। ध्यान रखना चाहिए कि वैष्णव-धर्म का ही दूसरा नाम 'भागवत-धर्म' है, जिसका ज़िक्र कई शिला-लेखों में आया है। अपने समय में वैष्णव-धर्म अपने उद्देशों की पूर्ति में सफल हुआ था; यद्यपि अब उसके ये उद्देश केवल उसके ग्रन्थों में ही हैं।

वैष्णव-धर्म ने अछूत कहलानेवाले दलित भाइयों का यहाँ तक अभ्युत्थान किया था कि उन्हें न केवल धर्म और समाज में समान अधिकार ही दिये; बल्कि समस्त सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य्य के पद पर उन्हें अभिषिक्त किया। रामानुज-सम्प्रदाय में कई आचार्य 'अछूत' कहलानेवाली जातियों के हुए हैं।

प्रकृत समालोच्य पुस्तक में रामानुज-सम्प्रदाय का खण्डन इसी बात को लेकर किया है कि इस सम्प्रदाय में या वैष्णव-धर्म-मात्र में अछूत-सछूत का कोई विचार नहीं, आचार्य्य तक अछूत हो गये हैं! इसलिए यह सम्प्रदाय अवैदिक है, नीच है, पतित है। जिनको अच्छी लगे, 'ब्रह्मर्षि' जी महाराज से मँगालें, चार आने भेंट देकर। मूल संस्कृत और टीका हिन्दी में है।

३—पाखण्ड-धर्म-खण्डन नाटक—लेखक, श्रीदामोदर संन्यासी और प्रकाशक, पूर्वोक्त 'ब्रह्मर्षि' जी; मूल संस्कृत और टीका गुजराती; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ७५; छपाई और काग़ज़ साधारण; मूल्य चार आने।

नाटक तो सिर्फ़ इसका नाम ही है और कुछ नहीं। नाटक के 'नान्दी' आदि शब्दों का प्रयोग है और बस। कहीं कहीं प्राकृत का भी प्रयोग हुआ है, जिससे लेखक प्राकृत-कुशल भी जान पड़ते हैं; पर संस्कृत कहीं कहीं अशुद्ध है।

इस पुस्तक में बौद्ध, जैन, और वैष्णव-धर्म के आचार्यों को खुली गालियाँ दी गई हैं। उन्हें नीच, दुराचारी, व्यभिचारी और न जाने क्या क्या कहा गया है! कई जगह तो स्त्रीन्द्रिय का खुले शब्दों में नाम आया है और पुमिन्द्रिय से उसके संयोग का भी संन्यासीजी ने बार बार कीर्तन किया है। ख़ास तौर पर वैष्णवों के वल्लभसम्प्रदाय को संन्यासीजी ने अपना लक्ष्य बनाना है। नमूने के तौर पर एक एक पद्य तीनों धर्मों के 'खण्डन' का लीजिए।

जैनाचार्य के मुख से कहलाया गया है—

मन्तो न यन्तो नहि किं पिसाणो,
जाणन्ति नेमं गुरु अप्पशायो।
मद्यं पिआमो महिलं भजामो,
मोपं वजामः गुअमग्ग अग्गः॥

अर्थात्

मंत्रं न यंत्रं नहि किञ्च जाने,
जानेऽहमेकं च गुरोः प्रसादम्।
भजे नवोढां, मदिरां पिवामि,
मोक्षं गमिष्यामि गुरोः प्रसादात्॥

टीका करना व्यर्थ है। बौद्धाचार्य के मुख से कहलाया गया है—

आवासो निलयं मनोहरमभिप्रायानुकूला वणिङ्,
नार्यो, वाञ्छितकालमिष्टमशनं शय्या मृदुप्रस्तराः।
श्रद्धापूर्वमुपासते युवतयः क्लृप्ताङ्गरागोत्सवैः,
क्रीडानन्दभरैर्व्रजन्ति यमिनां ज्योत्स्नोत्सवा रात्रयः।

और भी—

"तस्माद् भिक्षुषु दारानाक्रमत्सु नेर्ष्यितव्यम्। चित्तमलं हि यदीर्ष्या!"

'वैष्णवीं चुम्बमानः' (!) वैष्णवाचार्य के द्वारा कहलाया है:—

आलिङ्गनं भुजनिबन्धनमायताक्ष्याः,
स्वच्छन्दपानमशनं न परस्वभेदः।
स्वात्मार्पणं युवतिभिर्गुरुषु प्रयुक्तम्,
धन्यं च वैष्णवमतं भुवि मुक्ति-हेतुः॥

उदाहरण पर्याप्त हैं। हम कह चुके हैं कि इस पुस्तक की संस्कृत कहीं कहीं अशुद्ध है।

दोनों पुस्तकों के पढ़ने से प्रकाशक 'ब्रह्मर्षि' जी की ब्रह्मर्षितामय मनोवृत्ति का पता चलता है और इस 'नाटक' की सैर से तो इसके लेखक और प्रकाशक 'ब्रह्मर्षि'

जी और 'संन्यासी' जी का चरित्र-चित्र आँखों में घूम जाता है।

इन दोनों पुस्तकों को देखकर मन में आया कि ऐसी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए जहाँ 'धर्मात्मा' सेठ रुपयों की थैली खोल देते हों, उस देश के सुधार में अभी देर है।

४—आराधना-शतकम्—लेखक, श्री प्रीतमलाल नृसिंहलाल कच्छी, बी० ए०, हेडमास्टर, श्री देवी अहिल्याबाई हाईस्कूल, खरगौन (इन्दौर); प्रकाशक भी आप ही हैं। छोटे आकार के १६ पृष्ठों का मूल्य चार आने बहुत ज्यादा हैं, हद से परे!

संस्कृत में १०१ फुटकर विभिन्न छन्दों में भगवान् की स्तुति है। कच्छी जी का संस्कृत-प्रेम, और भगवद्-भक्ति प्रशंसनीय है। कहीं कहीं कवित्व भी है। संस्कृत शुद्ध है।

५—श्रीसौम्यकाशीश-स्तोत्रम्—लेखक, श्रीस्वामी तपोवनम् जी; प्रकाशक श्री वल्लभराम विश्वनाथ पण्डित, पडधरी, काठियावाड़, आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ८६, काग़ज़ और छपाई बढ़िया होने पर भी मूल्य दस आने बहुत ज्यादा है।

पुस्तक में स्वामीजी ने भिन्न-भिन्न संस्कृत छन्दों में, संस्कृत में ही, भगवान् भूतभावन विश्वनाथ की स्तुति की है, जिसमें अद्वैत वेदान्त का तत्त्व भरने की चेष्टा की है। अनेक स्थानों पर तो उपनिषदों का ज्यों का त्यों रूपान्तर-सा जान पड़ता है। शिव-भक्तों के काम की चीज़ है।

६—श्रीहनुमद्दूतम्—लेखक, श्रीनित्यानन्दजी शास्त्री और प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई; छोटे आकार के पृष्ठ ६०; काग़ज़ और छपाई इस प्रेस की सब जानते ही हैं। मूल्य लिखा नहीं है।

प्रकृत पुस्तक संस्कृत में है, नीचे हिन्दी अनुवाद है और अन्त में विषम-स्थलों पर लेखक के भाई श्रीभगवती-लालजी विद्याभूषण-कृत टिप्पणी भी है।

कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर संस्कृत में कुछ लोगों ने काव्य बनाये हैं और बहुतों ने उसके प्रत्येक चरण का चतुर्थ चरण समस्या की तरह लेकर समस्या-पूर्ति की तरह काव्य रचे हैं; पर—

लिखन बैठ जाकी सबिहिं गहि गहि गरब गरूर
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर!'

फिर भी, आज-कल यदि इतना भी हो जाय, तो क्या कम है!

प्रस्तुत पुस्तक भी उसी प्रकार का एक खण्डकाव्य है—'मेघदूत' के पद्यों के चतुर्थांशों को लेकर समस्या-पूर्ति के ढँग पर लिखा गया है। कहीं कहीं लेखक को अच्छी सफलता मिली है, ख़ासी काव्य-छटा नज़र आती है। स्वकृत काव्य का हिन्दी में अनुवाद भी आपने ही किया है। कहना चाहिए कि हिन्दी की अपेक्षा आपकी संस्कृत-रचना अच्छी है।

इसमें श्रीहनुमानजी के द्वारा श्रीरामजी ने श्रीजानकीजी के पास सन्देश भिजवाया है। सुग्रीव के भेजे हुए हनुमान्जी रामजी के पास आये और प्रणाम करने लगे—

'तस्मिन्छैले कृत-सखि-कृतिर्जातुचित् स प्लवङ्गान्,
पत्यादिष्टाञ्जनकतनयान्वेषणायावलोक्य।
स्वार्थाधानक्षममनिलजं क्ष्मां स्पृशन्तं प्रणत्या,
वप्रक्रीडा-परिणतगज-प्रेक्षणीयं ददर्श।'

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

मित्रकार्य करने पर प्रभु ने कभी स्वपति के द्वारा पूर्ण,
सीता-प्राप्ति अर्थ समझाये कपिकुल को निहार सम्पूर्ण।
लखा स्वकार्यसिद्धि में कर्मठ मारुति को झुकते भू पर,
तिर्छे दाँतों से ढूहे को ज्यों कि ढाहता हो गजवर।

यह भी कुछ बुरा नहीं है, अच्छा ही है।

फिर—

'तं सिद्धार्थानपि विरहितान् कान्तया कार्य्यसिद्ध्या
योक्तुं शक्तं सुरतरुमिव प्रेक्ष्य दध्यौ स रामः।
अस्यालोकाद् भवति मुदितः सर्वसौख्यान्वितोऽपि,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे?'

इसमें पूर्व दो पाद तो ठीक हैं, पर तृतीय और विशेषतः चतुर्थ चरण जमा नहीं—समस्या की पूर्ति नहीं हुई। मेघ-दर्शन पर तो चतुर्थ चरण ठीक बैठता है; पर हनुमान्जी के दर्शन में कैसे संगत हो? फिर सामान्य

से विशेष का समर्थन है; क्या हनुमान्‌जी भी कोई 'एजेंसी' हैं ?

'ध्यात्वैवं स प्रियशुभदृशा दर्शितार्चाय तस्मै'

का अनुवाद—

'यह विचार शुभ-दृष्टि डाल के मानों प्रभु ने अर्चा की' इसमें 'मानों' अच्छा नहीं रहा। इस जगह अर्चा करने की उत्प्रेक्षा उचित नहीं है। उसका तात्त्विक रूप से वर्णन चाहिए, जैसा मूल में है।

लेखक ने लिखा है कि पहले रामजी अँगूठी से ही सब सन्देश कहने की सोचने लगे और फिर बिना कोई कारण बतलाये ही झट से, दूसरे ही पद्य में, वे हनुमान्‌जी से सन्देश कहने लगे हैं। कुल मिलाकर, पुस्तक अच्छी है। कहीं कहीं शास्त्रीजी ने कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

७—पद्मालय—लेखक और प्रकाशक, पण्डित श्रीजगन्नाथजी शर्म्मा, एम० ए०, हेड मास्टर, हाई स्कूल, भरतपुरा, पटना, मझोले आकार के पृष्ठ १०५ और छपाई-सफ़ाई भी मझोली ही, जिसका मूल्य बारह आने कुछ अधिक मालूम होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक की विभिन्न विषयों की मौलिक और अनूदित पद्यावली है। आपने गीता के अठारहों अध्यायों का भी पद्य-बद्ध अनुवाद किया है, जो इसी पुस्तक में है। किसी-किसी पद्य में काव्य-छटा भी है। 'अछूत' शीर्षक देकर आप लिखते हैं:—

"हरि-पद से यह जन्म, हुए फिर भारतवासी;
धर्म सनातन ग्रहण किया, हो राम-उपासी।
जन-सेवा-व्रत लीन, दीनता को अपनाया;
निरख प्रलोभन-पुञ्ज धर्म गहते न पराया।
उनको अछूत कहते अरी !
जिह्वा क्यों गिरती नहीं !
क्या पत्थर तू भी (हा ! ?) हो गई ?
छाती ! जो फटती नहीं !

और भी:—

है कैसा अन्याय हाय ! भारत में छाया;
समझा जाता बन्धु पतित अति पूत पराया !
'रामदास' का स्पर्श आज हमको खलता है;
किन्तु 'मुहम्मद' और 'जौन' कर धर मलता है !
है बुद्धि हमारी क्या हुई !
निपट बावले हो गये !
क्या ज्ञान विवेक विचार ये'
सबके सब हैं सो गये !

पुस्तक में यत्र-तत्र छन्दोभंग भी है।

८—इन्द्रार्जुन-संवाद—लेखक और प्रकाशक, कुँ० श्रीरामलालजी वर्मा, भल्ली बाज़ार, अलमोड़ा, आकार और छपाई-सफ़ाई मध्यम; पृष्ठ-संख्या सिर्फ़ ३४, जिसका मूल्य छः आने कुछ अधिक है। भूमिका-लेखक हैं श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पन्त, भू० पू० एम० एल० सी० और अपने प्रान्त के नेता।

महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग का यह पद्यानुवाद है। अनुवाद की हिन्दी साफ़ है; पर कहीं कहीं छन्दोभंग है। उदाहरण:—

रणाभिलाषी सदृश पहनना यह क्यों वर्म है।
वल्कल है मुनि-वसन, अधिक बस हरिण-चर्म है।
मुमुक्षुत्व के साथ भला निःस्पृह शरीर पर,
क्या चाहिए निषङ्ग और यह धनुष भयङ्कर ?

× × ×

भूत-भयावह भीम खड्ग यम-अपर-भुजा सम,
कर सकता यह प्रकट तपस्थ का क्या कभी शम ?
अभिलाषा है शत्रु-विजय की अवश्य ही मन,
कहाँ अन्यथा शस्त्र ? शान्ति-प्रिय कहाँ तपोधन ?

इस संवाद के पहले, कथा-प्रसंग भी पद्य-बद्ध दे दिया गया है; इससे बड़ा अच्छा हुआ है।

इन्द्र, छद्म-वेश में आकर, अर्जुन को बाबा जी बन कर भगवान् का भजन करने का उपदेश करता है—वस्तुतः ऐसा करके उनके निश्चय की परीक्षा करता है। अर्जुन उसे करारा उत्तर देते हैं कि—

करके जब तक नहीं शत्रु का नाश समर में,
नहीं करूँ उद्धार वंशलक्ष्मी मुनिवर मैं।
कार्यान्वित कर सकूँ आपकी नहीं युक्ति को।
विजय-मार्ग में महा समझता विघ्न मुक्ति को।

कहीं कहीं भाषा भी शिथिल है। यह बात इन उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाती है। फिर भी, पुस्तक उपयोगी है।

९—श्रीमद्रामानन्द-दिग्विजय—मूललेखक और हिन्दी-टीकाकार, ब्रह्मचारी श्रीभगवदाचार्य्यजी, प्रकाशक श्रीरामानन्द-साहित्य-प्रचारक मण्डल, लहरीपुरा, बड़ोदा; आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २८०; सफ़ाई-छपाई और काग़ज़ भी अच्छा; मूल्य लिखा नहीं है, शायद बिना मूल्य वितरित होता है।

इस पुस्तक में श्रीरामानन्दजी का जीवन-चरित्र काव्यमय भाषा में और काव्य-रीति से संस्कृत में वर्णित है। ग्रन्थ बीस सर्गों में समाप्त हुआ है। और यत्र तत्र शृङ्गारादि रसों के अभिव्यंजन करने का भी प्रयत्न किया गया है। आचार्य के मुख से वैष्णव-धर्म का रहस्य और अध्यात्म-तत्त्व भी कहलाया गया है, जो बहुत अच्छा है।

श्रीरामानन्दजी का प्रादुर्भाव प्रयाग में ही श्रीपुण्य-सदन नामक समृद्ध और विद्वान् ब्राह्मण की पत्नी श्रीसुशीला देवी के गर्भ से हुआ था। इसी प्रसंग से प्रयाग का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—

यस्यां हि सायं गृहवाटिकासु,
प्रफुल्लपुष्पानतगुल्मिनीषु।
चन्द्राननानां रमणीजनानाम्,
क्रीडाविनोदाधिरसा बभूवुः॥

और—

भागीरथीतीरसमाश्रितानाम्,
यस्यां हि सायं रमणीजनानाम्।
मुखे गृहादागमनश्रमोत्थाः,
अपःसुखं गन्धवहा अपीप्यन्॥

यस्यां = प्रयाग-नगर्य्याम्।

पुस्तक अच्छी है। जहाँ तहाँ छापे की अशुद्धियों के अतिरिक्त भाषा और साहित्य-सम्बन्धी असली ग़लतियाँ भी रह गई हैं। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है अतएव तीसरे संस्करण में अवश्य इनका संशोधन हो जायगा, ऐसी आशा है।

ब्रह्मचारीजी का श्रम श्लाघनीय है। भाषा मधुर है।

—किशोरीदास वाजपेयी

१०—प्राचीन कवि और पंडित—लेखक पूज्यपाद आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक गंगापुस्तकमाला, लखनऊ, मूल्य ॥।=) सजिल्द १।=) पृष्ठ-संख्या १३६। पुस्तक का द्वितीय संस्करण हमारे हाथ में है। इस पुस्तक में भवभूति, लोलिम्बराज, फ़ारसी कवि हाफ़िज़, बौद्धाचार्य शीलभद्र, मधुर वाणी [स्त्री कवि], सुखदेव मिश्र, हरिविजय सूरि, आचार्य दिङ्नाग अर्थात् आठ महाकवियों की कविता तथा उनका परिचय दिया गया है। भारतवर्ष की प्राचीन गरिमा के विषय में अभी पन्द्रह वर्ष भी नहीं हुए कि लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ था। जिन लोगों-द्वारा उक्त भ्रम का नाश हो रहा है तथा हुआ है उनमें द्विवेदीजी का भी स्थान है। शेक्सपियर-मिल्टन शैली आदि की रचनाओं पर मुग्ध होनेवाले शिक्षित वर्ग जो भारतवर्ष के कवियों को हेय समझते हैं उनके अन्धकार को दूर करने के लिए ऐसी पुस्तकों की कितनी आवश्यकता है, कहा नहीं जा सकता। प्रथम तो संस्कृत-साहित्य के विषय में हिन्दी में पुस्तकों का अभावसा है। जो हैं वे भी पूर्ण परिचय कराने में असफल सिद्ध हो चुकी हैं। पूज्य द्विवेदीजी ने संस्कृत-साहित्य के इन दिग्गज महाकवियों पर छोटे-छोटे निबन्ध लिख कर हिन्दी-भाषी जनता का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। ये निबन्ध पहले सरस्वती में निकल चुके हैं, गंगापुस्तकमाला ने उन्हें एकत्र कर छपवाया है।

११—सुभद्रा अथवा मरणोत्तर जीवन—लेखक वी० दी० ऋषि, बी० ए०, एल-एल० बी०। प्राप्तिस्थान लीडर प्रेस, प्रयाग। मूल्य १), पृष्ठ-संख्या १४४।

'मरने के पश्चात् जीव कहाँ जाता है,' इसी विषय पर ऋषि महोदय ने यह पुस्तक लिखी है। जिस तरह संसार के भिन्न-भिन्न भूभागों में इस विषय पर भिन्न-भिन्न मत हैं उसी तरह अपने देश में भी हैं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतवासी अच्छी तरह मानते हैं। ऋषि

महोदय ने नवीन विचारधाराओं को लेकर तथा कुछ पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव से प्रेरित होकर इस विषय का एक अच्छा चित्र खींचा है। यह विषय विवादग्रस्त अवश्य है। परन्तु कोई विषय विवादग्रस्त होने ही से त्याज्य नहीं है। पाठक देखेंगे कि इस पुस्तक में एक से एक कौतूहल पूर्ण घटनाओं का समावेश कराया गया है। जो इस विषय पर कुछ विश्वास रखते हैं उनको दृढ़ करने की इसमें यथेष्ट सामग्री है और जो विश्वास नहीं करते उनके लिए काफ़ी मनोरञ्जन भी इसमें प्रस्तुत है। अतः दोनों दृष्टि से यह पुस्तक पठनीय है।

—नरसिंहराम शुक्ल

प्राचीन आर्यवीरता

के विषय में देखिए प्रसिद्ध पत्र "प्रताप" की क्या सम्मति है:—

"पुस्तक नागरी-प्रचारिणी सभा की मनोरञ्जन-पुस्तकमाला की ४९ वीं पुस्तक है। इसमें राजपूताने के महाराना प्रतापसिंह, पृथ्वीराज चौहान, भीमसिंह, हम्मीरसिंह, चूड़ा, राजसिंह, दुर्गादास आदि १४ वीरों के चरित्र दिये गये हैं। वीरों का चरित्र-चित्रण अच्छे ढंग से किया गया है और उनकी वीरता एवं साहसपूर्ण कार्यों को पढ़कर हृदय में वीर-रस का संचार हो उठता है। लड़कों के अभिभावकों तथा माता-पिताओं को चाहिए कि वे उन्हें ऐसी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया करें।

२१० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

हास्य और विनोद

१—तीन

(१)

प्राण हरने में छोटू वैद्य।
कर रहे सचमुच ख़ूब कमाल॥
खड़े रोते हैं सब यम-दूत।
कि यम अब देंगे उन्हें निकाल॥
बढ़ रही है छोटू की ख्याति।
मिल रहा है धन, मान प्रभूत॥
भला देखें, कब छोटू वैद्य।
स्वर्ग में होते हैं यमदूत॥

(२)

हुए भट बड़ी दवायें कूट।
बन गये नागर धन को लूट॥
हो रहे हैं अब छोटू वैद्य।
सुधारक-दल के भी रँगरूट॥
उन्होंने किया कहीं तो ब्याह।
कहीं की शादी, कहीं निकाह॥
हो गई उनकी ऊँची नाक।
कहेगा कौन नहीं अब वाह॥

(३)

एक दिन छोटू ने सक्रोध।
शिकायत की बक्कू के पास॥
दवा लेगा अब मेरी कौन।
कर रहे हैं जब सब उपहास॥
कहा बक्कू ने—यह क्या बात?
झगड़ते-मरते लोग तमाम॥
मुझे झगड़ेवालों की चाह।
तुम्हें मरनेवालों से काम॥

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

२—साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

दृश्य पहला

(टिकट-घर यू० पी० का कोई रेलवे स्टेशन)

शेख़रहीम—बाबू साहब दो टिकट जबलपुर के इनायत कीजिए।

बाबू—अभी ठहरो (श्यामलाल को बतलाते हुए) पहले इनको टिकट देने दो, इनको पाँच टिकट लेना है, इनको भी जबलपुर जाना है।

असदुल्ला—नहीं जनाब, इनको आप टिकट नहीं दे सकते। जनाब ख़ांबेग फ़रमाते थे कि यू० पी० में हिन्दुओं की तादाद मुसलमानों से दुगुनी है। इस लिए जब हम जबलपुर के दो टिकट ले रहे हैं तब आप इनको चार टिकट से ज़्यादा नहीं दे सकते। जब मौलाना शौकत अली वग़ैरह ने राउंडटेबिल में इस तरह की धींगा-मस्ती होने देना क़बूल नहीं किया तब यहाँ हम कैसे होने देंगे?

बाबू—गाड़ी आने का वक़्त हो गया है। क्या बहस बढ़ा रहे हो? हमारा वक़्त ख़राब मत करो।

रहीम—जनाब ज़रा मुँह सँभाल कर बोलिए। आप तो ईसाई हैं। आपको हिन्दुओं की तरफ़दारी नहीं करना चाहिए।

असदुल्ला—मैं हर्गिज़ श्यामलाल को पाँच टिकट न लेने दूँगा।

बाबू—(ज़ोर से) कान्स्टेबिल। निकाल दो इन दोनों को। काम में गड़बड़ करते हैं।

कान्स्टेबिल—(हटाकर) निकल जाओ।

[श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०]

बाबू—लो जी ये पाँच टिकट जबलपुर के (श्यामलाल टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ा होता है)

असदुल्ला—बाबू साहब गाड़ी के आने की घंटी हो गई। अब तीन टिकट दे दीजिए। उसने पाँच लिये हैं तो हम तीन लेंगे। एक जबलपुर जानेवाले किसी मुसलमान को हम और तलाश लेंगे।

बाबू—इससे हमको मतलब नहीं, लाओ तीन टिकट के रुपये।

असदुल्ला—(देते हुए) लाइए। रहीम! देखो कोई जबलपुर जानेवाला मुसलमान हो तो जल्दी ढूँढ़ लो।

(इतने में ट्रेन आगई। श्यामलाल अपने चारों हिन्दू-साथियों के सहित बैठने लगा)

रहीम—देखना ये लोग बैठने न पावें जब तक कि कोई तीसरा आदमी न मिल जाय।

असदुल्ला—ऐ गार्ड साहब! गाड़ी को ज़रा रोके रखना (श्यामलाल को पकड़ कर खींच लेता है) ठहरो जी कहाँ घुसे चले जाते हो। गिनती पूरी हो जाय तब जाने देंगे।

(गाड़ी सीटी देती है। श्यामलाल और असदुल्ला गुत्थमगुत्था होते हैं। चारों साथी छुड़ाने की चेष्टा करते हैं। रहीम भी आकर जुट पड़ता है, गाड़ी चल देती है, असदुल्ला और रहीम बुरी तरह पिट जाते हैं। लोग अलग-अलग करते हैं। श्यामलाल को भी चोट आती है। पुलिसमैन आ जाता है)

(पटाक्षेप)

दृश्य दूसरा

(अस्पताल के कमरे में नेटिव क्रिश्चियन डाक्टर साहब बैठे हैं। श्यामलाल को लेकर उसके चारों हिन्दू साथी आते हैं)

एक साथी—डाक्टर साहब चोट सिर में आई है। प्लेटफ़ार्म के ऊपर इनको उन लोगों ने पटक दिया इसलिए चोट आगई है। ज़रा देखिए, कोई हड्डी तो नहीं टूट गई।

दूसरा—सरकार ख़ून भी बहुत निकला है। मैंने उसी वक़्त से चोट की जगह हाथ से दबा रक्खी थी।

डाक्टर—अच्छा लिटा दो। यह चोट कब आई है?

एक साथी—अभी क़रीब दो घंटे पहले डाकगाड़ी के वक़्त।

डाक्टर—(देखकर) हड्डी तो नहीं टूटी है। लेकिन चोट बहुत गहरी है। कम्पाउंडर! ज़रा जल्दी टाँके लगाने का सामान लाओ (टाँके लगाता है, इतने में रहीम और असदुल्ला को लेकर तीन-चार मुसलमान आते हैं।)

एक मुसलमान—हुज़ूर ज़रा पहले इन लोगों का मुलाहिज़ा कीजिए।

डाक्टर—अभी बाहर ठहरो।

दूसरा मुसलमान—नहीं हुज़ूर पहले इनको देखिए। ये लोग जो पहले आये हैं क़ाफ़िर हैं। इन्हीं की यह सब कार्रवाई है।

डाक्टर—चुप रहो। हमको इन बातों से कोई मतलब नहीं। सीधे खड़े रहो। कुछ बकोगे तो निकाल दिये जाओगे।

एक हिन्दू—सरकार, ये लोग सीधे भी नहीं बोलते। रेलगाड़ी में न आप गये, न हमको जाने दिया और यह झगड़ा कर डाला। ये कहते थे कि जबलपुर जाने को पाँच हिन्दू गाड़ी में बैठें तो वे उस वक़्त बैठ सकते हैं जब तीन मुसलमान जबलपुर जानेवाले मिल जायँ, इसी पर ये नाहक लड़ पड़े।

डाक्टर—क्यों, इसका क्या मतलब है?

दूसरा हिन्दू—अजी साहब, कोई शौकतअली है। ये लोग कहते हैं कि गोलमेज़-सभा में उसका कहना है कि प्रतिनिधित्व संख्या के हिसाब से होना चाहिए। यू० पी० में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से दुगुनी है, इसलिए ये कहते हैं कि उसी हिसाब से रेलगाड़ी में भी बैठो।

एक मुसलमान—आप ही बताइए कि मौलाना शौकतअली का कहना क्या हम न मानें और गांधी का कहना मानें? गांधी कहता है कि सब धान बाईस पंसेरी-वाले रास्ते से चलो। वह कहता है कि—

डाक्टर—(हँसकर) अच्छा इस वजह से यह झगड़ा हुआ है। आप लोग दोनों तरफ़वाले बड़े अक़्लमंद हैं। (हिन्दुओं से) अच्छा इस मरीज़ को कम से कम १५ दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा। (मुसलमानों से) अच्छा पहले एक मरीज़ को लाओ।

एक हिन्दू—सरकार ऐसा नहीं हो सकता। जब दो हिन्दू अस्पताल में आकर चोटें दिखा चुकें तब आप एक मुसलमान की चोटों का मुलाहिज़ा कर सकते हैं। (मुसलमानों से) ख़बरदार पैर आगे बढ़ाया तो खोपड़ा फोड़ देंगे।

डाक्टर—चुप रहो। गड़बड़ करोगे तो मैं तुम्हारे मरीज़ को भी भर्ती न करूँगा।

दूसरा हिन्दू—कोई परवा नहीं। लेकिन बेक़ायदे काम को हम न होने देंगे। इनके मौलाना का भी तो ऐसा ही कहना है। ये लोग रेलवे स्टेशन पर यह क़ायदा बतलाते थे, अब भी इनको यही क़ायदा मानना पड़ेगा। और अब हम भी मनवावेंगे चाहे झगड़ा हो जाय।

एक मुसलमान—झगड़ा करने को क्या हम कम हैं? आ जाओ मैदान में। सिर फोड़ देंगे। (मार-पीट होने लगती है। डाक्टर पुलिस को फ़ोन करता है)।

(पटाक्षेप)

दृश्य तीसरा

(स्कूल में हेडमास्टर का कमरा। हेडमास्टर और हिन्दू और मुसलमान नायब मास्टर बैठे हैं)।

हेडमास्टर—इस साल का रिज़ल्ट आप लोगों की क्लासों का कुछ अच्छा नहीं रहा।

मास्टर इनायतअली—जनाब ठीक फ़रमाते हैं। लेकिन स्कूल की पढ़ाई में बहुत सी दिक़्क़तें दर पेश हुईं और बराबर पढ़ाई नहीं हो सकी।

मास्टर राजबहादुर—इस राजनैतिक आन्दोलन की वजह से दो महीने तो स्कूल ही बन्द रहा।

हेडमास्टर—हाँ, यह ठीक है, लेकिन इम्तिहान तो किताबों के उतने ही हिस्सों में लिया गया है जितने लड़कों को पढ़ाये थे। फिर ऐसा क्यों होना चाहिए?

मास्टर अब्दुल—मेरे ख़याल से पर्चे भी कुछ कड़े थे।

हेडमास्टर—इसका क्या मतलब? क्या कोई सवाल किताब के बाहर का पूछा गया था?

पण्डित गोपालकृष्ण—जी नहीं। इन मास्टर साहब का यह कहना ठीक नहीं। बात यह है कि इस आन्दोलन के कारण स्कूल के खुल जाने के पश्चात् भी लड़कों का चित्त कई दिनों तक पढ़ने में नहीं लगा और मास्टरों का भय भी लड़कों के मन में बहुत कम हो गया है। (चपरासी आता है)

चपरासी—हुजूर, कुछ हिन्दू और मुसलमान जिनके लड़के पढ़ते हैं, आये हैं और कुछ पूछना चाहते हैं।

हेडमास्टर—अच्छा बुलाओ (चपरासी लेकर आता है)

एक मुसलमान—जनाब मास्टर साहब, हमको मालूम हुआ है कि जो सालाना इम्तिहान अभी आपने लिया है उसमें कुल ४० लड़के पास हुए हैं, जिनमें से १२ मुसलमानों के और २८ हिन्दुओं के हैं। याने हिन्दुओं के २४ ही पास होना था। आपने ४ ज़्यादा पास कर दिये। यह कैसी तरफ़दारी की गई है?

हेडमास्टर—बस, यही आपकी शिकायत है?

दूसरा मुसलमान—जी, हाँ जनाब।

हेडमास्टर—(हिन्दुओं से) आप क्या कहना चाहते हैं?

एक हिन्दू—हमको मालूम हुआ है कि कुल ७० लड़के इम्तिहान में बैठे थे, जिनमें ४५ हिन्दुओं के थे और २५ मुसलमानों के। इनमें मौलाना के क़ायदे से मुसलमानों के सिर्फ़ २२½ लड़के इम्तिहान में बैठ सकते थे। आपने २½ लड़के ज़्यादा क्यों बिठलाये? क्या यह मुसलमानों की तरफ़दारी नहीं है?

एक मुसलमान—अजी तरफ़दारी हिन्दुओं की की गई है। ज़्यादा लड़के पास किये हैं।

एक हिन्दू—नहीं, मुसलमानों की हुई है। ज़्यादा लड़के इम्तिहान में शरीक किये हैं।

दूसरा मुसलमान—तू झूठ बकता है।

दूसरा हिन्दू—मुँह सँभालकर नहीं बोलता। क्या शामत आई है?

तीसरा मुसलमान—अबे चुप नहीं तो सिर तोड़ दूँगा?

तीसरा हिन्दू—बजरंगी! पकड़ तो साले की दाढ़ी (गुत्थमगुत्था, मारपीट, हेडमास्टर पुलिस को फ़ोन करता है)

(पटाक्षेप)

दृश्य चौथा

(अदालत में मजिस्ट्रेट मिस्टर फ़ाक्स, रीडर और चपरासी)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी! पुकारो। सरकार, बनाम असदुल्ला श्यामलाल वग़ैरह। (चपरासी पुकारता है।) पुलिस के सिपाही तीन मुसलमान और पाँच हिन्दुओं को हथकड़ी पहनाये हुए पेश करते हैं) देखो, तुम लोग ने स्टेशन का प्लेटफ़ार्म पर बलवा किया। तुम लोग का दो दो साल का सज़ा हम डेटा है।

सब मुल्ज़िम—हुजूर बहुत गज़ब हुआ। कुछ रियायत होना चाहिए।

मिस्टर फ़ाक्स—कुछ नहीं होने सकटा।

एक मुल्ज़िम—लेकिन हुजूर कम से कम यह तो बतायें कि गांधी का कहना ठीक है या शौकतअली का।

मिस्टर फ़ाक्स—तुम बेवकूफ़ है। (पुलिसवालों से) ले जाओ (ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी। सरकार, बनाम नारायण-प्रसाद हुसेनख़ाँ वग़ैरह (चपरासी पुकारता है पुलिसवाले कुछ मुसलमान और हिन्दुओं को हथकड़ी पहनाये हुए पेश करते हैं) देखो, तुम लोग ने हाँसपिटिल में जाकर मारपीट किया। इस वास्टे तुम सबको हम दो दो साल को जेल भेजना माँगटा है।

सब मुल्ज़िम—हुजूर बड़ी कड़ी सज़ा है।

मिस्टर फ़ाक्स—तुम बडमास लोग है? कड़ी सज़ा से ठीक होगा।

एक मुल्ज़िम—लेकिन हुजूर गांधी का कहना ग़लत है कि मौलाना का?

मिस्टर फ़ाक्स—तुम बेवकूफ़ है। पुलिसवाला! ले जाओ (ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी! सरकार बनाम मिर्ज़ा अकड़बेग, शंकरलाल वग़ैरह (चपरासी पुकारता है।

पुलिसवाले सात-आठ हिन्दू-मुसलमानों को हथकड़ी पहनाये लाते हैं) देखो, तुम लोग ने स्कूल में दंगा किया, इस वास्ते तुम लोग को डेढ़ साल हम जेल में रखना मांगता है।

सब मुल्ज़िम—हुज़ूर, बहुत कड़ी सज़ा है।

मिस्टर फ़ाक्स—बदमास लोग को यह थोड़ी सजा है।

एक मुल्ज़िम—हुज़ूर गांधी और मौलाना के कहने में कौन का कहना ठीक है और कौन का ग़लत।

मिस्टर फ़ाक्स—तुम बेवकूफ़ हो। पुलिसवाला ले जाओ।

(ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—रीडर, और क्या काम कराना मांगटा है ?

रीडर—हुज़ूर दो दरख़्वास्तें और पेन्डिंग हैं, एक मुसलमानों की और दूसरी हिन्दुओं की।

मिस्टर फ़ाक्स—लाओ। चपरासी ! पुकारो मुसलमान डरख़ासवाला।

(पुकारता है बहुत से मुसलमान आते हैं।)

मिस्टर फ़ाक्स—डरख़ास में तुम लोग क्या मांगटा है ?

एक मुसलमान—हुज़ूर पिछले हफ़्ते में इस शहर में १० मुसलमान मरे और हिन्दू सिर्फ़ १५ ही। क़ायदे से हिन्दू मरनेवालों की तादाद २० होनी चाहिए थी। इस वास्ते और ५ हिन्दुओं के मरने का हुक्म दिया जाय।

मिस्टर फ़ाक्स—(हँस कर) बेशक तुम लोग बहुट समझदार हो। अच्छा इसका टसफ़िया इस टरह हम करना मांगटा है ५ हिन्दू जिटने डिनों में मरेगा उटने डिन तक अब कोई मुसलमान को मट मरने डो। अगर मरने डोगे तो तुम लोग को सज़ा डिया जायगा।

मुसलमान—हुज़ूर, हम मौत को कैसे रोक सकते हैं ?

मिस्टर फ़ाक्स—बदमाश लोग चुप। जो हुक्म हुआ, मानना होगा।

मुसलमान—हुज़ूर, हम लोग मौलाना से इस ताल्लुक में सलाह लेना चाहते हैं। तब तक यह दरख़्वास्त मुल्तवी रक्खी जाय।

मिस्टर फ़ाक्स—आर्डर हो गया। तुम लोग अब अपील करने सकटा है। मुल्टवी नहीं होने सकटा। चला जाओ (जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी ! पुकारो हिन्दू डरख़ास वाला।

(चपरासी पुकारता है, बहुत से हिन्दू आते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—डरख़ाश में तुम लोग क्या मांगटा है ?

एक हिन्दू—हुज़ूर, दरख़ाश में तो यह लिखा है कि पिछले हफ़्ते में इस शहर में १२ मुसलमान बच्चे पैदा हुए और १५ हिन्दू बच्चे। मौलाना साहब के क़ायदे से मुसलमानों को आधा बच्चा और पैदा करना चाहिए था सो उन्होंने नहीं किया, इस वास्ते ऐसा करने को उनको हुक्म दिया जाय। लेकिन हम लोग इस दरख़ास्त को मुल्तवी चाहते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—क्या चाहटा है ?

एक हिन्दू—हुज़ूर, पहले मौलाना से हम आधे बच्चे की परिभाषा पूछ लेना चाहते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—यह होने नहीं सकटा है। डरख़ाश उठा लो या हम आर्डर पास करेगा। हम फ़ाइल को पेंडिंग नहीं मांगटा।

एक हिन्दू—अच्छा हुज़ूर दरख़ास्त उठाते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—अच्छा (दरख़ास्त फेंक देता है) निकल आओ।

(चले जाते हैं)

(रीडर से) क्यों रीडर हम समजटा मुसलमान लोगवाला दरख़ाश का आर्डर इन लोगों ने सुन लिया, इससे डर गया। हिंदू लोग बहुट डरनेवाला होटा है, अच्छा जाना मांगटा है। (उठता है)

(पटाक्षेप)

—देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'

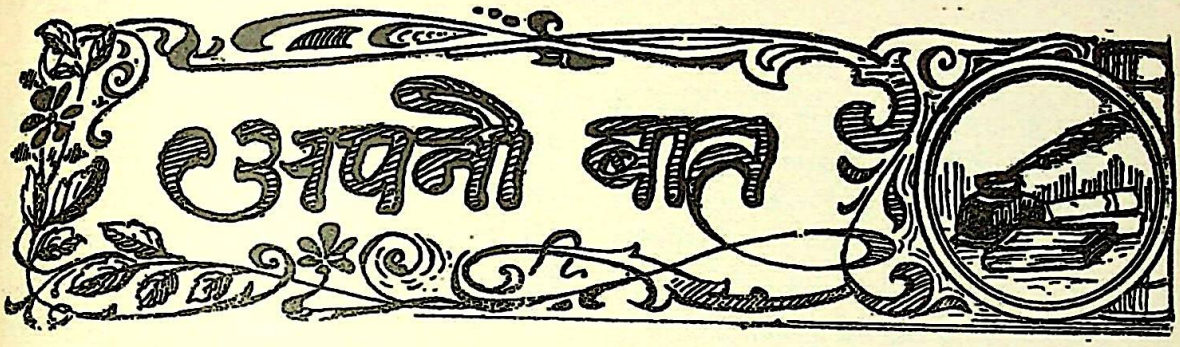

१—संघ-शासन की व्यवस्था का आयोजन

पिछली राउंडटेबल कान्फ़रेंस में एक प्रकार से प्रधान मन्त्री के भाषण-द्वारा यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई कि सरकार अपनी गत वर्ष की जनवरी की प्रतिज्ञा पर अटल है और वह यथासमय भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन की स्थापना करेगी। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल ने पार्लियामेंट की स्वीकृति के लिए अपनी नीति का सूचक जो 'ह्वाइट पेपर' निकाला है वह भी भले प्रकार वाद-विवाद के पश्चात् पार्लियामेंट के दोनों हाउसों में स्वीकृत हो चुका है। इस प्रकार अँगरेज़ सरकार ने भारत के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट कर दी है और उसका कार्य जारी करने के लिए जिन समितियों की नियुक्ति की उसने घोषणा की थी वे अपना कार्य सम्भवतः फ़रवरी के महीने से भारत में प्रारम्भ कर देंगी। इस प्रकार शासन-विधान की रचना के लिए वास्तविक कार्यवाही शुरू होगी। प्रधान मन्त्री ने प्रान्तों को आत्मशासन के अधिकार देने का स्पष्ट वचन दिया है और केन्द्र में उत्तरदायी शासन तब देने को कहा है जब फ़ेडरल शासन-विधान के अनुसार व्यवस्थापक सभायें स्थापित हो जायँगी। उनके पूर्वोक्त ह्वाइट पेपर में यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि सेना, परराष्ट्र-विभाग और अर्थ-प्रबन्ध जैसी महत्त्व की बातों को सरकार ही अपने हाथों में रक्खेगी। इस प्रकार राउंडटेबल कान्फ़रेंस से उसके निर्णयों का बहुत कुछ आभास मिल जाता है और आशा होती है कि ब्रिटिश सरकार अपने वचन का पालन करेगी और वह भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन-व्यवस्था का प्रवर्तन करेगी। यदि इस महद् अधिवेशन में इस बार अल्पसंख्यकों का मसला अधिक महत्त्व-पूर्ण रूप न ग्रहण कर जाता और उनके प्रतिनिधि दुराग्रह से काम न लेते तो शासन-विधान की रचना में अधिक सुविधा हो जाती और उसके संस्कार-कर्ताओं का काम बहुत कुछ आसान हो जाता।

परन्तु अल्प-संख्यकों के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय की हितरक्षा करने में यहाँ तक हठधर्मी की है कि उनकी यह मनोवृत्ति प्रधान-मन्त्री राम्से मैकडानल को भी अच्छी नहीं लगी। इसीसे उन्होंने अपने भाषण में यह बात स्पष्ट कर दी है कि यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय आपस में समझौता नहीं करेंगे तो अन्त में यह काम सरकार को करना पड़ेगा। सरकार भारत के लिए सङ्घ-शासन का जो विधान बनाना चाहती है वह अपने उस महत्त्वपूर्ण कार्य को स्थगित नहीं कर सकती और जब यह कार्य सरकार करेगी तब अधिक से अधिक वह वर्तमान अवस्था में कुछ उपयोगी सुधार करके उसे अपने अनुकूल बना लेगी। इसके सिवा वह और क्या कर सकेगी? तब न तो मुसलमानों को पंजाब और बंगाल में बहुमत प्राप्त होगा, न सौ में तीस जगहें सिक्ख पायेंगे और न हिन्दुओं का संयुक्त निर्वाचन ही प्राप्त होगा। इस साम्प्रदायिक दुराग्रह का यही परिणाम होगा और इससे राष्ट्रीय भावना के उन्नत होने में बाधा पड़ेगी। मुसलमान अपनी बात पर अड़े हुए

हैं, हिन्दू अपनी बात पर। इस तरह की अड़ाअड़ी से देश की जो अपार हानि हुई है उसका अन्दाज़ा नहीं लग सकता। तथापि यह आशाजनक बात है कि अँगरेज़ सरकार अन्त में अपनी शक्ति का उपयोग करेगी और उसको यह अवस्था सुधारनी पड़ेगी। परन्तु क्या ही अच्छा होता, यदि यह साम्प्रदायिक समस्या आपस में ही तय हो जाती और देश में शान्ति का राज्य स्थापित होता। सरकार ने इसके लिए समय भी दिया है। इसके सिवा इस समस्या के हल करने का यह एक उपयुक्त समय है। इस समय देश में साम्प्रदायिक समस्या का विषम रूप दिखाई दे रहा है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास का भाव पैदा हो गया है। मुसलमानों और हिन्दुओं में जो सिर-फुटौवल आये दिन मची रहती है वह तो है ही, अछूतों और हिन्दुओं में भी संघर्ष होने लगे हैं। देश की इस समय ऐसी ही भयावह परिस्थिति है। यही नहीं, राउंडटेबल कान्फ़रेंस के अवसर पर साम्प्रदायिक नेताओं ने अपना जो रुख़ व्यक्त किया था उसका भी यहाँ की परिस्थिति पर बुरा ही प्रभाव पड़ा है। अतएव भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के नेताओं को इस अवस्था पर विशेष गम्भीरता से विचार करना चाहिए और आपस में ऐसा स्थायी समझौता करना चाहिए, जिससे देश में शान्ति और प्रेम की फिर स्थापना हो जाय। ऐसा ही करने पर देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की रक्षा हो सकेगी। साथ ही नये शासनाधिकारों के प्राप्त होने में भी अधिक आसानी हो जायगी। राउंडटेबल कान्फ़रेंस तथा देश की वर्तमान दशा हमें यही करना बता रही है।

२—दो महापुरुषों के जन्म-दिवस

गत दिसम्बर में भारत में उसके दो महापुरुषों के जन्म-दिवस मनाये गये हैं। इसके पहले ऐसी ही दो अन्य जगद्वन्द्य श्रेष्ठ आत्माओं के जन्म-दिवसों के मनाने का सौभाग्य भारत प्राप्त कर चुका है। उनमें एक महात्मा गांधी हैं, जिनकी ६३ वीं वर्षगाँठ गत आक्टोबर में मनाई गई है। महात्माजी ने संसार के सम्मुख नवीन ढंग से सत्य और अहिंसा का जो सिद्धान्त रख कर मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है, उससे भारत की संस्कृति का शिर ऊँचा हुआ है। दूसरी हैं श्रीमती बेसेंट, जिन्होंने भारत को अपनी मातृभूमि बनाकर उसकी राष्ट्र-भावना को जाग्रत करने का श्रेष्ठ कार्य किया है। आज भारत में राष्ट्रीय विचार जो इतने व्यापक रूप से दिखाई देते हैं उसका अधिकांश श्रेय श्रीमती बेसेंट को प्राप्त है। उन्होंने भारत की जो अनुपम सेवा की है उससे उन्होंने भारतीयों को अपना चिरकृतज्ञ बना लिया है। यह भारत के लिए सौभाग्य की बात है कि उसने उनकी ८५ वीं वर्षगाँठ गत वर्ष धूमधाम से मनाई है। यही नहीं, इस सम्बन्ध में जो अभी तक कमी रही है उसकी भी पूर्ति उसने गत दिसम्बर में अन्य दो महापुरुषों की जन्म-तिथियों पर पूर्ण कर दी है। ये महापुरुष हैं पण्डित मदनमोहन मालवीय और डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर। इन दोनों श्रेष्ठ व्यक्तियों के वय का ७० वाँ वर्ष इसी दिसम्बर में पूरा हुआ है। कविवर रवीन्द्रनाथ ने अपनी अद्वितीय साहित्यिक रचनाओं के द्वारा जगत्प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर भारत को विशेष रूप से गौरवान्वित किया है। उनकी विश्वभावनापरक दार्शनिकता ने सारे संसार के मनीषियों को मुग्ध किया है और वे इस समय संसार के एक विशिष्ट व्यक्ति गिने जाते हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय तो भारतीय राष्ट्र के अनन्य सेवक हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश देश-सेवा के पवित्र कार्य में ही लगाया है और इस समय अपनी वृद्धावस्था में भी वे एक युवक की भाँति उसकी स्वाधीनता के आन्दोलन में तन-मन से लगे रहते हैं। देश की अपनी इन दोनों महान् विभूतियों की जयन्तियाँ मनाकर देशवासियों ने वस्तुतः अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। भगवान् करे, देश के हमारे ये दोनों महापुरुष चिरंजीवी हों और इनके अथक प्रयत्नों से देश की प्रभूत समुन्नति तथा गौरव-वृद्धि होती रहे।

३—वर्तमान ईरान

ईरान एशिया का प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध देश है। परन्तु अन्य एशियाई प्राचीन देशों की भाँति उसका भी

पाश्चात्य सभ्यता के आगे पराभव हुआ। अन्त में जब उसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अवमानना हुई तब वह सावधान हुआ। इसी से बीसवीं सदी के आरम्भ होने पर ईरान के कुछ लोकनायकों ने (सन् १९०५ में) तेहरान में विद्रोह कर दिया। तत्कालीन शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने विद्रोहियों से समझौता करके उत्तरदायी शासन के स्थापित करने की प्रतिज्ञा ही नहीं की, किन्तु दूसरे वर्ष ही उन्होंने ६० प्रतिनिधियों की पार्लियामेंट स्थापित करके प्रतिनिधिमूलक शासन-व्यवस्था जारी कर दी। परन्तु ईरान के भाग्य में शान्ति-सुख नहीं लिखा था। मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और उनके पुत्र मुहम्मदअली शाह ने सिंहासन पर आसीन हो जाने के बाद अपने पिता की सारी कार्रवाई को उलट दिया। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध मजलिस के भङ्ग करने तथा शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने की घोषणा कर दी, साथ ही मजलिस-भवन को तोपों से उड़वा दिया। लोकनेता नये शाह के स्वभाव से भले प्रकार परिचित थे, अतएव उन्होंने शाह का सामना किया। इस गृह-युद्ध में शाह की हार हुई और उन्हें रूस को भाग जाना पड़ा। उनके स्थान पर उनके पुत्र अहमद मिर्ज़ा गद्दी पर बठाये गये और शासन की बागडोर मजलिस ने सन् १९०९ में अपने हाथ में ली।

इस प्रकार यद्यपि ईरान को अपने को सुव्यवस्थित करने का अवसर मिल गया था, परन्तु अपनी आन्तरिक निर्बलता के कारण वह कुछ न कर सका। उलटा वह पिछले योरपीय महायुद्ध की समाप्ति तक रूस और ग्रेट-ब्रिटेन के आतङ्क का शिकार बना रहा, और यदि रूस में बोलशेविकों का राज्य न स्थापित हो जाता तो भगवान् ही जाने उसकी क्या गति होती।

महायुद्ध के बाद सबसे पहले रूस ने अपनी सेनायें ईरान से हटाईं और ईरान को उसकी स्वाधीनता की रक्षा का आश्वासन दिया। रूस के इस सद् व्यवहार का अच्छा प्रभाव पड़ा। ग्रेटब्रिटेन ने भी अपनी सेनायें दक्षिणी ईरान से हटा लीं और महायुद्ध के समय उस भाग में उसने अपनी सुविधा के लिए रेल-तार आदि का जो आयोजन किया था वह भी सब ईरान-सरकार को सौंप दिया। इस प्रकार जब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की अनुकूलता के कारण ईरान पड़ोस के बलवान् राज्यों के चंगुल से निकल कर स्वाधीनता प्राप्त कर रहा था उस समय ईरान में एक आदमी का अभ्युदय हो रहा था जो बाद को ईरान का शाह हुआ। इसका नाम रज़ाख़ाँ था। गत दस वर्षों से ईरान का शासन इन्हीं नरपुंगव के हाथों में है। और इनके उदार शासन में ईरान में राष्ट्र-भावना का विशेष रूप से उद्भव हुआ है। लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मुहम्मद हबीब का कहना है कि जिन धार्मिक मुल्लाओं ने सन् १९०६ के प्रजतन्त्री विधान में अपनी स्थिति दृढ़ बना ली थी और जिन्होंने सन् १९२४ के प्रजातन्त्री आन्दोलन को हराम घोषित कर दिया था उनकी आज वहाँ ज़रा भी प्रतिपत्ति नहीं है। सन् २४ में वहाँ की मजलिस ने रज़ाख़ाँ को ईरान का बादशाह घोषित कर मुल्लाओं की कुटिल चाल से देश की रक्षा कर ली। और अब तोरज़ाशाह के दृढ़ शासन में वे नाममात्र के ही मुल्ला रह गये हैं। देश के किसी भी सार्वजनिक कामों में उनको महत्त्व नहीं दिया जाता। फ़ारसवाले तो अब यह कहने लगे हैं कि उनको किसी भी काम में सम्मिलित करना पाप है। वे न तो उनके फ़तवे मानने को तैयार हैं और न वे उनके बताये हुए धर्मान्धता के सिद्धान्तों को ही स्वीकार करते हैं। उन मुल्लाओं में बहुत से नज़रबन्द कर दिये गये हैं और शेष शान्त हो गये हैं।

उक्त प्रोफ़ेसर महोदय ने अपने एक भाषण में कहा है कि अब ईरानी लोग मुल्लाओं की प्रभुता से मुक्त होकर अपने देश को समुन्नत करने को यत्नवान् हुए हैं। डाक्टर मिल्स पाग और उनके अमेरिकन सहयोगियों ने १९२२-२७ में वहाँ की आर्थिक अवस्था का अध्ययन किया था और उसके सुधार के उपाय बताये थे। आज-कल आग़ा हसन तकीज़दा जो वर्षों तक निर्वासन में रह चुके हैं, कुशलता-पूर्वक अर्थ-विभाग का कार्य-संचालन कर रहे हैं। क़रीब क़रीब राज्य के सभी

विभाग नूतन ढंग पर संगठित हुए हैं। वर्षों से घोर यत्न करने पर वहाँ की सरकार दुर्दमनीय जातियों का दमन करने में और शान्ति स्थापित करने में फलीभूत हुई है। वहाँ की पुलिस विनम्र है। साधारण जनता से मालिक की बराबरी नहीं बल्कि सेवक की नाईं व्यवहार करती है। वहाँ की स्त्रियों में भारतीय स्त्री-समाज की नाईं पर्दा नहीं है। वे स्वतन्त्र विचर सकती हैं और एक दूसरे के मकान पर आ-जा सकती हैं। आज-कल बड़े-बड़े शहरों और गाँवों में स्त्रियाँ मोज़े और गौवन तक व्यवहार करने लगी हैं। जब वे बाहर निकलती हैं तब कोई-कोई मुँह पर पतली चादर ओढ़ लेती हैं। पर तेहरान की समुन्नत स्त्रियों ने मुँह पर चादर ओढ़ना भी छोड़ दिया है। आशा की जाती है कि निकटभविष्य में पुरानी रूढ़ियाँ विलुप्त हो जायँगी और ईरान अपनी उदार और सजग सरकार के प्रयत्नों से एशिया का एक समुन्नत राष्ट्र हो जायगा।

४—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का इक्कीसवाँ अधिवेशन श्रीकिशोरीलाल गोस्वामीजी के सभापतित्व में झाँसी में सानन्द मनाया गया। कहा जाता है कि इस वर्ष सम्मेलन के अवसर पर साहित्यसेवियों की उपस्थिति अच्छी नहीं थी। यदि इसका कारण देश की वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति तक ही परिमित नहीं है तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य्य-सञ्चालकों को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हें यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि सम्मेलन के अधिवेशनों की सफलता उनमें साहित्य-सेवियों के अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होने पर ही निर्भर है। इसके लिए उन्हें अधिवेशन के कार्य्य-क्रम को विशेष रोचक और उपयोगी बनाना चाहिए तथा प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों को विशेषरूप से आमंत्रित करना चाहिए।

हर्ष की बात है कि पहली बात की ओर सम्मेलन का ध्यान गत वर्ष से ही है। अपने कार्य्य-क्रम को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए उसने अपने कलकत्तावाले अधिवेशन में प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन के साथ साहित्य-परिषद्, इतिहास-परिषद्, दर्शन-परिषद्, और विज्ञान-परिषद् भी करने का निश्चय किया था। तदनुसार इस बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यक्रम में विशेष परिवर्तन किया गया। पहले की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक रूप देने के लिए उसने अपने साथ साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास की अलग-अलग परिषदें की हैं। इन सबके अलग-अलग सभापति थे। प्रधान सम्मेलन के सभापति हिन्दी के वयोवृद्ध सेवक गोस्वामी किशोरीलालजी महाराज मनोनीत हुए थे।

गोस्वामीजी भारतेन्दुजी के समय के हिन्दी के पुराने लेखक हैं। आपने अनेक मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद छोटे छोटे उपन्यास लिखे हैं। उनमें कई एक बड़े-बड़े भी हैं। आप व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। आप बहुत वृद्ध हो गये हैं। इस समय आप भारतेन्दुजी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखा रहे हैं। आप भारतेन्दु के समय के मूर्तिमान् इतिहास हैं। आपने हिन्दी को अपने सामने उगते और बढ़ते देखा ही नहीं है, किन्तु उसको समुन्नत भी किया है। ऐसे वयोवृद्ध साहित्य-महारथी को अपना सभापति बनाकर सम्मेलन ने अपने उपयुक्त काम किया है।

सभापति पूज्य गोस्वामीजी ने अपने भाषण में हिन्दी के गत पचपन वर्षों की समालोचना करते हुए बहुत सी नई बातें बताईं। आपने छायावाद की कविताओं का स्वागत किया, क्योंकि आज से बयालीस वर्ष पूर्व छायावाद पर आप स्वयं भी कविताएँ कर चुके थे। अतुकान्त कविताओं पर भी प्रकाश डाला और कहा कि तुकान्त और अतुकान्त का झगड़ा बन्द करना चाहिए और अतुकान्त को बे तुका न कहना चाहिए, नहीं तो संस्कृत की सारी कविताएँ बेतुकी कही जा सकेंगी। गोस्वामीजी ने एक विचित्र बात और कही जिस पर आज तक किसी ने भी प्रकाश नहीं डाला था। आपने तर्कों से यह सिद्ध किया कि वर्तमान हिन्दी-भाषा किसी की बेटी, पोती या परपोती नहीं है और न यह किन्हीं भाषाओं के संघर्ष अथवा संसर्ग से उत्पन्न हुई है, ऐसा कहना हिन्दी को दोगली बतलाना होगा। आपने

यह कहा कि जैसे बाल्य यौवन, प्रौढ़ और वार्द्धक्य अवस्थाओं में रूपान्तरित होता रहता है उसी प्रकार वर्तमान हिन्दी भी संस्कृत-भाषा का रूपान्तर है। इस प्रकार हिन्दी की उत्पत्ति बतलाकर गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी व्यापकता का विवेचन किया और बताया कि मुसलमानों के शासन-काल में वह अपने राष्ट्रीय-पद पर आसीन रही। इसके बाद जब अँगरेज़ी काल में प्रान्तीयता का ज़ोर बढ़ा तब हिन्दी की क्या गति हुई, इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा—

बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि जिस रूप में थी, उसी प्रान्तीय रूप में वह पुष्ट की जाने लगी। किन्तु युक्त-प्रदेश में जहाँ वह अपने असली रूप में बच रही थी, दबा देने का भारी आयोजन किया गया और यह बताया गया कि हिन्दी नाम की कोई भाषा ही नहीं है और यदि रही भी तो उसमें ऐसी पुस्तकें नहीं हैं जिनसे बच्चों को आरम्भिक शिक्षा दी जा सके। किन्तु राजा शिवप्रसादजी ने हिन्दी का पक्ष लिया और स्वयं पुस्तकें लिखने और सरकार को देने लगे। चटसालों में हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि को स्थान मिल गया, पर म्युनिसिपलिटी, ज़िला बोर्ड, पुलिस और अदालतों में फ़ारसी-लिपि में लिखी जाने-वाली हिन्दी-भाषा को जगह दी गई, जो उर्दू के नाम से औरङ्गज़ेब के ज़माने से पुकारी जाने लगी थी। राजा साहब ने नागरी लिपि और हिन्दी-भाषा को जीवित रखने का प्रयत्न तो किया, पर साथ ही वह जिस साहित्य का निर्माण कर रहे थे वह लोगों की प्यास न बुझा सका। अतएव प्रकृति ने श्रीहरिश्चन्द्रजी को इसके लिए आगे बढ़ाया और इन दोनों महारथियों और इनके मित्रों के घात-प्रतिघात से हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि दिन दूनी और रात चौगुनी फूलने-फलने लगी। इन सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप सरकार ने राजा साहब को 'सितारे हिन्द' बनाया और देश ने श्रीहरिश्चन्द्रजी को 'भारतेन्दु'। उधर सरकारी 'सितारा' चमका, इधर 'इन्दु' भी देदीप्यमान हुआ।

बङ्गाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में प्रान्तीय भाषायें और लिपियाँ पाठशालाओं, म्युनिसिपलटियों, ज़िला बोर्डों, कचहरियों आदि में चलती थीं, इसलिए वहाँ के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों का अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाओं और लिपियों से सम्बन्ध बना रहा और जिनकी लेखनी सुरसुराई उन्होंने अँगरेज़ी और प्रान्तीय भाषाओं में पुस्तकें लिखीं और पत्र निकाले। किन्तु इन प्रान्तों में हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का विस्तार पाठशालाओं में ही समाप्त हो जाता था। इसलिए जो अँगरेज़ी-भाषा के पण्डित हुए उनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता था, क्योंकि जीवन-निर्वाह के लिए उन्हें अँगरेज़ी और उर्दू का ही सहारा लेना पड़ता था, अतएव फ़ारसी-लिपि में लिखी जानेवाली हिन्दी जिसे उर्दू के नाम से पुकारा जाता है, खूब ही खुल खेली और उसे हिन्दी से दूर भगा ले जाने के लिए उसमें अरबी, फ़ारसी आदि शब्दों की भरमार की जाने लगी। अँगरेज़ीदाँ लोगों के यहाँ हिन्दी "मसतूरात की ज़बान" रही। कंठ में ही समस्त विद्याओं के धारण करनेवाले संस्कृतज्ञ विद्वानों के यहाँ 'अछूत' के रूप में हिन्दी-भाषा का अनादर रहा; सरकारी दफ़्तरों और अदालतों में घुसने का हिन्दी का कोई अधिकार था ही नहीं और सितारेहिन्द तथा भारतेन्दु भी गगनमण्डल से सिधार चुके थे, ऐसे अन्धकारमयी रजनी के शेष भाग में हिन्दी का भविष्य आशा और निराशा के झूले में झूलने लग गया।

ऐसे समय में मुट्ठी भर विभूतियों ने हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि के लिए अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये और इसे किसी न किसी प्रकार जीवित बनाये रक्खा। कुछ ऐसे अधिरथी और महारथी भी साहित्य-क्षेत्र में आये जिन्होंने हिन्दी-साहित्य के ख़ज़ाने में जो कुछ पाया उसके लिए कवियों और ग्रन्थकारों को कोसना आरम्भ किया। व्रजभाषा और हिन्दी को अलग बताना प्रारम्भ किया और जिन काव्यों तथा ग्रंथों ने लाखों अपढ़ों को हिन्दी-भाषा पढ़ने के लिए बाध्य किया था, उनके लिए झाड़ू और टोकरा सँभाल लिया। एक ओर व्रजभाषा और हिन्दी दो भाषायें बताई जाने

लगीं और दूसरी ओर सूर, बिहारी, केशव, पद्माकर, भूषण आदि हिन्दी कवि के रूप में परिचित कराये जाने लगे। यह 'वदतो व्याघात' अनेक धाराओं से बहने लगा और इसकी समाप्ति कहाँ जाकर होगी यह भगवान् ही जाने! ऐसी नींव पर उठाये गये हिन्दी-भाषा के इतिहास-भवन कब तक ठहर सकेंगे? साथ ही जहाँ अन्य प्रांतीय भाषाओं के कवि और ग्रन्थकार प्रान्तीयता के पुजारियों-द्वारा सिरों पर चढ़ाये जाने लगे, वहाँ हिन्दी के गद्य और पद्य के लेखक 'गणेश थोपड़ी' का पुरस्कार पाने-मात्र के अधिकारी समझे जाने लगे।

हिन्दी के सेवकों में जो प्रेम और सहयोग था वह समाप्त हो गया एवं दलबन्दी और गुटबन्दी का विस्तार किया जाने लगा और किसी कवि या लेखक की सफलता या असफलता 'महन्तों' और 'दलपतियों' के ऊपर निर्भर हो गई। समालोचना के शस्त्र-प्रहार से धुरन्धर लेखक धराशायी किये गये और प्रशंसा के पुल से अकिंचन भी इन्द्रासन के अधिकारी बनाये गये। इस परिस्थिति में भी जिन्हें मातृ-भाषा की लगन थी वे 'निर्वातनिष्कम्पमिव प्रदीपम्' के समान अपने व्रत का पालन करते ही रहे।

साहित्य-परिषद् भूतपूर्व माधुरी-सम्पादक पण्डित कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी० के सभापतित्व में हुई। विज्ञान-परिषद् के सभापति श्रीयुत हीरालाल खन्ना, एम० एस-सी०, दर्शन-परिषद् के सभापति श्रीयुत गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम० ए० और इतिहास-परिषद् के डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए०, डी० एस-सी०, डी० लिट् बनाये गये थे। इस तरह कार्य-विभाजन-द्वारा इस बार कार्यारम्भ किया गया है। सम्मेलन का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। आशा है, इस कार्य-पद्धति से सम्मेलन का कार्य अधिक सुन्दरता से सम्पन्न होगा। सम्मेलन के अधिवेशन २८,२९,३० और ३१ दिसम्बर को हुए। दूसरे दिन सम्पादक-सम्मेलन की बैठक जबलपुर के दैनिक 'लोकमत' के सम्पादक पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र के सभापतित्व में हुई। तीसरे और चौथे दिन कवि-सम्मेलन की बैठकें हुईं। इस प्रकार इस बार सम्मेलन का अधिवेशन विशेष आडम्बर के साथ किया गया है। भगवान् करे, सम्मेलन अपने प्रयत्न में सफल हो। सम्मेलन हिन्दी की एक-मात्र सर्वदेशीय संस्था है। अतएव प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का यह कर्तव्य है कि वह इस संस्था के कार्य के साथ क्रियात्मक सहानुभूति रक्खे। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इधर कई वर्ष से सम्मेलन का रंग-ढंग अच्छा नहीं रहा है, परन्तु उसके वर्तमान संगठन से जान पड़ता है कि वह अब पहले के रोग से तो मुक्त हो गया है, और अब उसका काम एक ढंग से होगा। भगवान् करे, ऐसा ही हो।

सम्मेलन का आगामी अधिवेशन ग्वालियर में होगा। हम चाहते हैं कि इस बार सम्मेलन को पहले अधिवेशनों से भी अधिक सफलता प्राप्त हो।

५—दक्षिणी अफ्रीका की दूसरी कान्फ्रेंस

दक्षिणी-अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों को दबाने तथा उन्हें नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित करने के लिए वहाँ की यूनियन सरकार जो चालें चलती रही है, उसका विरोध भारत-सरकार आरम्भ से ही करती आई है। उसकी दृष्टि में वहाँ के प्रवासी भारतवासियों की समस्यायें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से तो महत्त्व-पूर्ण हैं ही, साथ ही साम्राज्य की दृष्टि से भी हेय नहीं हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर लन्दन की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भारत-सरकार ने इस सम्बन्ध में विशेष ज़ोर डाला था। सन् १९२१ ईसवी की उक्त कान्फ्रेंस में वहाँ के गोरे निवासियों के ही समान प्रवासी भारतवासियों को भी नागरिकता के अधिकार दिलाने की दृष्टि से इसका वाद-विवाद हुआ था और यह भी निश्चय हुआ था कि यूनियन सरकार को भारतीयों को नागरिकता के अधिकार देने चाहिए। परन्तु वहाँ की सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। सन् १९२३ ईसवी की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भी जब इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तब दक्षिणी अफ्रीका के प्रधान प्रतिनिधि जनरल स्मट्स ने इसे ठुकरा दिया। तब से इम्पीरियल

कान्फ्रेंस ने इस सम्बन्ध में फिर कभी कोई विचार नहीं किया। किन्तु बार बार असफल होकर भी भारत-सरकार इस दिशा में उदासीन नहीं हो सकी, यूनियन सरकार से वह बराबर लिखा-पढ़ी करती रही। अन्त में सन् १९२७ की जनवरी में यूनियन सरकार ने अपने यहाँ भारत-सरकार का एक प्रतिनिधि रखना स्वीकार कर लिया, जो भारतीय प्रवासियों की हित-रक्षा का ध्यान रक्खेगा और उनका तथा यूनियन सरकार का मध्यस्थ होकर रहेगा। इन दोनों सरकारों के बीच में इसी आशय का एक स्वीकृति-पत्र लिखा गया और यह निश्चित हुआ कि दोनों ही ओर से इस समझौते को कार्यरूप में परिणत करने का पूर्ण रूप से प्रयत्न किया जायगा और यदि आवश्यकता हुई, तो परिवर्तन के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होता रहेगा। परन्तु भारत अपने इस समझौते में विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सका।

इस समझौते में दक्षिणी अफ्रीका में योरपीय सभ्यता को प्रश्रय देने के लिए भारतवासियों की संख्या कम करने की सबसे अधिक महत्त्व की शर्त थी। इस बात को सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करने के लिए भारत-सरकार पर ज़ोर डाल कर यूनियन सरकार ने उसकी सहमति प्राप्त कर ली, साथ ही अपने इस उद्देश की पूर्ति में उसने उसका पूर्ण सहयोग भी प्राप्त किया। इसके बदले में उसने भारतीय प्रवासियों पर से भेद-भाव उठा लेने का वचन दिया अवश्य, किन्तु वह केवल भारतवासियों को अपने देश से खदेड़ने में भारत-सरकार का सहयोग प्राप्त करने के लिए। इस समझौते के बाद वहाँ के गोरे निवासी उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जब दक्षिणी-अफ्रीका में भारतवासी इनी-गिनी संख्या में ही मिल सकें। अस्तु।

इस समझौते के द्वारा प्रवासी भारतवासियों को वापस लेने का प्रस्ताव स्वीकार करके भारत-सरकार ने उन बहुसंख्यक प्रवासी भारतीयों के अधिकारों पर जो दक्षिणी-अफ्रीका में ही उत्पन्न हुए थे, आघात पहुँचाया, साथ ही और भी कितनी ही ऐसी बातें स्वीकार कर लीं जिनसे भारतवासियों को यथेष्ट क्षति उठानी पड़ी, किन्तु हर तरह का लाभ उठा कर तथा शान्तिप्रिय भारतवासियों को दबाकर भी यूनियन सरकार समझौते पर पूर्णरूप से दृढ़ न रही, इन्हें तङ्ग करने के लिए वह अपना प्रयत्न बराबर करती रही। भारतवासियों को वहाँ से भारत भेजने का ही प्रयत्न करके वह सन्तुष्ट नहीं रह सकी, मादक द्रव्यों की खपत पर नियन्त्रण करने के बहाने से उसने इस आशय का भी एक क़ानून तैयार किया कि जिन कारख़ानों में शराब या उसके लिए बोतलें आदि बनाई जाती हों, वहाँ कोई एशियाई या आदिमनिवासी न रक्खा जाय, और न ऐसे लोग शराब की दूकानों पर ही नौकरी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की और भी कितनी ही छोटी, बड़ी बातें हैं।

दक्षिणी अफ्रीका से भारतवासियों को भारत भेजने के लिए जो नियम बना था वह उसके उद्देश की पूर्ति के लिए यथेष्ट नहीं हुआ। उस नियम के अनुसार जितने आदमी वहाँ से भारत के लिए लौटे उनके तिगुने फिर वहाँ पहुँच गये। तात्पर्य यह है कि दक्षिणी अफ्रीका में जितने भारतीय स्थायी रूप से बस गये थे, उनके स्त्रियों-बच्चों के भी वहाँ पहुँच जाने पर भारतवासियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। इससे वहाँ के गोरे निवासियों का रुष्ट होना स्वाभाविक था, किन्तु कुड़मुड़ा कर रह जाने की अपेक्षा निर्दिष्ट समय अर्थात् पाँच वर्ष तक और उपाय ही क्या था। समझौते की अवधि अब समाप्त हो गई है और वहाँ के प्रवासी भारतवासियों, तथा गोरी जातियों की परिस्थिति पर विचार करने तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा व्यक्तिगत अधिकारों का निर्णय करने के लिए दूसरी कान्फ्रेंस होने जा रही है। आशा है, इस बार भारतीय प्रतिनिधि गत अनुभव से काम लेंगे और कोई ऐसा समझौता करेंगे जिससे वहाँ के प्रवासी भारतवासियों की सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी और वे सच्चे नागरिकों का अधिकार प्राप्त कर वहाँ सम्मान-पूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगे।

—ठाकुरदत्त मिश्र

६—मौलिकता का भूत

मौलिकता अभिनन्दनीय वस्तु है। किसी भी भाषा के साहित्य का मूल्य उसकी मौलिक थाती से ही आँका

जाता है। उसके गौरव का अन्दाज़ा उसकी मौलिक रचनाओं से ही लगता है। जिस भाषा में मौलिक रचनाओं की न्यूनता होती है उसकी गणना हीन श्रेणी में की जाती है। मौलिकता वास्तव में राष्ट्र के जीवन का निदर्शक है। साहित्य में भी उसकी क़द्र का यही कारण है और इसी से जो जाति उन्नतिपथ पर अग्रसर होती है वह अपने साहित्य के मौलिक रूप की ओर निगाह रक्खे तो उसका यह काम सर्वथा उचित ही होता है। परन्तु मौलिकता का भूत सवार होना दूसरी बात है। सन्तोष की बात है, इस समय हिन्दी में मौलिकतावादी शान्त हैं और हिन्दी के साहित्य-निर्माण का कार्य अपने स्वाभाविक ढङ्ग से शान्तिपूर्वक होता जा रहा है। मौलिक रचनायें पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में दिखाई देने लगी हैं, यह सही है, साथ ही यह भी सही है कि मौलिकतावादियों की अवमानना से जो अनुवाद-कार्य शिथिल हो गया था उसने फिर क़दम उठाया है और इस बार अधिक तेजस्विता-सूचक रूप में। पिछले दिनों जिन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हुआ है उनकी नामावली देखने से अनुवाद-कार्य के महत्त्व का पता लग जाता है। अगर दो वर्ष के भीतर हमें प्रेमचन्दजी के ४ उपन्यास पढ़ने को मिलें तो वैसे ही महत्त्वपूर्ण सोलह उपन्यास-ग्रन्थ हमने अन्य भाषाओं से अनुवाद कर लिये तो क्या बेजा हुआ? वर्तमान हिन्दी-प्रेमी भी इसे अब बेजा नहीं समझते, यह हिन्दी की उन्नति का शुभ लक्षण ही है।

मौलिक रचनायें रचिए, कौन मना करता है! मौलिकता के गुण-गान कीजिए, बाधा कोई नहीं डालेगा। पर आप हिन्दी के भूतपूर्व साहित्यकारों की जो विगर्हणा करते हैं, पुराने साहित्यकार का नामोल्लेख करके जब आप यह कहने लगते हैं कि उन्होंने तो सिर्फ़ दूसरी भाषाओं के कुछ ग्रन्थों का अनुवाद किया है, उनमें इतनी ही मौलिकता थी कि उन्होंने साहित्य के अभाव का अनुभव कर दूसरी भाषाओं के सद्-ग्रन्थों का अनुवाद किया और उससे अपनी मातृ-भाषा के साहित्य-भाण्डार की वृद्धि की, बस, इससे अधिक उन्होंने और क्या किया, तब यह बात उचित नहीं लगती है।

इस तरह के विचार रखनेवाले हिन्दी-विरोधी महानुभावों की आँखें अब खुल जानी चाहिए। उन्हें समझ लेना चाहिए कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा के रूप में सर्वत्र स्वीकृत हो चुकी है। अभी हाल में सुदूर ट्रावनकोर राज्य की व्यवस्थापक सभा में उस दिन वहाँ के स्कूलों में हिन्दी के प्रचलित किये जाने के सम्बन्ध में जो वाद-विवाद हुआ था उससे उसका महत्त्व और भी स्पष्ट हो जाता है। उस सभा के एक मुसलमान सदस्य तक ने हिन्दी का गौरव यह कह कर स्वीकार किया है कि उसका उर्दू से अधिक मेल है और यही एक भाषा है जिससे दो विभक्त जातियाँ एक हो सकती हैं। हिन्दी की ऐसी अवस्थिति में उपर्युक्त ढङ्ग के विचार संयत नहीं माने जा सकते।

अब रहा यह कि हिन्दी का साहित्य-भाण्डार ख़ाली है, सो यह शिकायत एक अंश तक ठीक है। यह हम मानने को तैयार हैं कि आधुनिक सभ्यता के साहित्य का उसमें बहुत कुछ अभाव है। परन्तु इसके साथ हम यह भी ज़ोर देकर कह सकते हैं कि हिन्दी के प्रवीण लेखकों ने इस सम्बन्ध में अपनी ओर से ज़रा भी कोर कसर नहीं की और गत तीस चालीस वर्षों के भीतर जो कुछ लिखा गया है वह सब आधुनिक सभ्यता के साहित्य की ही रचना है। जब हिन्दी-साहित्य का विवेचना-पूर्ण इतिहास लिखा जायगा तब इस काल का महत्त्व भली प्रकार स्वीकार किया जायगा। खेद है कि हिन्दी-लेखक दलबन्दी के फेर में पड़ कर उस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। अपने अपने दलों के सुलेखकों को ही अभी वे दाद दे रहे हैं। परन्तु जिस दिन उनकी निगाह काशी और कलकत्ते से हट कर पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रदेश, बिहार एवं संयुक्त-प्रान्त के दूसरे नगरों पर पड़ेगी और वे साहित्य की प्रगति का सिंहावलोकन करेंगे तब हमारी उदयोन्मुख हिन्दी का वास्तविक रूप प्रकट होगा।

७—समालोचकों के प्रति

इधर पिछले दिनों हिन्दी के दो-तीन पत्रों में हिन्दी के मासिक पत्रों की वर्तमान गति-विधि के सम्बन्ध में कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं और उनमें उनकी आलोचना की गई है। ऐसी आलोचनायें सदैव अभिनन्दनीय हैं। और सबसे अधिक उत्साह-जनक बात तो यह है कि हमारी हिन्दी में समालोचकों का जो अभाव था उसकी पूर्ति के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। यह सच है कि समालोचना करना सब किसी का काम नहीं है। यह कह देना भर समालोचना नहीं है कि अमुक पत्रिका में अच्छी कवितायें नहीं निकलतीं या अमुक के लेखों का चुनाव अच्छा नहीं होता। तथापि यह उसका प्रारम्भिक रूप है, प्रारम्भ में ऐसी त्रुटि अनिवार्य है। इस अवस्था की उपेक्षा कर हिन्दी के पाठक उस दिन की धैर्य के साथ राह देखेंगे जब वे अपने विद्वान् समालोचकों को अपनी उचित समालोचनाओं-द्वारा साहित्य की उपयुक्त सेवा करते देखेंगे। अनेक लोग यह जानने के लिए उद्‌ग्रीव रहते हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा का साहित्य-भाण्डार कैसे कैसे उज्ज्वल ग्रन्थ-रत्नों से अलङ्कृत किया जा रहा है। अतएव यह अधिकाधिक आवश्यक होता जाता है कि हिन्दी के समालोचक आगे आकर बतावें कि आधुनिक हिन्दी में इधर पिछले दिनों कहाँ कैसा काम हुआ है। हमारा अपने इन कतिपय समालोचक महानुभावों से यह अनुरोध है कि जहाँ वे सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की उल्टी-सीधी खोज-ख़बर लेते रहते हैं, यदि कुछ और आगे आकर हिन्दी के सुलेखकों तथा सुकवियों की भी कभी कभी जाँच-पड़ताल कर लिया करें तो उससे साहित्य का और भी अधिक हित होगा। उदाहरण के लिए हम यहाँ हिन्दी के उपन्यास-लेखकों की बात लेते हैं। श्रीयुत प्रेमचन्द, श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद, श्रीयुत बेचन शर्मा 'उग्र', श्रीयुत जैनेन्द्र कुमार। इन्हीं चार महानुभावों की रचनाओं की भली-बुरी चर्चा अभी तक हुई है। परन्तु उनकी इतनी ही संख्या नहीं है। और भी कई एक महानुभावों ने उपन्यास लिखे हैं। परन्तु समालोचकों के अभाव से उनकी रचनाओं के जौहर नहीं प्रकट हुए। ऐसे लेखकों में बाबू वृन्दावनलाल, श्रीयुत सुदर्शन, श्रीयुत ऋषभचरण जैन, श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला,' श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी, श्रीयुत राजेश्वरप्रसाद-सिंह, श्रीमती तेजरानी दीक्षित, श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल, श्रीयुत सद्‌गुरुशरण अवस्थी, श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री, श्रीयुत श्रीनाथसिंह, श्रीयुत शम्भुदयाल सक्सेना आदि के लिखे हुए उपन्यास सुपाठ्य हैं। यहाँ स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी और चण्डीप्रसाद का भी उल्लेख करना उचित है। परन्तु अभी तक हम इन लोगों की रचनाओं का महत्त्व हृदयङ्गम नहीं कर पाये। हिन्दी के इस अभ्युदयकाल में अपने सुलेखकों के प्रति यह उपेक्षा-भाव क्या वाञ्छनीय है? परन्तु यह सब कुछ करने में परिश्रम करना पड़ेगा, अललटप्पू लिख देने से यहाँ थोड़े ही काम चलेगा? यह हमारे साहित्य के रक्षक समालोचकों का कर्तव्य होना चाहिए कि अपने इन प्रतिभावान् लेखकों की क़द्र करें और इनका परिचय दूसरे हिन्दी-प्रेमियों को करावें। ऐसा करने से साहित्य का हित होगा। इन पारखियों को चाहिए कि अपने सत्कार्य को अब शिथिल न होने दें और अधिक अध्ययनशील होकर अपनी प्रतिभा का उपयोग सत् समालोचना के कार्य में लगाकर हिन्दी के नये लेखकों के लिए मार्ग-दर्शक बनें।

८—नव वर्ष

गत वर्ष संसार के लिए अच्छा नहीं रहा। कहीं भूचाल, कहीं बाढ़ और कहीं गृह-युद्ध हुए, जिससे उसने मनुष्य-समाज को घोर कष्ट पहुँचाया। उसकी सबसे बड़ी भीषणता अर्थ-संकट की उस आँधी के रूप में प्रकट हुई जो अब भी संसार के बड़े बड़े राष्ट्रों को हिला रही है। भारतवर्ष के लिए तो वह और भी बुरा रहा। उसने पंडित मोतीलाल नेहरू, महाराजा महमूदाबाद, मौलाना मुहम्मद अली, मिस्टर के० टी० पाल, रायबहादुर आनन्दस्वरूप, मिस्टर केशवचन्द्र राय, पंडित विष्णु दिगम्बर, मिस्टर पी० टी० श्रीनिवास आयङ्गर, श्रीमती

सदाशिव ऐय्यर, और श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी जैसे लोकनेताओं को समय के पर्दे में छिपा दिया। उसका कठोर हाथ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, गर्मदल, नर्मदल, पंडित, संगीतज्ञ और स्त्री सब पर बराबर पड़ा। किसी के साथ उसने कोई रियायत नहीं की।

कानपुर और तिनावली में आग से बड़ी क्षति पहुँची। बङ्गाल में बाढ़ आजाने से क़रीब २,५०० मील गिर्द के लोग बे-घर-बार होगये। इसके द्वारा जान-माल की जो हानि हुई सो अलग। गत वर्ष साम्प्रदायिक दङ्गे भी हुए। रावलपिंडी, मुल्तान, लाहौर, बनारस, आगरा, और मिर्ज़ापुर में हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य दङ्गे के रूप में फूट पड़ा और कानपुर में तो वह अपनी चरम सीमा को पहुँच गया—जहाँ न देव-स्थानों का कोई ख़याल किया गया और न स्त्री-बच्चों का। लोगों ने आपस में लड़कर अपने आप अपने जीवन को नरक बना डाला।

देश के दुर्भाग्य से गत वर्ष हिंसात्मक क्रान्ति से सम्बन्ध रखनेवाली घटनायें भी हुईं। ईश्वर के अदृश्य हाथों ने बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर ई० हाटसन और कलकत्ता के योरोपियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर विलियर्स की रक्षा कर ली। तो भी हमें खेद है कि मेदनापुर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर जेम्स पेड्डी, अलीपुर के सेशन जज मिस्टर गार्लिक, ढाका के मजिस्ट्रेट मिस्टर डनरो और कोमिल्ला के मजिस्ट्रेट मिस्टर स्टीवेन्स आदि सरकारी अफ़सरों की हत्यायें हो ही गईं। ब्रह्मदेश का विद्रोह अभी तक चला जा रहा है और काश्मीर जैसे सुन्दर स्थान को भी भीषण अशान्ति का सामना करना पड़ा। इन सब बातों ने गत वर्ष में कोई ख़ूबी नहीं रहने दी।

गत वर्ष भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति भी बड़ी डावाँडोल रही। राउंडटेबुल कान्फ़्रेंस के दो अधिवेशन हुए। दूसरे में कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी भी सम्मिलित हुए। इन दोनों कान्फ़्रेंसों के बीच में दिल्ली का समझौता हुआ। और यही गत वर्ष की सबसे बड़ी घटना कही जा सकती है। इसने भारतवर्ष के राजनैतिक जीवन की धारा को एक नई दिशा की ओर प्रवाहित किया।

इसी समय विलायत की सरकार में भी परिवर्तन हुए। मज़दूर-सरकार टूट गई और उसके स्थान पर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। पर इसका राउंडटेबुल के कार्य पर कोई प्रभाव न पड़ा। यदि व्यर्थ की साम्प्रदायिक अड़चनें न उपस्थित हो जातीं और कान्फ़्रेंस का अधिकांश समय अल्पमत और बहुमत के झगड़े में न लग जाता, तो यह कान्फ़्रेंस बहुत अंशों में सफल कही जा सकती थी।

कान्फ़्रेंस के अन्त में यद्यपि महात्मा गांधी ने कहा कि हमारे रास्ते यहाँ से अलग हो रहे हैं, तथापि उन्होंने यह भी कहा कि कोई आन्दोलन आरम्भ करने से पहले वे समझौते के लिए कोई उपाय शेष न रहने देंगे। परन्तु इस समय हालत जैसी गम्भीर हो उठी है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। सरकार ने बङ्गाल, सीमा-प्रान्त और संयुक्त-प्रान्त में नये आर्डिनेन्स जारी किये हैं। इधर कांग्रेस ने भी सत्याग्रह-संग्राम को पुनर्जीवित करने का प्रस्ताव पास किया है। इस प्रकार पुराना वर्ष देश को एक भीषण परिस्थिति में डाल कर चला गया है।

यह जानते हुए भी कि देश का भविष्य अन्धकारमय है हम नव वर्ष का स्वागत करते हैं। भारतवर्ष की राजनैतिक समस्या के इसी वर्ष में हल होने की आशा है। क्या अच्छा हो कि समझौते की कोई सूरत निकल आवे और सन् १९३२ भारतवर्ष के राजनैतिक गगन में सुख-शान्ति और आशा के उज्ज्वल तारे की भाँति उदित हो उठे।

—श्रीनाथसिंह

९—एक प्रतिवाद

मुंशी कन्हैयालाल हिन्दी के बड़े प्रेमी और सुलेखक हैं। आप अपने एक लम्बे पत्र में हमें लिखते हैं—

"महोदय,

दिसम्बर की सरस्वती के "वर्षान्त में" शीर्षक के सम्पादकीय विचार में आपने सब हिन्दी की मासिक पत्रि-

काओं का ब्योरा देते समय "चाँद" जो कि इलाहाबाद ही से निकलता है और जिसने अभी अभी अपने जीवन के दशम वर्ष में पग रक्खा है एक-दम भुला दिया। जब कि बहुत-सी नवजन्मा पत्रिकाओं को स्थान दिया गया है। यह तो असंभव है कि एक ऐसी नामी पत्रिका का आपको ज्ञान नहीं। यदि ऐसा है तो मैं इस अवसर पर आपको विदित कर देना चाहता हूँ। यदि आपने यह सोचा हो कि "चाँद" हिन्दी पत्रिकाओं में स्थान पाने योग्य नहीं है तो आपने अपने निर्णय करने में शीघ्रता की। यदि आपकी भूल से ऐसा हुआ है तो कृपया मेरा यह पत्र छाप दीजिए।"

[चाँद का नाम हमें उक्त नोट लिखते समय नहीं याद रहा। खेद है, हम अपने प्रसिद्ध सहयोगी चाँद के साथ-साथ माया, सहेली, त्रिवेणी, आर्य-महिला आदि जैसी सुन्दर पत्रिकाओं का भी नामोल्लेख करना भूल गये थे।—सम्पादक]

१०—चित्र-परिचय

इस अङ्क में जो चार तिरङ्गे चित्र दिये गये हैं वे प्रसिद्ध चित्रकार पूर्ण बाबू की चित्रकारी के सुन्दर नमूने हैं। मुखपृष्ठ के चित्र में उन्होंने भगवान् शङ्कर के प्रसिद्ध ताण्डव-नृत्य का चित्रण किया है। शेष तीनों चित्रों में कृष्णचन्द्र और राधाजी के अभिसार और उनके मिलन के दृश्यों का अङ्कन किया गया है। पूर्ण बाबू अपने इन चारों पौराणिक चित्रों में तत्सम्बन्धी भावों की अभिव्यक्ति में भले प्रकार सफल हुए हैं। सभी चित्र भावपूर्ण और नयनाभिराम हैं।

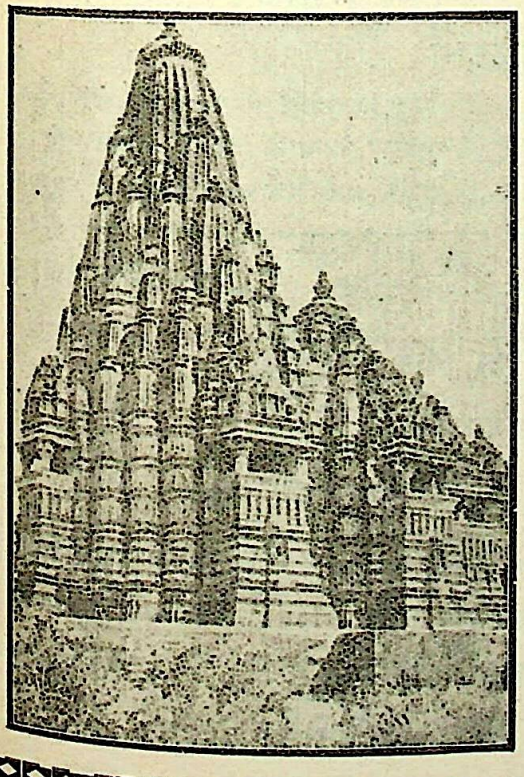

प्राचीन चिह्न

प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की प्राचीन सभ्यता को जानने के साधनों में प्राचीन इमारतें, प्राचीन स्थान और प्राचीन वस्तुएँ सबसे अधिक महत्त्व की समझी जाती हैं। इस पुस्तक के लेखों में पुराने नगरों, स्थानों और मन्दिरों आदि के संक्षिप्त विवरण देकर उनकी प्राचीन उन्नत अवस्था का उल्लेख किया गया है। नष्ट-भ्रष्ट वस्तुओं की रक्षा का एक-मात्र यही उपाय है कि पूरी तरह से उनका वर्णन पुस्तकों में हो, इसी विचार से यह उत्तम पुस्तक तैयार की गई है। पूरी किताब मनोरञ्जक और कौतूहल-वर्द्धक होने के सिवा अन्य दृष्टियों से भी ज्ञानप्रद अतएव जानने योग्य है। प्रत्येक इतिहास-प्रेमी को पूज्य द्विवेदीजी की यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥।) बारह आने।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

नव प्रकाशित पुस्तकें

रूपक रहस्य

(रायसाहब बाबू श्यामसुन्दर दास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

(हिन्दी में नाट्यशास्त्र की अपने ढंग की यह पहली-पुस्तक है। सारी पुस्तक को नौ अध्यायों में विभक्त करके उसमें नाटक के प्रायः सभी अंगों पर विशदरूप से विवेचन किया गया है। मूल्य २)

उद्धव-शतक

(श्रीयुत 'रत्नाकर')

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति व्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए० का यह नया खण्ड काव्य है। हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-काव्य में गोपिकाओं के विरह-निवेदन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्रीयुत रत्नाकरजी की यह नई रचना उस विषय के पुराने कवियों की रचनाओं जैसी ही सुन्दर और सरस है। इसका गेट-अप और छपाई भी अभिनव है। रंगीन स्याही से छपी हुई सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य दो रुपये हैं।

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(श्रीयुत नन्ददुलारे बाजपेयी)

यह रायसाहब श्रीयुत श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा लिखित हिन्दी-भाषा और साहित्य नामक ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण है। इसकी सहायता से हिन्दी-साहित्य के इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान भली भाँति प्राप्त किया जा सकता है। मूल्य ॥=)

छुटकारा

शरद् ग्रन्थावली की यह नवीन संख्या है। लेखक के अन्यान्य उपन्यासों के ही समान यह भी बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। मूल्य १) एक रुपया।

शुभ सूचना

शीघ्र प्रकाशित हो रही है

हिन्दी की सर्वोत्तम कहानियाँ

संग्रहकर्त्ता तथा भूमिकालेखक

मु० कन्हैयालाल, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०

हिन्दी में कहानियों का यही सर्वोत्तम संग्रह होगा। इसमें हिन्दी के सभी प्रसिद्ध कहानी लेखकों की उत्तमोत्तम रचनायें प्रकाशित हो रही हैं, कहानियों की संख्या लगभग १२५ तथा पृष्ठ-संख्या १००० से ऊपर होगी। मूल्य ७॥) साढ़े सात रुपये। किन्तु अभी से आर्डर भेजने वालों के लिए केवल ६) छः रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad

सचित्र मासिक

विश्वमित्र

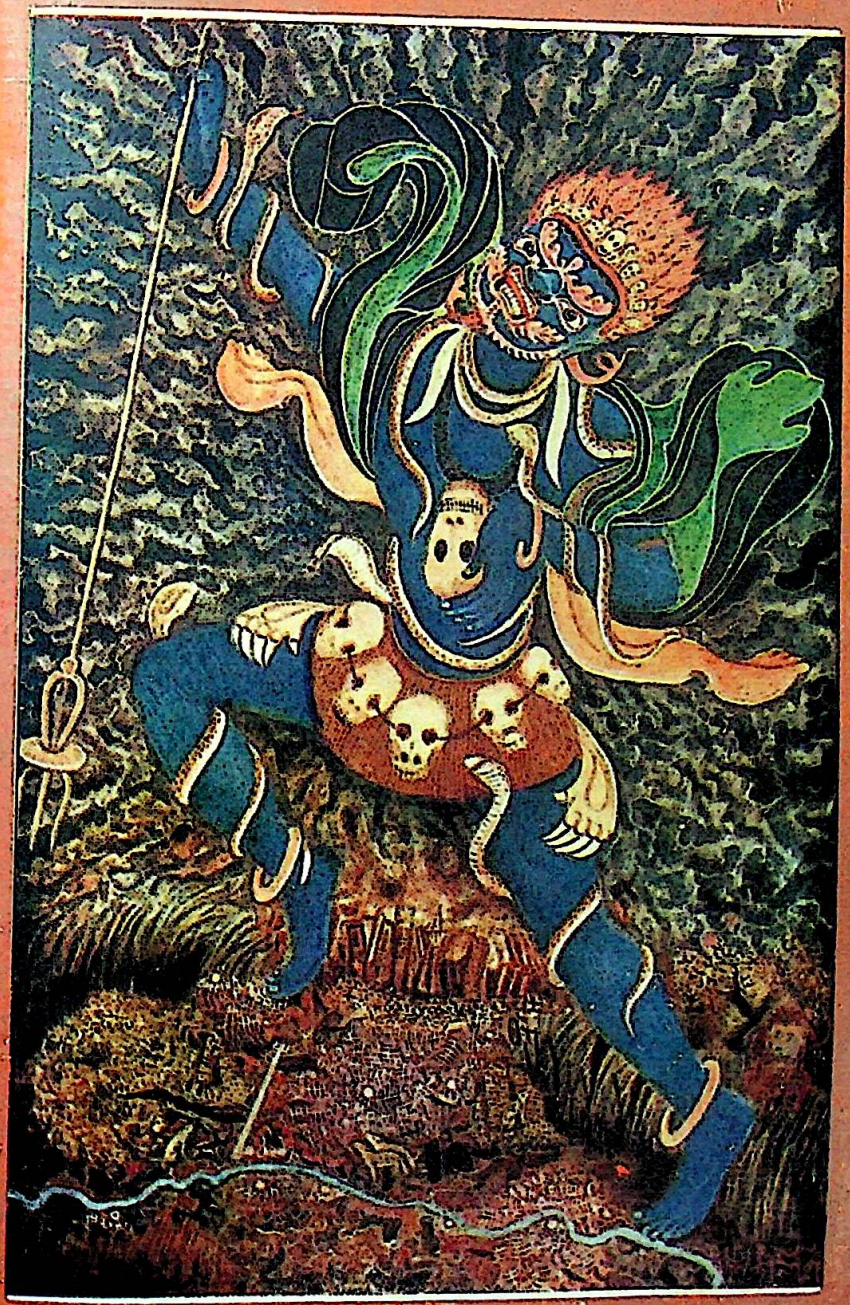

मार्गशीर्ष-पौष
भाद्र [illegible]
मूल्य [illegible]
[illegible] पैसा

पढने योग्य कुछ ऐतिहासिक पुस्तकें

मेवाड़-गौरव

मुगल-साम्राज्यकी भीषण विभीषिका जिस समय भारतके समस्त हिन्दू-राज्योंको हड़प करनेकी चेष्टा कर रही थी, उस समय मेवाड़ ही एक ऐसा प्रदेश था, जिसके राजा, प्रजा, बाल-वृद्ध-वनिता सभीने एकसे एक बढ़ कर बलिदान करके मरणोन्मुख हिन्दू जाति के मान-गौरवकी रक्षा की थी। कर्तव्यके लिये पिताओंने पुत्रोंको कत्ल किया था, मेवाड़ की रमणियोंने अग्निमें कूद कर हिन्दुत्वकी रक्षा की थी। इसमें उसी मेवाड़की कीर्ति-कलापोंका वर्णन है। दो संस्करण हाथोहाथ बिक गये। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। मूल्य १)

महाराणा-प्रताप

जिस समय हिन्दू जातिपर मुगल-साम्राज्य-विस्तारका ग्रह लगा हुआ था और हिन्दू राजा-महाराजागण एकके बाद एक मुगल-सम्राटके सामने शिर झुकाकर आत्म-समर्पण कर रहे थे, तब महाराणा प्रताप ही एक ऐसे वीरव्रती थे, जिनकी हुंकार-ध्वनिसे मुगल-राजसिंहासन कांप उठा था! इस पुस्तकमें उन्हीं हिन्दूकुल-गौरव प्रातःस्मरणीय महाराणा-प्रतापकी कीर्ति-कहानी विशद रूपसे लिखी गयी है। समस्त घटनाओंका इसमें उल्लेख है। अनेक चित्रोंसे सुशोभित। मूल्य १) मात्र।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज दिल्लीके अन्तिम हिन्दू सम्राट् थे। इसमें उन्हींके कार्यकलापोंका वर्णन है। भारत पर विदेशी विधर्मियोंके बहुत दिनोंसे दांत लगे हुए थे। दुर्भाग्यसे हिन्दुओंमें फूट पड़ गई और वे स्वार्थपरायणताके वशीभूत होकर एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक हो गये। अन्तमें गृह-शत्रुओंने विदेशियोंको निमन्त्रण देकर भारतमें बुला कर मातृभूमिको पददलित कराया! यह उसी समयका भारतका रक्त-रंजित इतिहास है। अनेक रंगीन चित्र दिये गये हैं। छपाई सफाई बढ़िया मूल्य १) मात्र।

पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी, १४।१ शंभू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—प्रलय (गद्य कविता)—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर	६७३
२—दो भारतीय महादेशोंका 'प्रलय-पयोधि-जल' से सर्वनाश (सचित्र)—डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्	६७४
३—'छपुस' आग्नेयगिरि क्राकातोआका सर्वनाशी धड़ाका (सचित्र)—श्री कन्हैयालाल गुप्त एम० एस-सी०	६८३
४—वर्तमान रणोन्मत्त सभ्यता (गद्य कविता)—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ...	६८९
५—प्रलयका विचित्र वरदान—हीरा ! (सचित्र)—श्री महाराज शरण श्रीवास्तव एम० ए०	६९०
६—भारतमें प्लेग-सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण—श्री कृपानाथ माङ्गलिक ...	६९३
७—रोमके ऐतिहासिक अग्निकाण्डकी लोमहर्षक कहानी (सचित्र)—श्री परमानन्द एम० ए०	६९७
८—मध्ययुगके यूरोपमें प्लेगकी सर्वसंहारी ताण्डव-लीला (सचित्र)—श्री गोपीकृष्ण शर्मा	७०४
९—विश्व-विनाश (कविता)—श्री. नरेन्द्र	७१२
१०—पाम्पिआइकी वह कालरात्रि ! (सचित्र)—श्री मदनमोहन 'विरागी' ...	७१३
११—महानाशके पूर्व लक्षण (सचित्र)—श्री प्रज्ञानन्द शास्त्री	७१७
१२—यहूदियोंका युग-युगव्यापी संहार (सचित्र)—श्री विजनकुमार शर्मा ...	७२१
१३—दर फनाए जहान—'नजीर' अकबराबादी	७३०

सर्वोत्तम स्वदेशी सिगरेट—

बाम्बे स्पेशल

भारतीय भार्जिनिया सिगरेट।

एक बार पीने से आप सर्वदा इसे ही पीयेंगे। आज ही एक पैकेट खरीदिये।

प्रस्तुतकर्ता :—

जेनिथ टुबैको कम्पनी, बम्बई

व्यापार सम्बन्धी बातों के लिये—

दास एन्ड कम्पनी

२२ कैनिंग स्ट्रीट, कलकत्ता।

सभी जगह बिक्री हो रहा है।

विषय	पृष्ठ
१४—मर्त्य ! (नाटक)—जापानी नाटककार श्री० हियाकूजो कुराता ...	७३२
१५—'साधो, ई मुरदनके गांव'—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी	७३९
१६—नाशलीलाके समय पैशाचिकता और कामोन्मत्तता (सचित्र)—श्री इलाचन्द्र जोशी	७४३
१७—भूकम्प और उसके कारण—श्री कामेश्वर शर्मा 'कमल' सा० भूषण ...	७४९
१८—नटराज (कविता)—श्री आरसीप्रसाद सिंह	७५३
१९—उत्तर बिहारमें ध्वंस-लीला—श्री धर्मचन्द सरावगी	७५४
२०—असार संसार (कविता)—'नजीर' अकबरावादी	७५९
२१—महाबली मृत्युका सर्वव्यापी अदृश्य अणुरूप (सचित्र)—डा० विश्वरूप सत्यवादी एम० बी०, बी० एस० ...	७६०

The Scindia Steam Navigation Co, Ltd.
Tele : Cal. 5265 Post Box 224
दि सिंधिया स्टीम नेविगेशन कं० लि०
तारका पता—"जलनाथ"

डी० डबल्यू-टानेज एस० एस०		डी० डबल्यू-टानेज एस० एस०	
जलविहार	८५३०	जलबाला	५६४०
जलपुत्र	८१४०	जलवीर	८०५०
जलज्योति	७१४०	जलदूत	८०५०
जलरश्मि	७०२०	जलमोहन	८२८०
जलपालक	७४००	जलराजन	८२८०
जलविजय	७१००	जलरत्न	६५२८
जलतरंग	४२८७		

भारत बर्मा और सीलोनके बन्दरगाहोंमें नियमित रूपसे मालके लादने वाले जहाजोंका आवागमन होता रहता है, भाड़े तथा दूसरे विवरणोंके लिये लिखिये।
कलकत्ता के मैनेजर
१००, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता

STAR TRADE MARK (REGD)
ष्टार ट्रे ड मार्क
डाबर (डा: एस, के, बर्म्मन) लि:
५० वर्षों से प्रसिद्ध अतुल्य देशी पेटेण्ट दवाओंका बृहत् भारतीय कार्यालय
यात्रा और भ्रमण में !
मंगाइये ! छपकर तैयार है !
नवीन सम्वत् १९९१
लाखों स्त्री-पुरुष इसे मंगाकर साल भर तक लाभ उठाते हैं। आप एक कार्ड लिख कर समय रहते मंगा लें।
डाबर विनामूल्य वितरण पञ्चांग !
SKB
नोट—सब जगह हमारे एजेण्ट तथा दवाखानोंमें मिलती है। दवा खरीदते समय ष्टार ट्रे डमार्क और डाबरनाम अवश्य देख लिया करें
विभाग नं० (२) पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।
सेल डिपो—(१) नं० ४, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, (२) नं० २०१, हरिसन रोड।

विषय			पृष्ठ
२२—प्रणयकी प्रलय-लीला (सचित्र)—श्री जी० डी० अग्निहोत्री एम० ए० (बर्लिन)	...		७६५
२३—चयनिका	...	...	७६९
२४—महिला-संसार	...	...	७७३
२५—सङ्गीत-सुधा	...	...	७८१
२६—पुस्तक-परिचय	...	...	७८३
२७—प्रलयकी गोदसे—श्री छविनाथ पाण्डेय			७८५
२८—अर्थ-चक्र	...	...	७८७
२९—विज्ञान-चमत्कार	...	...	७९०
३०—अन्तर्राष्ट्रीय	...	...	७९३
३१—सम्पादकीय	...	...	७९५

———

३० वर्षों से जगत विख्यात

No. 1 Regd. Trade mark.

पानमें खाते समय और पानवाले के यहां भी आर० एन० खन्ना मनमोहिनी देख लें।

No 2 Manmohini (Regd. Trade mark)

नकल करनेवाले सावधान। ट्रेडमार्क रजिस्टर्ड किया हुआ है। हाईकोर्ट के जज का भी फैसला है।

मनमोहिनी सुर्ती

आर० एन० खन्ना की मनमोहिनी सुर्ती पान में व्यवहार कीजिये और अपने स्वास्थ्य की रक्षा कीजिये।

पता—श्री जानकीनरायण खन्ना

मनमोहिनी कार्यालय, (डिपार्टमेन्ट नम्बर ६) नम्बर १५९ मछुआबजार स्ट्रीट, पुराने पोस्ट आफिस के सामने (तरकारी बाजार के ऊपर) कलकत्ता।

और किस्म के उपहार

पुराने हो जाते हैं और मनसे उतर सकते हैं

परन्तु

सोने और चांदीके जेवरोंका आकर्षण

तो वर्षोंतक ताजा बना रहता है। जब कभी भी आप

सोने और चांदी के जेवर खरीदें

तो

हमेशा बड़े नामवर और अपने विश्वस्त स्थानसे खरीदें,

एक बार हमारे शो रूममें पधारिये।

सन् १९०१ से स्थापित

सोनी मोहनलाल जेठाभाई एण्ड को०

३२ अरमनी स्ट्रीट, कलकत्ता।

नोट—।) आनेका टिकट भेजकर—सूचीपत्र मंगालें।

फोन—ब०ब० ३१४३ तारका पता—C/o मंजुला

अपने बुढ़ापेमें सुख शान्तिके लिये

अपनी आमदनी से थोड़ा बचा बचा कर

इंडस्ट्रियल एन्ड प्रूडेंशियल एस्योरेन्स कम्पनी लि०

में जमा करते रहो

विशेष विवरण जाननेके लिये यहांके आफिस

१२, डलहौसी स्क्वायर, कलकत्ताको

पत्र लिखिये

—हर मौसम में—

सुगन्धित, शीतल

मैसूर चन्दनका साबुन व्यवहार कीजिये

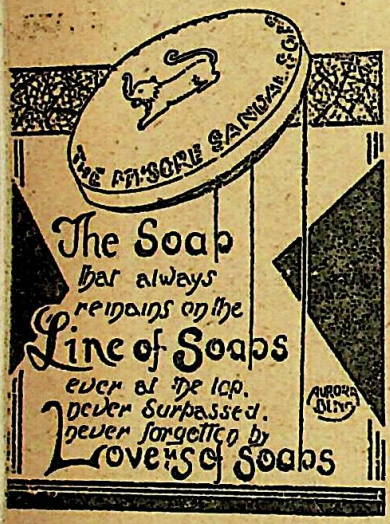

यह साबुन शृङ्गार की सब सामग्रियों के अभावकी पूर्ति करता है। यह मैसूरके असली चन्दन से बना हुआ सर्वश्रेष्ठ साबुन है।

सोल एजण्टस —

अमृतलाल ओझा एण्ड कं० लि०,

११, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

प्रो० र० धों० कर्वे एम०ए० कृत

नवीन ग्रन्थ

आधुनिक कामशास्त्र (सचित्र)

मूल्य २॥) रु० डा० ख० ।-)

संततिनियमन (सचित्र)

मूल्य ।।।), डा० ख० ।)

पता—

राइट एजेन्सी,

बम्बई, नं० ४

सिपाही विद्रोह

सन् सत्तावनके गदरका रोमांचकारी इतिहास

सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये मूल्यमें कमी।

४) से घटा कर ३) किया गया और पुस्तक सजिल्द कर दी गयी।

हिन्दीमें अपने ढंगकी सर्वथा अनोखी पुस्तक है। पहले संस्करणकी प्रतियां हाथोंहाथ बिक जाने पर दूसरा संस्करण निकाला गया है। इस पुस्तकमें आप ऐसी रोमांचकारी घटनाएं पढ़ेंगे कि आपको अनुभव होगा कि हम कोई उपन्यास पढ़ रहे हैं।

झांसीकी रानीने क्या किया, दिल्लीके बादशाहका क्या हुआ, कुंवर जगदीश सिंह कैसे वीरगतिको प्राप्त हुए, देहातोंमें क्या हुआ आदि बातें पढ़कर आप कहेंगे कि वास्तवमें पुस्तक संग्रहणीय हैं।

सुन्दर कागज, बढ़िया छपाई, पक्की जिल्द।

शीघ्र आर्डर देकर मंगा देखिये।

मैनेजर—दी पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी

१४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्ता।

विहारका खण्ड-प्रलयसे सर्वनाश

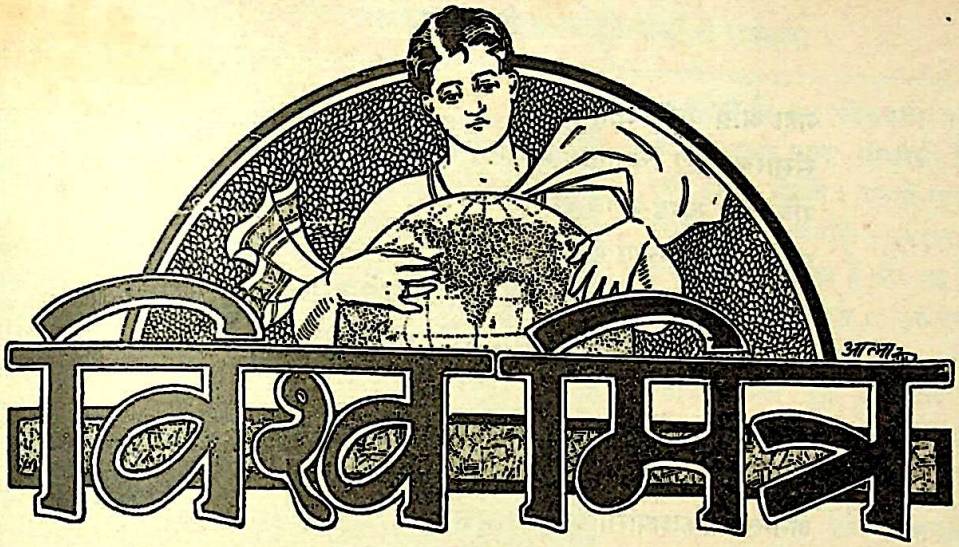

सम्पादक — { डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्
इलाचन्द्र जोशी

मार्च, १९३४ | वर्ष २, अङ्क ६ | फाल्गुन, १९९०
खण्ड ३, पूर्ण संख्या १८

प्रलय

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हे रुद्र ! जाग्रत होओ !
अलंघ्य नियम-पथमें भ्रमण करते-करते यह देह श्रान्त हो गयी है;
हे देव ! अब मृत्यु-सङ्गीत गाओ,
जिससे हम नया जीवन प्राप्त करें ।

महेश्वर त्रिकालकी तरह अपनी तीनों आंखोंसे
दिक्-दिगन्तरमें देखते हुए उठ खड़े हुए ।
प्रलय-पिनाक हाथमें लेकर,
उन्होंने अपने पैरोंसे पृथ्वीतलको दबाया;
जगत्का आदि-अन्त थर-थर थर-थर कांप उठा;
संसारका समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न हो उठा;
असीम शून्यमें गरजते, तरङ्गित होते हुए
छन्दोमुक्त जगत्का उन्मत्त आनन्द-कोलाहल जाग पड़ा ।

महा अग्नि धधक उठी,
संसारका महा चितानल प्रज्वलित हो उठा।
रवि-चन्द्र खण्ड-खण्ड हो पड़े,
ग्रह-तारा चूर्ण-चूर्ण होकर
विन्दु-विन्दु अन्धकारकी तरह चारों ओरसे वरसने लगे,
और अनलके तेजोमय ग्राससे मुहूर्तके भीतर विलीन होने लगे।

सृष्टिके प्रारम्भमें सर्वत्र अनादि अन्धकार व्याप्त था,
सृष्टिके ध्वंस-युगान्तरमें केवल असीम हुताशन शेष रहा।
अनन्त आकाशग्रासी अनल-समुद्रमें
महादेव त्रिनयन मूंदकर
महाध्यानमें निरत हो गये॥

दो भारतीय महादेशोंका 'प्रलय-पयोधि-जल' से सर्वनाश

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्

पूर्व कालमें बड़े-बड़े महादेश महासागरके सर्वशोषी उदरमें समा गये हैं। इसमें 'लंगूरिया' और 'अतलान्तिक' विख्यात है। क्या लंगूरिया 'जम्बू द्वीप' है। इसके पक्ष या विपक्षमें कुछ प्रमाण नहीं मिलते। यह महादेश जावासे लेकर अफ्रीका तक फैला था। दक्षिण भारत इसका एक बहुत छोटा खण्ड था। इसमें आजानुबाहु 'त्रिलोचन' रहते थे। पर न मालूम कब ये वीर जलके अतल गर्भमें समा गये। इसी प्रकार पातालका 'अतल' लोक, जिसे गोरे 'अतलान्तिक' कहते हैं समुद्रके गर्भमें चला गया। अतल देशमें सम्भवतः आसुरी सभ्यता थी। इन दोनों महाद्वीपोंका रोमाञ्चकारी वर्णन और उनके प्रलयका चित्र इस लेखमें किया गया है। स०

The hills are shadows and they flow, From form to form, and nothing stands;
They melt like mist, the solid land; Like cloud they shape themselves and go.

हमारी वर्तमान पृथ्वीमें रात-दिन महाकालके सर्वनाशी रथकी घर्घर-ध्वनि सुनायी देती है। इस रथके पहियेके नीचे कितने प्राणी पल-पलमें विलयकी ओर जा रहे हैं उसका अनुमान लगाना विश्वके विधाताके वशकी बात हो तो हो, विश्वके विभूषण और मुकुट मनुष्यके लिए यह काम असाध्य है! इस तुच्छ और मिथ्याभिमानी मर्त्यको अपनी प्रतिभा और इतिहासका गर्व है; पर उसे इतना भी पता नहीं है कि कब उसकी सारी करामात—भोग-विलास, सब सुख-साधनोंसे सम्पन्न नगर, अतुल सम्पत्तिका प्रमाण देनेवाले भव्य भवन, दरिद्र जनताके लिए भी सुखी जीवन सहजसाध्य बनानेवाले वैज्ञानिक आविष्कार, साहित्य, सङ्गीत और कलाकी उन्नति आदि—पर कब कालकी एक सर्द आह पानी फेर दे।

जगत्में जल और थल, आग और पानी खूब लड़ रहे हैं। यह देवासुर-सङ्ग्राम अरबों वर्षोंसे चल रहा है और अभी अरबों वर्षों तक चलेगा। इस महायुद्धने समुद्रको मथ रखा है और पृथ्वीको प्रकम्पित कर रखा है। पाठक यह पढ़कर न घबरायें कि हमारी दुनिया प्रति-दिन सैकड़ों बार हिलती है। यह अपनी धुरीके चारों ओर घूमती है। इसके

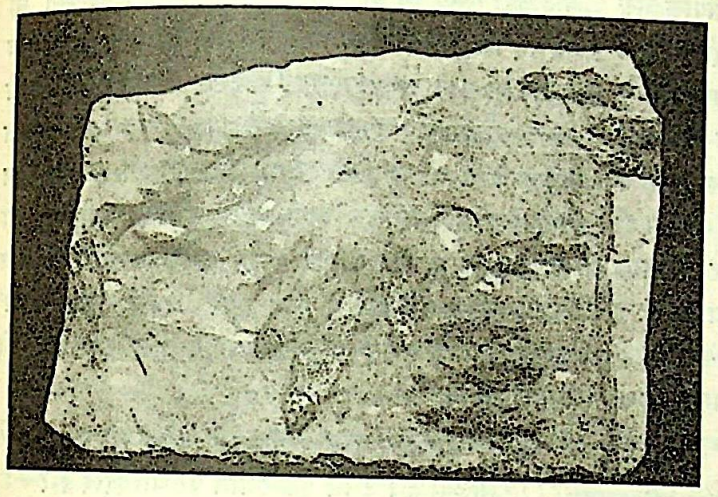

प्राचीन कालकी मछलियां चट्टानमें चिपटकर यह रूप धारण कर लेती हैं। हिमालय आदि पर्वतोंमें, जो किसी समय समुद्रके भीतर थे, इस प्रकारकी चट्टानें पायी जाती हैं।

अतिरिक्त अपने आराध्यदेव और प्राणदाता भगवान् भास्करकी उग्र वेगसे प्रदक्षिणा करती है। इस दशामें इस मिट्टीके गेंदके कुछ हिस्से बीच-बीचमें उछल-कूद मचाने लगें तो उसमें आश्चर्यकी क्या बात है। अब तो यह गेंद प्रकृतिके चक्रमें चक्कर काट-काटकर बहुत-कुछ ठोस और पक्का हो गया है और होता जा रहा है। कुछ वर्ष याने कई अरब वर्ष पहले यह पानीकी तरह तरल था, उस समय इसमें ऐसे भूकम्प हुए कि इसके बड़े-बड़े टुकड़े वज्रवेगसे अलग हुए और अधरमें जाकर लटक गये। इनमें एक मङ्गल ग्रह है जिसे संस्कृतमें 'भूमिसुतो भौमो' कहते हैं। यह हमारी पृथ्वीका आत्मज कहा जाता है। कुछ वैज्ञानिकोंका ऐसा ख्याल है कि मङ्गलमें प्रतिभाशाली जीव बसते हैं जिन्होंने वहांकी जीवनके प्रतिकूल वायुमें भी विज्ञानके जोरसे अपनी अपूर्व उन्नति कर रखी है। चन्द्रमा भी किसी समय इस दुनियासे उखड़कर आसमानमें जा लटका। उस समय उक्त ग्रहों और इस जगत्में जो भूकम्प आया होगा वह अवर्णनीय है। उस धक्केसे मङ्गल और चन्द्रलोक तो प्रायः प्राणशून्य हो गये और इस पृथ्वीमें कितने प्राणी मरे, कौन-कौन देश ध्वंस हुए, कितनी भूमि जलके अतल गर्भमें समा गयी और कैसा हाहाकार मचा, इसका पता लगाना असम्भव है और कभी किसीको कुछ पता लग भी जाये तो उसे यह अड़चन आ पड़ेगी कि उस 'विश्वकम्प' का वर्णन करनेके लिए उसके पास संसारकी किसी भाषामें शब्द ही न मिलेंगे। उसको व्यक्त करनेके लिए हमारे पास पूर्वजोंने—सर्वद्रष्टा ऋषियोंने—एक ही शब्द छोड़ा है और वह है—'प्रलय।' आर्योंने कई प्रलय देखे। एक ऐसा प्रलय देखा जब संसार जलमय हो गया था। उस समय अशेष थलचर डूब गये और उनकी जात मिट गयी। केवल भगवान् बचा। इसीलिए कविने गाया है—

प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम्
विहित विचित्र चरित्रमखेदम्,
केशवधृत मीन शरीर जय जगदीश हरे!

इस प्रलयका जिक्र संसारकी सब जातियां अपने-अपने धर्मग्रन्थोंमें कर गयी हैं। उस समय केवल मनु बचे और उन्होंने मनुष्यकी सृष्टि की। ये बातें हम पुराणोंकी कपोलकल्पना समझते हैं, पर विज्ञानकी खोज इस विषयपर जो नया प्रकाश डाल रही है उससे इन बातोंमें सन्देह करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। पृथ्वीके पागलपन और सृष्टिके सिड़ीपनने बीच-बीचमें कुछ ऐसा अनर्थ मचाया है कि सहसा विश्वास करनेको जी नहीं चाहता।

एक समय था जब उत्तरी भारत समुद्र-तलमें सोया हुआ था। इसमें भांति-भांतिके जलचर बसते थे और जलके ऊपर कालपर विजय पानेवाले शेषशायी भगवान् विहार करते थे। हिमालय पर्वत, तिब्बत आदिका पता न था। गधेके सींगकी भांति सब नदारद थे। उस समय दक्षिण भारत वर्तमान था और वह उस महाद्वीपका एक अङ्ग था जो जावा, सुमात्रासे पूर्वी अफ्रीका तक फैला हुआ था। इसका नाम क्या था? इसका पता नहीं है और न कभी लग सकेगा। पर भूगर्भ-शास्त्रके आचार्य स्लेटरने उसका नया नामकरण 'लंगूरिया' किया है। यह इसलिए कि इस जलमग्न महादेशके जो भाग अभी डूबनेसे बचे हैं, केवल उन सबमें 'लंगूर' नामक वानर पाये जाते हैं, अन्यत्र नहीं। इस विषयपर जर्मन विद्वान् हेकलने कहा है कि वर्तमान मलया द्वीप-समूह उन दो महादेशोंका ध्वंसावशेष है जो न मालूम कब जलमें डूब गये हैं।

इनमें बोर्नियो, जावा और सुमात्रा तो दक्षिणी एशियाके अङ्ग हैं और न्यूगिनी, सेलेबीस,सोलोमन द्वीप उस महाद्वीपके खण्ड हैं जो कभी आस्ट्रेलियाका अङ्ग था। इन दो महाद्वीपोंके बीचमें उस प्रागैतिहासिक समयमें एक तङ्ग जल-डमरूमध्य था जो उनको अलग करता था। एक समय ऐसा भूडोल आया कि इन दोनों महादेशोंका अधिकांश भाग जलमग्न हो गया। यह जल-डमरूमध्य आज भी बाली और लोमाक द्वीपोंके बीच वर्तमान है। यह पन्द्रह मील चौड़ा है, परन्तु इतने निकट होनेपर भी बालीके जीव-जन्तु, फल-फूल, पेड़-पौधे और आचार-विचार सबमें एशियाईपन है; पर लोमाक-की आबोहवा, सभ्यता, आचार-विचार और रङ्ग-रूप सब

कालका ताण्डवनृत्य सदा एकसा होता रहता है।

आस्ट्रेलियाके-से हैं। भारतको ही लीजिये। दक्षिणके मूल अधिवासी द्रविड़ उत्तर भारतवालोंसे बिलकुल नहीं मिलते, पर अफ्रीकाके हबशियोंसे उनका रूप-रङ्ग खूब मेल खाता है। उनके घुंघराले बाल, मोटे होंठ आदि इसका पूरा प्रमाण देते हैं। कहेवकी खेती भी मैसूर और अफ्रीकामें होती है। जान-वर भी उक्त दोनों स्थानोंके एक-से हैं। उत्तर और दक्षिण भारतमें जमीन-आसमानका फर्क है, पर द्रविड़ देश और पूर्वी अफ्रीकामें बहुत साम्य है। इसके अतिरिक्त हिमालय पर्वत, आसाम, तिब्बत आदि प्रदेशोंमें खोदनेपर जमीनके नीचे या पत्थरोंके साथ चिपके हुए जल-जन्तु पाये जाते हैं। यदि वहां समुद्र न था तो ये कहांसे आये। यह बात भी पक्की है कि आर्य लोग आदिमें एक ऐसे देशमें थे जहां वर्षका अधिकांश भाग अन्धकारमय रहता था। उस समय 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' रूपकालङ्कार न था। वह एक अत्यन्त कटु सत्य था जो आर्योंकी आत्माको व्यथित करता था। उस तमसाच्छन्न देशमें सूर्य भगवान्‌का आगमन क्या था, नया जीवन लाभ करना था। कड़कड़ाते जाड़ेमें नर-नारी रात-दिन अग्निदेवकी पूजा करते थे और उनके धर्ममें 'शाश्वत अग्नि' जलती थी और वह पुरोहित बनकर यात्रामें भी आगे-आगे चलती थी।*

इसकी स्मृति आवेस्तामें और भी स्पष्ट रूपसे मिलती हैं। उसमें एक स्थान पर वेन्दिदाद १,१—३। लिखा है—"अहुर मज्दने आर्योंकी आदिभूमि (एर्यन वायेजस) सिरजी; पर उसके शत्रुने उसका काम बिगा-ड़नेके लिए 'हिम' की सृष्टि की। आर्योंकी इस बीज-भूमिमें कड़ाकेका जाड़ा पड़ने लगा और दस मास तक केवल रात ही रहती है। सूर्य केवल दो महीने दर्शन देता है। इन दो महीनोंमें भी जल इतना शीतल रहता है कि जाड़ा बना रहता है। पृथ्वी हिमसे ठिठुर रही है, पेड़ पौदे नहीं जमते। यह स्थान हिमका हृदय—हिमका अन्तस्तल है।" इस जाड़ेसे स्कन्दनाभि देशके पुराने गीतोंमें 'फिम्बुल वेन्त्र' कहते हैं। उनमें गाया गया है—"जब फिम्बुल वेन्त्र' अर्थात् हिमवन्त ऋतु बीती तो कौन मनुष्य बचा रहा।"

उत्तरी ध्रुवमें कभी उतनी ही गरमी पड़ती थी जितनी आज भारतमें। इसके प्रमाण वहांके प्राचीन पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओंके अवशेष हैं। वह अतल देशका एक भाग था और उसके साथ लोप हो गया तथा शीत ऋतुने वहांकी गरम आबहवाको धर दबाया। तबसे वहां प्राण जी खोलकर पनपने नहीं पाता। एक प्रकारसे मृत्युका जबर्दस्त राज है। हरियाली तो दिखायी नहीं देती, पर पशु भी बहुत कम मिलते हैं। ऐसा ही एक देश कभी हमारे पूर्वज आर्योंको छोड़ना पड़ा था। कितनी प्राण-हानिके बाद? इसके आंकड़े सदाके लए लोप हो गये हैं।

* अग्ने नय सुपथा राये। यजुर्वेद ४०।१६
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आभाति देवी अमृते अमूरः।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः। ऋग्वेद

एलफ्रेड रसल वालेसने लंगूरियाके विषयमें लिखा है—"यह महाद्वीप कभी बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। पर इसकी हद बांधना बहुत कठिन है। यदि हम उस भूखण्डका नाम लंगूरिया रखें जिसमें लंगूर मिलते हैं तो यह अवश्य ही पश्चिमी अफ्रीकासे बर्मा, दक्षिणी चीन और सेलेबीस तक फैला था।" डारविन, हक्सले, मरे आदि सब वैज्ञानिक समझते हैं कि लकद्वीप, मालद्वीप, कागोज, साया द मुल्हा आदि सब द्वीप 'लंगूरिया' महादेशके अवशेष हैं। इनमें भौगोलिक जीवन प्रायः एक ही प्रकारका मिलता है। लंगूरियाका मैदान और छोटे-मोटे पहाड़ तो डूब गये; पर ऊंची चोटियां डूबनेसे बच गयीं। वे ही आज भारत महासागरमें द्वीप बनकर स्थित हैं। प्रो० हक्सलेका तो यहां तक कहना है कि मायोसीन युगमें दक्षिणी भारतसे अबिसीनिया तक स्थलपथ था। दक्षिण भारतकी मिट्टीका निरीक्षण करनेसे पता चलता है कि वहां कभी ज्वालामुखीने घोर प्रलय मचाया था। बम्बई आदि समृद्धिशाली नगर उसके खण्डहरोंमें बसे हुए हैं। जिस समय यह सब हुआ था उस वक्त आर्योंका पता न था। भारतसे पश्चिमी एशियाको जानेके लिए जमीनका रास्ता भी न था। आर्यावर्तसे लेकर सिन्धु प्रदेशतक जल ही जल फैला हुआ था। इसके दक्षिणमें 'लंगूरिया' था।

इस महादेशमें कौन जाति बसती थी? इसका पता चलाना बहुत कठिन हो रहा था। जब यह महाद्वीप पानीमें धंसा तो असंख्य प्राणी पल-भरमें कराल कालके गालमें घुस गये। प्राणिमात्रका नामलेवा और पानीदेवा न रहा। तब उन मनुष्योंका पता कैसे चले, जो इसमें बसते होंगे। पर वैज्ञानिकोंने यह असाध्य काम भी सम्भव कर दिखाया है। खोजते-खोजते उन्हें ईस्टर द्वीपोंमें कुछ मूर्तियां मिली हैं। ये भूतलके बहुत नीचे दबी थीं। क्रुकस, वालेस, द्यू प्रैल आदिकी रायमें ये खण्डहर लंगूरियाके ध्वंसावशेष हैं। इस महाप्रदेशके इतिहासका केवल इतना ही चिह्न बचा है।

इनसे मालूम होता है कि लंगूरियाके निवासी आठ नौ हाथ लम्बे, आजानुबाहु वीर होते थे। उनका रङ्ग कृष्णवर्ण था। ठुड्डी बढ़ी हुई, चेहरा एकदम चिपटा, आंखें छोटी, पर तेज थीं। ये हमारी तरह नाककी डण्डीके अगल-बगल नहीं थीं, बल्कि एक-दूसरेसे बहुत दूरीपर रहती थीं। ये ऐसी जगहपर थीं कि इनसे 'लंगूरिया' जातिके मनुष्य सामने देख सकते थे और जरा घुमाकर दाहिनी और बांयीं ओर भी। इसपर एक बड़ी बात यह थी कि इनके सिरकी पीठमें तीसरी आंख होती थी। इससे वे पीछेको भी देखते थे। चतुर्मुख ब्रह्माकी भांति वे 'लंगूरिया' मनुष्य अपने चारों ओर देख सकते थे। सिरकी पीठमें भी आंख होनेके कारण वह गञ्जी रहती थी। उन 'त्रिलोचनों' की मूर्ति विशाल थी। सर पलभरमें जिधर जी चाहा, मोड़ लेते थे। हाथ और पांव ऐसे शक्तिशाली और विराट् होते थे कि जिस खूंख्वार जङ्गली जानवरके चांटा जड़ दिया वह तत्काल ढेर हो गया। ये पशुओंका चमड़ा पहनते थे। एक विशेष पशुका चमड़ा इन्हें बहुत पसन्द था। वह गेंडेकी खालकी भांति ढालका काम देता था। इनके बांये हाथमें लम्बा और नुकीला भाला रहता था। इससे ये शिकार करते थे। यह भाला दस हाथ लम्बा होता था कि दूरसे ही जानवरोंपर वार कर सके। दायें हाथमें 'नागपाश' की भांति एक अस्त्र रहता था। एक रस्सेके सिरेपर 'नाग' की तरह एक विषधर बांधा जाता था और शिकार या युद्धके समय उससे पशु या शत्रुपर चोट की जाती थी। इस अस्त्रसे वे बहुत आसानीसे शिकार करते थे। यह जाति इसके खण्डहरोंको देखकर असभ्य नहीं बतायी जा सकती।

यह देवोंकी जाति शान्तिके साथ 'लंगूरिया' महादेशमें अपना जीवन व्यतीत कर रही थी। राग-रङ्गमें मस्त रहती थी और इनकी आयु भी तीन चार सौ वर्षकी होती थी। क्या हुआ? क्या कारण आया? इसका कुछ पता नहीं। एक समय ऐसा आया कि यह सारा महाद्वीप जलमग्न हो गया। कितने ज्वालामुखी उस समय फूटे, कैसा भीषण भूकम्प आया, यह बतानेके लिए भी कोई मनुष्य न बचा। वही दशा थी—

अण्डकोपेपि सकलः प्रलयं याति सर्वशः।

इतना ही पता चलता है कि उसके बाद मानव जातिके सब धर्मग्रन्थोंमें पृथ्वीके जलमय हो जानेका वर्णन आया है। मनुस्मृतिमें इसका वर्णन है और बाइबलमें इसका जिक्र आया है। पर वह जातिकी जाति ऐसी समाप्त हुई कि उसकी स्मृति भी पूरी नहीं रह गयी है। दुनियामें ऐसा अनेक बार हो चुका है और उसकी लम्बी आयुमें भविष्यमें भी ऐसा न मालूम कितनी बार होगा।

अटलाण्टिस देशका महाप्रलय

एक दूसरा महाद्वीप, जिसकी केवल स्मृति अवशेष है, आटलाण्टिस है। आज हम जिस महासागरको अटलाण्टिक नामसे पुकारते हैं उसपर कभी स्थलका प्राधान्य था। यूरोपसे अमेरिका तक यह महाद्वीप फैला हुआ था और इसके अधिवासी समझते थे कि वह भूमि सदा हरी-भरी रहेगी और उनकी सन्तति अनन्त काल तक उस भूभागका उपभोग करेगी। भगवान् सूर्य नितप्रति समयपर आते थे, रात भी नियमसे पड़ती थी, ऋतुयें चक्रवत् बारी-बारी अपना चमत्कार दिखा जाती थीं और हजारों-लाखों वर्षों

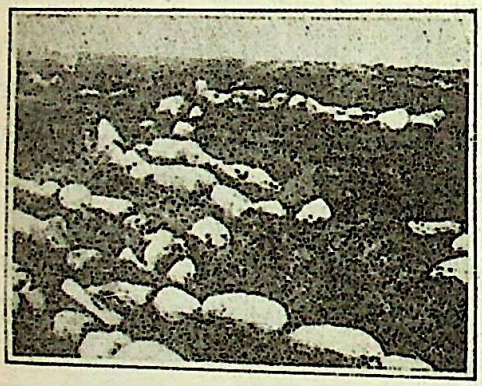

स्वेडनके अतिप्राचीन अधिवासियोंकी कब्र।

तक इन नियमोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। हां, बीच-बीचमें हलके भूचाल हुए, कहीं-कहीं ज्वालामुखी पर्वतोंने आसपासमें अग्निवर्षण किया और दूर-दूर स्थानोंमें भूगर्भसे खौलता हुआ जल फूट निकलता था। इन छोटी बातोंकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया। भला इनका क्या अनर्थकारी परिणाम हो सकता है। पर एक दिन ऐसा आया कि सागरकी प्रलयकारी तरङ्गोंने सर्वभुक् आगसे भी भयङ्कर रूप धारण किया तथा आकाशभेदी गर्जनके साथ इस भूखण्डपर आक्रमण किया। जल और थलका वह महायुद्ध संसारके इतिहासमें एक ही हुआ। उस समय जलकी उत्ताल तरङ्गें क्रोधोन्मत्त सहस्रमुख शेषनागके फनोंकी भांति विश्वमें सर्वसंहारकारी विष उगलने लगीं। प्राणी बिलबिला उठे, पर्वत अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए उड़ने लगे, धीर-धरणी हाहाकार कर उठी और भगवान् देखते रह गये। सारा महाद्वीप ध्वस्त-विध्वस्त हो गया। कुछ ही समयके भीतर सम्राट्से लेकर जङ्गली जानवर तक सब 'प्रलयपयोधि जल' में विलीन हो गये। उस भयङ्कर कालमें महारुद्र अपनी शाकिनियों-डाकिनियों, पिशाचों और भूतोंके साथ दिगम्बर वेषमें नाचने लगे। उस ताण्डव-नृत्यको देखकर विश्व-ब्रह्माण्ड थर्रा उठा और इस—

"भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूत भयङ्करी"

लीलाको देखकर भगवान्की क्या दशा हुई होगी, यह भगवान् ही जाने।

इतना बड़ा महाद्वीप पृथ्वीतलसे लोप हो गया, पर इसका समाचार देनेवाले मिलने कठिन हो गये। अरस्तूने इसपर कुछ लिखा। पर यूरोपवाले कुछ ही वर्ष पहले तक समझते थे कि यह वर्णन अरस्तूकी कपोल-कल्पना है। पर अब बीसियों प्रमाण

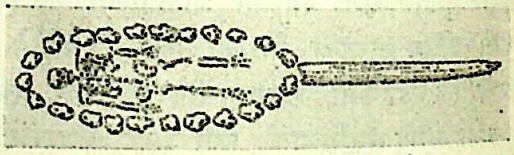

युक्तराष्ट्रके प्राचीन अधिवासियोंकी ठीक वैसी ही कब्र।

मिले हैं कि किसी समय हमारे ऐतिहासिक युगमें ही अटलाण्टिस महादेश सर्वनाशी जलसे जूझते-जूझते चल बसा।*

* जर्मन वैज्ञानिक हेकलने इस विषयपर क्या ही ठीक लिखा है—"संसारके विकासका इतिहास हमें बताता है कि भूगोलकी सतहपर जल और थल दोनोंके भागमें सदासे घटबढ़ होती जा रही है। दुनियाकी सतहके पास ही जो दरारें हैं वे भरती और खुलती जाती हैं। इसलिए जल और थलमें घटबढ़ हो रही है। कहीं जमीन दबती है और अन्यत्र वह बढ़ती है; कहीं पानी फूट निकलता है और कहीं सूख जाता है। ये परिवर्तन जहां धीमे-धीमे भूमि या जल घट रहा हो वहां भी हो रहे हैं। कहीं-कहीं सैकड़ों वर्षोंमें समुद्रतट इञ्च-इञ्च करके बढ़ता है, पर इसका परिणाम एक दिन ऐसा होता है कि महादेश बन जाते हैं। यह भले ही अरबों वरसोंमें सम्भव हो; पर पृथ्वीके इतिहासमें इतने बरस विशेष बात नहीं हैं। अरबों वर्षोंसे—जबसे जीवनने इस भूमिपर पांव धरा होगा—जल और थल अविरामगतिसे एक-दूसरेको उजाड़नेके लिए लड़ रहे हैं। नये-नये देश और सागर जनमते और उसी प्रकार गायब हो रहे हैं। मध्यसागर

अटलाण्टिस, 'अतलान्तिक' या 'अतल'

यह अटलाण्टिक प्रदेश यूरोपसे अमेरिका तक फैला हुआ बताया जाता है। यह बात कुछ अंशोंमें सच भी है। अत्यन्त प्राचीन समयमें भारतीय आर्य इसे अतल लोक कहते थे। कुछ लोगोंने इसका अन्त न पाकर इसको अतलान्तिक नाम दिया। यह प्रदेश दुनियाके नीचे होनेके कारण लोगोंने समझा कि पृथ्वीका ऊपरी भाग इसीपर स्थित है। इसलिए यह समझा गया कि शेपनाग, जो वास्तवमें उस शेप वायुका नाम है जिसपर धरणी स्थित है, यह अतल ही है। यूनानवालोंने इसीलिए 'अटलस' या अतलकी पीठपर भूमिको लादा। पाठक कहीं यह न समझें कि शेपवायु या अतल हमारी कल्पना है, इसलिए हम बता देना चाहते हैं कि नागका अर्थ संस्कृतमें वायु भी होता है। अस्तु, इस 'अतलान्तिक' महादेशमें कभी भारतीय सभ्यता राज करती थी। डोनेली साहब अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अटलाण्टिस—प्रलयपूर्वका महादेश' में लिखते हैं कि "अफलातूनने इस विषयपर जो लिखा है वह ऐतिहासिक सत्य है। प्रागैतिहासिक अटलाण्टिस महाद्वीप मनुष्य जातिका जन्म-स्थान था। यहां मानव जाति परम सभ्यताको पहुंची, अदनकी वाटिका या नन्दन कानन यहीं था; स्वर्ग यहीं था और वैकुण्ठ इसी महादेशमें था। प्राचीन यवन, पणि, हिन्दू और स्केण्डिनेवियन अर्थात् स्कन्दनाभि देशके पुराणोंमें इसी 'अतलान्तिक' देशके राजों, रानियों और वीरोंकी गाथा गायी गयी है।" यह कथन बहुत सच है, क्योंकि उक्त देशोंमें आर्य-संस्कृतिका ही राज था। इन सब देशोंकी भाषामें बहुत साम्य है। यह भाषाका मेल देखकर ही अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि आर्य जातिका विस्तार उत्तरमें उत्तरध्रुवसे अर्थात् स्कन्दनाभि—(स्वेडन, नारवे) से लेकर भारत तक था और आज भी इसके प्रमाण विद्यमान हैं। एक विचित्र बात यह है कि स्वेडन और नारवेवाले अपने देशोंको 'स्वर्ग और नरक' नामसे पुकारते हैं। स्वेडन 'स्वेर्गे' कहलाता है और नारवे 'नोरिगे' ये दोनों देश 'अतलान्तिक' देशके अङ्ग थे। स्वेडन-नारवे, अमेरिका, ईरान, सुमेरियन और दक्षिण भारतके अनेक देवता एक ही हैं। इससे यह

नाना देशोंके प्रलयकी स्मृतिके चित्र।
नारायण नावमें 'प्रलय-पयोधि' पार कर रहे हैं।

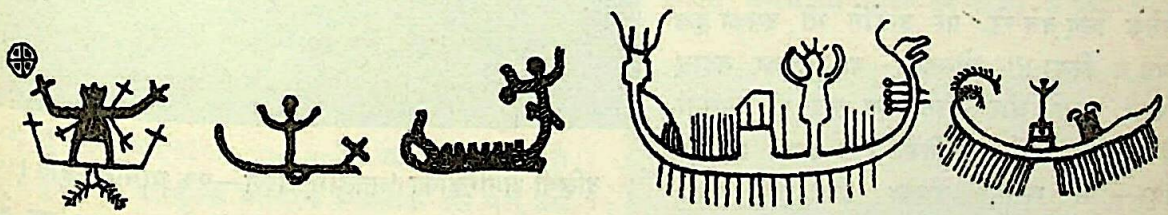

अमेरिकन यूरोपियन बाबिलोनियन सुमेरियन मिस्री

कभी छोटा तालाब था। स्पेन और अफ्रीका जिब्राल्टर द्वारा मिले हुए थे। इन दोनों देशोंके निवासी एक-से थे। पर आज इन दो देशोंमें नामको भी साम्य न रहा। ये जल द्वारा एक-दूसरेसे बिछुड़ गये हैं। इंगलैण्ड तो हाल-हाल तक ही यूरोपके साथ मिला हुआ था। यह पहले यूरोपके साथ जुड़ा था फिर एक भयङ्कर भूकम्पके समय वह टापू बन गया। उसके बाद एक दूसरा भूचाल ऐसा आया कि ब्रिटिश चैनल लोप हो गया और ब्रिटेन फिर यूरोपसे जुड़ गया। लेकिन अधिक दिनों तक यह दशा न रह सकी। जलने थलको हराया और ब्रिटेन द्वीप बन गया। बालीके पासके झण्डा द्वीप कभी भारतसे मिले थे। यह महादेश दूर-दूर तक फैला था। जलने ऐसा जोर बांधा कि उसके स्थानपर झण्डा खाड़ीसे भारत और अफ्रीका तक महासागरका जल मौजें मार रहा है। बीच-बीचमें कुछ द्वीप आज भी उस पर्वतमालाका परिचय दे रहे हैं जिनके वे कभी गगनचुम्बी शृङ्ग थे। यह महादेश जिसे अंगरेज स्लेटरने वहां पाये जानेवाले कुछ विशेष प्रकारके लंगूरोंके कारण 'लंगूरिया' नाम दिया है सम्भवतः मनुष्य जातिका उत्पत्ति-स्थान था। जल और थलके महायुद्धने उसे पृथ्वीकी सतहसे उठा दिया।

सिद्ध होता है कि प्रलयपूर्व युगमें आर्य, द्रविड़ और सुमेरियन सब जातियोंमें बहुत समानता थी। ये सभी एक देवकी उपासना करते थे। उन सबकी नारायणकी मूर्ति एक-सी थी। सबके नावके चित्र एक ही प्रकारके हैं और मनुष्यका रूप भी उन सबोंने एक-सा खींचा। पाठक चित्रमें देखकर मिलान करें।

इसके अतिरिक्त एक मार्केकी बात यह है कि अफलातूनने इस 'अतलान्तिक' प्रदेशके जिन देवताओंके नाम गिनाये हैं उनमें प्रायः सब भारतीय देवताओंसे मिलते-जुलते हैं। पोसाइडन 'पश्वोदन' या 'पशुधन' का रूपान्तर है, म्नेसायस मनुष्यका, एवेमन उपमन्यु और अजायेस अजयका। इससे भी मालूम होता है कि अतल देशमें भारतीय संस्कृतिका प्राधान्य था। इसपर वहांका वर्णन भारतसे बहुत मिलता है। पाठक स्वयं पढ़ें। नील नदीकी घाटीमें सोलनको एक जाति मिली है। इससे बात करनेपर सोलनको मालूम हुआ कि वे अपनेको सूर्यवंशी बताते थे। उनके एक बूढ़ेने सोलनसे कहा—"ऐ सोलन, तुम्हारा वंशवृक्ष बच्चोंका खिलवाड़ है; क्योंकि तुम लोगोंको केवल एक प्रलयकी याद है। पर न मालूम कितने प्रलय हो गये।...एक प्रलय ऐसा हुआ कि उसके बाद बहुत थोड़े आदमी उसका वर्णन करनेके लिए बचे रहे, पर उन्होंने भी उसका कुछ वर्णन न किया।" सोलनको यह सुनकर महान् अचरज हुआ और उसने इस बुजुर्गसे प्रार्थना की कि उस प्राचीन जातिका हाल बताये। बूढ़ा बोला—"मैं खुशीसे उसका हाल तुम्हें बताऊंगा, क्योंकि तुम्हारी और हमारी राजधानियां एक ही देवीने बसायी थीं। हमारा धर्म भी उसी देवीने बनाया और हमारे शास्त्रोंके अनुसार वह आठ हजार वर्ष पुराना है। लेकिन मैं तुम्हें वह धर्म सुनाता हूं जो उन लोगोंका था जो नौ हजार वर्ष पहले इस धराधाममें मौजूद थे। उनमें जाति-भेद इस प्रकार था। सर्वोच्च पद ब्राह्मणोंको दिया जाता था जो सबसे अलग रहते थे। फिर कारीगरोंकी जाति थी जो अलग-अलग श्रेणियां बनाकर अपना-अपना पेशा करते थे। इनके साथ ग्वालों और शिकारियोंकी भी एक जाति थी। किसान लोग खेती करते थे। तुम्हें यह मालूम ही होगा कि मिस्रमें 'योद्धा' सब जातियोंसे अलग हैं और धर्मके कानूनसे वे केवल युद्धमें ही भाग ले सकते हैं।" इस बातसे स्पष्ट होता है कि अतल और अतलके पास 'अतलान्तिक' देशके निवासियोंमें ठीक भारतकी ही भांति वर्ण-भेद वर्तमान था। बिना एकका दूसरेपर प्रभाव पड़े यह कैसे सम्भव है कि दोनों देशोंका वर्ण-भेद सब बातोंमें एक-सा हो। इसके बाद इस बूढ़े पितामहने जो बातें सोलनसे कहीं, उन्हें पढ़कर पता लगता है कि वह सोलनको भूलसे भारतीय समझ बैठा था। यह बात इसलिए सम्भव हुई कि यूनानकी भाषा संस्कृतसे मिलती है। उसने कहा—"अपने पुराणोंमेंसे मैं तुम्हें एक गाथा सुनाता हूं जिसे सुनकर तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम कभी कितने शक्तिशाली थे। उनमें कहा गया है कि एक बार एक भीषण दैत्यने सारे यूरोप और एशियापर भीषण

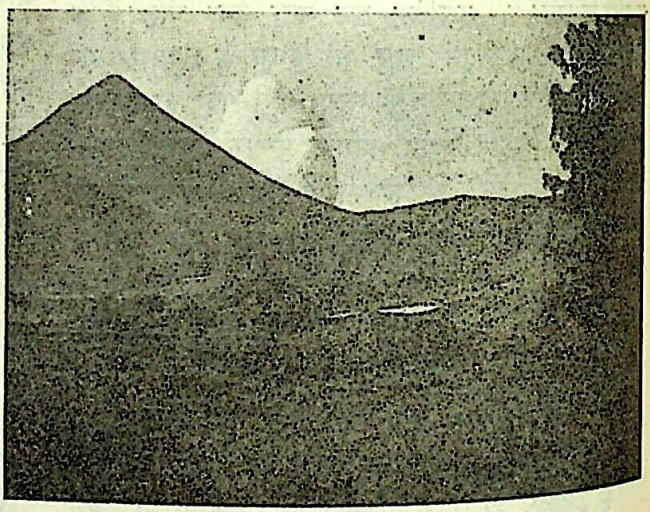

दक्षिणी अमेरिकाका 'अतलाम्' प्रदेश—एक प्राचीन स्मृति।

आक्रमण किया। उसे तुम्हारे देशने डराया। वह दैत्य अतलान्तिक महासागरसे आया था; क्योंकि उस समय वह सागर आसानीसे पार किया जा सकता था। हरिकुलके मन्दिरके स्तम्भोंके पासकी खाड़ीके सामने ही एक ऐसा महाद्वीप था जो लीबिया (अफ्रीका) और एशियासे भी बड़ा था। इससे दूसरे महाद्वीपको रास्ता जाता था।...इस 'अतलान्तिक' महाद्वीपमें बहुत विस्तृत और महा शक्तिशाली साम्राज्य था। इसका राज्य दूर-दूरके देशोंमें भी फैला हुआ था। इनके अतिरिक्त उसका राज हरिकुलके मन्दिरके स्तम्भोंके पाससे मिस्र, यूरोप और टिर्रेनिया (धरणी) में सर्वत्र फैला हुआ था। वह भीषण दैत्य इन सब शक्तियों द्वारा महाशक्तिशाली बनकर तुम्हें, हमें, सबको जीतने आया।

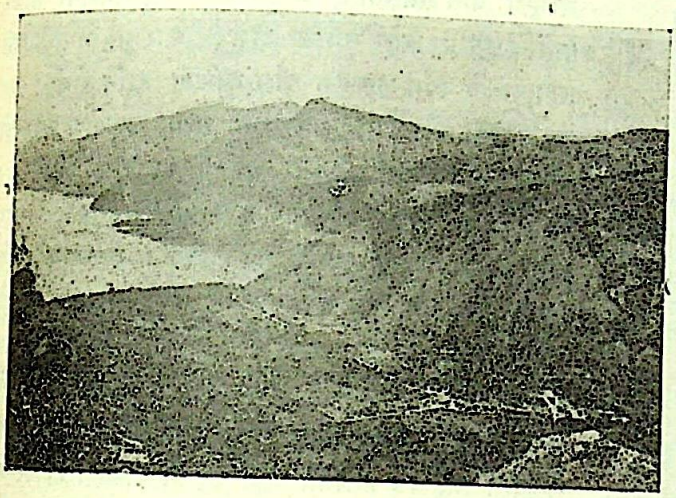

दक्षिणी अमेरिकाका 'अतल' नगर।

उस समय तुमने जो पराक्रम दिखाया उसकी महिमाका बखान नहीं हो सकता। तुमने उसे हरा दिया। उसके बाद भयङ्कर भूडोल आये और पृथ्वी जलमय हो गयी तथा एक दिन और एक रातके भीतर तुम्हारे सब वीर योद्धा भूगर्भमें चले गये। इसी भांति अतलान्तिक महादेश भी लुप्त हो गया और सागरके पेटमें चला गया।...इन देवताओंमें मैं एकका विशेष उल्लेख करूंगा, क्योंकि विजय उसकी कृपासे मिली। उसका नाम है मोहन विष्णु या मनुमर्षण (Mnamosyne)। वह महायुद्ध उन दो पक्षोंमें हुआ जो हरिकुलके मन्दिरके स्तम्भोंके इस और उस पार थे।...उसके बाद नौ हजार वर्षोंमें कई प्रलय हो गये हैं।...सृष्टिके आरम्भमें पश्वोदनको 'अतल' देश मिला वहां उसकी सन्ततिने राज किया। इसमें उपमन्यु, मनुष्य, अजय आदि हैं।...इस देशमें हाथी थे।" इस अतल देशमें शिवकी पूजा होती थी क्योंकि बूढ़ेने सोलनसे कहा—"पश्वोदन (?) या पशुधनके मन्दिरके चारों ओर नादिये फिरते थे। मन्दिरमें दस पुरोहित ऐसे रहते थे जो पूजा करनेके बाद महिषका वध करते थे। उसे स्तम्भपर बांध दिया जाता था और उसके सरपर चोट पड़ती थी। बलि चढ़ानेके बाद वे उसको जलाते थे। एक प्यालेमें वे न मालूम क्या डालते थे। उसमें मारे हुए पशुका रक्त भी मिलाते थे और सब पीते थे। वे सुरा भी पीते थे और उसे देवताको चढ़ाते थे।" यह वर्णन असुरोंका ही है। इस बूढ़ेने 'अतल' पातालके निवासियोंके न्यायकी बहुत तारीफ की है। हमारे पुराणोंमें भी बलि दानवके न्यायकी अपूर्व महिमा गायी गयी है। इस दृष्टिसे देखनेपर अतल देश हमारे पुराणोंमें वर्णित पाताल देश ही रहा हो तो कुछ भी आश्चर्य नहीं। अस्तु, यह महादेश किसी समय रसातलको चला गया। वह प्रलय भी अपने ढङ्गका एक ही रहा होगा। क्योंकि उसके साथ-साथ उस महादेशके मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदि सबका लोप हो गया। इस सर्वनाशके लिए रोनेको शायद ही कोई बचा रहा हो।

पल-पलमें प्रलय

इस संसारका प्रलय पल-पलमें हो रहा है। प्रत्येक नदी पर्वतोंको मैदान बना रही है और हवाका हरएक झोंका सूखी पृथ्वीको जलमें मिला रहा है। गङ्गा नदी चौबीस घण्टेमें प्रायः पांच लाख टन कीचड़ समुद्रमें डालती है। यही दशा सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि नदियोंकी है। ये सरितायें दम भरती हैं कि कभी-न-कभी हिमालय पर्वतके उच्च शिखरों तकको मैदान कर देंगी। अमेरिकाकी मिसिसिपी नदी चौबीस घण्टेमें दस लाख टन कीचड़ समुद्रमें फेंकती

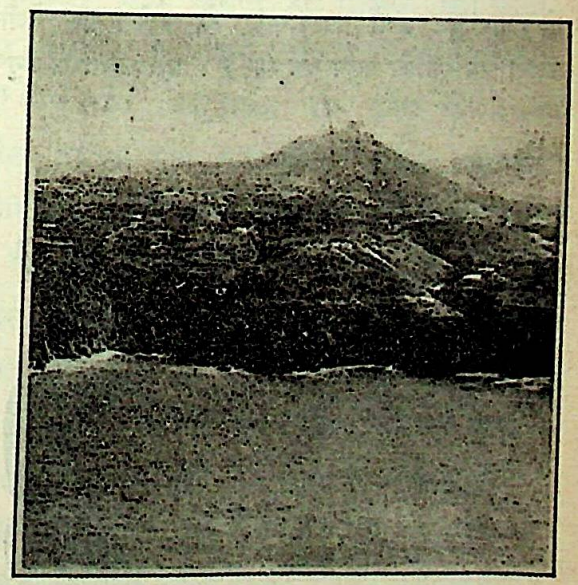

अतल महादेशकी स्मृति
अफ्रीकाका 'अतलस' नामक पर्वत।

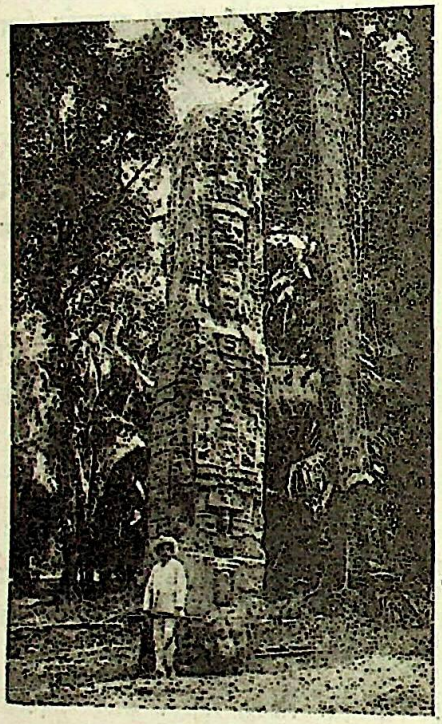

दक्षिणी अमेरिकामें मय जातिके रेड इण्डियनोंकी एक मूर्ति। पाठक इसकी तुलना बुद्ध भगवान्‌की मूर्तिसे करें।

है। यदि इसका ढेर लगाया जाये तो हजार गज परिधिका दो हजार फुट ऊंचा पहाड़ खड़ा हो जाये। इस तेजीसे उत्तरी अमेरिकाका प्रलय चल रहा है। इसे साधारण मनुष्य मामूली बात समझता है और है भी ऐसा समझना ठीक; क्योंकि इस प्रकारसे भूमिका नाश होनेपर भी अमेरिकाकी प्रति ९००० वर्षमें कुछ-एक फीट भूमिकी हानि होगी। पर इस घोंघेकी चालसे ही इस पृथ्वीमें नाना महादेश लोप हो गये। हवा भी इस प्रलयके काममें सहायता करती है। वह जो धूल उड़ाकर समुद्रमें डाल देती है उसका हिसाब लगाया जाये तो वह लाखों टन निकले। कण-कण करके पहाड़ों पर जो यह धूल जमा होती है उससे कई पर्वत सैकड़ों फीट ऊंचे बन गये हैं। महादेशोंमें जोरकी हवाके कारण कुछ ही मिनटोंमें बालूके डेढ़-दो सौ फीट ऊंचे टीले खड़े हो जाते हैं। वायु अपना यह काम क्षण-भर भी नहीं रोकती। जो धूल जमीनमें रही वह तो ठीक ही है, पर जो समुद्रमें चली गयी उसने खुश्क जमीनको डुबा दिया। यह छोटी हानि अरबों बरसोंमें जाकर बड़ी बन जाती है। यह है पृथ्वीका क्षयरोग, जो उसे तिल-तिल करके मार रहा है। यह नित्य और अनन्तकाल-व्यापी प्रलय किसी भूकम्प या ज्वालामुखीके उत्पातसे कम नहीं है; पर यह उतना नहीं व्यापता। इस प्रकार हमारी दुनिया प्रलयकी ओर जा रही है। क्या ऐसा समय आयेगा जब थलचर प्राणी लोप हो जायेंगे और संसार जलमय बन जायेगा? इस विषयपर वैज्ञानिकोंमें मतभेद है।

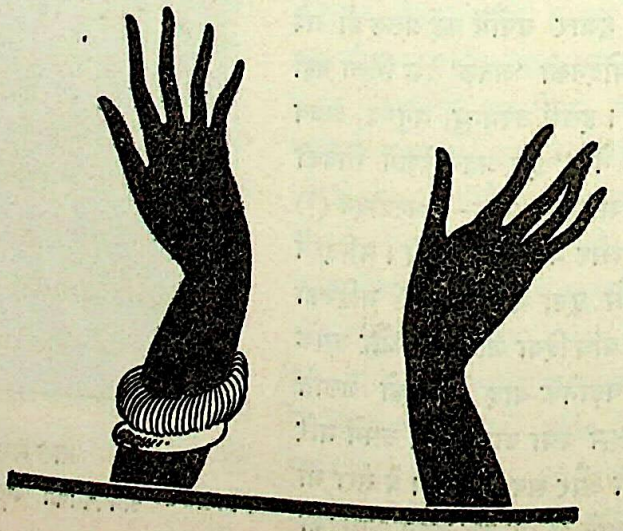

'सुषुप्त' आग्नेयगिरि क्राकातोआका सर्वनाशी धड़ाका

श्री कन्हैयालाल गुप्त एम० एस-सी०

कारे घन घुमड़ि अंगारे बरषतु हैं।—भूषण

लोग बूंद-बूंदको तरस रहे थे। पानीका काल पड़ा था। क्या इस बार परमात्माने ठान ली है कि प्रजा बिना जलके सूखेमें मछलियोंकी भांति तड़प-तड़पकर प्राण दे दे? मालूम तो ऐसा ही पड़ता है। इतनेमें छब्बीसवीं अगस्त १८८३ को क्राकातोआ, वाटाविया आदि द्वीपपुञ्जमें आकाश गरजने लगा। इसे सुन सारे लोग मोरोंकी भांति नाचने लगे। पर यह क्या? यह तो तोपोंकी-सी दनादन सुनायी दे रही है! आवाज भयङ्करसे भयङ्करतर होती जा रही है। लीजिये।

गड़-गड़-गड़म्! गड़-गड़-गड़म्!! क्या बात है? क्या आसमान फटकर गिरना चाहता है? आकाशसे वज्र कड़कने लगा और क्राकातोआकी भौचकी जनता यह देखकर हैरान थी। क्या खुदाके नक्कारे बज रहे हैं? उनका यह अनुमान सच था। परमात्माकी वज्र-वाणी उनपर गरज रही थी।

दूसरे रोज़ प्रातःकाल आकाश अन्धकारमय था। ऐसा होनेका कोई कारण न था, क्योंकि गरमियोंके दिनोंमें इन टापुओंमें भगवान् भास्कर अपनी प्रखर ज्योतिसे तपते हैं। लेकिन आज आकाशमें घोर धूम्र-वर्ण मेघ खूब आडम्बरके साथ आये थे। यह दृश्य भयावना था; पर आज गड़गड़ाहटका जोर धीमा पड़ गया था। इसलिए लोगोंको घबराहट और बेचैनी कम हो गयी थी। सब समझे कि ईश्वरकी कृपासे बला सरसे टली। इतनेमें अन्धकार घनीभूत होने लगा और जलके स्थानपर गरम राखकी वर्षा होने लगी। आनन-फाननमें इसने नगरकी सड़कें और मकान भर दिये। सुबह सात बजे इतने जोरका धड़ाका हुआ कि सबके प्राण कांप उठे और रोम-रोम खड़े हो गये। अंधेरा बढ़ते ही जा रहा था और नौबत यहां तक पहुंची कि वाटावियाके घरोंमें सर्वत्र लैम्प जलाये गये कि हाथको हाथ सूझे। इस समय मालूम हुआ कि हवामें विशेष प्रकारकी भाप भी उड़ रही है। अब बीच-बीचमें भूकम्प होने लगे और साथ-साथ ऐसा भीषण गर्जन सुनायी देने लगा मानो तोपखाने उड़ रहे हों। इन कड़कोंकी भीषणता बढ़ती गयी और कुछ ही देर बाद निरन्तर यह गड़गड़ाहट होती रही। जिन्होंने यह खौफनाक आवाज सुनी है उनका कहना है कि वे इसका वर्णन नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसी जोरकी और प्राण-कम्पनकारी ध्वनि उन्होंने इस जीवनमें वही पहली और आखिरी सुनी। वसुन्धराके इस चिङ्घाड़की उपमा नहीं मिल सकती। यह गर्जन तीन हजार मीलसे भी अधिक दूरीपर सुना गया था। इसलिए स्वभावतः संसारके इतिहासमें इसका जोड़ शायद ही मिलेगा।

गड़गड़ाहट तोपोंकी-सी हुई। दूर-दूरमें लोगोंने समझा कि हमपर आक्रमण हुआ है। क्राकातोआसे १०७३ मीलकी दूरीपर अचीन बन्दरगाहमें अधिकारियोंने जब यह दनादन सुनी तो समझ लिया कि शत्रुने अचानक हमपर हमला बोल दिया है। सेना एकदम तैयार हो गयी कि आक्रमणकारियोंका मुकाबला करे। १४१३ मीलके फासलेपर बङ्गकाक नगरमें जब यह गर्जन सुनायी दिया तो सब हैरान थे कि तोपें कहां दग रही हैं। २२६७ मीलकी दूरीपर चागोस द्वीपमें जब यह भयङ्कर

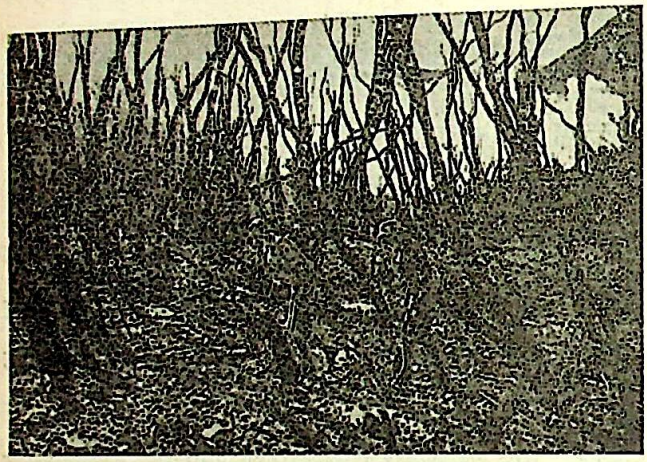

डच सरकारके अन्वेषक विषैली गैससे वीरान बने हुए इस जङ्गलसे क्राकातोआका ज्वालामुखी पर्वत देखने जा रहे हैं। इस उजाड़ बनमें अभी तक गैसकी धीमी लपट आती है इसलिए दोनों खोजिये नाक बन्द किये हुए हैं।

निनाद पहुंचा तो भगदड़ पड़ गयी। सिङ्गापुरसे दो जहाज यह खबर लानेके लिए भेजे गये कि इर्द-गिर्दमें कौन जहाज हैं जिनपर कोई महान् सङ्कट आ पड़ा है और जो उसकी सूचना देनेके लिए बार-बार तोपें दाग रहे हैं। बाटावियाकी तो यह दशा थी कि वहां नित सुबह आठ बजे तोप दगती है। उस रोज जो तोप चली तो चलानेवालेको पता न चला कि इससे आवाज निकली है। क्राकातोआकी कड़कसे सबके कान-ऐसे फट गये थे। इस वज्रघोषकी भयङ्करता और शक्तिका अनुमान इससे लग सकता है कि यदि भारतमें यह गर्जन होता तो लण्डनमें भी सुनायी पड़ता। सच तो यह है कि उस रोज विश्वमें कोलाहलका तूफान मच गया।

दूसरी अजीब बात वायुमण्डलका कम्पन थी। वैसे तो हलके विस्फोट या भूडोलमें वायुमण्डल डगमगा जाता है। पर उस दिन इसने जो तमाशा दिखाया वह भी पृथ्वीके इतिहासमें निराला है। क्राकातोआसे यह भयङ्कर ध्वनि सुन वायुमण्डलने जो दौड़ मचायी तो कुछ ही समयमें भूगोलके सात चक्कर काट दिये। ऐसा मालूम हुआ कि आकाशमें भी भगदड़ पड़ गयी। संसारके प्रायः सब देशोंमें 'हवाघर' बने हुए हैं। इनमें बैरोमीटर लगे हैं जो वायुकी गतिकी रफ्तार और उसकी विशेषताओंकी गति बताते जाते हैं। इन्होंने उस प्रलयके दिन बताया कि क्राकातोआसे वायुमण्डलमें जो लहर पैदा हुई वह संसारके सात चक्कर लगा आयी। क्राकातोआमें जो प्रचण्ड धड़ाका हुआ उसने आकाशमें इतने जोरसे वायु-सागरमें तरङ्ग पैदा की कि वह अमेरिका-की ओर भागी और वहां आधी दुनियाका चक्कर काटकर कुछ धीमी पड़ी, पर रुकी नहीं। फिर क्राकातोआकी ओर आयी और वहां उसे दूसरी बार जोर मिला। इस प्रकार इसने सात फेरे किये। उसके बाद यह लहर चलती रही; पर ऐसे नाजुक बैरोमीटर अभी नहीं बन पाये हैं जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म वायुतरङ्गोंका हिसाब रख सकें।

*

धायं धायं ! भायं भायं ! यह भड़कती हुई आगकी गगनचुम्बी लपटोंका क्रन्दन न था। पगले सागरकी उत्ताल तरङ्गोंकी फुफकार थी। स्वयं जलपतिका दिल दहल रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि किसी भीमकाय दैत्यके जबर्दस्त कोड़ोंकी मारसे वह चीख मार रहा है और अपने स्थानसे भागना चाहता है। ओहो ! यह देखिये ! यह जल उड़ने लगा और इसकी लहरें किलोंकी काली दीवारोंकी तरह जमीनपर गिरने लगीं। बस, लोगोंने मृत्युका रूप देखा और वे समझे कि अब हमें कालके गालसे कोई नहीं बचा सकता।

ले धड़ाधड़-धड़ाधड़, वे सर्वनाशकारी लहरें पशु, पक्षी, मनुष्य, पेड़-पौदे, मकान आदि सबके सबका मुंह अपने चण्ड थपेड़ोंसे उलटा करने लगीं। कालके इस उग्र-रूपके सामने सब दण्डवत् हो गये। मकानोंसे दूनी और तिगुनी ऊंची लहरोंने भवन गिरा दिये, थलको जलमय कर दिया और प्राणिमात्र डूबते-उतराते पर-लोक सिधारे।

बाटाविया क्राकातोआसे सौ मीलकी दूरीपर है। ये संहारकारी तरङ्गें अपने प्रलयङ्कर आवेगमें वहां भी पहुंचीं और उन्होंने नगरको कई फीट पानीमें डुबा दिया। कई मनुष्योंके प्राण गये और बाटावियाके आस-पासके कसबे और गांव उजड़ गये।

यह घटना २७ मईसे अगस्त १८८३ तककी है, अर्थात् यह प्रलय पचास साल पहले हुआ था। घोर गर्जन-तर्जन से जावा और सुमात्राके रहनेवालोंके छक्के छूट गये। यह सब करामात क्राकातोआके ज्वालामुखीकी थी जो दो सौ वर्ष तक कुम्भकर्णी निद्रामें मग्न रहकर फिर जाग उठा था। महीनों गड़गड़ाहट जारी रही। २७ वीं अगस्तको वह धड़ाका हुआ कि परमात्माकी इस तोप-की विकट ध्वनि हजारों मील दूर आस्ट्रेलियामें सुनायी दी। उस काले वक्तमें इस आग्नेयगिरिने जो आग बर-सायी उसकी राख आसमानमें पचास मील ऊपर तक उड़ी। इस ऊंचाईका पता पाठक इससे लगा सकते हैं कि अब तक मनुष्य—केवल प्रो० पिकार उद्दाम साहस करके पृथ्वीके ऊपर अपने गुब्बारेमें केवल बारह मील ऊपर उठ सके हैं। जगदीशकी इस आतिश-बाजीने संसार-भरमें नये-नये रङ्ग दिखाये। सूर्योदय और सूर्यास्तके दृश्य बदल गये। आकाशमें महीनों तक राख उड़ती ही रह गयी।

क्राकातोआ-द्वीपपुञ्जके मुख्य द्वीप राकाटामें दो ज्वालामुखी पर्वत थे—पेर्वातान और दानान। इन्होंने ऐसा जोर बांधा कि सारा टापू फट पड़ा और उसके टुकड़े आकाशमें उड़ने लगे। जो भाग फट पड़नेसे बचा वह सागरमें धंस गया। इस धसानने समुद्रमें वे भयङ्कर लहरें पैदा कीं जो पर्वत-शृङ्गोंकी भांति आसमानसे बातें करने लगीं। ये तरङ्गें दूर-दूर तक फैलीं और जहां पहुंची वहीं इन्होंने प्रलयका दृश्य दिखाया।

सर्वनाशी लहरें चट्टानोंकी भांति उमड़ आयीं। सुमात्रा और जावाकी नीची भूमि डूब गयी। क्राका-तोआके निकट महामृत्युका एकच्छत्र राज हो गया। प्राणिमात्र मर गये, पेड़ गिर गये और सब मकान ढह गये। जमीनका इतना हेर-फेर हो गया कि उसकी सूरत ही बदल गयी। काङ्ग और अनजेर नामक दो छोटे नगर मिट गये, मानो किसीने उन्हें भूमिकी सतहसे पोंछ दिया हो। अनजेर प्रसिद्ध बन्दरगाह था। इसकी यह दुर्गति हुई कि उसके ईंट-पत्थर तक बह गये। वहां एक बहुत बड़ा 'लाइटहाउस' था।

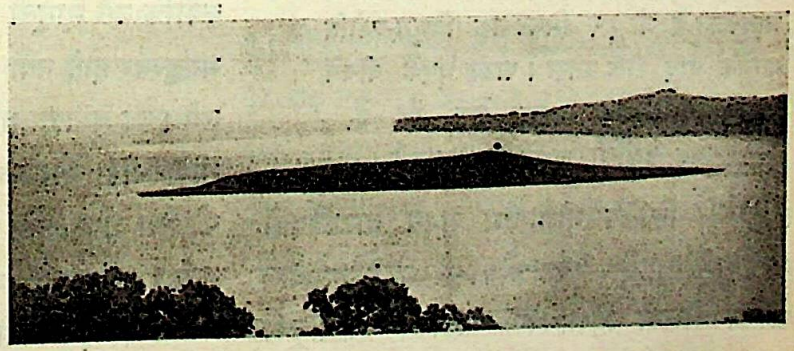

यह छोटा द्वीप, जिसका नाम अनाक्राकातोआ अर्थात् काकातोआका बच्चा रखा गया है, १९३१ के धड़ाकेके समय समुद्रसे बाहर निकल आया था।

भयङ्कर धड़ाकेने इसकी नींवको भी उड़ा दिया और बादको पता लगाना कठिन हो गया कि 'लाइटहाउस' की ऊंची लाट कहांपर खड़ीथी।

इस 'लाइटहाउस' में जो चौकीदार रहता था उसकी वीरताका वर्णन नहीं हो सकता। इसलिए हम उचित समझते हैं कि उसपर दो शब्द लिखकर आगे

क्राकातोआ अभी तक बीच-बीचमें अग्निवर्षा करता जाता है। यह चित्र उसके एक हलके धड़ाकेका है जो १५ मिनट तक विद्युत्-ज्योति करनेके बाद ठीक उतरा। पाठक धुएंके बीचमें जो दामिनीकी चमक देख रहे हैं वह इसीकी ज्योतिका प्रताप है।

बढ़ें। पादड़ी फिलिप नील उस समय बाटावियामें थे। उन्होंने लिखा है—"यह चौकीदार आने-जानेवाले जहाजोंको रोशनी दिखानेके अतिरिक्त तारबाबूका काम भी करता था। उसको वहांसे गुजरनेवाले सब जहाजोंके नाम तार द्वारा बाटावियाको भेजने पड़ते थे। अनजेरके महाप्रलयके दिन प्रातःकालके समय भीषण अन्धकार देखकर वह अपने स्थानपर डट गया और जहाजोंको रोशनी दिखाता रहा। नगरनिवासी घबराकर इधर-उधर भाग रहे थे, पर वह मीनारपर बैठा हुआ एक अंगरेजी जहाजकी पहुंच बाटावियाको तारसे भेज रहा था। ठीक इसी समय महान् धड़ाका हुआ और सारा 'लाइटहाउस' तिनकेकी तरह प्रलय-झटिकामें उड़ गया।"

प्रत्यक्षदर्शी एक डच मांझीने पादड़ी नीलसे अनजेरके विनाशका जो वर्णन किया वह पढ़ने लायक है—"मैं जीवनभर अनजेरमें ही रहा और स्वप्नमें भी यह बात मेरे दिमागमें न आयी थी कि अनजेरपर खुदाकी ऐसी मार पड़ेगी कि उसका सर्वनाश हो जायेगा। मैं बूढ़ा हो रहा हूं और यह समझे बैठा था कि सागरके किनारेके कबरिस्तानमें अपनी लाश दफनवाऊंगा। पर वह भी न बचा। लाशें कब्रोंसे उछलकर समुद्रके अतल गर्भमें जा पड़ी हैं। नगरमें कुछ शेष न रहा। मेरी जान बच गयी है, बाकी तो मेरा भी सर्वनाश हो गया है।

"रविवारकी शामको ज्वालामुखीका धड़ाका आरम्भ हुआ। पहले तो हमने कुछ परवा न की; क्योंकि उसे मामूली धड़ाका समझा। लेकिन जब गर्जन भयङ्करतर होते गया तो हम क्राकातोआकी ओर देखने लगे। वह धूमावृत था। उसके बाद यह धुंआं अनजेरपर भी छा गया और इतना अंधेरा हो गया कि मेरी आंखोंको मेरा अपना हाथ न सूझा....रातको स्थिति बिगड़ती गयी। धड़ाकोंकी आवाजसे कान फट गये—उसकी प्रचण्डता बढ़ती गयी। ज्वालामुखीकी ओर देखा तो सबके दिल दहल गये। आग्नेयगिरिके ऊपर आगकी लपटें दहक रही थीं। आकाश खूनी रङ्गसे भर गया।

अनजेरसे क्राकातोआ २५ मीलपर है, पर अविरल धड़ाकोंके कारण वह भी नित कांप रहा था। कई मकान तो ऐसे हिले कि हम समझे अब गिरे, अब फटे। रातभर सबने जागरण किया। मृत्युके नाना रूप हमारी आंखोंके सामने नाचने लगे। प्रातःकाल मैं बाहर गया तो क्या देखता हूं कि धूलकी वर्षा हो रही है। यह बढ़ती गयी और कुछ ही समयमें पत्थरोंकी वर्षा भी होने लगी। अन्धकार उमड़-घुमड़कर हमारे सर पर कालकी भांति मंडरा रहा था। सूर्यका कहीं पता न था। हवा दम घोट रही थी। वह भारी मालूम होती थी। मैं सागर-तटकी ओर गया। मेरी नजर सामने पड़ी तो एक प्रकाण्ड गगनचुम्बी काली दीवार अपनी ओर दौड़ती देखी। मैं देखकर भौचक्का रह गया। भगवान् यह देव है या भूत, जो कालरूप होकर मेरे सामने आता है! पहले तो मालूम पड़ा कि जलके भीतरसे एक ऊंचा पर्वत उठ रहा है। पर मुझे मालूम था कि झण्डाकी खाड़ीमें कोई पर्वत उस स्थानपर न था। फिर देखा तो पानीका पहाड़ मेरे सरपर फूटनेके लिए आ रहा है। इसे देख मैं दङ्ग था। मैंने समझा कि यह नगरपर टूट पड़ेगा और तब सत्यानाश होते देर न लगेगी। शहरवालोंको इसकी सूचना कौन देगा? मुझे तो अपने प्राणोंकी पड़ी और जान लेकर बेतहाशा भागा। मेरी दौड़नेकी उम्र तो कभीकी बीत चुकी, पर आप विश्वास रखिये कि मैंने भागनेमें अपनी सारी शक्ति पिला दी। थोड़ी दूर गया था कि पानीकी उस दीवारने तटके मकानोंको धड़ामसे पटक दिया। सर्वत्र जल-ही-जल हो गया। पीछेको देखा तो मकान और पेड़-पौदे समुद्रपर तैर रहे थे। मैं पीछे देखता और भागता गया। गड़-गड़-गड़म्! मेरे पीछे ही उत्ताल तरङ्गें टूटने लगीं। मैं समझा कि अब मेरे और मौतके बीचमें थोड़ा ही फासला है। सरपट चालसे दौड़ने लगा। अब तो मेरे और मृत्युके बीच दौड़ हो रही थी। कुछ ही गज आगे बढ़ा था कि सामने एक टीला आ गया। यहां पगले सागरकी मत्त लहरोंने मुझे धर दबाया। प्रलयका जल मेरे ऊपर आ गया और मैं समझ गया कि कालने मुझे डस दिया है। इन उन्मत्त तरङ्गोंका जोर ऐसा था कि मैं बेहोश हो गया और धक्का खाकर बहुत दूर जा गिरा। इस बीच क्या हुआ, मुझे कुछ याद नहीं है। पर कुछ देर बाद मुझे एक जबर्दस्त धक्का लगा और मैं चौकन्ना हुआ। हाथ फैलाये तो एक कड़ी चीजसे टकराये। मैं इससे चिपट गया। जब पानी वापस गया तो मैं एक ताड़के पेड़की चोटीपर लटक रहा था। अधिकांश वृक्ष नेस्त-नाबूद हो गये थे; लेकिन मेरे भाग्यसे यह बचा रहा। सच तो यह है कि पेड़ छिन्न-भिन्न होकर मीलों तक जलमें बह गये थे। मेरी तकदीरने जोर मारा और

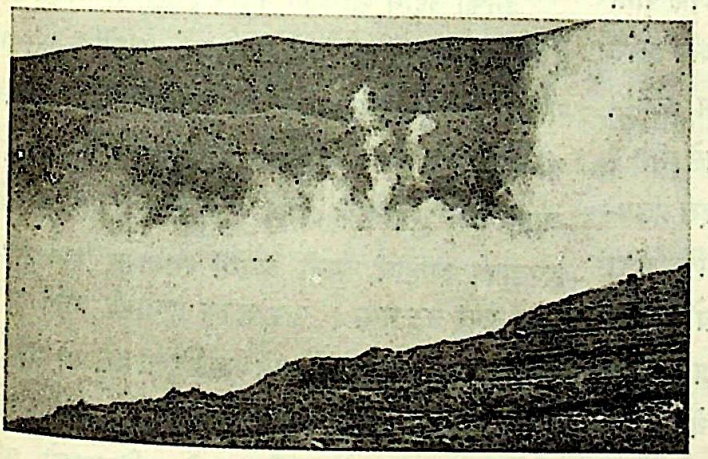

क्राकातोआके ज्वालामुखीका सबसे नया चित्र।

ताड़का यह पेड़ दैवी चोट पड़नेपर भी अपने स्थानसे न डिगा।

"भीषण तरङ्गें लोटती-पोटती और अपने पथकी रुकावटोंको चूर-चूर करती आगे बढ़ती जा रही थीं। किन्तु जब अनजेर नगरके पीछेके पहाड़ोंसे इनका सामना हुआ तो लौट आयीं। वहां इनकी दम टूट गयी और पगली लहरें फिर समुद्रको वापस आने लगीं। उस प्रलयकारी बाढ़की यादकर मेरे प्राण आज भी रोमाञ्चित हो रहे हैं। उसकी वीभत्स स्मृति मुझे तबसे भूत-प्रेतोंकी भांति सताती रहती है। जब मैंने देखा कि पानी फिर वापस लौटा तो निश्चय हो गया कि अब इसके वेगसे समुद्रके गर्भमें पहुंचकर ही विश्राम लूंगा। सारी शक्तिसे पेड़से चिपक गया। पर इससे क्या? जब यह तरु ही शाखाओं और पत्रों समेत इस प्रलय-पयोधिमें बह जायेगा तो मेरी क्या हस्ती है कि बचा रहूं। पानी पीछेको बहने लगा तो मेरी आंखोंके नीचे मेरे मित्रों, सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंकी लाशें और उनके मकान मय सब सामानके बहे जा रहे थे। पल-भरमें यह प्रलय मच गया। केवल बीस-पचीस आदमी बचे रहे। नगर, गलियां, बाजार सब भूमिमें मिल गये। जहां कुछ ही मिनट पहले घनी बस्ती, भीड़-भड़क्का और पनपता हुआ नगर था वहां उसका प्रमाण देनेके लिए ईंटेंतक न रहीं। आप अपनी आंखोंसे देख आइये कि आज अनजेरका नामोनिशान नहीं है। जिस शहरमें मैंने जिन्दगी बिता दी आज वहां लाशोंका ढेर, मकानोंकी ईंटें, कीचड़ और कुछ टूटे पेड़ रह गये हैं। मेरे मकानका पता नहीं है, सारी सम्पत्ति पानीमें मिल गयी है और जो कपड़े मेरा तन ढांक रहे हैं वे भी मैंने उधार मांग रखे हैं। यह सब होनेपर भी मैं पर-मात्माको हृदयसे धन्यवाद देता हूं कि उसने अपने महान् कोपसे मेरी रक्षा की।"

प्रत्यक्षदर्शीके इस बयानसे क्राकातोआके प्रलय-काण्डका कुछ अनुमान लगता है। सर्वनाशकी वह घड़ी अपना सानी नहीं रखती। सागरकी लहरोंके ताण्डव-नृत्यका पता इससे लगता है कि सिंहल द्वीपमें जो जहाज किनारेपर लङ्गर डाले पड़े थे, उनके नीचेसे जल खिसक गया और खुश्क जमीन निकल आयी। जहाजवाले अकस्मात् यह सङ्कट देखकर अपने उद्धार-का उपाय सोच ही रहे थे कि एक भीषण लहर आयी जो जहाजोंको पानीमें ले गयी।

इनकी उद्दाम शक्तिका प्रताप इससे भी मालूम होता है कि जावाके किनारे मूंगेकी चट्टानें इसके जोरसे बह गयीं। ये चट्टानें समुद्रतटसे तीन-तीन मीलकी दूरीपर थीं और इनमें एक-एकका वजन डेढ़ हजार मन तक था। जावा और सुमात्राके अनेक तटवर्ती गांव बह गये और झण्डाकी खाड़ीमें पानी अपनी साधारण सतहसे ५० फीट ऊपर उठ गया। उस समय पानीकी गति प्रति-घण्टे चार सौ मील थी, याने हवाई हजाजसे भी ड्योढ़ी। तेजसे तेज रेलगाड़ीसे यह तेजी आठ गुना अधिक हुई।

इस धड़ाकेने जल और थलके विभागको बदल दिया। कई स्थानोंमें जहां पहले जमीन थी, वहां छसे नौ सौ फीट तक पानी भर आया। किनारेके पासकी भूमि तो सब डूब गयी। दूसरी ओर ज्वालामुखीके भीतर-से जो राख और धूल गिरी, उसने यह चमत्कार दिखाया कि उससे समुद्र भर गया और कई बन्दरगाह निकम्मे हो गये। क्राकातोआके उत्तरमें सेबंसी खाड़ी इस राखसे पट गयी और धूलका ऐसा ढेर जमा हो गया कि पानीके ऊपर उठ आया। इस प्रकार इसमें दो छोटे द्वीप बन गये।

यह धूल महीनों तक आसमानमें उड़ती रही और इसके कारण सूरज और चन्द्रमाके उदय तथा अस्त-कालमें नाना रङ्गोंका चमत्कार दिखायी देने लगा।

क्राकातोआके उस विध्वंसने ३५००० मनुष्योंका संहार किया। सम्पत्तिकी हानिका अनुमान लगाना असम्भव है।

*

अगस्त १८८३ में जो भूमि श्मशान बन गयी थी वह धीमे-धीमे फिर बस गयी। वहांके जङ्गल फिर हरे-भरे हो गये और नाना प्रकारके वन्य पशु उनमें विहार करने लगे। सकाटा पर्वत तो अपने 'ज्वाला-मुख' तक घना जङ्गल बन गया है। हवा और चिड़ियोंने इधर-उधरसे बीज लाकर सागर-तटपर नारियल और ताड़के पेड़ बो दिये, जो अब बिखरे हुए दिखायी देते हैं। चमगादड़ और छोटे-छोटे कीड़े तो दिखायी नहीं देते, पर दूसरे बड़े जानवर पानीमें तैरकर वहां पहुंच गये हैं। अजगर भी सागरको तैरकर पहुंचा है। इस प्रकार क्राकातोआ फिर आबाद होने लगा।

गड़-गड़-गड़म्! गड़-गड़-गड़म्! १९२७ में फिर आग्नेयगिरि गरजने लगा। अधिवासियोंके प्राण सूख गये। डच सरकारने तुरत कमिशन नियुक्त किया और भूगर्भतत्त्वके विशारद काङ्ग द्वीपमें डट गये कि ज्वालामुखीका अध्ययन किया जाये। इस प्रयोग-शालासे चारों तरफको बेतारके तार लगा दिये गये कि सबको समयपर सङ्कटकी सूचना मिल जाये। तबसे विशेष हानि तो नहीं हुई है, पर धड़ाकोंकी भयङ्करता बढ़ती जा रही है। १५ अगस्त १९३० में जो विस्फोट हुआ था उसने राख और पत्थरके टुकड़ों-को १४०० गज ऊपर तक फेंका था, सितम्बर १९३१ में जोर बढ़ा और लावा २४०० गज ऊपर तक उछली और मई १९३३ में यह ७९०० गज ऊपर तक पहुंची थी। इसलिए वहांके निवासी रात-दिन मौतसे लड़ाई कर रहे हैं। परमात्मा न करे कि फिर पचास वर्ष पहलेका प्रलय-दृश्य उपस्थित हो।

वर्तमान रणोन्मत्त सभ्यता

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शताब्दीका सूर्य आज रक्तमेघोंके बीच अस्त हो गया है।
आज हिंसाके उत्सवमें अस्त्र-अस्त्रमें मृत्युकी भयङ्करी उन्माद-रागिणी बज रही है।
दयाहीना सभ्यता-नागिनी पलमें अपना कुटिल फन उठाकर फुफकार मचाती हुई उठ खड़ी है।
उसका गुप्त दन्त तीव्र विषसे भरा है।
स्वार्थ-स्वार्थके बीच आज संग्राम छिड़ा हुआ है;
लोभ-लोभके बीच सङ्घर्ष जारी है।
भद्रवेषी बर्बरता लज्जा त्यागकर प्रलय-मन्थनका क्षुब्ध क्रोध दिखाती हुई पङ्क-शय्यासे जाग पड़ी है।
कैसा घोर अन्याय है कि राष्ट्र-प्रेमके नामपर (ये परस्पर रक्त-पिपासु जातियां) धर्मको बलकी बाढ़में बहा देना चाहती हैं!
कविगण भीति जगाते हुए, इन श्मशान-कुक्कुरोंकी वीभत्स लोलुपताका गीत गाते हुए चीत्कार कर रहे हैं।*

* यह कविता कविने उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें तात्कालिक यूरोपियन युद्धके अवसरपर लिखी थी।—अनुवादक

प्रलयका विचित्र वरदान—हीरा !

श्री महाराज शरण श्रीवास्तव एम० ए०

(हीरा क्या है ? फ्रेञ्च वैज्ञानिक म्वास्सां असली हीरा बनानेमें कैसे समर्थ हुआ ? संहारकारी आग्नेय-गिरियोंके अग्निउद्गिरणने हीरेको कैसे जन्म दिया ? इस प्रश्नके चकित करनेवाले उत्तर इस लेखमें विद्वान् लेखकने दिये हैं। —स०)

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ —उपनिषद

विनाश, ध्वंस या प्रलय सृष्टिका ही रूपान्तर है। यह तथ्य प्राचीन भारतवासी भली भांति जानते थे। उनके लिए प्रलय सृष्टिका अग्रदूत था और सृष्टि प्रलयकी सूचना देनेवाली। सच तो यह है कि इस विश्वमें सोलहों कला 'सर्वनाश' का अस्तित्व हो ही नहीं सकता। प्रकृति परिवर्तनशील है और वह सृष्टि और प्रलयमें अपना रूप बदलती जाती है। वह बुराईमें भलाई और शिवमें अशिवका रूप प्रकट करती है। इसका एक प्रमाण हीरेकी खानें हैं।

अफ्रीकाकी 'किम्बरली' की खानें सारी दुनियामें हीरोंके अत्यधिक उत्पादनके लिए विख्यात हैं। १८६७ की बात है कि ओ'रैली नामक एक यात्री दक्षिणी अफ्रीका पहुंचा। एक स्थानपर देखता क्या है कि एक बोर बालक एक चमकते पत्थरसे खेल रहा है। जिस जगह वह खेल रहा था वह बोर जेकब्सकी सम्पत्ति थी। यात्री पहचान गया कि यह पत्थर हीरा है। उसने वह खरीद लिया और बादको यह हीरा साढ़े सात हजार रुपयेको बिका। इस आविष्कारने हीरोंकी बाढ़ ला दी। और किम्बरलीकी खानमें जोर-शोरसे काम होने लगा। नयी-नयी खानें खोदी गयीं। पर पता चला कि जहां किम्बरली खानमें बीस लाखमें एक हिस्सा हीरा पाया जाता है वहां अन्य खानोंमें जब चार करोड़ रत्ती नीली मिट्टी खोदी जाय तो केवल एक रत्ती हीरा निकलता है।

किम्बरलीकी खानें जब खोदी गयीं तो उनके भीतर प्रकृतिका विचित्र चमत्कार दिखायी दिया। जमीनके भीतर भूगर्भमें बड़ी-बड़ी चौड़ी नलियां दिखायी दीं और इनके भीतर नीली मिट्टी भरी थी। इस नलीका सिरा इर्द-गिर्दकी भूमिकी सतहसे कुछ उठा हुआ था। इनका मुंह बीससे साढ़े सात सौ गज चौड़ा है और दोसे तीन सौ गज चौड़े मुंह तो सामान्यतया सर्वत्र पाये जाते हैं। १८९२ में एक नली नीचेको खोदी गयी और खानके कुली १२६१ फीट तक खोदते गये, पर अन्त न मिला। इन खानोंके ऊपर पीली और मुलायम मिट्टी रहती है और गहराईमें यह प्रायः बीस गज तक चली गयी है। उसके नीचे नीली मिट्टी है जिसमें भी हीरे पाये जाते हैं। इस मिट्टीमें ज्वालामुखी द्वारा उद्गीरित लावा है। पीली मिट्टीमें हीरे मिले, इसलिए खानवालोंने पहले यह सोचा था कि इसी मिट्टीमें हीरे पाये जाते हैं; पर बादको मालूम हुआ कि नीली मिट्टीमें भी हीरे हैं और काफी तादादमें हैं। आरम्भमें धोखेमें आकर कई खानें बहुत सस्ती बिक गयीं, क्योंकि खानोंके मालिकोंने समझा था कि पीली मिट्टीके नीचे हीरे कहां ?

यह जो हो, आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये हीरे कहांसे आये और कैसे पैदा हुए। इसका अध्ययन और अन्वेषण डा० एमिल कोहनने किया। बहुत खोजके बाद वे इस सिद्धान्तपर पहुंचे कि ये जो विशेष चिमनियां मिट्टीके भीतर तैयार हो गयी हैं वे ज्वालामुखीके कारण। किसी समय इस प्रदेशमें महान् आग्नेयगिरिका उत्पात मचा था; उसने ये चमनियां तैयार कर दिये। उनके अपने शब्द ये हैं—"मेरे विचारमें दक्षिणी अफ्रीकाकी हीरकमय भूमि ज्वालामुखीकी कृपाका फल है। कभी यहां ऐसा ज्वालामुखी फूटा जिसकी गरमी अधिक न थी और उससे जलमिश्रित क्षार निकला। सब बल किसी समय आग्नेयगिरिके मुख थे और बादको भर गये। पर भीतर जल रह गया और कङ्कड़-पत्थर भी बच गया। उनसे इन हीरोंकी उत्पत्ति हुई।" अब मालूम हुआ है कि किम्बरलीकी खानोंमें जो चिमनियां पायी जाती हैं उनमें पन्द्रह-पन्द्रह बार ज्वालामुखीका विस्फोट हुआ है और यह नीली मिट्टी भूगर्भमें बहुत गहरेसे ऊपर आयी है।

इन नलोंमें एक खूबी यह भी है कि इनमें मधुमक्खीके छत्तेकी तरह खाने हैं जो सख्त मिट्टीकी दीवारोंसे एक-दूसरेसे सटे हैं। मजदूर इन नाना खानोंमें अलग-अलग रस्सियों द्वारा चढ़ते-उतरते हैं। अब इन रस्सियोंका ऐसा जाल वहां बन गया है कि मकड़ीके जालेकी याद आती है।

बहुत दिनोंकी बात है कि फ्रान्सके वैज्ञानिक प्रो० आंरी म्वास्सांने हीरा बनानेकी सोची। यह तो सब जानते हैं कि कुछ पदार्थ अत्यन्त तापसे तप्त होनेपर भी नहीं गलते। सोनार सोना गलानेके लिए ऐसे ही एक साधारण पदार्थका उपयोग करता है। पर कार्बन आदि ऐसे तत्त्व भी हैं जो प्रायः साढ़े छ हजार डिग्री फैहरनहाइटपर भी नहीं गलते। गैससे भरे हुए तेज लैम्प भी बिजलीके भट्टेकी भांति रोशनी तो खूब देते हैं, पर गलते नहीं। बड़े नगरोंकी सड़कोंपर इनका प्रयोग किया जाता है, क्योंकि ये अपनी प्रचण्ड ज्योतिसे सड़कोंको दूर-दूर तक उद्भासित करते हैं। यदि कार्बनको इतने या इससे अधिक तापसे उत्तप्त किया जाये तो हीरा बन जाता है।

म्वास्सांसे पहले फ्रेञ्च विद्वान् लावासिए (Lavoisier) ने अपने प्रयोगोंसे सिद्ध कर दिया था कि हीरा और कोयला एक ही पदार्थके बने हैं। उनके मूलतत्त्वोंमें कुछ भेद नहीं। उसके बादसे ही कई लोग कारखानोंमें असली हीरा बनानेकी चेष्टा करने लगे। उस समय दूसरे वैज्ञानिक डेस्पेत्सने हीरा बनानेकी कोशिश की और कहा जाता है कि उसने हीरेके कई कण बना भी दिये। हीरा बनानेका नुसखा सीधा है। कोयलेकी गैस कार्बनको यदि इतनी अधिक गर्मी दे दी जाये कि वह गल जाये और फिर उसे धीमे-धीमे जमने दिया जाये तो तुरत हीरा बन जायेगा। यह सिद्धान्त सबको मालूम है, पर अब तक असली हीरे अधिक न बन पाये। इधर इस ओर कुछ सफलता मिली है, पर पूरी सफलता अभी दूर दिखायी देती है। इस असफलताका प्रधान कारण यह है कि कार्बन एक खास गर्मीमें गलता है और गलनेके बाद ही भाप बनकर उड़ने लगता है। सारी करामात तो यह है कि कार्बनके गलते ही आंच कम हो जाये, जिससे गला हुआ कार्बन जमने लगे। यह म्वास्सांसे ही सम्भव हो सका। उसने हीरा बनानेका नया ढङ्ग निकाला। एक बहुत मजबूत लोहेके नलमें कार्बन बन्द किया गया। यह नल एक सिरेपर पूरा बन्द था, इसके दूसरे सिरेपर जबर्दस्त ढकना लगाया गया। तब यह नल बिजलीके द्वारा बहुत गरम किया गया। इस दशामें लोहेका नल बिजलीकी भट्ठी ही बन गया। कार्बन गला और भाप भी बन गया; पर यह

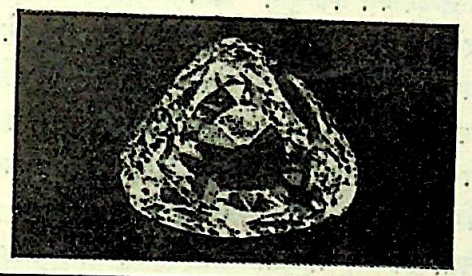

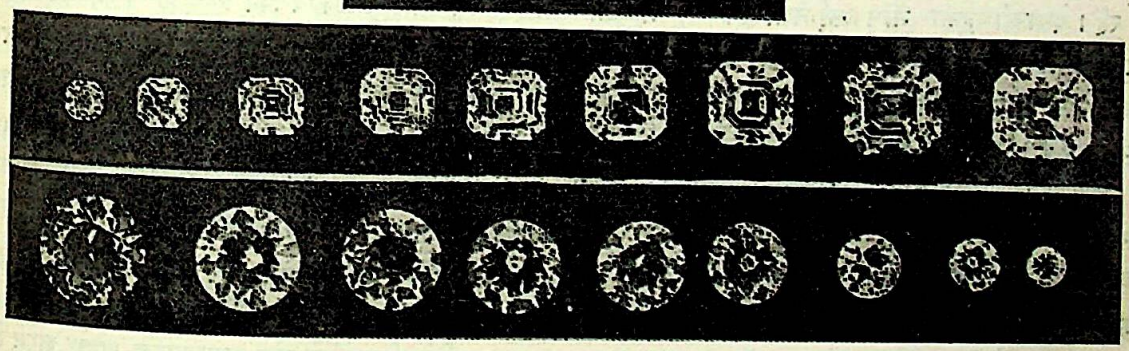

ये अनमोल और अपूर्व प्रभामण्डित हीरे प्रलयकी सृष्टि हैं।

बाहर न निकल सका, नलके भीतर ही बन्द रह गया। इसे और गरमी दी गयी तथा ऊपरसे बाप दिया गया। फल यह हुआ कि वह फिर जमने लगा। असल बात तो यह है कि लोहेके नलके भीतर क्या हुआ, इसका पता किसीको नहीं है; लेकिन जब यह नल तोड़ा गया तो भीतरसे कुछ छोटे-छोटे कण पाये गये जो खूब चमक रहे थे। उन्हें माइक्रोस्कोप द्वारा देखनेपर ज्ञात हुआ कि ये दो भिन्न-भिन्न प्रकारके हीरोंके खण्ड हैं। काला हीरा और श्वेत हीरक। म्वास्सांने हीरे बनानेके नाना प्रयोग किये और उसने भांति-भांतिके हीरे बनाये भी। इनमें कई तो अत्यन्त सुन्दर थे। किन्तु ये सब छोटे-छोटे कण थे। नलके भीतरसे जो राख निकली उसमें नाना प्रकारके प्रस्तरखण्ड विद्यमान थे। उनको हीरोंसे अलग करनेके लिए म्वास्सांने यह ढङ्ग निकाला कि इस राखको फिर जोरकी गरमीमें तपाया जाये जिससे अन्य साधारण चमकीले पत्थर गल जायें और केवल असल हीरे बचे रहें। ऐसा ही हुआ भी। कई तेजाबोंने भी मामूली पत्थरोंको गला दिया; पर हीरे ज्योंके त्यों बने रहे। उन्हें आंच न आयी। यह आविष्कार किम्बरली खानोंके निकलनेके पहलेका है। जब मो० म्वास्सांने कृत्रिम हीरे बनाये थे तब किसीको भी इन खानों और उनकी बनावटका पता न था।

अब प्रो० चार्लस ल्यूइसने यह निदान किया है कि किम्बरलीकी खानें ज्वालामुखियोंके उत्पातसे बनी हैं। उनका कहना है कि पृथ्वीके अन्तस्तलसे किसी प्रागैतिहासिक समयमें अत्यन्त प्रचण्ड अग्निमें गली हुई धातु और पत्थर ऊपरको आये और ज्वालामुखियोंका मुंह बन्द रहनेके कारण भीतर-ही-भीतर सिसकने लगे। अन्तमें उनमें ऐसा चाप पड़ा कि उनका कुछ भाग इतना जम गया कि हीरा बन गया।

यह सिद्धान्त अध्यापक म्वास्सांके प्रयोगोंसे पूरा मिलता है। भेद इतना ही है कि मो० म्वास्सांको लोहेकी नलीके स्थानपर दक्षिणी अफ्रीकामें प्रकृतिने लम्बी, चौड़ी और गहरी नलियां बना दीं जिनमें बिजली नहीं, भूगर्भमें सञ्चित प्रलय मचानेवाली गरमीने कार्बनको गलाकर भाप कर दिया और दोनों सिरोंको एकदम बन्द करके उसे जमनेका अवसर भी दिया। इस कारण मो० म्वास्सांके हीरक-कणोंके स्थानोंपर इन खानोंमें बड़े-बड़े हीरे भी मिलते हैं। प्रयोग करनेपर यह पता चला है कि अफ्रीकाकी खानोंके भीतर छोटे-छोटे हीरक-कण भी हैं। ये ठीक वैसे ही हैं, जैसे फ्रेञ्च वैज्ञानिक म्वास्सांने बनाये थे। इसलिए इसमें सन्देह करनेकी गुञ्जायश नहीं है कि अफ्रीकामें जो कभी प्रलय आया था उसने ही इन हीरोंकी उसी भांति उत्पत्ति की है जैसे म्वास्सांने कार्बनको सिद्ध करके लोहेकी नलियोंमें की थी। यह है प्रकृतिका चमत्कार कि विनाशसे अभ्युदयका मार्ग खुलता है। आज संसार हीरेके पीछे पागल है और विश्व उसे देखकर विमुग्ध है। पर कोई यह नहीं सोचता कि न मालूम कितने प्राणियोंका संहार करके विश्व-विधाताने हीरेकी अद्भुत सृष्टि की है। असंख्य बलिदान देकर कोयला हीरा बन गया। सच है—

धर्मस्यतत्त्वं निहितं गुहायाम्।

प्रकृतिके नियमोंको घोर अन्धकारके भीतर शरण मिली हुई है। हम उन्हें देखकर स्तम्भित और चकित रहनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते।

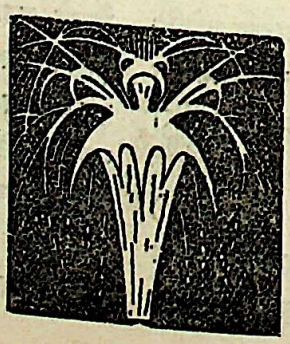

भारतमें प्लेग-सम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण

श्री कृपानाथ माङ्गलिक

भारतमें प्लेगकी बीमारी पहले-पहल कब फैली थी, इस सम्बन्धमें कोई निश्चित ऐतिहासिक तथ्य नहीं पाया जाता। पर यह निश्चय है कि इस रोगको यहां एक सहस्र वर्षसे अधिक समय हो गया है।

१३४८ में जो संसारव्यापी महामारी फैली थी उससे भारत भी अछूता नहीं बचा। अबुल फिदाने इसका उल्लेख किया है—

"७४९ हिजरी (१३४८ ई०) में चीनके सीमाप्रान्तमें महामारीका प्रकोप हुआ जिसने फैलते-फैलते भारत, सिन्ध, अफगानिस्तान आदि स्थानोंपर आक्रमण किया और वहांसे कालासागरके किनारे-किनारे होते हुए वह फारस पहुंचा और वहांसे ईराक, अरब, सीरिया, मिस्र, साइप्रस आदि स्थानोंसे होता हुआ फ्रान्स पहुंचा।" भारतमें होनेवाली महामारियोंके सम्बन्धमें यही पहला ऐतिहासिक तथ्य पाया जाता है। उक्त लेखकने यह भी लिखा है कि इस रोगसे प्रतिदिन १००० आदमियोंकी मृत्यु होती थी।

इसके बाद दूसरी महामारीका ऐतिहासिक विवरण 'तवारीखे-फरिश्ता' में पाया जाता है। यह महामारी सिकन्दर लोदीके राजत्वकालमें १५०१ में फैली थी।

१५४८ में सलीमशाह सूरके राजत्वकालमें भी भारतमें प्लेगका प्रकोप दिखायी दिया था जिसका वर्णन भिन्न-भिन्न मुसलमान इतिहासकारोंने विभिन्न रूपोंसे किया है। तथापि इस सम्बन्धमें सब एकमत हैं कि शेख अली नामका एक प्रतिष्ठित व्यक्ति महामारीके अवसरपर किसी कारणसे दोषी ठहराया गया था और अदालतमें उसका अपराध प्रमाणित हो गया था। वह दण्डके लिए सलीमशाहके पास लाया गया। पर उसपर रास्तेमें ही प्लेगका आक्रमण हो गया था। जब वह सलीमशाहके पास पहुंचा तो उसमें बोलने तककी शक्ति नहीं रह गयी थी। सलीमशाहने उसे कोड़ोंसे पीटे जानेकी आज्ञा दी। कोड़े पड़ते ही वह मर गया।

जहांगीरके राजत्वकालमें जो महामारी भारतमें फैली थी वह अत्यन्त विभीषिकापूर्ण थी। १६१५ में यह प्रारम्भ हुई। तुजुके-जहांगीरमें इसका विवरण इस प्रकार है—"शाहंशाह जहांगीरके राजत्वकालके दसवें वर्ष भारतमें महामारी फैली थी। पहले पञ्जाबके कुछ गांवोंमें यह दिखायी दी, इसके बाद यह लाहौरमें आ धमकी। बहुत-से हिन्दू तथा मुसलमान इसके शिकार बन गये। प्रतिदिन सैकड़ोंकी संख्यामें लोग मरते थे। लाहौरसे इसने सरहिन्द तथा दोआब (गङ्गा-यमुनाके बीचका स्थान) के जिलोंमें प्रवेश किया। दिल्ली तथा उसके आसपासके गांवोंमें भी इसका प्रकोप दिखायी दिया। बहुत-से शहरके शहर इसके कारण श्मशान बन गये, कई गांव नेस्त-नाबूद हो गये। डाक्टरोंका कहना है कि इस महामारीका कारण अनावृष्टि और वायुमण्डलकी शुष्कता है। बहुत-से लोग इसके कुछ दूसरे ही कारण बताते हैं। भगवान् जाने कि असली कारण क्या है। हम सबको उसीकी इच्छाके आगे सिर झुकाना होगा।"

उसी ग्रन्थमें एक दूसरे स्थानपर काश्मीरमें उक्त प्लेगकी भयङ्करताका उल्लेख इस प्रकार है—"काश्मीरमें महामारीने और भी भीषण रूप धारण किया था। वहांकी स्थितिका ठीक-ठीक समाचार मालूम करनेके लिए एक आदमी भेजा गया, उसने जो रिपोर्ट दी वह इस प्रकार है—'काश्मीरमें महामारीका भयङ्कर प्रकोप जारी है। रोगके आक्रमणके प्रारम्भमें सिरमें दर्द मालूम होता है और इसके बाद जोरका ज्वर चढ़ आता है और नाकसे खून बहने लगता है; फलस्वरूप आक्रमणके दूसरे ही दिन रोगीकी मृत्यु हो जाती है। किसी भी कुटुम्बमें जब एक आदमी प्लेगसे मरता है तो भयसे परिवारके सब लोग भाग जाते हैं। रोगीका शरीर छूते अथवा उसके पास बैठते ही बीमारी पकड़ लेती है। उदाहरणके लिए, महामारीके एक रोगीकी लाश एक स्थानपर हरी दूबके ऊपर धोयी गयी; एक गाय उस स्थानपर आकर चरने लगी; उसे बीमारीने पकड़ लिया और वह मर गयी। कुछ कुत्तोंने उस गायकी लाशसे मांस नोचकर खाया था, वे सबके सब मर गये। यहां तक नौबत

आ गयी है कि बाप अपने बेटेसे दूर रहनेकी कोशिश करता और बेटा अपने बापको देखकर भागता है। आश्चर्यकी बात यह है कि जिस मुहल्लेमें पहले-पहल महामारीका प्रकोप दिखायी दिया था वहां अचानक आग लग गयी और प्रायः ३००० मकान जलकर खाक हो गये। जब प्लेग बड़े जोरों-पर था तो शहरके बाशिन्दोंको प्रतिदिन प्रातःकाल मकानोंके दरवाजोंपर एक अद्भुत छायाचित्र दिखायी देता था। यह छायाचित्र तीन वृत्तोंका बना हुआ था। प्रत्येक वृत्त एक-दूसरेसे मिला था और प्रत्येकका रङ्ग एकदम काला था। मसजिदमें भी यह दिखायी देता था। कहा जाता है कि आग लगने और उक्त छायाचित्रोंके प्रकट होनेसे महामारी शान्त होने लगी।"

आगरेमें भी इसी वर्ष महामारीका जोर रहा है और हजारों आदमी मरे। इस सम्बन्धमें 'तुजुके-जहांगीर' में एक पत्र उद्धृत किया गया है जो इस प्रकार है—"हालमें हमें समाचार मिला कि बाघीवाली महामारी आगरेमें फैल गयी है। कहा जाता है कि शहरमें १०० आदमी प्रतिदिन इस बीमारीसे मर रहे हैं। इसके लक्षण यह हैं कि कमरमें, बांहके नीचे या गलेमें बाघी निकल आती है। तीन सालसे यह बीमारी बराबर जारी है। जाड़ेके मौसममें यह बड़ा उग्र रूप धारण कर लेती है और ग्रीष्मकालमें शान्त हो जाती है। आश्चर्यकी बात यह है कि आगरेके चारों ओर इसका प्रकोप होनेपर भी फतेहपुरमें अभी तक इसके कोई चिह्न नहीं दिखायी दिये हैं। इसलिए मैं जहांपनाहको फतेहपुरमें जाकर रहनेकी राय दूंगा। आसफखांकी लड़कीने, जो पिताके मरने-पर अब अब्दुल्लाखांके यहां रहती है, एक बड़ी आश्चर्य-जनक कहानी सुनायी है, जो इस प्रकार है—'एक दिन मैंने अपने मकानके फर्शपर एक चूहा देखा जो इधर-उधर इस प्रकार चक्कर काट रहा था जैसे नशेमें हो। मैंने अपनी नौकरानीसे उसकी दुम पकड़कर उसे बिल्लीको दे देनेके लिए कहा। उसने ऐसा ही किया। बिल्लीने चूहेको देखते ही उसे मुंहसे पकड़ लिया, पर तत्काल छोड़ दिया, मानो उसके मुंहमें कोई घिनौनी चीज चली गयी हो। बिल्ली बीमार पड़ गयी और दूसरे दिन उसकी हालत देखकर ऐसा मालूम होता था कि अब वह मरना ही चाहती है। मैंने उसे थोड़ा-सा "तिरयाक़ फारूक़" दिया। तीन दिन तक वह कमजोरीकी हालतमें पड़ी रही, पर चौथे दिन चङ्गी हो गयी। बिल्ली तो अच्छी हो गयी, पर मेरी नौकरानीके शरीरमें फोड़ा निकल आया। यन्त्रणासे वह इस कदर परेशान हो उठी कि उसके चेहरेपर काली झांई दिखायी देने लगी। दूसरे ही दिन वह मर गयी। इसी प्रकार हमारे मकानमें उसी बीमारीसे सात या आठ आदमी मर गये। जो बचे थे वे बागीचेवाले मकानमें भागकर चले गये, पर वहां भी वे बच न सके और सबके सब बीमार पड़कर मर गये।' उक्त महिलाका यह भी कहना है कि जो-कोई भी आदमी मरीजोंके पीने या हाथ-मुंह धोनेके लिए पानी ले जाता था वही बीमार पड़ जाता था; फल यह हुआ कि लोगोंने रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करना ही छोड़ दिया।"

'इकबाल-नामा-जहांगीर' में इसी महामारीका वर्णन इस प्रकार किया गया है—"जहांगीरके राजत्वकालके ग्यारहवें वर्ष हिन्दुस्तानके परगनोंमें महामारी फैल गयी और धीरे-धीरे उसने भयङ्कर रूप धारण कर लिया। इसकी उत्पत्ति पञ्जाबमें हुई और वहांसे वह सारे उत्तर भारतमें फैल गयी। इस महामारीके अवसरपर चूहे अपने बिलोंसे इस तरह निकलते दिखायी देते जैसे वे नशेमें हों और लड़-खड़ाते हुए दीवारों और दरवाजोंसे टकराकर मर जाते थे। जिस घरमें इस प्रकार चूहे मरते थे, उसके निवासी यदि तत्काल घर छोड़कर जङ्गलों या खेतोंमें रहनेके लिए चले जाते तो वे अधिकांशतः बच जाते, नहीं तो वे सब महा-मारीसे आक्रान्त होकर मर जाते। यदि कोई व्यक्ति अक-स्मात् महामारीके रोगीकी लाशके पास आ खड़ा होता और उसके कपड़े या उसके द्वारा व्यवहृत किसी भी चीजको छू बैठता तो उसे तत्काल बीमारी पकड़ लेती और फिर उसके बचनेका कोई उपाय न रह जाता। हिन्दुओंपर इसका आक्रमण विशेष रूपसे रहा। लाहौरमें बहुत-से ऐसे मकानों-का हाल मिला जिनमें प्रत्येकमें दस-दस बीस-बीस आदमी मृत्युके शिकार बन गये। मृत व्यक्तियोंकी लाशोंसे जो उत्कट दुर्गन्ध निकलती थी वह असहनीय थी। परिवारके लोग एक-दूसरेको छोड़कर भागकर चले जाते थे। काश्मीरमें इस महामारीने और भी उग्रतासे आक्रमण किया था। कहा जाता है, एक मुसलमान साधुने एक परित्यक्त व्यक्तिकी लाशको, जो बाहर जमीनमें घासके ऊपर पड़ी थी, धोया।

वह साधु दूसरे ही दिन मर गया। एक गाय वहां चरनेके लिए आयी, चरनेके बाद वह मर गयी। उस गायकी लाशसे जिस कुत्तेने मांस नोचकर खाया, वह भी मर गया।"

'मुन्तखिब-उल-लुबाब'में भी उक्त महामारीका वर्णन पाया जाता है जो इस प्रकार है—"प्रतिदिन प्रत्येक शहरमें इस महामारीसे असंख्य मनुष्य मरते थे। यहां तक नौबत पहुंच गयी कि लोगोंने लाशें उठाना छोड़ दिया। यह महामारी सात वर्ष तक अपना भीषण प्रकोप दिखाती रही। पहले चूहे मरते थे। जिस स्थानमें इस रोगका आक्रमण होता था वहां एक भी चूहा जिन्दा न रहने पाता था। इसकी अवधि सात या आठ पहरसे लेकर चार दिन तक थी।"

विद्वानोंका मत है कि महाकवि गोस्वामी तुलसीदासकी मृत्यु भी इसी महामारीसे हुई थी। उनकी कवितावलीमें इसी महामारीका वर्णन पाया जाता है। उस समय वह काशीमें थे। पञ्जाबसे फैलते-फैलते उक्त रोग दोआब (गङ्गा-यमुनाके बीचके स्थानमें) पहुंचा और वहांसे काशीपर इसने आक्रमण किया। कवितावलीमें इस सम्बन्धमें बहुत-से पद्य पाये जाते हैं। पद्य इस प्रकार हैं—

शङ्कर शहर नर-नारि वारिचर गर
विकल सकल महामारी माया भयी है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जलथल मीचमयी है॥
देव न दयाल महिपाल न कृपाल चित
बारानसि बाढ़ति अनीति नित नयी है।
पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत
रामहूकी बिगरी तुही सुधारि लयी है॥

इसमें महामारीकी विभीषिकाका ठीक वही वर्णन है जो मुसलमान इतिहासकारोंके विवरणोंमें पाया जाता है। पद्यसे स्पष्ट है कि शहरमें लाशोंके ढेर पड़े थे, और बहुत-सी लाशें बिना जलाये ही गङ्गाजीमें बहा दी गयी थीं। 'जल-थल मीचमयी है' का अर्थ हम यही लगाते हैं। अधिकांश लोग शहर छोड़कर भाग गये थे। पर स्वयं गोस्वामीजी 'रघुराज और कपिराज' के भरोसे वहीं बैठे थे। खेद है कि भक्तवत्सलने उनकी सुधि नहीं ली और वह भी रोगसे आक्रान्त हो गये। रोगका वर्णन कवितावलीमें जैसा किया गया है उससे स्पष्ट है कि वह बाघीवाला प्लेग ही था—

बाहुतरुमूल बाहुशूल कपि कछु बेलि
उपजी सकेलि कपि केलि ही निबारिये।

* * *

साहसी समीरके दुलारे रघुबीरजीके
महावीर बांहपीर बेगि ही निबारिये।

× × ×

आन रघुराजकी दोहाई हनुमानकी
शपथ महावीरकी जो रहे पीर बांहकी।

मुसलमान इतिहासकारोंने अपने विवरणोंमें महामारीके लक्षणोंको बतलाते हुए लिखा है कि या तो कमरमें या बगलमें बाघी निकल आती थी। 'बहुतरुमूल बेलि उपजी' के यही माने हैं कि उनकी बगलमें बाघी निकल आयी थी।

यह बात सर्वविदित है कि गोस्वामीजीकी मृत्यु बनारसमें ही हुई थी। प्रचलित दोहेके अनुसार १६८० संवत् (१६२३ ई०) उनका मृत्युकाल माना जाता है। यह महामारी सात-आठ वर्ष तक भारतमें रही थी; अर्थात् १६१५-१६ से लेकर १६२३-२४ ई० तक उसका प्रकोप रहा। काशीमें यह बादमें फैली थी, इसलिए वहां उसकी अवधि और भी पीछे तक रही होगी। कुछ भी हो, यह निश्चय है कि जहांगीरके राजत्वकालकी इस महामारीके कारण ही गोस्वामीजीकी मृत्यु हुई थी।

रोगकी ज्वाला कैसी उत्कट थी, उसका अन्दाज कवितावलीके बहुत-से पद्योंसे मिलता है। केवल बांहमें दर्द नहीं था, बढ़ते-बढ़ते वह सारे शरीरमें फैल गया था—

पाय पीर, पेट पीर, बांह पीर, मुख पीर
ज्वराजूर सकल शरीर पीरमयी है।

इससे विदित होता है कि अंगरेजीमें जिसे virulent type का प्लेग कहते हैं, गोस्वामीजी उसीसे आक्रान्त हुए थे। मालूम होता है कि यह पीड़ा अन्तको इतनी बढ़ गयी थी कि देवी-देवताके प्रति भी उनके मनमें अविश्वास होने लगा था—

अपने ही पापते त्रितापते कि शापते
बढ़ी है बाहुवेदना न नेकु सही जाति है।
ओषध अनेक यन्त्र-मन्त्र टोटकादि किये
बादि भये देवता मनाये अधिकाति है॥

कुछ लोगोंका कहना है कि गोस्वामीजी जब प्लेगसे पीड़ित और बाहुवेदनासे व्याकुल थे तो वह इन पद्योंको लिख कैसे सकते थे ? हमारी तुच्छ सम्मतिमें यह जरूरी नहीं कि उनके सब पद्य उनके अपने ही हाथके लिखे हों। बहुत सम्भव है कि वह पीड़ासे कराहते हुए इन पद्योंको मुखसे निकालते रहे होंगे और उनके शिष्यों तथा भक्तोंने उन्हें 'नोट' कर लिया होगा।

मुगल-शासन-कालमें भारतमें सबसे अन्तिम तथा सबसे अधिक विभीषिकापूर्ण महामारी १६८७ ई० में औरङ्गजेबके समय हुई। 'आलमगीर-नामा' में इसका विवरण इस प्रकार पाया जाता है—"शाहंशाह आलमगीरने अपने शासन-कालके बत्तीसवें वर्ष रबी-उल-अव्वलके पहले दिन दक्षिणकी ओर प्रस्थान करनेका निश्चय किया। मुहर्रमके बीचमें ही एक भयङ्कर महामारी फैल गयी, जिसे देखकर देवता भी कम्पायमान हो उठे। चारों ओर घोर विभीषिका और आतङ्क छा गया। सर्वत्र राग-रङ्ग और चहल-पहल बन्द हो गयी। ऐसा मालूम पड़ने लगा जैसे मृत्युने सारी मनुष्य-जातिको मटियामेट कर देनेका निश्चय कर लिया हो; जैसे कयामतका दिन आ पहुंचा हो। अनेक बाल-बच्चे, नौजवान, बूढ़े और स्त्रियां केवल भयसे प्राण खो बैठते थे। बगलमें या कमरमें पहले एक बाघी या फोड़ा निकलता था और साथ ही ज्वर तथा सन्निपातके चिह्न प्रकट होने लगते थे। दवा-दारू सब व्यर्थ सिद्ध होते थे। दो या तीन ही दिनके भीतर कई कुटुम्ब नेस्तनाबूद हो गये—घरका कोई पालतू जानवर तक जीता न रहा। सब अपने-अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए चिन्तित दिखायी दे रहे थे, अपने सगे-सम्बन्धियोंको छोड़कर लोग भागते थे। औरङ्गाबादी-महल नामकी स्त्री, जिसे शाहंशाह बहुत चाहते थे, और महाराजा जसवन्तसिंहका लड़का मुहम्मद राज, जो शाहंशाहके महलमें ही पला था, दोनों परलोकको सिधार गये। फजल खां, सदर आदि बहुतसे राजा-रईस भी महामारीसे आक्रान्त होकर कूच कर गये। मध्य तथा निम्नश्रेणीके लोगोंमें १,००,००० से भी अधिक आदमी मरे। भूत तथा वर्तमान कालके इतिहासमें इस प्रकारके सामूहिक विनाशकी तुलनाके योग्य कोई घटना नहीं पायी जाती। प्रायः दस महीने तक इसका जोर रहा और इसकी तारीख और सन् स्मृति-चिह्न-स्वरूप इस वाक्यके साथ लिख दिये गये हैं—

'कयामत बूद या शोरे बबा बूद ?'"

इन सब विवरणोंसे यह पता चलता है कि जो महामारी भारतमें मध्ययुगमें समय-समयपर महाविनाशके रूपमें फैली थी वह वही बीमारी थी जो आजकल bubonic plague के नामसे विख्यात है और जिससे भारतको अभी तक छुटकारा नहीं मिला है। यूरोपमें भी मध्ययुगमें इसने भैरव रूप धारण कर रखा था, पर अब वहां स्वास्थ्य-विज्ञान-सम्बन्धी उपायोंके प्रयोगसे इस विकराल रोगके कीटाणु प्रायः मूलतः नष्ट कर दिये गये हैं। भारतमें इतने युगोंसे इस रोगके सम्बन्धमें अभिज्ञता प्राप्त होते हुए भी अभी तक उसके निराकरणका कोई यथोचित उपाय काममें नहीं लाया जा सका है।

रोमके ऐतिहासिक अग्निकाण्डकी लोमहर्षक कहानी

श्री परमानन्द एम० ए०

सुप्रसिद्ध रोमन सम्राट् नीरोकी घोर पैशाचिक प्रवृत्तियां प्रायः उन्नीस शताब्दियोंसे संसारमें लोकोक्तियोंकी तरह प्रसिद्ध और प्रख्यात हैं। सन् ६४ में रोमका विराट् नगर प्रलयङ्कर अग्निकी विकराल ज्वालाओंसे नष्ट-भ्रष्ट हो गया। लाखों नर-नारियोंके विदीर्ण आर्त-क्रन्दनसे आसमान मानो फटा जाता था। यह सर्वग्रासी अग्निकाण्ड ९ दिन तक जारी रहा। इस घटनाने नीरोको अधिक बदनाम कर दिया। प्राचीन इतिहासकारोंके वर्णनानुसार नीरो जघन्य कामुक, उच्छृङ्खल, निष्ठुर, पाशविक, कायर तथा पूर्णतः उत्तर-दायित्वहीन था। वर्तमान युगके कुछ इतिहासकारोंका कहना है कि उसपर ये सब झूठे अभियोग ईसाई धर्म-प्रचारकोंने लगाये थे, क्योंकि नीरो ईसाइयोंसे बहुत जलता था और अपने राज्यमें यथाशक्ति उनके धर्म-प्रचारका विरोध किया करता था। पर केवल ईसाइयोंने ही नीरोको उक्त विशेषणोंसे विभूषित नहीं किया है, टैसिटस, स्वेटोनियस तथा कैसियस-जैसे विख्यात गैर-ईसाई इतिहासकारोंने भी नीरोका चरित्र ऊपर वर्णित किये गये रङ्गोंमें ही अङ्कित किया है।

नीरोकी उच्छृङ्खलता और पाशविकता किस हद तक पहुंच गयी थी, इसका अन्दाज इस तथ्यसे लगाया जा सकता है कि अपनी माता ऐग्रिप्पिनासे उसने वीभत्स कामुकताका सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इस सम्बन्धमें कुछ इतिहासकारोंका कथन है कि ऐग्रिप्पिनाने ही उसे इस अमानुषिक सम्बन्धके लिए उकसाया था। ऐग्रिप्पिनाका चरित्र बचपनसे ही भ्रष्ट था और इस सम्बन्धमें सब इतिहासकार एकमत हैं कि प्रथम यौवनमें अपने सगे भाई कैलीगुलाके साथ वह अवैध सम्बन्धमें जड़ित थी। यदि सच पूछा जाय तो उस युगका सारा रोमन राजकीय समाज ही उच्छृङ्खलताकी चरम सीमाको पार कर चुका था। सगी बहनके साथ व्यभिचारमें लिप्त रहना उस रोमन युगमें एक साधारण-सी बात समझी जाती थी। कैलीगुलाके विषयमें कहा जाता है कि केवल ऐग्रिप्पिनाके साथ ही नहीं, अपनी सभी बहनोंके साथ उसका इसी प्रकारका अनुचित सम्बन्ध रहता था। अपनी एक बहनके प्रति उसकी अनुरक्ति इस हद तक बढ़ गयी थी कि वह उसके प्रेममें उन्मत्त होकर खुल्लम-खुल्ला उसके साथ विवाह करके उसे सम्राज्ञीके पदमें अधिष्ठित करनेकी बात सोचने लगा था! टिबेरियस और क्लाडियसके चरित्रके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी बातें कही जाती हैं। अप्राकृतिक व्यभिचार भी उस युगमें बेहद बढ़ा हुआ था। राज्य-भरके सुन्दर लड़के चुनकर रोमके विलास-लालसा-मग्न राजप्रासादमें सम्राट्की परिचर्याके लिए लाये जाते थे। ऐतिहासिकोंने जूलियस सीजरपर भी अप्राकृतिक व्यभिचारका दोष आरोपित किया है! आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्तपर पहुंचे हैं कि कामुकताके आधिक्यका सबसे निश्चित परिणाम क्रूरता तथा हृदयहीनता है। अतएव पूर्वोक्त रोमन सम्राट् घोर अत्याचारी और जालिम रहे होंगे, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है!

नीरोमें रोमन राजकीय परिवारके ये सब गुण तो वर्तमान थे ही, इसके अतिरिक्त अपनी माताको असाधारण, रहस्यमय, विभीषिकापूर्ण प्रकृतिकी भी बहुत-सी विशेषतायें उसके चरित्रमें वर्तमान थीं। उसकी माता घोर षड्यन्त्रकारिणी, हृदयहीना, घातकी और परम कामुकी थी। वह ऐसी कामुकी थी कि उसने जब अपने पुत्रको ऐक्टे नामकी एक गुलाम-स्त्रीपर मोहित होते देखा तो ईर्ष्यासे जल उठी। वह ऐसी अमानुषिक हृदयहीनता लेकर उत्पन्न हुई थी कि जब उसने देखा कि उसका पुत्र उसे राज्यकी सर्वाधिकारिणी माननेको तैयार नहीं है तो वह सन्तानके प्रति माताकी स्वाभाविक ममता त्यागकर प्रतिहिंसाके भावसे उन्मत्त होकर पुत्र-हत्याका षड्यन्त्र रचने लगी! नीरो बहुत दिनों तक अपनी माताकी ज्यादतियोंको सहन करता चला गया। इसका कारण यह था कि वह अपनी माताको वास्तवमें बहुत चाहता था। पर जब ऐग्रिप्पिनाका क्रोधोन्माद बढ़ता चला गया और उसकी पुत्र-विद्वेषिणी प्रवृत्ति हदसे बाहर पहुंच गयी तो नीरोने गुप्त रूपसे उसकी हत्याका

आदेश दे दिया। वह किसी बहानेसे एक जहाजमें चढ़ाकर समुद्रमें ले जायी गयी। यात्राके बीचमें ही अकस्मात् उसे पुत्रके आदेशकी सूचना दी गयी और तैयार हो जानेको कहा गया। यह आदेश सुनते ही वह ऐसी पागल हो उठी कि अपना निम्नवस्त्र खोलकर नङ्गी खड़ी हो गयी और अपने गर्भस्थानपर उंगलीसे सङ्केत करके प्रलाप-ग्रस्त-सी चिल्लाकर कहने लगी—"इस स्थानपर छुरा मारकर मुझे कत्ल करो, नीरोका जन्म इसी स्थानसे हुआ है!"

अमानुषिक काम-सम्बन्धके कारण माता-पुत्रमें इस प्रकारका मनोमालिन्य और परस्पर-प्रतिहिंसाका भाव

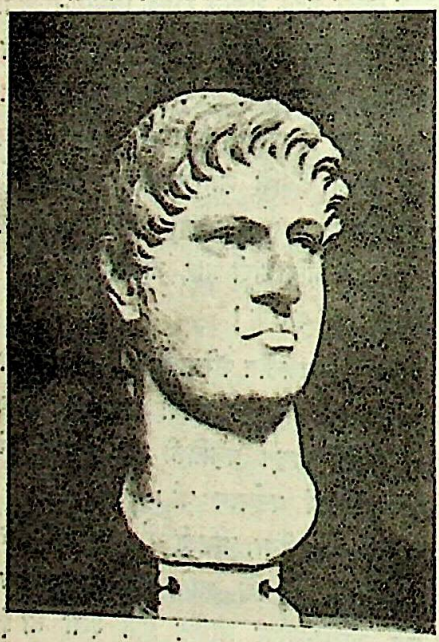

रहस्यमय रोमन सम्राट् नीरो

उत्पन्न होना पूर्णतः स्वाभाविक था। इस प्रकारके अप्राकृतिक अनाचारका वीभत्स घृणा और कठोर निष्ठुरतामें परिणत होना अनिवार्य था।

नीरोकी उच्छृङ्खलताका थोड़ा-बहुत परिचय पाठकोंको दिया जा चुका है। पर उसमें बहुत-कुछ गुण भी वर्तमान थे। वह साहित्य, सङ्गीत, कला और संस्कृतिका अनन्य उपासक था। उसे रोम नगरको संसारका सर्वश्रेष्ठ कलागार बनानेका खब्त था। इसके अतिरिक्त वह रोममें संसारकी सर्वश्रेष्ठ लाइब्रेरीकी स्थापनाके लिए भी सदा प्रयत्नशील रहा। सङ्गीतमें वह इतनी रुचि रखता था कि कहींसे भी कोई आकर्षक स्वर-लहरी कानोंमें प्रवेश होती तो वह बहुत देर तक आंख मूंदकर मन्त्र-मुग्ध-सा बैठा रहता। प्रजाको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टामें वह सदा रत रहता था। उसमें एक ऐसी विशेषता वर्तमान थी कि उसकी ज्यादतियोंसे परिचित होनेपर भी प्रजा उसे चाहती थी। वह भी प्रजाको चाहता था। वह अनाचारी जरूर था, पर अधिकांश रोमन सम्राट् उससे बहुत अधिक अनाचारी थे।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सन् ६४ में रोमके विराट् नगरमें जो रोमाञ्चकर अग्निकाण्ड मचा, उसके कारण नीरो और भी अधिक बदनाम हो गया। जन-साधारणको यह विश्वास दिलाया गया कि वह अग्निकाण्ड नीरोकी ही ध्वंसकारी प्रवृत्ति और सर्वनाशी आदेशका परिणाम है। पर टैसिटसका मत है कि वह आग वास्तवमें नीरोके आदेशानुसार लगायी गयी थी या किसी आकस्मिक दुर्घटनाके कारण लग गयी थी, इस सम्बन्धमें निश्चय-रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता। टैसिटस इस बातपर विश्वास नहीं करना चाहता कि नीरोमें अपनी कला तथा साहित्य-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षाओंकी सामग्रियोंसे पूर्ण नगरको इस प्रकार ध्वंस-रूपमें देखनेकी इच्छा सम्भव हो सकती थी। कुछ भी हो, उस आगकी भैरव ज्वालाओंने जो कालरूप धारण कर लिया था, वह घटना इतिहासमें इस समय तक भी असाधारण समझी जाती है। कहा जाता है कि वैसी आग कभी किसी शहरमें नहीं लगी। लन्दनमें १६६६ में जो अग्निकाण्ड मचा था वह अत्यन्त भीषण था, सन्देह नहीं; उसके कारण हजारों आदमियोंके प्राण गये, अकथनीय सम्पत्तिका नाश हुआ और शहरका आधेसे अधिक भाग खाकमें मिल गया। लन्दनकी यह प्रलयाग्नि चार दिन तक रही थी। पर रोममें नीरोके राजत्वकालमें—सन् ६४ में—जो अग्निलीला मची थी वह प्रायः ९ दिन तक रही और उसने जिस अतुल, अमूल्य, अपूर्व सम्पत्तिको भस्मीभूत कर दिया उसके मूल्यका अन्दाज लगाना असम्भव है, और जितने आदमी जल मरे उनकी संख्या लोमहर्षक है।

विख्यात इतिहासकार टैसिटसने इस ऐतिहासिक अग्निकोपका विस्तृत वर्णन किया है। गर्मीका मौसम था। नीरो उन दिनों अपने समुद्र-तीरस्थ महलमें ग्रीष्म-विनोदके लिए

गया हुआ था। रोम नगरका राजनीतिक वातावरण बहुत-कुछ शान्त था और सर्वत्र राग-रङ्ग और चहल-पहल मची हुई थी। नीरो भी अपने दूतोंसे यह जानकर निश्चिन्त बैठा था कि उसके विरुद्ध कोई नया राजनीतिक षड्यन्त्र नहीं चल रहा है और प्रजा उसके प्रति सन्तुष्ट है और हंसी-खुशीमें मग्न है। अकस्मात् १९ जुलाई सन् ६४ को रातके समय 'सर्कस मैक्सिमस' नामक स्थानके पूर्वी कोनेमें लकड़ीके शेडों तथा छोटी दुकानोंमें आग लग गयी। इन दुकानोंमें तेल, चर्बी, काठ-कबाड़ आदि ऐसी चीजें भरी पड़ी थीं जिनके कारण आग बहुत जल्द बढ़ गयी। दखनी हवा बहुत तेजी-पर थी। आगकी लपटोंने थोड़े ही समयमें भीषण रूप धारण कर लिया और सारा सर्कस धांय-धांय जल उठा। ग्रीष्म-कालके सूर्यके तापने बहुत दिनोंसे मकानोंकी बल्लियोंको सुखाकर ईंधनके उपयुक्त बना रखा था; इस कारणसे भी आगको यथेष्ट सुविधा प्राप्त हुई थी। आगकी ज्वालायें बढ़ते-बढ़ते शहरके अन्तर्गत पालातीन तथा कीलियन पहा-ड़ियोंकी घाटीको जलाती हुई एसक्विलाइन नामक मुहल्लेकी ओर फैलने लगीं और वहां दिनोंकी तेज धूपसे सूखे हुए तङ्ग गलियोंके घर बातकी बातमें प्रज्वलित हो उठे और अग्नि करालसे विकरालतर रूप धारण करती चली गयी।

इस आकस्मिक अग्निकाण्डने चैनकी नींदमें सोये हुए नर-नारियों तथा बाल-बच्चोंमें अवर्णनीय आतङ्क सञ्चारित कर दिया। बहुतोंको मकानसे बाहर निकलनेका अवसर और रास्ता नहीं मिला। बहुत-से खिड़कियोंपरसे कूदकर मरे, अनेकों स्त्रियां घबराहटमें बच्चोंको पकड़कर आगकी सर्वग्रासी ज्वालाओंके बीचसे ही भाग निकलनेका असम्भव प्रयत्न करके विनाशको प्राप्त हुईं। बच्चों तथा स्त्रियोंका हृदय-विदारक आर्तनाद, पुरुषोंका गगनभेदी हाहारव अत्यन्त मर्मान्तक था। जिन लोगोंके मकान अभी नहीं जले थे वे बाल-बच्चों और स्त्रियोंको लेकर अज्ञात, अनिश्चित दिशाओं-को, जिधरको पांव ले जाते थे, भागे चले जा रहे थे। कालान्तक अग्निका बहु-विस्तृत प्रलय-प्रज्वलित प्रकाश उस ऐतिहासिक रात्रिके समय अवश्य ही एक दर्शनीय दृश्य रहा होगा! इमारतोंके विस्फोट और पतनका शब्द, लेलिहान ज्वालाओंकी सर्प-लोलित लपटोंका मुहुर्मुहु श्वसन, उनकी दग्धकारी उत्तप्त, उग्र आंच—इन सब बातोंने मिलकर महा-कालकी निशाका भौतिक स्वरूप लोगोंकी आंखोंके आगे नचा दिया। भगदड़में सैकड़ों आदमी दम घुटकर और पैरों-तले कुचल जानेसे मर गये। शिथिल-अङ्ग, रुग्ण, बलहीन तथा जरा-जर्जरित लोगोंकी दुर्दशाके सम्बन्धमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। कहा जाता है कि इन सब दृश्योंको देखकर बहुत-से पागल हो गये और बचनेका उपाय होनेपर भी जान-बूझकर आगकी ज्वालाओंमें कूद पड़े। किसीको प्रियजनोंके विनाशने और किसीको मूल्यवान सम्पत्तिके स्वाहा हो जानेके सदमेने पागल बना दिया। ६ दिन तक

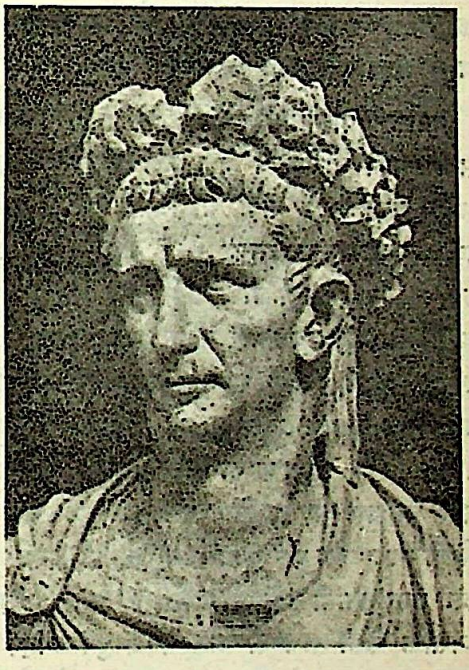

उन्मत्ताचारी सम्राट् क्लाडियस

शहरमें अविराम वेगसे निरन्तर आग धधकती रही, इसके बाद विनाशका दृश्य बहुत-कुछ शान्त हो गया और लोगोंको उस करुण परिस्थितिपर विचार करनेका कुछ अव-काश मिलता हुआ दिखायी दिया। पर फिर अकस्मात् निर्वाणोन्मुखी ज्वालायें कहींसे अपनी खुराक पाकर द्विगुण वेगसे धधक उठीं और ३ दिन तक और ध्वंस-लीला दिखाती रहीं। पानीके सब नल नष्ट हो चुके थे, इसलिए बचे हुए लोगोंको केवल निश्चेष्ट भावसे हाथपर हाथ रखकर सर्वनाशका वह दृश्य देखते रहनेके अतिरिक्त और कोई

चारा नहीं था। ९ दिन तक अपना प्रकोप दिखाकर प्रायः सब-कुछ स्वाहा करनेके बाद दसवें दिन अग्निदेवता शान्त हुए।

चोरों और डाकुओंकी बन आयी थी। जो लोग अपने बचे-खुचे माल-असबाबको सड़कोंपर ले जानेकी चेष्टा करते थे, डाकू उनपर आक्रमण करके उनका सब माल लूट लेते थे। प्रसिद्ध प्राचीन इतिहासकार डायन कैसियसका कहना है कि स्वयं सिपाही और पुलिसवाले इस लूट-खसोटमें शामिल थे, यहां तक कि वे सुअवसर देखकर शहरके नामी सेठोंके मकानोंमें स्वयं आग लगा देते थे और उनकी रक्षाके बहाने सब माल लूट-खसोट कर ले जाते थे।

ज्वालायें पालातीनकी पहाड़ीकी ढालूमें फैलने लगीं। इस पहाड़ीकी चोटीपर वे बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक अट्टालिकायें राज-प्रासादके रूपमें खड़ी थीं जिनपर सीजर-वंश युगोंसे निवास करता चला आया था। जब नीरोको खबर लगी कि आग नहीं बुझायी जा सकती और राज-प्रासाद कला-भवन तथा अमूल्य धनागार सहित भस्म होनेको है तो उसने तत्काल शहरमें जाकर सम्भव उपायोंको काममें लानेका निश्चय कर लिया। उत्तर-पूर्वकी तरफका रास्ता पकड़कर नीरोको शहरमें प्रवेश करना पड़ा। चूंकि हवा दक्षिणकी ओरसे चल रही थी, इसलिए नीरोके पहुंचने तक महलका दक्षिणी भाग ध्वंस हो चुका था। नीरोने देखा कि आग किसी तरह बुझायी नहीं जा सकती। उसने आज्ञा दी कि यथाशक्ति कला-सम्बन्धी अमूल्य वस्तुयें बाहर निकाली जायं। कहा जाता है कि धुएंके तप्त निःश्वास और लपटोंकी आंचसे नीरोका मुंह कुछ झुलस गया था। वह कैपिटोलीन हिलकी ओर टाइबर नदीके उस पार ऐसे स्थानमें चला आया जिधर आगकी ज्वालायें, हवाका रुख न होनेसे, नहीं फैल सकती थीं। वहांपर उसने विहारके लिए एक सुन्दर उद्यान निर्मित कराया था। उस उद्यानमें उसके विनोदावासके अतिरिक्त एक छोटा-सा थियेटर-भवन भी था जिसमें प्रतिवर्ष वसन्तके उत्सवपर मदनोत्सव मनाया जाता था और नङ्गी सुन्दरियां तथा नङ्गे बालक नाचा करते थे। इस थियेटरकी छतपर खड़े होकर नीरो शङ्कित और आतङ्कित हृदयसे अपने ऐतिहासिक राज-प्रासादका विध्वंस देखता रहा। सहस्रों बहुमूल्य प्राचीन पुस्तकों तथा कागजातों और बहुत कष्ट तथा परिश्रमसे प्राप्त कला-सम्बन्धी कृतियोंको एक-एक करके विनष्ट होते देखकर वह दैवके प्रति अत्यधिक क्रुद्ध होकर, दांत पीसकर, जी मसोसकर रह गया। युगोंसे सीजरोंके वीरत्वकी कहानीको सुरक्षित रखनेवाली एकसे एक आलीशान इमारतें उसकी आंखोंके सामने विध्वस्त हो रही थीं; चन्द्रमाका बहुप्राचीन मन्दिर, हर्क्यूलीजका मन्दिर, रोम-नगरके प्रतिष्ठाता रोमुलस द्वारा निर्मित जुपिटरका मन्दिर, वेस्टाका इतिहास-प्रसिद्ध देव-मन्दिर, न्यूमा-

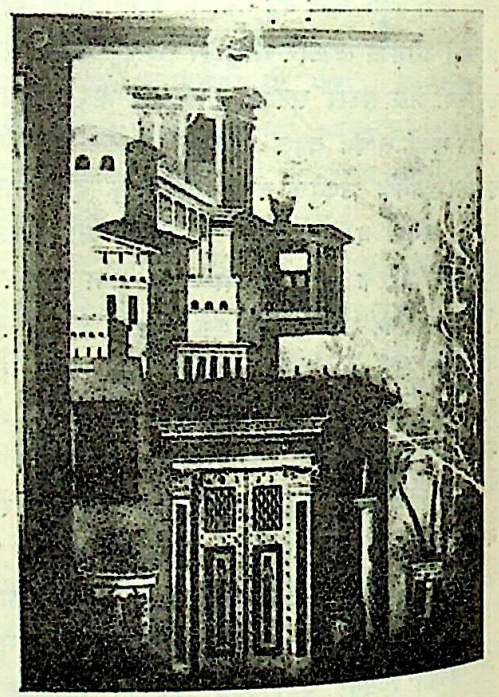

रोमके ऐतिहासिक अग्निकाण्डके समयकी इमारतोंका एक नमूना (नीरोके समयका चित्र)

का ऐतिहासिक राज-प्रासाद आदि सभी विख्यात इमारतें, जो रोम-नगरके गौरवकी सामग्री थीं, खाकमें मिल गयीं।

केवल फोरम तथा कैपिटोल नामके दो स्थान सुरक्षित रहे। कारण यह था कि इन दो स्थानोंमें जो मकान बने थे वे सब पत्थर द्वारा निर्मित हुए थे; इसके अतिरिक्त इन दोनों स्थानोंकी चारों ओर दीर्घविस्तृत खुला हुआ मैदान था और वे दीवारोंसे घिरे हुए थे।

पूर्वकी ओर जब आग बढ़ने लगी तो नीरोने उस तरफके मकानोंको पहले ही गिरा देनेकी आज्ञा दे दी ताकि

आग कुछ भी खुराक न मिलनेसे स्वयं बुझ जाय। यह उपाय कार्य-रूपमें परिणत होनेपर भी आग नहीं बुझी और 'फोरम' के उत्तरकी ओर सब आलीशान मकानात और बाग-बगीचे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। २८ जुलाई तक आगका वेग बराबर उसी उग्र और भयावह रूपमें जारी रहा। जब उसकी क्षुधा शान्त हुई तो पता लगानेपर मालूम हुआ कि तब तक सहस्रों मनुष्य काल-कवलित हो चुके थे और विशाल सम्पत्ति तथा असंख्य अमूल्य वस्तुयें स्वाहा हो चुकी थीं। वह विराट् नगर, जो कुछ ही दिन पहले उन्मत्त विलास-वैभवका अपूर्व शोभागार था, राखके ढेरमें परिणत हो गया था।

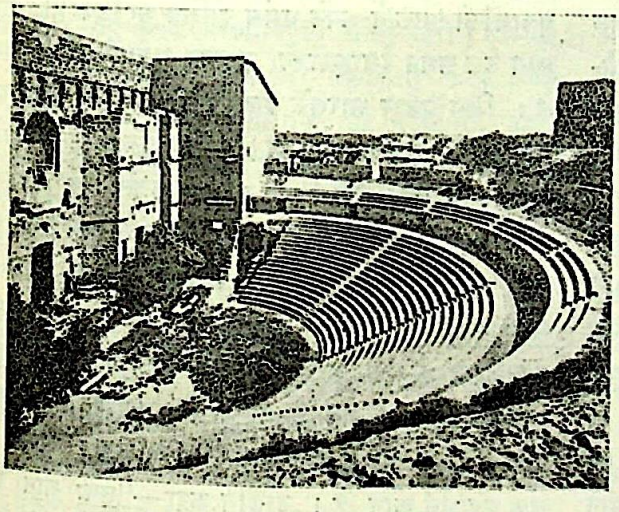

एक रोमन थियेटर

अग्नि-पीड़ितोंकी सहायताके लिए नीरो अग्नि-लीलाके समय तथा उसके बाद जिन उपायोंको काममें लाया, उसके सम-सामयिक लोगोंने उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। उसने कैम्पस मार्तियस नामक स्थानमें शरणागतोंके निवासका प्रबन्ध कर दिया। उक्त स्थानमें पैन्थियन, ऐग्रिप्पाका स्नानागार आदि ऐसे बड़े-बड़े भवन थे जहां हजारों आदमियोंके रहनेका प्रबन्ध बहुत अच्छी तरह हो सकता था। इसके अतिरिक्त उसने अपने बगीचोंके इर्द-गिर्द अस्थायी निवासोंका भी निर्माण कर दिया और साथ ही उनके खाने-पीनेका भी पूरा-पूरा इन्तजाम कर दिया। ज्योंही आग शान्त हो गयी, उसने स्थान-स्थानमें पहरेदारोंको नियुक्त कर दिया कि वे लोगोंकी बची-खुची सम्पत्तिपर कड़ा पहरा रखें। अपने पाकेट-खर्चसे उसने मृत व्यक्तियोंकी लाशोंको ढुंढवाया। गृह-हीनोंको खिलाने-पिलानेके लिए उसने ओस्टिया तथा अन्यान्य शहरोंसे जिन्स मंगवानेका प्रबन्ध कर दिया। अनाजका दाम उसने इतना सस्ता कर दिया जिससे उन लोगोंको सुविधा प्राप्त हो सके जो मुफलिसीकी हालतमें भी स्टेटके बिना मूल्य अन्नदानकी आवश्यकता महसूस नहीं करते थे। उसने जी-जानसे पीड़ितोंके कष्ट-निवारणके लिए अक्लान्त परिश्रम किया और आतङ्कित लोगोंको यथासाध्य सान्त्वना दी। वह स्वयं स्थान-स्थानमें जाकर अपनी आंखोंसे इस बातका पता लगाता था कि अग्नि-पीड़ितोंकी सहायताका कार्य ठीक तरहसे चल रहा है या नहीं। यद्यपि नीरोको इस बातकी गुप्त सूचना मिल चुकी थी कि उसके कुछ विरोधी पीछे-पीछे षड्यन्त्रमें लगे हैं और जनतामें यह भ्रम फैलाकर कि नीरोने ही आग लगायी है, उसकी हत्याके लिए लोगोंको भड़का रहे हैं, तथापि वह अपने कर्तव्योचित सेवा-कार्यमें अविचलित रूपसे लगा रहा। वास्तवमें वह अपनी प्यारी रोम नगरी और वहांके अधिवासियोंको प्यार करता था, यद्यपि अक्सर अपने अनजानमें वह उनपर अत्याचार भी कर बैठता था। उसकी अनोखी प्रकृतिके परस्पर-विरोधी भावोंको समझना बहुत कठिन था।

एक दिन वह रातके समय जब टाइबर नदीके किनारे अपने प्राइवेट थियेटरकी छतपर खड़े होकर अपने प्रिय नगरकी विनाश-लीलाका दृश्य देख रहा था तो उसने अपने हृदयमें ऐसी तीक्ष्ण वेदनाका अनुभव किया कि उससे रहा नहीं गया। सङ्गीत-वाद्य, कला और कविताके प्रति उसका विशेष झुकाव था, यह बात पहले कही जा चुकी है। सहसा उसके भावुक मस्तिष्कमें यह सनक सवार हुई कि जिस प्रकार शवके साथ मृत्युका करुण वाद्य बजता है उसी तरह रोमके सर्वनाशके उपलक्षमें अवश्य एक इसी प्रकारका मरण-सङ्गीत बजना चाहिए। कलाके सम्बन्धमें अत्यन्त अनुभूति-प्रवण (sensitive) होनेके कारण ही इस खब्तने उसे धर दबाया। उसने उच्च स्वरमें गाना शुरू कर दिया। जो शरणागत व्यक्ति उसके बागोंमें एकत्रित हुए थे उनके कानोंमें यह आवाज गयी। उन्होंने सर्वत्र यह भ्रमात्मक समाचार फैला दिया कि सम्राट्ने अग्निके प्रज्वलित दृश्यसे मुग्ध होकर

अपने थियेटरमें हर्षका सङ्गीत गाना शुरू कर दिया था। इस बातपर जनताने विश्वास कर लिया, और चारों ओरसे यह प्रश्न उत्थित होने लगा कि नीरोने इस प्रकारके दृश्यका आनन्द लेनेके उद्देश्यसे स्वयं आग लगायी है या नहीं। पुलिसके सिपाहियों, चोरों और डाकुओंने आगके समय जो लूट-खसोट मचायी थी और बहुत स्थानोंमें पुलिसवालोंने स्वयं आग लगायी थी, इन सब बातोंका ख्याल करके जनताको धीरे-धीरे इस बातपर विश्वास होने लगा कि हो-न-हो, नीरोने ही आग लगायी है। किसीने कहा कि नीरोने इसलिए रोमको जला दिया कि उसके स्थानमें बहु-विस्तृत परिमापमें एक दूसरा आलीशान शहर निर्मित किया जाये, किसीने कहा कि वह ग्रीक लोगोंकी तरह कलाको केवल कलाके लिए पसन्द करता था, इसलिए एक बृहत् अग्नि-काण्डके प्रज्वलित प्रकाशसे पुलकित होनेके उद्देश्यसे ही उसने ऐसा किया है। चारों तरफसे लोग उसे गालियां देने लगे, शाप उगलने लगे। टैसिटसका कहना है कि लोगोंके मनमें यह भ्रम ऐसी दृढ़तासे जम गया कि नीरोने उनकी सहायता-के लिए वीरता तथा आत्मत्यागके जो-जो काम कर दिखाये थे उन्हें सब भूल गये। किसीने कहा कि जब नीरोको किसी ग्रीक कविकी यह उक्ति सुनायी गयी थी कि "मेरी मृत्युके बाद सारा संसार आगसे जलकर भस्मीभूत हो जाये," तो नीरोने इसपर कहा था—"नहीं, मैं जीवितावस्थामें ही यह दृश्य देखना चाहता हूं!" किसीने कुछ कहा और किसीने कुछ। गरज यह कि नीरोके विरुद्ध एक विषाक्त वायुमण्डल तैयार हो गया।

यह लोकोक्ति इस समय तक बहु-प्रचलित है कि "जब रोम जल रहा था तो नीरो सारङ्गी बजा रहा था।" इसका अर्थ यही है कि नीरो स्वयं नगरमें आग लगाकर, अग्निकाण्ड-के दृश्यसे मोहित होकर आनन्दके राग अलाप रहा था। कुछ प्राचीन इतिहासकारोंने भी यही मत प्रकट किया है; पर टैसिटसने, जो रोमन युगके इतिहासज्ञोंमें सबसे अधिक विश्वसनीय माना जाता था, लिखा है कि इस बातका कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि नीरोने स्वयं आग लगायी थी। उसकी रायमें नीरो कैसा ही निष्ठुर, अत्याचारी और सनकी प्रकृतिका आदमी क्यों न रहा हो, अपने अक्लान्त परिश्रमसे संगृहीत कलाकी अपूर्व, अमूल्य सामग्रीको विनष्ट करनेकी इच्छाका उसके मनमें उत्पन्न होना सम्भव नहीं समझा जा सकता, क्योंकि वह वास्तवमें कलाप्राण था।

नीरोने जब देखा कि उसके विरुद्ध जनतामें इस प्रकार-की भ्रमात्मक बातोंका प्रचार किया गया है तो वह अत्यन्त दुःखित और सन्त्रस्त हो उठा। उसने इस सम्बन्धमें ठीक-ठीक बातें मालूम करने और इन अभियोगोंकी उत्पत्तिके कारणोंकी जांचके लिए अपने विश्वासी चरोंको नियुक्त किया। जांच करनेपर उसे यह सूचित किया गया कि इस झूठी अफवाहोंके प्रचारमें ईसाइयोंका बड़ा हाथ है। उस समय ईसाई धर्म प्रारम्भिक अवस्थामें होनेपर सेण्ट पालके नेतृत्वमें दिन-दिन उन्नति कर रहा था। बहुत-से रोमन गुलामोंको 'पाल'ने अपने धर्ममें दीक्षित कर लिया था। रोमन लोग उस समय ईसाइयोंको अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। जिस प्रकार भारतके पादड़ी अधिक करके केवल हरि-जन-श्रेणीके व्यक्तियोंको ही ईसाई बनानेमें समर्थ होते हैं उसी प्रकार सेण्ट पाल रोममें आकर केवल कुछ अत्याचार-पीड़ित गुलामोंको ही अपने धर्ममें दीक्षित करनेमें समर्थ हुआ था। रोमका राजकीय सम्प्रदाय तथा शिक्षित समाज इन नये धर्मके मतवादको साम्यवादी तथा अराजकतामूलक जानकर उससे घृणा करते थे। उस समय रोममें ईसाइयोंका आगमन एक ऐसी नयी घटना थी कि नीरोके चरोंको इनकी बात भी ठीक तरहसे मालूम नहीं थी कि उनके धर्मका प्रव-र्तक यथार्थमें कौन है। उन्होंने कहा—"सुना जाता है कि इस नये मतका प्रवर्तक क्रिष्टस नामका कोई व्यक्ति है जो तीस वर्ष पहले जूडियामें शूलीपर चढ़ाया गया था, और जिसने अपने शिष्योंसे मरनेके पहले कहा था कि मैं संसारके स्त्री-पुरुषोंका अन्तिम विचार करनेके लिए फिर दिव्य रूपमें प्रकट हूंगा। उसके अनुयायी बड़ी उत्सुकतासे उसके आनेकी बाट देख रहे हैं और उसके शीघ्र आगमनके उद्देश्यसे दो रूपसे, नाना कर्मकाण्डोंमें लगे हैं।"

रोमके ईसाइयोंका नेता पाल यद्यपि एक यहूदी था तथापि कुछ वर्षोंसे रोममें बस जानेके कारण वह वहांके नागरिक माना जाने लगा था। रोम नगरमें बसनेके कारण उसपर यह इलजाम लगाया गया था कि वह रोमन प्रान्तोंमें बगावत फैला रहा है। इस अभियोगके विरुद्ध उसने नीरोसे अपील की। सन् ६१ में वह नीरोके पास लाया गया

नीरोने उसे छोड़ दिया, पर वह फिर उसी अभियोगमें गिरफ्तार कर लिया गया। इसके बाद वह आगाही देकर छोड़ दिया गया, तथापि उसे पूर्ण मुक्ति नहीं मिली। जिस मकानमें वह भाड़ेपर रहता था वहांपर पहरा बैठा दिया गया। पर धर्म-प्रचारका निषेध नहीं किया गया।

नीरोकी जांचके फलस्वरूप उसे यह समाचार मिला कि रोममें अग्निकाण्ड देखकर ये 'मानव-विद्वेषी' ईसाई लोग अत्यन्त हर्षित हुए हैं और इस बातके प्रचारमें लगे हैं कि संसारका विनाश निकट है, 'प्रभु' ईसाके पुनरागमनका समय आ गया है, रोम नगर प्राचीन बेबिलनकी तरह ईसा द्वारा ध्वंस किया जा रहा है और शीघ्र ही 'प्रभु' अवतरित होकर नीरो तथा उसके आदमियोंको विनष्ट करेंगे। नीरोको जब ईसाइयोंके आनन्दका समाचार मिला तो उसके मनमें यह धारणा निश्चित रूपसे जम गयी कि हो-न-हो, उन्हीं लोगोंने ईसा-विद्रोही जनतामें धार्मिक आतङ्क फैलानेके लिए आग लगायी है। उसके मनमें क्रोध और प्रतिहिंसाकी अग्नि धधक उठी।

टैसिटसका कहना है कि "ये लोग क्रिश्चियन कहे जाते थे और वास्तवमें अपने धर्म-प्रवर्तक क्रिस्टसके पुनरागमन-पर विश्वास रखते थे। इस अन्धविश्वासके फलस्वरूप वे रोमका अग्निकाण्ड देखकर वास्तवमें आनन्दित हुए थे।" टैसिटसकी बातोंसे यह भी पता चलता है कि जिस प्रकार वर्तमान युगमें पैरिस एक ऐसा शहर है जहां संसार-भरके क्रान्तिकारी बेरोक-टोक अपने षड्यन्त्र-चक्रमें लगे रहते हैं और वहांकी सरकार यथासम्भव इस सम्बन्धमें सहन-शीलताका परिचय देती है, उसी प्रकार प्राचीन युगमें रोम नगर भी क्रान्तिकारियोंका अड्डा था। वहां एक सुविधा और थी। जो नवीन धर्म अथवा राजनीतिक मतवाद रोममें प्रचारित होता था वह तात्कालिक समस्त सभ्य संसारमें बहुत जल्दी फैल जाता था।

कुछ भी हो, नीरोने सब ईसाइयोंकी कड़ी जांचकी आज्ञा दे दी और साथ ही यह आदेश भी जारी कर दिया कि किसी ईसाईपर तनिक भी सन्देह होनेपर वह तत्काल गिरफ्तार कर लिया जाय। केवल आग लगानेके सन्देहपर नहीं, आग देखकर प्रसन्न होनेका अपराध जो ईसाई स्वीकार करे वह भी पकड़ लिया जाय। इस प्रकार सैकड़ों ईसाई गिरफ्तार किये गये। सेण्ट पाल भी इनके साथ ही पकड़ा गया। टैसिटसका कहना है उन सबको अत्यन्त निर्मम यन्त्रणा देकर मार डाला गया अर्थात् वे सबके सब उत्तेजित जनता द्वारा 'लिञ्च' किये गये! किसी-किसीपर खूंख्वार कुत्तोंका आक्रमण कराया गया, किसीको शूलीपर चढ़ाया गया, और बहुतोंको जिन्दा आगमें जला दिया गया! इस घटनाके प्रायः तीस वर्ष बाद सेण्ट क्लेमेण्टने इस सम्बन्धमें लिखते हुए यह सूचित किया है कि कुल अपराधिनी (ईसाई) स्त्रियोंको जङ्गली सांड़ोंपर चढ़ाकर मौतके अन्धगह्वरमें ढकेल दिया गया।

बहुतोंको रातके समय नीरोके बागमें होलियोंकी तरह अग्नि-उत्सव मनाकर जलाया गया ताकि जनता दूरसे उन 'मानव-विद्वेषी' ईसाइयोंकी प्रज्वलित चिताओंका दृश्य देख-कर आनन्दित हो! यहां तक कहा जाता है कि बहुत-से अप-राधियोंको आम सड़कपर लिटाकर उनके ऊपरसे होकर रथ-चक्र दौड़ाये गये; यद्यपि कुछ ऐतिहासिकोंने इस अन्तिम निष्ठुर कार्यकी सत्यतापर सन्देह प्रकट किया है। पर इसमें सन्देह नहीं कि नीरोने प्रतिहिंसाके भावसे उन्मत्त होकर रोमन ईसाइयोंको घोर यन्त्रणायें देकर मारा था। यह पहले ही कहा जा चुका है कि रोमके अधिकांश ईसाई गुलाम श्रेणीके थे और गुलामोंकी गुस्ताखी सहन करना उस युगके किसी भी सम्राट्के लिए असम्भव था।

धीरे-धीरे नीरोकी प्रतिहिंसाग्नि ठण्डी हो गयी और बचे हुए ईसाइयोंपर अत्याचार भी बहुत घट गये। नीरो अद्भुत प्रकृतिका आदमी था। क्रोधके समय एकदम अन्धा हो जाता था और क्रोध शान्त होनेपर एकदम उदार बन जाता था। इस बातका प्रमाण सेण्ट पीटरके पत्रोंसे (जो बाइबिलमें छपे हैं) मिलता है। सेण्ट पाल मार डाला गया था, पर पीटर बच गया था और अपने अत्याचार-पीड़ित अनुयायियोंको रोमन साम्राज्य-भरमें सान्त्वनाके सन्देशे भिजवा रहा था। रोममें बैठे-बैठे वह गुप्त रूपसे अपने धार्मिक सम्प्रदायको सुसङ्गठित करनेमें लगा था और धार्मिक सन्देशे लिख-लिखकर अपने दूतों द्वारा सर्वत्र प्रचार-कार्य करवा रहा था। अपने एक सन्देशेमें उसने लिखा था कि "ईसाई भाइयोंको वर्तमान सङ्कटावस्थामें भी धैर्य रखना चाहिए, और किसी प्रकारकी क्रान्तिके उद्देश्यसे अभी उत्तेजित न

होकर ईश्वरका भय और सम्राट् (नीरो) का आदर करना चाहिए।" इस बातसे पता चलता है कि वह नीरोकी परवर्ती उदारतासे कुछ प्रभावित हो गया था। इसके अतिरिक्त उसने तात्कालिक (ईसाई) दासोंको अपने गैर-ईसाई मालिकोंके विरुद्ध बगावतमें खड़े न होनेका भी उपदेश दिया था। या तो वह डरके कारण 'एक्स्ट्रीमिस्ट' से 'माडरेट' बन गया था, या किसी दूसरी कूटनीतिसे काम ले रहा था। दूसरी ही बात अधिक सत्य मालूम होती है, क्योंकि इस सन्देशके लिखनेके कुछ ही दिन बाद वह गिरफ्तार करके कत्ल कर दिया गया था।

———

मध्ययुगके यूरोपमें प्लेगकी सर्वसंहारी ताण्डवलीला

श्री गोपीकृष्ण शर्मा

संसारके इतिहासमें महामारियोंसे समय-समयपर जो सामूहिक विनाश साधित हुआ है, देशव्यापी (और कभी-कभी विश्वव्यापी) ध्वंसकी जो विकराल ताण्डव-लीलायें मची हैं, उनकी तुलना बड़ेसे बड़े युद्धोंके लोमहर्षक काण्डोंसे भी नहीं की जा सकती। महामारियोंमें भी सबसे विकट संहारक स्वरूप प्लेगका रहा है। 'प्लेग' शब्द पहले सब प्रकारकी महामारियोंके लिए व्यवहृत होता था; पर जब बादमें धीरे-धीरे एक विशेष प्रकारकी महामारीने (जिसका खास लक्षण यह था कि रोगीके किसी विशेष स्थानमें एक विशेष प्रकारकी विषयुक्त बाघी फूट निकलती थी) उत्कट रूप धारण कर लिया और उसका आविर्भाव बार-बार दिखायी देने लगा तो 'प्लेग' शब्द केवल उसीके लिए व्यवहृत होने लगा। भारतमें जब यह मारात्मक रोग प्रकट होकर अपना प्रलयङ्कर कोप दिखाने लगा तो यहां भी 'महामारी' शब्द विशेषतः इसी अर्थमें व्यवहृत होने लगा।

इस सर्वनाशी रोगकी उत्पत्ति पहले-पहल मिस्र तथा सीरियामें हुई बतलायी जाती है। यूरोपमें इसका आविर्भाव छठी शताब्दीसे पहले नहीं हुआ था। षष्ठ शताब्दीमें इसने यूरोपमें प्रवेश करते ही सारे रोमन संसारको विध्वस्त कर डाला। उक्त युगमें प्रायः पचास वर्ष तक इसका ध्वंस-चक्र बीच-बीचमें चलता रहा। इसके बाद कुछ शताब्दियों तक यह अपेक्षाकृत शान्त रहा। चौदहवीं शताब्दीमें यह एकाएक ऐसा महाभैरव रूप धारण करके प्रकट हुआ कि सर्वत्र विनाशकी विभीषिका रुद्र तालमें, हाहारवमें नृत्य करने लगी। प्रायः आठ वर्ष तक यूरोपमें प्लेगने (जो उस समय काल मृत्यु [Black Death] के नामसे प्रसिद्ध था) महानाशका ऐसा विकराल दृश्य उपस्थित कर दिया कि प्रायः ४,२८,३६,४८६ आदमी उसके शिकार बन गये! अर्थात् यूरोपकी उस समयकी आबादीके हिसाबसे प्रायः उसकी एक-तिहाई जन-संख्या इस थोड़े समयमें कालके कराल गालमें विलीन हो गयी! यह संख्या उन आंकड़ोंके हिसाबसे दी गयी है जो षष्ठ पोप क्लेमेण्टकी आज्ञासे लिये गये थे। उस युगमें पूरे-पूरे आंकड़े लेनेकी यथेष्ट सुविधायें न होनेसे सम्भवतः कई लाख मृतकोंकी संख्या इसमें न जोड़ी जा सकी।

इस भयङ्कर रूपसे और इतनी शीघ्रतासे शहरके शहर और गांवके गावोंको उजाड़ कर देनेवाली यह बीमारी कौन-सी बला है, इसका अन्दाज कुछ भी न लग सकनेके कारण तात्कालिक जनताको यह विश्वास हो गया था कि मृत्यु-देवता किसी अज्ञात कारणसे मानव-समाजपर क्रुद्ध हो जानेके सबब उसपर इस आश्चर्यमय रीतिसे आक्रमण कर रहा है। सचमुच वास्तवमें मृत्युको मूर्तिमान अवस्थामें एक काले घोड़ेपर सवार होकर काले ही रूपमें आविर्भूत हुआ समझने लगे थे।

कहा जाता है कि चौदहवीं शताब्दीकी इस 'काल मृत्यु' की उत्पत्ति पहले-पहल १३३३ में चीनमें हुई। चीनमें इसके आविर्भावके पहले वहां सर्वत्र एक ऐसा अन्धकारमय कुहासा छा गया था कि जिससे एक अत्यन्त विषैली और उग्र गन्ध निकलती हुई मालूम होती थी। वहां लाखों आदमी कुछ ही समयके अन्दर विनष्ट हो गये। उसके बाद वह घातक रोग भारत, फारस और रूस होता हुआ व्यापारियों द्वारा यूरोपमें प्रविष्ट हुआ। यूरोपमें पहले-पहल इसने दक्षिण इटलीपर आक्रमण किया। पियात्साके भाइकोंने

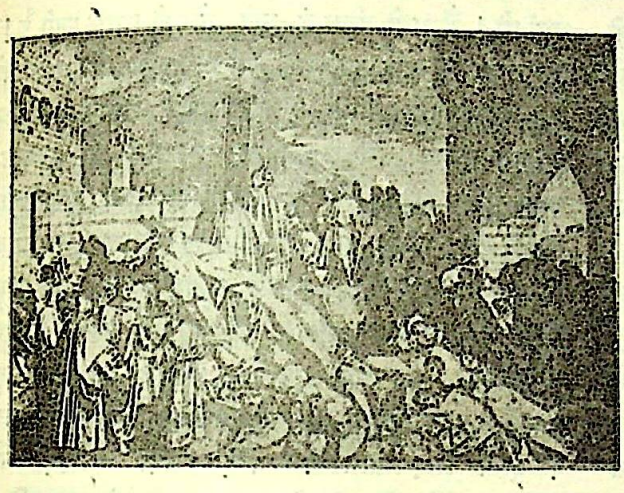

फ्लोरेन्सके प्लेगका रोमाञ्चकर दृश्य

(Michael del Piazza) ने, जो प्रत्यक्षदर्शी था, अत्यन्त विस्तारपूर्वक उसकी घोर आतङ्कोत्पादक विभीषिकाका वर्णन किया है। वह लिखता है:—

"१३४७ के अक्तोबर महीनेके प्रारम्भमें बारह आदमी भगवानकी प्रतिहिंसाके फलस्वरूप एक मारात्मक रोगसे आक्रान्त होकर उससे त्राण पानेके लिए भागकर मसीना (सिसलीके अन्तर्गत) चले आये। वे अपने साथ ऐसे उत्कट घातक विषका बीज लेते आये थे कि जो कोई व्यक्ति उनके पास केवल बात करनेके लिए भी जाता था वह तत्काल आशु-नाशक रोगसे पीड़ित हो जाता। इस संक्रामक रोगकी आग इतनी शीघ्रतासे सर्वत्र फैलने लगी कि देखकर महा आश्चर्य होता था। इससे पीड़ित व्यक्तिके सारे शरीरके भीतर एक प्रकार-की अत्यन्त तीक्ष्ण वेदना अनुभूत होती थी और इसके बाद जांघमें या बांहके ऊपरी हिस्सेमें एक बाघी उत्पन्न होती थी, उस बाघीका आकार एक मसूरके दानेके बराबर होनेपर भी वह बड़ी जलन पैदा करती थी और सारे शरीरके भीतरी भागको विषैला बना देती थी। असह्य यन्त्रणासे उन्मादकी तरह छटपटाता हुआ और निरन्तर खूनकी उल्टियां करता हुआ रोगी तीसरे दिन प्राण छोड़ देता था। रोगीके स्पर्श-मात्रसे ही यह रोग छूनेवालेपर तत्काल आक्रमण कर देता था। शीघ्र ही इस महामारीने ऐसा भीषण रूप धारण कर लिया कि रोगियोंकी परिचर्या होना तो दूर, लोग एक-दूसरे-को देखकर पागलोंकी तरह इधर-उधर भागने लगे। पतिको बीमार होते देखकर पत्नी उससे कोसों दूर भागने लगी, भाई भाईको छोड़कर भागने लगा, बल्कि यहां तक नौबत आ गयी कि मातायें पुत्रोंको त्यागकर अपने प्राणोंको मायासे पलायन करने लगीं। किसी घरमें बीमारी जब प्रवेश कर लेती थी तो घरके समस्त प्राणियोंको—कुत्तों, बिल्लियों और चूहों समेत—मृत्युमुखमें डाले बिना न मानती थी। पुरोहितोंने 'स्वीकारोक्ति' लेनेके लिए मुमूर्षुओंके घर जाना छोड़ दिया, हकीम मरीजोंको देखनेसे कतई इनकार करने लगे। लाशोंको उठानेके लिए कोई न रहा और वे घरोंमें सड़ने लगीं। सेठोंके यहां सोना, जवाहरात आदि मूल्यवान वस्तुयें एकदम अरक्षितावस्थामें पड़ी थीं और कोई भी व्यक्ति वहां प्रवेश करके बिना किसी रोक-टोकके ले जा सकता था, पर इसके लिए साहस किसीको भी नहीं होता था। प्रारम्भावस्थामें हीरोंके मूल्यपर कुली-मजूरोंको भाड़ा देकर राजा-रईस लोग अपने यहांकी लाशोंको उठवाते थे, पर बादको इतनी बड़ी रकम दिये जानेपर भी कोई कुली न मिलता था। इस प्रकारका सामूहिक सर्वनाश देखकर बचे-खुचे मैसीनियन लोगोंने शहर छोड़कर भाग निकलनेका निश्चय किया। उनमेंसे अधिक-संख्यक लोग भागकर कातानिया नामक नगरमें चले गये, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वहांकी प्रसिद्ध देवी 'आगाटा' उनकी रक्षा करेगी। पर वहां प्लेगने पहलेसे भी अधिक भीषण रूप धारण कर लिया। फिर भगदड़ मची, पर भागने-वाले रास्ते हीमें बीमार पड़कर वहीं मरकर जहां-तहां सड़ने लगे। शासकवर्गने सामर्थ्यानुसार लाशोंको शहरके बाहर बड़ी-बड़ी खाइयां खुदवाकर गाड़ दिया, पर जब संख्या साध्या-तीत हो गयी तो वे निश्चेष्ट हो गये। सर्वत्र उत्कट सड़ायन फैलनेके कारण वायुमण्डल एकदम विषाक्त हो उठा। मसीना-का एक भी आदमी जिस शहरमें जाता था वहीं महामारी विकराल अवस्थामें फैल जाती थी। कोई आदमी यह कहता कि 'मैं मसीनासे आया हूं' तो लोग दूर हीसे उसे देखकर इस तरह भागते थे, मानो कोई कराल भूत उनका पीछा कर रहा हो। साइरेक्यूज, सियाचा, त्रापानी, गिरगण्टी आदि नगर इस प्लेगसे एकदम तबाह हो गये, खासकर त्रापानी शहर तो ऐसे घोर श्मशानमें परिणत हो गया कि एक चिड़िया भी वहां शायद ही जीती बची हो! बीमारी ज्यों-ज्यों

अधिकाधिक फैलती गयी त्यों-त्यों बाघीका आकार भी बृहत्से बृहत्तर होता दिखायी देने लगा। यहां तक कि उसने एक बड़े फोड़ेका रूप धारण कर लिया। यह फोड़ा कभी जननेन्द्रियमें होता था, कभी जांघपर और कभी बांहपर। इस विपाक्त व्रणका आकार बढ़कर बतखके अण्डेके बराबर दिखायी देने लगा था!"

छ महीनेके अन्दर दक्षिण इटलीके ६० फीसदीसे भी अधिक मनुष्य मृत्यु-क्रोड़में विश्राम कर चुके थे।

फ्लोरेन्स उस समय इटलीके ऐश्वर्य-सम्पन्न नगरोंमें अन्यतम माना जाता था। गियोवानी बोचाचियो (Giovani Boccaccio) नामक लेखकने वहांके विनाशके लोमहर्षक दृश्यका आंखों-देखा वर्णन किया है। इस लेखकका पिता इसी महामारीका शिकार हुआ था। उसके कथनानुसार १३४८ में फ्लोरेन्समें प्लेगसे जितने आदमी मरे उतने इटलीके अन्य किसी शहरमें नहीं मरे थे। वहां बहुत-से बीमारोंको सेवके आकारके बराबर फोड़े होते दिखायी दिये थे! रोगीके सामने खड़े होते ही यह प्राणान्तक रोग धर दबाता था। प्रतिदिन हजारोंकी तायदादमें मौतें होती थीं। घर, बाहर, रास्तेमें, मैदानमें, जहां-तहां लाशें पड़ी-पड़ी सड़ रही थीं, जिनकी उत्कट गन्धसे त्राण पानेके लिए लोग बढ़ियासे बढ़िया सुगन्धिवाले इत्र वस्त्र द्वारा नाकमें लगाने पर भी असफल होते थे। वैद्य लोग इस अद्भुत रोगका निदान मालूम करनेमें असमर्थ थे और नीम-हकीमोंकी कुछ दिनों तक चल पड़ी थी; पर बादमें उनपर भी रोगने घातक आक्रमण शुरू कर दिया और कुछ ही दिनोंके भीतर वे सब छूमन्तर हो गये! लोगोंकी यह हालत थी कि एक ही परिवारके आदमी एक-दूसरेको छोड़कर भागनेकी कोशिश करते थे, पर बहुत-से भागते ही रोग-ग्रस्त होकर दो-तीन दिनके भीतर मर जाते। महामारीने लोगोंको ऐसा स्वार्थपरायण और निष्ठुर-हृदय बना डाला था कि बच्चोंके सिरमें दर्द होते अथवा हलका बुखार आते ही माता-पिता उन्हें छोड़कर भाग निकलते। बहुत-से अभागे बच्चोंको वेदनासे छटपटाकर कराहते हुए यह कहते सुना जाता—"मां, बाबूजी, कहां हो! मैं अभी जीता हूं, मुझे जोरकी प्यास लगी है!" पर सुननेवाला कोई नहीं था, मां-बाप पहले ही भाग चुके थे! महानाशके इस नग्न नृत्यकी उन्मत्त लीलाके बीच किस उपायसे प्राणोंको सुरक्षित रखा जा सकता है, इस सम्बन्धमें फ्लोरेन्सके विद्वान् वैद्यों, मनीषियों तथा दार्शनिकोंमें मतभेद पाया जाता था। कुछ विद्वानोंकी यह धारणा थी कि इस अवस्थामें सब प्रकारकी ज्यादतियोंसे अलग रहकर नियमपूर्वक 'युक्ताहार-विहार' की नीतिसे रहना चाहिए, न किसीसे मेल-जोल रखना चाहिए न बोलचाल, मुमूर्षोंकी हृदय-विदारक आर्तध्वनि जिस तरहसे न सुनायी दे इसके लिए कानोंको बन्द रखना चाहिए, और सङ्गीत आदिसे चित्तको थोड़ा-बहुत बहला लेना चाहिए।

घरके भीतर प्लेगका भैरव रूप

सारा घर श्मशान बन गया है। कोई पालतू जानवर तक नहीं बचा।

इसके विपरीत विद्वानोंके दूसरे दलकी यह राय थी कि इस प्रकारकी सर्व-संहारी महामारीसे शरीरको सुरक्षित रखनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि खूब शराब पीता जाय, जो जी चाहे खाता जाय, भोग-विलासमें अन्ध होकर लिप्त रहे, प्रत्येक कारुणिक दृश्यको मजाकमें उड़ा दे। इस द्वितीय दलके अनुयायियोंकी ऐसी वृद्धि हुई कि मृत्युकी कराल आंखोंके सामने सर्वत्र उन्मत्त कामाचारके दृश्य नजर आने लगे। स्त्री-पुरुष निर्विचार भावसे शराब और व्यभिचारमें लिप्त होने लगे, बहनको भाईकी लाज न रही, माताको पुत्रका लिहाज न रहा, सर्वत्र विलास-लालसाका उन्माद दिखायी

देता था। पर मृत्युने इन कामुकोंको नहीं छोड़ा। राजा-रईसोंके बड़े-बड़े महल, बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें कुछ ही समयके अन्दर भयङ्कर श्मशानालयोंमें परिणत होकर केवल भांय-भांय शब्द कर रही थीं और सड़ी हुई लाशोंकी विषाक्त वायुसे नरककी याद दिला रही थीं। सारे शहरने जो विभीषिकामय रूप धारण कर लिया था वह वर्णनातीत है। केवल मनुष्य ही नहीं, जानवरोंको भी प्लेगने जीता न छोड़ा। कहा जाता है कि भेड़िये भी जानवरोंको चरते देखकर बीमारीकी छूतके भयसे भाग जाते थे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्यके स्वार्थ-भावका वास्तविक परिचय

विजयी मृत्युका गर्वोन्मत्त प्रस्थान

(अठारहवीं शताब्दीका एक यूरोपियन चित्र)

उस कराल व्याधिके अवसरपर स्पष्टतया मिलता था; 'का तव कान्ता कस्ते पुत्रः' का ठीक-ठीक अर्थ ऐसे ही अवसरपर अनुभूत होता है। सगे-सम्बन्धी एक-दूसरेको घोर सङ्कटावस्थामें त्याग देते थे, पर कुत्ता एक ऐसा प्राणी था जो अन्त तक अपने मालिकका साथ देता था, यद्यपि वह अन्तःसंस्कारवश जानता था कि उसका जीवन वहां सुरक्षित नहीं है।

रोगकी अवधि और उसकी यन्त्रणाके सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न वक्तव्य पाये जाते हैं। कुछ लेखकोंने लिखा है कि रोगी तीन दिन तक पीड़ित रहनेके बाद चौथे दिन चल बसता था। कुछ लेखकोंने २४ घण्टे और कुछने १२ घण्टे रोगकी अवधि बतलायी है। यन्त्रणाके सम्बन्धमें चौदहवीं शताब्दीके कुछ लेखकोंका कहना है कि रोगी ऊंघता हुआ बिना किसी दर्दके मृत्युको प्राप्त होता था। जर्मनीके तात्कालिक लेखकोंने बच्चोंके सम्बन्धमें यहां तक कहा कि वे हंसते-खेलते और गाते हुए चल बसते थे। इसके विपरीत बहुत-से स्थानोंमें रोगने ऐसा कालान्तक कठोर रूप धारण कर रखा था कि रोगी असह्य पीड़ासे हाथ-पांव छटपटाकर अपने सिरके बालोंको नोच डालते थे। ट्रान्सिलवानियामें लोग रोग-जनित ज्वालासे ऐसे उन्मत्त हो उठते थे कि गलियों और सड़कोंमें एक-दूसरेपर पागल कुत्तोंकी तरह आक्रमण करते थे और अत्यन्त दयनीय अवस्थामें मृत्यु मुखमें पतित होते थे। फ्रान्समें महामारी-ग्रस्त व्यक्तियोंको छतपर नग्न नृत्य करते देखा जाता था। कुछ रोगी छतपरसे नीचे सड़कोंपर खपरैल बरसाते थे। एक व्यक्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह ऐसा उन्माद-ग्रस्त हो उठा कि बाहर सड़कपर चला आया और अपनेको मसीहा बताकर लोगोंको कयामतके आगमनकी सूचना देता हुआ यह आदेश देने लगा कि सब उसके पैरोंपर आकर गिरें और माफी मांगें।

कहीं-कहीं एक-एक खाईमें बारह-बारह हजारसे अधिक लाशें पड़ी हुई बतायी जाती हैं। १४३७ की एक कब्रका पत्थर जर्मनीके नूरेमबर्ग स्थानमें अभी तक सुरक्षित है। उसपर लिखा हुआ है—"क्या यह बात हृदय-विदारक नहीं है कि मैं और मेरे घरके तेरह आदमी एक ही दिनमें साथ ही परलोक सिधारे?" १५३३ की एक कब्रके पत्थरपर लिखा है—"मैं, हांज तुखमाखेर, अपने पन्द्रह बच्चोंके साथ एक ही दिन मृत्युको प्राप्त हुआ।" १६३७ की एक कब्रके पत्थरपर लिखा है कि—"एक ही रातके भीतर ७७ आदमी प्लेगसे मर गये!"

इटलीमें साठ-साठ, सत्तर-सत्तर प्राणियोंके बहुत-से कुटुम्ब एक ही दिनके भीतर प्लेगसे चौपट हो गये थे। लन्दनमें १६६५ के ऐतिहासिक प्लेगमें प्रतिदिन हजारोंकी संख्यामें मौतें होती थीं। १७२० में मार्सेलमें लाशोंके ढेरने ऐसा भयावह दृश्य खड़ा कर दिया था कि सड़कोंमें चलने-फिरनेकी जगह न रही। वेलडुञ्जो नामक बिशपका कहना है कि उसके

मकानके सामने ही दो सौसे अधिक लाशें पड़ी थीं। तेज धूप पड़नेके कारण उनसे ऐसी उत्कट गन्ध फैल रही थी कि जिसका वर्णन उसने असम्भव बताया है। वह लिखता है—"लोग छूतसे बचनेके लिए बाहर मैदानमें चटाइयोंपर पड़े हैं; उनमेंसे कुछ तो मृत्युके इन्तजारमें बैठे हैं, कुछ सड़ायनकी उग्रता न सह सकनेके कारण अत्यन्त उत्यक्त हो उठे हैं। ये सब कष्ट तो थे ही, तिसपर घोर अकालकी विकरालता अलग अपना प्रकोप दिखा रही है।"

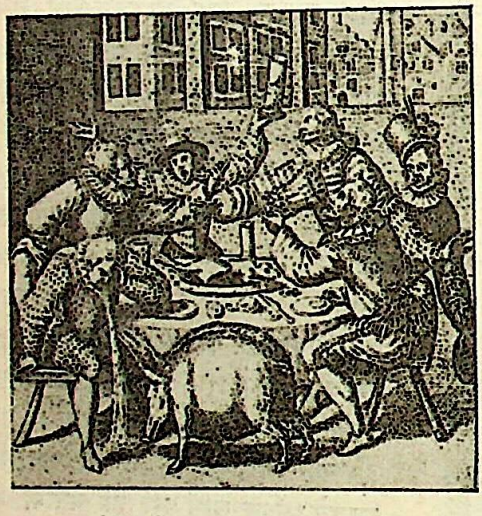

महामारीके समय भोगोन्मत्त रहनेवाली मण्डली
इस चित्रमें दिखाया गया है कि प्लेगकी भीषणताके समय भोग-विलास द्वारा उससे त्राण पानेकी आशा रखनेवाले लोग किस प्रकार मण्डलियां बनाकर उन्मत्ताचारमें लिप्त रहते थे। बांई ओर कुर्सीपर बैठा हुआ व्यक्ति खाते-पीते प्लेगसे आक्रान्त हो गया है और कै करने लगा है।

वियेनामें महामारीकी घातकताका वर्णन करते हुए एक प्रत्यक्षदर्शी लेखकने लिखा है—"छोटे-छोटे बच्चे अपनी मृत माताओंके स्तनोंको मुंहपर लगाये हुए थे; बेचारे क्या जानते थे कि वे स्तन्य-रस नहीं, बल्कि मृत्युका पान कर रहे हैं! बहुत-से अनाथ बच्चे सड़कोंपर बिलख-बिलखकर रो रहे थे, पर उन्हें पकड़कर घर ले जानेवाला, दिलासा देनेवाला, छातीसे लगानेवाला कोई नहीं था। हिम्बेर्गके इम्पीरियल मार्केटके पास एक क्षुधा-कातर अनाथ बच्चा एक बकरीके स्तनको चूसता हुआ पाया गया। 'यह मरा! वह मरा!' के अतिरिक्त किसीके मुंहसे और कोई बात नहीं सुनी जाती थी। बाजारोंमें ढिंढोरा पिटवाया गया था कि जो लोग लाशोंको उठानेके लिए राजी होंगे उन्हें बहुत ज्यादा मजूरी मिलेगी, तिसपर भी कोई राजी नहीं होता था। जेलके कैदियोंसे यह काम लिया जाता था। भेड़िये शहरोंके भीतर दिन-दहाड़े घुसकर घरोंके भीतर बेरोक-टोक चले जाते थे और मुमूर्षु माताओंके क्रोड़से उनके बच्चोंको उठा ले जाते थे; पर लाशोंको वे सूंघते तक न थे। सड़कोंपर कौवों, चीलों और गिद्धोंका साम्राज्य पाया जाता था और मकानोंपर उल्लुओंने अधिकार जमा लिया था।

उक्त युगोंकी महामारियोंके सम्बन्धमें ऐसे वर्णन भी पाये जाते हैं जिनके अनुसार बहुत-से जहाजोंके सभी यात्री और मल्लाह रोग-ग्रस्त होकर सामूहिक रूपसे मृत्युको प्राप्त हो गये और जहाज कर्णधार-रहित अवस्थामें बहते हुए जब किसी तटपर आ लगते तो वहांके निवासियोंके विनाशके कारण बन जाते। एक बतख बेचनेवाली जर्मन लड़कीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि जिस जमीन्दारीमें वह रहती थी वहां उसके अतिरिक्त जब कोई भी आदमी जीवित न रहा, सब प्लेगके शिकार बन गये, तो वह अपनी परलोकगता स्वामिनीके सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनकर और बहुमूल्य जवाहरातोंसे सुसज्जित होकर जमीन्दारके उस आतङ्कोत्पादक, श्मशानतुल्य महलमें अपने एकाकी वैभवको देखकर भौतिक हर्षसे उल्लसित हो उठी! गाटर्स डार्फ नामके एक व्यक्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि जब वह अपने गांवको वापस आया तो उसे एक वृद्ध मिला, जिसने उसका स्वागत करते हुए कहा—"गांव-भरमें मैं ही केवल जीता हूं, और अब तुम आ गये।" नार्वेमें बेर्गेन नामक नगरपर महामारीने एक बार ऐसी उग्रतासे आक्रमण किया था कि आधेसे अधिक व्यक्ति कुछ ही दिनोंके भीतर मर गये, और जो बचे वे भागकर एक-दूसरे स्थानको चले आये और वहां एक नया शहर निर्माण करनेकी तैयारियां करने लगे; पर महामारीने वहां भी उनका पीछा न छोड़ा और एक-एक करके सबको विनष्ट कर दिया—केवल एक लड़की जीती रही। कुछ वर्ष बाद इस लड़कीका पता मिला; वह जङ्गली दशामें पायी गयी—मनुष्यमात्रसे वह भय खाती थी। कुछ वर्ष तक जब

उसे निरन्तर नियमपूर्वक शिक्षा दी गयी तो उसका सब जङ्गलीपन जाता रहा। उसका विवाह हुआ और नये शहरके निर्माणके लिए जितनी जमीन नापी गयी थी वह सब उसके और उसकी औलादके नाम कर दी गयी।

मध्ययुगमें महामारीने यूरोपियन कलाकारोंके मनमें जो आतङ्क उत्पन्न कर दिया, उसके फल-स्वरूप 'मृत्यु-नृत्य' सम्बन्धी चित्रोंको अङ्कित करनेकी प्रथा-सी चल पड़ी। इस सम्बन्धमें बहुत-से चित्र लन्दन, पैरिस आदि नगरोंमें सुरक्षित हैं। इन चित्रोंमें मुख्य भाव यही दिखाया गया है कि मृत्युके लिए धनी-निर्धन सब समान हैं।

एक लेखकने उन सैकड़ों इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी नामावली तारीख-सहित दी है जो मध्ययुगमें महामारीके शिकार बने थे। स्थानाभावसे हम उनके नाम यहांपर देनेमें असमर्थ हैं।

भिन्न-भिन्न शहरोंमें इस सर्वघाती रोगके कारण कितने आदमी मरे, इसके भी आंकड़े मौजूद हैं। १४६७ में मास्कोमें १,२७,००० आदमी मरे थे; नोवोग्रोडमें तथा उसके आस-पास २,३०,६०२; वेनिसमें १४७८ में ३,००,०००; मिलानमें १५७६ में ५१,०००; बर्लिनमें उसी वर्ष सारी आबादीके एक-तिहाई आदमी मरे थे; रोममें १५९१ में ७०,००० मौतें हुईं। टुर्गोमें १६११ में आधी आबादीसे अधिक मनुष्य परलोक सिधारे थे; मिलानमें १६३० में १,४०,०००; वेनिसके 'रिपब्लिक' में ५,००,००० मरे। क्रेमोनामें उसी वर्ष महामारीके कोपसे एक भी आदमी मुश्किलसे बचा होगा। ट्यूरिनकी घनी आबादीमेंसे केवल एक-आध हजार आदमी शेष रहे थे। लारेनमें १६३७ के प्लेगके बाद १ फीसदी आदमी भी शायद ही बचा होगा। नेपल्समें १६३५ में ३,००,००० मनुष्योंका नामोनिशान न रहा; लन्दनमें १६६५ में १,६०,००० आदमी कालके मुखमें पतित हुए थे। चौदहवीं शताब्दीमें सारे फ्रान्सकी तीन-चौथाई आबादी मिट गयी थी, इटलीकी आधी आबादी नष्ट हुई थी। इंगलैण्डका भी यही हाल रहा। साइप्रस तथा आइलैण्डके द्वीप-भरमें एक भी आदमी जीता न रहा, ऐसा कहा जाता है।

१६९६ में जान बैप्टिस्टा स्पिनेल नामके एक व्यक्तिने नेपल्ससे वहांकी महामारीका आंखों-देखा वर्णन अपने एक पत्रमें किया था। उसने लिखा था—"लाशोंका ढेर जमा हो जानेसे ६०,००० लाशें जलायी गयी हैं—कुछ इतवारको और बाकी बुधके दिन। १,७०,००० लाशें खाइयोंमें डाल दी गयी हैं। सारे शहरका वायुमण्डल विषाक्त हो उठा है। जो बचे हैं, उन्हें अकालने इस तरह सता रखा है कि वे टुकड़ोंको तरस रहे हैं। बड़े-बड़े रईस, जिनके आलीशान महल शहरमें प्रेत-भवनकी तरह निस्पन्द पड़े हैं, भोजनकी तलाशमें इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। कुलीन घरानोंकी सुन्दरी युवतियां भिखारियोंकी तरह दर-दर फिर रही हैं! बहुतोंके

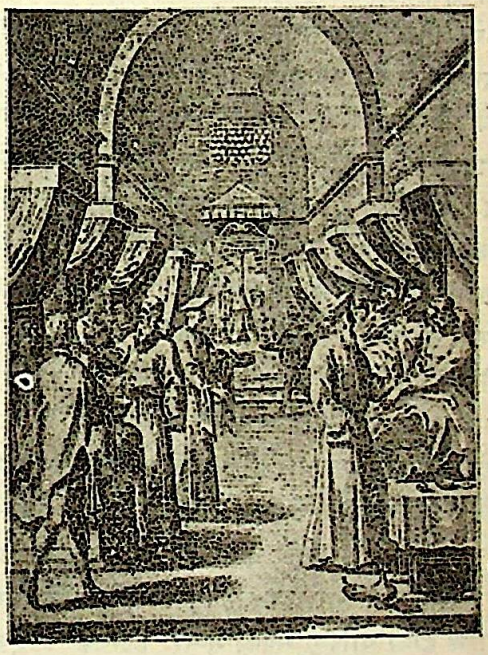

मध्ययुगके यूरोपमें प्लेगके अस्पतालोंका एक नमूना

पास रातको जलानेके लिए तेल नहीं है और वे रातके अंधेरेमें सङ्गीहीन अवस्थामें एकाकी मरनेके भयसे व्याकुल हैं।" यही दशा बहुत-से शहरोंकी थी।

डाक्टरोंको इस सर्वनाशी रोगका कोई कीमिया इलाज नजर नहीं आता था। शालें द विनारियो (Chalin de Vinario) नामके एक विख्यात डाक्टरने स्पष्ट ही स्वीकार किया था कि "प्लेगकी बीमारी हर हालतमें ला-इलाज है।" रोगके संक्रमणके भयसे भी अधिकांश डाक्टर मरीजको देखनेसे इनकार करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय धर्माधिकारियों-

का ऐसा प्रबल प्रताप जनतापर छाया हुआ था कि डाक्टर और हकीम लोग भी उनसे घबराते थे और अलौकिक चमत्कारों द्वारा रोगियोंको चङ्गा करनेका जो विश्वास धर्मगुरुओंने जनताके मनमें आरोपित कर रखा था उसके विरुद्ध चलनेका साहस उन लोगोंको नहीं होता था। यदि कोई हकीम अपने इलाजमें सफल होता था तो पुरोहित लोग कहते थे कि उनकी प्रार्थनासे ऐसा हुआ है, यदि वह असफल होता तो रोगीकी मृत्युका मुख्य कारण उसका इलाज बतलाया जाता। ऐसी हालतमें वास्तविक चिकित्सा उन्नति नहीं कर सकती थी। ज्योतिषियों और नीम-हकीमोंकी चल पड़ी थी। लोग वैज्ञानिक चिकित्साकी अपेक्षा टोनों-टोटकोंपर अधिक विश्वास करते थे। हकीमोंको लोग 'यमराज-सहोदर' समझते थे और बहुतोंमें तो इस विश्वासने जोर पकड़ लिया था कि डाक्टरों और हकीमोंने ही अपने लाभके लिए प्लेगका अद्भुत रोग फैलाया है। रोलाण्डस क्राइजोपोलिटेनसने १४६८में पार्माकी महामारीके सम्बन्धमें लिखा था कि "महामारी जब शान्त हो गयी तो अधिकारियोंने उन सब डाक्टरोंको गिरफ्तार कर लिया जिन्होंने रोगियोंको देखा-भाला था। उनकी सब धन-सम्पत्ति छीन ली गयी और वे जेलोंमें डाल दिये गये, और बहुत-से तो कत्ल कर डाले गये!"

इस प्रकारके अत्याचार होनेपर भी सच्चे हकीमोंने महामारीके आक्रमणसे बचनेके लिए जनतामें बहुत-से लाभकारी घरेलू नुसखों और प्राकृतिक प्रतिषेधक सिद्धान्तोंका प्रचार किया। खान-पान और रहन-सहनमें किस प्रकारके नियमोंका पालन होना चाहिए, भयको मनसे हटानेके लिए क्या-क्या उपाय काममें लाने चाहिए—शराब किस हद तक पीनी उचित है, सङ्गीत आदिसे मनोविनोद किस प्रकार बीमारीके निषेधमें सहायक होता है, आदि बहुत-सी तात्त्विक बातोंसे (जिनकी प्रामाणिकता आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है) वे जनताको परिचित कराते रहे। विषैली वायुसे बचावके लिए उन्होंने बहुत-सी कीटाणु-नाशक सुगन्धियोंका आविष्कार किया, जिनमें 'ओ द कोलोन' (Eau de Cologne) का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। आज समस्त संसारमें उक्त सुगन्धित जलका प्रचलन पाया जाता है, पर पहले-पहल जोहान मारिया फारिना नामके एक इटालियनने १७०० में प्लेग-प्रतिषेधक जलके बतौर इसका आविष्कार किया था।

पर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नीम-हकीमोंके इलाज ही जनतामें अधिक प्रचलित हुए थे। इन नीम-हकीमों और कठ-वैद्योंने प्लेगसे बचनेके ऐसे-ऐसे अद्भुत और गन्दे उपाय बताने शुरू कर दिये कि उनकी कल्पनामात्रसे सारा शरीर जर्जरित हो उठता है। कहा जाता है कि चमार, भङ्गी तथा उन्हींकी श्रेणीके दूसरे लोगोंपर महामारीका आक्रमण बहुत कम होता था। यह देखकर नीम-हकीमोंने गन्दगीको उससे रक्षा पानेका सबसे अच्छा साधन समझा। रोमेल नामके एक ऐतिहासिकका कहना है कि लोगोंको यह सलाह

मृत्युके रुद्रबाणोंकी ध्वंसलीला
(मध्ययुगका एक चित्र)

दी जाती थी कि प्रतिदिन प्रातःकाल भोजनके कुछ पहले पाखानेमें खड़े होकर वहांकी विकृत दुर्गन्धको श्वास द्वारा भीतर ग्रहण करना सबसे अच्छा प्लेग-प्रतिषेधक उपाय है! एक संन्यासीने बकरेके मूत्रसे स्नान करना और उसे पीना उपयोगी बतलाया। केवल बकरेका मूत्र ही नहीं, मनुष्य-मूत्र भी विशेष लाभदायक माना जाने लगा। रोगके भयके कारण लोगोंकी बुद्धि विकृत और मस्तिष्क गन्दा हो गया था। लीगनित्समें प्रेमिक-प्रेमिकाके एक ऐसे जोड़ेका उल्लेख है कि जिसने मरते दम तक एक-दूसरेका साथ देनेका प्रण कर लिया

था। वे दोनों नित्य स्वयं अपने मूत्रसे स्नान करते थे! मनुष्य-मूत्रका पान भी लाभकारी बतलाया जाता था। इस सम्बन्धमें रोमेलका कहना है कि "पाखानेकी दुर्गन्धकी अपेक्षा यह इलाज कहीं अच्छा है, क्योंकि इससे वास्तवमें पेट साफ रहता है और रक्त भी शुद्ध होता है।" कुछ लोग मूत्रका व्यवहार दूसरे रूपमें करते थे। वे एक बर्तनमें पेशाब करके उसे इतना उबालते थे कि अन्तको उसका सब पानी सूख जाता था और केवल लवणांश शेष रह जाता था; इसके बाद वे लोग इस लवणको एक चम्मचमें लेकर, एक प्रकारके मीठे तेलसे मिलाकर उसे खा जाते थे! यह 'रामबाण'

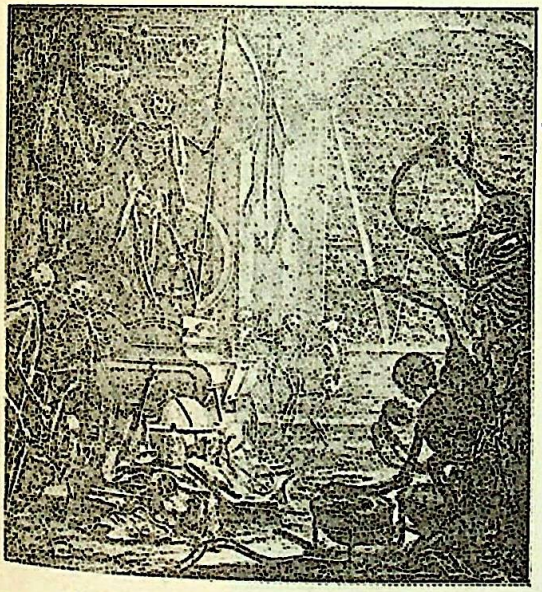

'ताण्डव-नृत्य'

औषधि Sal Urinal (मूत्र-लवण) के नामसे प्रसिद्ध थी। लाइत्ससिखका एक बुड्ढा, जो प्लेगके एक हजारसे भी अधिक रोगियोंकी लाशें धो चुका था, कहा करता था कि उक्त मूत्र-लवणके नियमित सेवनके समय 'पिता, पुत्र और पवित्रात्मा'का नाम स्मरण करनेके कारण ही वह प्लेगके आक्रमणसे बच गया।

केवल मूत्र ही नहीं, स्त्रीके मासिक धर्मसे उत्पन्न रजका सेवन भी विशेष फलप्रद बताया जाता था! जिन व्यक्तियोंकी रुचि परिष्कृत होती थी वे बहुमूल्य रत्नोंका प्रयोग हितकर बताते थे। उदाहरणके लिए, कार्डानौस नामके एक व्यक्तिका कहना था कि मरकत-मणिके एक टुकड़ेको जबानपर रखनेसे वह अपने पुत्र-शोकका कष्ट भूल गया, इसलिए उसने प्लेगके समय इसे धारण करनेकी सलाह दी थी। नाना प्रकारके गण्डे-तावीजोंका प्रयोग भी बहुत चल पड़ा था। बहुत-से 'वैद्य-राजों' ने 'विषस्य विषमौषधम्' की नीतिका अनुसरण करके मृतकोंके फोड़े काटकर, उन्हें सुखाकर और इसके बाद पीस-कर चूर्णके रूपमें मरीजोंको देना शुरू कर दिया! जो लोग हकीमोंके इतने परिश्रमसे तैयार किये गये चूर्णका मूल्य चुकानेमें समर्थ नहीं थे उन्होंने फोड़ोंका पीब ही चूसना शुरू कर दिया!

इन सब बातोंसे पता चलता है कि महामारीकी उग्रता कैसी भयङ्कर और ला-इलाज हो गयी थी और 'मरता क्या न करता' की हालतमें लोग ऐसे-ऐसे वीभत्स उपायोंको भी प्राण-रक्षाकी आशासे काममें लाने लगे थे।

महात्मा गांधीने जिस प्रकार बिहारके प्रलयङ्कर भूकम्प-के सम्बन्धमें कहा है कि अस्पृश्योंके प्रति किये गये पापोंके कारण ही इस दैवी कोपने जनतापर आक्रमण किया है, उसी प्रकार मध्ययुगके यूरोपियन धर्मगुरुओंका भी यही विश्वास था कि पापकी अधिकताके कारण ही भगवान्‌ने महामारीके रूपमें दण्ड देना प्रारम्भ किया है। १५०७ में फ्रान्सके रूआं नगरके प्लेग रेगूलेशनने यह नियम जारी कर दिया था कि जिन-जिन बातोंसे भगवान्‌का कोप बढ़नेकी सम्भावना हो उनका पूर्ण निवारण होना चाहिए—जैसे जुआ खेलना, शराब पीना, गाली देना, व्यभिचारमें लिप्त रहना आदि। इसी प्रकार तूर्नाई शहरकी कौन्सिलने यह फर्मान निकाला कि शहरमें जितनी भी वेश्यायें हैं वे या तो शहर छोड़कर चली जायें या विवाह कर लें। पांसोंका खेल और उनके विक्रयपर भी निषेधाज्ञा जारी कर दी गयी। फलतः पांसा तैयार करनेवाली फैक्टरियोंने समयका रुख देखकर यह चालाकी की कि सब पांसोंको सुमिरनीकी गुरियोंके रूपमें परिणत करके महंगे दामोंमें बेचने लगीं!

प्लेगने यूरोपियनोंको सफाईसे रहनेका सबक सिखा दिया। इसके पहले वे लोग ऐसे गन्दे रहते थे कि अधिकांश स्थानोंमें घरके भीतरका सब कूड़ा आंगनमें डाल दिया जाता था और दिनपर दिन उसका ढेर एक ही स्थानपर जमा होकर सड़ता जाता था। गुआरिरोनियस नामक एक लेखकने १६१० में

जर्मनीके सम्बन्धमें यह शिकायत की थी कि उस समय वहां पाखानेके लिए कोई खास जगह बनी हुई नहीं होती थी और लोग इधर-उधर जहां सुविधा देखते, शौच कर देते थे। मध्य-युगके यूरोपियन लोग महीनों तक बिना नहाये काम चला लेते थे और उनमेंसे अधिकांश ऐसे थे जो एक ही कपड़ेको बहुत समय तक चलाते और जब तक वह फटकर तार-तार न हो जाता तब तक उसे पहने ही रहते। इससे गन्दगी कुछ कम नहीं बढ़ती थी। महामारियोंके फैलने बाद उनकी इस प्रकारकी बहुत-सी गन्दी आदतें सुधर गईं अच्छे-अच्छे अस्पतालोंको खोलनेकी ओर भी अधिकारियों ध्यान गया।

विश्व-विनाश

प्रलय ! प्रलय ! आ प्रलय विश्वमें,
आ प्रज्वलित चिता-सी जगमें !
अरी ! धधक उठ मानव-उरमें,
कभी न बुझनेवाली ज्वाल !
उमड़ पड़े तेरी लपटोंसे
शत-शत शरसे दुर्दम व्याल !
चामुण्डासे जीभ निकाले
रुण्ड-मुण्ड करते ठुकराते
अग-जगमें फैलें विकराल !
अम्बरका उर चीर जला दें,
जगके वैभवको झुलसा दें,
तेरे दुर्दम जलते व्याल !
खण्ड-खण्ड हो गिरें धरा पर
सिहर-सिहर श्वासों-सा कांपे
यह प्रासाद विशाल।
लोटे मानवके चरणोंपर
मुकुट-शून्य उस विधिका भाल !
हाथोंमें लेकर तू खप्पर
भग्न विश्वपर नग्न नृत्य कर !
जाग जाग ओ प्रलय कराल !
जाग-जाग ओ ज्वाला-माल !

—नरेन्द्र।

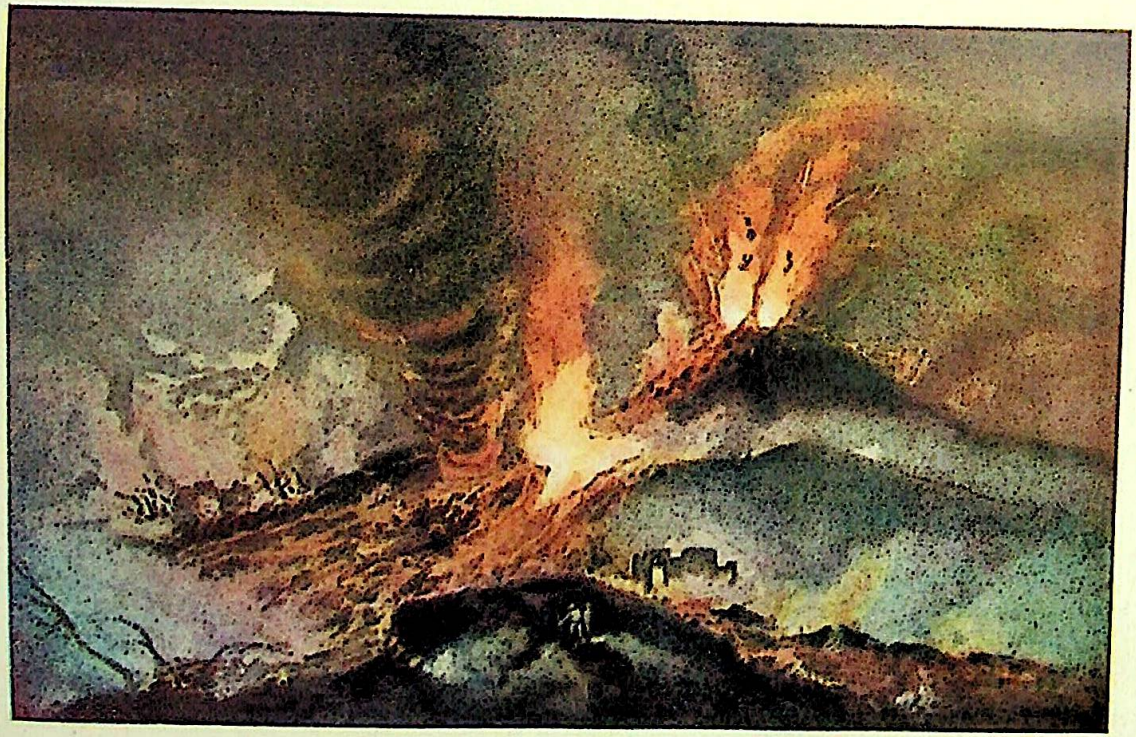

वेस्युवियसका कराल ज्वालोद्गार

पाम्पिआइकी वह कालरात्रि !

श्री मदनमोहन 'विरागी'

पाम्पिआइ वेस्यूवियस पर्वतकी ढालपर बसा हुआ न बहुत छोटा, न बहुत बड़ा, एक अच्छा-खासा शहर था। उसकी आलीशान इमारतोंकी कारीगरी, उसके सुन्दर मन्दिरोंकी कलामयी शोभा उस समय तमाम इटलीमें प्रसिद्ध थी। समुद्र-तटके निकट और पर्वत-प्रान्तमें अवस्थित होनेसे वह नेपल्सके रईस लोगोंका ग्रीष्मावास बन गया था। इस कारण गरमियोंमें वहां काफी चहल-पहल रहती थी और सार्वजनिक विनोद-गृहोंमें तरह-तरहके नाच-रङ्ग, खेल-कूद, थियेटर-सर्कस आदिके तमाशे होते रहते थे। नगर-निवासी रोमन सभ्यताके रङ्गमें पूर्णतया रंगे होनेके कारण विलास-प्रिय होनेके साथ-ही-साथ सुसंस्कृत भी थे।

वेस्युवियस पर्वत उस युगमें अत्यन्त शान्त तथा स्थिर था, यद्यपि लोगोंका अनुमान है कि उस समयसे पहले किसी युगमें अवश्य ही वेस्युवियसकी चोटीसे आगकी ज्वालायें निकली होंगी। कारण यह कि उस चोटीपर ज्वालामुखीका-सा एक 'क्रेटर' दिखायी देता था जिसे पाम्पिआइ-निवासी अक्सर किलेके बतौर काममें लाते थे। पर उस समय ज्वाला-मुखियोंके सम्बन्धमें लोगोंका ज्ञान बहुत कम था और दो-एक विद्वानोंको छोड़कर किसीके मनमें इस सम्बन्धमें कभी कोई सन्देह ही उत्पन्न नहीं हुआ कि उस शान्त पर्वत-शृङ्गके भीतर आगके भीषणाकार गोले छिपे हुए हैं।

पर्वतके ऊपर और उसकी ढालुवां जमीनमें सर्वत्र अङ्गूर-की बेलें लगी हुई दिखायी देती थीं। अक्सर लोग पहाड़की चोटीपर सैरके लिए जाते और वहांसे नीचे सारे शहरका सुहावना दृश्य देखकर आनन्दित होते थे। ज्वालामुखीसे विनिर्गत राख और लावा दीर्घकाल तक सूर्यताप और मुक्त वातावरणमें पड़े रहनेके बाद उपजाऊ मिट्टीके रूपमें परि-वर्तित हो जाते हैं। वेस्युवियस पहाड़की मिट्टी इसी कारण बहुत उपजाऊ थी और पाम्पिआइ नगरके भीतर और इर्द-गिर्द तरह-तरहके फल-फूलोंके बाग-बगीचे लहलहाया करते थे। एक दिन अकस्मात् किसी दैवी कोपसे ऐसे सुन्दर-सुमनोहर नगरका विनाश हो जायगा, इस बातका ख्याल कभी स्वप्नमें भी वहांके तात्कालिक निवासियोंको नहीं हुआ।

चिरकालिक ध्वंसकी प्रलयङ्कर घटनाके १६ वर्ष पहले पाम्पिआइ-निवासियोंको उसकी पूर्व-सूचना—चेतावनी—मिल जानी चाहिए थी। सन् ७९ में वेस्युवियसके शृङ्गमें ऐतिहासिक अग्नि-विस्फोट हुआ था। उससे पहले सन् ६३ में एक बड़ा भूकम्प हुआ था जिसका धक्का बहुत दूर तक पहुंचा

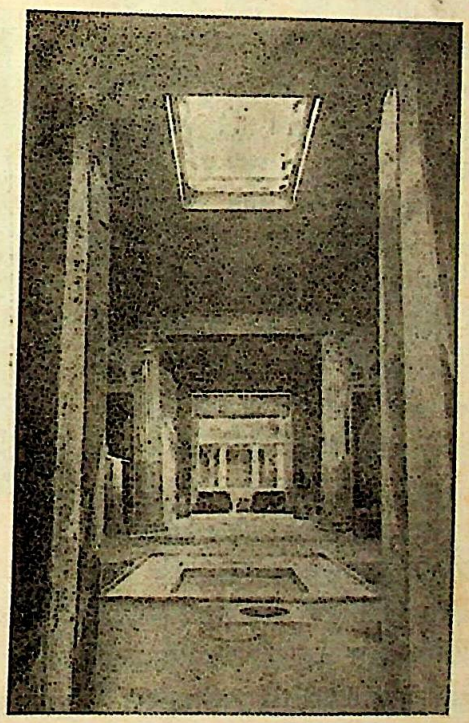

पाम्पिआइके एक अमीरके मकानके भीतरका दृश्य

था। इस धक्केसे पाम्पिआइमें आइसिसका प्रसिद्ध मन्दिर नष्ट हो गया था। इसके बाद बीच-बीचमें भूकम्पके छोटे-मोटे धक्के आते-जाते थे। अव्वलमें तो इन कम्पनोंसे ही नगर-निवासियोंको आनेवाले खतरेकी सूचना मिल जानी चाहिए थी। पर इसके अतिरिक्त एक और ऐसा नया प्राकृतिक परिवर्तन पर्वतके इर्द-गिर्द दिखायी दिया था जो भी वा

विनाशका पूर्वसूचक चिह्न था। बहुत-से पहाड़ी सोते और झरने, जो दीर्घकालसे निरन्तर बहते चले आते थे, एकदम ऐसे सूख गये थे जैसे पहले उनका कभी कोई अस्तित्व ही न रहा हो। पर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उस समय ज्वालामुखियोंके सम्बन्धमें लोगोंका ज्ञान विशेष उन्नति नहीं कर पाया था; इसलिए उक्त कारणोंसे शङ्कित होनेपर भी लोग अधिक भयभीत नहीं हुए।

अन्तको २९ अगस्त सन् ७९ के दिन धरती फिर एक बार बड़े जोरोंसे कम्पित हो उठी और वेस्युवियसका युगोंसे शान्त क्रेटर भीषण विस्फोटक शब्दोंसे फट पड़ा और उसके भीतरसे धुएंके काले-काले बादल निकलने लगे। धुएंकी कुण्डलियां मिलकर एक बृहत् कृष्ण छत्रके आकारमें ऊपर छा गयी थीं।

पाम्पिआइमें उन दिनों ग्रीष्म-विहारके लिए बाहरसे बहुत-से लोग आये हुए थे और सारे शहरमें राग-रङ्ग मचा हुआ था। विनाशके उस विशेष दिन एक बृहत् रङ्गालयमें दो विख्यात असिक्रीड़क (Gladiators) आये हुए थे और हजारों स्त्री-पुरुष उनका क्रीड़ा-कौशल देखनेमें तन्मय थे। आकस्मात् जब पृथ्वी बड़े जोरोंसे डोलने लगी तो भगदड़ मच गयी और लोग एक-दूसरेको कुचलकर, धक्का देकर, बाहर निकलनेकी कोशिश करने लगे। बहुत-से बच्चे, स्त्रियां और वृद्ध दम घुटकर अथवा कुचलकर मर गये। बाहर आकर लोगोंने देखा कि पहाड़की चोटीपरसे धुएंके काले बादल उमड़ रहे हैं, बीच-बीचमें बिजलीकी तरह अग्नि-प्रकाश हो रहा है और तोपोंके विस्फोटकी तरह गर्जन-शब्द सुना जा रहा है। सर्वत्र आतङ्क छा गया। अनगिनत पत्थर, ढेरकी ढेर राख और लावा चारों ओर गिर रहे थे। लोग उन्मत्तोंकी तरह अपने-अपने घरोंकी ओर भागे और मूल्यवान वस्तुओं तथा बाल-बच्चोंको लेकर, शहर छोड़कर भाग निकलनेकी फिक्र करने लगे।

धुंआ बढ़ता ही जाता था और कुछ ही समयके भीतर उसने सारे शहरको इस प्रकार छा दिया था कि दिनका समय होनेपर भी गहन रात्रिका दृश्य नजर आता था और हाथको हाथ नहीं सूझता था। जिसके हाथ जो चीज लगी, जल्दीमें उसीको उठाकर लोग घरोंसे बाहर निकल पड़े। पर अन्धकार ऐसा घना था कि एक ही परिवारका एक व्यक्ति पूर्वकी ओर भागता था तो दूसरा उसे ढूंढ़ने पश्चिमकी ओर दौड़ता था। जो बच्चे गोदमें लिये जा सकते थे केवल वे ही अपनी माताओंके साथ रह सके, बाकी उस प्रलयान्धकारमें, आतङ्कग्रस्त और आत्मरक्षाके भावसे उन्मत्त लोगोंकी भगदड़में या तो पिसकर मर गये या पीछे पड़े रह गये। लावा और राखका ढेर इतने अधिक परिमाणमें पड़ने लगा था कि बहुत-से बच्चे और बूढ़े उससे दबकर मर गये। जो लोभी धन-सम्पत्तिकी माया उस विनाशके समय भी त्याग न सके थे वे अपनी चीजोंको बटोरकर अधिकसे अधिक संख्यामें

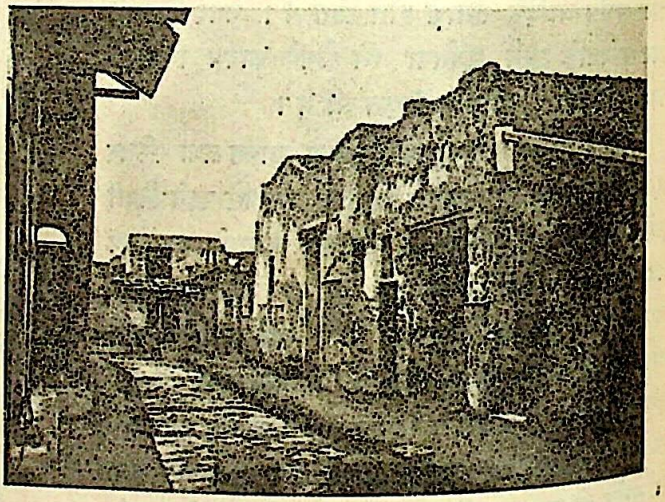

पाम्पिआइके ह्वीआदेल आब्रोन्दान्तसा गलीका मकान नं० ४। कहा जाता है कि इसमें धनी मिलिन्द रहता था; इसमें सोने और चांदीके ढेर पाये गये।

उन्हें अपने साथ ले भागनेके प्रबन्धमें व्यस्त रहनेके कारण घरोंके भीतर ही धन और जवाहरातके बक्सोंको छातीसे जकड़े हुए दब गये। बच्चे, बूढ़े, रोगी और लोभियोंके अतिरिक्त बहुत कम आदमी इस प्रलयकाण्डमें मरे थे। लगातार तीन दिन तक लोग भागते रहे। इसके बाद कोई कहीं जाकर बसा और कोई कहीं। अधिकांश पलातकोंका शेष जीवन अत्यन्त दुर्दशामें बीता।

केवल पाम्पिआइ ही नहीं, आस-पासके सभी छोटे-मोटे शहर और कस्बे ज्वालामुखीके उस लोमहर्षक भौतिक

उद्गारके कारण इस प्रकार दब गये जैसे कब्रमें लाश गाड़कर मिट्टीसे दबा दी जाती है। इनमें हरक्यूलेनियमका नाम उल्लेखनीय है।

विख्यात इतिहासकार प्लाइनीने इस महानाशका आंखों-देखा वर्णन किया है। उसके कथनसे मालूम होता है कि उसका चचा, जो इतिहासमें ज्येष्ठ प्लाइनीके नामसे विख्यात है और जो प्राकृतिक विज्ञानका विशेषज्ञ होनेके साथ ही नौ-सेनाका अध्यक्ष भी था, उस समय नेपल्सकी खाड़ीमें अपनी सेनाके साथ डेरा जमाये बैठा था। अचानक पहाड़परसे धुंआ उठते देखकर उसे असलियत मालूम करनेकी उत्सुकता हुई। जब वह समुद्रके किनारे-किनारे कुछ दूर तक आगेको

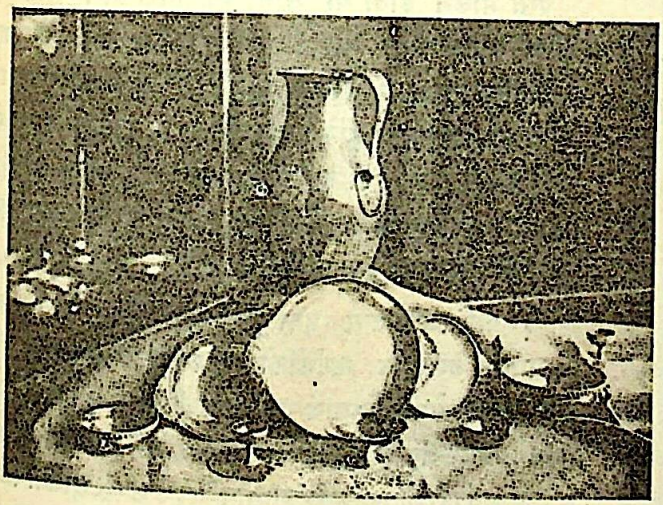

पाम्पिआइके एक मकानमें भोजनके ये बर्तन पाये गये थे, जो सब चांदीके हैं।

बढ़ा तो कुछ मल्लाहोंने उससे प्रार्थना करते हुए कहा कि आगे बढ़ना खतरनाक है और वापस चले जानेमें ही भलाई है। पर प्लाइनीने उनका कहना न माना और कहा कि "लोगोंका जानोमाल खतरेमें है तो यह मेरा पहला कर्तव्य है कि मैं उनकी सहायता करूं।" इसके अतिरिक्त प्राकृतिक विज्ञानमें दिलचस्पी रहनेके कारण वह अच्छी तरह यह बात जानना चाहता था कि यह धुंआ किस कारणसे निकल रहा है और किन-किन आकारोंमें, किस तरह अपना स्वरूप बद-लता जाता है। पर उत्तप्त राखके ढेर अत्यन्त तीव्र वेगसे शीघ्र-शीघ्र गिरते जाते थे, समुद्रमें अकस्मात् भाटा आ गया था। प्लाइनी बहुत आगे बढ़ चुका था और अब जहाजकी ओर लौट चलना कठिन था। वह पोम्पोनियेनस नामके अपने एक मित्रके मकानके पास आकर ठहर गया और रक्षाके लिए उसके मकानके भीतर घुस गया। मजेकी बात यह है कि पोम्पोनियेनस स्वयं अपने मकानसे बाहर निकलकर नाव पकड़नेके लिए भागा चला जा रहा था। पर वीर प्लाइनीने उसे रोककर समझाते हुए कहा कि डरनेकी कोई बात नहीं है और स्वयं स्नानकी तैयारी करने लगा। नहा-धोकर वह मुसकराता हुआ भोजन करने लगा। ज्यों-ज्यों रात निकट आती जाती थी त्यों-त्यों ज्वालायें पहाड़परसे निकटसे निकट-तर आती जाती थीं। पर प्लाइनीने अपने मित्रको यह कहकर दिलासा दिया कि ये सब ज्वालायें कुछ नहीं हैं, पासके गांवोंमें कहीं आग लगी होगी, उसीकी लपटें हैं। बहुत सम्भव है, उस समय तक प्लाइनीका सचमुच यही विश्वास भी रहा हो। खा-पीकर वह निश्चिन्त होकर सो गया। अर्द्धरात्रिके समय देखा गया कि सारे आंगनमें राखके ढेर, जिन्हें कनिष्ठ प्लाइनी (एडमिरल-का भतीजा) बर्फकी तरह सफेद बताता है, बिछे हुए हैं। घरवाले पहलेसे ही जागे हुए थे। उन्होंने प्लाइनीको जगाया। सब घरसे बाहर निकल पड़े। भूकम्पोंके धक्कोंका जोर भयङ्कर रूपसे बढ़ता जाता था, और मकान गिरना ही चाहता था। प्लाइनी, उसके मित्र, मल्लाह, गुलाम आदि सब खुले मैदानमें चले आये। पर वहां उनके ऊपर पत्थर, राख और विगलित धातुयें बरस रही थीं। वे सब लोग अपने सिरोंपर तकिये बांधे हुए थे ताकि चोट न आने पाये। सुबह हुई, पर अन्धकार नहीं गया। ऐसा मालूम होता था कि सारा विश्वाकाश धूम्रमय हो उठा है। उसी अन्धकारमें वे लोग समुद्रके किनारे नाव पकड़ने गये; पर समुद्रकी उत्ताल तरङ्गों-का विस्फूर्जन ऐसा विकराल हो उठा था कि नावोंपर चढ़ना असम्भव था। बेचारा प्लाइनी थक गया था। उसने अपने आदमियोंको एक पाल बिछानेका आदेश दिया और उसपर लेट गया। पर ज्वालायें लपक-लपककर उनकी ओर आ रही थीं और गन्धककी ऐसी उग्र गन्धसे सारा वायुमण्डल

आक्रान्त हो गया था कि सांस लेना कठिन हो गया। सब लोग भागे। पर प्लाइनीमें उठनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी थी। गुलामोंने उसे हाथ पकड़कर उठानेकी चेष्टा की, पर कमजोरीके कारण वह फिर नीचे गिर गया और जहरीली गैससे दम घुट जानेके कारण सदाके लिए सो गया। इस प्रकार उस वीर वैज्ञानिक और परपीड़ानुभवी महापुरुषका अन्त हुआ।

उसके भतीजे, कनिष्ठ प्लाइनीने अपने निजी अनुभवका भी मार्मिक वर्णन किया है। वह लिखता है कि "वह विकराल रात मैं अपने जीवनमें कभी नहीं भूल सकता। घोर कृष्ण अमावस्याकी रात्रिका अन्धकार उस निबिड़ धूम्राच्छन्न काल-रात्रिके गहनतम अन्धकारके आगे एकदम तुच्छ और उपेक्षणीय है। फिर भी लोग पागलोंकी तरह जिधरको पांव पड़ते थे, भागे चले जा रहे थे। बच्चों और स्त्रियोंकी आर्तध्वनि आकाशको विदीर्ण कर रही थी। एक ही परिवारके दस व्यक्ति दस दिशाओंको दौड़ रहे थे। कहीं कुछ भी नहीं सूझता था, भूकम्पोंके धक्के जारी थे। मैं भी अपनी मांका हाथ दृढ़तासे थामे हुए ठोकरें खाता हुआ अग्निकी ज्वालामयी शिखाओं, गलित धातुओं और राखके ढेरोंसे रक्षा पानेके लिए भागा चला जाता था। 'हाय! हाय!' चिल्लाते हुए किसी तरह रात बीती। बड़ी मुश्किलसे सूर्यके दर्शन हुए, पर उसका तेज ऐसा फीका पड़ गया था, वह ऐसा म्लान दिखायी देता था कि मालूम होता था मानो ग्रहण लग गया हो। सर्वत्र रातके प्रलय-काण्डका सर्वनाशी दृश्य नजर आता था। हम जिन-जिन स्थानोंको अपने पीछे छोड़ आये थे उनके मकानात आगकी लपटोंसे झुलसकर भस्म-स्तूपोंसे ढककर दब गये थे। राख एकदम सफेद थी। ऐसा मालूम होता था मानो बर्फ गिरी हो। अपने प्यारे शहरके विनाशका यह निदारुण दृश्य देखकर मैं आंसू बहाये बिना न रह सका। जिसके क्रोड़में खेल-कूदमें बचपन बिताया, जिसके विलास-गृहोंमें यौवनके राग-रङ्गमय दिन बीते, जिसके द्राक्षाशोभित उद्यानोंमें मधुरस पान करके झूमते रहे, उसे आज चिरकालके लिए इस प्रकार ध्वस्त होते देखकर रो पड़ना सम्पूर्ण स्वाभाविक था।"

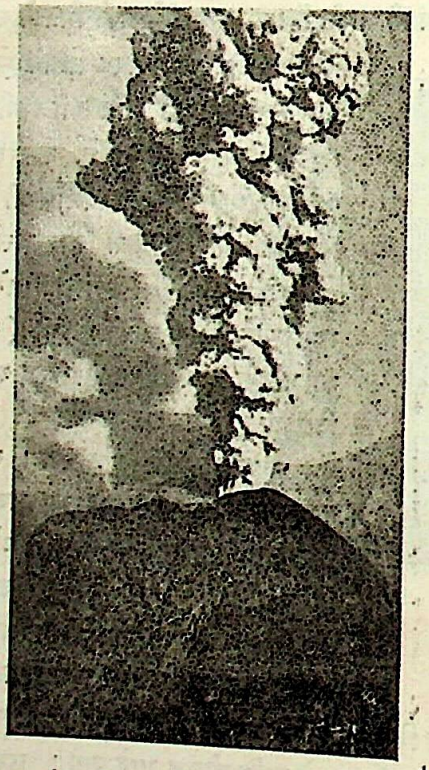

आग्नेयगिरि वेस्युवियस कुपित अवस्थामें

पाम्पिआइ तथा हरक्यूलेनियमके विनाशके सम्बन्धमें प्राचीन लेखकोंके वर्णनोंको पढ़कर उनकी खुदाईकी ओर कई बार लोगोंका ध्यान गया। पर निश्चित स्थानका अन्दाज तब मिला जब १७१३ में पोर्टिचीके गांवमें एक कुंआ खोदते हुए मजदूरोंको सङ्गमर्मरकी तीन अपूर्व सुन्दर मूर्तियां मिलीं। १७३८ में वही कुंआ जब अधिक गहराई तक खोदा गया तो वहां हरक्यूलेनियमके प्राचीन थियेटरके चिह्न मिले। इसके बाद यथासम्भव खुदाईका काम शुरू कर दिया गया और बहुत-सी आलीशान इमारतें, वास-भवन, दीवारें, चित्रकारियां, हस्तलिखित पुस्तकें आदि पायी गयीं। १८६० में इटालियन सरकारने खुदाईका काम पूर्णरूपसे समाप्त करनेका विराट् आयोजन किया, जिसके फलस्वरूप आज पाम्पिआइ और हरक्यूलेनियमके प्राचीन शहरोंको हम प्रायः उसी रूपमें देख सकते हैं जिस रूपमें वे प्राचीन कालमें वर्तमान थे। उनकी सड़कें, गलियां, मकानात, कमरे आदि बहुत-कुछ उसी पूर्व रूपमें सुरक्षित हैं।

इस सम्बन्धमें कई रोचक तथ्य मालूम हुए हैं। कहा जाता है कि ज्वालामुखीके विस्फोटके समय जो लोग भाग

न सके थे उनके कङ्काल यथास्थान पड़े हैं। दो-तीन ऐसे आदमियोंके कङ्काल पाये गये हैं जो हाथोंमें चांदी और सोनेकी मुहरोंकी थैलियां तथा जवाहरातोंको जकड़े हुए थे। बहुत सम्भव है, वे लोग बच जाते, पर धनको साथ ले जानेके लालचमें वे पड़े रह गये; थैलियोंको पकड़कर भागनेका रास्ता देख ही रहे होंगे कि उत्तप्त भस्मसे दबकर मर गये। एक स्थानमें किसी तहखानेके भीतर प्रायः बीस कङ्काल पाये गये। उस कमरेमें कुछ रोटियोंके-से टुकड़े और जमी हुई शराब और बर्तन भी पाये गये हैं। बहुत सम्भव है, उन लोगोंने प्राण-रक्षाके लिए भागनेकी अपेक्षा तहखानेमें छिपना अधिक सुरक्षित समझा होगा। बहुत-से मकानोंके फाटकोंपर पहरेदारोंके कङ्काल पाये गये हैं। उन गुलामोंको 'डिसिप्लिन' का कठोर पाठ इस हद तक पढ़ाया गया था कि मृत्युको सामने नाचती हुई देखकर भी वे अपने स्थानसे टससे मस न हुए।

महानाशके पूर्व लक्षण

श्री प्रज्ञानन्द शास्त्री

संसारमें आज तक सामूहिक ध्वंसकी जितनी भी घटनायें हुई हैं, उनके सम्बन्धमें यह लौकिक धारणा पायी जाती है कि उनकी पूर्वसूचना कुछ विशेष-विशेष असाधारण प्राकृतिक लक्षणोंसे सदा मिलती रही है। इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण हालके प्रलयङ्कर भूकम्पके अवसरपर लोगोंको मिल चुका है। ज्योतिषियोंने इस भूकम्पके आगमनकी सूचना पहले ही दे दी थी। उन लोगोंने कहा था कि १९ जनवरीके दिन सात ग्रहोंके एकत्र मिलित होनेके कारण भूकम्पका आना अथवा इसी प्रकारको किसी दूसरी सर्वनाशी दुर्घटनाका होना अनिवार्य है। इस भविष्यवाणीको प्रत्यक्ष फलीभूत होते देखकर बड़े-बड़े अविश्वासी अवाक् रह गये थे। यह जांच करना वैज्ञानिकोंका काम है कि ज्योतिषियोंका उक्त कथन अकस्मात् काकतालीय नियमसे सफल हो पड़ा अथवा उसमें वास्तवमें कुछ मूलगत सत्यता वर्तमान थी। हम केवल यथार्थमें घटित तथ्यको प्रकट कर देना चाहते हैं। ज्योतिषियोंका कहना है कि "सात ग्रहोंके मिलनका परिणाम ऐसा क्यों होता है यह हम नहीं जानते, पर यह निश्चित है कि जब-जब इस प्रकारका मेल देखनेमें आया है तब-तब कोई-न-कोई असाधारण दुर्घटना पृथ्वीमें घटित होते देखी गयी है, इसलिए हम लोग भी उन्हीं 'रेकर्डों' के आधारपर उक्त सिद्धान्तपर पहुंचे थे।" ज्योतिषियोंकी उक्तिकी इस आश्चर्यजनक यथार्थताके कायल होकर कुछ लोग अब उसकी वैज्ञानिक व्याख्या भी करने लगे हैं; उनका कहना है कि ६ ग्रहोंके सम्मिलित आकर्षणका प्रभाव पृथ्वीपर पड़नेसे उसका केन्द्र विचलित हो उठा, इत्यादि-इत्यादि।

इस प्रकारका विश्वास केवल भारतीय ज्योतिषियोंमें ही नहीं, अन्यान्य देशोंके बहुत-से ज्योतिषियोंमें भी पाया जाता है। प्रसिद्ध हस्तरेखावित् तथा फलित-ज्योतिषी काइरो (Cheiro) ने अपनी विख्यात पुस्तक 'World Predictions' में कुछ वर्ष पहले ही इस बातका उल्लेख कर दिया था कि १९३४ के प्रारम्भसे लेकर १९३८ तक संसारमें नाना प्रकारकी दुर्घटनायें होंगी; जैसे प्रलयङ्कर भूकम्प, महामारीके प्रकोप, भयङ्कर राजनीतिक क्रान्तियां आदि। प्राचीन कालके बड़े-बड़े ग्रीक और रोमन विद्वान् भी ग्रहोंके भिन्न-भिन्न योगोंका भिन्न-भिन्न परिणाम होना स्वीकार करते थे। जगत्-प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू (Aristotle), जो सर्वशास्त्र-वेत्ता था, अपना यह मत प्रकट कर गया है कि शनि, बृहस्पति तथा मङ्गलका मेल किसी आगामी दुर्घटनाका सूचक है। कहा जाता है कि १३४८ में संसारमें जो जिखिलनाशी महामारी फैली थी, उसके पहले उक्त तीन ग्रहोंका सम्मेलन घटित हो चुका था। ग्रीक ज्योतिषियोंका यह भी विश्वास था कि यदि कुम्भ, तुला अथवा वृश्चिक राशियोंमें चन्द्रग्रहण हो तो वह भी किसी आगामी सार्वजनिक दुर्घटनाका पूर्वसूचक होता है। १६७९ में १९ एप्रिलके दिन इसी कोटिका चन्द्रग्रहण हुआ था, जिसके फलस्वरूप संसारके विभिन्न स्थानोंमें भूकम्प, प्लेग आदिके प्रकोप दिखायी दिये थे।

१४४७ में विख्यात डाक्टर मार्सीलियस फिचीनियसने, जिसकी आयु सौ वर्षसे अधिक हो चुकी थी, शनि तथा वृहस्पतिके सम्मिलन तथा अन्य ज्योतिष-शास्त्र-सम्बन्धी लक्षणोंसे महामारी होनेकी भविष्यवाणी की थी जो सफल सिद्ध हुई थी। इसी प्रकार १६६४ में जर्मन डाक्टर ऐङ्गल-हार्डने यह पूर्वसूचना प्रचारित की थी कि आगामी वर्ष यूरोपमें उत्कट महामारी फैलेगी। १६६५ में लन्दनमें जो ऐतिहासिक प्लेग फैला वह सर्वविदित है; उसके कारण ६०,००० से भी अधिक मनुष्य मरे थे। इसके बाद १६६६ में लन्दनमें जो प्रलयाग्नि प्रज्वलित हुई उसके सम्बन्धमें वाल्टर जार्ज वेलका कहना है कि कुछ विशेष चिह्नोंसे ज्योतिषियोंने उसकी सूचना पहले ही जनताको दे दी थी।

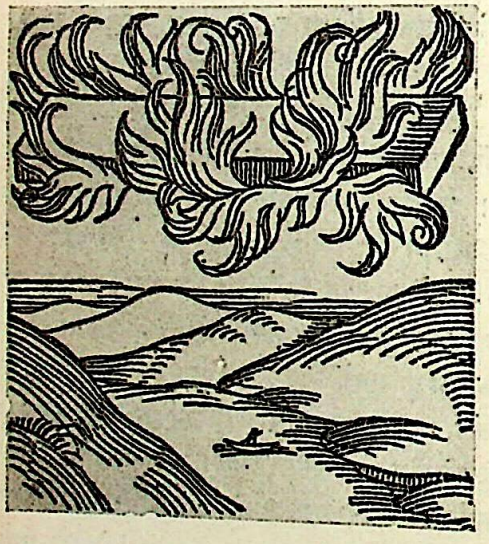

आकाशमें दिखाई देनेवाली आगसे धधकती हुई बल्ली

ज्योतिषियोंकी भविष्यवाणियोंको इस प्रकार सफल होते देखकर मध्ययुगकी यूरोपियन जनता अत्यन्त अन्धविश्वास-परायण बन गयी थी। उस युगके यूरोपपर दैवी कोपोंकी मार बीचमें कुछ ही वर्षोंके अन्तरसे फिर-फिर इस विकट रूपमें पड़ती जाती थी कि लोग डाक्टरों और हकीमोंकी अपेक्षा टोना-टोटकेवालों और ज्योतिषियोंपर अधिक विश्वास करने लगे थे। भौतिक कोपपर भी लोगोंका विश्वास होने लगा था। जिस प्रकार हमारे देशमें चेचकके सम्बन्धमें अशिक्षित जनताका विश्वास है कि 'शीतला माता' के प्रकोपसे उक्त रोग फैलता है उसी प्रकार मध्ययुगमें यूरोपमें महामारीके सम्बन्धमें साधारण जनताकी धारणा यह थी कि वह एक लाल साड़ीसे आवृत होकर एक कुमारीके रूपमें आती है और घर-घर जाकर दरवाजा खटखटाती है। इस प्रकारके बहुत-से अन्ध-विश्वास मृत्युके सम्बन्धमें लोगोंके मनमें जमे हुए थे। १६८२ में स्पाण्डौ नामक स्थानमें यह अफवाह फैली थी कि मृत्युको लोगोंने मानवी रूपमें प्रत्यक्ष देखा और उसकी बातें सुनीं। कहा जाता है कि उक्त स्थानमें मृत्युका दानव मानव-वेषमें कुछ बुढ़ियोंके निवास-स्थानमें फाटक लांघकर आया और एक बेञ्चपर लेट गया, जैसे सो गया हो। जब वह जागा तो बुढ़ियोंने उसकी आव-भगत की। उसने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा कि "मैं मौत हूं, पर तुम लोगोंको डरना नहीं चाहिए, मैं तुम्हें जीता छोड़ दूंगा।" इसके बाद वह एक ऐसी लड़कीसे मिला जिसका विवाह शीघ्र होना निश्चित हुआ था। लड़कीको जब उसने अपना परिचय दिया तो वह बहुत गिड़गिड़ायी। उसने स्नेहसे उसकी पीठपर हाथ फेरकर रक्षाका वचन दिया। इस प्रकारकी कहानियां उस समय यूरोपमें सर्वत्र प्रचलित हो गयी थीं।

यह अन्धविश्वास प्रायः सभी देशोंमें पाया जाता है कि जिस वर्ष पुच्छलतारा आकाशमें दिखायी देता है उस वर्ष अवश्य ही कोई-न-कोई उत्पात मचकर रहता है। आश्चर्य-की बात यह है कि इस अन्धविश्वासकी यथार्थता बहुधा सिद्ध होती हुई पायी गयी है! जब-जब किसी पुच्छलतारेका आगमन हुआ है तब-तब कोई-न-कोई सार्वजनिक दुर्घटना अवश्य घटित हुई है। मध्ययुगमें जिन-जिन समयोंके भीतर महामारियां तथा भूकम्प आदि हुए हैं, उन समयोंके भीतर अनेक बार धूमकेतु (पुच्छलतारे) दिखायी दिये थे। सेनेका, हिप्रोकेटीज आदि प्राचीन लेखक बहुत पहले धूमकेतुओंको अशुभ लक्षण बता चुके थे। उनका कहना था कि पुच्छल-तारा महामारी, युद्ध, भूकम्प आदिके पूर्वचिह्नके रूपमें प्रकट होता है। १४८२ में एक जर्मनने इस बातकी 'वैज्ञानिक' व्याख्या करते हुए कहा था कि पुच्छलतारेकी विशेषता यह है कि वह अपनी अग्निमय पुच्छसे पृथ्वीकी सब नमी और जीवनप्रद रस सोख लेता है, जिसके फलस्वरूप महामारियां फैलती हैं।

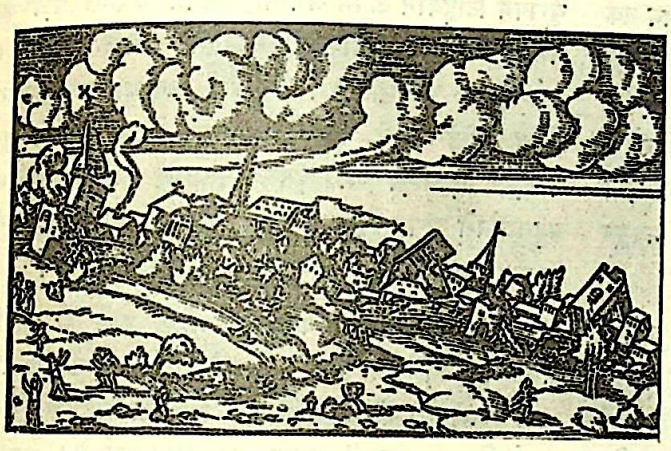

भूकम्पका दृश्य

१६८३ में एक यूरोपियन लेखकने लिखा था—"वर्तमान शताब्दीके भीतर धूमकेतुओंने कैसा कालान्तक विनाश साधित किया है ? अब फिर उसके दर्शन हुए हैं, जिसका अर्थ यही है कि प्लेगका सर्वनाशी संहार-दृश्य फिर एक बार दीखेगा अथवा विनाशका कोई दूसरा स्वरूप देखना पड़ेगा।" इस विश्वासने लोगोंको ऐसा वशीभूत कर लिया था कि वैज्ञानिक भी इस सम्बन्धमें चक्करमें पड़ गये थे। विख्यात फ्रेञ्च गणितज्ञ जाके बेर्नूइयी (Jacques Bernoulli) ने अन्धविश्वासियोंसे बहस करते हुए कहा था—"धूमकेतुका सिर ईश्वरो कोपका लक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि इसका स्वरूप अनन्तकालिक है ; पर हां, उसकी पूंछ अशुभ चिह्न-की द्योतक हो सकती है।"

इकबाल-नामा-जहांगीरके लेखकने एक स्थानपर लिखा है—"जहांगीरकी बादशाहतके तेरहवें वर्ष (१६१८) में एक दिन अरुणोदयके तीन घड़ी पहले आकाशमें एक हथियारकी शक्लका चिह्न दिखायी दिया। यह अर्द्धगोलाकार था। इसका केन्द्र मोटा था और सिरे पतले थे। उसी दिन सन्ध्याको यह फिर दिखायी दिया। इसका सिर उत्तरकी ओर था और पूंछ दक्षिणकी ओर। ज्योतिषियों तथा हकीमोंका कहना है कि यह सब राशियोंमें भ्रमण करता है। पहले यह वृश्चिक राशिमें दिखायी दिया और बादको तुला राशिमें। उसके आविर्भावके सोलह दिन बाद एक दूसरा तारा ठीक उसी स्थानपर दिखायी दिया। इस तारेका ऊपरी हिस्सा खूब चमक रहा था और कई मील तक इसका प्रकाश फैल रहा था। पर इसका निचला हिस्सा अस्पष्ट था। इन नक्षत्र-चिह्नोंके प्रकट होनेके बादमें भारतमें ऐसी महामारी फैली जैसी पहले कभी देखी या सुनी नहीं थी।" बहुत सम्भव है, हथियारकी शक्लका तारा धूमकेतु ही होगा।

असल बात यह थी कि लोग पुच्छलतारेकी गतिविधिसे बिलकुल परिचित नहीं थे और बीच-बीचमें रात-दिनके परिचित ग्रह-नक्षत्रोंके बीच अकस्मात् उसका 'किम्भूत किमाकार' स्वरूप देखकर घबरा उठते थे। अठारहवीं शताब्दीमें जब विख्यात ज्योतिषाचार्य हैलीने धूमकेतुओंकी गतिविधिका पूरा अध्ययन करके यह भविष्यवाणी की कि १६८२ में प्रकट होनेवाला धूमकेतु १७५८ में (अर्थात् ७६ वर्षके अनन्तर) फिर दिखायी देगा और उसकी बात ठीक निकली तो धूमकेतुओंके सम्बन्धमें लोगोंका अन्धविश्वास बहुत-कुछ हट गया। हैलीका कहना था कि उक्त धूमकेतु (जिसका नाम 'हैलीका धूमकेतु' पड़ गया है) प्रति ७६ वर्षके अनन्तर हमारे सूर्यकी परिक्रमा पूरी करके दर्शन देता है। १९१० में जो धूमकेतु दिखायी दिया था वह हैली द्वारा आविष्कृत यही धूमकेतु था। १९१० में उसका रूप देखकर यूरोपियन ज्योतिषी फिर एक बार घबरा उठे थे। उनका कहना था कि इस वर्ष उसकी पूंछ पृथ्वीसे आकर टकरायेगी, जिसके फलस्वरूप प्रलय उपस्थित हो जायगा। उसकी पूंछ अवश्य पृथ्वीसे टकरायी थी, पर प्रलय नहीं हुआ। कारण यह था कि उसकी पूंछ जिस तत्त्वसे बनी थी वह प्रायः वाष्पकी तरह ही तुच्छ और हलका था। फलतः उसकी अपनी ही पूंछ चुरमुर हुई, पृथ्वीको ठेस भी न आयी। १९८६ में यही धूमकेतु फिर दिखायी देगा। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से धूमकेतु हैं जो समय-समयपर आकाशमें दृष्टिगोचर होते रहते हैं।

आकाशमें कभी-कभी जब कुछ अग्निमय चिह्न प्रकट होते थे तो वे भी भावी अमङ्गलकी सूचनाके द्योतक समझे जाते थे। कहा जाता है कि अगस्त १३४८ में पैरिसके आकाशमें

एक आगका गोला दिखायी दिया था और बहुत समय तक रहा था। इसका परिणाम भयङ्कर हुआ। उसी प्रकार १५६८ में वियेनामें सूर्य तथा चन्द्र दोनोंके प्रकाशमें इन्द्र-धनुष दिखायी दिया था और सेण्ट स्टिफानीके गिरजेके ऊपरसे होकर आगकी एक धधकती हुई बल्ली दिखायी दी। इसके परिणाम-स्वरूप महमारियों तथा अग्निकाण्डोंके भयङ्कर दृश्य बादमें दीख पड़े थे।

कुहरा, आंधी, बाढ़, भूकम्प, अकाल, टिड्डियोंका प्रकोप, 'मेंढकों तथा सर्पोंकी वर्षा' आदि लक्षण भी बहुत-से देशोंमें महामारीकी पूर्वसूचना माने जाते थे और कहीं-कहीं इस समय भी माने जाते हैं। हेकर तथा हीजर-जैसे प्रतिष्ठित विद्वानोंने उन्नीसवीं शताब्दीमें प्लेग तथा अन्यान्य महामारियोंके जो विवरण लिखे हैं, उनमें महामारियोंकी पूर्वसूचनाके लक्षणोंका उल्लेख करते हुए लिखा है—"पृथ्वीकी सतह, उसके भीतर अथवा उसके ऊपर जो प्राकृतिक क्रान्तियां मचती हैं, बाढ़, भूकम्प, पर्वतोंका ज्वालामय उद्गार, आंधी, कुहरा आदि प्रकट होते हैं, उनके कारण नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़े उत्पन्न होते हैं और इन कीड़ों द्वारा या तो फसल नष्ट होनेके कारण अकाल पड़ता है या गन्दगी फैलती है। ये दोनों कारण महामारी फैलानेके लिए पर्याप्त हैं।"

रक्तके 'क्रास' के चिह्न

टिड्डियोंके कारण महामारीका फैलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। ये छोटे-छोटे अशुभ जीव करोड़ों, अरबों यहां तक कि खरबोंकी तादादमें आकर पृथ्वी और आकाशको चारों ओरसे घेर लेते हैं, सब फसल नष्ट कर देते हैं, और विष्ठासे कुंओं तथा तालाबोंका पानी गन्दा कर देते हैं और अन्तको स्वयं पानी, ओले अथवा बर्फके तूफानके कारण मरकर सर्वत्र गन्दगी फैलाते हैं। १४७८ में सारे यूरोपमें टिड्डियोंने ऊधम मचाया, सर्वत्र अकाल पड़ा और गन्दगी फैली, जिसके फलस्वरूप अकेले वेनिसमें ही ३,००,००० आदमी मरे। टिड्डियोंके अलावा नाना प्रकारके विचित्र कीड़े-मकोड़े, नये-नये रूप-रङ्गके मेंढक, नये-नये ढङ्गके पतिङ्गे, बड़ी-बड़ी मकड़ियां, तिलचट्टे आदि जिस वर्ष बहुतायतसे उत्पन्न दिखायी देते हैं उस वर्ष अवश्य महामारीके फैलनेका डर रहता है, लोगोंका ऐसा विश्वास था।

जिस वर्ष स्त्रियोंके गर्भपात अधिक होते हैं, पुरुषोंमें अकारण हौलदिलीके चिह्न दिखायी देते हैं, बच्चे मृतकोंकी अर्थी ले जानेका खेल करने लगते हैं, उस वर्ष भी किसी सार्वजनिक अमङ्गलकी आशङ्का बतलायी जाती है।

मध्ययुगमें यूरोपमें जब भूकम्पों तथा महमारियोंकी प्रबलता पायी जाती थी तो उसके पहले कभी-कभी कुछ अद्भुत चिह्न दृष्टिगोचर होते थे। उदाहरणके लिए, जब चूल्हेसे रोटियां निकाली जातीं और काटी जातीं तो उनमेंसे खूनकी दो-एक बूंदें निकलती हुई दिखायी देतीं! १५०१ में यह अनोखा दृश्य देखनेमें आया कि "पुरुषोंके कपड़ोंपर, स्त्रियोंकी नकाबोंपर, जिधर-तिधर सफेद तथा खूनी रंगके छोटे-छोटे-से 'क्रास' गिरे हुए दिखायी देते थे। इसीके दूसरे वर्ष दीवारोंपर खूनकी बूंदें दिखायी दीं, और साथ ही खूनी रंगके क्रास भी।" इस अमङ्गल-चिह्नसे लोग बहुत घबरा उठे। कुछ ही समय बाद महामारीका प्रकोप दिखायी दिया। सबको यही विश्वास हुआ कि 'क्रास' के पवित्र चिह्नका रक्तके रूपमें प्रकट होना भगवान्‌का कोप जतलाता है। कुछ दशाब्दियों बाद एक प्रकृति-विज्ञान-वेत्ताने यह मत प्रकट किया था कि उक्त रक्त-चिह्न एक खास किस्मके पतिङ्गोंकी विष्ठाके अतिरिक्त और कुछ नहीं थे। पतिङ्गोंका आधिक्य ही महामारीके लिए पर्याप्त कारण था।

बाल्मीकीय रामायण तथा महाभारतमें भी युद्ध अथवा किसी महा-अमङ्गलके पूर्व रक्त-वृष्टिका उल्लेख पाया जाता है। बहुत सम्भव है, इसका कारण ढूंढ़नेसे भी किसी यथार्थ प्राकृतिक तथ्यका पता लग जायगा। युद्धके पूर्व भूकम्प आदिका उल्लेख भी रामायण तथा महाभारतमें पाया जाता है।

यहूदियोंका युग-युगव्यापी संहार

श्री विजनकुमार शर्मा

शताब्दियोंसे यहूदियोंपर जो घोर वीभत्स, पैशाचिक अत्याचार होते चले आये हैं, उनके रक्त-रञ्जित वर्णनोंसे इतिहासके पृष्ठके पृष्ठ अत्यन्त लोमहर्षक रूपसे रंगे पड़े हैं। ईसाई जनता मातृभूमि-विताड़ित, गृहहीन, चिर-भ्रमण-शील निस्सहाय यहूदियोंको कभी फूटी आंखों न देख सकी और उनके सामूहिक ध्वंसको उसने सदा अपना परम धार्मिक कर्तव्य माना है। मध्ययुगमें इस दानवी अत्याचारने सबसे अधिक विकराल रूप धारण किया था, पर न्यूनाधिक मात्रामें यहूदियोंपर इस समय तक जुल्म होते चले आये हैं। वर्तमान समयमें हिट्लरने उस विद्वेषाग्निको फिर नये सिरेसे भड़काया है जो किसी अंशमें निर्वापित हो चुकी थी। इस लेखमें हम विशेष रूपसे मध्ययुगके यहूदियोंपर होनेवाले अन्धेरोंपर प्रकाश डालकर उनकी रोमाञ्चकर विभीषिकाको नग्न रूपमें व्यक्त करनेकी चेष्टा करेंगे।

मध्ययुगमें जब यूरोपमें गैर-ईसाइयोंकी संख्या बढ़ने लगी तो कैथलिक चर्चने 'काफिरों' को समूल विनष्ट करनेका निश्चय कर लिया। इन काफिरोंमें यहूदियोंकी ही संख्या अधिक थी, यद्यपि मुसलमान भी कुछ कम तादादमें नहीं थे। यहूदियोंके प्रति ईसाइयोंका विद्वेष मुसलमानोंकी अपेक्षा बहुत अधिक था। यद्यपि ईसामसीहके समयसे ही यहूदियोंको ईसाई लोग प्रतिहिंसाकी दृष्टिसे देखने लगे थे, तथापि इस उत्कट रक्त-पिपासु प्रतिहिंसाको वे बारहवीं शताब्दीके पहले पूर्ण रूपमें परिणत नहीं कर पाये थे।

यहूदियोंके विनाशके लिए कैथलिक चर्चने एक 'पवित्र न्यायालय' स्थापित करवाया, जिसमें 'अविश्वासियों'का विचार होता था और ईसाई धर्मके विरुद्ध उनके 'षड़यन्त्रों' को प्रमाणित करनेकी चेष्टा की जाती थी; अन्तको उन्हें ऐसे कठोर दण्ड दिये जाते थे कि जिनका वर्णन पढ़नेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बहुत-से दण्डितोंको किसी सार्वजनिक स्थानमें एक-साथ जलाया जाता था। दर्शकोंकी भीड़ इस कदर लग जाती थी कि बहुत-से आदमी दम घुटकर मर जाते थे, बहुत-से कुचल जाते थे। प्रसिद्ध फ्रेञ्च लेखक वाल्टेयर (Voltaire) का कहना है, ऐसे अवसरोंपर जब कोई एशिया-निवासी घटनास्थलपर पहुंचता तो वह इस सन्देहमें पड़ जाता कि कोई उत्सव मनाया जा रहा है, विधिपूर्वक बलिदान हो रहा है—अथवा हत्याकाण्ड मचा हुआ है! ऐसे अवसरोंपर दण्डित यहूदियोंको जलानेके पूर्व सारे शहरमें एक महीने पहले ही ढिंढोरा पिटवा दिया जाता। दण्डके लिए जो दिन निश्चित किया जाता उस दिन पहले वास्तवमें एक उत्सव मनाया जाता और तब जाकर चिताओंमें यहूदी जिन्दा जला दिये जाते। जलानेके पहले बहुधा जनता अपनी प्रतिहिंसाकी अमानुषिक प्रवृत्तिको तृप्त करनेके लिए दण्डितोंको नाना पाशविक उपायोंसे पीड़ित करती थी; किसीपर कोड़ोंकी मार पड़ती थी, किसीको तप्त लौह-शलाकाओंसे दाघ दिया जाता, किसीके शरीरमें स्थान-स्थानमें सुइयां गोद दी जाती थीं। असहायोंको असह्य यन्त्रणाओंसे छटपटाते देख वह हिंसोन्मत्त जनता जिस उन्माद-हर्षसे

जीवित मनुष्योंकी होली जलाये जानेका एक रोमाञ्चकर दृश्य। इस चित्रमें दिखाया गया है कि मध्ययुगमें यहूदी लोग किस प्रकार सामूहिक रूपसे जिन्दा जलाये जाते थे।

उल्लसित होती थी उसका उल्लेख नहीं हो सकता। बहुतोंको गधोंपर चढ़ाकर शहरमें फिराया जाता था और साथ ही उनकी नङ्गी कमरोंपर कोड़ोंकी असहनीय चोटें पड़ती जातीं।

यद्यपि यहूदियोंका विचार 'न्यायालयों' में नियमपूर्वक होता था और विचार होनेके बाद वे दण्डित किये जाते थे, तथापि अधिकांशतः उनपर 'षड़यन्त्रों' के झूठे दोष लगाये जाते थे और नाना प्रकारके मर्मान्तक कष्ट देकर उनके मुंहसे उनका 'दोष' स्वीकार कराया जाता था, और दोष स्वीकार करनेके बाद उनको अवश्य किसी-न-किसी प्रकारका पाशविक दण्ड दिया जाता। यह सारी कार्रवाई तथा उसका परिचालन करनेवाली संस्था Inquisition (जिसका शाब्दिक अर्थ है 'जांच') के नामसे इतिहासमें विख्यात है।

मध्ययुगमें इस 'इनक्विजिशन' का जोर यूरोपमें सर्वत्र रहा, पर स्पेनमें इसने चौदहवीं शताब्दीमें जो विकराल रूप धारण कर लिया था, वह कल्पनातीत है। स्पेनमें उस समय यहूदियोंके अतिरिक्त 'अविश्वासियों' में मूर लोगोंकी संख्या भी यथेष्ट थी। वे इसलाम-धर्मके अनुयायी थे और बड़े सभ्य, विद्वान् और उद्यमी थे। उन्होंने स्पेनकी ईसाई जनतामें सभ्यता तथा संस्कृतिका यथेष्ट प्रचार किया था। चौदहवीं शताब्दीमें स्पेनमें मूरोंका प्रताप बहुत-कुछ ढीला पड़ गया था और ईसाइयोंकी शक्ति अत्यधिक सुसङ्गठित हो गयी थी। 'इनक्विजिशन' की लहर जब यूरोपके अन्य स्थानोंसे स्पेनमें आयी थी तो पहले तो कुछ समय तक शान्त रही, पर बादको उसकी उग्रता इतनी बढ़ी कि मूरों और यहूदियोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। अकेले १३९१ में वहां १०,००,००० गैर-ईसाई कत्ल किये गये अथवा जिन्दा जला डाले गये!

यहूदी उस युगमें भी वर्तमान युगकी तरह सर्वश्रेष्ठ पूंजीपति और बैङ्कर थे। इसलिए जब तक मूरोंसे स्पेनिश ईसाइयोंका युद्ध छिड़ता रहा तब तक यहूदियोंपर अधिक अत्याचार इसलिए नहीं किया गया कि उनसे युद्धके अवसरपर शासकवर्गको आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी। जब मूरोंका विनाश साधित हो चुका तो 'स्टेट' और 'चर्च' ने मिलकर अपनी सारी शक्ति यहूदियोंके विनाशमें लगा दी। यह निश्चय किया गया कि जहां तक बन पड़े उन्हें कत्ल किया जाय तथा जला दिया जाय और इसके बाद जितने बचें उन सबको देशसे खदेड़ दिया जाय। यह नियम सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें बना। डाक्टर आइजाक अलब्रावेनाल तथा अन्य एक यहूदी सेठको जब इस नये नियमकी अमानुषिकताका हाल

मालूम हुआ तो उन्होंने स्पेनके तात्कालिक राजा फर्दिनेन्दको ३,००,००० स्वर्णमुद्रा देकर उसे रद्द करवानेकी चेष्टा की। फर्दिनेन्द धनके लोभमें फंसने लगा था, पर उसके एक अनुचरने कहा कि "जिन यहूदियोंने केवल तीस रौप्यमुद्रामें प्रभु ईसाको बेंचकर उन्हें शूलीपर चढ़वाया था, उन्हें किसी भी मूल्यपर क्षमा करना घोर पाप है!"

फलतः यहूदियोंके सामूहिक विनाशका 'बिल' पास हो गया! परिणाम यह हुआ कि कई लाख यहूदी मार डाले और जलाये गये, और कई लाख देशसे सदाके

यहूदियोंके जलाये जानेका दूसरा दृश्य।

लिए निकाल दिये गये। यहूदियोंकी इस वीरताकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है कि उन्होंने निष्ठुरसे निष्ठुर अत्याचार सहन करना स्वीकार किया, पर अत्याचारियोंका धर्म ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ हजार यहूदी विवश होकर ईसाई धर्म स्वीकार करनेको बाध्य हुए थे, पर अत्याचारके विराट् स्वरूपकी तुलनामें उनकी संख्या नगण्य है।

यहूदी लोग एकदम निरपराध थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वे लोग अपने ऊपर शताब्दियोंसे किये गये अत्याचारोंको एक मुहूर्तके लिए भी नहीं भूल सकते थे। उनकी संख्या अल्प होनेपर भी उनका आर्थिक बल उस समय भी पूर्णतः परिपुष्ट था, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। वे खुल्लमखुल्ला ईसाइयोंसे युद्ध करनेमें एकदम असमर्थ थे, पर गुप्त षड्यन्त्रोंका जाल रचनेमें निपुण थे और नाना कूट उपायोंसे चर्च तथा शासक सम्प्रदायके बीच वैमनस्यका भाव उत्पन्न करनेके प्रयत्नमें बहुधा लगे रहते थे। पर कुछ विशेष-विशेष प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली यहूदी ही इन गुप्त षड्यन्त्रोंमें सम्मिलित रहते थे, शेष सब यहूदी निरपराध थे। पर हिंसक ईसाइयोंके लिए दोषी तथा निर्दोषी सब समान थे।

उस युगके इस अन्धेरपर विचार कीजिये कि कोई भी सार्वजनिक दुर्घटना चाहे किसी भी मानवी अथवा प्राकृतिक कारणसे घटती तो उसके लिए यहूदियोंको उत्तरदायी ठहराया जाता! चौदहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें यूरोपमें स्थान-स्थानसे कुंओंके पानीके सड़नेके समाचार आने लगे और जनतामें किसी गुप्त प्रचारक दलने यह अफवाह फैला दी कि यहूदियोंने अपने प्रति किये गये अत्याचारोंका बदला लेनेके लिए ईसाइयोंके सामूहिक विनाशके उद्देश्यसे कुंओंमें विष डाल दिया है। यहूदी लोग ग्रीक और हिब्रू भाषाओंमें पारङ्गत होनेके कारण उस समय ओषधि-विज्ञानमें ईसाइयोंकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़े हुए थे। इस कारणसे भी लोगोंका यह सन्देह दृढ़ हो गया कि वास्तवमें उन्होंने कुओंके पानीमें विष मिला दिया है। इस अफवाहने ऐसा अनर्थ मचाया कि जहां-तहां यहूदी निर्मम भावसे

कत्ल किये जाने लगे। फ्रान्समें केवल वरगण्डीमें ही ५०,००० यहूदी मार डाले गये! एक अफवाह इस आशयकी भी फैली कि कोढ़ियोंने कुंओंका पानी खराब किया है। इसके फलस्वरूप १३१३ में फ्रान्समें तात्कालिक राजा फिलिपके आदेशानुसार देश-भरके सब कोढ़ी जिन्दा जला दिये गये; पर अन्तको इस सम्बन्धमें यहूदियोंका दोष ही निश्चित माना गया। जनता ऐसी उत्तेजित हो उठी थी कि शासकवर्गकी आज्ञाकी प्रतीक्षा किये विना ही वह स्थान-स्थानमें यहूदियोंके घरोंपर आक्रमण करके स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंका कोई लिहाज न कर सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूपसे उनके सर्वनाशमें लग गयी। यहूदी कत्ल किये गये, लूटे और जलाये गये। उन्हें मार-मारकर जबर्दस्ती उनके मुंहसे 'दोष' स्वीकार कराया गया। जर्मनीमें जगह-जगह यहूदी-विद्वेषी गीत रचे और गाये जाने लगे। स्ट्रासबूर्गमें एक दिन रविवारके अवसरपर सैकड़ों यहूदियोंको एक-साथ कैद करके उन्हें शहर-भरमें फिराया गया और अन्तको यहूदियोंके कब्रिस्तानमें उन सबके लिए बहुत बड़ी कब्र खोदी गयी। उल्लसित, उन्मत्त जनताकी भीड़के सामने सब कैदी उस कब्रके भीतर डाले गये और उनके ऊपर लकड़ियोंके गट्ठरके गट्ठर डालकर आग लगा दी गयी! म्युनिसिपलिटीमें इस आशयका बिल पास हुआ कि पूरी एक शताब्दी तक कोई भी यहूदी म्युनिसिपल अहातेके अन्दर रहने अथवा प्रवेश करने नहीं पायेगा। जिन-जिन कर्जदारोंके प्रामिसरी नोट यहूदियोंके पास थे वे सब कर्जदारोंको वापस कर दिये गये और सब सम्पत्ति मजदूरों तथा कारीगरोंमें बांट देनेका हुक्म हुआ। पर बहुत-से कारीगरोंने यहूदियोंके उस 'रक्त-शोषित' धनको लेनेसे इनकार कर दिया, यद्यपि अधिकांश व्यक्तियोंकी अर्थ-लोलुपताकी अमानुषिकता देखने योग्य थी।

जर्मनीके अन्तर्गत मुएलहौजेनमें एक भी यहूदी जिन्दा नहीं छोड़ा गया; नार्दहौजेनके अधिकारीवर्गने शहरके सब यहूदियोंको 'प्रभुकी प्रसन्नता और ईसाई सम्प्रदायके उपकारके उद्देश्यसे' जला डालनेकी आज्ञा दे दी। म्युनिसिपलिटीने यह निश्चय किया कि यहूदियोंके जो मकान और कब्रें जलायी गयी हैं उनकी

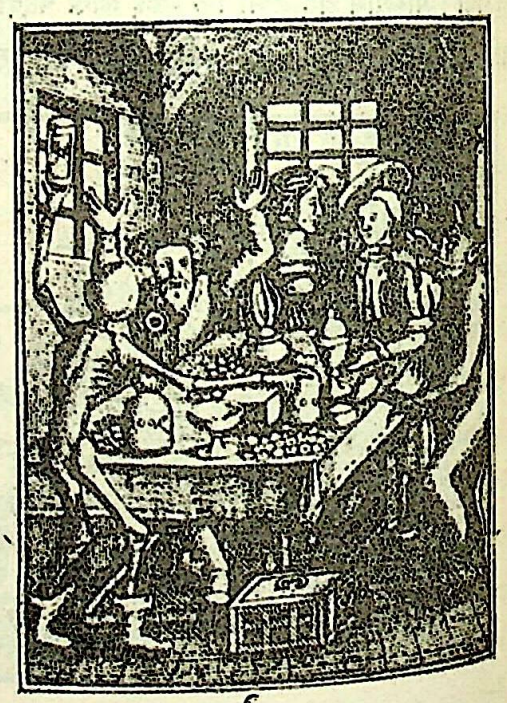

मौत और शैतान एक यहूदी महाजनको पकड़ लाये हैं।
(यह चित्र मध्ययुगके ईसाइयोंकी मनोवृत्तिका परिचायक है।)

ईंटोंसे ईसाई-गिर्जोंकी मरम्मत की जाय। बासलमें उत्तेजित जनता यहूदियोंके विनाशके लिए यह पैशाचिक उपाय काममें लायी कि राइन नदीके किनारे शहरके बाहर, एक लकड़ीका शेड तैयार करके उसके भीतर यहूदी बन्द किये जायं और तब उस शेडपर

आग लगा दी जाय। मायेन्सके निवासियोंने स्थान-स्थानपर ऐसी होलियां जलाकर यहूदियोंको स्वाहा किया कि वहांके गिरजेकी खिड़कियोंके शीशे भी उनकी आंचसे गल गये! इन दानवी होलियोंमें एक हजारसे भी अधिक यहूदी भस्म हुए थे, ऐसा कहा जाता है। स्पेयेरमें उन्मत्त जनताने यहूदियोंको कत्ल करके उनकी लाशोंको शराबके पीपोंमें बन्द करके राइन नदीमें बहा दिया!

कहा जाता है कि इन सब पैशाचिक अत्याचारोंसे यहूदी ऐसे पागल हो गये थे कि बहुतोंने अपने मकानोंपर स्वयं अपने हाथसे आग लगाकर कुटुम्ब-सहित अपनेको जला डाला! कान्सटेन्स नगरके एक यहूदीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि जब वह ज्यादतियोंको सहन न कर सका तो उसने त्राण पानेके लिए ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया; पर कुछ ही समय बाद उसे इस बातपर ऐसा पश्चात्ताप हुआ कि अपने मकानपर स्वयं आग लगाकर वह अपने बाल-बच्चों तथा धन-रत्नों सहित भस्म हो गया। कहा जाता है कि जब मकानमें आग धधक रही थी तो मरनेके पूर्व उसने बाहर खड़ी जनताको लक्ष्य करके कहा—"हम लोग ईसाई बनकर जिन्दा रहनेकी अपेक्षा धर्मात्मा यहूदियोंकी तरह मरना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं।"

एसीलिङ्गनमें सारी यहूदी जनता अपने धर्म-मन्दिरमें बन्द होकर स्वयं आग लगाकर जल मरी। इस हृदय-विदारक, उत्कट लोमहर्षक दृश्यकी कल्पना कीजिये कि यहूदी मातायें अपने हाथसे अपने प्यारे बच्चोंको पकड़-पकड़कर उस महाचितामें डालती जाती थीं, और इसके बाद स्वयं उस कालाग्निमें स्वेच्छासे कूद पड़ती थीं! यह सब इसी भयसे कि जीवित रहनेपर उन्हें बलपूर्वक ईसाई धर्ममें दीक्षित किया जायगा! अपने धर्म और जातीयताके प्रति यहूदियोंका कितना कट्टर विश्वास था, कैसी उत्कट श्रद्धा थी, इस बातका प्रमाण उक्त घटनाओंसे भली भांति मिल जाता है। वर्तमान समयमें भी यहूदियोंमें उसी अविचलित रूपमें जातीयताका भाव पाया जाता है। फ्रेङ्कफर्टमें भी यहूदी सामूहिक रूपसे जलाये गये और

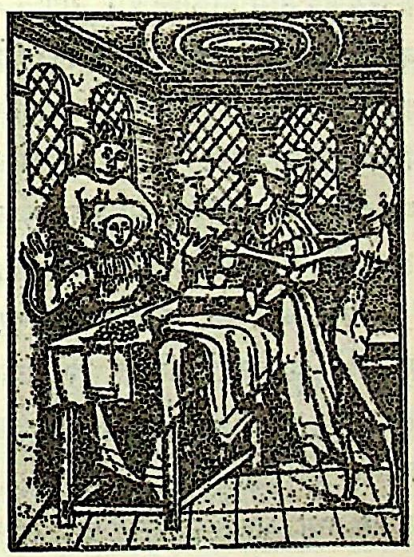

मौत और शैतान पुराने कपड़ोंके एक यहूदी व्यापारीको विचारके लिए खींच लाये हैं।
(यह चित्र पूर्व चित्रकी नकलमें अङ्कित किया गया है)

जो बचे, वे स्वयं जल मरे। वाइजेनजीमें एक भी यहूदी जीता नहीं छोड़ा गया। एगेरमें यहूदियोंके सामूहिक ध्वंसकी निशानी अब तक पायी जाती है; जिस स्थानपर वहां यहूदी कत्ल किये गये थे उस गलीका नाम अभी तक 'हत्याकी गली' के नामसे विख्यात है।

गोटलाण्ड नामक एक दूसरे जर्मन शहरमें डीट्रिख नामका एक व्यक्ति (जो ईसाई था) सन्देहपर जलाया गया। मरनेके पहले अपनी स्वीकारोक्तिमें उसने कहा कि

"मैंने एक यहूदी सेठके लड़केसे तीस मार्क रिश्वतके बतौर लेकर जर्मनीके भिन्न-भिन्न नगरोंमें कुंओंके पानीमें विष मिलानेका काम किया। सेठके लड़केने इस कामके लिए मुझे विषकी तीन सौ थैलियां दी थीं। मैंने तीन शहरोंका पानी गन्दा किया और वहां महामारी फैल गयी। मैं भागकर ल्यूवेक चला आया और वहां 'डाइस' (एक तरहका चौकोर पांसा) में यहूदीके दिये हुए तीस मार्कोंको हार गया। मैंने एक दूसरे यहूदीसे दस मार्क लिये और उसने मुझे विषका एक बक्स भी दिया। मैं स्थान-स्थानमें जाकर कुओंमें विष डालता चला गया।" बहुतोंका कहना है कि यह कृत्रिम स्वीकारोक्ति उससे बलपूर्वक, असह्य पीड़न द्वारा ली गयी थी। सम्भव है, इस स्वीकारोक्तिमें सत्यका अंश भी वर्तमान हो। पर अधिकांश स्थानोंमें यहूदियोंके विरुद्ध विष-प्रयोगके जो अभियोग लगाये गये थे वे एकदम झूठे थे, यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है।

जर्मनीमें तथा अन्य स्थानोंमें उस समय प्रायः सब कुंए बीमारी फैलनेके डरसे ढक दिये गये थे। जनताको वास्तवमें यह विश्वास हो गया था कि उनमें विष डाल दिया गया है। केवल नदियों अथवा वर्षाके जलसे ही लोग काम चलाते थे। बहुत-से लोगोंने अपने मकानोंके भीतर कुंए खुदवाये ताकि उनका पानी कोई खराब न करने पायें; पर अधिकांशतः उन कुंओंसे भी गंदला और नीले रङ्गका पानी निकलता दिखायी देता था। लोगोंको अनुभव हो चुका था कि ऐसा पानी पीनेसे महामारी तत्काल फल जाती है।

असल बात यह थी कि उस समय यूरोपियनोंका रहन-सहन बहुत गन्दा था और वे लोग स्वयं अपनी गन्दगीसे कुंएका पानी विषैला कर डालते थे और फलस्वरूप नाना रोगोंसे पीड़ित रहते थे। महामारीके समय उस पानीने और भी घातक स्वरूप दिखाना शुरू कर दिया था। चूंकि यहूदी लोगोंका आयुर्वेद-सम्बन्धी ज्ञान उस युगमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था, इसलिए उन्होंने उस पानीको उपयोगमें लाना बन्द कर दिया था। इस बातसे ईसाइयोंके मनमें सन्देह उत्पन्न हो गया कि उन लोगोंने स्वयं कुओंका पानी गन्दा किया है, अन्यथा उसके घातक प्रभावसे वे पहलेसे ही परिचित कैसे हो गये!

कुंओंके पानीके खराब होनेका एक दूसरा कारण भी था। इस सम्बन्धमें मध्ययुगका एक लेखक लिखता है:—

"बहुत-से विद्वानोंकी यह राय है कि यहूदी लोगोंपर पानीमें विष मिलानेका झूठा अभियोग लगाया गया है और केवल असह्य पीड़नके कारण ही उन लोगोंने अपना दोष स्वीकार किया है। कुंओंका पानी विषैला होनेका कारण विद्वान् लोग १३४८ के भयङ्कर भूकम्पको बताते हैं। इस भूकम्पके फलस्वरूप पृथ्वीकी भीतरी तह फट पड़ी थी और उसके भीतरसे गलित धातु तथा उग्रगन्धयुक्त विषैली गैसें निकलनेसे कुंओंका पानी खराब हो गया। यहूदी लोग प्राकृतिक विज्ञानमें पारङ्गत होनेके कारण इस कारणको समझ गये थे और इसीलिए उन्होंने कुओं तथा सोतोंका पानी पीना बन्द कर दिया था। यही कारण सारी यहूदी जातिके लिए विनाशक सिद्ध हुआ।"

यहूदियोंके प्रति ईसाई जनताका विद्वेष धार्मिक कारणोंसे उतना नहीं बतलाया जाता जितना उनके धनाधिपत्यके कारणसे। यहूदियोंका आर्थिक सङ्गठन सदा जबर्दस्त रहा है। उनपर निरन्तर असंख्य

अत्याचार होते हुए भी इस अधिकारसे वे किसी युगमें कभी वञ्चित नहीं किये जा सके, इस बातसे उनकी प्रकृतिगत आर्थिक कूटबुद्धिका पता चलता है, जो निस्सन्देह आश्चर्यजनक है। मध्ययुगमें उन्हें किसी भी व्यापारमें हाथ डालनेकी अनुमति न मिलनेपर भी वे गुप्त रूपसे अपना आर्थिक चक्र चलाते रहते थे। विशेष करके सूदपर रुपया कर्ज देनेका व्यवसाय उन्होंने पूर्णतः अपने हाथमें ले लिया था। ईसाइयोंको धर्मतः सूदखोरीकी मनाही होनेसे इस क्षेत्रमें यहूदी

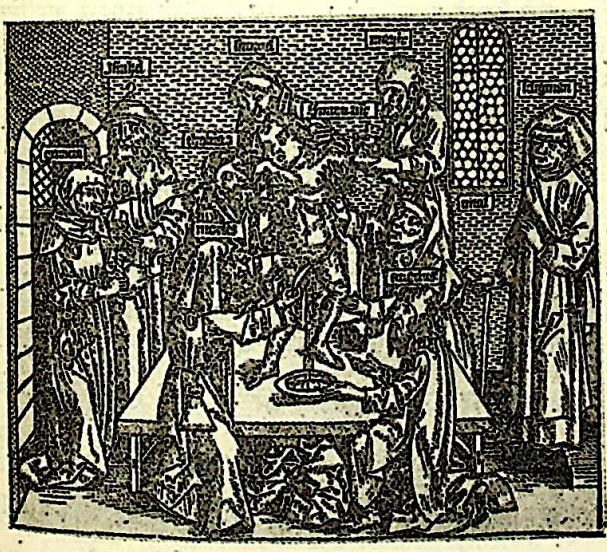

यहूदी साइमन नामके ईसाई बच्चेको 'हलाल' कर रहे हैं। (यहूदियोंके विरुद्ध मिथ्या अभियोग लगाकर उनके विरुद्ध ईसाई जनताको भड़कानेके लिए यह चित्र अङ्कित किया गया था।)

सर्वेसर्वा बन गये थे। फलतः व्याजकी दर भी उन्होंने बहुत बढ़ा दी थी। २१ से लेकर ८६ प्रतिशत तक व्याज वे लोग लेते थे और कभी-कभी यह दर १२७ से लेकर १६६ प्रतिशत तक भी बढ़ जाती थी। इसके अतिरिक्त जमीन्दार लोग आवश्यकता पड़नेपर उनसे एकमुश्त रकम कर्ज लेकर वर्ष-भरका लगान उनके हाथ गिर्वी सौंप देते थे। वसूलीका समय होनेपर यहूदी लोग घर-घर जाकर सब लगान वसूल कर लेते थे और यही उनका व्यवसाय होनेके कारण वे इस सम्बन्धमें किसी-पर दयाभाव नहीं दिखाते थे—एक कौड़ीकी भी छूट किसीको नहीं देते थे। यहूदी-विद्वेषी ईसाइयोंसे जातीय अपमानका बदला लेनेका अवसर उन्हें यहींपर मिलता था। इन सब कारणोंसे ईसाई जनता उनसे अधिकाधिक जलने लगी थी। पादड़ी लोग उनसे इसलिए असन्तुष्ट थे कि उनके आर्थिक शोषणके कारण उनकी (ईसाई धर्माध्यक्षोंकी) आमदनी घटती जाती थी। जमीन्दारोंसे रात-दिन लेन-देनका सम्बन्ध होनेके कारण यहूदियोंके साथ उनका सद्भाव रहता था और वे यथासम्भव उन्हें पादड़ियोंके शासनसे मुक्त रखते थे। इस कारणसे भी पादड़ी लोग यहूदियोंसे जलते थे।

परिणाम यह हुआ कि ईसाई धर्माध्यक्षोंने यहूदियोंके विरुद्ध जनताको उभाड़नेके लिए तरह-तरहकी अफवाहें फैलानी शुरू कर दीं। यह कहा गया कि वे लोग ईसाई बच्चोंको पकड़-पकड़कर उनका बलिदान करते हैं, उन्हें शूलीपर चढ़ाकर ईसामसीहकी खिल्ली उड़ानेके उद्देश्यसे उनकी मृत्युका प्रहसन करते हैं। यह अभियोग भी उनके विरुद्ध लगाया गया कि वे ईसाई बच्चोंको खरलमें कूटकर चूर-चूर कर डालते हैं या उनके सारे शरीरमें पिन गोदकर, सिरोंपर परेखें ठोंककर उन निरपराधोंको असह्य यन्त्रणा देते हैं। साइमन नामके एक बच्चेके सम्बन्धमें कहा गया कि यहूदियोंने ईस्टरके दिन उसकी हत्या की और जब वह कब्रमें गाड़ दिया गया तो वह फिर प्रकट होकर यहूदियोंके अत्या-चारोंका वर्णन करने लगा और फिर अन्तर्धान हो गया। यह समाचार सर्वत्र फैल गया और लोग

स्थान-स्थानसे उसकी कब्रके दर्शनके लिए आने लगे थे। उस लड़केकी यादगारमें एक गिरजा बनाया गया जिसके भीतर एक चित्रमें यहूदियों द्वारा उसकी हत्याका दृश्य दिखाया गया ताकि जनता उसे देखकर यहूदियोंके विरुद्ध अधिक उत्तेजित हो उठे। इसी प्रकार जूरिखमें भी एक बच्चेके सम्बन्धमें यह अफवाह फैलायी गयी कि उसे यहूदियोंने कत्ल किया है। उसकी कब्रको भी लोग पीरकी तरह पूजने लगे।

१४०१ में स्विटजरलैण्डमें जब यहूदियोंका सामूहिक वध किया जा रहा था तो लोगोंने एक यहूदीको पकड़कर उसे असह्य यन्त्रणा देकर उसके मुंहसे यह स्वीकार करवाया कि उसने एक ईसाई बच्चेका रक्त तीन स्वर्णमुद्रा देकर खरीदा था।

जर्मनीमें ईसाई धर्माध्यक्षोंने उन लोगोंके सामाजिक बहिष्कारका नियम बना दिया जो यहूदियोंके हाथका खाना खाते हुए अथवा उनके साथ नहाते हुए पाये जाते थे। यहूदियोंसे अनुचित सम्बन्ध स्थापित करनेके अपराधमें बहुत-सी ईसाई लड़कियोंका देश-निकाला कर दिया गया था। बहुत-सी लड़कियोंको इसी अपराधमें एक-दूसरेके ऊपर रखकर, अच्छी तरह बांधकर, एक-साथ जला दिया गया।

सभी ईसाई यहूदी-विद्वेषी नहीं थे। खासकर विद्वान् लोग इस सामूहिक अत्याचारकी पाशविकताके विरुद्ध थे। उस आतङ्कवाद और धार्मिक कट्टरताके जमानेमें भी कुछ ईसाई ऐतिहासिकोंने यहूदियोंपर होनेवाले अत्याचारोंके सच्चे कारण निर्देशित किये हैं, जिससे उन लेखकोंके विचार-स्वातन्त्र्य और निर्भीकताका पता चलता है। फ्रिट्शेने यहूदियोंके धनको उनके विनाश और ईसाइयोंके विद्वेषका मूल कारण बतलाया है। ह्विङ्गेर भी यही कारण निर्देशित करते हुए लिखता है—"यदि यहूदी निर्धन होते और भिन्न-भिन्न यूरोपियन देशोंके शासकवर्ग उनके ऋण-भारसे दबे हुए न होते तो वे कभी न जलाये जाते।" मध्ययुगके एक दूसरे लेखकका कहना है—"यहूदियों-पर होनेवाले अत्याचारोंके कारण बहुत-से बताये जा रहे हैं; पर वास्तविक कारण मेरी रायमें यही है कि जमीन्दार, किसान, मजूर, सिपाही आदि सभीके ऊपर उनके कर्जका बोझ लदा हुआ है जिससे वे मुक्त होना चाहते हैं।" छोजनरका कहना है कि यहूदियोंने जब ईसाई राष्ट्रोंको और ऋण देनेसे इनकार कर दिया तो वे बिगड़ बैठे। धनके लोभके कारण ही बीचमें एक बार जमीन्दारोंको देशसे विताड़ित यहूदियोंको फिर वापस बुलाना पड़ा था। यहूदियोंसे उन्हें इतना अधिक टैक्स मिलता था कि उसकी कमी उन्हें खटकने लगी थी। जिस धीरतासे यहूदी असहनीय अत्याचार सहन करते थे, जिस वीरतासे मृत्युकी असह्य यन्त्रणा चुपचाप स्वीकार कर लेते थे, उससे उस युगके समसामयिक लेखक प्रभावित हुए बिना न रह सके और यहूदियोंके प्रति उनके मनमें घृणाका भाव होनेपर भी इस सम्बन्धमें वे अपने आश्चर्यको न रोक सके। मार्कग्रेव नामक एक पादड़ीने अपनी आंखों एक स्थानपर ४० यहूदियोंको जलानेका दृश्य देखा। इस सम्बन्धमें वह लिखता है—"इन हठी यहूदियोंने (यदि मैं अपनी आंखों न देखता तो मुझे इस बातपर विश्वास न होता) दण्डाज्ञाको प्रसन्नमुख होकर सुना और भगवान्की महिमाका गीत गाते हुए, हंसते-खेलते हुए, वे भट्टीपर जलते रहे। उनकी दृढ़ता अत्यन्त आश्चर्य-जनक थी।" इस दृढ़ताको उक्त पादड़ीने 'शैतानकी कारसाजी' और 'धूर्तोंकी हठकारिता' बतलाया है।

महामारियोंके समय यहूदी लोग अपने स्व-जातीयोंको छूतके भयसे न त्यागकर किस प्रकार उनकी सेवामें लगे रहते थे, इस बातका उल्लेख भी उस समयके कुछ ईसाई लेखकोंने किया है। एक लेखक लिखता है—"हम लोग महामारीके समय अपने पड़ोसियोंको किसी प्रकार भी सहायता देनेसे इनकार करते हैं; हमारी यह प्रवृत्ति ईसाई धर्मके विरुद्ध है। तुर्क तथा यहूदी लोग अपने स्वजातीयोंके साथ इस सम्बन्धमें जैसा व्यवहार रखते हैं वह अनुकरणीय है और उसे देखकर हमें अपने सम्बन्धमें लज्जा आनी चाहिए। यह कैसे अपमानकी बात है कि हम लोग, जो अपनेको ईसाई बतलाते हैं और ईश्वरके वचनसे पूर्ण परिचित हैं, गैर-ईसाइयों और यहूदियोंसे धार्मिकता सीखनेके लिए बाध्य हों।"

यहूदी डाक्टरों और हकीमोंका किस कदर अपमान किया जाता था, यह बात भी ध्यान देने योग्य है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिब्रू, अरबी तथा ग्रीक भाषाओंका बोध होनेसे वे लोग ईसाई डाक्टरोंसे बहुत अधिक उन्नति कर चुके थे और यूरोपके सभी देशोंके राजा-रईस तथा जन-साधारण भी उन्हें ईसाई डाक्टरोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व देते थे। पर जबसे 'इनक्विजिशन' प्रारम्भ हुआ तबसे उनपर घोर नियन्त्रण आरोपित किये जाने लगे। स्थान-स्थानमें अधिकारियोंने यह आज्ञा जारी कर दी कि जो व्यक्ति यहूदी डाक्टरोंसे चिकित्सा करायेगा वह समाज तथा धर्मसे बहिष्कृत कर दिया जायेगा, उन्हें ईसाई कब्रिस्तानमें गाड़नेकी आज्ञा नहीं दी जायेगी और उनकी लाशपर 'पवित्र मन्त्र' नहीं पढ़े जायेंगे। यह निषेधाज्ञा जारी होनेपर भी लोग चोरी-छिपे यहूदी डाक्टरोंको इलाजके लिए बुलाते थे, क्योंकि उनके बिना उनका काम नहीं चलता था। जर्मनीके पादड़ी 'सर्मन' के समय लोगोंको यह उपदेश देते थे कि यहूदी डाक्टरोंसे बीमारीका इलाज कराना, उनकी दी हुई ओषधिका सेवन करना घोर पाप है। मध्ययुगमें यहूदी डाक्टरोंपर इस प्रकार नियन्त्रण डालनेका फल यह हुआ कि धीरे-धीरे उनकी संख्या घटती चली गयी और अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें जब यूरोपमें महामारीने फिर एक बार अपना कोप दिखाया तो यहूदी जनता बिना चिकित्साके मरने लगी। ईसाई डाक्टरोंने उनका इलाज करनेसे कतई इनकार कर दिया। इस सम्बन्धमें प्रागमें सिनेट तथा मेडिकल फैकल्टीकी तरफसे जो लिखा-पढ़ी हुई थी, उससे इस अन्धेरका पूरा पता चलता है।

यहूदियोंपर आधुनिक युगमें भी समय-समयपर अत्यन्त निष्ठुर अत्याचार होते रहे हैं और इस समय भी हो रहे हैं। पर मध्ययुगके जिस अन्धेरका वर्णन इस लेखमें किया गया है वह पैशाचिकतामें संसारके इतिहासमें अपना जोड़ नहीं रखता।

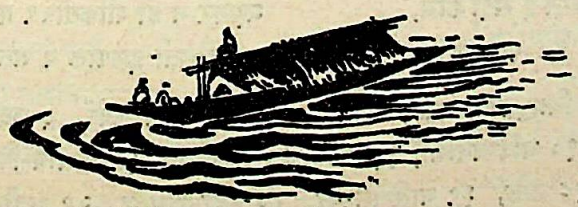

दूर फ़नाए जहान (विश्व-संहार पर)

दुनियामें कोई ख़ास न कोइ आम रहेगा,
न साहबे मक़दूर न नाकाम रहेगा,
ज़रदार न बेज़र न बद अञ्जाम रहेगा,
शादी न गमो गर्दिशे-अय्याम रहेगा,
न ऐश न दुख-दर्द न आराम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

यह चर्ख़ जो खाता है पड़ा गुम्बदार रक़१,
यह चांद यह सूरज ये सितारे हैं मुअल्लक़२,
लौहो कलम३ व अर्श बरीं४ साबितो मुतलक़,
सब ठाठ य इक आनमें हो जावेगा हूहक़,
आगाज़ किसी शैका न अञ्जाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

ले आलमे अरवाह ५ से ता आलमे जिन्नात ६,
इन्सान परी हूरो मलिक जिन्नो खब्सियात,
क्या अब्रो हवा जङ्गलो कोह७ अर्जो समुवात८,
इक फूंकमें उड़ जायंगे ज्यों नक्शे तिलस्मात,
हुशियार न पुख़्ता न कोई ख़ाम९ रहेगा,
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

गर इल्मोहुनरसे है कोई ख़ल्कमें मशहूर,
या कश्फ़१० करामातमें है साहिबे मक़दूर,
या एकका है नामोनिशां खल्क़में मशहूर,
इक दममें पलक मारते हो जायंगे सब दूर,
मस्तूर११ न मशहूर न गुमनाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

मुख़्तारे१२ के ख़सरे१३ से जो करते हैं सदा काम,
या जब्रसे मजबूरीके रखते हैं कई दाम,
जब आके फ़ना१४ डालेगी इक गर्दिशे अय्याम१५,
इक आनमें उड़ जायगा सब चीज़का इल्ज़ाम,
मुख़्तार न मजबूर न खुदकाम१६ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

अब दिलमें बुरे अपने जो कहलाते हैं अग़यार१७,
सौ मक्रो दग़ा करते हैं इक आनमें तैयार,
जब आके फ़ना डालेगी सरपर कहीं इक वार,
इक वारके लगते ही य हो जावेंगे सब पार,
मक्र न हीला न कोई दाम१८ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

करते हैं जो अब दिलसे रियाज़ातो१९ इबादात२०,
या उम्रको खोते हैं ब रिन्दी२१ व ख़राबात,
जब आके फ़ना छोड़ेगी शमशीरका इक हात,
फिर साफ़ है दोनोंकी गुनहगारी वो ताआत२२,
तब ज़िन्द२३ न आबिद२४ न मै आशाम२५ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

झगड़ा न करे मिल्लतो२६(अ) मज़हबका कोई यां,
जिस राहमें जो आन पड़े खुश रहे हर आं२६,
जुन्नार२७ गले या कि बग़ल बीच हो क़ुरआं,
आशिक़ तो कलन्दर२८ हैं न हिन्दू न मुसलमां,
काफ़िर न कोई साहिबे इसलाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

जो शाह कहाते हैं कोई उनसे ये पूछो,
दारा व सिकन्दर वे गये आह किधरको ?
मग़रूर न हो शौकतो२९ हशमत३० पै वज़ीरो,
इस दौलतो इक़बाल पै मत भूलो अमीरो,

---

१ चक्कर, २ लटकन, ३ चित्रगुप्तका खाता, ४ ऊंचा आसमान, ५ व्यक्तियों, ६ जहां जिन (दानव) रहते हैं, ७ पहाड़, ८ पृथ्वी, आकाश, ९ कमजोर, १० भविष्यवाणी, ११ रक्षक, १२ प्रतिनिधि, १३ हिसाब-किताबकी बही, १४ मौत, १५ दिन, १६ स्वतन्त्र पेशा, १७ गैर, १८ जाल, १९ नास्तिकपना, २० पूजा-प्रार्थना, २१ अघोरपन्थी, २२ तपस्या, २३ दानव, २४ भक्त, २५ शराब पीना, २६ अ रीतिरिवाज, २६ समय, २७ जनेऊ, २८ एक तरहका फ़कीर, २९ शान, ३० मानमर्यादा

तब मुल्क न दौलत न सरञ्जाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

व्योपार जो करते हैं हरएक चीज़का ज़रदार,
आगे भी दुकानें थीं कई और कई बाज़ार,
जिस तौरका अब चाहिए कर लीजिये व्योपार,
फिर जिन्स न दल्लाल न मालिक न ख़रीदार,
न नक्द न कुछ क़र्ज़ न कुछ दाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

अब जितनी खड़ी देखो हो आलममें इमारात३१,
या झोंपड़े दो कौड़ीके या लाखके महलात,
क्या पस्त मकां क्या य हवादार मकानात,
इक ईंट भी ढूंढ़े कहीं आनेकी नहीं हात,
दालान न हजरा३२ न दरो बाम३३ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

यह बाग़ो चमन३४ अब जो हरएक जामें रहे फूल,
यह शाख़ य गुञ्चा३५ य हरे पात य फल-फूल,
आ जावेगी जब बादे ख़िज़ां३६ उनके उपर भूल,
हर ख़ार३७ की हर फूलकी उड़ जावेगी सब धूल,
न ज़र्द नहीं सुर्ख़ न सियह फाम३८ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

मैख़्वार भी कितने हुए यां मैके३९ मुलाक़ी४०,
साक़ी भी कई हो गये महबूब ज़िनाक़ी४१,
ला जाम४२ कोई भरके जो हो और भी बाक़ी,
फ़ुर्सत है ग़नीमत कोई दमको अरे साक़ी!
न मै न सुराही न तेरा जाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

यह आशिक़ो माशूक़ जो करते हैं बहम चाह,
आगे भी बहुत आशिक़ो माशूक़ थे वल्लाह!
वह शख़्स कहां जाते रहे ऐ मेरे अल्लाह!
इस बातसे मालूम हुआ अब तो यही आह!
न इश्क़ न आशिक़ न दिलाराम४३ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

टुक ग़ौर करो अब हैं कहां मजनूं व फ़रहाद,
लैली कहां शीरीं कहां वह नाज़४४ व बेदाद४५,
जो फूल खिले वाह वह सब हो गये बरबाद!
हम तुम भी ग़नीमत हैं सुन ओ यार परीज़ाद!
वां हुस्न न यां इश्क़का हङ्गाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

महबूब४६ बना, जिसने तुम्हें हुस्न दिया है,
उसने ही हमें आशिक़ जांबाज़ किया है,
मिलना है तो मिल लो यही जीनेका मज़ा है,
सब नाज़ो४६(क) नियाज़४६(ख) आह य इक दमकी हवा है।
फिर हिज्र४७ न कुछ वस्ल४८ का पैग़ाम४९ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

मिलनेसे हमारे जो तुम्हें आता है इल्ज़ाम५०,
आने दो पै तुम हमसे मिले जाओ सहर५१ शाम,
फिर हुस्न कहां अपने रखो कामसे तुम काम,
झक मारते हैं वह जो तुम्हें करते हैं बदनाम,
तूफ़ान न बहतान५१(क) न इल्ज़ाम रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

*

यह शेरो ग़ज़ल अब जो बनाते हैं ज़बानी,
आगे भी बहुत छोड़ गये अपनी निशानी,
दीवान बनाया कोई क़िस्सा कि कहानी,
कुछ बाक़ी 'नज़ीर' अब नहीं सब चीज़ है फ़ानी,
ख़मसा५२ न ग़ज़ल फर्द५३ न ऐहाम५४ रहेगा;
आख़िर वही अल्लाहका इक नाम रहेगा।

—'नज़ीर' अकबराबादी

---

३१ भवन आदि, ३२ कोठरी, ३३ चबूतरा, ३४ फुलवारी, ३५ कली, ३६ पतझड़, ३७ कांटा, ३८ रङ्ग, ३९ शराबके, ४० जलसे, ४१ व्यभिचारी, ४२ प्याला, ४३ प्यारा, ४४ घमण्ड, ४५ अन्याय, ४६ प्यारा, ४६(क) मान, ४६(ख) विनय, ४७ वियोग, ४८ संयोग, ४९ संदेशा, ५० दोष, ५१ सवेरे, ५१(क) पागलपना, ५२, ५३, ५४ एक प्रकारके पद्य।

मर्त्य !

पलभरकी छायामय माया !

जापानी नाटककार श्री० हियाकूजो कुराता

मनुष्य

मैंने मनुष्य-जन्म धारण किया है। मैं पृथ्वीका आभूषण हूं। सूर्य मेरे लिए अपने प्रकाशकी वर्षा करता है। बस, मैं सदा...हां अनन्त काल तक जीवित रहना चाहता हूं। इस धूसरवर्ण धराको देखिये। मैं इसे पावों-तले रौंदता हूं। यह हरियाली, ये फल-फूलोंसे लदे तरुगण, वसन्तकी मद-माती वायुके नशेमें मस्त ये चहचहाते पक्षी...ललनाओंका लावण्य और नन्हें-नन्हें बच्चोंकी प्यारी माया...यह सब मुझे आनन्दमें विभोर कर रहे हैं।...मैं जीवित रहना चाहता हूं! जीवित रहना! (कुछ देर तक चुपचाप कुछ विचारोंमें डूब जाता है) इस जीवनमें मुझे बहुत कड़वा अनुभव हुआ है; मानवी चिन्ताओंने मुझे छान डाला। जब इनकी स्मृति मुझे सताती है तो मेरा प्रेम लौकिक जीवनसे बढ़ता जाता है। धन्य हो यह रहस्यमय जीवन! मैं इससे चिपट जाना चाहता हूं। कितना प्रिय और कैसा महान् है! मैं अदम्य इच्छाओंके गहन उद्यानमें धंसकर जी भरकर रस लूटना चाहता हूं। मैं हजार वर्ष, दस हजार वर्ष...नहीं नहीं, सदा जीवित रहना चाहता हूं!

एक नकाबपोश (*उसके सामने प्रकट होता है*)

तू कौन है?

मनुष्य

मैं सृष्टिका राजा मनुष्य हूं।

नकाबपोश

ठीक! ठीक! तू मरणाशील मर्त्य है।

मनुष्य

मैं आपकी बात नहीं समझता। मैं तो यही जानता हूं कि मैं जीवित हूं।

नकाबपोश

तू घोर भ्रमके चक्करमें फंसा हुआ है।

मनुष्य

मेरे पिता स्वर्गमें हैं, दादा कभीसे वैकुण्ठमें बस गये हैं और सभी बुजुर्ग इस संसारसे चल बसे हैं। तो भी—न मालूम क्यों—मुझे विश्वास नहीं होता कि मैं मरूंगा।

नकाबपोश

ठीक है! ठीक है! तू मायाजालका शिकार बना हुआ है। मायाका नागपाश भयङ्कर है।

मनुष्य (*कुछ सोच-विचारके बाद*)

ओह! सच है! मैं सचमुच कालसे डरता हूं। मुझे भय है कि आपने मेरा मर्म पहचान लिया है। हां! हां! मेरे अन्तस्तलमें कभी-कभी मौतका डङ्का-सा बजता है। मैं जानता हूं कि मुझे मरना पड़ेगा। मेरे बापदादे भी मुझे यह बता गये हैं।

नकाबपोश

और यह ध्रुव सत्य है। तू भी सब मर्त्योंकी तरह मरेगा। पशु-पक्षी, पेड़-पौदे, जलचर-थलचर और सब जीवोंकी भांति तू भी गलेगा और सड़ेगा।

मनुष्य

आप कौन हैं? आप ऐसे हृदयवेधी शब्द कहते हैं कि वे तीरकी भांति कलेजेको छेद रहे हैं।

नकाबपोश

मैं अमरका सेवक हूं—उसका एक अदना नौकर हूं। क्या तू मुझे नहीं पहचानता?

मनुष्य

कुछ ऐसा ख्याल तो आता है कि आपको पहचानता हूं।...नहीं...मैं आपको नहीं जानता।

नकाबपोश

लेकिन मैं बार-बार तेरे मुंहसे अपना नाम सुनता हूं। तू तो कभी-कभी मेरे नामकी ऐसी रट लगा देता है कि मैं उसे सुनकर झल्ला उठता हूं।

मनुष्य

भला, मैं आपसे पूछता हूं कि आप वह...तो नहीं हैं। कृपया क्षणभरके लिए अपना मुंह तो उघाड़िये।

नकाबपोश

नहीं ! यह नहीं हो सकता । मैं मरनेवाले जीवको—मर्त्यको अपना मुख नहीं दिखा सकता ।

मनुष्य

क्यों ? इसका क्या कारण है ?

नकाबपोश

जब मैं एक मरणशील जीवको देखता हूं तो शर्मके मारे मर जाता हूं ।

मनुष्य

आह ! किस अपार घृणाके साथ आप अपने मुंहसे 'मर्त्य' 'मरनेवाला जीव' आदि शब्द निकाल रहे हैं ।

नकाबपोश

तू अवश्य मरेगा, क्योंकि तू अधम पापी है । पापरहित मनुष्य नहीं मरता—वह अमर है । मर्त्य और पापी ये दोनों शब्द एक ही माने रखते हैं । पापी ही मरता है ।

मनुष्य

आपका विचार है कि सब मर्त्योंने पाप किया है ?

नकाबपोश

हां ! मैं यही कहता हूं और यही कारण है कि वे सब मरते हैं और मरेंगे । *(वह अन्तर्ध्यान हो जाता है)*

मनुष्य

ठीक है । यह वही है ।...हां ! हां ! यह वही है । वह स्वप्न था या सत्य ? पहले तो मैं समझा था कि वह स्वप्नकी माया है, पर अब सोचने-विचारनेके बाद मुझे विश्वास हो रहा है कि वह जीता-जागता प्राणी है । उसके भीतर मैंने जो संहारकी सर्वनाशकारी ज्वालाकी धमावृत लोल शिखायें देखी हैं वे भी मुझे भयङ्कर, पर कठोर और कटु सत्य मालूम पड़ती हैं । वह जीवित और सत्य है; पर है कौन ? यदि मैं उसके मुखमण्डलपर एक नजर डाल सकता । ओह ! मैं उसे बेपर्दा देखना चाहता हूं । ऐसा हो सकता तो मैं उससे फिर न डरता । आग और पानी भी सर्वनाशकर हैं; पर जबसे मैं इन दोनों तत्त्वोंको जानने लगा हूं, इनका भय मेरे दिलसे उठ गया है । अब मैं उनसे लाभ उठानेकी चिन्तामें रहता हूं । मैं जलके बलसे अपनी चक्की चलाता हूं और आगसे भट्ठी धधकाता हूं । मैं प्रकृतिके सब नियमोंको जानना चाहता हूं । इसलिए मैं यह भी चाहता हूं कि इस नकाबपोशका रूप देख लूं । मैं उसे छूना चाहता हूं और ठोंक-पीटकर बजानेकी इच्छा रखता हूं । यदि वह मेरे लिए रहस्यमय रह जाता है तो मेरे कलेजेसे आतङ्क न जायगा । सम्भवतः दुर्भाग्यके कारण मैंने आज उसे देखा । लेकिन नहीं नहीं... कोई परवाह नहीं ! मैं उसे जान जाऊंगा । यह सम्भव है कि मैं उसको भली भांति पहचान लूं । ओह ! यह विचित्र नकाबपोश ! देखो ! देखो ! वह फिर सामनेसे आ रहा है ।

(नकाबपोश सामनेसे आता है)

नकाबपोश

तूने मेरी फिर क्यों याद की ?

मनुष्य

हां...हां...मैंने आपका स्मरण किया था । इसलिए कि मैं आपका चेहरा देखना चाहता हूं ।

नकाबपोश

यह असम्भव है ।

मनुष्य

क्या इसका कोई उपाय नहीं है ?...

नकाबपोश

नहीं ! तू अपनी शक्तिसे बाहरकी बातकी लालसा कर रहा है ।...जब तक तेरी आंखें पापमें सनी हैं, तू मुझे नहीं देख सकता ।

मनुष्य

यदि मैं बलात्कारका उपयोग करूं...या अस्त्रशस्त्रोंका प्रयोग करूं तो ?

नकाबपोश

तू बड़ा चोट्टा है !

(मनुष्य नकाब खींचनेकी चेष्टा करता है ।)

नकाबपोश

तेरा नाश हो ! तेरे हाथोंका नाश हो !

(ऊपरसे बिजली कड़कती है । मनुष्य गिर पड़ता है । डाकिनियां-शाकिनियां, भूत, प्रेत आदि वहां छायारूपोंकी तरह घूमते हैं ।)

नकाबपोश

अब तूने वह अतुल बल देखा जिसकी तू डींग हांक रहा था।

मनुष्य

हां! मैंने अपने बलका पता पा लिया है। मैं जीवसंहार-के विचित्र दृश्य देख रहा हूं। विश्वके प्राणी मेरे सामने एक-दूसरेको खा रहे हैं। बाज कबूतरपर झपट्टा मार रहा है; भेड़िया मेमनेका शिकार करता है और सांप मेंढकको हड़-पता है। इस जलूसके आगे-आगे एक घुड़सवार आ रहा है जो कवच और शिरस्त्राणसे सुसज्जित है। मुझे यह मनुष्य-सा मालूम पड़ता है।

नकाबपोश

हां! वह सृष्टिका राजा है।

मनुष्य

वह विजयी है।

नकाबपोश

बेशक! पर वह सारी सृष्टिमें सबसे अभागा है।

मनुष्य

देखो! देखो! इस सरदारको देखो। घोड़ेको किस सर-पट चालसे आगे बढ़ा रहा है। (*परदेके भीतरसे भयंकर रणवाद्यकी कठोर ध्वनि सुनायी पड़ती है।*) इस प्रकार बेतहाशा वे कहांको भागे जा रहे हैं...वे तो प्रचण्ड तूफानकी तरह भागे जा रहे हैं।

नकाबपोश

वे सत्यानाशकी ओर दौड़ रहे हैं। वहांको छूट रहे हैं जहां वे सब जाते हैं जो मेरी परवा नहीं करते।

मनुष्य

सर्वनाशका क्या रोमाञ्चकारी दृश्य है!

(*सेना गुजरती है और रणसंगीत, जो कुछ ही पहले प्रचण्ड झञ्झावातकी तरह दिल दहला रहा था, अब धीमे-धीमे मधुर होने लगता है। दूरसे उसका सुर शान्त होते जाता है और अन्तमें बहुत कम रह जाता है। फिर भूत प्रेत चक्कर काटने लगते हैं और एकके पीछे एक अपने नाना प्रकारके छायामय रूप दिखाते हैं।*

नकाबपोश

इन्हें भली भांति गौरसे देख।

मनुष्य

मैं एक नवयुवक और नवयुवतीको देख रहा हूं। युवक अपनी मजबूत बाहोंमें तरुणीको दाबे है। सुन्दरीने बाहोंपर अपना सर लटका दिया है और उसका केशकलाप हवामें लहरा रहा है। दोनों स्वर्गसुखका अनुभव कर रहे हैं। प्रेम और स्नेहके नशेमें चूर होकर दोनों सौभाग्य-सागरमें उतरा रहे हैं।

नकाबपोश

इन्हें और गौरसे देख।

मनुष्य (*उन्हें ध्यानसे देखता है*)

नहीं! नहीं! वे तो रो रहे हैं। पुरुषने नारीको छोड़ दिया है। वह सिसक-सिसककर रो रहा है। अफसोस है कि उसका चेहरा निढाल हो गया है।

नकाबपोश

अब वे दोनों समझने लगे हैं कि उनका सौभाग्य कांचकी तरह चकनाचूर होने जा रहा है।

मनुष्य

क्या वे आपको नहीं पुकार रहे हैं?

नकाबपोश

हां! ऐसा समय आने लगा है। उनके हृदयोंमें इस आशङ्काने घर कर लिया है कि उनका जीवन अनित्य है, यह प्रेम असार है और सब सुख क्षणिक है। पर वे अभी तक अगर-मगरकी उधेड़-बुनमें पड़े हैं। वे दोनों अपने-आपको ठगनेमें अपना सौभाग्य समझ रहे हैं।

मनुष्य

पुरुष फिर स्त्रीका आलिङ्गन करने लगा है; पर इस बार नारी उसे धकियाकर अपनेको उसके पञ्जेसे छुड़ा रही है। वह उसे गालियां दे रही है।—छी! छी! पुरुषने युवतीको पकड़ लिया है और वह उसे जबर्दस्ती विनाशकी ओर ले जा रहा है। हाय! कैसा संहारमय दृश्य है।..... (*चिल्ला उठता है*) हे भगवन्!

नकाबपोश

यह घोर दण्ड उनको मिलता है जो मुझे जानना नहीं चाहते।

मनुष्य

पर मैं, मैं तो खूब जानता हूं कि आप सत्य पदार्थ हैं। आप मेरे सामने खड़े हैं और मुझसे बात कर रहे हैं। लेकिन मैं आपको भली भांति पहचानना चाहता हूं।

नकाबपोश

यह सब ठीक है; पर तू अपनी प्रखर बुद्धिसे मुझे जानना चाहता है। पर 'सृष्टिके राजा'! तुझे मालूम होना चाहिए कि तेरी सारी बुद्धि अभी बन्दरोंकी अक्लसे आगे नहीं बढ़ी है। मनुष्य अपनी बुद्धिसे पदार्थोंका केवल बाहरी रूप देख पाता है, उनके भीतर क्या तत्त्व छिपा है इसका उसे आभास भी नहीं होता।

मनुष्य

आप सर्वविध्वंसकारी रुद्र हो! आप सारे विश्वका संहार क्यों करते हैं?

नकाबपोश

सचमुच, मैं सबका संहार करता हूं; पर केवल उनको शुद्धात्मा और अमर बनानेके लिए।

मनुष्य

मैं भी अपापात्मा और जरामरणहीन बनना चाहता हूं। इसलिए अब मैं उन तत्त्वोंकी खोजमें लगूंगा जो आपकी प्रलयकारिणी शक्तिके बाहर हैं।

नकाबपोश

क्या तुझे कोई ऐसा तत्त्व मिला है जो दिग्-दिगन्त और विश्व-ब्रह्माण्डव्यापी मेरी सर्वसंहारिणी शक्तिसे बचा हुआ है?

मनुष्य

अब तक तो ऐसा पदार्थ देखनेको न मिला जो आपके हाथसे बचा हो तथा अमर कहा जा सके। विश्वविजयकी कामना, स्नेह, प्रेम, ज्ञान, विज्ञान सबपर आपकी कृष्ण छाया पड़ी हुई है।

नकाबपोश

मेरा यही कर्तव्य है। सब मर्त्य और विनाशशील पदार्थोंपर मैं मौतका नागपाश डालता हूं।

(कुछ समय तक दोनों स्तब्ध होकर एक-दूसरेको देखते रहते हैं।)

मनुष्य

मैंने एक चीज ऐसी पायी है जो स्थायी और अमर है। मुझे पूरा विश्वास है कि आप अब मेरे कायल हो जायेंगे।

नकाबपोश

भला, बताओ तो।

मनुष्य

मेरा प्यारा बच्चा। मैं गलित अङ्ग, पलित केश और बूढ़ा जर्जर होकर मर जाऊंगा; लेकिन मेरा पुत्र मेरी जगह नया जीवन पायेगा। मैं उसकी आत्मामें वे कामनायें बो जाऊंगा जो अपने जीवनमें पूरी न कर सका।

नकाबपोश

अफसोस है कि तू बड़ा नादान निकला।

मनुष्य

क्यों? मैंने क्या मूर्खता की?

नकाबपोश

तेरा पुत्र कालके गालमें समा गया है।

मनुष्य (फकसे रह जाता है)

हैं? क्या कहा? नहीं! यह सम्भव नहीं है।...

नकाबपोश

घबरा मत। देखो थोड़ी देरमें तेरे पास उसकी मृत्युका समाचार पहुंचने हीको है।

मनुष्य

आज प्रातःकाल ही तो मेरे पास घरसे पत्र आया था कि उसकी तबीयत ठीक है और वह खूब खेलता-कूदता तथा पढ़ता है।

नकाबपोश

वह तो अभी शामको मरा है।

मनुष्य

आप झूठ बोलते हैं!

(फिर सन्नाटा छा जाता है। मनुष्य नकाब-पोशकी ओर घूरकर देखता है।)

मनुष्य

हाय! आपकी आंखोंकी दृढ़ता और उनका आत्म-विश्वास मेरा कलेजा दहला रहा है। (*हाहाकारकी क्रन्दन-ध्वनिके साथ*) क्या सच ही मेरा सर्वनाश हो गया है?

नकाबपोश

परमात्मा तेरी रक्षा करे। (*जाने लगता है।*)

मनुष्य

अरे! ठहरिये! दो मिनट और रुकिये! क्या मेरे प्यारे पुत्रने मुझसे अपनी बीमारी छिपायी? हो सकता है उसने मुझे चिन्ता और व्याकुलतासे बचाना चाहा हो।

नकाबपोश

नहीं! यह बात नहीं है। तेरा लड़का कुछ ही घण्टे पहले तक हट्टा-कट्टा और तन्दुरुस्त था। स्कूल-भरमें उसके बराबर शक्ति किसी दूसरेमें न थी।

मनुष्य

तब क्या वह आत्मसम्मानकी रक्षाके लिए किसी दूसरेसे लड़ पड़ा था?

नकाबपोश

नहीं।

मनुष्य

तब वह कैसे मरा?

नकाबपोश

वह चिमनीसे गिर पड़ा।

नकाबपोश

(*मनुष्यको चुप्पी लग जाती है और वह काठकी मूर्तिकी भांति खड़ा रह जाता है। मालूम पड़ता है कि वह बेहोश हो गया है*)

नकाबपोश

धूप खिल रही थी। रङ्ग-बिरङ्गे कुसुमोंसे प्रफुल्लित क्रीड़ा-क्षेत्रमें तेरा लड़का अपने साथियोंके साथ खेल रहा था। उनमेंसे एकको न मालूम क्या सूझी कि बोल उठा—"सामनेके मकानकी छतपर जो चिमनी दिखायी दे रही है उसपर कोई चढ़ नहीं सकता। तेरे लड़केने मुसकराकर कहा—'मैं चढ़ूंगा।" वह छतपर गया, चिमनीपर चढ़ा और सब साथी उसके पराक्रम और फुर्तीका विजयगान कर रहे थे कि वह जमीनपर आ गिरा। सब हाय! हाय! करते रह गये कि यह क्या गजब हुआ।

मनुष्य

हाय रे! मैं तो जीता ही मर गया।

नकाबपोश

विधिका विधान देखो कि घण्टे-भर बाद एक आदमी मतवाली चालमें, पागलोंकी पोशाकमें पहुंचा और सीधा ऊपर चढ़कर चिमनी साफ कर आया। सपाटेसे ऊपर गया और दर्राटेसे नीचेको आया। उसका बाल भी बांका न हुआ।

मनुष्य (*सिसक-सिसककर*)

मेरी अज्ञानान्धकारसे ढपी हुई आंखोंके सामनेसे माया-का दुर्भेद्य परदा हटता जा रहा है। संसारमें एक ही पदार्थ अमर है। केवल कलाको कोई नहीं मार सकता। मैंने अब सबकी माया छोड़ी। अपने गरम आंसुओंके जलसे नाना रङ्ग मिलाऊंगा और उनसे चित्रपटपर अमर रूप-रेखाओंका अङ्कन करूंगा।...

नकाबपोश

महान् खेद है कि तुझे अमरत्वका खब्त हो गया है। इस बावलेपनमें तू यह नहीं सोच सक रहा है कि तू मर्त्य है और किसी भी समय रोगशय्यामें लेट सकता है। तुझे पता है कि कब बीमारी तुझे आन घेरेगी? इसके अतिरिक्त बीसियों उलझनें तेरी सफलताको रोकनेके लिए तैयार खड़ी हैं।

मनुष्य

धिक्कार है इस जीवनको!...नहीं! मैं कुछ नहीं भूला हूं। आपने मेरा सत्यानाश कर दिया है। मेरी सब आशाओंपर पानी फेर दिया है, मेरा स्वास्थ्य नष्ट कर दिया है।...ओह! अब मैं केवल अपने दुर्भाग्यकी नग्न मूर्ति बनकर यहां खड़ा हूं। हे महासन्तापके अवतार! अब मैं आपको समझा हूं। हे सर्वनाशके अप्रिय और अरुचिकर देवता। तेरे दर्शन होनेके बादसे मेरा सारा शरीर महाव्याधि-से जर्जर होकर अपने नाशका दृश्य देखनेके लिए छटपटा रहा है। मेरा अङ्ग-अङ्ग ढीला पड़ता जा रहा है।

नकाबपोश

तेरा ज्वर दो डिग्री और चढ़ा कि देखते-देखते तेरे हाथोंसे तूलिका गिर पड़ेगी।

मनुष्य

हा ! हन्त ! यह क्या दुर्दशा है।

नकाबपोश

क्या तू यह समझता है कि यदि मैं तेरे पास न आता तो तेरा यह बुरा हाल न होता ? तुझे आज ही ज्वरने पीड़ित किया है न ?

मनुष्य

जी हां ! मैं तो यही समझ रहा हूं। अब मेरे कल्याण-का केवल एक ही उपाय दिखायी दे रहा है। अशरणशरण भगवान्‌की शरण जाना। उससे अपने उद्धारकी प्रार्थना करना। प्रार्थना अमर है। उसका नाश कोई नहीं कर सकता। मनुष्य सब अवस्थाओंमें भगवान्‌को हाथ जोड़ सकता है। मृत्युशय्यामें लेटे-लेटे भी वह यह काम कर सकता है।

नकाबपोश

क्या तुझे इस समयके अपने मस्तिष्ककी दशा मालूम है ? अरे ! जरा-सी बातसे वह विचलित-डांवाडोल हो सकता है। उसपर हलका भी जोर पड़ा तो सर बहक जायेगा और फिर बिना चण्डू खाये ही चण्डूखानेकी उड़ाने लगेगा। ये होंठ जो प्रार्थना करना आरम्भ करेंगे, परमात्माको गाली देने लगेंगे। अथवा तुम तो भगवान्‌के चरणोंमें हाथ जोड़ोगे, पर वे हाथ भगवान्‌की सौम्य मूर्तिको कुरूप बना देंगे। तुम्हें पता न चलेगा; पर तुम चिड़ियाखानेके बन्दरकी भांति संसारको अपनी मूर्खता दिखाने लगोगे। हां ! हां यह सब दुनियामें होता है और हो रहा है।

मनुष्य (*सकपकाता है !*)

नहीं। यह सम्भव नहीं हो सकता।

नकाबपोश

भला, यह तो बता कि इसमें ऐसी क्या बात है जो सम्भव न हो। बल्कि मैं तो आये दिन यह तमाशा देख रहा हूं। तू क्या नहीं देख सक रहा है कि मनुष्य आपसमें लड़कर अपना सर्वनाश करनेमें महान् आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। मर्त्य कितना बड़ा मूर्ख है। मैं तो देखता हूं कि अधिकांश आदमी पागल हैं।

मनुष्य

सच तो यह है कि आप अत्यन्त निष्ठुर हैं। क्या आपमें दयाका लेश नहीं है ?

नकाबपोश

हां, मैं क्रूर-हृदय हूं, पर उतना ही जितनेकी प्राणियोंको आवश्यकता है।

(नेपथ्यसे विचित्र कल-कल ध्वनि सुनायी देती है। पशु-पक्षी और मनुष्य सबकी आवाजें इसमें स्पष्ट मालूम पड़ती हैं !)

मनुष्य *(थर-थर कांपकर)*

यह कैसा कलकल निनाद है ?

नकाबपोश

यह उन पशु-पक्षियों और मनुष्योंका विलाप है जिनको तूने कत्ल किया था।

मनुष्य

क्षमा कीजिये ! क्षमा कीजिये ! मैं अब अधिक सहन नहीं कर सकता।

(वह अपने दोनों हाथोंमें मुंह छिपाकर रोने लगता है)

नकाबपोश

रो ! रो ! अपने कर्मोंको रो ! तूने अब तक परोपकार, लोकहित, धर्म आदिके नामपर अपने ही भाइयोंको लूटा है, असंख्य मनुष्योंको चूसकर धन एकत्र किया है, पर असलमें तुझे अपने स्वार्थके अतिरिक्त कुछ न सूझा। और अब……

मनुष्य

सच है ! आप ठीक कहते हैं ! पर मैं हाथ जोड़ता हूं, अब अधिक पाप न गिनाइये।

नकाबपोश

यह ठीक है, क्योंकि वे अनगिनत हैं।

मनुष्य

मनुष्य-समाजका जीवन बिना परस्पर-संहारके नहीं चल सकता। ऐसा दिन ही नहीं आता कि जब हममें एक-दूसरेका नाश नहीं करता।

नकाबपोश

ये नृशंस पाप ही तुम्हें कालके कराल दांतोंके बीच चूरचूर कराते हैं।

मनुष्य

मैं फिर हाथ जोड़ता हूं कि मनुष्यकी दुर्गति और यन्त्रणाओंपर तरस खाकर मेरा नाश मत कीजिये।

नकाबपोश

नहीं! प्यारे! नहीं!.....यह मेरा काम नहीं है। दया और कृपा मुझसे बहुत दूर रहती है।

मनुष्य

तब आप संसारमें कौन-सा पुण्य कार्य करते फिरते हैं?

नकाबपोश

मैं? मैं मर्त्योंको मृत्युलोक भेजकर उनको शासना देता हूं।

(*गर्जन-ध्वनिके साथ भूकम्पसे रंगमंच डांवाडोल हो उठता है। मनुष्य पृथ्वीपर लोट पड़ता है। नकाबपोश अन्तर्ध्यान हो जाता है। सर्वत्र घोर अन्धकार छा जाता है। प्रलय-झटिकाकी सर्वनाशी, प्राण कंपानेवाली, भयंकर घर्घर ध्वनि सुनायी पड़ती है। कुछ समय बाद वह थम जाती है और आकाश कुछ पीला-सा दिखायी देता है। केवल एक छोटा हिस्सा खुला हुआ और नीला है। इस आकाशमें बादल उड़ रहे हैं और मालूम हो रहा है कि ये बादल मनुष्योंकी लोथोंके बने हैं।*)*

पर्दा गिर जाता है।

——

* (हियाकूजो कुराता जापानी लेखकोंमें अपना विशेष स्थान रखता है। यद्यपि उसकी उम्र अभी ४२ है; पर उसकी प्रसिद्धि विश्वभरमें महक रही है। इस लेखकने जीवन-मरणके दुर्भेद्य अन्धकारके भीतर पैठकर उसका रहस्य खोलनेका प्रयास किया है। यह कला-विधाता 'शिव' का उपासक है। उसका विचार है कि दृष्टिके आगे सदा 'शिव' का ध्यान रखनेसे सत्य और सुन्दर स्वयं अपना रूप प्रकट करते हैं। रोमां रोलांने इस जापानी साहित्यिककी उपमा सङ्गीताचार्य वेटोफेनसे दी है। वेटोफेनका एक प्रसिद्ध पद है—"Das Schoene zum Guten" अर्थात् 'सुन्दर जिससे शिव प्रसन्न हो।' यही आदर्श कुराताका भी है। उक्त एकाङ्की वार्तालापमें इसका और कुराताके गम्भीर, शुद्ध और रसप्राण साहित्यका परिचय मिलता है। —हेमचन्द्र जोशी)

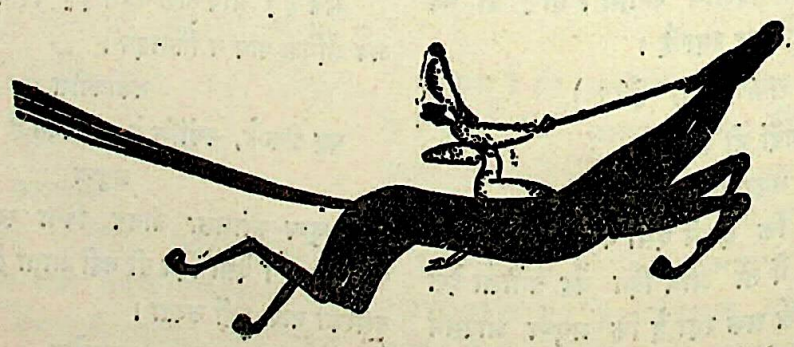

'साधो, ई मुरदनके गांव'

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

१९३४ की १५वीं जनवरी बिहारके इतिहासमें एक अमर तिथि हो गयी।

बिहारमें अमर तिथियोंकी कमी नहीं। सीताका जन्म-दिवस, बुद्धका बोधि-प्राप्ति-दिवस, चन्द्रगुप्तका ग्रीक-विजय-दिवस, अशोकका धर्मराज-संस्थापन-दिवस, महेन्द्रका लङ्का-अभियान-दिवस, स्कन्दगुप्तका शक-निष्कासन-दिवस, समुद्रगुप्तका दिग्विजय-दिवस, विद्यापतिका निधन-दिवस, शेरशाहका मुगल-मान-मर्दन-दिवस और मीरकासिम और कुंअरसिंहके विद्रोह-दिवस आदि ऐसी अनेकों तिथियां हैं, जिनको कोई बिहारी कभी भूल नहीं सकता। ये अमर तिथियां हैं। किन्तु इस जन-धन-संहारिणी तिथिने भी उन्हीं-की अमरताके समकक्ष अपने लिए स्थान बना लिया। जिस तिथिमें दो मिनटके अन्दर ही बीसों हजारके लगभग मानव-पुतलोंका देखते-देखते संहार हो गया, लाखों गगन-चुम्बी अट्टालिकायें ध्वस्त और पस्त हो गयीं, सैकड़ों मीलोंकी लम्बाई-चौड़ाईमें फैला हुआ हरा-भरा भूक्षेत्र सदियों तकके लिए मरुभूमिमें परिणत हो गया, भला उस तिथिको भी कौन भूल सकता है? जिसने भारतके बाग—उत्तरी बिहार—को सदाके लिए तहस-नहस कर डाला, वह ऐतिहासिक अमरता क्यों न प्राप्त करे? किन्तु हाय री यह अमरता !!!

१५ वीं जनवरीकी दुपहरिया ढल चुकी थी—घड़ीकी घण्टेकी सूई दोके अङ्कसे कुछ आगे खिसक चुकी थी। मिनटकी सूई १५वेंको पारकर धड़ाधड़ आगे बढ़ रही थी। सब लोग अपने-अपने काममें व्यस्त थे। प्रेसमें कम्पोजीटरों-के स्टिक टिक-टिक कर रहे थे, मशीनें हड़हड़ा रही थीं। सम्पादक दुपहरियाकी आलस्य-जनित जमुहाई लेते हुए अपनी लेखनीको कागजपर दौड़ा रहे थे। बाजारोंमें खरीद-फरोख्तका बाजार गर्म था। दुकानोंपर भीड़ थी। ईद और सोमवारी अमावस्याके कारण यह भीड़ और भी बढ़ गयी थी। सड़कोंपर आने-जानेवाले लोगोंकी रेलपेल थी। मोटरकी भोपूं, साइकिलकी टनटन् और इक्केवालों और बग्घीवालोंका 'हटिये बाबू, बच जाओ'—का सम्मिलित स्वर एक अजीब ध्वनिकी सृष्टि कर रहा था। कचहरियोंमें 'शमला', अचकन, गाउनका नाच जारी था। कितनोंके भाग्यका फैसला हो रहा था—कोई हंस रहा था, कोई रोता था। स्कूलों और कालेजोंमें सौभाग्यसे, टिफिनके कारण लड़के इधर-उधर धूम मचा रहे थे। खोमचेवालोंके निकट भीड़ थी—जहां-तहां क्लास-रूममें भी ऊधम था। देहातके लोग अपने-अपने खेतोंमें काम कर रहे थे। इस साल, प्रायः सब जगह, भयङ्कर बाढ़के कारण अगहनीकी फसल खराब हो गयी थी। अतः उनका पूरा भरोसा रबीपर अटका था। रबीमें फूल आ रहे थे, वे भौंरोंके ऐसे उन फूलोंके चारों ओर मड़रा रहे थे—कितने उमङ्ग और उत्साहके साथ!—कि इतने हीमें यह सत्यानाशी अवसर आ पहुंचा।

शहरके लोग तो अपने ही कोलाहलमें मस्त थे—उनके दूसरा शब्द सुननेके लिए कान कहां। किन्तु देहातमें इस भूकम्पके पहले कुछ आवाजें सुनायी दीं। मेरे गांव बेनीपुर, मुजफ्फरपुरके लोग कहते थे कि उन्हें पहले हवाई जहाजकी ऐसी कुछ घनघन करती—हहाती हुई आवाज सुनायी दी। कुछ दिनोंसे मुजफ्फरपुरमें हवाई जहाज प्रायः उड़ा करते हैं—एक क्लब भी बना है। खेतोंमें काम करते हुए लोगोंने समझा कि हवाई जहाज आ रहा है, उसे देखनेकी गरजसे उठ खड़े हुए। घरकी बहुयें आंगनमें आकर आकाशकी ओर ताकने लगीं। कहीं-कहीं आंधीकी ऐसी हड़हड़ाहट मालूम हुई तो कहीं तोप छूटनेकी-सी आवाज हुई। इन सब अस्वाभाविक आवाजोंको सुनकर लोग चौकन्ने होकर इधर-उधर ताकने-झांकने लगे कि इतने हीमें पृथ्वी हिल उठी। यह सवाल कुछ मनोरञ्जक है कि ये आवाजें किधरसे आती हुई सुनायी दीं। मैंने इस बारेमें कई जगह दरियाफ्त किया। कहींके लोग पश्चिम-दक्षिण-कोणसे आयी बताते हैं तो कहींके पश्चिम-उत्तर-कोणसे। कुछ जगह पूरबसे आती हुई भी बतायी जाती हैं। खैर, यह काम भूगर्भशास्त्रियोंका है कि इसका वैज्ञानिक अनुसन्धान करें। मुझे तो केवल उस प्रलयका चित्रण करना है।

तो, पृथ्वी हिल उठी ! पहले तो दो-तीन बार हल्का-सा कम्पन हुआ। उत्तरी बिहारमें भूकम्प बहुत ही कम हुआ करता है। मैंने अपने होशमें कभी इसका अनुभव नहीं किया था। हां, चर्चा सुनी थी ; पढ़ा तो था इस सम्बन्धमें बहुत ही। अतः पहले तो लोग चकित-से रह गये। फिर 'भूकम्प' 'भूकम्प' का शोर होने लगा। लोग घरोंसे भागने लगे। किन्तु इसके बाद ही तो पृथ्वी विचित्र ढङ्गसे उछलने लगी। कभी नीचे-ऊपर होती, कभी अगल-बगल करवटें-सी लेती। अब तो भागना भी मुश्किल था। जो भागते थे, वे गिर पड़े ; खड़े हुएको बैठ जाना पड़ा। कितने तो बेहोश हो गये। जो होशमें थे, उनकी बोलती बन्द हो गयी। भूकम्पके साथ ही मकानोंका हिलना-डुलना प्रारम्भ हुआ। पहली लहरको तो किसी कदर मकानोंने बर्दाश्त किया ; किन्तु जब पृथ्वी करवटें लेने लगी तो वे हड़हड़ाकर गिरने लगे। जो खूब मजबूत बने थे, वे तो दो-तीन बार करवटें लेनेके बाद गिरे। बड़े-बड़े ऊंचे मकान एक बार इस करवट और एक बार उस करवट इस तरह झुकते थे, जैसे मुहर्रमके कमजोर ताजिये झुका करते हैं। किन्तु ईंट, सुर्खी, चूने और सिमेण्ट इस भीषण झकझोरको कब तक सह सकते थे। बड़े पक्के मकान भी, ताशके घरकी तरह, ढह पड़े। हड़हड़, धड़धड़, धड़ाम्-धड़ाम्—से कान फटने लगे। सुर्खी और चूनेकी लाल मटमैली धूलने शहरके बाशिन्दोंकी आंखोंको कुछ देरके लिए बिलकुल बेकाम कर दिया।

किन्तु आंखें बेकार हुईं कुछ देरके लिए उनकी, जो जीवित बचे थे। कितनोंकी आंखें तो तब तक सदाके लिए बन्द हो चुकी थीं। आदमीकी इतनी बुरी मौत भी हो सकती है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

ज्योंही घर हिलने-डुलने लगे, लोग भागे। इस हड़बड़ीमें मां अपने बच्चेको छोड़ भागी, बेटेने अपने बूढ़े अपङ्ग बापको छोड़कर रास्ता नापा। अपनी छोड़कर दूसरेकी सुधि ही नहीं थी। इस सम्बन्धमें एक मित्र अपनी कहानी कह रहे थे। हाल हीमें उन्हें एक पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ है। उनकी पत्नी अपने इस दुलारे बच्चेको खाटपर सुलाकर घरमें कोई काम कर रही थी कि मकान बेतरह डोल उठा। बेचारी भागी। किन्तु ज्योंही दरवाजेके निकट आयी कि उसे बच्चेकी याद आयी। वह विचित्र असमञ्जसमें पड़ गयी—भागे या घरमें जाय। मकान इतना हिल रहा था कि पैर भी स्थिर नहीं रहता था। वह बेचारी किवाड़की चौखट पकड़कर खड़ी हो गयी। इधर यह चौखट पकड़े खड़ी है, उधर उसके घरमें एक-एक चीज उसके बच्चेके खाटके निकट गिर रही है ! यह आलेपर रखा ट्रङ्क गिरा—बच्चेके सिरहानेमें ; यह छतसे टंगा शीशेका फानूस गिरा—बच्चेके पैरसे थोड़ा ही हटकर ; यह एक ईंट खिसककर चली आ रही है—गिरी बच्चेकी बगलमें। यों ही चीजें गिरती रहीं, मां चिल्लाती रही, किन्तु हिम्मत नहीं कि आगे बढ़े, उधर बच्चा सो रहा है। सौभाग्यसे मकान नहीं गिरा ; कम्पन भी कम हुआ ; मां दौड़ी हुई गयी और बच्चेको लेकर सड़कपर भाग आयी।

खैर, इस माता और इस बच्चेकी तो किसी कदर सौभाग्यसे रक्षा हो गयी। किन्तु सभी तो ऐसे सौभाग्यशाली थे नहीं। कितने भागकर घरसे निकल ही रहे थे कि घर गिर पड़ा और दब मरे। शहरोंमें, जहांकी गलियां तङ्ग थीं या मकान ऊंचे थे वहां तो और अनर्थ हुए। घरसे भागकर लोग सड़कोंपर आये और वहीं दोनों तरफके घरोंके गिरकर उनकी कब्र तैयार कर दी। स्त्रियों और बच्चोंपर तो सबसे ज्यादा बीती। तिर्हुत-प्रदेश पर्दा-प्रथाका सुदृढ़ किला है। असूर्यम्पश्या यहांकी अधिकांश नारियोंका सम्यक् विशेषण है। जिसने कभी अपने पैर घरसे बाहर नहीं डाले, वह बेचारी भागती कहां। इस आकस्मिक विपत्तिको देखकर ही वे घबरा गयीं। या तो घरके किसी कोनेमें दबककर बैठ गयीं, या इधर-उधर, घरमें ही दौड़ती रहीं। इतने हीमें घर गिरे और वे सदाके लिए सो गयीं। यद्यपि अभी तक कोई पक्का तखमीना नहीं बनाया गया है। किन्तु इसमें कोई शक नहीं कि स्त्रियों और बच्चोंकी मृत्यु-संख्या पुरुषोंकी अपेक्षा कई गुना अधिक हुई होगी।

जीवधारियोंके लिए मृत्यु अवश्यम्भावी है। उसके कराल दाढ़से कोई अपनी रक्षा नहीं कर सकता। किन्तु इस बुरी तरहसे मरनेकी कल्पना भी भयानक है। कोई माता अपने बच्चेको दूध पिला रही थी, वहीं खतम हो गयी। स्कूलोंमें मास्टर लड़कोंको पढ़ा रहे थे, लड़कोंके साथ ही वहीं दब मरे। दूकानोंपर गाहक सौदा खरीद रहे थे, गाहक और सौदागर दोनोंका सदाका सौदा वहीं पट

गया! कोई अपनी प्यारी पत्नीसे मीठी-मीठी बातें करके दुपहरिया गंवा रहा था, दोनों वहीं रह गये। एक जगह एक दम्पतिकी ऐसी लाश मिली है जो परस्पर आलिङ्गन-सूत्रमें बंधे थे। मालूम होता है, इस विपत्तिको देखकर, घबराकर दोनों एक-दूसरेसे लिपट गये कि मृत्युने उनके प्रेमपर सदाके लिए मुहर लगा दी! कोई साहब गाड़ीपर आ रहे थे; भूकम्पकी खबर लगते ही गाड़ीसे कूदकर भागे, कोचवान अलग भागा। किन्तु मौतके फन्देसे अपनेको किस तरह बचा पाते! सामनेका मकान गिर गया—इधर घोड़ा मरा पड़ा है, उधर कोचवान पड़ा है, उधर बाबू साहब पड़े हैं! डाक्टर साहब घरमें बैठे दूसरे मरीजके लिए प्रेस्क्रिप्शन काट रहे थे; उनका अपना ही वारण्ट कट गया। रोगीपर भी दया नहीं! सीतामढ़ीका पूरा अस्पताल एक-बारगी बैठ गया और कितने रोगी कुचल मरे!

किसी-किसीको तो जैसे इस भूकम्पने घेरकर शिकार किया। एक डाक्टर साहब अपने घरसे निकल चुके थे कि उन्हें अपने बच्चेकी याद आयी। दौड़कर भीतर गये कि उनका घर गिर पड़ा—बच्चे सहित वहीं रह गये। हम लोगोंके एक राष्ट्रकर्मी मित्र थे। भूकम्पके समय पाखानेमें थे, वहांसे भागे। घरसे बिलकुल बाहर आ गये कि उन्हें अपनी बच्चीकी याद आ गयी। उसे देखनेकी व्यग्रतामें वे आंगनकी ओर लपके। उनका अपना घर सुरक्षित रहा। किन्तु वे अपने घरकी बगलसे जा रहे थे। पड़ोसीकी दीवाल गिरी और वे वहीं रह गये। एक दम्पती बैठे गप कर रहे थे कि पृथ्वी हिली। दोनों घरसे बाहर आ गये। उनके तीन बच्चे थे। सबसे छोटा बच्चा मांकी गोदमें ही था। दो बच्चे घरमें थे। मांको इन दोनों बच्चोंकी याद आयी। गोदके बच्चेको पतिको सौंप वह लपककर भीतर गयी। इतने हीमें घर हड़हड़ाकर जमीनपर आ रहा! तीनोंकी लाशें तीन दिनके बाद निकलीं। एकका शिकार तो स्वयं ठाकुरजीने किया। पुजारीजी मन्दिरसे बाहर निकल आये थे कि उन्हें भगवान्‌की याद आयी। उनको लेने वह मन्दिरमें घुसे कि भगवान् सहित सदाके लिए समाधिस्थ हो गये। कितने अपने घरसे निकलकर बाहर आये, इधर दूसरेके मकानके गिरनेसे खुद चल बसे और उनका मकान जैसेका तैसा खड़ा रहा!

इस भूकम्पने कितने ही पिताओंको निस्सन्तान, कितने ही परिवारोंको नेस्त-नाबूद बना डाला। एक-एक परिवारमें १४-१४ आदमियोंके मरनेकी खबर है। एक-एक ठेलागाड़ी-पर ७-७ आदमियोंको श्मशान ले जाते हुए अपने करुण-क्रन्दनसे लोगोंके हृदयको टूक-टूक करनेके कितने दृश्य तो मैंने अपनी आंखों देखे हैं। एक-एक चितापर ७-८ लाशें जलायी गयी हैं। किन्तु यह सौभाग्य भी कितनेको मिला! अधिकांश लाशें तो जहां-तहां फेंक दी गयीं। भूकम्पके चलते नदीके किनारेमें बड़ी-बड़ी दरारें हो गयी थीं—इन दरारोंने भी कितनी ही लाशोंको अन्तिम शरण दी।

यों दो मिनटके अन्दर ही मकानोंको ध्वस्त और आदमियोंका शिकार करके भूकम्प तो चला गया। किन्तु क्या इतने हीसे छुट्टी मिल गयी? उसके बाद ही लोगोंने देखा कि सड़कोंपर घुटने-भर पानी उछल रहा है! कैसा स्वच्छ जल; किन्तु शीतल नहीं। कहीं-कहीं तो इतना गरम कि हाथ भी जल जाय। कंक्रीटकी सड़कों, मकानोंकी गचोंको फोड़कर निकलनेवाले इन जल-स्रोतोंमें कितना जोर रहा होगा! लोगोंने समझा, अब जल-प्रलय हुआ! लोग इधर-उधर भागने लगे।

इन जल-स्रोतोंका सबसे अधिक क्रीड़ा-क्षेत्र तो देहातमें रहा। गांवोंमें घरोंको भहराते देखकर लोग खेतोंकी ओर भागे और खेतोंको हिलता-डुलता देख, बाल-बच्चोंकी चिन्तामें मस्त लोग घरकी ओर चले। दोनों हीने खेतोंमें एक विचित्र तमाशा देखा। जगह-जगह धरती फोड़कर पानी निकल रहा है। यह पानी फौवारेके ऐसा काफी ऊंचा उठकर गिर रहा है। एक जगह तो यह फौवारा १५ फीट तक ऊपर उठा था—जिसका फोटो भी रख लिया गया है। इधर-उधर, आगे-पीछे, अगल-बगल जहां देखिये वहीं फौवारे निकल रहे हैं। कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी दरारें हैं, जिनसे जल अविरल प्रवाहसे बह रहा है। लोग तो चकित हो गये। भाग-भागकर ऊंची जमीनकी ओर बढ़ने लगे। किन्तु यह क्या? ऊंची जमीनपर तो और अधिक फौवारे हैं! लोगोंने यह मान लिया कि अब मरना ध्रुव है। त्राहि-त्राहि पुकारने लगे। कुओंकी तो और विचित्र हालत रही! उनका पानी उछल-उछलकर बाहर गिरने लगा—कहीं-कहीं तो पांच-पांच फीट ऊंचा इनका पानी उछला था।

किन्तु क्या फौवारेमें, क्या कुएंमें; थोड़ी ही देरके बाद जलके साथ पर्याप्त परिमाणमें बालू भी निकलने लगा। पीछे तो बालू-ही-बालू निकलने लगा। इन बालुओंने फसलको नीचे दबा दिया और खेतोंमें अपना अखण्ड राज्य कायम कर लिया। कुएं एकदम बालूसे भर गये। किन्तु बालूसे भरनेके पहले ही बहुतोंके 'जमौट'—नींवपर रखा लकड़ीका गोल घेरा—भी बाहर निकल आया था! जगत और गोल तो अधिकांशके खराब हो चुके थे।

इस पानी और बालूके प्रवाहके साथ कई विचित्र चीजें निकलीं। बालू भी कई रङ्गके निकले—काला, सफेद और मटमैला। अबरख, कोयला, मिट्टीका तेल और सोना भी निकला बताया जाता है। बालू कहीं-कहीं छः सौ फीट नीचे तकसे निकला है, ऐसा विशेषज्ञ बताते हैं और उसपर कोई फसल हो नहीं सकती।

भूकम्पके वेगने एक काम और किया। कितनी ही नीची जमीनको ऊपर उठा दिया है। अभी-अभी मैं देहातमें गया तो लोगोंने एक जगह बतायी, जहां पहले गर्मियोंमें भी नाव चलती थी और २५-३० हाथ तक पानी पाया जाता था, वहां अब घुटनेसे भी कम पानी है। नदियोंकी धारा भी बदल गयी है। गण्डक तो अभीसे खतरेकी सूचना दे रही है। अन्य नदियां बरसातमें क्या करेंगी, क्या बताया जाय।

मकान केवल गिरे ही नहीं—बहुत-से धंस भी गये हैं। सीतामढ़ीके प्रायः सभी मकान धंस गये हैं। पांच-पांच फीट तक धंसे हैं। ऊपरकी प्रायः सभी बनावट बची है, किन्तु आधीसे अधिक जमीनके नीचे है, उसपर भी कोई कोना ज्यादा धंसा है, कोई कम—यह देखनेमें विचित्र दृश्य लगता है। मोतीहारीमें एक मकान पूरे-का-पूरा अपनी जगहसे कई गज आगे सरक गया है। पूरब रुखके मकान उत्तर रुखके हो गये हैं।

यों, इस दो घड़ीके खेलने समूचे उत्तरी बिहारका नक्शा ही बदल दिया है। जिसने इस भूकम्पसे पहले 'भारतके इस उद्यान'को देखा हो, उसे यदि हवाई जहाजसे लाकर अकस्मात् किसी जगह रख दिया जाय तो वह यह भी नहीं पहचान सकेगा कि वह किस स्थानमें है। जहां पहले सजे-सजाये शहर थे, वहां अब ढूहोंका ढेर है—ईंट और सुर्खीके अम्बारे लगे हैं! जगह-जगह खड़ी की गयी फूसकी झोंपड़ियोंमें रहनेवाले नागरिक श्मशान जगानेवाले अवधूतोंके ऐसे मालूम होते हैं। जहां पहले हरी-भरी खेतकी क्यारियां लहराया करती थीं, वहां कहीं तो पानीसे भरी झील है और कहीं बालूसे भरी मरुभूमि! भूगर्भ-शास्त्री हमें विश्वास दिलाते हैं कि ज्वालामुखी नहीं फूटेगा; ज्वालामुखीसे इसे सम्बन्ध नहीं। किन्तु इससे क्या? हमारे लिए तो जो-कुछ होना था, हो चुका! इससे तो शायद ज्वालामुखी अच्छा!—जिसमें सभी चल बसते। आज पति-विहीना युवतियों और पुत्र-वञ्चिता माताओंके क्रन्दनसे आकाश कांप रहा है! बूढ़े बाप निस्सन्तान बने कराह रहे हैं; भोले बच्चे अपने बाबूजीके लिए शोर मचा रहे हैं! भूषणका यह कवित्त—

"ऊंचे घोर मन्दरके अन्दर रहनवारी,
ऊंचे घोर मन्दरके अन्दर रहाती हैं;
तीन बेर भोग करें, तीन बेर भोग करें,
नासपाती खातीं वे बनासपाती खाती हैं।"

यहां पूरा लागू हो रहा है। बेचारे देहातके लोग तो और गये-बीते। उनके घर गिरे, बच्चे और स्त्रियां मरीं, घरके अनाज दरारोंमें समा गये या मिट्टीमें मिल गये, फूली-फली फसल नष्ट हो गयी। किन्तु यदि उनके खेत बचे होते, तो फिर ये सब चीजें उन्हें प्राप्त हो जातीं। वे कलेजा थामकर अपने खेतके मेड़ोंपर जाते हैं और वहां अपने आंसुओंसे खेतको सींचते हैं; शायद उन्हें खबर नहीं कि नमकीन पानीसे खेतकी उर्वरा शक्ति और नष्ट होती है! आज भी वे अकालके सभी दुख भोग रहे हैं। फिर भय यह है कि बरसातमें, जमीन नीची-ऊंची हो जाने और नदियोंकी धारा बदल जानेसे, शायद वे पानीमें भंस न जायं। शायद वह भी अच्छा ही होगा। जीवन-भर आंसुओंकी धारामें भंसनेकी अपेक्षा, एक बार जी कड़ा कर बाढ़की धारामें सदाके लिए भंस जाना क्या बुरा होगा? आज उत्तरी बिहारका कण-कण करुण रागमें गा रहा है—

साधो, ई मुरदनके गांव।
राजा मरिगै, परजा मरिगै, मरिगै जिन्दा जोगी;
पीर मरे, पैगम्बर मरिगै, मरिगै बैद औ रोगी;
साधो, ई मुरदनके गांव!

———

नाशलीलाके समय पैशाचिकता और कामोन्मत्तता

इलाचन्द्र जोशी

महानाशकी विध्वंस-लीला जब कराल अट्टहासके साथ असहाया पृथ्वीकी छातीपर नग्न नृत्य करने लगती है तो उस समय चकित, विभ्रान्त, विन्नस्त मानव-हृदयमें अनेक परस्पर-विरोधी भावोंका घूर्णित चक्र चलने लगता है। एक तरफसे उसे परम वैराग्य आ जाता है और दूसरी ओर वह उन्मत्त कामाचारी बन जाता है; उसके अन्तर्प्रदेशके एक गुप्त कोनेमें करुणा और समवेदनाका स्रोत उमड़ना चाहता है, पर दूसरी ओर वह घोर निष्ठुर तथा वीभत्स पिशाच बन बैठता है और दलित, गलित तथा मृत मनुष्योंको और भी अधिक पीड़ित, शोषित और विताड़ित करनेमें परमानन्दका अनुभव करने लगता है; एक ओर उसमें किसी अज्ञात महाशक्तिका त्रास छाने लगता है और दूसरी ओर वह एकदम अविश्वासी, नास्तिक और भौतिकवादी बन जाता है।

सामूहिक विध्वंसका कोई दृश्य देखनेका दुर्भाग्य जिन्हें कभी प्राप्त नहीं हुआ है, अथवा उसकी कल्पना जिनके मस्तिष्कमें कभी पूर्णरूपसे नहीं उतर पायी है उन्हें यह समझाना बहुत कठिन है कि ऐसे अवसरोंपर मनुष्यका कैसा जघन्य नारकीय पतन सम्भव हो सकता है, मनुष्यकी अन्धस्वार्थमयी भोगोन्मत्त प्रवृत्ति कैसी पाशविक निर्ममताका परिचय देने लगती है।

विगत यूरोपियन महायुद्धमें जिन लोगोंने भाग लिया था उनके मर्मघाती वर्णनोंसे पता चलता है कि सामूहिक संहारके चक्रका दृश्य देखनेके बाद सिपाहियोंमें कैसे अन्धकामोन्मादकी अशान्त ज्वाला भड़क उठती थी, क्षुधाकी असह्य ताड़नासे किस प्रकार वे लोग चील-कौवोंकी तरह अखाद्य वस्तुओंपर झपटते थे और उनके लिए पशुओंकी तरह आपसमें झगड़ते थे; घोड़ों और मनुष्योंका मांस तक सिपाहियोंको खाते देखा गया है। महायुद्धने जब अपनी विध्वंस-लीलासे गांवके गांव उजाड़ कर दिये, शहरोंका वैभव-विलास नष्ट कर डाला, राष्ट्रोंके धन-जनका अभूतपूर्व विनाश साधित किया तो उसके बाद यूरोप-भरमें जिस दुर्दमनीय अनाचार, घोर नैतिक पतन, घृणित अर्थलोलुपता और पाप-पङ्क-निमज्जित नरककी उन्मत्तताके दृश्य देखनेमें आये थे, वे सर्वविदित हैं। पर ये सब बातें उन लोमहर्षक विवरणोंके आगे तुच्छ लगती हैं जो समय-समयपर घोर दुर्भिक्ष तथा भीषण महामारियोंके अवसरोंपर प्रत्यक्षदर्शी ऐतिहासिकों द्वारा लिपिबद्ध की गयी हैं। यूरोपमें चौदहवीं शताब्दीमें ये दोनों दैवी प्रकोप उत्कट रूपमें वर्तमान थे; इसलिए उस युगमें वहांकी नैतिक परिस्थितिने कैसा उग्र रूप धारण कर लिया था, इस बातका पता एक यूरोपियन लेखकके इस कथनसे मिलेगा—"The lords of the towns and castles resumed their feuds, the morals deteriorated. Sensuality alone prevailed ; justice and pity were powerless, so soon as it appeared advantageous to murder or poison rivals in power at the hospitable board. The science of finance was reduced to robbery, politics to perjury ; they were less efficient in the use of arms in the field than in their use for assassination."

अर्थात्—"नगरों तथा महलोंके अधिपतियोंने अपने पारस्परिक कलह फिर शुरू कर दिये, नीतिका पतन हो गया। केवल कामाचारका बोलबाला रहा; न्याय और दयाके भाव निःशक्त बन गये। प्रभुत्वके प्रतिद्वन्द्वियोंमें एक-दूसरेकी हत्या करने और भोजोंके अवसरोंपर विष देनेकी प्रवृत्ति बढ़ गयी। अर्थशास्त्र चौर-विद्यामें परिणत हो गया, राजनीति जालसाजीका शास्त्र बन गया; ये विद्यायें युद्धक्षेत्रकी अपेक्षा व्यक्तिगत हत्याकाण्डोंके लिए अधिक उपयुक्त बन गयीं।"

एक दूसरा लेखक कहता है कि उस युगमें धार्मिक संस्थाओंका ऐसा अन्तरराष्ट्रीय पतन हो गया था जैसा पहले कभी नहीं देखा गया था। इस पतनका कारण भी

मनोवैज्ञानिकोंने नाशके अवसरपर मनुष्यकी घोर स्वार्थमयी प्रवृत्तिको ही बतलाया है। उक्त लेखकका कहना है कि ऐसा कोई भी नीच काम न था जिसे पादड़ी लोग धनके लिए करनेको राजी न थे। घृणित अर्थके लोभसे वे अपना पद तक भी बेचनेको तैयार रहते थे। चूंकि उस अनियमकी परिस्थितिमें केवल डाकुओं, लुटेरों और हत्याकारियोंके पास ही धन था, इसलिए वे ही अपने अर्थबलसे 'धर्माधिकारियों' का पद खरीद लेते थे!

पर जब इन धर्म-संस्थाओंका पतन चरम सीमाको पहुंच गया तो डाकुओं और लुटेरोंमें भी उन पदोंका मोह न रहा और वे इटली, फ्रान्स, जर्मनी आदि देशोंके असंख्य ऊजड़ गांवोंमें यथेष्ट लूटपाट मचाकर सर्वत्र नास्तिकताका प्रचार करते हुए ईश्वरकी खिल्ली उड़ाने लगे। इन नास्तिक डाकुओंमें बहुत-से शिक्षित व्यक्ति भी सम्मिलित थे। इनमेंसे एकके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने डाकुओंके बहुत-से गिरोहोंका एक सङ्गठित दल बनाकर सर्वत्र खुल्लमखुल्ला दिन-दहाड़े लूट और हत्याकाण्ड मचाने प्रारम्भ कर दिये। उसके गलेमें एक जञ्जीरके साथ एक तमगा लटका करता था जिसमें उसने अपने सम्बन्धमें ये शब्द खुदाये थे—"ईश्वर, दया, और परोपकारका जानी दुश्मन।" Theophil ने अपने एक विख्यात नाटकमें अपने एक पात्रके मुंहसे ईश्वरके विरुद्ध जो अत्यन्त उग्र शब्द कहलवाये हैं वे इसी युगके लोगोंकी मनोवृत्तिके लिए लागू हैं—"ऐ दुष्ट, नीच ईश्वर! आह, यदि मैं तुझपर हाथ चला सकता तो अपने कलेजेकी आगको ठण्डा करता। मैं तुझे अवश्य ही चीरकर फाड़ डालता। याद रख, मैं तुझे नहीं मानता, मैं तेरे धर्म और तेरी शक्तिको एकदम अस्वीकार करता हूं। मैं प्राच्यदेशमें चला जाऊंगा, मुसलमान बनूंगा और मुहम्मदके धर्मको मानकर चलूंगा। जो तुझपर विश्वास स्थापित करता है वह घोर मूर्ख है!" स्पष्ट ही इस अविश्वासीका क्रोध ईसाई ईश्वरपर है, जिससे इस बातका परिचय मिलता है कि ईसाई धर्माध्यक्षोंने ईश्वरके नामपर अत्याचारका चक्र चलाकर धर्मकी कैसी मिट्टी खराब कर डाली थी।

चौदहवीं शताब्दीमें 'लूसिफेरियन' नामका एक सम्प्रदाय, जो अपने स्वाधीन विचारोंके कारण अत्यन्त सुसङ्गठित और प्रतिष्ठित बन गया था, खुल्लमखुल्ला इस बातका प्रचार करता था कि ईश्वरने स्वर्गके राज्यपर अन्याय और जबर्दस्तीसे अपना अधिकार कायम कर रखा है। तात्पर्य यह कि उस युगमें सर्वत्र अनाचार और उच्छृङ्खलताका बोलबाला नजर आता था। महामारीसे त्रस्त और दुर्भिक्ष-पीड़ित किसान ऐसे निष्ठुर-हृदय बन गये थे कि छोटीसे छोटी बातपर हत्याकाण्ड मचा देना उनके लिए खेल हो गया था। जमीन्दारोंपर उनका क्रोध सबसे अधिक था। मौका पाते ही वे जमीन्दारोंको मार-काटकर उनका भुरता बना डालते थे। कहा जाता है कि स्थान-स्थानमें क्रोधोन्मत्त किसानोंने बहुत-से जमीन्दारोंको उनकी स्त्रियों और बच्चोंके सामने कढ़ाहोंपर जिन्दा भून दिया और अन्तको परिवारवालोंको प्राण लेनेकी धमकी दिखाकर उनका मांस खानेके लिए बाध्य किया!

नाशको विभीषिका और उसके लोमहर्षक परिणामोंके कारण मध्ययुगकी यूरोपियन जनताका ऐसा पैशाचिक पतन हो गया था कि बच्चे अपने मां-बापोंको काटकर उनका मांस खाने लगे थे और मां-बाप अपने बच्चोंको उसी उद्देश्यसे काटते थे। उस युगके तीस वर्षव्यापी यूरोपियन युद्धके बाद जो महामारियां फैलीं उनके परिणाम स्वरूप बड़े-बड़े समझदार आदमी भी घोर निष्ठुर, स्वार्थी और पिशाच बन गये। उस युगके एक सहृदय व्यक्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि फसल नष्ट हो जानेके कारण जब वह और उसके परिवारवाले भूखों मरने लगे तो वह अस्थिर हो उठा। एक दिन अपने दो लड़कोंको साथ लेकर वह अपनी स्त्रीसे यह कहकर घरसे बाहर निकल पड़ा कि वह रोजगारकी तलाशमें जा रहा है। पर बहुत दिनोंसे अनशन अथवा अर्द्ध-अशनके कारण वे लोग ऐसे कमजोर हो गये थे कि शहर तक न पहुंच सके और रास्तेपर ही एक गांवमें रात काटनेका निश्चय करके वह आदमी लड़कोंके साथ एक ऐसे मकानमें पहुंचा जहां उसका भाई रहता था। उसके भाईके कुटुम्बके सब प्राणी महामारीसे मर चुके थे और केवल उसकी भाञ्जी और उसका एक छोटा लड़का—ये दो प्राणी शेष रह गये थे। उस आदमीने भाञ्जीके प्रति समवेदना प्रकट करके अपनी दुःखगाथा भी उसे सुनायी। इधर कुछ दिनोंसे

जङ्गली कन्दमूलोंके सिवा और कुछ न खानेके कारण उस आदमीका मस्तिष्क और हृदय भी वनचर प्राणियोंकी तरह हो गया था। भाञ्जीके यहां भी जब उसे खानेको कुछ नहीं मिला तो उसने अपने लड़कोंके साथ सलाह करके यह निश्चय कर लिया कि उस निस्सहाया स्त्रीको काटकर उसीके मांससे उन्हें अपना पेट भरना होगा। उसने भाञ्जीसे कहा—"प्यारी भाञ्जी! ईश्वरका नाम लो, क्योंकि हम लोग असह्य भूखसे व्याकुल होनेके कारण तुम्हें काटकर खाना चाहते हैं!" वह बेचारी स्वयं तबियत खराब होनेके कारण लेटी हुई थी। घबराकर बोली—"मामा, आप भले ही मुझे मार डालें, पर मेरे बच्चेकी जान बचाइयेगा।" उन बुभुक्षितोंने अत्यन्त पाशविकतासे एक कुन्द छुरीसे उसका गला रेतकर उसे हलाल किया और उसके शरीरसे मांसके टुकड़े काट-काटकर, उनमें नमक मिलाकर उन्हें कच्चा खाने लगे! बाकी जो-कुछ बचा उसे उठाकर घर ले गये और स्त्रियों तथा बाल-बच्चोंको खिलाया! पर चूंकि जिस स्त्रीका मांस उन लोगोंने खाया उसके शरीरमें प्लेगके कीटाणु वर्तमान थे, इसलिए वे सब चार ही दिनके भीतर मर गये, केवल सबसे छोटा लड़का जीवित रहा। इस लड़केने ही अपनी आत्मकथामें उक्त निदारुण मर्मघाती कथा वर्णित की है।

जहां-जहां महामारीका प्रकोप विकट रूप धारण करता था वहां एकदम अराजकता फैल जाती थी और सर्वत्र लूट-खसोट और हत्याका चक्र चलने लगता था। रोगियोंकी शुश्रूषा होनी तो दर-किनार, गुण्डे लोग चिकित्सकोंका वेष बनाकर जीवितावस्थामें ही उनका गला घोंटकर और कुन्द छुरीसे रेतकर उन्हें मार डालते थे। जिन मजूरोंका पेशा कब्र खोदनेका था, सबसे अधिक निष्ठुर पैशाचिकताका परिचय वे ही देते थे। यदि उनकी मुट्ठी गरम न की जाती तो वे भले-चङ्गे आदमियोंको भी जबर्दस्ती पकड़कर अस्पताल ले जाते और अस्पतालमें उनकी जो दुर्गति की जाती वह वर्णनातीत है! विशेष करके धनी लोगोंके प्रति ही इन कब्रके भूतोंकी आंखें गड़ी रहती थीं। उनके पैशाचिक अत्याचारोंसे तङ्ग आकर धनी लोग अक्सर उन्हें अपना सर्वस्व सौंपकर पिण्ड छुड़ाते थे। इन राक्षसोंकी उन्मत्तता इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि वे धनी और बड़े घरानोंकी स्त्रियोंकी लाशोंके साथ भौतिक कामाचारमें लिप्त हो जाते थे! यदि कोई स्त्री बेहोशीकी हालतमें होती और होश आनेपर किसी दानवको अपना सतीत्व नष्ट करते देखती तो भयसे तत्काल मर जाती। 'राबिन्सन क्रूसो' के विख्यात लेखक डेनियल डेफोने लन्दनके १६६५ के प्लेगके सम्बन्धमें लिखा है कि कब्र खोदनेवाले मजूर घरोंसे मृत और अर्द्धमृत व्यक्तियोंके शरीरोंको पकड़-पकड़कर समान रूपसे गाड़ियों-पर इस तरह फेंककर लादते थे, जैसे लकड़हारा ठेलोंपर लकड़ियोंको लादकर ले जाता है। बहुत-से रोगियोंको जीवितावस्थामें जानबूझकर कब्रोंपर गाड़ दिया जाता था और इसमें गाड़नेवालोंको विशेष आनन्द प्राप्त होता था।

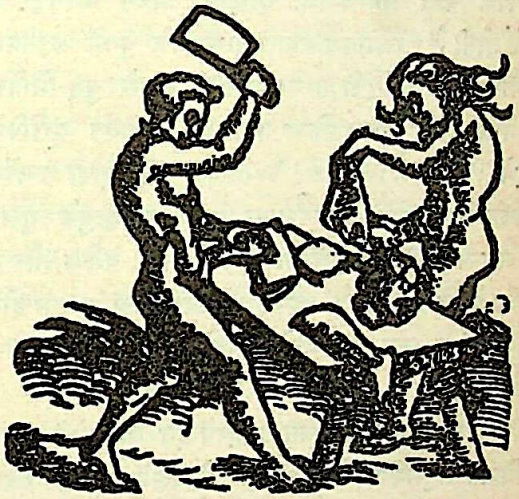

क्षुधाकी ताड़नासे नरमांस काट कर खानेवाले सभ्य जातीय दम्पतिका चित्र

मृत शरीरके प्रति सम्भ्रमका भाव प्रकट करना सभी सभ्य, अर्द्धसभ्य, यहांतक कि असभ्य जातियोंमें भी पाया जाता है। पर विनाशकी व्यापकताके समय उनकी जो दुर्गति होती है वह तो होती ही है, इसके अतिरिक्त इस बातका भी परिचय मिलता है कि मनुष्यमें किस हद तक राक्षसी नीचताका भाव सम्भव हो सकता है। जर्मनीके एक भङ्गीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह जिस मकानमें काम करता था वहांकी रसोई बनानेवाली स्त्रीके साथ उसका रोज झगड़ा हुआ करता था। जब वह स्त्री महामारीसे आक्रान्त होकर मर गयी तो भङ्गीने उसके सब कपड़े उतारकर उसे नङ्गा किया और उन्हें टटोलनेपर जब केवल एक ताम्रखण्ड उसे मिला तो उसने उसके पेटीकोटसे एक टुकड़ा कपड़ेका

फाड़कर उसके गुप्त अङ्गमें डाल दिया और ताम्रखण्ड उसकी नाकके भीतर घुसेड़ दिया। इसके बाद उसे पकड़कर उसने खाईमें पटकते हुए कहा—"पड़ी रह, हरामजादी; तूने कभी मेरे लिए अच्छा शोरुवा नहीं बनाया था!"

*
* *

यह पहले ही कहा जा चुका है कि महानाशके समय तथा उसके बाद मनुष्योंमें कामाचारकी प्रवृत्ति बहुत बढ़ जाती है। गीतामें अर्जुनने युद्धके भीषण परिणामोंका उल्लेख करते हुए कृष्णसे यह भी कहा था कि नाशके बाद स्त्री-पुरुषोंके बीच अनाचारकी वृद्धि हो जानेसे वर्णसङ्करोंकी सृष्टि होती है। रामायण तथा महाभारतके युगमें लड़नेवाले सिपाहियोंकी कामाग्नि शान्त करनेके उद्देश्यसे युद्ध-शिविरमें ही वेश्याओंका प्रबन्ध किया जाता था। विगत यूरोपियन युद्धमें War, Wine and Woman सर्वत्र इन्हीं शब्दोंका व्यावहारिक प्रयोग देखा जाता था। महामृत्युके मुखपर भी मनुष्यकी काम-प्रवृत्ति शान्त नहीं होती, बल्कि और भी प्रचण्ड वेगसे उमड़ती है, यह बात आश्चर्यजनक मालूम होनेपर भी चरम सत्य है। मनोवैज्ञानिकोंने इसका कारण भी खोज निकाला है।

एक वर्तमान यूरोपियन डाक्टरने इस सम्बन्धमें अपना व्यक्तिगत अनुभव वर्णित किया है। नेपल्समें एक बार हैजेकी बीमारी इस कालान्तक रूपसे फैली थी कि प्रतिदिन हजारों आदमी मरने लगे थे। उक्त डाक्टर रोगियोंके सहायतार्थ स्वयं घटनास्थलपर पहुंचा। सर्वत्र श्मशानका दृश्य नजर आता था। लोग अत्यन्त भीत और सन्त्रस्त होनेपर भी चारों ओर कामोन्मत्त अवस्थामें प्रेमके गीत गाते हुए दिखायी देते थे। डाक्टरका कहना है कि जिस मकानमें वह रहता था वहां एक अनिन्द्य-सुन्दरी १५ वर्षकी इटालियन लड़की उसकी परिचर्याके लिए नियुक्त थी, उसके अलावा उस मकानमें कोई नहीं था। वह लड़की एक दिन मृतकोंकी लाशोंके ढेर देख और जीवितोंका हाहाकार सुनकर ऐसी घबरा गयी कि उसने डाक्टरके गलेसे चिमटकर उसका मुंह चूम लिया और कामोन्माद-ग्रस्त हो गयी।

इसी डाक्टरने इसी सम्बन्धमें अपने एक दूसरे अनुभवका वर्णन किया है। कैथलिक संन्यासिनियोंके एक कानवेण्टमें वहांकी अध्यक्षा मुमूर्षु अवस्थामें पड़ी हुई थी। कानवेण्टकी बहुत-सी ईसाई संन्यासिनियां हैजेसे मर चुकी थीं, जो जीवित थीं उनमें घोर आतङ्क छाया हुआ था। डाक्टरका कहना है कि वह स्वयं हौलदिल हो उठा था। कानवेण्टकी अध्यक्षाकी शुश्रूषा करते हुए वह एक बार एक सुन्दरी संन्यासिनी युवतीके आमने-सामने एक एकान्त कमरेमें आ पहुंचा। वह युवती प्रेमोन्मत्त आंखोंसे उसे देख रही थी। और सब संन्यासिनियां नीचे थीं, उन्हें ऊपर आनेकी आज्ञा नहीं थी। वह युवती संन्यासिनी अध्यक्षाका हाल पूछने आयी थी। डाक्टरने कहा—वह मर रही है। यह कहकर वह उसे मुमूर्षुके पास ले गया। दोनोंने देखा अध्यक्षा बेहोश है और अन्तिम सांस ले रही है। दोनोंने एक बार मुमूर्षुकी ओर देखा और एक बार परस्पर प्रेम-भरी दृष्टिसे देखा। अकस्मात् डाक्टरने प्रगाढ़ आलिङ्गनसे युवती संन्यासिनीका मुंह चूम लिया—संन्यासिनीने बिलकुल प्रतिरोध नहीं किया। मोह कुछ शान्त होनेपर जब दोनोंने फिर मुमूर्षुकी ओर देखा तो वह आंखें खोलकर प्रकाश्य दिवालोकमें कानवेण्टके भीतर यह असहनीय पापाचार देखकर मौन आंखोंसे क्रोधकी चिनगारियां बरसा रही थी। पर कुछ ही सेकिण्डोंके बाद उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

इस निर्लज्ज प्रेमोन्मादकी कैफियत देते हुए डाक्टर कहता है—"बहुत ढूंढ़नेपर मुझे इस असामयिक कामुक प्रवृत्तिका एक ही कारण मिला है। वह यह कि प्रकृति अपने 'बैलेन्स' को यथासम्भव स्थिर रखनेकी चेष्टामें लगी रहती है। जब सामूहिक विनाशका चक्र चलता है तो वह ऐसे अवसरोंपर मनुष्योंकी काम-प्रवृत्ति भड़काकर उन्हें नूतन सृष्टिके लिए उत्तेजित करती है।"

कारण कुछ भी हो, पर यह निश्चय है कि व्यापक विनाशके समय स्त्री-पुरुषोंमें आश्चर्यजनक रूपसे कामोन्माद जाग पड़ता है। यूरोपकी चौदहवीं शताब्दीकी महामारीके समय वहांका नैतिक वातावरण कैसा विपाक्त हो उठा था, इस बातका परिचय उस समयके लेखकोंके वर्णनोंसे भली भांति मिलता है। बोचाचियोने लिखा है—"सुरुचि-कुरुचिकी परवा न करके लोग यथेच्छाचारमें रत रहने लगे हैं। सर्वत्र कामुकताकी आग धधकती हुई दिखायी देती है; केवल जनसाधारण ही नहीं, कानवेण्टोंकी संन्यासिनियोंमें यह उन्माद अद्भुत

रूपसे बढ़ता हुआ दिखायी देता है; वे धार्मिकताका कुछ भी ख्याल न कर साधारण वेश्याओंकी तरह अपना शरीर कामुकोंको समर्पित कर रही हैं। उनका विश्वास है कि इस प्रकार काम-वासनामें डूबे रहनेसे उनपर किसी रोगका आक्रमण सम्भव नहीं हो सकेगा।"

रोममें प्लेगके समय सुरापान और भोग-विलासका उन्मत्ताचार पाया जाता था। फ्रेञ्च लोगोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि महामारियोंके रुद्र कोपसे वे ऐसे विचलित हो उठे थे कि एकदम निर्लज्ज और उच्छृङ्खल बन गये और विभीषिकाको भुलानेके उद्देश्यसे राग-रङ्ग और नाच-गानमें

महामारीकी नाशलीलाके समय उन्मत्त नृत्यमें मग्न रहनेवाले भोगवादी

इस कदर मस्त रहने लगे कि मालूम होता था मानो अपने घरवालोंकी मृत्युपर प्रसन्न होकर वे उनकी लाशोंपर नृत्य कर रहे हों। फ्रान्सके गिरजोंमें जगह-जगह अश्लील चित्र अङ्कित किये जाने लगे। एल्बीके एक गिरजेके भीतर एक चित्रमें अप्राकृतिक व्यभिचारके चित्र तक अङ्कित करनेमें लोगोंको लज्जा मालूम नहीं हुई; यह चित्र इस समय तक सुरक्षित है। जर्मनीमें भी मध्ययुगमें अप्राकृतिक व्यभिचारका यथेष्ट प्रचार हो गया था। 'स्वतन्त्र मतानुयायी भ्रातृमण्डल' नामकी एक संस्था जर्मनीमें घोर वीभत्स कामाचारमूलक विचारोंका प्रचार कर रही थी। उक्त संस्थाके दो सदस्योंकी स्वीकारोक्तियां हस्तलिपिमें इस समय तक सुरक्षित हैं। उसमें एक स्थानपर यह वाक्य पाया जाता है—"यदि कोई भ्राता (अर्थात् मण्डलका सदस्य) किसी दूसरे पुरुषसे यौन-सम्बन्ध स्थापित करना चाहे तो उसे बिना किसी रोक-टोकके पापकी भावनाकी कुछ भी परवा न करके ऐसा करना चाहिए, अन्यथा वह 'स्वतन्त्र मतानुयायी भ्राता' नहीं रह सकता।"

उस युगमें एक दूसरा अनोखा मत प्रचलित हो पड़ा था जिसके अनुसार सगे-सम्बन्धियोंके साथ यौन-सम्बन्धमें लिप्त रहना पाप नहीं है। इस मतके अनुयायी कहते थे कि किसी भी पुरुष या स्त्रीको एक-दूसरेकी इच्छाके प्रतिकूल आचरण करनेका अधिकार नहीं है, और स्वयं ईसामसीह जब कब्रसे उठ खड़े हुए थे तो उन्होंने मैगडैलीनाके साथ व्यभिचार किया था। एक विख्यात डाक्टरका इस सम्बन्धमें कहना है कि १३४८ में जिस महाप्लेगने यूरोपको ध्वंस कर दिया था उसीके फलस्वरूप ऐसे उच्छृङ्खल मतोंका प्रचलन सम्भव हो सका था।

१५८६ में मिलानमें Accademia d' amore (प्रेम-समिति) नामकी एक संस्था कायम हुई थी। यह रईसोंकी भोग-सभा थी। इसके सदस्य उद्यान स्थित महलोंमें राग-रङ्ग और उन्मत्त भोग-विलासमें रत रहते थे। पर एक लेखकके कथनानुसार "प्लेगने उन सब यथेच्छाचारी वीभत्स कामी कुत्तोंको अपना ग्रास बना लिया।"

सत्रहवीं शताब्दीके यूरोपियन प्लेगोंके अवसरोंपर स्त्रियोंको नङ्गी होकर बाहर नाचते देखा गया था।

जर्मनीके एक गांवमें एक लड़की प्लेगसे आक्रान्त हो गयी। उसके प्रेमिकको जब यह समाचार मिला तो वह दौड़ता हुआ उसके पास पहुंचा और उसके चिर-वियोगकी आशङ्कासे उन्माद-ग्रस्त होकर उसने अपनी प्रेमिकाको आलिङ्गन किया और रात-भर उसके साथ प्रेम-क्रीड़ामें रत रहा। फलस्वरूप उसके शरीरमें भी प्लेगके चिह्न-स्वरूप फोड़ा निकल आया। पर दोनों ऐसे कामोन्मत्त हो गये थे कि घातक रोगसे ग्रस्त होनेपर भी अपनी घृणित करतूतोंसे बाज न आये और नित्य लड़कीके माता-पिताके सामने ही दिन-भर

और रात-भर चुम्बन-आलिङ्गनमें रत रहने लगे और अपने फोड़ोंको एक-दूसरेसे घर्षित करने लगे। लड़कीके मां-बापने दोनोंको कितना ही धिक्कारा, पर उन्होंने एक न सुनी। अन्तको डाक्टरसे लड़कीके माता-पिताने इस बातके लिए प्रार्थना की कि वह एक पुरोहितको वहां लाकर दोनोंकी उसी रोगावस्थामें ही वैवाहिक मन्त्र पढ़नेकी आज्ञा दे दे ताकि मरनेके बाद दोनों नरकमें सड़नेसे बच जायं। डाक्टरने देखा कि फोड़ोंको एक-दूसरेसे घिसनेसे दोनोंके फोड़े फूट गये हैं। उसने कहा—"चूंकि इन दोनोंमें अभी प्रेम-क्रीड़ामें रत रहनेके लिए यथेष्ट बल वर्तमान है और दोनोंके फोड़े भी फूट गये हैं, इसलिए अब उनकी मृत्युका भय नहीं है।" वास्तवमें अपने अदम्य प्रेमोन्मादके कारण ही दोनों बच गये थे।

यद्यपि डाक्टरोंने प्लेगके जमानेमें वैवाहिक बन्धनोंमें पड़नेके लिए लोगोंको बार-बार निषेध किया था, तथापि लोग उक्त सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए और भी अधिक उत्सुक दिखायी देते थे। केवल चौबीस घण्टेकी घनिष्ठता विवाहका सम्बन्ध जोड़नेके लिए यथेष्ट समझी जाती थी। बहुत-सी विधवायें, जिनके पूर्वपतिके मृत्यु-शोकके आंसू भी अभी तक सूखने न पाये थे, नया पति वरण करके प्रेम-तरङ्गमें बहने लगीं; पर वह नया पति भी कुछ ही दिन बाद अक्सर परलोककी राह पकड़ता था और तब विधवा एक और दूसरा पति ढूंढ़ती थी। उत्तराधिकारमें बहुत बड़ी सम्पत्ति पानेके लोभसे बहुत-सी बड़ी-बूढ़ी औरतें छोकरोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए लालायित रहती थीं और छोटी छोकरियां बड़े-बड़े खुर्राटोंके हाथ बिक जाती थीं। जिन लोगोंके बाघी अथवा फोड़े भी निकल चुके थे वे भी नवीन वैवाहिक सुखका आनन्द लूटनेकी चेष्टा कर रहे थे। कहा जाता है कि एक स्त्रीने छ हफ्तेके भीतर तीन आदमियोंसे विवाह किया—सब एकके बाद एक प्लेगसे मरते चले गये।

रोन्दीनेली नामक एक ऐतिहासिकने फ्लोरेन्सके प्लेगका वर्णन करते हुए लिखा है कि एक स्त्री बहुत-सी लाशोंके साथ बेहोशीकी हालतमें दफनायी गयी। जब उसे होश आया तो वह उठकर बाहर निकल आयी और घरको वापस गयी। वहां जाते ही उसने अदम्य प्रेमवश अपने पतिको आलिङ्गन करना चाहा, पर पति उसे भूत समझकर डरकर भागा। अन्तको बड़ी मुश्किलसे उसे विश्वास हुआ कि वह भूत नहीं, वास्तवमें उसकी जीविता पत्नी है।

प्लेगके समय एक रोगीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि उसने बीच सड़कमें एक स्त्रीको पकड़कर उसपर बलात्कार किया।

कुछ जर्मन डाक्टरोंने जब यह मत प्रकट किया कि गरमीकी बीमारीसे पीड़ित व्यक्तिको प्लेग नहीं होता तो बहुत-से लोग भ्रष्टा, गलिता वेश्याओंके यहां जाकर उक्त घृणित रोगका बीज अपने रक्तमें मिश्रित करानेकी चेष्टामें लग गये।

इस प्रकार ऐसे अनेक उदाहरण यूरोपके 'महामारी-युग' की दुर्नीतियोंके सम्बन्धमें दिये जा सकते हैं।

इन सब बातोंसे यही प्रमाणित होता है कि विनाशके समय मनुष्यकी मूल प्रवृत्तियोंको उनके वास्तविक रूपमें जाननेका अवसर मिलता है। मनुष्यकी जो वासनायें संसारके प्रति-दिनके नियमित चक्रमें प्रच्छन्न और अप्रकट रहती हैं और हृदयके तल-प्रदेशमें छिपी रहती हैं, वे नाशलीलाके समय किसी अज्ञात रहस्यमयी शक्तिकी प्रेरणासे नग्नावस्थामें प्रकाशमें आ जाती हैं।

———

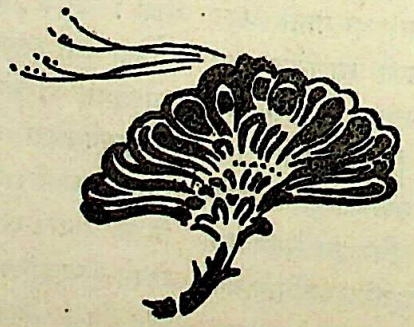

भूकम्प और उसके कारण

श्री कामेश्वर शर्मा 'कमल' सा० भूषण

(१)

विगत १५ जनवरीके सोमवारको विहारमें जो भीषण भूचाल आया था, वह कोई ऐसा-वैसा भूचाल नहीं था। बल्कि यह भी उन्हीं प्रलयङ्करी घटनाओंमें है, जिन्होंने सुदूर अतीतमें समुद्रोंको पर्वत और पर्वतोंको समुद्र, महाद्वीपको महासागर और महासागरको महाद्वीप बना दिया। कमसे कम भारतके पिछले सौ वर्षोंका इतिहास इतनी बड़ी दुर्घटनासे परिचित नहीं है। पहले सिर्फ २५०० हताहतोंका अनुमान था; किन्तु यह संख्या अब तक दस गुनी अधिक हो चुकी है और कुछ लोगोंका तो ख्याल यह है कि साठ-सत्तर हजारसे कम जानें नहीं गयीं। सचमुच मुजफ्फरपुर और मुङ्गेर तो सदाके लिए नेस्त-नाबूद हो गये, और पटना, मोतिहारी, दरभङ्गा, गया, भागलपुर आदि स्थानोंको भी कुछ कम क्षति नहीं उठानी पड़ी। इन जगहोंमें कितने सम्पन्न कुटुम्ब अकिञ्चन हो गये, कितने निर्धन कुल निराश्रित हो गये और कितने घर-बार बचे रहकर भी दीपक-हीन हो गये—यह बतलाना मुश्किल ही नहीं, बल्कि असम्भव है। जिन माताओंकी गोदके लाल छिन गये, जिन युवतियोंकी मांगका सिन्दूर पुंछ गया और जिन कुमारी बहनोंके एक-मात्र सहायक सखा उनसे सदाके लिए विदा ले गये—उनकी दशाका चित्र हृदयको कम्पायमान करनेवाला है।

(२)

पिछले ३७ वर्षोंके मध्य भारतमें तीन बार भयानक भूकम्प आये। सन् १८९७ का भूकम्प वैज्ञानिकोंके कथनानुसार सबसे बड़ा भयानक भूकम्प था। किन्तु सौभाग्यसे उसका केन्द्र आसाममें था। अतः जन-हानि कम हुई। इस भूकम्पका असर एक हजार वर्गमील तककी पृथ्वीपर पहुंचा था और उसके मध्यवर्त्ती अनेक छोटे-मोटे नगर और ग्राम जड़-मूलसे ध्वंस हो गये थे।

यह भूचाल खासिया पहाड़के चारों ओर आया था। यह स्थान पहाड़ी होनेके कारण इतना आबाद नहीं है, जितना भारतके दूसरे भाग हैं। केवल एक शिलाङ्ग ही ऐसा बड़ा नगर है जो भूकम्पसे काफी दूर होनेपर भी प्रायः एकदम विध्वंस हो गया था। अनुसन्धानपर पता चला कि इस भूकम्पकी गर्जनाके कारण पृथ्वी एक मिनटमें दो सौ बार अठारह इञ्च ऊंची-नीची उछली-कूदी थी। इस प्रकार पृथ्वीके ऊपर-नीचे उठने-गिरनेके कारण बड़े-बड़े वृक्ष जड़से उखड़कर दूर जा गिरे, मकानोंकी दीवारें और छतें चकनाचूर होकर एकदम नष्ट हो गयीं। पर्वतोंपरसे बड़े-बड़े विशाल पत्थरोंके टुकड़े वायुमें दस-दस फीट ऊंचे उठने लगे थे, रेलकी पटरियां अपने स्थानसे आगे बढ़कर मरोड़ खा गयीं और नदियोंके पुल कई जगह बरबाद हो गये। सड़कोंके पुल भी पृथ्वीसे उड़कर अलग जा गिरे। इस प्रकार आसामके पहाड़ी स्थानोंके कितने ही ग्राम और नगर पृथ्वीमें मिलकर नष्ट हो गये, जिसके कारण हजारोंकी संख्यामें लोग हताहत हुए और जो बच गये वे अपने घर-बारसे वञ्चित हुए।

इस भूकम्पके बाद पता लगा कि अनेक स्थानोंपर जमीन ऊपरको उठ आयी है। कहीं-कहींपर तो पचीस फीट तक पृथ्वी ऊपर उठ गयी थी। पृथ्वीके कहीं-कहींपर अधिक और कहीं-कहींपर कम उठ जानेसे वह झकझोर-सी डाली गयी और अनेक स्थानोंपर बड़े-बड़े गड्ढे बन गये। उन गड्ढोंमें पानी जमा हो गये और झीलें बन गयीं। गारो नामक पहाड़पर एक नदी बहती थी, उसका नाम था रान्थम। उसकी घाटीके एक-दो स्थान बहुत ऊपरको उठ गये, इससे बीचका स्थान नीचा हो गया। परिणामतः नदीके पानीका बहाव बन्द हो गया, और वहांपर एक बड़ी, आध मील लम्बी झील बन गयी। इसी प्रकार चेन्द्राङ्ग नामक नदीकी सतहके भी कई भाग ऊपरको उठ गये, जिससे कई बड़ी-बड़ी झीलें बन गयीं।

इसके बाद दूसरा भयानक भूकम्प हुआ, जिसका केन्द्र कांगड़ाकी घाटी थी। इसकी भयङ्करताका अनुमान इसी एक बातसे किया जा सकता है कि उसके कारण कोई बीस

हजार प्राणी काल-कवलित हुए। फिर, १९१७ और १९३० में भूकम्प हुए, जिनकी गति बिलकुल साधारण थी। अब सन् १९३४ के प्रारम्भ हीमें फिर यह तीसरा भूचाल हुआ है। पिछले तीनों भूचाल उत्तरी भारत (बिहार) में ही हुए हैं। अतः भू-तत्त्वके जानकारोंका कहना है कि इसका सम्बन्ध हिमालय पर्वतसे है। हिमालय पृथ्वीकी उस कम्पन-रेखापर पड़ता है, जो आल्पससे एण्डीज पहाड़ तक चला गया है और चूंकि उसका ऊपरी भाग वर्षा, बर्फके पिघलने और अन्य प्राकृतिक कारणोंसे क्षीण हो रहा है, वह भीतरसे ऊपर उठ रहा है, जैसे पानीमें तैरता हुआ बर्फका टुकड़ा। अतः उसमें कम्पन-क्रिया जारी है।

इन भूकम्पोंके अतिरिक्त और भी अनेक बड़े भयङ्कर भूकम्प समय-समयपर पृथ्वीके विभिन्न स्थानोंपर हुए हैं। पुर्तगाल देशके लिस्बन नामक नगरमें इसी तरहका एक भूचाल १ नवम्बर १७५५ ईसवीको हुआ था। बादलकी गर्जनाके सदृश भीषण शब्द एकाएक सुनायी पड़ा। इसके बाद जमीन हिली, जिसके कारण नगरका अधिकांश भाग ध्वंस हो गया। यह नगर बड़ा आबाद और घना था। यहांकी सड़कें तङ्ग और मकान बुलन्द थे। मकानोंसे गिरने-वाले पत्थरों और ईंटोंसे बचनेके लिए लोग नदीके किनारे, खुले स्थानकी ओर भागे। जब लोगोंका बड़ा समूह वहांपर जमा हो गया, तब भूकम्पको एक तेज लहर आयी, जिससे नदीका पानी पहले तो नीचेकी ओर चला गया और नदी बिलकुल सूख गयी। किन्तु थोड़ी देर बाद ही फिर दूसरी ऊंची लहर आयी, जो पानीको पचास फीट ऊंचा उठाकर नदीके किनारेपर जमा हुए साठ हजार नगर-निवासियोंको बहा ले गयी। यह नदी बड़ी चौड़ी और गहरी थी। इसके किनारेपर बड़ा ही सुन्दर और मजबूत बन्दरगाह था, वह भी पानीमें डूबकर लापता हो गया। बन्दरपर खड़े हुए जहाज भी डूब गये। कहा जाता है कि इन डूबे हुए पदार्थों-का चिह्न तक न मिला। बन्दरगाहका स्थान अथाह गहराई-में डूब गया। इस भूकम्पका असर बहुत दूर स्विट्जरलैण्ड तक पहुंचा था। बोहेमियाके कई प्रसिद्ध झरने सूख गये और मराकोका एक नगर, दस हजार निवासियोंके साथ बरबाद हो गया। इसीके परिणाम-स्वरूप स्काटलैण्डकी झीलोंमें भी भयङ्कर तूफान आ गया।

अमेरिकाके सान्फ्रान्सिस्को नामक नगरमें, १९०६ ईसवीमें, सबसे अधिक भयानक भूकम्प आया था। उसमें सारा नगर नष्ट हो गया था। सड़कोंके नीचे वहां गैसके नल लगे हुए थे, जिनके फट जानेसे नगरमें आग लग गयी और नगरका बचा-खुचा भाग भी जलकर खाक हो गया। इस भूकम्पका असर ७०० मील तक पहुंचा था। इसके पहले भी वहां सात बार भूकम्पका प्रकोप हुआ था, पर यह सबसे भयङ्कर था। अमेरिका देश धनवान और उन्नतिशील है। आज सान्फ्रान्सिस्कोमें भूचालका कोई चिह्न दिखायी नहीं देता। यही नहीं, बल्कि अब वह पहलेसे भी अधिक सुन्दर और बड़ा नगर बन गया है।

जापान तो भूकम्पका देश ही है। वहां सन् १८९६ के भूकम्पमें १३,०७३ मकान ध्वस्त हुए और २७,२७३ प्राणी मरे। इसके पांच वर्षके पहले भूकम्पमें ७,२७३ मनुष्य और २,२२,५०१ घर स्वाहा हो गये थे। पन्द्रहवीं सदीका तो एक भी दशक वहां ऐसा नहीं बीता, जिसमें भूकम्पने कुछ-न-कुछ विनाशका दृश्य न उपस्थित किया हो। सन् १७५५ की पहली नवम्बरको भी जापानमें एक बहुत ही भीषण भूकम्प हुआ था। बीच नगरमें पृथ्वी फट गयी थी और नगरके अधिक मकानोंमें आग लग गयी थी। कोई साठ हजार लोगोंकी जानें गयी थीं।

जापानमें सबसे पिछला भूकम्प जो १० वर्ष पहले १९२३ में हुआ था, उसका प्रभाव ओसाका और कोबीसे लेकर सेंडाई तक पड़ा। कोई छः सौ मील भू-भागको इसने कम्पाय-मान कर दिया, परन्तु इसका प्रचण्ड रूप उपर्युक्त भू-भागके मध्यमें फूजीयामा नामक जापानके प्रसिद्ध ज्वालामुखीके आस-पासके प्रदेशमें प्रकट हुआ था। इस प्रदेशमें जापानका सबसे अधिक उद्यमशील क्षेत्र पड़ जाता है और इसीमें पूर्वी देशोंका सबसे बड़ा मनोहर नगर टोकियो भी बसा है।

कहा जाता है कि अकेले टोकियोमें ही ५० हजार आदमियोंकी मृत्यु हुई थी। याकोहामामें सिर्फ ४० हजार मनुष्य बचे थे, और शेष मर गये या कहीं भाग गये। कुल मिलाकर १,४२,००० लोगोंकी प्राण-हानि बतलायी जाती है। इस तरहसे उस समय जापानके लोग ठीक आजके मुजफ्फरपुर और मुङ्गेरकी तरह बे-घरबारके होकर रोटीके एक टुकड़ेके लिए मुहताज थे। इस भूकम्पमें जो सबसे

अधिक विचित्र बात हुई थी, वह यह कि जापानी नदियोंके किनारे सिकुड़कर पास-पास हो गये थे। खैर।

(३)

यह तो हुआ भूचालका इतिहास। किन्तु यह भूचाल कैसे और क्यों आता है, आदि प्रश्न ऐसे हैं, जो प्रत्येक मनुष्यके हृदयको क्षण-क्षण विकल करते रहते हैं। इस विषयमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। अज्ञान और रूढ़िवादी जनता सोचती है, भूचाल पृथ्वीके पापके परिणाम हैं, जब-जब धर्मकी हानि होती है, पृथ्वीपर अत्याचार बढ़ते हैं, धरित्री क्रोधसे कम्पायमान हो उठती है। किन्तु वैज्ञानिक लोग इसके दूसरे ही कारण बतलाते हैं। उनके कुछ विवेचन संक्षेपमें नीचे लिखे जाते हैं।

किसी कुम्हारके हमवार और बढ़िया बने हुए चाकको या ऐसे ही किसी लट्टूको यदि हम तेजीसे घूमता हुआ देखें तो वह हमें गति-रहित एक स्थानपर खड़ा-सा मालूम होगा। पर उसी चाक या लट्टूको यदि हम खूब ध्यान और मनोयोगपूर्वक देखेंगे तो वह कुछ हिलता-कांपता नजर आयेगा। कभी-कभी तो वह बड़े जोरोंका डोलता नजर आयेगा, जैसे किसीने उसे हाथसे झकझोर दिया हो। उसके इस प्रकार हिलने और कांपनेके कई कारण हैं। चाकका धुरा यदि बिलकुल बीचमें न हो, या उसके भिन्न-भिन्न भाग समतोल न हों, अथवा उसके घूमनेकी चालमें कभी अन्तर आ जाता हो, तो ऐसा होने लगता है। चाककी तरह ही हमारी पृथ्वी भी अपने धुरेपर सदैव प्रबल गतिसे घूमती रहती है। हम पृथ्वीके बृहदाकारके सामने इतने छोटे हैं कि पृथ्वीकी पीठपर बैठे हुए भी, इसे घूमती हुई प्रतीत नहीं कर पाते। पृथ्वीके चारों तरफका भाग समतोल नहीं है, कहीं कम भारी और कहीं ज्यादा हलका है। इसके चारों ओरका तौल, समय-समयपर, बराबर परिवर्तित होता रहता है। इसके कारण हैं वे नक्षत्र, जिनके सहारे पृथ्वी स्थित है। सूर्य और चन्द्रमाकी आकर्षण-शक्तिके प्रभावसे समुद्रमें लहरें उठा करती हैं। उनके साथ पानीका बहुत बड़ा हिस्सा—वजनदार हिस्सा—बार-बार एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चला जाया करता है। जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाके प्रभावसे पानी ऊपरको उठा और गिरा करता है, उसी प्रकार इस पृथ्वीके ऊपरकी चट्टानें, सूर्य और चन्द्रमाकी आकर्षण शक्तिके कारण ऊपरको खिंच जातीं और नीचेको चली जाती हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा कि वर्तमान भूचालका कारण निर्देश करते हुए कहा गया है, भिन्न-भिन्न स्थानोंपर और भिन्न-भिन्न समयपर वर्षा और बर्फके गिरनेसे पृथ्वीकी समभारतामें अन्तर पड़ा करता है। वर्षा ऋतुमें हमारे देशमें और खासकर आसामके पहाड़ी स्थानोंपर, पानी अधिक परिमाणमें आकर एकाएक गिर जाता है। सर्द देशोंमें बर्फीला तूफान आया करता है, जिससे वहां एक प्रकारका बड़ा वजन-सा आकर गिरता है। इस तरह पानीके बोझके कारण पृथ्वी कुछ-कुछ दब जाया करती है। फिर, पृथ्वी बिलकुल गोल नहीं है। नारङ्गीकी तरह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंपर कुछ चिपटी है। इन कारणोंसे पृथ्वी अनवरत कुछ-न-कुछ हिला करती है। पृथ्वीकी यह चलन सीइस्मोग्राफ (Seismograph) नामक यन्त्रसे जानी जा सकती है। यही साधारण कम्पन कभी-कभी भयानक रूप धारण कर लेता है, जिससे सारी जमीन हिल जाती है और उसका कोई-कोई भाग तो एकदम ध्वंस हो जाता है।

इन भूचालोंके प्रभावसे पृथ्वीकी सतहपर एक प्रकारकी लहरोंकी-सी चाल पैदा हो जाती है। यदि तालाबके स्थिर पानीकी लहरोंकी ओर दृष्टि डालें तो हमें मालूम होगा कि पानी स्वयं लहरोंके साथ आगे नहीं बढ़ा करता। इसकी सत्यताकी परीक्षा कोई भी मनुष्य लहरदार पानीपर तैरनेवाला कोई भी पदार्थ डालकर कर सकता है। वह देखेगा कि यद्यपि लहरें आगेकी ओर जाती हुई नजर आती हैं; किन्तु वह पदार्थ वहींका वहीं, एक ही स्थानपर उछलता-कूदता रह जायगा। इससे मालूम होता है कि लहरोंके साथ पानी बहकर आगे नहीं बढ़ता, बल्कि थोड़ी ही दूरका चक्कर लगाकर एक ही स्थानपर रह जाता है। पानीकी इन्हीं लहरोंकी तरह धरित्रीपर पृथ्वीकी लहरें उठा करती हैं।

पृथ्वीकी सतहपर इन लहरोंकी चाल इतनी तेज होती है कि प्रायः पृथ्वीके भीतरसे एक प्रकारकी आवाज आती रहती है। लहरोंके कारण पृथ्वी ऊपर-नीचे भी उठती है और आगे-पीछे भी डुलती है। जब ऊपर-नीचे जाती-आती है, तब पृथ्वीकी ऊपरी हवामें बड़े जोरका धक्का लगता है। इससे ढोलककी-सी ध्वनि गूंजती है। कभी-कभी यह ध्वनि

बहुत दूर तक सुनायी देती है। जहां भूचालका कोई दूसरा प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता, वहां भी यह ध्वनि सुननेमें आयी है। भूकम्पके समय मकानोंके हिलन, छतोंके फटने और वृक्षोंके कांपने आदि ध्वनियोंके सामने पृथ्वीकी यह ध्वनि विशेषतः छिप जाती है।

इस प्रकार पृथ्वीकी सतहमें एकाएक हलचल पैदा हो जानेके कारण भूकम्प होते हैं। कोई-कोई भूकम्प पृथ्वीमें ज्वालामुखीके उभड़ आनेसे भी होते हैं। जब पानी भीतर प्रवेश करते-करते ऐसी जगहपर पहुंचता है, जहां भूगर्भके पदार्थ उष्ण और द्रवावस्था (liquid or molten condition) में रहते हैं तो यह भीतरी पानी भापमें परिवर्तित हो जाता है। भापका वेग कमजोर परतको तोड़कर लावा (Lava) के लिए द्वार खोल देता है। यही कारण है कि जब ज्वालामुखी पर्वत पहले-पहल फूटता है तो भाप बहुत तेजीसे ऊपर चलती है और कभी-कभी इस भापकी तीव्रता इतनी रहती है कि बादल बनाकर मूसलधार जल बरसा देती है। भापके सिवा गन्धक और कई तरहकी जलनेवाली (combustible) गैसें भी निकलती हैं। किन्तु जो भूकम्प अधिकतर ज्वालामुखीके पास होते हैं, वे ज्वालामुखीके स्फोटके कारण नहीं होते। क्योंकि देखा गया है कि जापानमें जहां सर्वाधिक भूकम्प आया करते हैं, ज्वालामुखीसे दूरपर ही प्रायः बड़े-बड़े भूचाल होते हैं। ज्वालामुखीके पासकी धरती अक्सर जोरसे हिल जाया करती है। ज्वालामुखीका आकस्मिक स्फोट इसका कारण है, वास्तवमें ये भूकम्प नहीं होते।

देखा गया है कि पृथ्वीके उन भागोंपर भूकम्प विशेष आया करते हैं, जहां पहाड़ोंकी श्रेणी अभी तक लगातार बनती जा रही है। इनमें सबसे बड़ा भूकम्प उठनेवाला पर्वत-भाग यूरोपके आल्प नामक पर्वतसे लेकर हमारे हिमालय तक की पर्वत-मालाका है। इस भागमें इटलीसे लेकर चीनके मध्य-भाग तककी सारी पृथ्वी आ जाती है। अनुमान किया गया है कि संसारके समस्त भूचालोंका पांचवां हिस्सा इस भागमें होता है। इसके बाद भूकम्प आनेवाली पृथ्वीका दूसरा खण्ड बङ्गालकी खाड़ीसे लेकर न्यूजीलैण्डके उत्तर भाग तक चला गया है। इसके उत्तरमें एक तीसरा भाग भी है जो कामाचटका स्थानसे लेकर फिलीपाइन-द्वीप-समूह तक चला गया है। इस भागमें जापान भी आ जाता है। इसके अतिरिक्त भूकम्प होनेवाले पृथ्वीके तीन भाग अमेरिकामें हैं।

किसी समय भारतवर्ष और लङ्का-द्वीप जुड़ा हुआ था। एक भीषण भूचालकी गतिसे बीचकी जमीन समुद्रसे ढक गयी और लङ्का भारतसे भिन्न होकर द्वीप बन गया। इनके बीचकी पृथ्वीके चिन्ह अभी तक नजर आते हैं, जिन्हें लोग रामेश्वरका पुल कहते हैं, और बतलाते हैं कि राजा रामचन्द्रने रावणपर चढ़ाई करनेके समय इसे बंधवाया था। इसी प्रकार भारतीय महासागरमें मारिशश और माडगास्करके मध्य कई द्वीप थे, जो भूकम्पके कारण नष्ट होकर समुद्रके पेटमें चले गये।

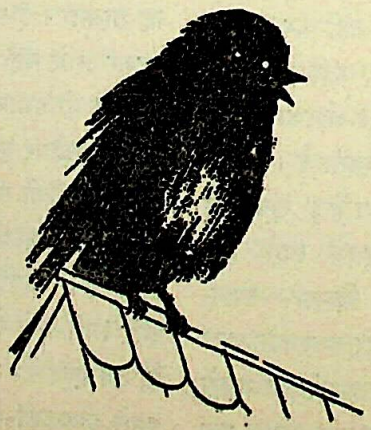

नटराज

सहसा यह कैसी ज्वाला
प्राचीमें पड़ी दिखायी ?
तम-तोम-महातोयधि में
किसने यह आग लगायी ?

झुलसा जाता है जिसकी
ज्वालामें जग पत्रों-सा।
हो गया क्षीण चन्द्रानन
ऊषाके नक्षत्रों-सा !!

विकराल ज्वाल जलती है
आग्नेय-दृगोंपर शङ्कित ।
उद्ग्रीव भालपर जिसके
सुस्पष्ट प्रलय है अङ्कित ॥

दुस्तर दिगन्त-सीमापर
चञ्चल-पद-चिह्नित-रेखा
है खींच रही लपटोंमें
मानो धूमाञ्जन रेखा ॥

आताम्र ज्योतिकी किरणें
लोहित ललाटपर फैली
हैं सिखा रही अम्बरको
रक्तिम विनाशकी शैली ॥

हैं लेलिहान लक्षावधि
उद्दीप्त देहसे लिपटे।
पावक-पहाड़में जैसे
काले बादल हों चिपटे ॥

सुन वासुकिकी फणियोंका
अन्तक स्वर घर्घर खरतर
है कांप रही भयसे यह
जगती-कपोतिनी थरथर !!

विध्वंस राग प्राणोंमें
आतङ्क मचा है जाता।
पाताल हिला देता है
गुरु चरण चाप मदमाता ॥

उद्रिक्त भाव-भङ्गीसे
वङ्किम-कटाक्ष-निक्षेपण
कण-कणमें भर देता है
लघु दीप-शिखाका सिहरण !!

कुसुमित कदम्ब-काननमें
मच गया भीम आन्दोलन।
अलि भाग चले तज शिथिली-
कृत कलियोंका परिरम्भण ॥

चीत्कार उठी कर कोयल
यूथी-कुञ्जोंमें विह्वल।
चू पड़े केतकी-तरुसे
जल छलछल करके अविरल ॥

कम्पित मेखला-वदनपर
खिंच गयी मृत्युकी छाया।
खिल उठी शरद् सरसिज-सी
हां, सर्वनाशकी काया ॥

अचिरागत प्रलय-निशामें
गा-गाकर विप्लव लोरी
आयी त्रैलोक्य सुलाने
रे माया नटी किशोरी ॥

द्रुत खेल गयी भय-व्याकुल
मुखपर मुसकान निराली।
दौड़ी क्षुधार्त्त चण्डी ले
मरघटमें खप्पर खाली ॥

विस्तब्ध अब्धिमन्दिरमें
जागी बड़वाग्नि कराली।
दुन्दुभि-निनाद-स्वर-निन्दित
दी कालीने करताली॥

विस्फोटक त्रोटक ध्वनियां
छायीं सर, गिरि-गह्वरमें।
चमका त्रिशूल बस, ज्योंही
त्रिपुरान्तकके करवरमें!!

× × × ×

नाचो, हे नटवर! नाचो,
अविराम गगन, जल, थलमें।
सर्वत्र विचित्रित कर दो
निज प्रलय-लालिमा पलमें॥

दो बजा पुनः वह अपना
डमरू, ओ डमरूवाला!
फिर एक बार दिखला दो
वह रुद्र रूप मतवाला॥

खोलो, त्रिनयनको अपने
फिर एक बार लोलेक्षण।
जिसकी संहार-जलनमें
जल जाये पापी-जीवन!!

घूमो, चण्डीश्वर! घूमो
निर्भय निर्धूम चितामें
भर दो निज मादकता कुछ
इस कविकी भी कवितामें॥

जिसकी तीखी तानोंपर
तुम भी फूलो, इठलाओ!
झूमो, नटराज! नशेमें
तुम रह-रहकर बल खाओ!!

जिससे अकाण्ड ताण्डवकी
सुधि भूलो तुम हे शङ्कर!
मैं करूं आज पागल-सा
वह अट्टहास प्रलयङ्कर!!

—आरसीप्रसाद सिंह।

उत्तर बिहारमें ध्वंस-लीला

श्री धर्मचन्द सरावगी

सीमाप्रान्तके लम्बे भ्रमणके बाद कलकत्ते लौटे ही थे—यात्रा और पश्चिमीय प्रदेशकी भयङ्कर सर्दीकी परेशानी अभी दूर भी न हो पायी थी कि ता० १५-१-३४ को हृदय-विदारक भूकम्पका समाचार मिला। पहलेके तीन-चार भूकम्पोंका कुछ अनुभव था इसलिए, और इसलिए भी कि कलकत्तेमें इस भूकम्पसे कोई विशेष क्षति नहीं हुई थी, उस दिन कुछ विशेष चिन्ता नहीं हुई। एक-दो दिन तक समाचार-पत्र भी मौन-से ही रहे। लोगोंने अपने-अपने सगे-सम्बन्धियोंके समाचार जाननेके लिए जो तार भेजे, उनका भी जहां-जहांसे उत्तर आया वहां-वहां सब कुशल थी। परन्तु कई स्थानोंसे उत्तर नहीं आये। अतः घर-घर चिन्ता बढ़ने लगी। ता० १७ को समाचार-पत्रोंमें मुजफ्फरपुरके ध्वंस होनेके समाचार प्रकाशित हुए। फिर तो दरभङ्गा, मुङ्गेर, मधुबनी, सीतामढ़ी आदिके एकसे एक रोमाञ्चकारी प्रलय-काण्डोंका विवरण प्रकाशित होने लगा। भूकम्पके इन भयङ्कर हृदय-विदारक समाचारोंको पढ़कर मनकी क्या दशा हुई, कह नहीं सकता। भूकम्प-पीड़ित स्थानोंकी क्या दशा होगी, वहांके अधिवासी कैसी विपत्तिमें होंगे, आदिकी कल्पना-मात्रसे हृदय दहल उठा। चित्तमें रह-रहकर एक टीस-सी होने लगी। सीमाप्रान्तकी यात्राकी थकावट, वहांकी सर्दीकी परेशानी सब काफूर हो गयी। अन्तःकरणसे बार-बार एक दैवी प्रेरणा होने लगी, चित्त बेचैन हो उठा। इच्छा हुई कि उधर जाकर पीड़ित भाइयोंकी कोई सेवा करूं। यह इच्छा उत्कटता प्राप्त करती गयी और अन्तमें निश्चय कर लिया कि अपनी यत्किञ्चित् योग्यताके अनुसार वहां जाकर अपने दैव-दुर्विपाक-पीड़ित भाइयोंकी सेवा करनी होगी।

इसी बीचमें हमारी दिगम्बर जैन-युवक-समितिके अन्तर्गत सहायताकी एक योजना हुई। मैं इस योजनामें भाग लेनेके लोभको न रोक सका। समितिकी ओरसे बहुत-से स्वयंसेवक सेवा-कार्यके लिए नियुक्त हुए थे। मैं उनके साथ हो चला। हमारे जिम्मे मोतिहारीका काम सौंपा गया था, अतः हम लोग वहांके लिए रवाना हुए।

समाचार-पत्रोंके पढने और भूकम्प-पीड़ित स्थानोंके चित्र देखनेसे उन स्थानोंकी भयङ्करताका कुछ अनुमान अवश्य हो गया था। परन्तु उसका वह रोमाञ्चकारी दृश्य उस समय ध्यानमें न आया था जो आगे चलकर देखनेमें आया। कलकत्तेसे मुकामा और फिर वहांसे हम लोग समस्तीपुर पहुंचे। इस रास्तेमें भी बहुत-से मकान फटे थे। परन्तु यह दैवी भूकम्पकी वास्तविक भयङ्करताके मामूलीसे मामूली दृश्य-मात्र थे।

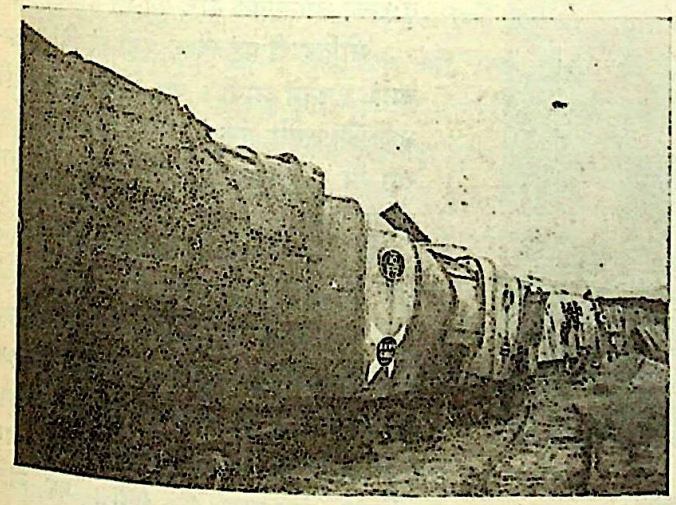

भयङ्कर भूकम्पके कारण इस रेलगाड़ीकी आकृति विचित्र बन गयी है।

समस्तीपुरसे मुजफ्फरपुरको ओर आगे बढ़ते ही भूकम्पके प्रलयकाण्डोंका प्रदर्शन आरम्भ हुआ। कहीं-कहीं सड़क दो-तीन फुट दब गयी थी। रास्तेके कई वृक्ष भी जड़से उखड़ गये थे। सरकारी कृषि-म्यूजियम, जिसे लोग नौलखा महल कहते हैं, एक सिरेसे दूसरे सिरे तक ककड़ीकी भांति फट गया था। उसके नीचेसे ही एक लम्बी दरार निकली थी। इस प्रकार एकसे एक विलक्षण दृश्य दिखलायी पड़ते थे। मुजफ्फरपुर पहुंचनेपर तो भूकम्पकी भयङ्कर लीलाकी चरम-सीमाके दर्शन हुए। पुरानी बाजारके मकान सारेके सारे गिर गये थे। इन्हें देखकर मुझे वे माडेल याद आ गये जिन्हें मैंने बेलजियम और फ्रान्सके अजायबघरोंमें देखा था। इन माडेलोंमें उस समयकी अवस्था दिखायी गयी थी जिस समय कि शत्रुओंके बमों द्वारा शहर नष्ट किये गये थे। सारा शहर नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था। यहांके रहनेवाले सभी हक्के-बक्के हो रहे थे। शहरका निरीक्षण करते समय कई विशाल अट्टालिकायें दिखायी पड़ीं, जिनके कुछ भाग गिर पड़े थे। बचे हुए भाग खतरनाक होनेके कारण सरकार द्वारा गिराये जा रहे थे। आश्चर्यकी बात तो यह थी कि जो भवन केवल तीन मिनटमें इस प्रकार नष्ट हुए, उनके बचे हुए भाग डाइनामाइटसे गिराये जानेपर भी नहीं गिरते थे। उन दृश्योंको देखकर दैवकी जबर्दस्त सत्ताका अन्दाजा लगता है। प्रकृतिके एक धक्केसे मनुष्यकी बड़ीसे बड़ी कारीगरी किस प्रकार ध्वंस हो सकती है, भूकम्पके वे दृश्य उसके प्रमाण थे।

एक जगह एक व्यक्ति अपने गिरे हुए मकानमेंसे दबी हुई वस्तुयें निकाल रहा था। उससे ज्ञात हुआ कि उसके मकानमें उसके निजके १० व्यक्ति और बाहरके मिलनेवाले ८ व्यक्ति—इस प्रकार कुल १८ व्यक्ति दबे। इनमें केवल तीन जीवित निकले। बाकी सारेके सारे मर गये। उस सज्जनकी कष्टप्रद गाथाको सुनकर मुंहसे उफ् निकलनेके अतिरिक्त और क्या हो सकता था? शहरके लोग सबके सब मैदानमें पड़े थे। उनके रहनेके ढङ्गको देखकर तरस आता था। सामान तो उनका मकानोंमें दब गया था। दूसरोंकी सहायता और अपने बचे हुए धन और शक्तिसे वे जो-कुछ कर सकते थे उसीसे बेचारे गुजर कर रहे थे।

उनमेंसे कितनों हीने तो फूसकी झोपड़ियां बनायीं, कितनोंने बोरोंको सिलाईकर उसका तम्बू बनाया। कितने ही लोग दो खाटोंको एक-दूसरेके सहारे खड़ीकर उसीके नीचे रहते थे। कोई केवल किसी बांसमें धोती या चादर बांध कर उसके नीचे पड़ते थे। जिन बदनसीबोंको यह भी मयस्सर नहीं हुआ वे यों ही नीले आकाशके नीचे सङ्कटका समय काट रहे थे।

बड़े-बड़े राजप्रासादोंके रहनेवाले धन-कुबेर भी आज झोपड़ियोंके लिए उतावले-से हो रहे थे। उनके कुछ दिन

पहलेके धनका गरूर इस समय चूर-चूर हो गया। इस समय बचपनमें सुनी हुई एक कहानी याद आयी। किसी ऋषिने एक चूहेपर प्रसन्न होकर उसे सिंह बना दिया था। चूहे महराज सिंह बन जानेपर इतने इतराये कि स्वयं अपने कर्ता ऋषिपर ही आक्रमण करने दौड़े। जिसमें बनानेकी शक्ति होती है उसमें बिगाड़नेकी भी होती है। ऋषिजीने तुरन्त आदेश दिया 'पुनः मूषिको भव'। हजरत चूहे खां फिर अपने चूहे-पनमें आ गये। भूकम्प-पीड़ित व्यक्तियोंकी झोपड़ियां इस कहानीका बार-बार स्मरण दिलाती थीं। कहते हैं, लोग पहले इसी प्रकारकी घास-फूसकी झोपड़ियोंमें रहते थे। परन्तु सभ्यताके गर्वमें मानव-समाज झोपड़ियोंका तिरस्कार कर महल बनानेका खेल खेलने लगा। वह इठलाता हुआ यहां तक बढ़ा कि लोहे और कांचके मकान बनानेके मनसूबे

मुजफ्फरपुरकी एक टूटी हुई अट्टालिका।

बांध रहा है। परन्तु भूकम्पने सभ्यताका मिथ्याभिमान करनेवालोंको यह दिखा दिया कि जिन झोपड़ियोंका वे तिरस्कार करते थे, वे ही सर्वोत्तम आश्रयदाता हैं। इस भूकम्पमें झोपड़ियोंके रहनेवाले जितने सुरक्षित रहे, मकानोंके रहनेवाले उतने ही खतरेमें रहे। ज्यों-ज्यों इस प्रकारके दृश्य देखते चले जाते थे, हृदयकी भावनायें त्यों-त्यों अधिक उद्दीप्त होती जाती थीं। मनकी ऐसी अवस्थामें हम मुजफ्फरपुरसे मोतिहारीके लिए रवाना हुए। इस तरफ तो रास्तेमें इतनी जमीन फटी थी कि रेलवेके जितने पुल थे, सब टूट गये थे। रेलवे लाइन इतनी विचित्रतासे टेढ़ी हो गयी थी कि उसे देख दांतों-तले उंगली दबानी पड़ती थी। सड़क इतनी अधिक फटी थी कि तीन-चार दिन पहले तक मोटरवाले इस रास्ते आनेका साहस नहीं करते थे। हम लोगोंने रास्तेमें देखा, जहां एक भी मकान साबित न बचा था वहां ९५ प्रतिशत झोंपड़ियां ज्योंकी त्यों खड़ी थीं। यदि बात इतनी ही होती तो शायद हमें दुःख न होता। महलोंमें निवास करनेवाले धनिकोंके पास अपने नये मकान बनवाने-भरके साधन तो हो ही जाते और गरीबोंकी इस प्रकारकी कोई क्षति हुई ही न थी, इसलिए दुःखका कोई प्रसङ्ग ही न था। किन्तु बात इतनी ही न थी। गरीबोंके ऊपर ईश्वरका बड़ा ही निर्दय प्रहार हुआ था। वहांकी सारी जमीन रेतीली हो गयी थी। बड़े-बड़े उपजाऊ खेत रेगिस्तान बने पड़े थे। जमीनके खराब हो जानेसे बेचारे गरीबोंकी जीविकाका एक-मात्र साधन कृषि भी नष्ट हो गयी थी। दुःखकी वास्तविक बात यह थी।

मोतिहारी पहुंचनेपर बड़ी ही विचित्र घटनायें सुननेमें आयीं। एक मित्रने बतलाया कि भूकम्पके भयसे एक व्यक्ति भागता हुआ जा रहा था। अकस्मात् जमीन फटनेसे जो दरार हो गयी वह उसमें गिर पड़ा। उसके गिरते ही उसके घरवालों तथा आश्रितोंकी सारी आशायें भी जमीनमें विलीन हो गयीं। परन्तु ईश्वरकी कृपा और उसके कुटुम्बियोंका भाग्य कि उसी क्षण उसी दरारसे इतने जोरकी जलधार निकली कि उसके साथ वह डूबा हुआ मनुष्य भी बाहर निकल आया। इस ईश्वरीय देनसे सारा परिवार बाग-बाग हो गया। वह व्यक्ति अब तक जीवित है। दरारमें धंस जानेकी एक दूसरी घटना यों बतलाते हैं—एक बुढ़िया जा रही थी, अचानक जमीन फट गयी और वह उसमें समा गयी। परन्तु इसके भाग्य वैसे न थे। अथवा ईश्वरीय सृष्टिमें अब उसकी आवश्यकता न रह गयी थी। इसलिए वह भीतर जाकर बाहर न निकली। उसकी चीजें उस समय तक दरारके पास पड़ी थीं। मोतिहारी मिलका कुछ भाग भी गिर पड़ा है। इस समय मिलके पास मालगाड़ीके कुछ डिब्बे खड़े थे। वे इस प्रकार विकृत हो गये थे कि उनका पहचानना भी कठिन था। बिहारके उत्तरी भागमें लगभग सारे कुएं बालूसे ऊपर तक

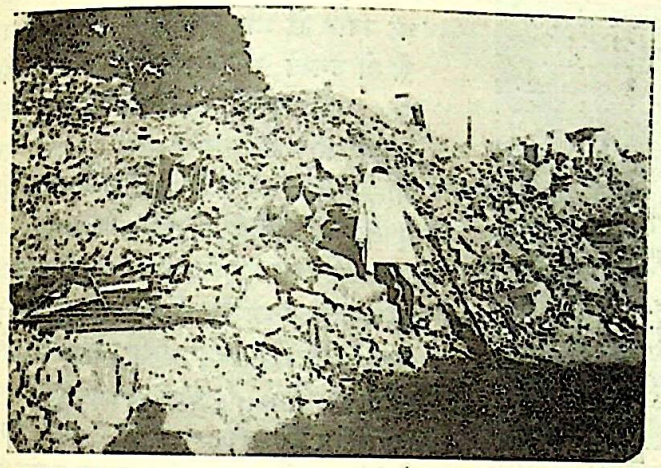

यह मिट्टीका ढेर नहीं है। मोतिहारीमें कभी यह मिट्टीका ढेर एक मकानके रूपमें विराजमान था।

भर गये हैं। एक कुआं तो ऐसा देखा जो जमीनमें बैठने या फटनेके बजाय जमीनसे पांच-छ फीट ऊपर आ गया था। गांवमें एक गृहस्थके घरमें एक कुआं ऊपरकी ओर निकला। उस भोले आदमीने समझा कि इसमें कुछ गड़ा हुआ खजाना होगा। इसलिए खाटसे ढककर छोड़ दिया। चार-पांच दिन पश्चात् जब वातावरण ठीक हुआ तब उसने उसे खोदा और मालूम किया कि वह एक भ्रम था, वह कुएंके अतिरिक्त और कुछ न था। बहुत-से लोगोंका यह भी कहना है कि बालू भरे हुए कुओंसे बालू हटानेपर उनमें पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यकर और स्वादिष्ट पानी निकलता है।

मोतिहारीमें मुसलमानोंकी कर्बला नामकी एक मसजिद सड़कके किनारेपर बनी थी। भूकम्पके समय दरार होनेके कारण वह उस स्थानसे लगभग तीस-पैंतीस फुट दूर चली गयी। एक देव-मन्दिर एक तरफसे ऐसा झुक गया था कि 'लीनिङ्ग टावर आफ पीसा' (Leaning Tower of Pisa) की याद दिलाता था। एक मित्रने एक बड़ी ही दर्दनाक घटना बतायी—जिस समय भूकम्प हुआ उस समय उनके एक मित्र अपनी पत्नी और छोटे बच्चे सहित निकलकर प्राण बचानेके लिए खुले स्थानकी ओर जा रहे थे। इतनेमें सामनेसे ही जमीन फटी। मित्र तो कूद गये, परन्तु हाथमें बच्चा होनेके कारण स्त्री न कूद सकी। अतः उसने सोचा कि दरारके उस पार खड़े हुए पतिको बच्चेको दे दे। तदनुसार ज्योंही उसने बच्चा देनेके लिए हाथ बढ़ाया त्योंही दरारसे इतने जोरोंका पानी निकला कि बच्चा उसके हाथसे छूट गया और दरारमें गिरकर मर गया। दुःखित माताका वह प्यारा बच्चा जबर्दस्ती उसके हाथोंसे सदाके लिए छीन लिया गया। कैसा हृदय-विदारक दृश्य था!

वहांके एक सज्जनसे जब मैं भूकम्प-पीड़ित स्थानोंका हाल पूछने लगा तो उनके आंसू निकल आये। वह कहते थे कि जिस समय भूकम्प हुआ, उसके पहले बड़े जोरोंकी गड़-गड़ाहटकी आवाज हुई। यह आवाज ऐसी जान पड़ती थी जैसे कोई एक दर्जन हवाई जहाज एक-साथ ही चलते हों। सब लोग कौतूहल-वश मकानके बाहर आ गये, उस समय भूकम्प होने लगा। पृथ्वी जोरोंसे ऊपर-नीचे हिलने लगी। सभी लोग अपने-अपने इष्टदेवको याद कर रहे थे, और घरमें बचे हुए लोगोंको बाहर निकालनेका प्रयत्न कर रहे थे। पृथ्वीके इतने भयङ्कर कम्पको देखकर मैं डर गया। बच्चा दूकानमें था। मैं तुरन्त दौड़कर उसे बाहर ले आया। ईश्वर-की कृपा थी कि उस समय कोई और दुर्घटना नहीं हुई। बच्चा सकुशल मेरे साथ निकल आया। मुझसे यदि उस समय कोई पूछता था कि किधर जायं तो मैं यही उत्तर देता था कि खुली जगहकी ओर भागो। इस समय धड़ाधड़ ईंटें गिर रही थीं। जमीनसे पानी भी निकल रहा था। मैं भी अपनी जान लेकर दूसरी ओर भागा। घरवालोंसे कह दिया, जिधर बच सको भागो। जीवित रहेंगे तो मिलेंगे। उस समय कम्पन बन्द हो गया था, पर पानी निकल रहा था। प्रलयका दृश्य सामने दिखायी दे रहा था। किसीको भी अनुमान न था कि हम जीवित रहकर फिर एक-दूसरेसे मिल सकेंगे। शाम तक शान्ति हुई तो घरवालोंको एकत्रित करनेकी समस्या आयी। सब लोग तो मिल गये, परन्तु एक लड़का नहीं मिला। बहुत खोज करनेपर वह घरसे तीन मील दूर मिला। दूसरे दिन फिर भूकम्प आया। इस बार केवल धक्के थे। शहरमें पानी घट गया था, परन्तु इस बारके धक्केमें जो बचे हुए मकान थे, फट गये और बहुत-से गिर गये। अब तो लोगोंको मकानमें रहना कठिन हो गया। दूसरी जगह जाने या दूसरी जगहसे सहायता मांगनेका साधन नहीं था, क्योंकि रेल, तार, सड़

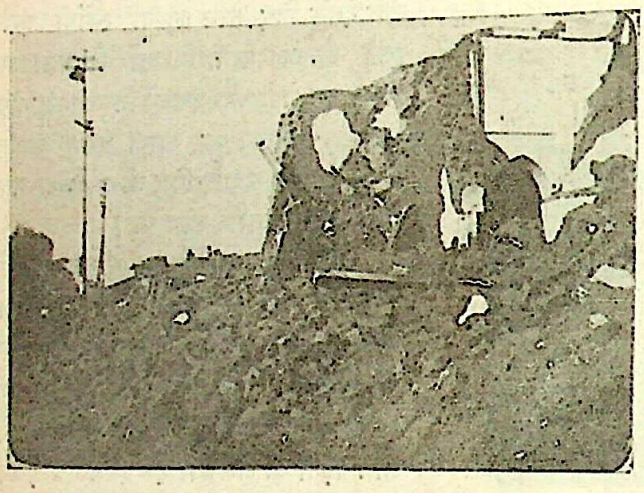

अभागा मुङ्गेर भी नष्ट होनेमें बिहारके किसी भी नगरसे पीछेन रहा ।

पुल सभी चीजें नष्ट हो गयी थीं । खानेकी चीजें तीन दिन तक नहीं मिलीं । सड़कोंपर सभी जगह बालू जम गया । कहीं-कहीं तो तीन-चार फुट तक देखा गया ।

मोतिहारीसे पटना आते समय मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर जिलेमें कटरा नामक गांवके पास ऐसी दरार फटी है कि जिसकी चौड़ाई तीस-चालीस फीट है और लम्बाई लगभग तीन-चार मील होगी । पटनेमें बाहरसे तो देखनेमें कोई हानि नहीं दिखायी देती, पर ८० प्रतिशत मकानोंकी क्षति हुई है ।

उसके बाद मुझे कलकत्ते वापस आ जाना था । पर मुङ्गेरके देखनेकी इच्छा बड़ी प्रबल हो रही थी । इसलिए लौटते समय मैं वहींसे आया । मुङ्गेरका दृश्य तो बड़ा ही दुःखदायक था । चौक बाजार और बड़ाबाजार तो इस प्रकार नष्ट हुए थे मानों किसी बालकने ताशके सुन्दर घर बनाये हों और जब उनसे चित्त ऊब गया हो तो उनको एक ही वारमें नष्ट कर दिया हो । उन मकानों और गलियोंका पहचानना कठिन था । साराका सारा बाजार ऐसा मालूम पड़ता था जैसे ईंटोंका ढेर पड़ा हो । इतनी बड़ी सीमामें नाम-मात्रके लिए एक भी मकान ऐसा न था जो अपनी पूर्व अवस्थामें खड़ा हो । लाशें अभी निकल रही थीं । इस तरफ किसानोंको हानि नहीं हुई, क्योंकि झोपड़ियां तो Earthquake-proof बनी ही थीं । खेतोंमें पानी और बालू न आनेके कारण खेतीमें हानि नहीं हुई । परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि उन्हें कोई क्षति ही न उठानी पड़ी हो ।

इस प्रकार उत्तर बिहारका पूरा-पूरा भाग बड़ी ही रोमाञ्चकारी अवस्थामें पड़ा है । इस समय उन सब स्थानोंमें सहायताकी आवश्यकता है । यद्यपि विभिन्न स्थानोंकी संस्थायें बड़ी तत्परतासे काम कर रही हैं, तथापि हानि इतनी अधिक हुई है कि इसकी सैकड़ों गुना अधिक सहायता उसकी पूर्तिके लिए पर्याप्त न होगी । अतः मानवताके नाते सभी स्थानोंके भाइयोंका यह परम पुनीत कर्तव्य है कि वे अपने इन पीड़ित भाइयोंकी सहायता करें और अपने इस सहायता-कार्यमें उन गरीब भाइयोंको न भूलें जो शहरोंसे दूर ग्रामोंमें निवास करते हैं और मूक प्राणियोंकी भांति अपना दुःख किसीको सुना भी नहीं सकते ।

———

अस्सार संसार

यह पैंठ अजब है दुनियाकी और क्या-क्या जिन्स इकट्ठी है,
यां माल किसीका मीठा है और चीज़ किसीकी खट्टी है,
कुछ पकता है कुछ भुनता है पकवान मिठाई पट्टी१ (अ) है,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको यह चूल्हा भाड़ न भट्टी है,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

कोइ ताज़ ख़रीदे हंस-हंसकर कोइ तख़्त खड़ा बनवाता है,
कोइ कपड़े रङ्गे पहने है कोइ गुदड़ी ओढ़े जाता है,
कोइ भाई-बाप चचा नाना कोइ पोता-पूत कहाता है,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको यह रिश्ता और न नाता है,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

कोइ फूलके बैठे मसनदपर कोइ रोवे अपनी दौलतको,
कोइ बोले अपना मुझसे लो और मेरा हो सो मुझको दो,
कोइ लड़ता है कोइ मरता है कोइ झगड़े हक़पर नाहक़को,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको कुछ लेना एक न देना दो,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

रम्माल१ नजूमी२ आमिल३ है और फ़ाज़िल४ मुल्ला स्याना है,
कोइ आक़िल कामिल५ है दाना कोइ मस्त पड़ा दीवाना है,
तावीज़६ फ़लीता७ फ़ाल८ फ़सूं९ और जादू-मन्तर लाना है,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको सब हीला मक्र बहाना है,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

कोइ लोटे कूंचे गलियोंमें तैयार किसीका डेरा है,
कोइ बाग़ कुंआं बनवाता है और घेर किसीने घेरा है,
नित क़ज़िये१० झगड़े रहते हैं यह मेरा है यह तेरा है,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको यह तेरा और न मेरा है,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

कोइ टोपी टोप बनाता है कोइ बांध फ़ड़ा अम्मामा११ है,
कोइ साफ़ बरहना१२ फिरता है नै कपड़ा है पाजामा है,
कमख़्वाब गज़ी और गाढ़ेका नित क़िस्सा है हङ्गामा है,
जब देखा ख़ूब तो आख़िरको ना पगड़ी है ना जामा है,
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

अब किसका रङ्ग बुरा कहिये और किसका रूप भला कहिये,
इक दमकी पैंठ लगी है यह अम्बोह१३ मज़ा चर्चा कहिये,
यह सैर तमाशे देख 'नज़ीर' अब जा कहिये बेजा कहिये ?
कुछ बात नहीं बन आती है चुपचाप पहेली क्या कहिये ?
गुलशोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है;
हम देख चुके इस दुनियाको यह धोकेकी-सी टट्टी है।

*

—'नज़ीर' अकबराबादी

—*—

१ (अ) एक तरहकी मिठाई, १ फलित ज्योतिषी, २ भविष्यवक्ता, ३ कर्ता, ४ ख़ासा, ५ सम्पूर्ण, ६ यन्त्र, ७ टोरा, ८ शकुन, ९ मन्त्र, टोना, १० लड़ाई, ११ पगड़ी, १२ नङ्गा, १३ मेलाठेला।

महाबली मृत्युका सर्वव्यापी अदृश्य अणुरूप

डा० विश्वरूप सत्यवादी एम. बी. , बी. एस.

जर्मनीमें शिशुरोग डिपथीरियाका प्रकोप असंख्य बालकोंकी बलि ले रहा था। नित सैकड़ों बच्चे इस रोगके शिकार बनकर अकालमें ही कालके गालमें घुस रहे थे। सब यह दारुण दृश्य देख रहे थे; पर बेबस थे। यह महामारी नन्हें-नन्हें शिशुओंका जीवन घासकी तरह काट रही थी। मनुष्य और उसका विज्ञान इसके आगे निस्सहाय था। ठीक इस समय राबर्ट काखने क्षयरोगके अणुओंका पता चलाकर संसारको स्तम्भित कर रखा था और आयु-विज्ञानके शोधकोंके सामने आविष्कारका नया क्षेत्र उपस्थित कर दिया था। यह देखकर काखका शिष्य फ्रीडरिष लेफलर उस महामारीके बीच इस खोजमें लगा था कि डिपथीरियाके रोगाणु कहां छिपे रहते हैं ? यह महामारी ऐसे वेगसे फैली कि सब अस्पताल भर गये और रोगियोंको उनमें स्थान मिलना कठिन हो गया। सारी जर्मनीमें माताओंके विलापने हाहाकार मचा दिया। जिनके बच्चे थे वे इस रोगके कारण हायतोबा मचा रही थीं और जो असन्तान थीं वे इन रोगी बच्चोंकी सांस लेनेकी कठिनता और घरघराहट सुनकर तड़प रही थीं। डाक्टरोंके पास इस रोगकी कोई दवा न थी। वे बीच-बीचमें इतनी ही सहायता पहुंचा सक रहे थे कि दम घुटते समय बच्चोंके गलेमें नली द्वारा हवा पहुंचाते थे। इस महामारीने जर्मनी-भरमें रोवापीटी मचा दी और मृत्यु वहां उलङ्ग होकर नाचने लगी।

इस महामृत्युके बीच अस्पतालोंमें जहां लाशें सड़ रही थीं वहां बैठकर लेफलरने रोगग्रस्त बच्चोंके कण्ठ-प्रदेशकी खोज की। श्वास-नलियोंका सूक्ष्म विश्लेषण किया। उसे एक दिन मालूम पड़ा कि इस नलीमें मलाई-सी लग जाती है और यही रोगकी जड़ है। इसलिए उसने इस काईके भीतर रोगाणुओंका पता लगाना आरम्भ किया। इसके भीतर उसने देखा कि असंख्य कीड़े सलसला रहे हैं। ओहो ! उसकी आंखें खुलीं और वह समझ गया कि डिपथीरिया रोगके अणु ये ही हैं। ये कीड़े इतने छोटे थे कि एक वर्गइञ्चमें प्रायः एक लाख अणुओंका ढेर लग जाये। उसने जितनी लाशें चीरीं उन सबके गलेकी श्वास-नलिकामें यह विचित्र काई लगी हुई थी। इससे स्पष्ट हो गया कि इस विषने ही बच्चोंको मारा। पर हैरत तो इस बातकी है कि 'अणुके अणु' ये कीड़े सारे शरीरमें विष कैसे फैला सकते हैं। लेफलर इसकी खोजमें लगा। उसकी नींद-भूख हराम हो गयी, पर इस जटिल समस्याका कुछ समाधान न हो सका। उसने ये कीड़े पाले और उनका जहर निकालकर खरगोशोंके शरीरमें डाला; वे तुरन्त वहीं ठण्डे हो गये। जलशूकरोंपर यह विष आजमाया गया। वे भी तत्काल मर गये। उनका शरीर देखा गया तो उनके गलेमें भी वही काई पायी गयी; पर अन्यत्र रोगाणुओंका पता न चला। लेफलर खोज-खोजकर हार गया; पर उसे कुछ भेद न मिला।

किन्तु इस खोजसे साफ हो गया कि यह छोटा रोगाणु इतना विषैला है कि बच्चोंके शरीरमेंसे प्राण हर लेता है। इन अणुओंने आक्रमण किया कि सारी देहमें जहर फैल गया। यह इन अदृश्य कीड़ोंका प्रताप

था कि असंख्य बच्चे कालके ग्रास बन रहे थे। कालका यह नया और सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप देखकर सब डाक्टर चकित थे। राबर्ट काखने क्षयरोग और हैजेके रोगाणुओंको दुनियाके सामने रखकर इन दो महामारियोंके पीछे संहारकारिणी महामाया जो ताण्डव नृत्य करती है उसका चित्र हमारी मोटी आंखोंके सामने रख दिया, और लेफलरने डिपथीरियाके अणु दिखाकर यह बताया कि काल हमारे पास ही वायुमें फिरता है।

यह तो हुआ, पर हब्बाडब्बा रोगके इन अणुओंको लेफलर काईसे अलग न कर सका। मिट्टीमें अल्यूमिनियम है, यह हम सब जानते हैं; पर जब तक हम उसे अलग करनेका ढंग न जानें, उसका उपयोग नहीं कर सकते और न दूसरोंको उसका पक्का प्रमाण दे सकते हैं। यही दशा लेफलरकी हुई। इस क्षेत्रमें दो फ्रेंच खोजी रू और येरसांने सफलता प्राप्त की। उन्होंने छानकर पीले रंगके ये कीड़े अलग रख दिये। अब जिसकी इच्छा हो वह महामृत्युके इन प्रचारकोंको माइक्रोस्कोपके नीचे लपलप करते देख सकता है। ये कीड़े पीली लेहीके रूपमें अलग निकाल लिये जाते हैं और उसे देखिये तो उसमें केवल विषैले कीड़े रहते हैं। इन विद्वानोंने यह भी सिद्ध कर दिया कि ये कीड़े छोटे बच्चोंके शरीरमें घुसकर वह पिचकारी मारते हैं कि रग-रगमें जहर फैल जाता है और कुछ ही समयमें बच्चा मर जाता है।

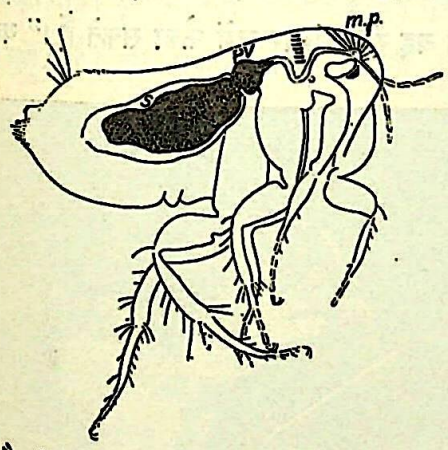

प्लेग फैलानेवाली मक्खीके पेटमें रोगाणुओंका उपनिवेश

इनके हलाहल विषकी महिमा देखिये कि एक रत्तीका तीन सौवां हिस्सा साठ हजार जलशूकरों अथवा साढ़े सात हजार कुत्तोंको मारनेके लिए काफी है। यदि एक रत्तीका बीस हजारवां भाग भी जलशूकरके शरीरमें पैठ जाये तो उसे हब्बाडब्बा हो जाये। इस रोगाणुका यह मारात्मक प्रभाव देखकर पाठक घबरायें नहीं। इस पृथ्वीमें मौत सर्वत्र गर्वसे स्फीत मनुष्यपर इन अणुओं द्वारा आक्रमण कर रही है जो दृष्टिसे परे हैं। जितने रोग हैं उनके जो कीटाणु या विषाणु होते हैं वे इतने ही छोटे होते हैं। यह विधाताका विरूप उपहास है कि वह इतने बड़े मनुष्यों—नहीं नहीं, मनुष्य-समाजका इन विषाणुओंके आक्रमणसे संहार करता है।

*

राम नित्यकी भांति गंदला जल पीता है। उसके कसबेमें जलकी सफाईका ठीक प्रबन्ध नहीं है। पर इससे क्या, उसके बाप-दादा न मालूम कबसे ऐसे जलको ही पीते आये हैं। अरे यह क्या? रामने ज्यों ही भोजन किया, उसके बाद उसका पेट चलने लगा। अवश्य कोई सख्त चीज खा गया होगा। वह अठारह घण्टे बीमार रहा और फिर चल बसा। सब नातेदार और कुटुम्बी रोये-पीटे और अन्तमें सबने यह सोचकर अपने मनको सन्तोष दिया कि भाग्यका लिखा कोई नहीं मेट सकता। 'लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।' लेकिन इस मृत्युके पीछे विषाणुओंका जो भैरव नाचता है उसे साधारण मनुष्य नहीं देख सकते। भारतमें तो हम विज्ञान या चिकित्सा-शास्त्रके नये

आविष्कारोंपर विश्वास करना भी नहीं चाहते। इस अभागे देशमें सब वेदान्ती हैं और सबको निश्चय है कि मौत ठीक वक्तपर आयेगी, तब उसके लिए हाथ-पांव क्यों हिलाना। पर अन्य देशोंमें मनुष्य इन विषाणुओंसे लड़ रहा है कि मृत्युको भी दबाये। राम तो मर गया, पर वे विषाणु महामारी-का रूप धारणकर नगर, कसबे और प्रदेश वीरान कर देते हैं। कुछ दिनोंके लिए मनुष्यके जीवनका कुछ मूल्य नहीं रहता और गिद्धों, सियारोंकी बन आती है। वायुमण्डलमें मौत विष बनकर बहती है। एक इस रोगसे भारतमें प्रतिवर्ष तीन लाखसे ऊपर आदमी मरते

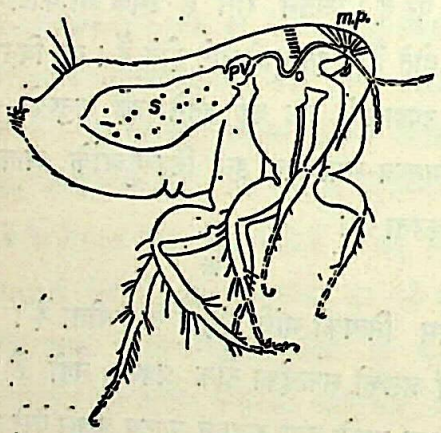

प्लेग फैलानेवाली मक्खीके पेटमें रोगाणुओंका जमघट

हैं। यह आजकलकी बात है, कुछ ही वर्षों पहले इस एक रोगसे १५ लाख आदमी तक मरे हैं। संसारमें और देशोंमें भी पहले इस महामारीका दबदबा था। पर वहां स्वच्छ जलका प्रबन्ध किया गया और यूरोप, अमेरिका आदि देशोंमें यह रोग दिखायी नहीं देता। भारतमें स्वयं म० गांधी महामारियों, भूकम्पों आदिमें हमारे पापोंका फल देखते हैं। उधर कुछ अन्धविश्वासी इन उत्पातोंको कलियुगके नाना 'धर्म-विरुद्ध' कार्योंका परिणाम समझते हैं। इस प्रकार यह अभागा देश अंगरेजोंका ही नहीं, अपने ही कुसंस्कारों-का गुलाम बनकर स्वयं अपने हाथों अपनी मूर्खता और 'धर्मात्मापन' से आत्म-संहार कर रहा है।

राष्ट्रसङ्घकी राय है कि भारत हैजेका घर है और यह ऐसा पलीद अड्डा है कि इसके कारण कब जगत्में फिर हैजेका दौरदौरा हो, कहा नहीं जा सकता। जब तक भारतवासी गन्देपनसे बाज नहीं आते तब तक सदा हैजेका भय बना रहेगा। डा० एफ० नारमैन ह्वाइटने रिपोर्ट दी है—"आंकड़ोंसे मालूम होता है कि दुनियामें भारतके कुछ प्रदेश ही हैजेके प्रधान अड्डे हैं। ये यह रोग संसारभरमें फैला सकते हैं।" यह रोग

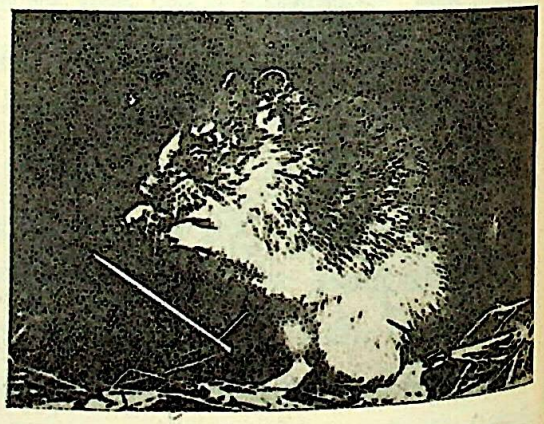

संसारकी अधिकांश बीमारियोंकी जड़ चूहा

कच्चा-पक्का बुरा भोजन करने या गन्दा पानी पीनेसे होता है। इस कमबख्त देशको देखिये कि अब तक इस रोगसे पचहत्तर लाखके करीब आदमी काल-गालमें जा चुके हैं। १९२१ में बङ्गालमें हैजा हुआ। यह महामारी इतनी विषैली न थी। रिपोर्ट निकली कि अबके हैजेका प्रकोप भयङ्कर नहीं है। इस हलके हैजेने एक लाख मनुष्योंके प्राण लिये। १९२५ में काश्मीरमें हैजा फैला। अप्रैल मासमें इसने वह लहरा दिखाया कि सारी आबादीके दो सैकड़ा आदमी इसके

एक चूहा वर्ष-भरमें ६८ सेर अनाज चट कर जाता है।

चूहोंके एक जोड़ेकी साल-भरमें १८६० सन्तानें पैदा होती हैं।

और ये सब मिलकर साल-भरमें १५०० मन अनाज साफ कर देते हैं।

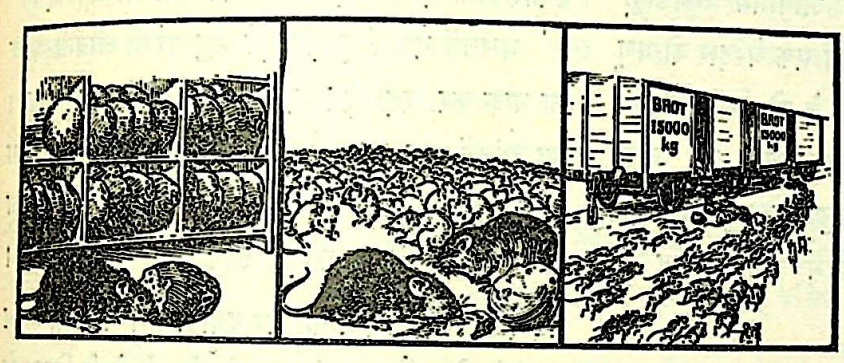

गणेशजीका वाहन चूहा भी मनुष्य-संहार करनेमें मुण्डमाली शिवकी सहायता करता है।

पेटमें चले गये। इस प्रकार भारत अपनी मूर्खतासे इस देशमें प्रलयको निमन्त्रित करता है।

प्लेगने भारतमें अब तक आसन जमा रखा है। १८९६ से अब तक इस एक रोगसे प्रायः डेढ़ करोड़ मनुष्य अकालमें ही कालके मुंहमें धंस गये। भारतमें मक्खियोंका राज है। इनमेंसे सात-आठ तरहकी मक्खियां प्लेग फैलानेका काम करती हैं। ये कालकी ओरसे प्रचार-कार्य करती हैं। बदनमें मक्खी बैठी तो किसीको मालूम भी नहीं होता। इस हलकी मक्खीका वजन ही क्या है जो मनुष्य उसे भार समझे। पर एक मक्खी लाखों प्लेगके विषाणुओंका पुञ्ज है। वह क्या उड़ती है, प्लेगके रोगाणुओंका पूरा उपनिवेश ही उड़ता है। जिसके शरीरपर यह बैठी कि इसने विषकी पिचकारी उसके अङ्गमें गोदी। मनुष्य उस स्थानपर खुजली-सी मालूम करता है और खुजलाने लगता है। इतने हीसे विष सारे शरीरमें व्याप जाता है। प्लेग न भूकम्प है और न ज्वालामुखी, पर वह जो प्रलय मचाता है उसे भारतवासी भूल नहीं सकते। इसके रोगाणु इतने विषैले होते हैं कि मक्खीने अपना दांत शरीरपर लगाया और रोगने आ धरा। यह रोग पहले यूरोप-में भी कुहराम मचाता था। वहांकी आबादी इसने कई बार उजाड़ दी। पर अब यह चीन और भारतमें ही अपना रौद्र नृत्य करता है।

चूहेका अस्तित्व न हो तो प्लेग भी न रहे। असलमें प्लेगके अणु 'मूषक'पर हमला करते हैं और मक्खियां, जो स्वभावसे दूसरोंके शरीरसे रस चूसकर अपना जीवन निर्वाह करती हैं, केवल मैलेकी खोजमें रहती हैं। कुछ मक्षिकायें चूहेका रस पीती हैं और यदि प्लेगसे चूहा मर जाये तो ये मक्खियां गन्दे आद-मियोंपर बैठती और प्लेग फैलाती हैं। यह चूहा स्वयं एक महामारी है। संसारका कोई ऐसा रोग नहीं जो इसके द्वारा न फैले। सब तरहके रोगाणु इसके शरीरमें फलते-फूलते हैं। पागल कुत्तोंके रोगाणु चूहेपर बहुत असर करते हैं। पागल जङ्गली जानवर चूहोंको काटते हैं, ये कुत्तोंपर झपटते हैं। कुत्ते मनुष्योंको काटते हैं। क्षय रोगके घर भी ये चूहे हैं। जब क्षयरोगका बीमार मर जाता है तो रोगके कीड़े नहीं मरते। वे उसके शरीरमें दो-तीन दिन तक डटे रहते हैं, चूहा इस मुरदेका मांस खाने दौड़ता है और स्वयं क्षयरोगका शिकार बन जाता है। जिसके घरमें ऐसा चूहा रहेगा, अवश्य वह वहां इस भीषण बीमारीका प्रचार करेगा। जिस गल्लेपर वह मुंह मारेगा उसमें रोगाणु घुस जायेंगे और उसे खानेवालोंमें क्षय फैल जाय तो आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। एक मर्ज

ऐसा है कि वह केवल चूहोंसे ही पैदा होता है। यह बला चीन और जापानमें तबाही मचाती है। यह 'चूहा-बुखार' कहा जाता है और जापानमें 'सोडोकू' नामसे प्रसिद्ध है। चूहेके शरीरमें एक घेरदार रोगाणु होता है। चूहा यदि किसीको काट दे तो उसके शरीरमें यह विष पैठ जाता है और उससे बुखार आ जाता है। यह ज्वर मलेरियाकी भांति मनुष्यको बहुत कमजोर कर देता है। ऐसे सौ रोगियोंमें दस अवश्य ही मरते हैं।

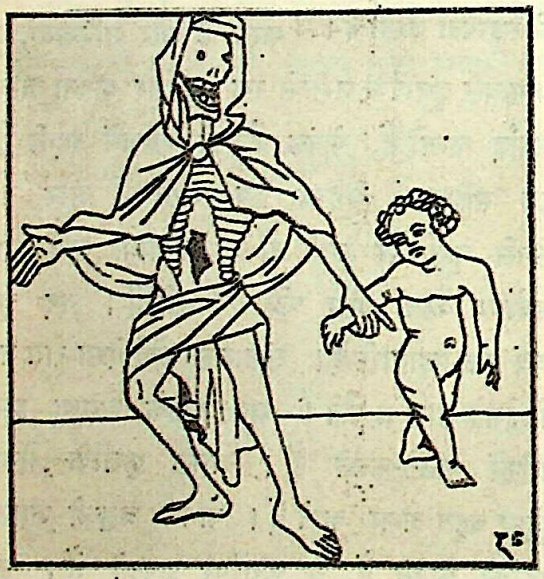

मृत्यु सुकुमार बच्चोंको खानेमें आनन्द प्राप्त करती है।

सब रोगोंका घर तो चूहा है ही। पर वह देशकी अपार हानि अनाज उजाड़कर करता है। इसमें इसे टिड्डियोंके जोड़का ही समझना चाहिए। एक चूहा दिखायी तो बहुत छोटा देता है, पर सालभरमें ६८ सेर गल्ला हजम कर जाता है। परन्तु इतनेमें बस होती तो परवा न थी; तुर्रा तो यह है कि एक चूहेका एक जोड़ा वर्षभरमें १८६० औलाद पैदा करता है। यह सालमें कितना अनाज नष्ट करेगी? हिसाब लगाकर मालूम हुआ है कि वह १५०० मन अनाज उजाड़ती है। दयालु देश भारतमें चूहे प्रतिवर्ष २५ लाख मनुष्योंका भोजन डकार जाते हैं और हमको इसका पता भी नहीं है।

भारतमें एक कीड़ा करोड़ों मनुष्योंकी जीवनी-शक्ति का नाश कर रहा है। इसका नाम है पेटका कीड़ा। यह आंतमें जम जाता है और जिसके पेटमें यह हुआ वह जीवितावस्थामें ही मुर्दा बन जाता है। इसका कारण यह है कि वह कीड़ा ताकतको चाट जाता है। यह रोग दरिद्र मनुष्योंको धर दबाता है। यह नङ्गे पांव चलनेसे होता है। जहां इस रोगके रोगीकी विष्ठा हो वहां पांव धरनेसे यह रोग चिपट जाता है। पर भारतमें ९५ सैकड़ा मनुष्य नङ्गे पांव चलते हैं और इसके रोगी 'दिशा फरागत' करके इसके रोगाणुओंको सर्वत्र बिखेर देते हैं। डाक्टर आदिशेषन्‌ने लिखा है—"आप पेटके कीड़ोंका रोग कैसे दूर कर सकते हैं। भारतमें तो 'दिशा जङ्गल' का रिवाज है और इसका अर्थ है इन कीड़ोंका सर्वत्र प्रचार करना। इसके अतिरिक्त कट्टर हिन्दू मर्द और ९९ सैकड़ा स्त्रियां जूते पहनना पाप समझती हैं।" यह रोग कितना भीषण है, इसका अनुमान इससे लगता है कि मद्रासमें अस्सी सैकड़ा मनुष्य इसके शिकार हैं और बङ्गालमें साठ। एक अंगरेज डाक्टरने हिसाब लगाया है कि हमारे किसानोंमें साढ़े चार करोड़ पेटके कीड़ोंके छाने हुए हैं। इनमें किसी रोगका सामना करनेकी शक्ति नहीं है। ऐसे ही क्षीणशक्ति मनुष्य हैजा, प्लेग आदिकी खेतीको पनपाते हैं। यह संहार अपने ढङ्गका एक ही है। इसके द्वारा भारतका एक प्रदेश नहीं 'सारा देश' ही मृत्युमुखकी ओर भाग रहा है। तब इस देशके किस-किस संहारके लिये रोया जाये। हमारे बच्चे जिस संख्यामें मरते हैं उसकी उपमा भी कहीं नहीं मिलती। दुर्बलोंकी निर्बल

सन्तान छोटी अवस्थामें ही कूच कर जाती है। भारत-में आधे बच्चे पैदा होनेके पहले वर्षमें ही यहांसे विदा हो जाते हैं। यहां नितप्रति कालका दौरा रहता है। वायुमें कालके दूत बहते हैं, पानीमें कालने विष घोल रखा है, भूमिमें मृत्युके चर विचरते हैं और स्वयं हमारे उदरमें उसने अपना अधिकार कर रखा है। यह अभागा देश बेसुध पड़ा इसका उपाय नहीं कर सक रहा है। तब भूकम्प आये या प्लेग, एक-सा है। हम द्रुतगतिसे मृत्युमुखकी ओर धावित हो रहे हैं। चाहें तो अपना उद्धार स्वयं कर सकते हैं; पर अभी तक तो यह चाह भी नहीं है।

———

प्रणयकी प्रलय-लीला

श्री जी० डी० अग्निहोत्री, एम० ए० (बर्लिन)

Her beauty, fervent as a fiery moon, Made my blood burn and swoon,
Like a flame rained upon. —Swinburne.

सृष्टिके आदिसे अब तक प्रेमने जो प्रलय मचाया है वह न किसी भूकम्प और न ज्वालामुखीने किया है। विरहानल-में कितने प्राणी भस्म हुए, वियोग-वारिधिमें कितनी आत्मायें विलीन हो गयीं, प्रेमने कितनोंको पागल बनाया और प्रणयकी व्यथाने कितनोंको मारा, इसका अनुमान लगाते ही प्राण थर-थर करने लगते हैं। मीराने सच कहा—

हे री मैं तो प्रेम-दिवानी, मेरा दरद न जाणै कोय,
दरदकी मारी बन बन डोलूं वैद मिल्या नहिं कोय,

यह सब प्राणियोंकी प्रेम-विह्वल अवस्थाका चित्र है। अब फ्रायड आदि मनस्तत्त्व विशारदोंने यह प्रमाणित किया है कि पागलपना प्रेमका परिणाम है। प्रणयके कारण कितने रोग होते हैं उनका हिसाब लगाना असम्भव है। संसारमें इससे बड़ी महामारी दूसरी नहीं है। यदि भगवान् और उत्पात और व्याधियां उत्पन्न न करता तो जीवोंका संहार करनेके लिए एक यह प्लेग काफी था। इस बीमारीके नाना रूप नित भूत-प्रेतोंकी भांति मनुष्यकी छातीपर नाच रहे हैं। इस लेखमें केवल एक रोगका उल्लेख करेंगे। उससे पाठक समझेंगे कि यह एक व्याधि किस प्रकार संसारका सर्वनाश कर रही है।

*

कोलम्बसकी अमेरिका-यात्राने यूरोपको विश्वकी समृद्धि सौंप दी। जब उस वीरने अमेरिकामें पांव रखा तो समझा कि स्वर्णप्रसू भारत-भूमिका जलपथ खोज लिया है। उसका जहाज कुछ दिन हयाती द्वीपमें लङ्गर डाले पड़ा रहा और उसके साथियोंने वहां खूब आनन्द लूटा। इस टापूमें किसी बातकी कमी न थी। फल-फूल, भांति-भांतिके भोजन और रूप-लावण्यती ललनायें। इन रमणियोंने जब गोरोंको देखा तो उनपर लट्टू हो गयीं और गोरोंकी यह विकल अवस्था कि उनके प्रेममें उन्मत्त बन गये। उन्होंने खूब आनन्द लूटा और हयाती छोड़ते समय उन्होंने खूब आंसू बहाये।

यूनानी दार्शनिक सुकरात

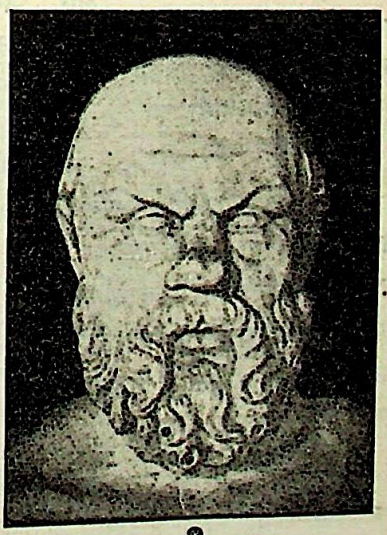

इसकी गली हुई नाककी हड्डीसे स्पष्ट पता चलता है कि इस महात्माको 'गर्मी' की बीमारीने सताया था।

दिग्विजयी कोलम्बस जब यूरोप लौटा तो स्पेनमें उसका वह शानदार स्वागत हुआ कि शायद ही कभी किसी राजाको ऐसी आवभगत हुई हो। बार्सेलोना नगर उसके तथा उसके साथियोंके चरणोंमें लोटने लगा। स्पेनिश नारियां तो उनपर फिदा थीं। उन्होंने अपना सर्वस्व उन वीरोंके अर्पण किया। ठौर-ठौरमें उनको दावतें दी गयीं और सर्वत्र उनके सम्मानमें नाच-गाने होने लगे। इन विजयी शूरोंके लिए कोई रोक-टोक न रही। धनियों और कुलीनोंके अन्तःपुर उनके लिए खुल गये। यहां तक यूरोपियन नीतिके अनुसार सब ठीक था। पर कुछ दिनों बाद बार्सेलोनामें एक विचित्र बीमारीने सर उठाया। यह पहले स्त्रियोंमें फैली। वे इसके विषसे सड़ने लगीं। फिर उनके पुरुषोंने इसका कटु अनुभव प्राप्त किया। इसपर तुर्रा देखिये कि कोलम्बसके साथी भी स्पेन वापस आकर इस भयङ्कर रोगके शिकार बने। किसीकी समझमें न आया कि यह किस महामारीका प्रकोप है। डाक्टर दङ्ग थे, मन्तर-जन्तरवाले हैरान थे और जनता इसके सामने असहाय थी। इससे तो प्लेग अच्छा। वह कुछ समयमें ही मौतका पैगाम सुना देता है, पर यह तो तिल-तिल करके शरीरको खाता है और उसे सड़ाकर जो असह्य यन्त्रणा देता है उससे मृत्यु बहुत अच्छी। सारे नगरमें हाहाकार मच गया। यह दुर्दशा गरमीकी बीमारीने की थी जिसे कोलम्बसके साथी अमेरिकासे लाये थे। 'नयी दुनिया' के इस तोहफेने यह सर्वनाशका दृश्य उपस्थित किया।

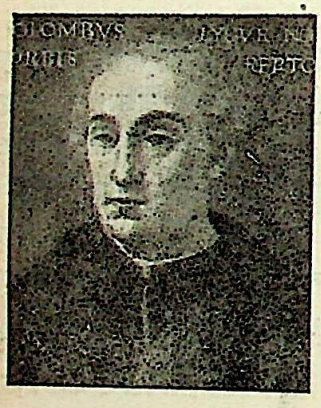

अमेरिकाका आविष्कार करनेवाला क्रिस्टोफर कोलम्बस, जो नयी दुनियासे पुराने संसारके लिए 'गर्मी' का तोहफा लाया था।

यह न समझना चाहिए कि यह रोग यूरोपमें न था। सारे संसारमें गरमीका राज आरम्भसे ही है। सुकरातकी जो मूर्तियां मिली हैं उनसे पता लगा है कि स्वयं सुकरातकी नाक इस भीषण रोगने बिगाड़ दी थी। उसकी हड्डी गल गयी थी। पर दो भिन्न-भिन्न जातियोंके सङ्गमने इसकी धार तेज कर दी—इसका विष उग्र कर दिया। ये विजयी फ्रान्स पहुंचे और वहां भी उनका अपूर्व मान हुआ और फलस्वरूप नारियोंने आत्मसमर्पण किया। कुछ दिनों बाद वे भी 'हाय मरीं, हाय मरीं' कराहने लगीं। इतनेमें इटलीका दुर्भाग्य आया कि स्पेन और फ्रान्सके बादशाह नेपल्सके राजाकी सहायताके लिए वहां अपनी-अपनी सेना ले गये। फ्रान्सकी सेनामें कोलम्बसके कुछ साथी और कुछ फ्रेञ्च सैनिक थे जो इस रोगसे सड़ रहे थे। इन फौजोंके साथ वेश्यायें भी थीं, उन्हें यह रोग हुआ और नेपल्समें पहुंचकर सिपाहियोंने शत्रुको भगाया और फिर कुछ समय तक वे आनन्दमें मत्त रहे। उन्होंने इस प्रकार यह महामारी वहां भी पहुंचा दी। सारांश यह कि कुछ ही समयमें सारा यूरोप इसका शिकार बना और सब त्राहि-त्राहि करने लगे।

'फिरंग' रोग विश्वमें विजयी होकर उलङ्ग नृत्य कर रहा है।

इसकी अपूर्व दिग्विजयके सामने कोलम्बसकी विजय परास्त हो गयी। इस बलाने अजीब तेजीसे एशियापर भी हमला कर दिया। लोग घबरा गये कि मौतका यह कैसा रूप है, बिजलीकी तरह दौड़ता है। डाक्टर पारसिल्सने लिखा—"यह बला तो 'गरमी' के रोगीकी नजर पड़ते ही भूतकी तरह चिपट जाती है।" यह बात एक प्रकारसे ठीक ही है, क्योंकि १४९४ में इसने स्पेनपर हमला किया और १५०० ई० में यह संसार-भरमें फैल गयी। १४९७ ई० में वास्को दा गामा अफ्रीकाका चक्कर काटकर सिंहल और भारत पहुंचा। वह सुमात्रा, जावाकी ओर भी गया। उसके साथ-साथ यह 'नयी गरमी' एशियाके सुदूर द्वीपों तक पहुंच

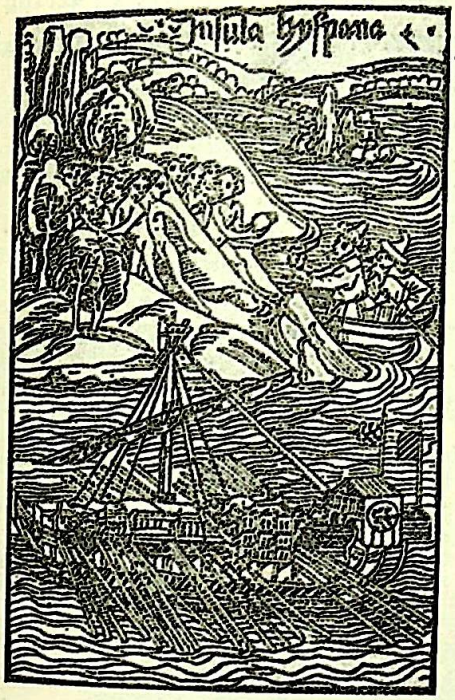

कोलम्बसके जहाजके यात्री हवाई द्वीपके तटपर स्नानार्थ आयी हुई सुन्दरियोंके रूपपर लट्टू हो रहे हैं।

गयी। वहांसे इसने छ मासके भीतर चीन और जापानको घर दबाया। सच तो यह है कि इस 'राजरोग' के सरपर वह सेहरा बंधा कि सात वर्षके भीतर विश्वमें इसका साम्राज्य छा गया। बात यह थी कि उन दिनों वेश्यालयोंमें अमीर और गरीब सब सगर्व जाया करते थे। वहांसे यह रोग चारों दिशाओंमें फैल गया।

सब देश अचम्भेमें थे कि यह सत्यानाशी रोग आया कहांसे? इसलिए एक-दूसरेको गालियां देने लगे। फ्रान्सवाले समझे कि यह बला नेपल्ससे आयी है। इसलिए उन्होंने इसका नाम रखा 'नेपल्सकी व्याधि' (Mal de Napoles) इटालियन फ्रान्सपर बिगड़े हुए बैठे थे। उनका ख्याल था कि यह रोग वहींसे उपजा है। झटसे नाम रख दिया 'फ्रेञ्च रोग' (Malum Francoum)। पुर्तगालवालोंने स्पेनको कोसा और इस आफतका नाम (Mal de Castilea) 'स्पेन रोग' रखा। स्पेनवाले इसे 'Mal de Gallies' अर्थात् फ्रेञ्च रोग कहने लगे। पोलैण्डवाले समझे कि हो न हो यह विष जर्मनीसे आया है। इसलिए इसे 'Deutsche Krankheit' पुकारने लगे और रूसवाले इसे 'Polnische Krankheit' अर्थात् 'पोलैण्डकी बीमारी' कहने लगे। एशियामें कई स्थानोंमें इसका नाम पड़ा 'पुर्तगालकी बला' और कहीं 'फिरङ्ग रोग'। भारतमें लोग इसे 'फिरङ्ग रोग' कहने लगे।

हमारे यहां भी यह विषधर रोग आया; पर यहां वेश्यालयोंकी कमी न होनेपर भी यह उतना नहीं फैला। यूरोपमें मुंह चूमना मामूली बात है, इसलिए गरमोने वहां ऐसा स्वेच्छाचारी राज किया कि वहांके लोग आज तक उसका कुफल भोग रहे हैं। इस जहरीली बीमारीसे वहांके लोगोंकी क्या हालत हुई होगी, इसका अनुमान उसके इलाजके नाना उग्र उपायोंसे लगाया जा सकता है। एक इलाज यह निकाला गया कि रोगीको भट्टीके ऊपर पारेकी भाप देना। इसमें बीमार पकता था। कई लोग भट्टीकी तेज आंच न सह सकनेके कारण मर गये। पर यह व्याधि इतनी बुरी है कि लोग इससे पिण्ड छुड़ानेके लिए सब-कुछ करनेको तैयार बैठे थे। जिस समय उनके अङ्ग सड़ने और गलने लगे तो उन्हें मारात्मक यातना होती

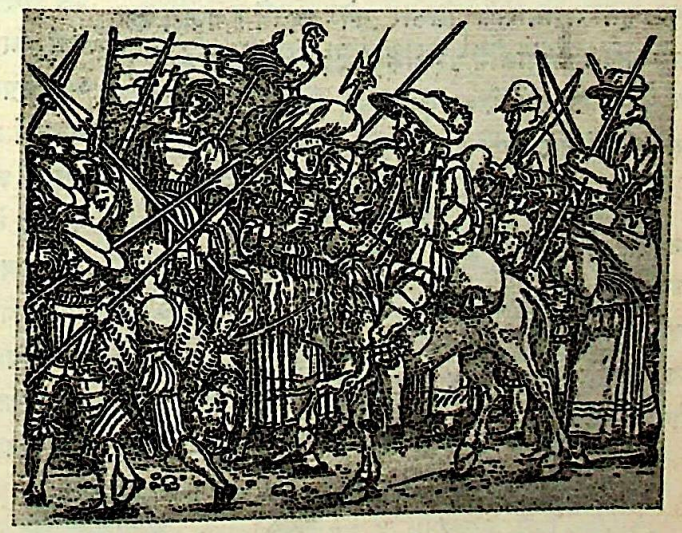

यूरोपमें पुराने जमानेमें फौजके सिपाहियोंकी सेवाके लिए वेश्यायें भी साथ-साथ चलती थीं, यह बात पाठक इस प्राचीन चित्रमें देखेंगे।

थी। इसके सामने मौत भी अच्छी। पारेसे कभी-कभी कुछ लाभ होता था। इसलिए भण्ड वैद्योंका पारेका इलाज खूब चला। आयका यह नया और अत्यन्तलाभप्रद ढङ्ग देखकर कुछ लोग अमेरिका गये और वहांसे पता लगा लाये कि वहांके निवासी 'गुआयाकुम' पौधेको खाकर इससे बचे रहते हैं। बस, वे यह पौधा लाये और यूरोप-भरमें इसकी खेती होने लगी। यह इलाज भी चला, पर विशेष लाभ न हुआ। उस समय यह रोग असाध्य ही था।

*

यह रोग अब भी घटतीपर नहीं है। युद्धोंके बाद सदा इसका दौरदौरा रहा। जब-जब मनुष्य-संहारके दृश्य उपस्थित होते हैं तो मनुष्य देखता है कि नीति और पुण्यका संसारमें कोई स्थान नहीं है। प्राणियोंका सर्वनाश चाहे परमात्मा करे चाहे मनुष्य, उसे देख दुर्बल मर्त्य धर्म और पुण्यपर विश्वास खो बैठता है। नतीजा यह होता है कि अनीति, व्यभिचार आदि दुर्गुण सर उठाने लगते हैं। * गत महायुद्धके बाद यूरोपमें धर्मविमुखता और व्यभिचार बढ़ा। साथ-साथ गरमीका रोग भी बढ़ा। डा० हिर्शफेल्डके कथनानुसार बर्लिनमें पचास वर्षसे अधिक उम्रका हर तीसरा आदमी इस जघन्य रोगसे ग्रस्त है। २४ मार्च १९२६ को प्रशियाकी पार्लामेण्टमें श्री बार्टेल्सने कुछ जर्मन आंकड़े पेश किये थे। उनसे विदित होता है कि बर्लिनमें अस्सी सैकड़ा मनुष्य इस महामारीके शिकार बने हुए हैं। पचास या इससे अधिक उम्रवालोंमें ४३ सैकड़ा यह रोग भुगत रहे हैं। ४५ सैकड़ा मरे बच्चे केवल इस रोगके कारण जनमते हैं। जर्मनी-भरमें साठ लाख आदमी इस राजरोगके प्रतापसे सड़ रहे हैं। डेनमार्ककी दशा और भी खराब है। वहां सौमें सोलह मृत्यु इसके कारण होती हैं। एस्कीमो लोग बर्फानी मुल्कमें रहते हैं। उनके देशकी जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। लेकिन प्रेमकी महिमा और गरमी देखिये कि वहांके ९९ सैकड़ा नरनारी इस प्लेगसे व्यथित हैं। कहा जाता है कि फ्रान्समें हर साल डेढ़ लाख बच्चे मांके पेटसे 'गरमी' लेकर इस संसारमें आते हैं।

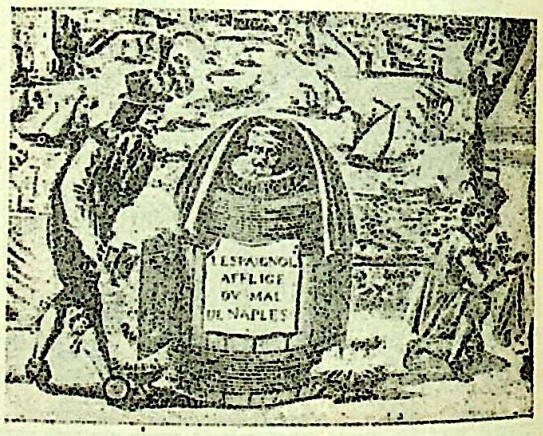

एक 'गर्मी' के रोगीका पारेकी भट्टीमें काया-कल्प।

उक्त देशोंमें इस रोगको दबानेके उग्र और सफल उपाय काममें लाये जाते हैं। पर प्रेमरसखान इस भारतभूमिमें इस रोगने गांव-गांव जो प्रलय मचा रखा है, उसकी तुलना नहीं मिलती। यहांके लोग इसे छिपा-छिपाकर अपना और अपनी सन्ततिका नाश करना अपना धर्म समझते हैं। भारतमें उपदंशके रोगियोंकी संख्या डेढ़से दो करोड़ तक बतायी जाती है। इन सबको मुर्दोंमें शुमार करना उचित है, क्योंकि ये इस जीवनमें किसी कामके न रहे और स्वयं असह्य यन्त्रणा सहकर मृत्युकी बाट जोह रहे हैं। यह प्रेमकी प्रलय-लीला है। संसारमें सर्वनाशके नाना रूप हैं; पर यह कालरूप सबसे भयङ्कर है। इसकी तुलना न कोई भूकम्प कर सकता है और न ज्वालामुखी। मजा देखिये कि यह प्यारका फल है।

* धर्मप्राण म० गांधी बिहारके भूकम्पसे जो धन-और जनहानि हुई है उसका कारण हरिजनोंके प्रति हिन्दू जातिका अन्याय बताते हैं। इस विषयपर हम कुछ सम्मति नहीं दे सकते; पर इतिहास बताता है कि इस भूकम्पसे वहां भी कुछ समयके लिए धर्मका ह्रास और अधर्मकी उन्नति होगी।—ले०

(संसार-भरकी प्रायः सब भाषाओंके उत्तमोत्तम ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओंसे)

जीवनकी खोजमें वैज्ञानिक

अमृतकी खोजमें देवता और दैत्य पागल थे। वर्तमान वैज्ञानिक भी इस खोजमें हैरान हैं कि उसकी प्रयोगशालामें मिट्टी, जल, गरमी, प्रकाश आदि तत्त्वोंके सम्मिश्रणसे मनुष्य कब पैदा हो। जीवित प्राणियोंको पैदा करना, विधाताके ही हाथमें है या कभी यह नगण्य मनुष्य भी मिट्टीमें विज्ञान-का यन्त्र फूंकके जान डाल देगा? इस विषयपर पाठक अपनी-अपनी सम्मति स्थिर करें। पर वैज्ञानिक अपने निर्दिष्ट पथसे विचलित नहीं होनेके। अमेरिकामें 'मेजर मिस्टरीज आफ सायन्स' (विज्ञानकी प्रधान उलझनें) नामकी एक पुस्तक निकली है। उसमें वैज्ञानिक एच० गार्डन गार्वेदियनने इस विषयपर अत्यन्त मनोहर और शिक्षाप्रद बातें लिखी हैं। हम यहां उनका सार देते हैं:—

हम रोगी क्यों होते हैं? हमें बुढ़ापा क्यों सताता है? हम कालके ग्रास क्यों बनते हैं? इन प्रश्नोंका उत्तर तभी दिया जा सकता है जब हम इन सबके आधारभूत प्रश्न—'हम जीवित क्यों हैं?' का उत्तर दे सकें।

वर्तमान वैज्ञानिकोंके सामने मुख्य समस्या—जीवन-के क्रम और उसकी प्रगतिको समझना है। सैकड़ों वैज्ञा-निक इस खोजमें भी लगे हैं कि जीव प्रयोगशालाओंमें उत्पन्न किये जायं। इन्होंने ऐसे कृत्रिम अणु पैदा कर दिये हैं जो जीवित प्राणका परिचय देते हैं। कुछ अन्य वैज्ञानिकों-ने मृत्युका रहस्य खोलनेका प्रयत्न किया है। ये इस परिणामपर पहुंचे हैं कि अस्वाभाविक मृत्यु होती ही नहीं।

जब मनुष्य मर जाता है तो उसकी देहके नाना अङ्गोंमें प्राण घण्टों तक फड़फड़ाता है। मरनेके बहुत देर बाद तक नाखून बढ़ते जाते हैं। इसका कारण यह है कि जिन जीव-कोषोंसे नाखून बनते हैं उनमें मरनेके बाद भी जीवन रहता है। रूसके जीवशास्त्री डा० एस० जे० चेनेहूलिनने एक कुत्तेका सर धड़से अलग कर दिया और उसे नाना क्रियाओंकी सहायतासे तीन घण्टे तक जीवित रखा। उनके सहयोगी डा० ए० कुवलियाकोने इससे भी बड़ा यह चमत्कार कर दिखाया कि एक मनुष्यके हृदयको बाहर निकालकर उसकी धुकधुकी तीस घण्टे तक बन्द न होने दी।

अमेरिकाके अध्यापक वुडरफने यह सिद्ध कर दिया है कि शरीरके जीव-कोषोंका मरण अवश्यम्भावी नहीं है। प्राचीन समयके कुछ जानवरोंके जीव-कोषोंमें उन्होंने यह पाया है कि प्रायः ८५०० पीढ़ियों तक अर्थात् अढ़ाई लाख वर्ष तक एक जानवरकी भी स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीव-कोष याने शरीरको बनानेवाले छोटे-छोटे कोष अमर हैं। इस सिद्धान्तकी पुष्टि राकफेलर इन्स्टिट्यूटके डा० एलेक्सिस कैरलने भी अपने प्रयोगों द्वारा की है। डा० कैरलकी प्रयोगशालामें वे जीव-कोष अभी तक जीवित हैं जो उन्होंने बीस साल पहले एक गर्भस्थ बच्चेके शरीरसे लिये थे। ये मुर्गीके जीव-कोष हैं, जिनकी आयु अधिकसे अधिक पांच सालकी होती है। मुर्गी मर गयी है, पर उसके गर्भसे निकाले हुए ये जीव-कोष अभी तक जिन्दा हैं। पर जो जीव-कोष उन्होंने मस्तिष्कसे लिये थे वे अधिक दिन तक जीवित न रह सके।

इन सब खोजोंका निदान डा० कैरलने यह निकाला है कि भले ही मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी हो, पर उसके शरीरके जीव-कोष व्यक्तिगत रूपमें अमर हैं। वे कभी नहीं मरते। इसका कारण वे बताते हैं कि जीव-कोष मिलकर जो एक शरीर बनाते हैं उसमें जीवनकी प्रकृतिके अनुसार विष भी पैदा हो जाते हैं जो उसकी मौतका कारण हैं, पर जीव-कोष स्वयं ऐसे रसमें रहते हैं जिसमें बाहरसे विष नहीं घुस सकता।

भांति-भांतिके प्रयोग करके क्लीवलैण्डके डा० क्राइलने मुर्दोंके तनमें नया जीवन फूंक दिया है। उन्होंने अपनी प्रयोगशालामें ऐसे जीव-कोष बनाये हैं जिनमें प्राण पाया जाता है। ये जीवकोष प्राणवायु 'आक्सिजन' का पान करते हैं और अपानवायु (कार्बन) का विसर्जन। ये खूब हिलते-डुलते भी हैं।

डा० क्राइलका सिद्धान्त है कि जीवन और बिजलीका घना सम्बन्ध है। तब क्या प्रयोगशालामें प्राणी पैदा होंगे? क्योंकि विद्युत्-शक्ति इस समय सर्वत्र काममें लायी जाती है और उसका अभाव कभी नहीं हो सकता।

कुछ द्वीप जो सागरमें डूबते और उतराते हैं

संसारमें जल और थलका युद्ध निरन्तर चला जा रहा है और इस कारण जगत्के नाना स्थानोंमें भूकम्प, ज्वालामुखी आदिके कारण नयी भूमि बाहर निकल आती है और पुरानी डूब जाती है। कुछ द्वीप ऐसे हैं जो इन्हीं कारणोंसे डूबते और उतराते रहते हैं। इनका परिचय हालैण्डके लाइडन नामक नगरके प्रसिद्ध पत्र "फ्रागन फान देन डाग" ने दिया है:—

क्या यह सम्भव है कि सारा द्वीप, जिसे उसके अधिवासी पक्की जमीन समझकर उसपर खेतीबारी करते और उसमें बस गये हों, एक रोज पानीमें डूब जाये? हां! क्योंकि जहाजोंके यात्री ऐसी कई घटनायें अपनी आंखों देख चुके हैं। पहले सफरमें इन्होंने एक द्वीप देखा। अपने नक्शेमें उसे खींचा। पर दूसरी यात्रामें देखते हैं तो वह नदारद हो गया है। इसके विपरीत उस जगहमें नया द्वीप उठ आया है जहां पहली बार जलधि लहरें मार रहा था। यहां नापनेपर पता लगा था कि हजार गजसे भी अधिक नीचे तक पानी ही पानी है।

एक ऐसा द्वीप सिसलीके दक्षिणमें 'फर्डिनाण्डेआ' है। यह १८३१ के जुलाई मासमें अचानक ऊपर उठ आया था। कुछ दिन पहले भूकम्प हुआ था। एक दिन सागर खौलने लगा और देखते-देखते पानीकी पचास गज ऊंची दीवार खड़ी हो गयी। ज्वालामुखीका वह धड़ाका हुआ कि आकाशमें चार हजार गज ऊपर तक राख उड़ी। जब इसका धुंआ घटा तो समुद्रके बीचमें ज्वालामुखीका शृङ्ग दिखायी दिया। दूसरे रोज ऐसे दो शिखर और निकल आये। इनकी ऊंचाई दो सौ गज थी। पासके रहनेवालोंने इसका नाम 'फर्डिनाण्डेआ' रख दिया। अंगरेजोंको इसकी खबर मिली तो उन्होंने तुरत उनपर अपना झण्डा गाड़ दिया। इन नये द्वीपोंको देखने दूर-दूरसे लोग आने लगे और बहुत दिन तक वहां नित मेला लगता था। यह देखकर इन द्वीपोंको विरक्ति-सी हुई और १८३१ के अक्टोबर महीनेमें फिर इन द्वीपोंको जाड़ा-बुखार लगा। लगे थर-थर कांपने और एकाएक गड़ामसे फिर गोता खा गये।

रूसके बोगुस्लाव द्वीप-पुञ्जकी उत्पत्ति और भी आश्चर्यजनक है। कुछ लोगोंने १७६८ में देखा कि समुद्रमें नया द्वीप निकल आया है। इसका नाम "जहाजी चट्टान" रखा गया। १७९६ में समुद्रके नीचे ज्वालामुखी फूटा और एक दूसरा द्वीप पानीके ऊपर उठ आया। १८८८ में 'जहाजी चट्टान' फिर पानीके भीतर दबक गया और उससे कुछ फासलेपर एक नया द्वीप निकल आया। यह २४० गज ऊंचा था और इसका नाम रखा गया 'नया बोगुस्लाव'। बीस वर्ष तक यह दशा ज्योंकी त्यों रही। १९०६ से बेहरिङ्गकी खाड़ी कुछ बेचैनीके लक्षण दिखाने लगी और पहली सितम्बर १९०७ को बोगुस्लाव द्वीपका एक बड़ा हिस्सा आसमानको उड़ गया। बचा-खुचा भाग १९१० में खतम हुआ। १९२७ में जो देखा तो थोड़ी-सी जमीन बची है जिसपर उत्तरी ध्रुवसे जानवर आग सेकने आते हैं; क्योंकि वहांका पानी घोर शीतकालमें भी गरम रहता है।

प्रशान्त महासागरका 'फालकन' द्वीप विचित्र खेल खेल रहा है। अंगरेज जहाज 'फालकन' के कप्तानने १८५५ में इसे देखा और इसपर अंगरेजी झण्डा गाड़कर इसका नाम अपने जहाजके नामपर रख दिया। १८७७ में फिर इस और

एक अंगरेज जङ्गी जहाज अपना नया द्वीप देखने आया; पर इस द्वीपका कहीं पता न मिला। उसके स्थानपर समुद्रगर्भसे धुएंका स्तम्भ खड़ा हो रहा था। १८८६ में तीसरा जहाज वहां गया तो महात्मा 'फालकन' फिर जहांके तहां बैठे थे। इसकी ऊंचाई तीन सौ फीट थी। पर इस बीच ये फिर अन्तर्धान हो गये। १९२८ में यह फिर समुद्रके बीचेकी अपनी लम्बी समाधिसे ऊपर उठ आया और पासके टोंगा द्वीप-पुञ्जके अधिवासियोंने उसपर अपना झण्डा गाड़ दिया। पर पता नहीं, यह कब मय झण्डेके फिर जलके गर्भमें प्राणायाम करने लग जाये।

एक द्वीपकी कथा इससे भी विचित्र है। इसकी नींव एक जहाजपर स्थित है। ब्रिटिश गायनामें एस्सेक्विबो नदीके मुहानेपर एक अंगरेज जहाज लगा। इसका नाम 'निर्भय' (डाउण्टलेस) था। वहां पहुंचते ही राख और बालूकी वर्षा होने लगी। नाविक यह देख घबराये और अपने-अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए उनमें भगदड़ पड़ गयी। जहाजकी यह दुर्गति हुई कि उसको मिट्टीने दबा दिया और कुछ समय बाद उसपर हरियाली लहराने लगी। अब यह 'डाउण्टलेस' द्वीप पन्द्रह मील लम्बा-चौड़ा है।

कई द्वीप ऐसे गुम हो गये हैं कि अब उठनेका नाम नहीं लेते। केपहार्न और न्यूजीलैण्डके बीचमें १८४१ में कप्तान डौहर्टीने प्रायः तीन सौ फीट ऊंचा और सात मील लम्बा द्वीप देखा। उसपर अंगरेजी झण्डा फहराया और नाम रखा 'डौहर्टी' द्वीप। १८६० में दूसरे जहाजने इसे देखा। उसके बाद यह ऐसा गुम हुआ कि अब तक पता न मिला। दक्षिणी ध्रुवका आविष्कार करनेवाले स्काटने जब अपने प्रसिद्ध जहाज 'डिस्कवरी'की सहायतासे इसे देखना चाहा तो इसके स्थानपर सागर मिला जिसकी गहराई ४८०० गज पायी गयी। इस द्वीपका रहस्य अभी तक न खुला। यह डूबता भी तो समुद्रगर्भमें टीलेकी तरह रहता, पर वहां ४८०० गजका गढ़ा कैसे हो गया?

माटाडोर द्वीप-पुञ्जकी भी यही हालत है। एक अंगरेज कप्तानने उसे देखा, वह वहांके आदिम अधिवासियोंके साथ लड़ा और उनसे उसने व्यापार किया, पर अब उसका नामोनिशान भी नहीं मिलता। वह कहां चला गया? और अनेक द्वीप इसी प्रकार डूबते-उतराते रहते हैं।

आस्ट्रेलियाके हबशियोंका सर्वनाश

नाना उपनिवेशोंमें गोरोंके संसर्गसे वहांके आदिम अधिवासी उजड़ रहे हैं। गोरोंने अपनी निष्ठुरतासे उनका उन्मूलन करनेमें कुछ भी न उठा रखा। अमेरिकाके रेड इण्डियन आज केवल नमूनेके लिए रह गये हैं। कई उपनिवेशोंमें गोरोंने आदि-अधिवासियोंका शिकार किया। आस्ट्रेलियाके आदि-अधिवासियोंके उजड़नेका इतिहास हृदय-विदारक है। उसपर एडिनबराके 'चेम्बर्स जोर्नल'में श्री जैक गाडफ्रायका एक लेख 'आस्ट्रेलियन कालोंका दुखान्त नाटक'' नामसे छपा है। उसका सार यह है:—

आस्ट्रेलियाके तस्मानिया प्रदेशमें १८७६ में ही आदिम अधिवासियोंका समूल नाश हो गया। विक्टोरिया प्रदेशमें आज कुल ५९ असल आस्ट्रेलियन हबशी बचे हुए हैं। यह उनके वंशधर हैं जो कभी आस्ट्रेलियामें लाखोंकी संख्यामें फैले हुए थे और वहां राज करते थे। न्यू साउथ वेल्समें कभी बहुत घनी बस्ती थी। वहां साल-भर फलफूलोंकी खेती पनपती है। इनका कभी घाटा नहीं रहता। इसलिए ये आस्ट्रेलियन 'बुशमेन' वहां अधिक संख्यामें बस गये थे। आज उनकी संख्या कुल ११९७ रह गयी है। मुझे खूब याद है कि कुछ वर्ष पहले सिडनीके निकट ला पेरूज स्थानमें इनकी एक बस्ती थी। उसमें इनकी दुर्दशाका चित्र दिखायी देता था। अंगरेजोंके पुराने चीथड़े पहनकर ये बहुधा सिडनीकी गलियोंमें घूमते नजर आते थे। उनमें कुछ बारहों मास छाता पहनकर बाहर निकलते थे। गोरे बड़े तो ये गायब हो गये और न मालूम जङ्गलोंमें किधर विलीन हो गये।

आरम्भमें इन हबशियोंने नवागन्तुक गोरोंके साथ घोर युद्ध किया। अपने देशमें विदेशियोंको अधिकार जमाते ये न देख सके। इन युद्धोंने इनको उजाड़ दिया। न्यू साउथ वेल्समें तो उनका इसी प्रकार नाश हुआ।

उत्तरी और पश्चिमी आस्ट्रेलियाकी मर्दुमशुमारीसे मालूम होता है कि वहां अब कुल उनसठ हजार हबशी शेष रह गये हैं। पर ठीक पता नहीं कि उनकी संख्या कितनी है। इससे कुछ कम या ज्यादा भी हो सकते हैं। बात यह है कि अब उनके बढ़नेकी आशा करना व्यर्थ है। वर्तमान सभ्य दशामें वे फलफूल नहीं सकते। एक विचक्षणकी राय है कि पचास वर्ष बाद आस्ट्रेलियामें एक भी असली हबशी न रहेगा।

ये हबशी अब संख्यामें कम होनेके कारण गोरे आगन्तुकोंपर आक्रमण नहीं करते, जैसे पहले किया करते थे। पर जब कुछ खोजी जङ्गलोंके भीतर घुसकर वहांकी भौगोलिक दशाका अध्ययन करना चाहते हैं तो उनपर ये टूट पड़ते हैं या दूरसे भाला फेंकते हैं।

दक्षिण अमेरिकाके पेरू प्रदेशके संहारके स्मृतिचिन्ह—असंख्य लाशें

पेरूमें कभी ऊच्च सभ्यता और संस्कृति थी। ठीक मिस्रकी भांति पेरूके आदिम निवासी नाना विषयोंके पण्डित थे। उन्होंने मिस्रसे अच्छे पिरामिड बनाये तथा मुर्दोंकी लाशोंको गाड़नेसे पहले उनमें ऐसा लेप लगाया कि अब तक शरीरके सब अङ्ग यथावत् हैं। इस विषयपर बर्लिनके 'दी आउसलेजे' पत्रमें एक लेख छपा है। उससे इस जातिके महानाशका पता चलता है :—

वह स्थान जहां पेरू जातिका प्राचीन तीर्थ 'पञ्चकर्मक' बसा था, आज ऐसा मालूम पड़ता है गोया वहां कत्लेआम किया गया हो। यह भी दिखायी देता है कि कभी इसपर अङ्गारोंकी वर्षा हुई थी। जिधरको नजर दौड़ाइये, कब्रें, गढ़े, कैटर आदि ही दिखायी देते हैं। पुराने मिट्टीके बर्तनों, दस्तकारीका सामान, टोकरियां, लामा जानवरके चमड़ेके पदार्थों आदिके बीच मनुष्योंके सूखे अङ्ग बिखरे पड़े हैं। आर्जेण्टाइन और पेरूमें ऐसे सैकड़ों स्थल हैं, पर उनकी कोई परवा नहीं करता।

यहांके नये निवासी गोरे एक दूसरी ही बातकी परवा करते हैं। इन लाशोंसे रुपया बनाना उन्हें पसन्द है। पन्द्रहवीं सदीसे आज तक मुर्दोंका यह घृणित व्यापार जारी है और न मालूम कब तक जारी रहेगा। 'इनका' जाति तथा उसके समयके आगेकी लाशें कब्रोंमेंसे निकाली गयी हैं और संसार-भरमें बेची जा रही हैं। कुछ गोरोंने यह लाभ-दायक रोजगार पकड़ लिया है और वे हजारों वर्षोंके गड़े मुर्दोंको उखाड़-उखाड़कर चांदी बना रहे हैं। सब मुर्दोंके खरीदार नहीं मिलते। सैकड़ों मुर्दे खोदकर कहीं एक कामका मिलता है। इन लाशोंके साथ और भी कीमती पदार्थ मिलते हैं। जैसे—ताबीज, बर्तन, बाजूबन्द आदि। इनमें कई तो सोने और चांदीकी होती हैं।

सबसे पहले स्पेनिश लोगोंने इनसे लाभ उठाया। उन्होंने लाशें बेचीं और सोने-चांदीका सामान देशको उड़ा ले गये। कई कब्रें बहुत बड़ी बनी हुई हैं। ये पिरामिडोंके आकारकी हैं और इनके भीतर हजारों लाशें गड़ी पायी जाती हैं। पेरूकी राजधानी कुत्सकोके पास एक पिरामिड पहाड़की तरह खड़ा है। इसके भीतर सात हजार लाशें पायी गयीं और सोने-चांदीका जो ढेर लगा, उसका मूल्य प्रायः चालीस लाख रुपये था। यह तीन सौ फीट ऊंचा और इसका घेर चौबीस सौ फीटका था। पर इससे भी बड़े पिरामिड पेरूमें पाये जाते हैं। सत्रहवीं सदीमें पेरूकी स्पेनिश सरकारने गड़े मुर्दों और माल उखाड़नेवालोंपर कर बैठाया। इससे उसे कई करोड़की आमदनी हुई। यह उस समयकी बात है जब लाशोंके व्यापारियोंपर पक्का नियन्त्रण न था।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि हर पचासवीं लाशके साथ बहुमूल्य गहने और सामान पाया जाता है। इस हिसाबसे अरबोंकी सम्पत्ति इन कब्रोंसे लूट ली गयी होगी।

स्थान-स्थानमें लाशोंके इन ढेरोंसे पता लगता है कि कभी पेरू संसार-भरमें सबसे घना बसा था। एक्वाडोरसे चिली और प्रशान्त महासागरसे बोलीविया तककी भूमिमें प्रति वर्गमीलमें सैकड़ों लाशें पायी गयी हैं। किनारे और डूबे हुए समुद्र-तटपर कितनी लाशें दबी पड़ी होंगी, इसका कुछ हिसाब नहीं लगाया जा सकता। सर्वत्र कब्रें खड़ी हैं और लाशोंके पहाड़ तथा पिरामिड, जिनमें हजारों मुर्दे गड़े पड़े हैं, हर कहीं पाये जाते हैं। इनके भीतर हजारसे दस हजार तक लाशोंका रहना साधारण बात है। स्पेनिश लोग सैकड़ों वर्षोंसे यह रोजगार कर रहे हैं और आज भी यह व्यापार चढ़तीपर है।

इञ्जिनियर, मकान बनानेवाले, किसान, बागानोंके मालिक आदि जो-भी जमीन उलटता है उसके नीचे दबी लाशें पाता है। और खूबी यह है कि कपड़े या लामा पशुकी खालमें लपेटी हुई ये लोथें त्योंकी त्यों हैं। लोगोंने बड़े-बड़े पिरामिडोंको डाइनामाइटसे उड़ाया तो नीचे तहखानें, बड़े-बड़े कमरे और आने-जानेके पथ मिले। इन सबसे 'इनका' सभ्यताका पता चलता है जो किसी समय संसारमें सर्वोन्नत रही होगी। आज वह संस्कृति केवल अपने इन अवशेषों और खण्डहरोंसे अपनी क्रन्दन-ध्वनि सुना रही है।

क्या स्त्रियोंकी पराश्रितावस्था प्रकृतिगत है ?

स्त्रियां सदा पराश्रित होकर रहें, अपने पैरोंके बल कभी खड़ी न होने पायें, पुरुष-समाज आदिम युगसे यही चाहता आया है और इसी उद्देश्यके लिए सदा यत्नवान रहा है। उसे इस सम्बन्धमें इस हद तक सफलता मिली है कि युगोंके संस्कारसे स्वयं स्त्री अपनी असहायावस्थाको प्रकृतिगत सत्य समझने लगी है और अपनी पराश्रितावस्था—अपने अबलापन—पर गर्व अनुभव करती है! यह विश्वास केवल अशिक्षिता अथवा अर्द्धशिक्षिता स्त्रियोंमें ही बद्धमूल नहीं है, उच्च शिक्षा-प्राप्त महिलाओंमें भी यह पूर्ण रूपमें वर्तमान पाया जाता है। स्त्रीका वास्तविक कर्मक्षेत्र गार्हस्थ्य-चक्रके भीतर ही अवस्थित है—यह सङ्कीर्ण मनोवृत्ति पुरुषों और स्त्रियों दोनोंमें समान रूपसे पायी जाती है। जब लड़कियोंको स्कूली शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाता है तो वह पुरुषोंके इसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यको लक्ष्य करके किया जाता है कि स्कूलोंमें शिक्षा पानेपर स्त्रियां गृहका काम-काज और भी अच्छी तरह संभालनेमें समर्थ होंगी। फल-स्वरूप लड़कियोंकी सारी पढ़ाईमें गार्हस्थ्य-विज्ञान (domestic science) पर ही सबसे ज्यादा जोर दिया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या वास्तवमें स्त्रीकी पराश्रितावस्था मूलगत है? क्या गार्हस्थ्य-चक्रकी सङ्कीर्ण परिधिके बाहर उसके लिए कहीं कोई उचित कार्यक्षेत्र नहीं है? वर्तमान संसारके स्त्री-समाजमें जो युग-विवर्तनकारी क्रान्ति मचती दिखायी दे रही है, उसे देखते हुए यही मालूम होता है कि स्त्रीमें पूर्णतः अपने पैरोंके बल खड़े होकर पुरुषकी दासतासे मुक्त होने और उसके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक समानता तथा मैत्रीका सम्बन्ध जोड़नेकी शक्ति वर्तमान है। आवश्यकता है केवल स्त्रीकी इस छिपी हुई शक्तिको विवर्द्धित और विकसित करनेकी। स्त्री-जातिपर युगोंसे जो अत्याचार और अन्याय होते चले आ रहे हैं, अपनी असहायावस्थाके कारण उन्हें बात-बातमें जिन लाञ्छनाओं तथा गञ्जनाओंको सहन करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है, उनका निराकरण तभी हो सकता है जब वे स्वयं अपनी शक्तिका पूर्ण विकास करके अपने 'अबलापन'को एकदम मिटा दें और उसपर गर्व करना छोड़कर उसे घोर हीनताकी दृष्टिसे देखें। पुरुषोंके साथ समानाधिकारके सम्बन्धमें ग्रथित होकर पुरुषोंकी ही तरह विपुल कर्मक्षेत्रमें फांद पड़नेकी योग्यता प्राप्त करना ही हमारी महिलाओंका चरम लक्ष्य होना चाहिए। इससे गार्हस्थ्य-जीवनमें विशेष बाधा नहीं आ सकती; पर यदि इस महत् आदर्शके पालनमें गार्हस्थ्य-कर्तव्य कुछ पिछड़ भी जाय तो हमारी तुच्छ सम्मतिमें इसकी विशेष परवा करना व्यर्थ है। मुर्गीकी तरह केवल अण्डे-बच्चोंको लेकर रहना ही किसी उन्नत श्रेणीकी मानवीका चरम कर्तव्य नहीं समझा जा सकता। मानव-जीवनका मूल उद्देश्य गार्हस्थ्य-बन्धन तक ही सीमित नहीं है—यह सिद्धान्त स्त्री-पुरुष दोनोंके लिए लागू है। निखिल सृष्टि-चक्रसे सब सम्बन्ध तोड़कर केवल गृहस्थके पिंजड़ेसे ही नाता जोड़े रहना किसी प्रकार भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार मादा पक्षी उन्मुक्त

आकाशमें उड़कर वहांके विपुल जीवनका भी आनन्द लूटती है और साथ ही अपने छोटे-से घोंसलेकी भी खबर लेते रहती है, वही आदर्श हमारी स्त्रियोंका भी होना चाहिए।

प्रयाग महिला विद्यापीठमें पण्डित जवाहरलाल नेहरूका जो भाषण पढ़ा गया था उसमें पण्डितजीने स्त्री-प्रकृतिकी इस स्वतन्त्रताके विषयपर ही जोर दिया था। पण्डितजीकी भी यही राय है कि स्त्रियोंको पुरुषोंकी आश्रिता बनकर रहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। वह कहते हैं—"यह प्रायः कहा जाता है कि स्त्रियोंकी शिक्षाप्रणाली पुरुषोंकी प्रणालीसे कुछ भिन्न होनी चाहिए; गृहस्थीके कर्तव्यों और विवाह-रूपी प्रचलित पेशेके लिए उन्हें योग्य बनना चाहिए। स्त्री-शिक्षाके इस संकुचित और एकाङ्गी दृष्टिकोणसे मैं कदापि

फैशनकी शौकीन यह यूरोपियन रमणी नाखूनोंमें नये-नये रङ्ग भरवाकर संसारको मुग्ध करना चाहती है।

सहमत नहीं हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्त्रियोंको मानवी कार्यक्षेत्रके प्रत्येक अङ्गकी उत्तमसे उत्तम शिक्षा मिलनी चाहिए और उन्हें इस योग्य बनाना चाहिए कि वे सभी पेशों और क्षेत्रोंमें सफलतापूर्वक कार्य कर सकें। सच बात तो यह है कि स्त्रियोंको तब तक कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि विवाह एक पेशा और स्त्रियोंकी आर्थिक रक्षाका एक मुख्य साधन समझा जाता है। राजनीतिसे भी अधिक आर्थिक प्रश्नोंपर स्वतन्त्रता निर्भर है। यदि स्त्रीको आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है और वह स्वयं पैसा नहीं पैदा करती तो उसे अपने पति या अन्य व्यक्तिपर आश्रित रहना ही पड़ेगा और सही बात यह है कि आश्रित कभी स्वतन्त्र नहीं है। पुरुष और स्त्रीका सम्बन्ध पूर्ण स्वतन्त्रता और पूर्ण सहकारिताके भावोंके साथ होना चाहिए, जिसमें कोई एक-दूसरेपर निर्भर न रहे।"

पण्डितजीने स्त्रियोंकी आर्थिक स्वतन्त्रतापर जोर दिया है और यह सर्वथा न्यायानुकूल, तथा समाजमें साम्यभावकी प्रतिष्ठाके लिए परमावश्यक है। वैवाहिक जीवन अनावश्यक नहीं है, पर विवाहकी चरितार्थता वहींपर है जहां स्त्री-पुरुष दोनों सब तरहसे समानाधिकारके सूत्रमें ग्रथित हों और किसीको एक-दूसरेपर आर्थिक अथवा मिथ्या धर्माचारकी दृष्टिसे आश्रित न रहना पड़े। हमारी स्त्रियोंकी वर्तमान दासता और हीनताके कारण यही हैं कि उन्हें आर्थिक सहायताके लिए अपने पतिका मुंह ताकना पड़ता है और 'धर्मतः' उससे इहलोक-परलोकके सम्बन्धमें बंधी होनेसे उन्हें पतिके सब प्रकारके अत्याचारोंको (चाहे वे कैसे ही निष्ठुर और पैशाचिक क्यों न हों) मौन भावसे सहना पड़ता है। इन दो कठिनाइयोंसे मुक्ति पानेपर उनका जीवन-पथ सुगम बन सकता है और जीवनके यथार्थ उद्देश्यकी सिद्धिमें सफलता मिल सकती है।

स्त्रीकी सहनशीलता और पुरुषकी पैशाचिक ईर्ष्यापरायणताका द्वन्द्व

स्त्रीमें सहनशीलताकी मात्रा किस हद तक हो सकती है, यह देखकर कभी-कभी आश्चर्यकी सीमा नहीं रहती। पुरुषके बड़ेसे बड़े अत्याचारको बिना किसी प्रतिरोधके सह लेना उनका प्रकृतिगत गुण है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी स्त्रियोंकी संख्या भी संसारमें कुछ कम नहीं है जो बात-बातपर तमक उठती हैं और पतिको अपनी असहनशीलताके कारण एक मिनट भी चैनकी सांस नहीं लेने देतीं। तथापि स्त्री-जातिका मूलगत गुण सहनशीलता ही है। इस बातके प्रमाण रात-दिनके सांसारिक तथा पारिवारिक जीवनमें मिलते रहते हैं।

आश्चर्य यह है कि स्त्री-स्वभावकी इस सहनशीलताके कारण पुरुष उसका कृतज्ञ होनेके बदले उसपर और भी अधिक

अत्याचार करनेके लिए प्रवृत्त होता है; बल्कि स्त्रीकी असहनशीलता ही उसकी उच्छृङ्खलता और ज्यादतियोंको काबूमें लानेमें समर्थ होती है। बहुधा यह देखा जाता है कि स्त्री जितना ही अधिक नम्रताका परिचय देती है, पुरुष उसकी त्रुटियोंको उतना ही अधिक अक्षम्य समझने लगता है। जो स्त्री स्वभावसे ही ढीठ होती है, उसके बड़ेसे बड़े अपराधका विरोध करनेका साहस पुरुषमें नहीं होता और उत्तेजित होनेपर भी हठी प्रकृतिकी स्त्रीके दोषोंको उसे क्षमा कर देना पड़ता है। पर जो स्त्री स्वभावतः शान्त, नम्र और पतिकी आज्ञानुकारिणी होती है, उससे यदि कभी कोई तुच्छ अपराध भी हो बैठता है तो पति उसे क्षमा करना नहीं चाहता। इसका कारण यही है कि नम्र स्त्रीका पति जब अपने गार्हस्थ्य जीवनमें प्रतिदिन शान्ति और शृङ्खला देखता है, पत्नीको कभी किसी बातकी शिकायत करते नहीं देखता और अपनी

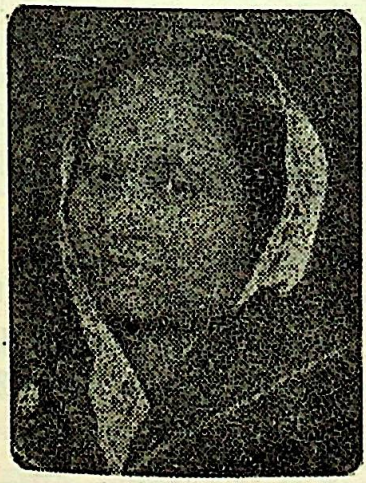

कुमारी इन्दुमती शर्मा

आपको बनारस यूनिवर्सिटीकी छात्राओंमें सबसे अधिक नम्बर पानेके कारण स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ है।

ज्यादतियोंका कभी कोई विरोध होते नहीं देखता तो वह स्त्री-जातिको उसी दृष्टिसे देखनेका आदी हो जाता है जिस दृष्टिसे प्राचीन मिस्रके शासक अपने गुलामोंको देखते थे और उसके मनमें यह विश्वास जम जाता है कि पुरुषके किसी भी आचरणका प्रतिरोध या विरोध करनेका कोई अधिकार स्त्रीको नहीं है और पुरुषकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य करना स्त्रीका अक्षम्य अपराध है।

इस अनर्थकर विश्वासके कारण ही पुरुषोंमें स्त्री-सम्बन्धी ईर्ष्या-जनित घोर पैशाचिक भाव बीच-बीचमें हिंस्र पशुकी तरह जागरित होते देखा जाता है। चूंकि स्त्रीको पुरुष अपनी सम्पत्ति समझने लगता है, इसलिए वह नहीं चाहता कि उसकी इस सम्पत्तिपर कभी दूसरे पुरुषकी आंखें गड़ें। इस नियमको वह पूर्णतः स्वाभाविक मानकर चलता है और कभी जब किसी कारणसे इसमें व्यतिक्रम देखा जाता है तो वह क्रोधोन्मत्त हो उठता है और आगे-पीछे कुछ न देखकर घोर अनर्थमूलक काम कर बैठता है।

स्त्री कैसी ही नम्र, सहनशीला और पतिकी आज्ञाकारिणी क्यों न हो, आखिर उसमें भी मानव-प्राण वर्तमान है। मनुष्यमें जो दुर्बलतायें, जो त्रुटियां होती हैं, वे सब उसमें भी स्वभावतः वर्तमान रहती हैं। इसलिए यदि वह कभी किसी प्रलोभनमें फंस जाय या किसी कारणसे उत्यक्त होकर पतिके विरुद्ध कोई आचरण कर बैठे तो उसके उस अपराधको अक्षम्य समझना सङ्कीर्ण हृदयका परिचायक है। पर सदा स्त्रीकी असहायावस्थाका नाजायज फायदा उठानेवाला पुरुष उसके किसी भी अपराधको क्षमा करना नहीं चाहता, और यदि कोई पुरुष विशेष क्रोधी तथा ईर्ष्यापरायण प्रकृतिका हुआ तब तो पत्नीकी दुर्गति ही समझनी चाहिए।

हालमें कोलम्बो (सिंहल) में एक पुरुषने अपनी पत्नीके प्रति जिस पैशाचिक प्रवृत्तिका परिचय दिया है वह इस सम्बन्धमें विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। उससे हमारे पूर्वोक्त मतकी पुष्टि होगी। घटना इस प्रकार है कि आर० जे० करुणा नायक नामक एक शिक्षित सिंहलीने, जो बौद्धधर्मावलम्बी था, प्रायः नौ वर्ष पहले बेबी नोना नामकी एक स्त्रीसे विवाह किया था। इस विवाहसे बेबी नोना छ बच्चोंकी माता बन गयी थी। प्रायः दो वर्षसे चन्दाहामी नामका एक व्यक्ति, जो करुणा नायकका घनिष्ठ मित्र था, उसके यहां अधिकतर आने-जाने लगा था। वह अक्सर करुणा नायकके ही यहां खाना खाता था और बहुधा वहीं सोता भी था। धीरे-धीरे करुणा नायककी स्त्रीके साथ उसने अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर लिया। एक दिन करुणा नायकने अपने मित्र और अपनी स्त्रीको एक-साथ देखा। उसी रात उसने स्त्रीसे कहा—"मुझे अपने रक्तसे भरे छ प्याले पिलाओ, छ इसलिए कि तुम्हारे छ बच्चे हैं

और प्रत्येक बच्चेकी तरफसे मैं एक प्याला चाहता हूं, नहीं तो मैं तुम्हें घरसे निकालकर चन्दाहामीके पास भेज दूंगा। मेरी प्यास सिर्फ तुम्हारे ही रक्तसे बुझ सकती है।" चूंकि उसकी स्त्री अपने प्यारे बच्चोंसे अलग होना नहीं चाहती थी, इसलिए उसने चाकूसे अपनी बांहका अगला भाग चीर डाला। पर उससे रक्तकी दो-चार ही बूंदें निकलीं। वह रोती हुई अपने पतिके पास गयी और सब हाल कह सुनाया। पतिने कहा कि "तुम्हारे आंसुओंसे मेरी प्यास नहीं बुझ सकती, मैं केवल तुम्हारा रक्त चाहता हूं।" वह भागकर जङ्गलकी ओर चली गयी, पर बादमें यह सुनकर कि उसका पति घरसे बाहर चला गया है, वह फिर बच्चोंकी चिन्ताके कारण लौट आयी। पर उसका पति दूसरे ही दिन वापस चला आया और उसने बन्दूक दिखाकर उससे कहा कि "अगर तुम खून न दोगी तो मैं तुम्हें और तुम्हारे बच्चोंको मार डालूंगा।" बच्चोंकी रक्षाके ख्यालसे उसने अपने पांवपर घाव किया और उसमेंसे आधा प्याला खून निकालकर अपने पतिको दिया। पति उसे पानीसे मिलाकर पी गया। दूसरे दिन भी स्त्रीने इसी प्रकार आधा प्याला खून निकालकर दिया। पुलिसको किसी तरह खबर लग गयी, तब जाकर बेचारीने त्राण पाया।

स्त्रीपर पुरुषके जुल्म और ज्यादतीका यह चरम दृष्टान्त है। यद्यपि ऐसी असाधारण पैशाचिकताके दृष्टान्त बिरले ही मिलते हैं, तथापि इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जब तक समाजमें स्त्रीपर पुरुषका एकाधिपत्य रहेगा और स्त्री अपनी स्वतन्त्र सत्ता प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ न होगी, तब तक पुरुषकी अनुचित और अनधिकार ईर्ष्यापरायणता बनी रहेगी।

विधवाओंकी घोर दुर्गति

हिन्दू विधवाओंकी दुर्गति मानवी अत्याचारका अन्यतम निदर्शन है। पुरुष-जातिने इतिहासके आदिम कालसे लेकर वर्तमान समय तक स्त्रियोंपर जितने भी कठोर नियन्त्रण आरोपित किये हैं, उन सबमें भारतीय विधवाका बाध्यतामूलक व्रत हृदयहीनताकी दृष्टिसे अपना एक विशेष स्थान रखता है। आश्चर्य है कि इतनी शताब्दियोंसे, बिना किसी लेशमात्र प्रतिरोध अथवा विरोधके, किस प्रकार हमारी स्त्रियां इस प्रकृति-विरुद्ध, पुरुष-परिचालित नियमको आंख मूंदकर मानती चली आयी हैं। सती-दहन जैसी घोर अमानुषिक और दानवी-प्रथाका प्रचलन इसी वैधव्य-व्रतकी पूर्ण चरितार्थताके उद्देश्यसे हुआ था। स्वार्थी पुरुष-जातिकी ईर्ष्या-परायण प्रवृत्तिको पूर्ण तृप्ति मिलनेके अतिरिक्त स्त्रियोंपर डाले गये इस पाशविक बन्धनकी और कोई सार्थकता हम नहीं देखते, भले ही निस्सहाया विधवाके सतीत्वकी माहात्म्य-गाथासे पुराणोंमें श्लोकके श्लोक भरे

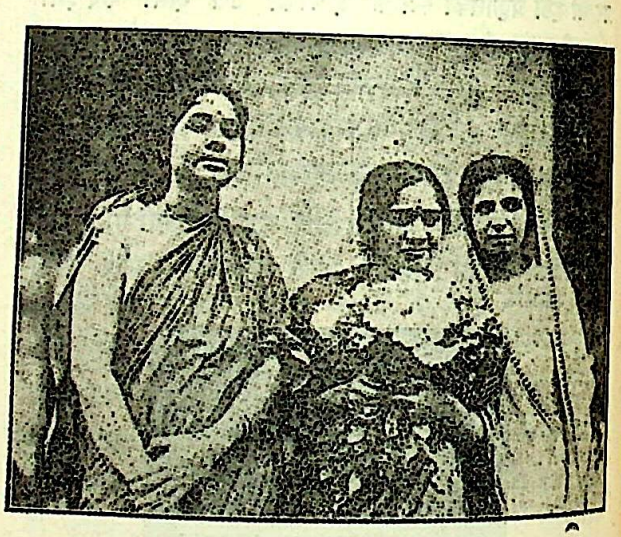

श्रीमती सरोज व्यास (बीचमें)
आप न्यू एरा स्कूलके मोण्टेसोरी तथा प्राइमेरी डिपार्टमेण्टकी प्रधानाचार्य हैं। आप हालमें यूरोप भ्रमण करके और वहांसे मोण्टेसोरी डिप्लोमा प्राप्त करके भारत वापस आयी हैं।

पड़े हों। सामाजिक तथा धार्मिक इतिहासका पूर्ण अध्ययन करनेपर वैधव्य-व्रतकी किसी महत्ता और उसके द्वारा राष्ट्रीय, सामाजिक अथवा धार्मिक दृष्टिसे होनेवाले किसी भी उपकारका परिचय हमें नहीं मिलता, बल्कि उसके कारण होनेवाले अनर्थोंके ही असंख्य दृष्टान्त मिलते हैं। वैधव्य-व्रत कोई ईश्वरीय विधान नहीं है और न वह प्राकृतिक नियमोंके ही अनुकूल है, इस सरल तथ्यको समझनेमें माथा-पच्ची करनेकी कौन-सी आवश्यकता है, यह बात हमारी साधारण बुद्धिके बाहर है। तथापि यह सत्य है कि शताब्दियोंसे देशके एक जबर्दस्त धार्मिक सम्प्रदायने जन-साधारणकी आंखोंमें धूल झोंककर इस परम निष्ठुर मिथ्या

सिद्धान्तपर दृढ़ विश्वास दिलानेमें पूर्ण सफलता प्राप्त की है कि स्त्रीको एकसे दूसरा पति करनेका अधिकार नहीं है, और केवल इसी जन्ममें नहीं, दूसरे जन्ममें भी इहलोकके पतिसे पिण्ड न छूटनेका प्रबन्ध हमारे त्रिकालदर्शी पूर्वज कर गये हैं! मजा देखिये कि एक तरफ तो पातिव्रत तथा वैधव्य-व्रत-पालनके पुण्यफलके वर्णनमें पुराणोंके पृष्ठके पृष्ठ रंगे गये हैं, जिनपर विश्वास स्थापित करके हमारी श्रद्धालु सधवायें तथा अभागिनी विधवायें परलोकमें सुख-प्राप्तिकी आशासे अपने जीवनकी कालरात्रियां बिताती हैं, दूसरी ओर उक्त व्रतका यह फल निर्दर्शित किया गया है कि परलोकमें अथवा अगले जन्ममें इसी लोकका पति उन्हें पुनः प्राप्त होगा। कौन नहीं जानता कि हिन्दू परिवारोंमें ऐसी असंख्य स्त्रियां वर्तमान हैं जो अपने इस जन्मके निष्ठुर, अत्याचारी पतियोंसे किसी प्रकार पिण्ड छूटनेकी प्रार्थना भगवान्से रात-दिन मन-ही-मन करती रहती हैं? ऐसी हालतमें यदि वैधव्य अथवा पातिव्रत-धर्मके पालनसे जन्मान्तरमें भी उन्हें वही निखट्टू पति मिला तो इस 'पुण्यफल'की बलिहारी है! गरज यह कि इस प्रकारके मनगढ़न्त पौराणिक विधि-विधानों तथा स्मृतियोंके अविचारपूर्ण निर्देशोंके कारण घोर अनर्थोंका सामना समाजको करना पड़ रहा है जिनकी विभीषिका इस सुधारवादी युगमें भी किसी कदर कम नहीं हुई है।

अभी तक देशमें सर्वत्र विधवाओंका वही हाहाकार सुनायी देता है जो हजारों वर्ष पहले शुरू हुआ था; अभी तक देशके कोने-कोनेसे उसी हाय-हत्या, उसी आर्तक्रन्दन, उसी करुण पुकारकी प्रतिध्वनि गूंज रही है। समाचार-पत्रोंमें इस अन्धेरके असंख्य प्रमाण बराबर मिलते रहते हैं और सभी सामयिक पत्रोंमें उनकी चर्चा होती रहती है, तथापि स्थिति पूर्ववत, रुद्रके अविचल शापकी तरह, अटल बनी है।

वैसे तो विधवाओंकी दुर्दशा समस्त भारतमें समान रूपसे दयनीय है, पर हालमें नेपालकी विधवाओंके सम्बन्धमें 'एक पत्रकार' महाशयने हमें जो सूचना लिखकर भेजी है उसे पढ़नेसे ज्ञात होता है कि वहांकी अभागिनी विधवा बहनोंकी दुःखगाथा और भी अधिक करुण है। नीचे हम पूर्वोक्त पत्रकार महोदयका लेख अविकल रूपमें पाठक-पाठिकाओंके आगे उपस्थित करते हैं। हम नहीं कह सकते कि 'पत्रकार' महोदयकी बातें कहां तक सत्य हैं। यदि वास्तवमें उनकी बातें प्रमाण-सिद्ध हैं तो यह बड़े दुःखका विषय है, सन्देह नहीं। लेख इस प्रकार है:—

"नेपाल वैसे तो हिन्दुस्तानसे दो ही कदमपर है, फिर भी हिन्दुस्तानके रहनेवाले उसके बाबत इतने अनभिज्ञ हैं कि हमें दुःखके साथ-साथ थोड़ा आश्चर्य भी होता है। हिन्दी और अंगरेजीमें भी इस विषयकी जितनी सामग्री अब तक उपलब्ध है वह अधूरी है और उसमें वास्तविकता वहीं तक है जहां तक अन्य पुस्तकोंकी छायासे लायी जा सकती है। लोग तो वहां (नेपालमें) सिवाय शिवरात्रिके और कभी जा ही नहीं सकते; यदि किसी तरह आते-जाते भी हैं तो कई अड़चनें ऐसी हैं जिनसे पहाड़-खण्डमें भ्रमण करना उनके लिए एकदम असम्भव हो जाता है। यही कारण है जो एक धुंधले पर्देके उधर वे हैं और इधर हम; हम उन्हें जैसा समझते हैं वे वैसे नहीं हैं और वे हमें जो समझते हैं, गलती करते हैं।

फिर हिन्दू समाजमें इस समय विधवाओंकी जो अवस्था है उसे देखकर तो छाती फटी जाती है। हम नहीं समझते, एक सभ्य समाजका कहीं ऐसा भी पतन सम्भव है जिसके सञ्चालनमें स्वयं वही समाज सबसे आगे हो। इस दुनियामें खुद अपनी कब्र बहुत कम आदमी खोदते हैं और जो खोदते भी हैं तो जारके समयके रूसके क्रान्तिकारियोंकी तरह लाचार होकर, किन्तु जान-बूझकर अपनी कब्र खोदना, और वह भी एक बपौती समझकर, यह एक ऐसी बात है जिसका जोड़ कहीं भी मिलना मुश्किल है।

अपने यहांकी यह अवस्था देखकर हमारे मनमें नेपालकी विधवाओंके विषयमें एक दर्द-भरी उत्कण्ठा पैदा हुई और कुछ दिनों यों ही आशङ्कामें घुलते रहे। किन्तु एक दिन अवसर पाकर हमने एक घनिष्ठ मित्रको एक पत्र लिखा। पत्रका उत्तर पढ़कर हमारी आत्मा ग्लानिसे जो मरने लगी वह इस तरह लिखनेकी चीज नहीं है।

हमारे मित्र लिखते हैं—'नेपाली जातियोंमें कहीं-कहीं विधवा-विवाह प्रचलित होनेपर भी कट्टर सनातनी भावके कारण विधवा-विवाह करनेवाले 'नीच' समझे जाते हैं। धर्म और समाजके सङ्कीर्ण पथमें निराश्रिता, निर्वासिता विधवायें अपना मार्ग बना नहीं पातीं; यहां तक कि ऐसे-ऐसे प्रस्तावोंका

उठना भी बहुत बड़ी आपत्ति समझिये। यों तो बड़े-बड़े घरकी विधवाओंमें यथेष्ट व्यभिचार फैला हुआ है। आये दिन सरकारी अदालतोंमें गर्भ-पात, पर-पुरुष-गमन, नत्येत-सम्भोग आदिके कुत्सित मामले चलते ही रहते हैं। नेपाल राज्यके अन्तर्गत और स्थानोंकी बात तो अभी अलग रहने दीजिये, खास राजधानी काठमाण्डूके आस-पास झाड़ी-जङ्गल और हनुमन्ते, टुकुचा, विष्णुमती आदि नदियोंमें माता-पिताओं द्वारा फेंके गये मृत शिशु एक अच्छी संख्यामें पाये जाते हैं। यदि आपके पास वज्र-हृदय है तो किसी पुलिसके आदमीसे इसका लोमहर्षक वर्णन इतमीनानसे बैठकर सुन लीजिये।

'मेरे एक मित्रने कुछ दिन हुए 'भदगाऊं' (काठमाण्डूके निकटका एक शहर) से लिखा था कि एक ब्राह्मण जातिकी बाल-विधवाने नीचे गहरे गड्ढेमें फेंककर अपने शिशुकी हत्या की है। नेपाल राजदरबार द्वारा सम्मानित एक प्रतिष्ठित नेपाली सज्जनकी कन्या, किसी एक पण्डितजी तथा अन्य एक महोदयकी नतिनी बहुयें और अन्तिम सज्जनकी कन्या भी व्यभिचारसे विवश होकर दरिद्र श्वानका जीवन बिता रही हैं! विधवावस्थामें इनका उद्धार करनेवाला कोई नहीं; पर व्यभिचारपर उतारू होनेपर कोसनेवाले गली-गली मिलते हैं! कितनी उच्चकुलकी विधवा कन्यायें 'पेट' प्रकट होनेका भय दिखलाकर रातोंरात नेपालसे बाहर ब्रिटिश भारतमें लायी जाती हैं और यहां गर्भपात कराकर फिर वापस पहुंचायी जाती हैं! उन सबका बस एक सीधा-सा बहाना है कि तीर्थ-यात्रा करने गयी थी! किन्तु पीछे कितनों-का भेद खुल जाता है और वह दुर्गति होती है जिसकी व्यथा कमसे कम मनुष्य तो एक जन्ममें सह नहीं सकता।

'गत अगस्त, १९३३ की बात है। नेपाल राज्यके एक प्रतिष्ठित व्यक्तिकी विधवा बहनने पुण्यक्षेत्र काशीमें गर्भपात किया। इसपर उसके कुटुम्बियोंने सरकारसे यह संयुक्त प्रार्थना की कि वह कलङ्किनी विधवा (?) भ्रष्ट हुई तो हुई, किन्तु सरकार हम पवित्रों (?) की पवित्र जाति (?) की रक्षा करे।

'इस तरह सैकड़ों नेपाली विधवायें चौपाया पशुओंकी तरह युवावस्थामें पञ्जाब आदि प्रान्तोंमें वेश्यावृत्ति करती हैं और वृद्धावस्थामें काबुली, जाट आदि विधर्मियोंकी मसजिदमें पानी भरती हैं! कहां तक कहा जाय, यदि पर-मेश्वर-ऐसा कोई लाभकारी इस संसारमें वर्तमान होता तो मैं इतना साहस तो कमसे कम अवश्य करता कि उसके सामने ये सारी बातें एक सांसमें रख देता; पर.....'"

हम आशा करते हैं कि नेपालके समाज-सुधारक उक्त सामाजिक अभियोगोंके सत्यासत्यपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे और इस विषयकी जांच करके (यदि उक्त अभियोग यथार्थमें सत्य हों तो) उनके उपचारकी ओर ध्यान देंगे। हमें नेपाली विधवाओंकी इस कदर दुर्गतिपर विश्वास नहीं होना चाहता।

चीनका नवीन स्त्री-समाज

चीनकी सभ्यता भारतकी तरह ही पुरानी है और वहांकी स्त्रियोंकी सामाजिक सत्ताका इतिहास भी भारतीय स्त्रियोंकी परम्परा-गत परिस्थितिकी तरह ही निर्विचित्र, अप्रगतिशील तथा नीरस है। हमारी अन्तःपुर-निवासिनी महिलाओंकी जो दशा दस वर्ष पहले थी (और आज भी है) प्रायः वही हजार वर्ष पहले भी थी; उसी प्रकार चीनमें दो-तीन दशाब्दी पहले स्त्रियोंकी वही हालत थी जो एक सहस्र वर्ष पूर्व थी। पर अब दोनों देशोंकी स्त्रियोंकी परिस्थितियोंमें बड़ा भारी अन्तर पाया जाता है। कुछ ही समयके भीतर चीनी महिलाओंने अपने शताब्दियोंके बन्धनोंको तोड़कर शिक्षा और संस्कृतिके क्षेत्रमें जो उन्नति प्राप्त कर ली है वह कल्पनातीत है। भारतमें भी इधर महिलाओंमें जागृतिके चिह्न दिखायी दिये हैं, सन्देह नहीं; पर चीनी महिलाओंके सामूहिक उद्बोधनसे उसकी तुलना किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती।

चीनके लेखकों, समाज-सुधारकों, राजनीतिक क्रान्ति-कारियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानोंने वहांकी स्त्रियोंमें अग्र-पन्थी विचारोंका प्रचार करके स्त्री-पुरुषके अधिकारोंकी समता, व्यक्तिवादकी महत्ता और शिक्षा, समाज तथा राजनीतिके क्षेत्रोंमें स्त्रियोंके पूर्ण अधिकारकी घोषणा करके वहां एक दूसरे ही संसारकी सृष्टि कर डाली है। चीनमें स्त्रियां स्वजातीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके मनन और विवेचनमें ऐसी दत्त-चित्त दिखायी देती हैं कि देख-कर, उनकी पूर्वस्थितिका ख्याल करके, महान् आश्चर्य होता है। विजातीयोंकी अनधिकार चेष्टाओं और जापानके

अत्याचारोंका प्रभाव भी चीनी स्त्रियोंकी वर्तमान जागृतिपर कुछ कम नहीं पड़ा है। चीनके महिला-आन्दोलनके फलस्वरूप वहांकी सरकारने सम्पत्ति तथा उत्तराधिकार-सम्बन्धी कानूनोंमें स्त्रियोंको समानाधिकार अर्पित कर दिये हैं। विवाह-सम्बन्धी कानूनोंमें जो सुधार किये गये हैं वे भारतवासियोंके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पहले चीनमें भी भारतकी तरह पति-पत्नीकी सम्मतिके बिना ही माता-पिताकी इच्छासे विवाह होता था और वह विवाह कानूनन् जायज माना जाता था। इसके अतिरिक्त तलाकका कोई नियम ही स्त्रियोंके लिए नहीं था। पर अब जो विवाह वर-कन्याकी सम्मतिके बिना होता है, उसे सरकार एकदम नाजायज करार दे देती है और तलाकके लिए भी स्त्रीको सुविधायें प्राप्त हैं।

चीनमें आज प्रत्येक क्षेत्रमें महिलाओंका नेतृत्व पाया जाता है। राष्ट्रकी मूल नीतिके परिचालनमें अब वहां स्त्रियां अनिवार्यतः आवश्यक मानी जाने लगी हैं। शिक्षा-सम्बन्धी सार्वजनिक कार्योंमें उनका हाथ है, नौकरीके ऊंचे-ऊंचे पदोंपर उन्होंने अधिकार जमा लिया है, व्यापार और उद्योग-धन्धोंकी केन्द्रीय संस्थाओंमें वे प्रवेश पा गयी हैं।

१९१० में केवल १२,००० लड़कियां चीनके प्राथमिक कन्या-विद्यालयोंमें पढ़ती थीं; बारह वर्ष बाद यह संख्या बढ़कर ४,००,००० हो गयी! लड़कियोंकी शिक्षा-सम्बन्धी यह प्रगति उत्तरोत्तर बढ़तीपर है। १९२२-२३ में चीनकी यूनिवर्सिटियोंमें कुल ८४७ लड़कियोंके नाम दर्ज थे; केवल चार ही वर्ष बाद यह संख्या बढ़कर २५०० तक पहुंच गयी! इस समय यह संख्या प्रायः दूनी हो गयी है।

व्यापार-क्षेत्रमें भी चीनी महिलायें प्रमुख स्थान अधिकृत किये हुए हैं। उदाहरणके लिए मिस नियन सोक वू शाङ्घाईमें Women's Commercial and Savings Bank का सञ्चालन करती हैं। यह सारा बैङ्क ही स्त्रियोंके कर्तृत्वमें चलता है। १९२४ में इस बैङ्ककी स्थापना हुई थी और स्थापनाके समय उसकी पूंजी ६,००,०००) रु० थी, और प्रायः पन्द्रह लाख रुपयोंके अन्य साधन मौजूद थे। आठ वर्ष बाद उसकी पूंजी बढ़कर १५,००,०००) रु० हो गयी और साधन-सम्पत्तिका मूल्य पचास लाखके करीब हो गया।

राजनीति-क्षेत्रमें अनेक चीनी महिलाओंने प्रतिष्ठा प्राप्त की है। नानकिङ्गके सरकारी दफ्तरोंमें २०० से अधिक स्त्रियां काम करती हैं। कैण्टनमें ऐसी स्त्रियां मौजूद हैं जो जहाजोंमें बड़ी योग्यतासे काम करती हैं।

विगत चीन-जापान-युद्धके अवसरपर चीनी महिलाओंने चन्दे द्वारा अर्थ प्राप्त करके राष्ट्रीय योद्धाओंकी बड़ी सहायता की थी, सम्भ्रान्त वंशकी ललनाओंने स्वेच्छासे नर्सका काम किया था, यूरोप तथा अमेरिकामें जापानके विरुद्ध प्रचार-कार्यमें हाथ बटाया था। राष्ट्रीय क्रान्तिके युगमें बहुत-सी चीनी महिलाओंने वीराङ्गनाओंका-सा कार्य करके पुरुषोंको भी लज्जित कर दिया था। कैण्टनकी महिलाओंने कुछ समय पहले यह प्रस्ताव पेश किया था कि स्त्रियोंको सैनिक तथा वायुयान-परिचालनकी शिक्षा दी जानी चाहिए।

इस प्रकार सब क्षेत्रोंमें सर्वतः उत्तरोत्तर उन्नति करते देखकर चीनी महिलाओंके सम्बन्धमें यह प्रश्न स्वतः जागरित होता है कि उनके जीवनका वैवाहिक स्वरूप क्या रहेगा? इस सम्बन्धमें मिसेज बक नामकी एक विदुषी महिलाका कहना है—"सामूहिक दृष्टिसे देखनेपर यह पता चलता है कि नवीन चीनके स्त्री-पुरुषोंका वैवाहिक सम्बन्ध अत्यन्त शृङ्खलापूर्वक निभ रहा है। विवाहमें स्त्रियोंको यथेष्ट स्वतन्त्रता मिलनेपर भी अधिकांश स्त्रियां इस सम्बन्धमें प्राचीन पवित्र भावकी रक्षाको विशेष महत्त्व देती हैं।" इससे स्पष्ट है कि चीनी स्त्रियां प्राच्यके प्राचीन आध्यात्मिक आदर्श और पाश्चात्यके नवीन भौतिक सिद्धान्तोंके सम्मिश्रणको श्रेयस्कर समझती हैं। हुनानके महिला-विद्यालयकी सभानेत्री डा० त्सानेव पाओ-स्वेन इस सम्बन्धमें कहती हैं—"आधुनिक चीनी महिलाको मैं यह उपदेश दूंगी कि वह अपनी स्वतन्त्रताको आत्म-संयम द्वारा नियन्त्रित रखे, अपनी आत्मानुभूतिको आत्म-त्याग द्वारा परिचालित करे और अपने व्यक्तित्वको गार्हस्थ्य जीवनसे सम्बन्धित रखे। हमारे स्त्रीत्वका नवीन आदर्श मैं यही समझती हूं।"

शरीरको स्वच्छ सुन्दर और सुरक्षित रखता है।

आपके शरीरका चमड़ा इतना रोग ग्रस्त और बदसूरत क्यों हैं ?

जब कि **डाक्टर साबुन** आपको सम्पूर्ण चर्मरोगसे तुरन्त मुक्त कर सकता है।

यह आयुर्वेद एवं डाक्टरी औषधियों का सार है। दाद, खाज, मुहांसे, एक्जीमा, फोड़ा, घाव, अलाई, चेचकके दाग, फफास, आतिशक जैसे भयङ्कर रोगों तक को अच्छा करता है कोमल त्वचा के सर्वथा अनुकू पवित्र स्वदेशी है।

दूषित चर्बी से बचिये चौधरी पवित्र **साबुन** व्यवहार कर धर्म एवं स्वास्थ्य क रक्षा कीजिये।

कुछ बेजोड़ चीजें

—*—

डाक्टर
चन्दन
खस
कपूर
जुही
चमेली
चम्पा
हिना
कस्तूरी
बकुल
आदि—आदि
सुंदरी (बालसफा)
हजामतकी स्टिक
तथा कप
मन का (केशतेल)
मनोरमा (सुहाग बिंदी) इत्यादि।

चौधरी सोप मिल्स
कानपुर।

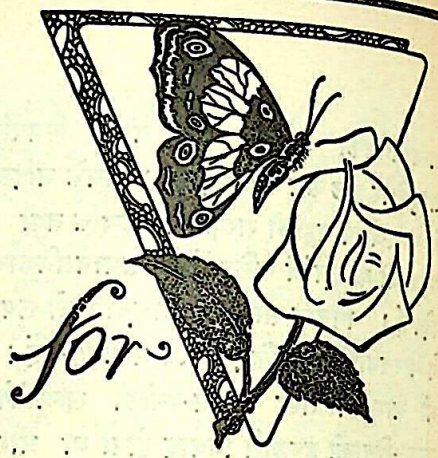

उज्वल, स्वच्छ वर्ण एवं स्थायी तथा पूर्ण सौन्दर्य प्रदान करने में

चौधरी साबुन

लाजवाब व बेजोड़ है। उनका नियमित व्यवहार आपके शरीरको और भी स्वच्छ, कान्तिपूर्ण एवं सुन्दर बना देगा। उनके घने झाग रोम छिद्रोंको साफ कर आरोग्यता बढायेंगे और उनकी मनोरंजक सुगन्धि आपको नन्दन बनकी याद दिलाती रहेगी।

पवित्र, शुद्ध होने की गारण्टी।

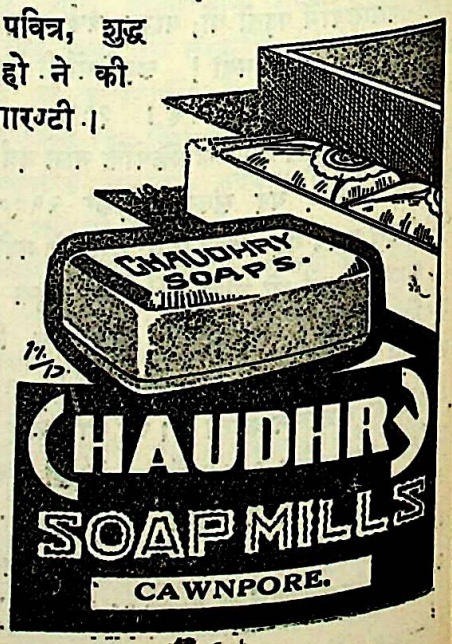

कलकत्तेके एजेंट—गांधी सोप स्टोर्स, १९९।१ हरिसन रोड।

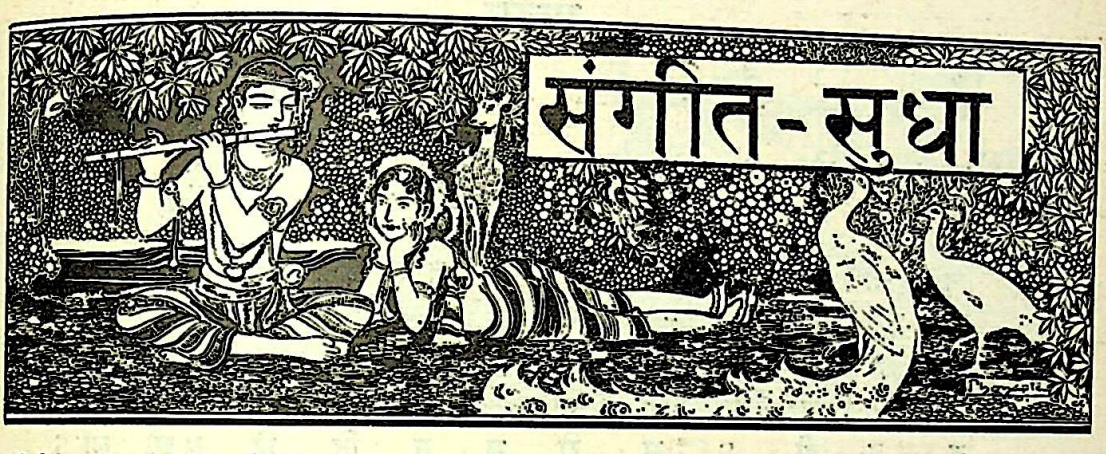

स्वरलिपिकार—सङ्गीत प्रो०
सुरेन्द्रमोहन मिश्र, बदायूं

होली

शब्दकार—
अज्ञात

राग मिश्र काफी (सम्पूर्ण), ताल चाचर (१४ मात्रा)

स्थायी—अब तक होली सो होली, समझकर खेलो री होली ॥

अन्तरा—आयो वसन्त सुखद यह सजनी देखो नयन तुम खोली ।

सुखद सुहाग फाग हो तबही, भरो सुमति हिय झोली ।

मलो मुखमें तब रोली ॥ अब तक होली० ॥

वशीकरण यही मन्त्र जगतमें सीखो सरल मृदु बोली ।

मलि गुलाल सदाचार सुभग सुचि, प्रेम प्रीति रंग घोली ।

रंगो पियको हिय खोली ॥ अब तक होली सो होली ० ॥

स्थायी

०			३				+			२			
नी सा	रे रे	ग	—	म	प	म	प	—	—	—	म ग	रे सा	नी
अ ब	त क	हो	ऽ	ली	ऽ	सो	हो	ऽ	ली	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	—	म	—	म	प	ध	नी	सां	नी	ध	नी	धपमग
स	म	झ	क	ऽ	र	खे	ऽ	लो	री	हो	ऽ	ली	ऽऽऽऽ

अन्तरा

०			३			+			२		
रें	रें	—	—	—	—	गं	र	सां	नी	नी	ध
आ	ऽ	यो	त्र	सं	त	सु	ख	द	य	ह	स
प	ध	नी	सं	रें	गं	रें	—	सां	नी	ध ध	प म प
ज	नी	ऽ	दे	खो	न	य	न	तु	म	खो ऽ	ली ऽ
सं	सं	म	—	—	म	म	—	प	ध	नी ऽ	ऽ ऽ
ऽ	ऽ	सु	ख	द	सु	हा	ऽ	ग	फा	ग हो	ऽ ऽ
ध	नी	ध	प	नी	नी	—	—	—	सां	सां ध	सां ऽ
त	ब	ही	ऽ	भ	रो	सु	म	ति	हि	य झो	ली ऽ
म	म	प	प	प ध नी	ध नी सां	नि सां रें	सा रें	गां	गां	सा नी	ध प म ग रे सा
म	लो	मु	ख	में ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ	त	ब	रो	ऽ ऽ	ली ऽ

शेष पद अन्तरेकी सरगमपर बजेंगे।

दांतों की सुन्दरता

व्यवहारमें लाये जानेवाले ब्रस पर ही निर्भर है

आप जो मञ्जन व्यवहार करते हैं वह कितना ही अच्छा क्यों न हो सर्वोत्कृष्ट ब्रसके नहीं व्यवहार करनेसे आपके दांत पूर्णतया परिष्कार न हो सकेंगे। इसलिये मीरा ब्रस ही उपयुक्त है। कारण दांतके प्रत्येक कोने व फांक में, जहां तक सम्भव है, प्रवेश कर सकता है। और इसी पे यह बनाया ही गया है इसके बाल न नरम होंगे और न खुल कर गिर पड़ेंगे।

मीरा टूथ ब्रस के साथ

मीरा डेंटल क्रीम बयवहार कीजिये।

चिरकाल तक दन्त पंक्ति शुद्ध, स्वस्थ सुन्दर व सबल रहेंगे।

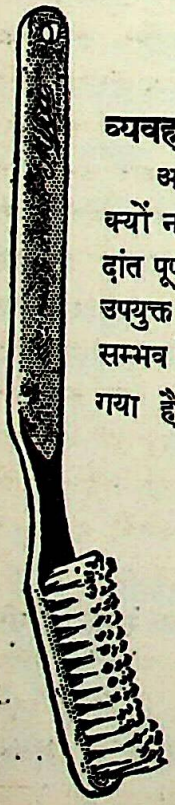

मीरा टूथ ब्रस

एजेन्टस्—टी० एम ठाकुर एण्ड कम्पनी

१२, डलहौसी स्कायर, कलकत्ता।

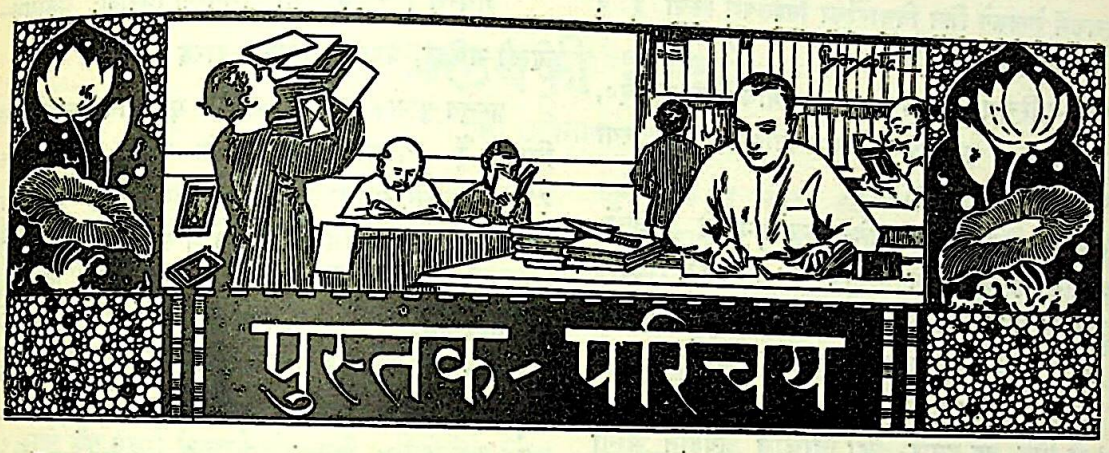

[समालोचनाके लिए प्रत्येक पुस्तककी दो-दो प्रतियां आनी चाहिए, अन्यथा केवल प्राप्ति-सूचना ही दी जायेगी—स०]

अन्तर्नाद। लेखक और प्रकाशक—श्री जगदीशनारायण तिवारी, राधिका-पुस्तकालय, हिमन्तपुर, सुरेमनपुर, बलिया। मूल्य—॥) सजिल्द—॥।)

इस पुस्तकमें लेखककी भक्तिरस-सम्बन्धी कवितायें संगृहीत हैं। सभी कवितायें सुन्दर, सरस और भावपूर्ण हैं। भाषा सरल, प्रसादगुणमयी और साथ ही मधुर है। पाठकोंकी परितृप्तिके लिए पुस्तकमेंसे एक कविता नीचे उद्धृत की जाती है:—

जैसे हो तुझे रिझाऊंगा!
मैं दीप-शिखा-सम पल-पल जल-जल
ज्वाला-जाल बुझाऊंगा॥
दे-दे दिन-दिन तिल-तिल प्राणाहुति
काया-भात सिझाऊंगा।
दे शुद्ध पिण्ड गत जन्म-जन्मकी
ग्रन्थि-गांठ सुलझाऊंगा॥
निज प्रभु-पद पद्म-वियोग प्रफुल्लित
पद्माकृति मुरझाऊंगा।
विज्ञान-धार माया-मृग-इन्द्रिय
पार उतार जुझाऊंगा॥

लेखककी अन्तर्वेदना वास्तवमें हृदयस्पर्शी है।

दलितोद्धार। लेखक और प्रकाशक—कुंवर चांदकरण शारदा, शारदा-भवन, अजमेर। मूल्य—।=)

इस देशमें दलितोंकी समस्या कैसी जटिल और जातीय उन्नतिके लिए कैसी महत्त्वपूर्ण है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। शताब्दियोंके उत्पीड़न और निष्ठुर अवहेलनासे देशकी एक विराट्-संख्यक जनता किस प्रकार धीरे-धीरे ध्वंसकी ओर अग्रसर होती जा रही है, इस आतङ्कोत्पादक करुण कथासे सारा देश परिचित है। स्वामी दयानन्दके समयसे पहले अभागे अस्पृश्योंके प्रति सहानुभूति दिखानेवाला कोई भी सहृदय नेता सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रमें प्रकट नहीं हुआ। स्वामीजीने अपनी तेजोद्दीप्त प्रतिभाके दर्पणमें पड़े हुए महान् मानवी आदर्शको कार्यरूपमें परिणत करनेका दृढ़ निश्चय किया और दलितोंकी नीरव पुकार सुनकर उनके उद्धारके लिए वह कटिबद्ध हो गये। आर्य-धर्मकी प्रतिष्ठा करके उन्होंने देशके सामने जो आदर्श रखा उससे दलितोद्धार आन्दोलनकी नींव पड़ी। हिन्दू-जातिके एक बृहत् अंशको विधर्मियोंके चंगुलमें फंसते देखकर, कुसंस्काराच्छन्न जातिकी आत्मघाती प्रकृतिका यह भीषण परिणाम देखकर स्वामीजीकी आत्मा अत्यन्त क्षुब्ध हो उठी थी। नाना बाधाओं, घोर विरोधोंका सामना करके उन्होंने जातिके पुनःसङ्गठनका जो पथ निर्माण किया, उनकी मृत्युके बाद धीरे-धीरे जातीय नेता उसका अनुसरण करने लगे। इस नवीन प्रगतिकी परिणति हम महात्मा गांधीके वर्तमान हरिजन आन्दोलनमें देखते हैं। विगत पांच दशाब्दियोंसे प्रचलित उक्त आन्दोलनकी प्रगतिमें जिन-जिन हेतुवादी (rationalistic) विचारोंका आविर्भाव हो पाया है, वर्तमान पुस्तकमें उन्हींपर सुन्दर विवेचना की गयी है। स्थान-स्थानपर भाषा और भावोंकी कई अशुद्धियां होनेपर

भी पुस्तकमें लेखकने जिन विचारोंका विश्लेषण किया है वे मननयोग्य और समयानुकूल हैं।

पक्षी-परिचय। लेखक—श्री पारसनाथ सिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक—नवयुग-साहित्य-मन्दिर, नया बाजार, दिल्ली। मूल्य—१।)

प्राकृतिक विज्ञान तथा प्राणि-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकोंका हमारे साहित्यमें एकदम अभाव है। पाश्चात्य विद्वान् जिस विद्याके अध्ययनके लिए वर्षों देश-विदेशोंके जङ्गलोंमें बिता देते हैं, उसका मूल्य हमारे यहां कुछ नहींके बराबर माना जाता है। जिस ज्ञानसे न अर्थकी ही प्राप्ति हो और न 'मोक्ष' ही मिले, वह हमारे यहां चिरकाल अर्थहीन माना गया है। Knowledge for it own sake वाले सिद्धान्तकी हमारे देशके महाज्ञानियोंने सदा खिल्ली उड़ायी है। तथापि विधिके सृष्टि-वैचित्र्यके कारण कालिदास-जैसे इक्के-दुक्के 'महामूर्ख' भी कभी-कभी इस देशमें उत्पन्न होते दिखायी दिये हैं जिन्होंने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार पदार्थोंमेंसे किसीके लाभकी आशा न होनेपर भी केवल विशुद्ध ज्ञान (ब्रह्मज्ञान नहीं) के आनन्दसे प्रेरित होकर वनस्पति तथा प्राणिशास्त्रका सूक्ष्म अध्ययन किया था। कालिदासके ऋतु-संहार, मेघदूत आदि ग्रन्थोंमें नाना प्रकारके पक्षियोंके जो वर्णन पाये जाते हैं उनसे पता चलता है कि वह कैसी सूक्ष्म-दृष्टिसे पक्षियोंके जीवन-वैचित्र्यका निरीक्षण करते थे और उस निरीक्षणमें कैसा रस लेते थे।

कुछ भी हो, हमें यह देखकर हर्ष हुआ है कि अब हिन्दी भाषाके लेखकोंका ध्यान भी प्राकृतिक विज्ञानकी ओर जाने लगा है। आलोच्य पुस्तक इसके प्रमाण-स्वरूप है। इसमें उत्तर भारतमें पाये जानेवाले प्रायः ५० विभिन्न पक्षियोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। लेखकने विशेष अध्ययनपूर्वक पुस्तक लिखी है और विषयके वर्णनमें रोचकतापर विशेष ध्यान दिया है। पुस्तक सचित्र है। छपाई-सफाई उत्तम है।

जयन्त। लेखक—श्री रामनरेश त्रिपाठी; प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग। मूल्य—बारह आने।

प्रस्तुत पुस्तक एक नाटक है। भूमिकामें लेखक महोदय लिखते हैं—"दिसम्बर १९३३ के तीसरे सप्ताहसे लेकर १९३४ के दूसरे सप्ताह तक मैंने दक्षिण भारत और पश्चिम भारतके भिन्न-भिन्न रमणीय स्थानोंमें साहित्यिक भ्रमण किया था। इस भ्रमणमें मुझे शिक्षित जनतासे आम तौरपर यह शिकायत सुननेको मिली कि हिन्दीमें मौलिक नाटकोंका बड़ा अभाव है। कितने ही मित्रों और परिचितोंने भी मुझसे अनुरोध किया कि मैं क्यों न एक नाटक लिख दूं।" अतएव वर्तमान नाटकमें लेखकने मित्रोंकी अनुरोध-रक्षा की है। लेखकका केन्द्रगत उद्देश्य गरीबोंपर अमीरोंके अमानुषिक अत्याचारोंके कारण गरीबोंके हृदयोंमें उठनेवाले विद्रोहके तूफानकी विभीषिकाका छाया-चित्र अङ्कित करनेका रहा है। इस तूफानकी परिणति आत्मत्यागके मङ्गलमय भावमें दिखाकर लेखकने अपने उद्देश्यको सुन्दर और सफल बना दिया है। लेखकके कथनानुसार पुस्तक केवल पांच दिनके भीतर लिखी गयी है, इसलिए जल्दबाजीके कारण बीच-बीचमें कुछ शिथिलता आ जानेपर भी समग्रताकी दृष्टिसे देखे जानेपर नाटक सुन्दर और सामयिक हुआ है।

भव्य-विभूतियां। लेखक—श्री शङ्करसहाय सकसेना; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन। मूल्य—॥=)

इस पुस्तकमें भारतके निम्नलिखित ऐतिहासिक वीरों तथा वीराङ्गनाओंके चरित वर्णित किये गये हैं:—

महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, महाराजा छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई, महाराणा सांगा, पन्ना धाय, वीरवर दुर्गादास और जयमल-फत्ता। पुस्तककी वर्णनशैली रोचक है। नवयुवकोंके लिए यह उपयोगी सिद्ध होगी।

———

प्रलयकी गोदसे

श्री छबिनाथ पाण्डेय

पुराणोंमें मैंने पढ़ा था कि प्रलयके दिन चारों ओर जलमय हो जायगा, लेकिन समझमें नहीं आता था कि यह किस तरह होगा। इतना जल अचानक कहांसे आ जायगा। कल्पना भी काम नहीं करती थी। पर इस भूकम्पने बातकी बातमें बतला दिया कि प्रलय किस प्रकार होगा।

× × ×

कमसे कम उत्तरी बिहारने तो अपनी आंखों देख लिया कि प्रलय कैसे होगा। भूकम्पका एक धक्का लगा। गड़गड़ाहटकी भयङ्कर ध्वनि हुई। चारों ओर अंधेरा छा गया। भयसे सबकी आंखें बन्द हो गयीं। धांय-धड़ामकी भयानक आवाज चारों ओरसे आने लगी। पांच मिनिटके बाद प्रकाश हुआ। आंखें खुलीं। देखा बड़े-बड़े महल धराशायी हो गये हैं, इमारतोंका पता नहीं, उनके स्थानपर खंडहर खड़े हैं। चारों ओरसे आहतोंकी चीत्कार और करुण-क्रन्दन सुनायी दे रहा है!

× × ×

उधर भी तो वही दृश्य है। घरोंके आंगन फट गये हैं। उनमें कूप बन गया है और पानी बह निकला है। जिधर देखिये, यही काण्ड है। लोगोंने समझा—प्रलय आ गया, यह प्रलयका ही जल है। फिर भी प्राणोंकी ममता नहीं गयी। भगदड़ जारी थी। हजारों आदमी अपने स्थानसे ९।१० मील तक भागते चले गये।

× × ×

प्रायः आधे घण्टे तक पानी निकलता रहा। मीलों जमीन पानीसे डूब गयी। जहां क्षणभर पहले जव और गेहूंके हरे-भरे पौधे लहरा रहे थे वहीं क्षण-भर बाद पानीकी लहरें हिलोरें लेने लगीं। कैसी क्रान्ति थी! उत्तर दक्खिन हो गया! गांवके गांव जलमय हो गये। लोगोंने साक्षात् कालको सिरपर नाचते देखा!

× × ×

सहसा क्रम बदला। पानीके साथ बालूकी धारा बही। लोगोंकी जानमें जान आयी। पर उस समय किसीने नहीं समझा कि यह भूकम्प महानाश उपस्थित कर रहा है। जो होनेवाला है उसके बनिस्बत तो यही अच्छा है कि पानीकी ऐसी भयङ्कर बाढ़ आये कि सबको बहा ले जाय। दुःखोंका एक-साथ ही अन्त हो जाय। पर उस समय यह किसे सूझी। उस समय तो यही सोचा कि प्राण बचा, सब-कुछ मिला; फिर देख लेंगे। उस समय किसने सोचा था कि जिस सर्वनाशकी ओर यह भूकम्प लिये जा रहा है उसमें दाने-दानेके लिए तरसकर मरना पड़ेगा!

× × ×

सचमुच दाने-दानेके लिए तरसकर मरना पड़ेगा! मालकी हानि जानसे कहीं ज्यादा हुई है। मध्यम श्रेणीके लोग एकदम बरबाद हो गये। शहरोंमें जिनकी एकमात्र पूंजी छोटी-मोटी दूकान थी, उसके नष्ट हो जानेसे उनके पास ऐसा कुछ नहीं बचा जिससे वे अपने भविष्यका निर्माण करें। जो कल तक उन्हीं दूकानोंकी बदौलत भले आदमी बने थे, आज वे सड़कके दरिद्र भिखारीसे भी बदतर हैं; क्योंकि प्रतिष्ठाके मारे वे भीख भी नहीं मांगेंगे, दान भी नहीं ग्रहण करेंगे अथवा दान ही कब तक मिलता रहेगा। नौकरीकी कोई उम्मीद नहीं। इनका क्या होगा?

× × ×

बहुत ऐसे परिवार थे जो केवल मकानके किरायेसे गुजर करते थे। मकान गिर गये। ईंटें बिखर गयीं। उनकी रोजी गायब हो गयी। वे कहांसे अपनी गुजर करेंगे। कौन इन्हें जीविकाका जरिया तैयार कर देगा। इनके पास तो इतनी भी सामर्थ्य नहीं रही कि ये अपने मकानोंके मलवे हटावें या ईंटोंके ढेरको बटोरकर इकट्ठा कर दें। ऐसे एक नहीं, अनेक कुटम्ब हैं। इन्हें तो कर्ज भी नहीं मिलेगा, क्योंकि सरकार पहले असामी जांच लेगी तब कर देगी और इनके पास जमानत देने लायक कुछ रह ही नहीं गया!

× × ×

इसके साथ-ही-साथ जमीनकी समस्या है। यदि किसीने कहींसे रुपयोंका कुछ प्रबन्ध कर भी लिया तो मकान कहां

बनाये, यह समस्या उसके आगे पेश होती है। जिन जगहों-पर पहलेके मकान थे वे तो फटकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं, कहीं फुट-फुटभर नीचे धंस गयीं और कहीं दो फुट ऊपर उठ गयीं। कहीं करवट बदले हुई हैं तो कहीं ढुलमुनियां खाये हुई हैं। ऐसी जमीनपर मकान कैसे बनाया जायगा और उसमें कौन बसने आयेगा। म्युनिसिपलिटियां इस सम्बन्धमें अभी तक मौन हैं। देखें, आगे क्या होता है।

× × ×

देहातोंकी समस्या तो और भी विकट, भीषण और गम्भीर है। बालूने प्राण तो अवश्य बचा लिये, क्योंकि पानीका निकलना बन्द कर दिया; लेकिन दूसरी विपत्ति ला पटकी। खेतोंमें बालू भर गया। यह बालू कहीं-कहीं २ से ४ फिट तक है। जिन खेतोंमें धान पैदा होता था वह रेगिस्तान बन गया। वैज्ञानिकोंने जांच की है तो मालूम होता है कि बालूमें जो पदार्थ है वह फसलके लिए काल है। उसमें पड़ा बीज अंकुरित हो ही नहीं सकता।

× × ×

बीघे दो बीघे खेतोंकी यह हालत नहीं है। गांवके गांव बालूबुर्ज हो गये हैं। ४० फीसदी खेतोंकी यही हालत है, जिनमें १५ फीसदी तो सदाके लिए निकम्मे हो गये। इस तरह एक जिलामें २-३ लाख बीघा जमीन बरबाद हो गयी है। किसी-किसी गांवकी हालत तो एकदम रद्दी है। समूचे रकबेमें १०० बीघा जमीन भी काम-लायक नहीं बची है।

× × ×

बिहारके किसानोंकी दरिद्रता मशहूर है। प्रत्येक गांवमें गिने-गिनाये गृहस्थ होंगे जो खेतकी पैदावारसे साल-भर दोनों शाम अन्न पाते हों। औसत किसानोंकी पैदा-वारका अधिक भाग तो खलिहानोंसे ही महाजनोंकी बखारमें चला जाता है। फसल कटनेके महीना दो महीना बादसे ही गृहस्थ कर्ज काढ़ने लगता है। सालमें कुछ महीने रबीपर काटता है और कुछ सकरकन्दपर! लोग हंसेंगे, पर यह सच है कि बिहारके एक खासा तायदाद किसान सालके कमसे कम चार मास सकरकन्दपर काटते हैं।

× × ×

इस साल वह भी नसीब नहीं हो रहा है। भूकम्पकी बाढ़से कहीं सारी फसल बालूके नीचे दब गयी और कहीं पानीमें पड़ गयी। किसान भूखों मर रहे हैं। यह अकाल कब तक रहेगा, भगवान् ही जाने। क्योंकि जब तक खेतोंमें पैदा नहीं होने लगती तब तक उनकी जीविका चलना कठिन है। पर उन खेतोंसे पैदा होनेकी कोई आशा नहीं। इस तरह बिहारके अधिकांश किसान सदाके लिए बरबाद हो गये।

× × ×

अन्नसे भी भीषण समस्या पानीकी है। जहां थोड़े-बहुत खेत बचे हुए हैं भी वहां कुएं तो एकदम बरबाद हो गये हैं। कुएं बालूसे भर गये हैं, फट भी गये हैं। कितने तो एकदम बेकार हो गये हैं। जो साफ भी कराये जा रहे हैं उनका जल ठहर नहीं रहा है। हफ्ते-भरके अन्दर ही वे पुनः सूख जाते हैं। बहुत-सी रिलीफ कमेटियां आयी हैं जो अन्न-वस्त्रकी सहायता कर रही हैं, पर इस पानीका क्या प्रबन्ध होगा। दीखता तो यही है कि अन्नके रहते भी पानीके कारण लोग मरेंगे।

× × ×

सबसे भयानक समस्या उन गांवोंकी है जिनके इर्द-गिर्द आज भी पानी भरा पड़ा है। ऐसे कितने ही गांव हैं जिनकी चारों ओरकी जमीन धंसकर झील-सी बन गयी है, पानीके निकासका रास्ता बन्द हो गया है, जिन नदियोंसे होकर वह पानी पहले बह जाया करता था उनकी धार एकदम भर गयी है। उस पानीके निकलनेका कोई रास्ता नहीं रह गया है। उस पानीने स्थायी रूपसे वहां डेरा डाल दिया है। बरसातमें हालत और दर्दनाक हो जायगी। घर डूब जायंगे। लोग कहां रहेंगे, समझमें नहीं आता।

× × ×

इन सभी विपत्तियोंको भयानक बना रही है हमारी निराशा और पस्तहिम्मती। इस भूचालने हम लोगोंके दिल और दिमागको इस तरह दहला दिया है कि हममें साहस, शौर्य, आशा और विश्वासका सर्वथा लोप हो गया है। प्रतिदिन आनेवाले हलके धक्कोंसे यह निराशा और भी बढ़ती जा रही है। उद्धारका कोई रास्ता ही नहीं दिखायी दे रहा है।

———

अर्थ-चक्र

जापानने इंगलैण्डको दबाया

जापानको गाली देना एक बात है और उसका मुकाबला करना दूसरी। स्वयं अंगरेज जापानकी योग्यता और विचक्षण बुद्धिके कायल हैं। हालमें सर हैरी मैकगोवनने वर्मिङ्गहममें एक भाषण दिया था। इसमें उन्होंने कहा—"मैं जापानकी औद्योगिक दशाका सूक्ष्म अध्ययन करके आया हूं। मैंने वहां मजदूरोंकी खूब अच्छी हालत देखी। ऐसा मालूम पड़ता है कि उन्हें पुष्ट भोजन मिलता है तथा वे स्वास्थ्यकर रूपसे रहते हैं। जापानका सङ्गठन देखकर मैं दङ्ग हो गया। हम भी ऐसा सङ्गठन कर सकते हैं; पर अब तक हम इसमें सफल न हो सके। जापानकी एक विशेषता यह है कि वहांके व्यापारी सदा गाहककी बातको ठीक और अपनी गलत समझते हैं। उनका एकमात्र ध्येय गाहकोंको खुश रखना है। हमें ये बातें जापानसे सीखनी चाहिए। तब हम सफलताकी आशा कर सकते हैं। अन्यथा यदि हम अन्धाधुन्ध जापानके विरुद्ध जायेंगे तो इससे इंगलैण्डकी बड़ी हानि होगी।"

ब्रिटिश उपनिवेशोंमें जापानी मालका प्रभुत्व

जापानने सस्ता माल बनाकर अंगरेज व्यापारियोंकी बड़ी हानि की है। उसके कारण लङ्काशायरकी तो मिट्टी खराब होने लगी है। कुछ ही साल पहले तक साम्राज्य-भरमें तो विलायती कपड़ा ही बिकता था। उसका प्रतिद्वन्द्वी कोई न था। पर अब जापान उस कपड़ेको स्वयं साम्राज्यके मार्केटोंसे खदेड़नेमें समर्थ हो रहा है। यह बात निम्न आंकड़ोंसे स्पष्ट हो जायगी। सीलोनमें १९२७ में लङ्काशायरसे प्रायः सवा तीन करोड़ गज सूती कपड़ा आया था, १९३२ में यह घटकर कुल डेढ़ करोड़ गज रह गया। उधर जापानी कपड़ा जो १९२७ में कुल ६१ लाख गज आया था, १९३२ में चार करोड़ गजसे ऊपर आया। सूदान ब्रिटिश साम्राज्यमें रुईकी सबसे बढ़िया खान है; वहां १९२९ में जापानी कपड़ा साढ़े तीन करोड़ गज गया था, पर १९३२ में वह बढ़कर सवा चार करोड़ गज हो गया। केनिया तथा यूगण्डामें १९२८-१९३२ तकमें जापानी कपड़ेका आयात डेढ़ करोड़ गजसे तीन करोड़ गज हो गया। पर लङ्काशायरका कपड़ा इसी बीच पञ्चानवे लाख गजसे घटकर सत्तावन लाख रह गया। चीनमें जापानका बायकाट चल रहा है; पर हांगकांगमें गत वर्ष लङ्काशायरका एक तिहाई कपड़ा भी न गया। यह देखकर लङ्काशायरके व्यापारी हैरान हैं। पर जापानसे वे लड़ भी नहीं सकते। इसलिए स्थिति विकट होती जा रही है। अंगरेजोंकी आय सरासर घट रही है। इस समय अंगरेज जाति इस दलदलसे बाहर निकलनेके लिए विशेष उद्यम कर रही है। उधर भारतके मिल-मालिक लङ्काशायरको अपना व्यापार सौंपनेको तैयार बैठे हैं।

हमारे मिल-मालिकोंका स्वेच्छाचार

अहमदाबादके मिल-मालिक म० गांधीके मित्र हैं और उनमें कई देशके नेता भी बनते हैं। पर जब मजदूरोंको सोखनेका प्रश्न आता है तो ये 'दीनबन्धु' वज्रसे भी कठोर हृदय रखनेवाले बन जाते हैं। वे मजदूरोंकी मजूरी घटाकर और विदेशी मालपर खूब कड़ा कस्टम्स लगवाकर भारतमें 'स्वदेशी' का प्रचार करना चाहते हैं। इधर उन्होंने फिर मजूरी घटानेका निश्चय किया है। मजूरोंने हड़तालकी ठानी। इसपर म० गांधीको मध्यस्थ बनाकर ये इस झगड़ेका निपटारा करना चाहते थे। लेकिन महात्माजी समयके अभावसे कुछ न कर पाये। अब फिर ये 'देशभक्त' मिल-मालिक शेर बन गये हैं और तुरत ही बिना मजदूरोंसे परामर्श किये मजूरी घटानेको उद्यत हो गये हैं। इसपर तुर्रा यह है कि अपना लाभ घटानेको वे तैयार नहीं हैं। एक सेठ वाहयात बातोंमें जितना खर्च करता है उतनेमें हजारों श्रमजीवियोंकी गुजर हो जाये। पर नहीं; वह जो खर्च करता है उसे अत्यन्त उपादेय समझता है। भले ही उसका अधिकांश रुपया मोटर, विदेश-यात्रा आदिके व्ययके रूपमें सीधे विदेशोंको जाये। यही कारण है कि उग्र राष्ट्रवादी, मिलके कपड़ेको विदेशीसे भी बुरा समझते हैं। जिस कपड़ेके कारण मिहनत-मजूरी

करके खानेवाले अपने निर्धन भाइयोंका पेट कटता है वह महापापसे सना है। पं० जवाहरलाल यह बात भली भांति समझा गये हैं, पर मिल-मालिक परम स्वार्थमें डूबे रहनेके कारण न चेते। यह देशका दुर्भाग्य है और यही कारण है कि संरक्षण मिलनेपर भी देशी कारखाने पनप नहीं सक रहे हैं।

गांवोंकी सुध लीजिये

भारत नगरोंका देश नहीं है। यहां तो साढ़े सात लाख गांवोंका राज है। इसलिए देशकी दशा तभी सुधरेगी जब ये गांव समृद्ध बनें। वर्तमान संसारके अधिक कष्टोंका उपाय तभी हो सकता है जब गांवकी जनताकी आर्थिक यन्त्रणा छूटे। इसलिए डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरने बोलपुरमें शान्तिनिकेतनके विद्यालयके साथ श्रीनिकेतनकी स्थापना की है। यह संस्था आसपासके गांवोंकी आर्थिक उन्नति करनेमें दत्तचित्त रहती है। इस प्रकारकी संस्थायें भारतभरमें खुलनी चाहिए और हमारे नवयुवकोंको अब गांवोंकी सुध भी लेनी चाहिए। गांवोंमें जाकर जब तक हम अपने ग्रामीण भाइयोंसे हिलमिलकर उन्हें नवीन युगका संदेश न देंगे तब तक देश तिलभर भी न उठ पायेगा। भले ही हम उन्नति-उन्नतिकी पुकारसे नगरोंको सरपर उठा लें। पं० जवाहरलालने भी ग्राम-सङ्गठनको सर्वोपरि स्थान दिया था। इसकी अवहेलना करना आत्महत्या है।

निरक्षरता मिटाना ही मुक्तिका मार्ग है

निरक्षर मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण सदा आर्थिक दास रहता है और जो आर्थिक दास होता है वह किसी प्रकारकी उन्नति नहीं कर सकता। उसे बहकाना और सदा गुलाम रखना बहुत आसान है। इसी निरक्षरताके कारण हमारे श्रमजीवी ठगे जा रहे हैं और 'हरिजन' अस्पृश्यताको गले लगाये हुए हैं। इसलिए आवश्यक है कि देशभरमें निरक्षरता नाश करनेका विराट् आयोजन हो। जापानने कुछ ही अर्सेमें अपने देशको साक्षर बनाकर जो चमत्कार जगत्को दिखाया है वह हमारे लिए आदर्श बनना चाहिए। हमारा आर्थिक सङ्कट तब तक हल न होगा जब तक देशमें अनपढ़ोंकी खेती फलफूल रही है।

सेठ 'हरिजन' पैदा कर रहे हैं

भारतके सेठ अब भी उसी अर्थनीतिपर चल रहे हैं जिसने भारतमें कभी 'हरिजन' पैदा किये थे। इस समय देशमें हरिजनोंके उद्धारकी धूम है, पर दूसरी ओर हमारे सेठ नये हरिजन पैदा कर रहे हैं। वे अपने यहां काम करनेवालोंको चूसकर उन्हें सब प्रकार निकम्मा बना देना चाह रहे हैं। जिस निर्दयता, पशुता तथा अज्ञानतासे ये लोगोंसे काम लेना चाहते हैं उससे उनमें मनुष्यता नहीं रहने पाती। भले ही कोई एम० ए० पास हो या मामूली कुली; पर मालिक दोनोंसे ही इतना अधिक काम लेते हैं और उनके साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि वे कुछ ही समय बाद अपनेको 'हरिजन' और निकम्मा समझने लगते हैं। फल यह होता है कि नौकरीके बाद मनुष्य गिरता जाता है। इससे भारतभरकी सामूहिक शक्तिका कितना अपव्यय हो रहा है, यदि रुपयोंमें इसका हिसाब लगाया जाये तो अरबों तक पहुंचेगा। लेकिन हमारे आलसी और स्वार्थी सेठ इसका मूल्य नहीं समझते। वे नहीं जानते कि अपनी इस नीतिसे वे देशको आर्थिक दृष्टिसे रसातलकी ओर लिये जा रहे हैं।

हमसे सुखी विदेशी मजदूर

उधर विदेशोंमें मजदूरोंको सुखी और आत्मसम्मानी बनाना वहांकी सरकारें और सेठ अपना धर्म समझते हैं। अमेरिकाके सब कारखानोंमें यह नियम बना दिया गया है कि शिक्षित और अर्द्धशिक्षित श्रमजीवी सप्ताहमें केवल ४०-४४ घण्टे काम करेंगे, पर उनकी मजूरी न घटायी जायेगी। इस प्रकार ये श्रमजीवी सुखसे रहेंगे और अपने स्वास्थ्यकी उन्नतिके साथ-साथ पूरे दिलसे काम करनेके कारण देशकी समृद्धि बढ़ायेंगे। संसारका वर्तमान आर्थिक सङ्कट इसलिए तीव्रतर होता जा रहा है कि अधिकांश सेठ मनुष्यकी सृजनशक्तिका दुरुपयोग कर रहे हैं। हमारी कितनी शक्ति इस प्रकार बरबाद हो रही है? इसका अनुमान लगाना कठिन है।

शक्तिक्षयका भयङ्कर परिणाम

Waste—The Great God के रचयिता मि० हाजसनके शब्दोंमें सुनिये—"इस समय मनुष्यकी ९० सैकड़ा शक्तिका फजूलमें नाश हो रहा है। इससे न तो व्यक्तियोंका कोई लाभ है और न समाजका।" इसे पाठक भली भांति न समझे होंगे। इसका अर्थ यह है कि दो-चार सेठ लाखों मनुष्योंका रुपया चूसकर बैङ्कोंमें रख देते हैं या उसे वे व्यापारमें लगाते हैं। उनके कारखानोंसे न तो उनका उपकार होता है, क्योंकि वे

उसमें अपने ही भाई श्रमजीवियोंको लूटना अपना धर्म समझते हैं। इसका फल यह होता है कि वे मनुष्यको अपने गौरवपूर्ण आत्मसम्मानके पदसे गिराते हैं और इस पापसे जो रुपया वे कमाते हैं उसका उपभोग तो वे कर नहीं सकते, पर समाजमें यह रुपया बंटता तो हजारों-लाखों मनुष्य सुखसे रहकर समाजका कल्याण करनेका अवसर पाते। धनियोंने यह मार्ग भी बन्द कर दिया है। इस कारण अधिकांश मनुष्योंकी शक्तिका अपव्यय हो रहा है।

यदि सेठ न होते तो

धनपर सारे समाजका अधिकार होता और बकौल हाजसनके संसारके सब मनुष्य प्रतिदिन साढ़े तीन घण्टा काम करते और इतनेसे ही सब चैनसे जीवन व्यतीत करते। आजीविकाके लिए इतने समयका काम काफी है। बाकी समयमें सब मनुष्य साहित्य, सङ्गीत, कला और ज्ञान-विज्ञानकी चर्चा करते। पर यह तभी सम्भव है जब समाजसे सेठोंका राज हटे। यह सम्मति केवल हाजसनकी नहीं है। प्रिन्स क्रोपाटकिन भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—"रोटीपर विजय" में इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन कर गये हैं।

ब्रिटेनमें फिर बेकारी बढ़ी

जनवरीमें ब्रिटिश बेकारोंकी सेना फिर बढ़ गयी है। इससे अंगरेज घबरा गये हैं। ब्रिटेनके श्रमसचिवकी रिपोर्टसे पता चलता है कि २२ जनवरीको बेकारोंकी संख्या २३८९००० थी याने १२ दिसम्बर १९३३ से १६४००० बेकार बढ़ गये। इस थोड़े समयमें यह वृद्धि भयङ्कर है। अधिक बेकारी सूती, ऊनी कपड़े और मोजें आदिके व्यापारमें हुई। कारण जो हो, पर ये लक्षण अच्छे नहीं हैं।

भारतकी बेकारी

भारतमें बहुत-से मनुष्य तो कामके नामसे घबराते हैं। भिखारी घण्टों गिड़गिड़ाकर आपके हृदयमें दयाका सञ्चार करना चाहता है, पर ज्योंही आप उससे कह दें कि हमारा यह काम कर दे, तुझे बारह आने देंगे तो उसे काठ मार जाता है। यही कारण है कि भारतमें जो कुछ नहीं करना चाहता वह भिखारी, साधु, संन्यासी, परिव्राजक आदिके दलमें मिल जाता है। ऐसे निकम्मोंकी संख्या पचहत्तर लाखसे ऊपर है। इसके अतिरिक्त घरमें एक-दो आदमी काम करते हैं और बाकी उनके सर खाना अपना धर्म समझते हैं। ऐसे निकम्मे तो यहां अनेक हैं! पर इधर बेकारी भी बढ़ रही है। मजदूर नेता श्री बाखलेने हिसाब लगाया है कि मिलोंमें प्रायः सत्तर हजार मजदूर बेकार हो गये हैं। कुछ मिलें अपना 'सुधार' कर रही हैं। वे मजदूरोंकी मजूरी घटा रही हैं और उनकी संख्या कम कर रही हैं। यह इसलिए कि अब ऐसे करघे निकले हैं जो चार-चार आदमियोंके स्थानपर एक आदमी द्वारा चलाये जाते हैं। इससे उक्त मजदूर बेकार हो गये हैं। और उद्योगधन्धोंमें भी बेकारोंकी संख्या बढ़ रही है। पर भारतमें इसका कोई कारण नहीं है, क्योंकि हमारा देश अभी तक अधिकांश सामानके लिए विदेशका मुंह ताकता है। हमारे सेठ चाहते तो नये-नये कारखाने खोलकर हमारी आर्थिक जड़ता दूर कर सकते थे; पर ये

देशघाती सेठ-साहूकार

इतने नीच-स्वार्थी और पराक्रमहीन हैं कि नया काम खोलते इन्हें मौत आने लगती है। ये अपना रुपया ऐसे कारखानों और मिलोंमें लगाते हैं जिनके नामपर भारतकी अपढ़ और भोलीभाली जनताको ठगना आसान हो जाता है। यही कारण है कि भारतके सेठ संसारमें सबसे गये-बीते हैं। इनके पास अन्य देशोंके सेठोंसे रुपया कम है सो बात नहीं। इनमें अन्य जातिवालोंकी भांति विज्ञानकी सहायतासे नये-नये कारबारमें रुपया लगानेका साहस नहीं है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि हमारे सौ सैकड़ा सेठ अपढ़ या अर्द्धशिक्षित हैं। इतना पतन अन्यत्र नहीं पाया जाता। वहां सब लिखे-पढ़े और संस्कृत होते हैं। यही कारण है कि हमारे सेठ देशको रसातल पहुंचाकर भी माल मारनेकी फिक्रमें रहते हैं। फल यह हो रहा है कि इनका 'स्वदेशी माल'-भी भारतको डुबानेमें लगा है।

———

विज्ञान चमत्कार

भूकम्प-प्रूफ मकान

जापान, न्यूजीलैण्ड आदि द्वीपोंमें भूकम्प-प्रूफ मकान बन गये हैं। समृद्धिशाली और विज्ञानमति देश प्रकृतिके उत्पातोंसे फौरन् हार नहीं मान लेते। वे अपनी बुद्धिसे उनका उपाय निकालते हैं और तुरत उन्हें काममें लाते हैं। इस समय भारतकी तरह भाग्यके भरोसे बैठे रहनेवाले देश बहुत कम हैं। बिहारका भविष्य अभी अनिश्चयात्मक है। नौकरशाही अपने स्वभावके कारण ढीली होती है। इसलिए बिहार-सरकार इस घोर अनर्थके अवसरपर भी पत्परताका परिचय न दे सकी। हमारी जनता अपढ़ और भाग्यको कोसनेवाली है। इसलिए बिहार कब तक संभलेगा और संभलेगा या नहीं—इसपर अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। पर यदि किसी दूसरे देशमें ऐसा अवसर आता तो उससे भावी पीढ़ियोंको लाभ ही होता। लण्डनके अग्नि-संहारके बाद वहांका रूप पलट गया। यूरोप और अमेरिका-के जो नगर इस प्रकार ध्वस्त हुए, उससे उनका कायापलट हो गया। वहांके अधिवासी ऐसे उत्पातोंसे लाभ उठाते हैं। जो हो गया सो तो हो गया, पर वे भविष्यकी ओर आशा-भरी दृष्टिसे देखते हैं। जापानने १९२३ के प्रलयके बाद टोकियोको ऐसा बना दिया कि इस समय वह संसारका दूसरा सबसे बड़ा नगर है। सुन्दरता, सजावट और बना-वटमें तो वह सबसे उत्तम निकलेगा। वहां जो नयी इमारतें बनी हैं वे भूकम्प-और आग-प्रूफ हैं। बहुत जोरका भूकम्प उन्हें न गिरा सकेगा और आग उन्हें न जला सकेगी। न्यूजीलैण्डमें भी ऐसे ही भवन बने हैं। चित्रमें पाठक एक ऐसा भवन देखेंगे। इसकी जांच-पड़ताल की गयी और भांति-भांतिकी चेष्टा की गयी कि यह जले या धड़ाकेसे उड़ जावे, पर इसने अपना स्थान न छोड़ा। जरा टेढ़ा हो गया; पर डटा रहा। नैपालमें भी ऐसे भवन बन सकते हैं; दरभङ्गामें भी। पर प्रश्न है, क्या वहांके राजा इस ओर ध्यान देंगे! प्रजाको कुछ ऋण देकर वे अपनी राजधानियोंको तो मजबूत बना सकते हैं। यदि ये रास्ता दिखायें तो भावी सङ्कट कम भयङ्कर हो जायेंगे। बिहारकी निर्धनता देखकर कम आशा है कि वहांके नगरोंकी दशा वर्तमान भूकम्पके कारण सुधरेगी।

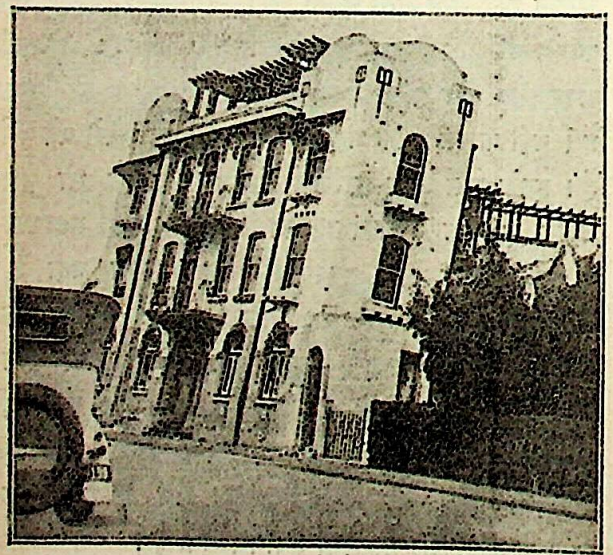

न्यूजीलैण्डका यह भूकम्प-प्रूफ मकान पृथ्वीके जबर्दस्त धक्कोंसे कुछ झुक गया, पर टूटा नहीं। जापान आदि देशोंमें ऐसे ही मकान बन रहे हैं।

लोकों और महालोकोंका प्रलय

इस विश्वमें क्षण-क्षणमें नयी सृष्टि और साथ ही प्रलय हो रहा है। हमारी दुनिया तो छोटी है। यह इतनी छोटी है कि कई बड़े सितारोंके सामने यह गेंद नहीं, बल्कि अणु रह जाती है। यदि उनकी आंखें होतीं और वे अणुओंकी खोजके लिए प्रयोग करते तो उनको हमारी इस वसुन्धराका

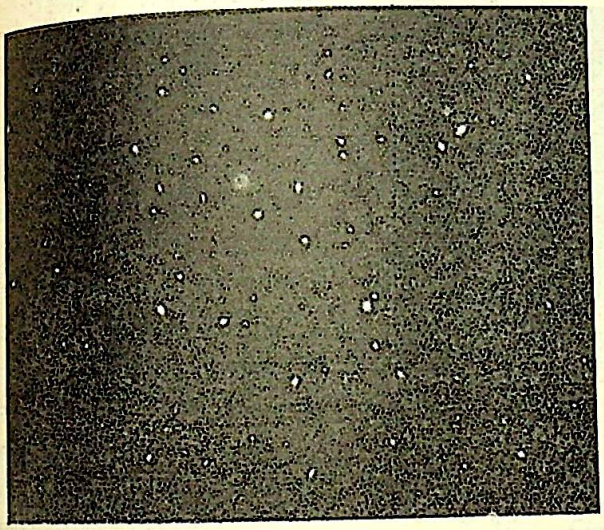

यह फोटो उन सितारोंका है जिनकी रोशनीको हमारी पृथ्वी तक आते-आते ५ करोड़ वर्ष तक लग जाते हैं।

रूप-रङ्ग जाननेके लिए खुर्दबीनका उपयोग करना पड़ता। जिस प्रकार माइक्रोस्कोपमें रखकर अणुका रूप देखा जाता है वैसे ही वे भी हमारी दुनियाको खुर्दबीनसे देखते। मतलब यह कि यह उनके महान् डीलडौलके सामने रजकण है। इसपर रहनेवाले हम मनुष्य इस पृथ्वीको अमर समझे बैठे हैं। नाना प्रकारके पाप करके सम्पत्ति जोड़ जाते हैं कि हमारी सन्तति उसका उपभोग करे। नित इसी उधेड़-बुनमें रहते हैं कि दूसरे मरें, उजड़ें और खतम हो जायें तो हम उनका माल डकारें। यह कोई नहीं सोचता कि पल-पलमें प्रलय हो रहा है और बहुत निकट-भविष्यमें—भले ही यह कुछ अरब वर्षोंमें हो—हमारी दुनिया इतनी ठण्डी हो जायेगी कि उसमें प्राण मर जायेगा और अशेष पृथ्वीमें महामृत्युका अखण्ड राज हो जायेगा। यह तो हमारी दुनियाका हाल हुआ, पर आसमानमें हम जो टिमटिमाते तारे देखते हैं उनकी ज्योति भी बुझ जायेगी। असंख्य तारोंकी ज्योति प्रति पलमें बुझ रही है। विश्व-ब्रह्माण्डमें सब तारे एक-साथ समाप्त हो जायें, यह तो नहीं होनेका। पर नित उनकी सृष्टि और प्रलय जारी है। तब हम किस गिनतीमें हैं! पर जिस रोज हमारी दुनिया ठण्डी हुई उस रोज महाप्रलय समझिये; क्योंकि विश्वमें प्राण केवल इस लोकमें वर्तमान है, वह मरा तो फिर अनन्त लोकोंमें उसका लेश भी ढूंढ़े न मिलेगा। नीचेके चित्रमें पाठक नाना लोकोंके जन्मका दृश्य देख रहे हैं। जो श्वेत बादल दिखायी दे रहा है उसके भीतर करोड़ों तारोंकी सृष्टि हो रही है और उतने ही विलयको प्राप्त हो रहे हैं। इस चक्करके भीतर नित अनगिनत लोकोंके जन्म और मृत्युका चक्कर चल रहा है। ऊपरका चित्र ऐसी ही सकड़ों आकाश-गङ्गाओंका है। अमेरिकाके विलसन पर्वतपर संसारकी सबसे बड़ी वेधशाला है। उसमें बहुत बड़े-बड़े दूरदर्शक यन्त्र हैं, उनकी सहायतासे यह फोटो लिया जा सका है। सब सफेद धब्बे आकाश-गङ्गा हैं। इनमें एक-एक धब्बेकेभीतर कीड़ोंकी भांति अरबों तारे जन्म-मरणके चक्रमें फिर रहे हैं। इनकी दूरी इतनी है कि वहांसे हमारी पृथ्वी तक रोशनी आनेमें पांच करोड़ वर्ष लग जाते हैं। रोशनीकी चाल सबसे तेज है। यह प्रति मिनट पौने दो लाख मील दौड़ती है। इस तेजीसे आते-आते यह उक्त आकाश-गङ्गाओंसे पांच करोड़ वर्षमें यहां पहुंची। उतनी दूरी तकके जो चित्र लिये गये हैं उनकी संख्या बीस लाख है। अर्थात् बीस लाख अरबों तारोंका पता अब तक चल चुका है। ये भी मनुष्योंकी

इस आकाश-गङ्गाके भीतर हमारी पृथ्वीसे लाखों अरबों गुना बड़े अरबों सितारे हैं जिनमें रातदिन न मालूम कितनोंका प्रलय होता है और न मालूम कितने नये बनते हैं।

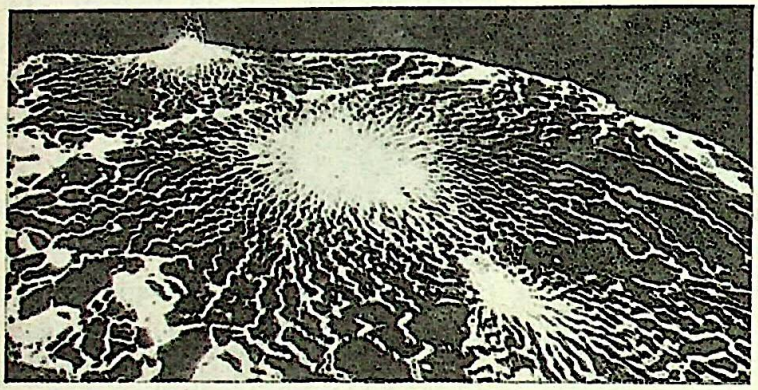

हवाई द्वीपके सुप्रसिद्ध कीलोएया आग्नेयगिरिसे विगलित पत्थरों, धातुओं आदिकी गङ्गा बह रही है।

तरह जी और मर रहे हैं। इस दशामें इस कीड़े मनुष्यकी क्या हकीकत है ?

धोखेबाज अग्निउद्गिरण

सब ज्वालामुखी पर्वत एक-सा अग्निवर्षण नहीं करते। सबका अपना-अपना ढङ्ग है। कोई केवल राख और धूल उड़ाते हैं और कोई लावा या गले हुए पत्थरकी नदी बहाते हैं। कोई आग्नेयगिरि एक समय तो राख उड़ाते हैं और दूसरे समय लावा उगलते हैं। दक्षिणी अमेरिकाके कुछ ज्वालामुखी दोनोंका एक-साथ उद्गिरण करते हैं। प्रकृतिका यह चमत्कार मोण्ट पेलेमें देखा जाता है। इसलिए ऐसे ज्वालामुखी 'पेलेयन' आग्नेयगिरि कहाते हैं। मोण्ट पेले भयङ्कर ज्वालामुखी है। इसने समय-समयपर अनगिनत सभ्यतायें, नगर और जातियां उजाड़ दीं। ऐसा धोखेबाज ज्वालामुखी दूसरा नहीं मिलता। एक बार धड़ाका हुआ तो सैकड़ों वर्षके लिए सो गया। इससे जो राख और लावा निकली, उसने अपने इर्द-गिर्द प्राणिमात्रका संहार किया; पर साथ ही इस राख और लावाने भूमिको उपजाऊ बना दिया। इस लोभसे उसके निकट नित आबादी होती गयी और फिर कुछ वर्ष बाद इस दिलचले आग्नेयगिरिने अग्नि-वर्षण करके सब चौपट कर दिया। कालका मित्र मोण्ट पेले जब तक चारों तरफ घनी बस्ती न बस जाये, चुप रहता है। आबादी बढ़ते ही चिप उगल देता है। इसके पेटसे चट्टान, पत्थर और राख निकलती है। इसके ऊपर राखका स्तम्भ-सा खड़ा हो जाता है। यह हवासे बहुत भारी होता है; पर भीतरकी अग्नि और विस्फोटके जोरसे ऊपरको चढ़ता जाता है। पर कुछ समय बाद यह अधिक ऊपर नहीं चढ़ सकता और फिर रोलरकी भांति नीचेको लुढ़क पड़ता है। अपने साथ यह तबाही ले जाता है। जिधर यह गया, मौत साथ-साथ चलती है। ३२ वर्ष पहले ८ मई सन् १९०२ में मोण्टपेले जो फूटा तो सेण्टपीटर नगर जलभुनकर खाक हो गया। इससे तीस हजार मनुष्य स्वाहा हो गये। सारे नगरमें केवल एक आदमी बचा। वह एक गुण्डा था जो जेलमें अपनी सजाके दिन काट रहा था। वह जेलकी दीवारोंके बीच ऐसा दबा कि भयङ्कर आगकी यह महामारी उसे छू न सकी। पाठक चित्र देखें।

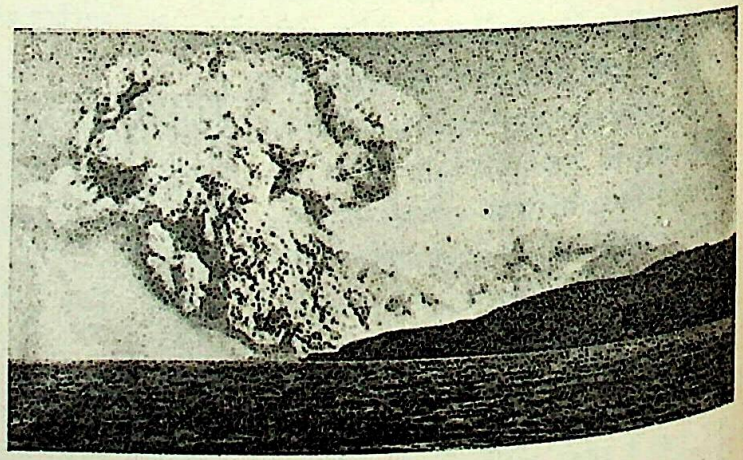

दक्षिण अमेरिकाका विचित्र ज्वालामुखी पर्वत मोण्ट पेले। इसकी धोखेबाजीने बार-बार असंख्य प्राणियोंका नाश किया है।

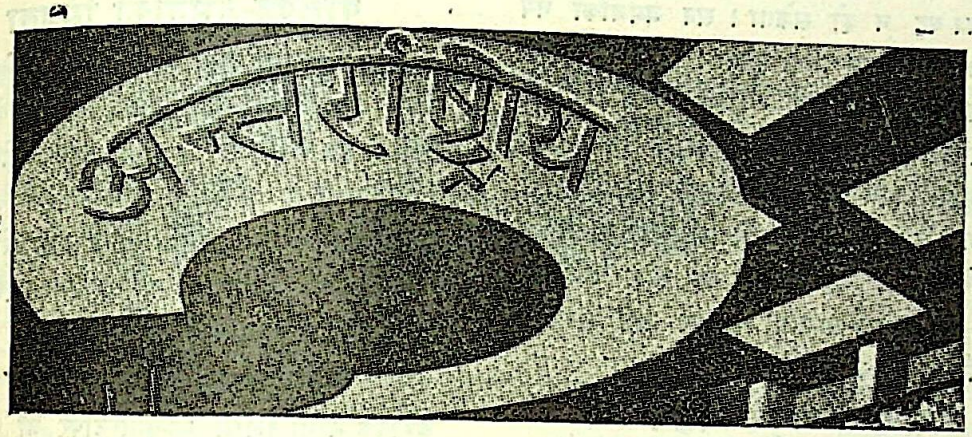

"रोमन कैथलिक जर्मन देशके शत्रु हैं"

यह आवाज हिट्लरके गुरु रोजनबर्गने उठायी थी। अब सब नात्सी इसे अखण्ड सत्य समझते हैं, इसलिए १८ वीं जनवरीको म्यूनिचके कार्डिनल फाउलबावरपर किसी नात्सीने चार गोलियां चलायीं। इसका समाचार दूसरे देशोंमें फैल गया, पर जर्मनीमें घटनाके एक सप्ताह बाद लोगोंको यह खबर मालूम हुई। जब पोपने रोमसे कार्डिनल फाउलबावरकी जान बचनेकी बधाई दी तो जर्मनोंको मालूम हुआ कि कार्डिनलकी जान कभी खतरेमें पड़ी थी। खूबी यह है कि गोली चलानेवाला दिनदहाड़े अपना काम कर गया, पर पकड़ा न जा सका। यह नात्सी पुलिसकी तत्परता और उसके निष्पक्षपातका नमूना है।

नोबल पुरस्कार-प्राप्त टोमासमान सुअर बन गया

आडोल्फ हिट्लरका परम मित्र पुलिपुस स्ट्राइशर 'स्टुर्मर' पत्र निकालता है। इसके जनवरीके अङ्कमें मुखपृष्ठपर एक दिलचस्प और रङ्ग-विरङ्गा कार्टून है। नीचे लिखा गया है—"Judenliteraturverlage" अर्थात् यहूदी-साहित्य-प्रकाशक। इस व्यङ्ग चित्रकी तारीफ यह है कि एक बहुत बड़ा सुअर खड़ा है और उसके चारों तरफ कूड़े-कचड़ेका ढेर लगा है। यह सुअर मार डाला गया है और उसके शरीरसे रक्तकी फुहारें छूट रही हैं। इसके लहूसे लथ-पथ कुछ नामी जर्मन यहूदी और 'आर्य' हैं जो विद्रोही बताकर लूट लिये और जर्मनीसे निकाल दिये गये हैं। इनमें सर्वप्रथम नोबल पुरस्कार-विजेता टोमासमान है जो सर्वश्रेष्ठ जर्मन लेखक माना जाता है। उसके नीचे लिखा है:—"जब सुअर मर जाता है तो उसके बच्चे घबराकर इधर-उधर भाग जाते हैं।" इस प्रकार हिट्लरकी जर्मनी अपने श्रेष्ठ साहित्यिकोंका सम्मान करती है। उनकी शिष्टताका भी इससे पता लगता है।

आर्यस्त्रीमें 'निर्लज्जता' का गुण होना चाहिए

यह नया आविष्कार जर्मनीमें हुआ है। हम लोग जो अपनेको आर्य कहते हैं, अब तक नारीके शीलमें हया और शर्मको उच्च स्थान देते आ रहे हैं; पर नात्सी जर्मन हमें 'अनार्य' और 'दास रहने योग्य' मानते हैं। इसलिए हमारी विचारधारा उनके लिए अग्राह्य है। हालमें लुडविग फर्डिनाण्ड क्लाउसने "उत्तरी आर्य आत्मा" नामक ग्रन्थ छपाया है। उसमें बताया है—"उत्तरी आर्य नवयुवतीकी आत्मा बाहरको खुलना चाहती है। वह नारीके रूपमें पुरुषके साथ शासन करनेके लिए छटपटाती है।...उत्तरी नवयुवतीमें लज्जा कम पायी जाती है, इसलिए Maedchen शब्द उसीके लिए लागू हो सकता है।" यह है नयी जर्मन फिलासफी।

क्या नङ्गे सरके बङ्गाली जङ्गली हैं?

जर्मनीमें आजकल एक नया आन्दोलन चला है कि नङ्गे सर फिरना असभ्यताका परिचायक है। इसके हामियोंका कहना है कि केवल जङ्गली मनुष्य बिना टोपके बाहर निकलते हैं। इधर दस-बारह वर्षोंसे जर्मन लोग गरमीके दिनोंमें गञ्जी खोपड़ी बनाकर नङ्गे सर बाहर निकलते थे। इसका एकमात्र कारण यह था कि इससे उन्हें आराम मिलता था और स्वास्थ्यके लिए यह लाभदायक समझा

गया। पर अब यह न हो सकेगा। सब जर्मनोंको नये नात्सी फरमानके अनुसार चलना पड़ेगा। ३१ जनवरीके फास्सिशे त्साइटङ्गने लिखा है—"हम सब अपने नेता और चैन्सलरके साथ मिलकर उस जङ्गली रिवाजके विरुद्ध लड़ रहे हैं जो अभागे जर्मन-प्रजातन्त्रके समयसे हमारे देशमें प्रचलित हो गया है। जर्मन बर्बर जातियोंकी भांति गरमियों-में नङ्गे सर फिरते हैं। यह कुप्रथा अब शीघ्र बन्द हो जायेगी।" यह 'आर्य-सम्मति' पढ़कर यही परिणाम निकलता है कि बङ्गाली जङ्गली हैं।

असत्यकी अपूर्व विजय

६२ वर्षकी अध्यापिका एलजा ब्राउनने छुटपनसे यह सीख रखा था कि लड़कोंको सच बोलना चाहिए। अपने छात्रोंको वह सदा यही उपदेश दिया करती थीं। पर इस घोर अपराधके लिए उसे २२ जनवरी १९३४ को पन्द्रह मासकी जेल हो गयी। नात्सी सरकार-का हुक्म सब पत्रोंके लिए निकला कि यह समाचार छापो—"बर्लिनके ऊपर शत्रके लड़ाके विमान रातको छिपकर चक्कर काट रहे हैं।" सब पत्रोंने भलेमानसोंकी तरह यह खबर बड़े-बड़े अक्षरोंमें छापी और सब जर्मन यह पढ़कर भयभीत हो गये। एलजा ब्राउनको शनीचरकी दशा आयी और उसे मालूम हुआ कि यह समाचार मिथ्या है। उसने अपने छात्रोंसे स्कूलमें यह जिक्र कर दिया। बस, उसकी कमबख्ती आयी और इस समय यह बुढ़िया जेलमें दिन काट रही है। खूबी यह है कि एलजा उग्र राष्ट्रीय विचार रखती है।

फ्रान्सके उग्र देशभक्तोंका उत्पात

फ्रान्सके उग्र देशभक्त जर्मनीका मिजाज ठण्डा करनेके लिए राष्ट्रीयताको सर्वशक्तिशाली बनाना चाहते हैं। हिट्लर-की उजड्ड राष्ट्रीय नीतिका यह फल है। हिट्लर समझता है कि वह जर्मनोंको तैयार करके फ्रान्सको मुंहकी दे सकता है, उधर राष्ट्रीय फ्रेञ्च जर्मनोंको कच्चा चबाकर चैन लेना चाहते हैं। इसलिए वे फ्रान्सका शासन अपने हाथमें लेना चाहते हैं। गत ६ फरवरीको उन्होंने पेरिसमें युद्धका दृश्य उपस्थित कर दिया था। पर मार पड़ी कम्यूनिस्टोंपर। ऐसी आशा नहीं होती कि फ्रान्समें हिट्लरवाद जल्दी जड़ जमायेगा। क्योंकि फ्रेञ्च, जर्मनोंसे अधिक सुसंस्कृत और बुद्धि-सम्पन्न हैं।

पोलैण्ड-जर्मनीकी मित्रता

हिट्लरकी सरकार पूर्वी देशोंसे सन्धि करनेकी फिक्रमें है, क्योंकि उनपर फ्रान्सका प्रभाव है। हालमें पोलैण्ड और जर्मनीमें जो दस वर्षकी सन्धि हुई है, उसने यूरोपमें हलकी सनसनी फैला दी है। कुछ लोग इसका यह अर्थ निकाल रहे हैं कि पोलैण्डमें जर्मनीकी विजय हो गयी। जर्मन पत्रोंका कहना है कि जर्मनी और पोलैण्ड दोनों प्रजातन्त्रवादके शत्रु हैं। ऐसे देशोंमें मित्रता होना स्वाभाविक है।

कम्यूनिस्टोंकी कमबख्ती

यूरोपके नाना देशोंमें कम्यूनिस्टोंपर जो गाढ़ा समय पड़ा है उसे देख यही मालूम होता है कि पूंजीवादी उसे उजाड़ देना चाहते हैं। कम्यूनिज्मने मजदूरोंको अपने अधिकारोंका बोध कराकर सेठोंकी जड़ खोदनेका आयोजन किया है। इस समय यूरोप-भरके श्रमजीवी साम्यवादी हैं और अपने हकोंके लिए लड़ने-मरनेको तैयार रहते हैं। उन्होंने अपनी शक्ति सङ्गठित करके अपना जीवन-प्रमाण ऊंचा कर लिया है। उनकी आय भारतके मजदूरोंसे छसे बारह गुना तक अधिक है। ये सब बातें सेठोंके प्राण ले रही हैं। इसलिए वे अब कम्यूनिज्मको दबानेका बीड़ा उठा चुके हैं। पर कम्यूनिज्म दबेगा, इसकी आशा नहीं होती। स्वयं जर्मनीमें कम्यूनिस्ट अभी तक वर्तमान हैं। आस्ट्रिया, फ्रान्स आदि यही चेष्टा कर रहे हैं। जहां देखो, कम्यूनिस्टोंको मारा जाता है और वे फांसीपर लटकाये जाते हैं। इसपर सब गर्व करते हैं कि जनता उनके पीछे है। यह है प्रजातन्त्रका उपहास।

गेहूं का राष्ट्रसङ्घ

जबसे गल्ला सस्ता हुआ है, किसानोंमें हाहाकार मच गया है। पर संसारमें अनाजकी उपज इतनी बढ़ गयी है कि वह भविष्यमें महंगा नहीं हो सकता। गेहूंका दाम बहुत घट जानेसे युक्तराष्ट्र, कनाडा, रूमानिया आदि देशोंमें किसानोंकी दशा एकदम खराब हो गयी है। इसलिए अब गेहूं पैदा करनेवाले देशोंकी सरकारें मिलकर गेहूंको बाहर भेजने और उसे मंगानेका कमसे कम दाम ठीक कर रही हैं। यह दाम आजकलके भावसे कुछ चढ़ा होगा, पर अधिक नहीं। किन्तु इससे उसके भावमें स्थिरता आ जायेगी और वह अधिक न गिरने पायेगा।

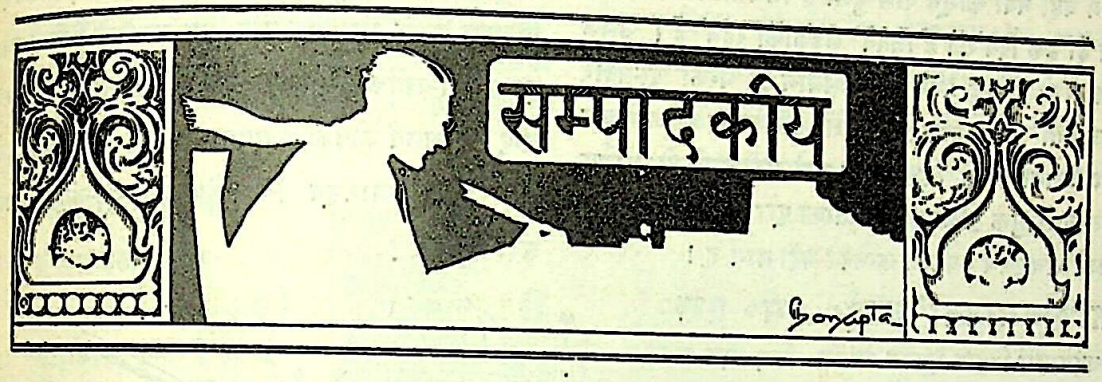

वीरेन्द्रदेवजू-पुरस्कारकी विफलता

ओरछाके महाराजने गत वसन्तोत्सवपर हिन्दीके लेखकोंके लिए एक नये पुरस्कारकी सूचना दी है। यह प्रतिवर्ष कविता-ग्रन्थोंपर मिलेगा। एक वर्ष खड़ी बोलीके काव्यपर और दूसरे साल ब्रजभाषाके। ओरछाके महाराजका हिन्दी-प्रेम सराहनीय है और यह दान भी स्तुत्य है। पर हमारी समझमें यह नहीं आया कि महाराजा साहबके साहित्यिक परामर्शदाता कौन हैं जिन्होंने उन्हें यह अज्ञतापूर्ण मन्त्र पढ़ाया। संसारमें ऐसे पुरस्कार नहींके ही बराबर हैं जो विशुद्ध कविता-ग्रन्थोंपर मिलते हों। साहित्यमें उन्नत, यूरोपके देशोंमें भी ऐसे पुरस्कार खोजकी सामग्री हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। विशुद्ध कविता-ग्रन्थ बहुत कम प्रकाशित होते हैं। तब क्या हिन्दीमें कवियोंकी धारापात वर्षा होने लगी है? हमें तो हिन्दीमें नाम लेने लायक एक-दो कवि ही दिखायी दे रहे हैं। इसपर ब्रजभाषाके कवि स्व० सत्यनारायण कविरत्नके बाद कोई ऐसा न हुआ जिसमें चमत्कारका लेश भी दिखायी दे। इस दशामें यह पुरस्कार ऊपर भूमिमें जल बरसानेके समान है। भला ब्रजभाषाके किस महाकविको यह पुरस्कार मिलेगा? खड़ी बोलीमें भी एक या दो साल बाद किन कवियोंके भाग्यमें यह पुरस्कार लिखा होगा? ये पहेलियां हम नहीं सुलझा सकते। स्वयं बंगलामें रवीन्द्र तथा नजरुल इस्लामके अलावा उच्च श्रेणीके कवि नहीं मिलते। जो हो, यह बड़ी भूल हुई है और कुछ समय बाद अपनी असम्भवताके कारण प्रवर्तकोंको स्वयं सूझेगी।

बङ्गालके बजटका विचित्र घाटा

बङ्गालके बजटमें दो करोड़ रुपयोंसे अधिकका घाटा दिखाया गया है। इसका मूल कारण आततायियोंके दमनके लिए अत्यधिक व्यय है। आगामी वर्ष इसपर ५२ लाख रुपये खर्च होंगे। यह मामूली पुलिसके व्ययके अतिरिक्त है। १९३१ से १९३५ तक इस मदमें प्रायः दो करोड़ रुपये व्यय हो चुकेंगे। आततायी जितने कम हों उतना अच्छा। पर संसारके सबसे दरिद्र देश भारतके दरिद्रतम देश बङ्गालके लिए यह बोझ बहुत भारी है।

काश्मीरके जिद्दी मुसलमान

डेढ़ वर्ष पहले ग्लैन्सी कमीशनकी रिपोर्ट निकली थी। उसमें काश्मीरके मुसलमानोंके अधिकार बढ़ानेके प्रस्ताव थे। उनसे केवल काश्मीरके ही नहीं, भारत-भरके मुसलमान खुश थे। पर अब वे मांग बढ़ा रहे हैं और काश्मीरमें नाना उत्पात करके अपने दुराग्रहका प्रदर्शन कर रहे हैं। इन मूर्खोंकी कृतिसे काश्मीरका शासन भारत-सरकारके विश्वस्त कर्मचारी कर रहे हैं। अब ये उनसे भी असन्तुष्ट हो गये हैं। सर इकबालकी अध्यक्षतामें एक 'अखिल भारत काश्मीर कमिटी' बनी है, उसने अपनी रिपोर्टमें यह दुखड़ा रोया है कि "काश्मीरमें अंगरेज प्रधान मन्त्री होनेपर भी मुसलमान उसपर विश्वास करनेका कारण नहीं पा रहे हैं।" अब मुसलमान क्या चाहते हैं? शायद सर इकबाल काश्मीरके मन्त्री बनें तो वहांके मुसलमान राजी हों।

बड़ोदेमें स्त्रीके अधिकारोंकी विजय

समाज-सुधारमें जो काम बड़ोदेने किया वह न तो ब्रिटिश भारतमें हो सका और न दूसरी देशी रियासतोंमें।

हालमें वहां नया कानून पास हुआ है जिससे विधवा स्त्रीको उतने ही हक दिये गये हैं जितने लड़कोंको रहते हैं। उसके पतिके मरते ही वह अपने पतिके समान ही घरकी हिस्सेदार बन जायेगी। विधवाके पुत्र हों तो उसे उतना ही अधिकार रहेगा जितना बेटेको। इस प्रकार वहां नारी पुरुषोंकी आर्थिक परतन्त्रतासे मुक्त होकर स्वाधीनताका पूरा स्वाद ले सकेगी। नारीको सचमुचमें स्वतन्त्र करनेका यही मार्ग है।

एक 'सबजानता' आई० एम० एस०

बर्दवानमें बिहार-भूकम्प-फण्डके लिए एक सभा की गयी। वहां कुछ चन्दा हुआ। एक सज्जनने प्रस्ताव किया कि यह रकम आचार्य पी० सी० रायके पास भेज दी जाये। पर अध्यक्ष महोदय बोले—"पी० सी० राय कौन है? मैं तो उसे नहीं जानता।" ये अध्यक्ष एक भारतीय ही थे। वहांके सिविल सर्जन मेजर सिन्हाने सर पी० सी० रायका नाम तब तक न सुना था। किसी अंगरेजके मुखसे ऐसी बेहूदा बात निकलती तो उसे गालियां दी जातीं, पर अपने इस देशबन्धुकी दशापर आंसू बहानेके अतिरिक्त हम कुछ नहीं कर सकते।

"ब्रिटेनपर भारतका राज"

बर्नार्ड शाने हालमें फिर कहा है कि समय आ रहा है जब भारत ब्रिटेनपर राज करेगा। उनकी यह भविष्यवाणी यद्यपि इस समय मजाक-सी लगती है, पर निकट भविष्यमें ऐसा होना असम्भव नहीं है। जिससमय जापान या रूससे संघर्षकी सम्भावना दिखायी देगी या उपनिवेशोंमें पूर्ण स्वतन्त्रताका दावा जोर पकड़ेगा तो ब्रिटेनको बाध्य होकर भारतको स्वराज्य देना पड़ेगा। इसके बाद ही ऐसा चक्कर फिरेगा कि ब्रिटेनको अपनी शक्ति नष्ट न होने देनेके लिए भारतकी प्रभुता माननी पड़ेगी।

बिहारके साहित्यिकोंकी दुरवस्था

भूकम्पने बिहारी साहित्यिकोंको सम्पत्ति भी चौपट कर दी। पर वे लज्जाके मारे सहायताके लिए हाथ नहीं फैला सक रहे हैं। इसलिए उनकी दुरवस्था बड़ी भयानक है। इस विषयपर हमारे पास तीन-चार गुप्त पत्र आये हैं जिन्हें पढ़कर इन साहित्यिकोंके सर्वनाशसे हृदय रोने लगता है। क्या इनके लिए एक अलग कोषकी स्थापना नहीं की जा सकती, जो इन आत्मसम्मानपूर्ण भिखारियोंको ढूंढ़-ढूंढ़कर उनकी सहायता करे?

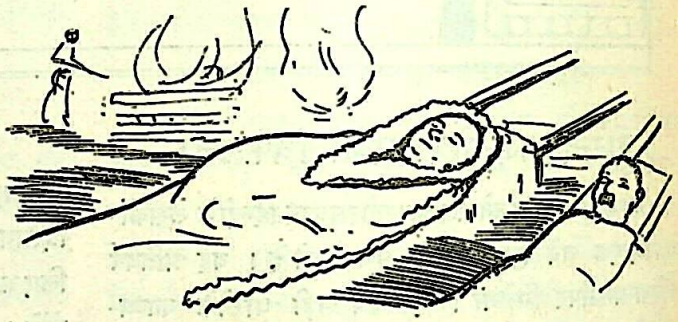

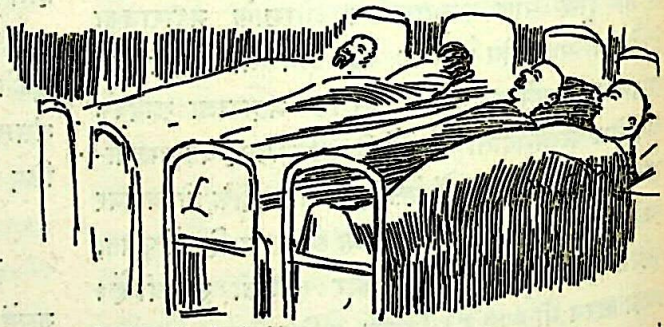

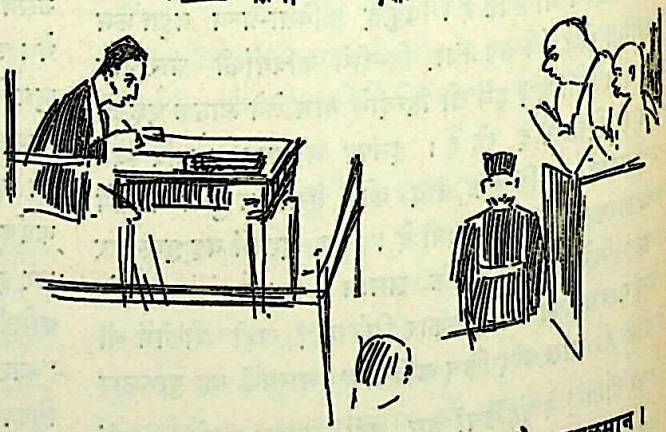

आत्म-संहारमें उन्मत्त रहनेवाले दङ्गेबाज हिन्दू और मुसलमान।

नीला नागिनीका प्रयाण

मिस क्रैम क्रुक उर्फ नीला नागिनी अमेरिका चली गयी है। यह उसके तथा देशके हितमें भला ही हुआ है। उसके

साथ—भले ही वह दुराचारिणी रही हो—भारतमें सहानुभूतिहीन व्यवहार नहीं हुआ। इसलिए हमें एक प्रकारसे निश्चय है कि वह शीघ्र ही अपनी रामकहानी लिखकर भारतको बदनाम करेगी। नीला नागिनी-काण्डकी अन्तिम परिणति इसी प्रकार होगी।

प० जवाहरलालको कुसमयमें जेल

भारतके वर्तमान नेताओंमें प० जवाहरलाल कृती हैं। वे खाली बैठना पाप समझते हैं। बिहारके भूकम्पके समय दौरा तो अनेक नेताओंने किया, पर फावड़ा उठाकर खण्डहर साफ करनेका उदाहरण इस वीरने ही सबके सामने रखा। बिहारको धनकी परम आवश्यकता है; पर उससे भी अधिक आवश्यकता उन आत्मविश्वासी कर्मियोंकी है जो स्वयं अपना उद्धार करनेका साहस रखें। विपत्ति सबपर पड़ती है, पर साहसी उसे विजयके साथ पार कर ले जाता है। इस ओर प० जवाहरलाल बिहारका ध्यान खींच रहे थे; पर खेद है कि ऐसे समय बङ्गाल-सरकारने उन्हें जेलमें डाल दिया। इससे बिहारकी जो हानि हुई है वह करोड़ों रुपयोंसे पूरी नहीं हो सकती।

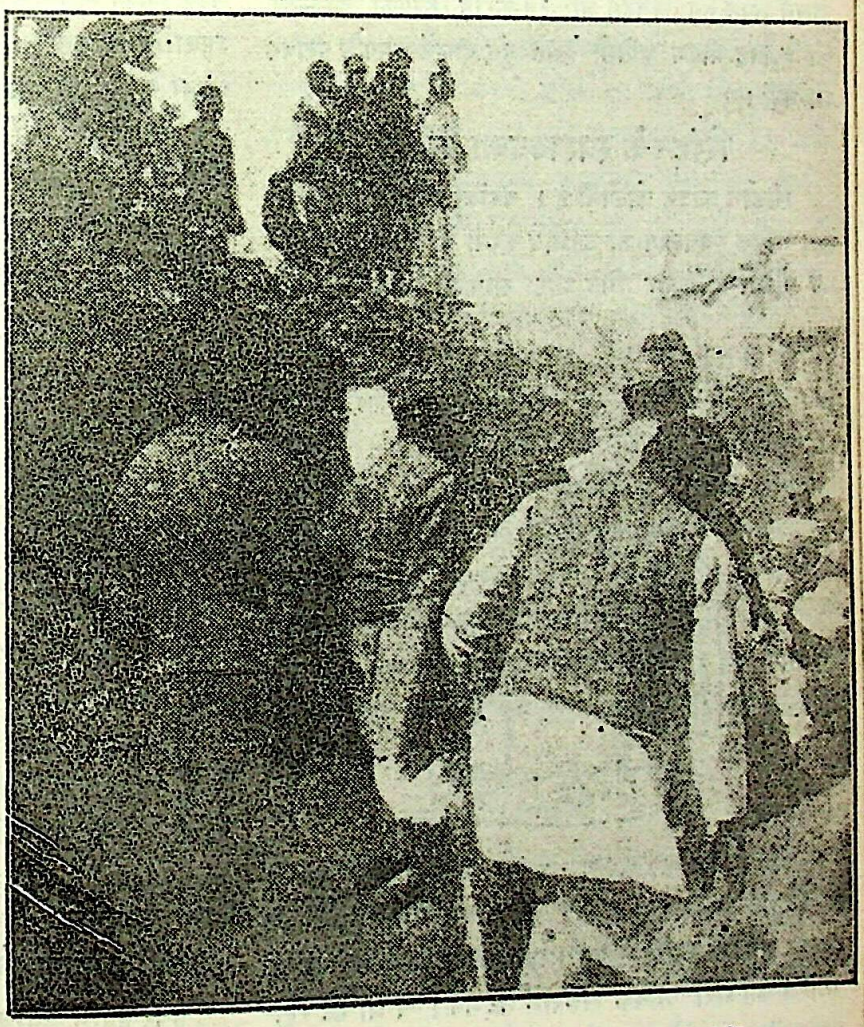

मुङ्गेरमें पण्डित जवाहरलालजी नेहरूने कूड़ेके ढेर साफ कर लोगोंमें नवीन उत्साह उत्पन्न कर दिया था।

विदेशी और बिहार

बिहारकी सहायताके लिए विदेशियोंसे नाममात्रकी ही सहायता मिल रही है। यह देखकर वास्तवमें महान् दुःख होता है कि मोटा लाभ पानेवाले विदेशी व्यापारी हमारे देशके सङ्कटके समय जेब नहीं खोल सकते। भारतके रुपयेसे ये धनी हो रहे हैं, इसका इन्हें कुछ ध्यान होना चाहिए। कोई और देश होता तो यह अवस्था न होती, पर बेचारे भारतके लिये सब सम्भव है।

लोकनायक अणेकी उचित राय

इस विषयपर लोकनायक अणेने अपनी स्पष्ट और लोकहितकर सम्मति देकर हमें सरकारी कर्मचारियोंका कर्तव्य सुझाया है। उन्होंने कहा—"यदि मैं केवल एक सप्ताहके लिए वायसराय बना दिया जाता तो मोटी तनख्वाह पानेवाले सरकारी कर्मचारियोंका वेतन वर्षभरके लिए ७५ सैकड़ा कम कर देता और उसे बिहारकी सहायतामें

लगाता।" इस समय सर सैमुएल होरसे लेकर छोटे-छोटे कर्मचारी भी सहानुभूति दिखा रहे हैं, पर क्या कारण है कि धनियों द्वारा विशेष सहायता नहीं हो रही है। यह उस हालत-में, जब कि संसारके अन्य देशोंकी अपेक्षा भारत सबसे निर्धन देश माना जाता है। बिहारके पुनरुद्धारके लिये भारत सरकारने अपने नये बजेटमें जो ३॥ करोड़ रुपयेकी व्यवस्था की है, वह भीषण क्षतिको देखते हुए दालमें नमकके बराबर भी नहीं।

सिंहलके स्वराज्यका सबक

सीलोन क्राउन कोलोनी है। वहांकी सरकार भारतसे कुछ अधिक स्वतन्त्रताका उपभोग करती थी। वहांके लोगों-को अधिक अधिकार मिले और सरकारी नौकरियोंमें भी उनका खूब प्रवेश होने लगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि अंगरेज कर्मचारी अधिक संख्यामें घट गये। वे भी डटे रहे, पर उन्हें भय होने लगा कि यदि देशी लोग राजकाजमें अधिक दखल देने लगे तो फिर हमारी पूछ न रहेगी। अब सर हेनरी पेजक्राफ्ट आदि 'कठिनतासे मरनेवाले' अनुदार अंगरेज सीलोनके अधिकार फिर वापस ले लेना चाहते हैं। जो कारण सर हेनरीने बताये, उन्हें देखकर इसलिए आश्चर्य होता है कि ये सङ्कीर्ण विचारके अंगरेज प्रगतिकी गङ्गाका बहाव उलटना आसान समझते हैं। सिंहलके पाप ये हैं—सीलोनमें ब्रिटिश कम्पनियोंसे भेदभाव रखा जाता है, उसने ओटावा समझौतेको न माना, ब्रिटिश सरकारी कर्मचारियों-की संख्यामें घटी कर दी गयी, आदि। इसलिए यह कहा गया है कि सीलोनकी सरकार चरित्रभ्रष्ट, नालायक और परजातिद्वेषी बन गयी है। बात यह है कि ये अनुदार अपने स्वार्थके सामने अन्य बातोंको गौण समझते हैं। स्वभावतः सब देशोंके लोग अपने देशका स्वार्थ सबसे पहले देखेंगे, भले ही उससे साम्रा-ज्यवादियोंकी कुछ हानि होती हो। पर सङ्कीर्ण दलके अंगरेजोंका कहना है कि पहले हमारा हित देखो, फिर अपना। इसलिए अब विचार हो रहा है कि सिंहलका स्वराज्य वापस ले लिया जाये। इससे हम लोगोंके स्वराज्यकी शक्ति और उसके स्थायित्वका पता चलता है। सच है—दाताके तीन गुण—दे, न दे, छीन ले।

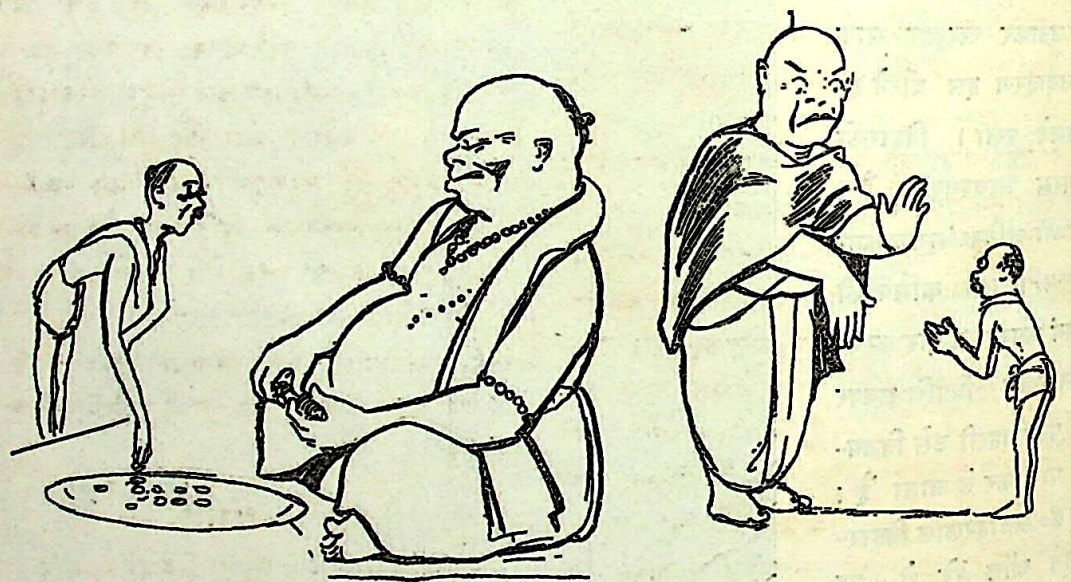

विनाशधर्मी हिन्दू-समाजका एक चित्र।

काबुलके 'लाल काफिर'

इधर पत्रोंमें समाचार छपा था कि काबुलमें अब तक हिन्दुओंपर जजिया कर पड़ता है। यह वास्तवमें आश्चर्यकी बात है। अमीर अमानुल्लासे पहले वहां हिन्दू 'लाल काफिर' कहे जाते थे। उन्हें बाध्य होकर लाल पगड़ी पहननी पड़ती थी कि अन्य मुसलमान समझें कि वे काफिर हैं। पर अमीर अमानुल्लाने राजनीतिक क्षेत्रसे धार्मिक भेद हटा दिया था। क्या पुरानी दूषित प्रथा फिर जारी कर दी गयी है। इस सम्बन्धमें अफगानिस्तानकी सरकारको प्रामाणिक वक्तव्य प्रकाशित कर स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिये।

'विश्वमित्र' की जमानत जब्त

'विश्वमित्र' की पुरानी जमानतमेंसे दो सौ रुपये सरकारने जब्त कर लिये हैं और नयी जमानत छ हजारकी मांगी है। इतनी बड़ी जमानत हिन्दीके किसी और पत्रसे अब तक न मांगी गयी थी। ऐसी स्थितिमें पत्र नहीं जानते कि कब उनकी जमानत जब्त हो जाये। राष्ट्रीय पत्रोंपर जमानतका मुहूर्त भयङ्कर रूपसे हमला करता है।

महात्मा गांधी और बिहारका भूकम्प

म० गांधीने बिहारके भूकम्पका जो धार्मिक अथवा 'अ-वैज्ञानिक' कारण बताया है वह यह है कि भारतने हरिजनोंपर जो अत्याचार किया है उसका यह फल है। मनुष्यके पूर्ण विश्वासका कोई उत्तर नहीं होता। यद्यपि आज तक किसीने आदमीके विश्वासके बलपर पहाड़ोंको अपनी जगहसे हटते नहीं देखा, पर एक दूसरे महात्मा—ईसामसीहने कहा है—'Faith can move mountains' याने पूर्ण विश्वास पर्वतोंको अपने स्थानसे हटा सकता है। सच तो यह है कि धर्म विज्ञानके बाहरकी कौड़ियां लाता है। पर यह जानकर कि बिहारने अपने पापका प्रायश्चित्त किया है, अन्य प्रदेशवाले यह समझेंगे कि वे पुण्यात्मा हैं, क्योंकि उनपर 'खुदाकी मार' न पड़ी। कलकत्ता भारतका सबसे अधिक पापी नगर है। यहां एक लाखमें एक पुण्यात्मा मिल जाये तो बड़ी बात है। सबको यही धुन है कि भ्रष्टसे भ्रष्ट उपायोंसे रुपया पैदा किया जाये। यहांके सेठ अपढ़ और शिक्षित दोनों प्रकारके श्रमजीवियोंको लूटकर—उनको मौतके मुखकी ओर धकेल कुबेर बनना अपना 'सनातन-धर्म' समझते हैं। ये इन श्रमजीवियोंको सोखकर नित नये 'हरिजन' पैदा कर रहे हैं, पर न्यायी परमात्माका प्रताप और महिमा देखिये कि 'कलुषकलाका क्रीड़ास्थल' कलकत्ता भूकम्पसे नष्ट न हुआ और निर्बल तथा सरल-स्वभाव बिहार उजड़ गया। क्या भगवान् इस प्रकार धर्मके झण्डे गाड़ता है? हम तो ऐसा विश्वास नहीं करते।

भूपालमें जोरकी सुन्नत

भूपालके समाचार यदि सच हों तो हृदय-विदारक हैं; और अभी तक कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि वे सच न हों। इस मुसलमानी रियासतमें हिन्दू सरासर मुसलमान बनाये जा रहे हैं और वहांकी हिन्दू प्रजा इस विषयपर जो अपील उच्च अधिकारियोंसे करती है उसकी कुछ सुनाई नहीं होती मालूम पड़ती। वहांकी हिन्दू जनताने कुछ घटनायें पेश की हैं जिनका खण्डन न हो सका। नवम्बर १९३३ में इब्राहीमपुरेमें दर्जी अब्दुल रहमान खय्यातने एक युवती ब्राह्मणीको मुसलमान बनाया और साथ ही उसकी आठ वर्षकी लड़की सुन्दरबाईकी भी सुन्नत कर दी। हिन्दुओंने नाबालिग लड़की मांगी, पर उनकी कौन सुनता? इसी प्रकार दिसम्बर १९३३ में दयाराम नामक ११ वर्षके नाबालिग ब्राह्मण बालकको मुसलमान बना लिया गया। इसकी मां पहले ही मुसलमान बना ली गयी थी। यह अपने बड़े भाई सुन्दरलालके साथ रहता था। उसे बहकाकर ले गये। इसपर सुन्दरलालने बहुत रोना रोया कि यह अन्धेर क्यों हुआ? नालिश की; पर फल कुछ न हुआ। ऐसे कई केस हैं। भूपालसे कुछ आशा करना तो हम व्यर्थ समझते हैं। पर क्या वे कट्टर और मूर्ख हिन्दू, जो सुधारको जहर समझते हैं, अपने इस नाशसे कुछ सबक सीखेंगे? धिक्कार है उन आत्मघाती हिन्दुओंपर, जो अब भी जात-पांत और छुआछूत-पन्थको गलेका हार बनाये हुए हैं। इन विनाशधर्मियोंने हिन्दू समाजमें जो प्रलय मचा रखा है और अपनी जिस निर्बुद्धिताका परिचय संसारको दिया है वह पशुओंमें भी नहीं पायी जाती। ऐसी दशामें परधर्मी हमें खा जायें तो क्या बुरा है।

योगी

पटनासे साप्ताहिक 'योगी' निकलने लगा है। इसे देखकर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई; क्योंकि यह हिन्दी साप्ताहिक बिहार प्रान्तके एक बड़े अभावको पूर्ण कर सकता है। इसके अग्रलेखोंमें ओज है, भाषामें बल है और लेखोंके चुनावमें बहुत ध्यान दिया जाता है। इसके सम्पादक श्री 'नारायण' जीका नाम हमने पहले-पहल इसी पत्रमें देखा है, पर यह साफ मालूम पड़ता है कि वे सहृदय और उत्साही लेखक हैं। हमें विश्वास है कि पत्र उन्नति करेगा।

भारती

— हिन्दी-साहित्य-भवन लाहौरसे—श्री० जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' और श्री० हरिकृष्ण 'प्रेमी' के सम्पादकत्वमें

'भारती' निकलने लगी है। यह मासिक पत्रिका सब प्रकारसे अपने नामको सार्थक करती है। प्रथम अङ्कमें हिन्दीके सर्व-श्रेष्ठ लेखकोंका तांता बंध गया है। दोनों सम्पादक हिन्दीके क्षेत्रमें नाम पैदा कर चुके हैं और 'मिलिन्द'जीकी कविताका चमत्कार हिन्दीके लिए सौभाग्यका विषय है। यह पत्रिका पढ़ने योग्य सामग्रीसे ओत-प्रोत है। हम इसकी सफलता हृदयसे चाहते हैं।

नेपालके भूकम्पका अजीब समाचार

रक्सौलसे एसोसिएटेड प्रेसने समाचार दिया है—"नेपालके महाराज विध्वस्त स्थानोंकी सहायता यथाशक्ति कर रहे हैं।...तम्बुओंमें जो नागरिक रहते हैं उनका सामान चोरी करनेके अपराधमें ८१ आदमी गोलीसे उड़ा दिये गये।" चोरीका यह दण्ड वास्तवमें वर्तमान सभ्य हमें विचित्र-सा लगता है। आजकल यूरोपके खूनियोंको भी प्राण-दण्ड नहीं देते।

—*—

भारत वासियोंके लिये खुशखबरी !!!

भारतमें व्यवसायके लिये भारतकी ही बनी वस्तुयें व्यवहार कीजिये।

हर्षका विषय है कि जिन कल-पुर्जोंके लिये हमें विदेशियोंकी ओर ताकना पड़ता था अब वह बात नहीं है।

हुकुमचन्द इलेक्ट्रिक स्टील कम्पनी अपने कारखाने में प्रायः सभी कल पुर्ज जसेः--कास्ट स्टील, वोयलर पाइप, बेण्ड, टीज, सुगर मिल तथा आयल मिल की मशीनरीके कल पुर्जे किफायतसे तैयार करती हैं भारतमें यही एक कारखाना है जहां इस्पात बिजलीसे गलाकर ढलाई होती है। भारतकी प्रायः सभी बड़ी २ रेलवे कम्पनियां हमारी ग्राहक हैं। हमारा माल गवर्नमेण्ट वोयलर रेगुलेशनके अनुसार तैयार किया हुआ है। मैनेजिंग एजेण्टस—

सर सरूपचन्द हुकुमचन्द एण्ड कम्पनी

कारखाना— ८ स्वीन्हो स्ट्रीट, बालीगंज।

हेड आफिस— ३० क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

'विश्वमित्र प्रेस' १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और

धात्री विज्ञानांक

सचित्र

इस अंक के प्रधान सम्पादक—
प्रिन्सिपल पं० विश्वनाथ शास्त्री।

इस अंक का मूल्य १)

वार्षिक मूल्य ३) सम्पादक—द्विवेदि पं० रूपेन्द्रनाथ शास्त्री, राजवैद्य-पं० रवीन्द्रशास्त्री आयुर्वेदाचार्य।

सन्देश

गत अनेक शताब्दियों तक चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा में भारतवर्ष विद्या गुरु रहा है, पर हमारी अकर्मण्यता से अब विदेशियों का मुख ताकना पड़ता है, धात्रु शिक्षा का सार अब भी हमारे शास्त्रों में संक्षेप से भरा पड़ा है, पर अभ्यास के अभाव से उसका ह्रास हो गया है, यदि हम जीवित रहना, चाहते हैं तो शेषांश जीर्णोद्धार करें। और नवीन को भारतीय रूप देकर, शुद्धि कर ग्रहण करलें, तो सम्भव है, हम पुनः चिकित्सा संघर्षण में प्रसूति शास्त्र का पाण्डित्य प्राप्त कर स्थिर रह सकें। अन्यथा हमारी मातायें विदेशी व्यवस्था से प्रसव कराकर संस्कार हीन संतान उत्पन्न कर भारतीय संस्कृति को रसातल में पहुंचावेंगी। भारतीय प्रसव पद्धति ही भारत के लिये उपयुक्त है। आत्रेय मुनि का निम्न वाक्य स्मरण रखने योग्य है।

"यस्य देशस्य यो जन्तुः तज्जं तस्यौषधं हितम्।"

कविराज प्रतापसिंहजी प्रेसीडेण्ट अ० भा० वैद्य सम्मेलन सिन्ध, अध्यक्ष आयुर्वेदिक फार्मेसी हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस

[illegible]

[illegible]

स्वस्थ बालक ।

तज कर निज पग के कण्टक को भारत के कण्टक को टाल ।
भावी भारत, भाग्य तुम्हीं पर गौरव करता है हे लाल ॥ —(शान्त)

भाग ६ | ३० १७.१८

धातृ विज्ञानाङ्क

क्रिया कुशलता की प्रतिमा,

हे धातृ तुही गुण-गण गरिमा ॥

[ ]

जन्म-दान यद्यपि वह करती,

लेकिन सच्ची तुम माता।

अपने कौशल से जन जन की,

बनी हुई जीवन दाता ॥

[ ]

कृपा अलौकिक से जन पाते,

जमती तल में जीवन दान।

तुम्हीं बतादो, किस प्रकार से,

करूं तुम्हारा मैं सम्मान!

[ ]

धन देकर भी कभी किसी का,

हो सकता है ऋण-प्रदान?

नहीं, किन्तु उसके बदले में,

गाता हूं तेरा गुण-गान ॥

कमलेश्वर पांडेय "चन्द्रमणि"

आह्वान

[१]

रण भेरी बज उठी वैद्यवर, अब भी तो चेतो ।
सोये हुए योग निद्रा में मेटे वर्ष अनेक ॥
लुटा दिये इस काल मनोहर रत्न एक से एक ।
इसी कालमें पैथी लहरों की खूब मच गई धूम ॥
एलो, होम्यो, क्रोमोटिजो की ज्वाला निर्धूम ।
जल उठो तारों के अनुरूप तुम्हारे ही कारण से तो ॥

[२]

वैद्य चिकित्सा गार भरा अद्भुत मनोहर था ।
एक एक अंगों पर नित नव ध्यान तुम्हारा था ॥
नित विकसित होते थे अनुपम नवल चिकित्सा गार ।
ग्रंथरत्न विकसित होते थे रूपों में भर मार ॥
कि जिसके होते थे अनुवाद अनेकों भाषा में भी तो
वैद्यवर.....चेतो ॥ वै.

[३]

धन्वन्तरि ने लुटा दिया था इस पर जीवन काल ।
चरक वाग्भट के तत्वों से डरता था कलिकाल ॥
दिव्य वैद्य युग्मों ने इससे पाया था सत्कार ।
ज्ञान विन्दुओं से पलता अब भी तेरा परिवार ॥
कि जिसको भूले हो अज्ञानता में पड़ करके तो ।
वैद्य.....चेतो ॥

[४]

रासायनिक क्रियाओं में थातेरा स्थान अनूप ।
जिसकी प्रतिमामें चरणोंपर पड़ते अगणित भूप ॥
जिसको प्रखर क्रियाओंसे हो जाता था सबयुक्त,
शस्त्र क्रिया के कष्टों से हो गया विश्व निर्मुक्त ॥
कि अनुपम रसवैद्यों के प्राण नये आविष्कारों सेतो,

[५]

रोगवारिध शोषन को तो भस्म की पुडिया थी काफी ।
कि जिसके सेवनसे तत्काल, रोग ले लेता था गाफ़ी ॥
हज़ारों कीसंख्या अब भी, नित्य भरती इसकी साखी ।
जिन्हें भ्रम हो इतने पर भी देख लेवें अपने आंखी ॥
कि जिससे तेरा नाम, महीपर है, अबही तक तो ।

[६]

उठो ! उठो ! अब से भी छोडो अपनी निद्रा योग ।
बचे हुए हैं अंग चिकित्सा और निदान नियोग ॥
शल्य और शालाक्य, अगद को चोरों ने लूटे ।
धातु ज्ञान कौमार भृत्य थे बाकी वे छूटे ॥
गयेबीते जिनके की योग बचाए हैं हम सबको तो ।
वैद्य.....चेतो ।

[७]

अब तो बहुत हो चुकी जागो दिखलावो जौह ।
प्रतिभा से अपनी चमका दो, छिपे हुये गौहर
जिसके प्रखर प्रभा से सारा नाच उठे ब्रह्माण्ड ।
तेरे गुण गौरव गरिमा की प्रतिकृति बने प्रकाण्ड ।
कि वह नंदनकाननही हो व्यथित कहता इससे हीतो
वैद्य.....चेतो ।
(व्यथित.)

* श्री धन्वन्तरये नमः *

राकेश

लज्जा रखने को वैद्यों की, आयुर्ज्ञान बढ़ाने को।
प्रकटा है राकेश जगत् में, वैद्यक ज्योति जगाने को॥

सम्पादकीय

जरायुजः प्रथमा उस्रियो वृषा,
वात व्रजा स्तनयन्नेति वृष्ण्यः।
स नो मृड़ाति तन्वे ऋजुगो;
रुजन थ एक मोजस्त्रेधा विचक्रमे॥

(अथर्ववेद-१-१२-१)

जन्म नव जात शिशुओं तथा प्रसूताओंकी मृत्यु संख्या को देख कर हृदय कांप उठता है, जिनके ऊपर देश का भविष्य निर्भर है, जिनके ऊपर उसे गर्व है, वेही भारत के भाग्य विधायक शिशु अकाल में ही पुष्पित व पल्लवित होनेके पहिले ही असार संसार को छोड़ हमसे विमुख हो स्वर्ग लोक को प्रस्थान करते हैं। क्या यह सोचने का विषय नहीं है, ?

बहुत से मनुष्य इस का उत्तर देंगे—अजी चलो, पहले हमारे सजातीय, सवर्णदेशी नृपति थे जो हमारे ऊपर गर्व करते थे और स्वास्थ्य का भार हमारे ऊपर दे रखते थे, उसके लिये सर्व कुछ अर्पण करके इन बातों के ऊपर नियंत्रण रखते थे।

किन्तु अब तो हम लोगों के महाराजाधिराज विदेशी तथा असवर्णीय हैं। उनको इस विषय से क्या मतलब है।

हमारी प्रचीन चिकित्सा पद्धति को पुनः जीवित करने के बदले, उसको कुचलने के निमित्त नित्य नये विधान पार्लियामेंट में सोचे जा रहे हैं। तथा पाश्चात्य चिकित्सक इसके विरोध के मैदान में डटेहुये हैं ही, फिर हमें क्या जरूरत है कि हम निर्बल व असहाय हो कर के इन व्यर्थ की बातों को सोच कर अपने मस्तिष्क के अन्दर एक नवया त्याचक्र रच कर झमेले में पड़ें।

किन्तु उन्हें सोचना चाहिये यदि वे संसार में अपनी स्थिति को बनाये रखने के साथ साथ अपनी प्राचीन चिकित्सा पद्धति को जीवित रखना चाहते हैं, तो उन्हें इस तरफ अवश्य ही ध्यान देना पड़ेगा 'महाराजाधिराज', तो यथाशक्ति इन शिशुओं के अकाल मृत्यु के प्रति यत्न शील हैं ही, जिनके निमित्त प्रत्येक शहरों में दाइयों नर्सों तथा लेडी डाक्टरों का प्रबन्ध किया जा रहा है, व कुछ किया भी गया है। किन्तु एक तो इनकी संख्या अंगुलियों पर गिनने लायक है तथा इनकी क्रियायें हमारे अनुकूल भी नहीं पड़ेगी—महर्षि आत्रेय ने कहा है,—

"यस्यदेशस्य यो जन्तुस्तज्ज तस्यौषधं हितम्।"

अर्थात्—जिस देश का रुग्ण है और जिस जलवायु में पल रहा है, उसके रोग प्रशमार्थ उस देश की व तत्सदृश जलवायु में उत्पन्न होने वाली

औषधियां ही हितकर होगी। ये लेडी डाक्टर तथा नर्सें शीत देशीय औषधियों का प्रयोग उष्ण देशीय भारत वासियों पर करती है, जो हमारे देश व जलवायु के प्रति कूल है, इनके प्रयो गों से जितना फायदा नहीं होता नुक़सान अधिक होता है, साथ ही इन मेटेरनिरीहाउसों में प्रसव क्रिया भी तद्देशीय ही प्रयुक्त होती है। अतः वह हमारे अनुकूल न होकर प्रतिकूल पड़ती है,

अतएव वैद्य बन्धुगण ! यदि आप अपना हाथ इस कार्य के लिये न उठावोगे और यों ही चुपचाप पड़े रहोगे तो तुम्हारी तो अधोगति हो ही चुकी है जिसके बलपर तुम अब भी जीवित हो वह विद्या भी हमेशा के लिये अधोगति को पहुंच जायगी। तुम्हारे आर्य ग्रन्थों में इनके रक्षण विधान अब भी बहुत भरे पड़े हैं। किन्तु अस्त व्यस्त है। धातु विद्या व कौमार भृत्य करके यह जहां तुम्हारे चिकित्सा के आठ सुदृढ़ स्तम्भों में गिने जाते हैं। अब केवल नाम मात्र गिनाने को रह गये हैं, अब भी यदि तुम कोशिश करोगे तो इसे संग्रह कर सकोगे।

धातु अङ्क की आवश्यकता

राकेश के सुयोग्य स्थायी सम्पादक पं० रूपेन्द्रनाथजी शास्त्री की चित्तवृत्ति इन अकाल कवलित शिशुओं की संख्या की तरफ बहुत दिनों से आकृष्ट हुई थी। कई बार इन्होंने मुझे भी इसके लिये प्रेरित किया, किन्तु समयाभाव के कारण मैं अपना समय इस तरह देने में असमर्थ रहा। इसबार इनके प्रेम परिपूर्ण अनुरोध को अस्वीकृत न कर सका। क्योंकि एक चिकित्सक होने के नाते बर्षोंकि अनुभव में इन नवजात शिशुओं की मृत्यु संख्या के कारण मचे हुए घोर हा हाकार को मैं और। न सह सका और इसी बीच इस अनुरोध का भी प्रेम परिपूर्ण भार आ गया अतः निश्चित किया कि इस विषय को वैद्य समुदाय के सामने उपस्थित किया जावे और जितना संग्रह हो सके समुचित रूप से करके इसका संदेश प्रत्येक भारतवासी वैद्य तथा साधारण जनता के सामने रक्खा जावे जिससे इस विषय की क्षति की पूर्ति हो सके।

जब हम अपनी दृष्टि इसकी तरफ निक्षेप करते हैं तो स्पष्ट उनके कारणों को भी प्राप्त कर लेते हैं। जहां कुछ शताब्दियों के पूर्व हमारे शिशु जन्म के अनन्तर जातकर्म संस्कार होता था, हवन होते थे, तथा वैदिक विधि के साथ साथ वैद्यक पद्धति को काम में लाकर के प्रसव क्षेत्र व प्रसव गृह को हमेशा शुद्ध पवित्र व निष्कीट बनाकर प्रसूता व शिशु के स्वास्थ्य के प्रति यत्नशील रक्खा जाता था वहां आज कूड़े करकटों से भरे गंदे, घर भर में का रही घर काम में लाया जाता है। हवन के बदले में आग में एक एक कंडे के टुकड़े को लगाकर घरके छिद्रादि भी मूँद कर धुआं भरकर भकसी बना दिया जाता है जो जच्चा व बच्चा दोनों के लिये हानिकर होता है। जहां आग को हमेशा इस लिये तैयार रक्खा जाता था कि यदि कोई प्रसूता विषयक दुर्घटना हो तो शीघ्र औषधियों को पकाकर उसका प्रतिकार किया जा सके। वहां अब उसी के प्रतिपादन स्वरूप लकीर पीटकर धुआं के मारे घरको भी दिया जाता है जो और नहीं तो जच्चा बच्चा का

इस विशेषांक के सफल सम्पादक

श्री० पं० विश्वनाथ जी शास्त्री.

PRINCIPAL & SUPERINTENDANT,

of L. H. S. A. College

Pillibhit.

आंखों को तो फोड़ने और शिर दर्द इत्यादि पैदा करने का कारण तो बनता ही है।

प्रसव कर्मजो सबसे उत्तम और स्त्री जातिके लिये द्वितीय जन्मवत हैं, इसका भार नाइन धानुकन भंगिनऔर चमारिन जैसा नीच जातियोंके हाथ सौंप दिया गया है। प्राचीन काल में इस कर्म के लिये उच्चवर्ण की स्त्रियां व पुरुष सिद्ध हस्त होते थे। उसकी जगह उपर्युक्त अधम जाति की स्त्रियों के ऊपर अपनी अर्धांगिनी का भार सौंप कर आज हम सुख की नींद सोते हैं। जो सौरि गृह में प्रवेशार्थ वर्षों के मैले कुचैले चिथड़ों को सजाकर पेंट वस्त्र की तरह रखतीं व इस्तैमाल में लाती हैं। साथ ही इस विद्या से सर्वथा अनभिज्ञ रहती हैं। प्रसव समय की आकस्मिक घटनाओं को सम्हालने को कौन कहे, वे नाल को काटना तक नहीं जानतीं, अतएव शिशु का नाभिनाल काटते वक्त खिंचजाता है, उसके उदाहरण स्वरूप पचास फीसदी नवजात शिशु, नाभिपाक इत्यादि से दुख उठाते हैं। यह कमजोरी हमारी ही तो है। बड़े घरानो की बहिनें अपने समय को व्यर्थ बैठी खो देती है। किन्तु ऐसे कार्यों से घृणा करती है। यही कारण है कि इतना पवित्र व महत्वपूर्ण कार्य इन नीच व मूर्ख जातियोंके हाथ पड़ गया है।

किसी देश का भविष्य—

उसके छोटे बच्चों के ऊपर निर्भर होता है। भारतवर्ष के बच्चे ही जब प्रारंभ से इस तरह अविद्या के वातावरण में पलने वाली स्त्रियों द्वारा महत्व पूर्ण कार्य के समय प्रसूत होते हैं। वह क्या स्वस्थ और बलिष्ट होंगे, तथा कैसे देश का उद्धार कर सकेंगे? यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इन अज्ञानताओं के कारण सैंकड़ो बच्चे जोकि स्वासावरोध युक्त सफेद या नीले वर्ण वाले पैदा हुये हैं, मृत समझ कर धरती देवी के गोद में हमेशा के लिये सुला दिये गये हैं। और जब तक यह अज्ञानांधकार फैला रहेगा, यही क्रिया जारी भी रहेगी।

अतः देश के प्रत्येक बहन व भाई का कर्तव्य है कि वे इस कार्य को अपने हाथ में लेकर इस तरह की होने वाली आपदाओं से अपने बच्चों की रक्षा करें।

और तो और

हम भी कैसे विवेक भ्रष्ट हो गये हैं कि यह जानते हुये भी नाल कर्त्तन के लिये तेज चाकू या कैंची को तैयार रखना चाहिये, घर के प्राचीनतम हंसियें को जो इसके लिये ही रखा जाता है जो मुर्चा (जंग) के लगने से देखने तथा छूने में भी घृणास्पद है अपने नव जात बच्चे के नालच्छेदनार्थ तैयार रखते है। नाल काटने वाली भी क्या करें। जो वस्तु आप देंगे उसे ही तो प्रयोग में लायेंगी, भले ही नाल आधे मिनट के बदले ५ मिनट में कटे व बच्चे की नाभिपक जाय,

अस्तु—हमें भी सतर्क होकर इस तरफ पैर बढ़ाना चाहिये और इस विद्या की उन्नति में हाथ बटाना चाहिये। इसके लिये सर्व प्रथम इसके बचे बचाये अंधूरे अंग को पूरा करना पड़ेगा। तथा नये साहित्य इस पर गढ़ने पड़ेंगे। अबके वर्तमान आयुर्वेदिक सहिताओं में इसकेबहुत थोड़े से भाग मिलते है। धात्री के संबंध में तो जितनी प्राचीन

संहिताएं हैं, वे उनका ही बोध कराती हैं जिनको कि कुमार के माता के दुग्धाभाव में चाहें वह धनी घरों की स्त्रियों में नज़ाकत या सौंदर्य रक्षा के लिये हो या रुग्णावस्था के कारण हो, दुग्ध-पान कराने के लिये रखा जाता था, वर्तमान पाश्चात्य चिकित्सक जिस अर्थमें धात्रीका Midwife प्रयोग करते है (जो प्रसव को जानने के साथ साथ हर प्रकार के स्त्री रोगी व आकस्मिक घटनाओं से रक्षा कर सकती हो तथा स्त्री जननेन्द्रियों का पूर्ण ज्ञान रखती हो। वह तो कहीं भी नहीं दिखलाई पड़ता। बल्कि चरक में एक स्थानपर प्रसव कर्त्री) के परिचय में यों लिखा है—

"स्त्रियश्च बहुन्योबहुशः प्रजातां हार्द्य युक्ताः सतत मनुरक्ताः प्रदक्षिणा चाराः प्रतिपत्तिकुशलाः प्रकृति वत्सलास्त्यक्त विषादाः क्लेशसहिनयोऽभिमताः। इसमेंके कुछ शब्द जैसे प्रदक्षिणा चाराः" प्रतिपत्तिके कुशला प्रकृति वत्सलाः" इत्यादि शब्द वर्तमान मिडवाइफों से कहीं उत्तम श्रेणी की शिक्षा इत्यादि संयुक्तजनयित्री का पता बतलाते है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि यह विद्या इससे भी उत्तम रूप से उस समय में प्रचलित थी, किन्तु अफसोस किइसके अतिरिक्त पूर्ण विस्तार के साथ वर्णन युक्त ग्रंथों का अभाव ही हमारी कमी को बतला रहा है।

इसके अतिरिक्त इस विषय में कुछ नही बतलाया है। दुग्धाभाव के पूर्त्यर्थ जो धात्री कल्पना करने की सम्मति आचार्यों ने दी है उसके विषय में पर्याप्त वर्णन किया है। जैसे—

पीताय यदि बालस्य, विद्ध्यादुपमातरम्।
सुविचार्य गुणान्दोषान,कुर्य्याद्धात्रीतदेङ्गशीम
सवर्णां मध्यवयसां, सच्छीलां मुदितांसदा।
शुद्ध दुग्धां बहुक्षीरां, सवत्सामतिवत्सलाम॥
स्वाधीनामल्प संतुष्टां, कुलीनांसज्जनात्मजाम्
केतवेन परित्यक्तां, निज पुत्र दृशं शिशौ
इत्यादि—

अयोग्य तथा इसके विपरीत के स्तन पान न कराना चाहिये इसके विषय में लिखा है—

शोकाकुला क्षुधानीच, श्रान्ताव्याधिमतीसदा।
गर्भिणी जरिणी पथ्य वर्जिताऽजीर्ण भोजिनी-
लम्बस्तनी इत्यादि—

इन पाठों से साफ पता चलता है कि धात्री के लिये केवल, उपमाता (माता के बदले में दूध पिलाने वाली) का ही ग्रहण है—

जनयित्री का नहीं।

अस्तु— कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसव विज्ञान संबंधी पूर्ण विषयों का संग्रह इस समय प्राचीन आर्ष संहिताओं में सूत्र रूप होने से कम दिखलाई पड़ता है।

अतएव इस कमी के पूर्त्यर्थ पूर्ण उद्योग करने पर भी संतोष जनक लेख संग्रह नही हो पाये है। जहाँ तक हो सका है कोशिश करके यह प्रस्तुत विशेषांक आप पाठकों की सेवा में समर्पित है।

धात्री विद्या का क्रम विकास

[ले० प्रो०—पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी, शान्ति निकेतन बङ्गाल]

धात्री विद्या मनुष्यता की देन है। इसका पुराना इतिहास लुप्त हो गया है, यूरोपके पंडितोंने इसके क्रम विकास को खोजने का बहुत प्रयत्न किया है, फल स्वरूप इस विद्या के विषय में अनेक ज्ञातव्य तथ्य जाने जा सकते हैं। भारतीय पंडितों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है, अगर आयुर्वेदिक, ज्योतिष और धर्मशास्त्र के ग्रन्थों का अध्यन, किया जाय, तो इस विद्या के पुराने इतिहास पर एक अच्छा प्रकाश डाला जा सकता है, हिलब्राण्ट का विश्वास है, कि गृह्य सूत्रों में बालक के जन्म के समय पर की जाने वाली जिन रीतियों की चर्चा है, उनमें बहुतेरी आर्यों के इस देश में आने से भी पहिले की हैं। इन रीतियों में कुछ का संबंध तो परम्परा और अन्ध विश्वास से है, और कुछ का चिकित्सा शास्त्र से, ज्योतिष के ग्रन्थों में बालक के जन्म के समय की परिस्थिति का फलादेश, उनके आकार विशेष, भंगी विशेष और रोदन आदि के फलादेश आदि से तात्कालिक धात्री विज्ञान का अच्छा परिचय पाया जाता है, आयुर्वेद की पोथियों का तो धात्रीविज्ञान एक अंग ही है।

यूरुपमें सर्व प्रथम जीन आस्ट्रे (Jeanastrue ने धात्री विद्या की प्रामाणिक खोज की, उन्हों ने मिश्र और बैबिलोनिया के पुरातन रीति रस्मों का अध्ययन करके बताया कि पुराने युग में जब कि मानव जाति सभ्यता की ओर अग्रसर हो रही थी, पति को धात्री का कार्य करना पड़ता था, उसे नाल (umbilicalcord) और अपरा (पुरैन) placents के संबंध में जानकारी रखनी पड़ती थी, मिश्र में बाद को एक जाति ही ऐसी हो गई थी, जिस का काम सन्तान प्रसव कराना था कहते हैं। कि धात्री विद्या की सब से पुरानी चर्चा eberspapyous में है यह ईसासे १५०० वर्ष पहिले लिखीं गई थीं हज़रतमूसाने जिन सारी विद्याओं का ज्ञान सम्पादन किया था उनमें एक यह भी थी पर वस्तुतः इस का स्पष्ट उल्लेख hippocritic हिपोक्रिटिक लेखों में पाया जाता है, यह ईसा से चार सौ वर्ष पहिले लिखे गये थे पर ऐतिहासिकों का इस विषय पर ऐक-मत्य नहीं है, कि हिपोक्रिट ने ही इन सारे लेखों को लिखा था। कहते हैं, कि इस का अधिकांश उनके शिष्य प्रशिष्यों का लिखा है। Eberspapyous में धात्री विज्ञान के संबंध में जो कुछ लिखा है, उस का अधिक सम्बन्ध अन्ध विश्वास से है। उदाहरणार्थ धात्री को यह जनाना जरूरी समझा जाता था कि बालक के प्रथम क्रन्दन का प्रभाव उस की आयु पर क्या होगा। यदि बालक के मुंह से पहला शब्द नी निकलता था तो समझा जाता था कि बालक दीर्घायु होगा, और अगर 'बा' निकलता था, तो उसकी मृत्यु सूतिका गृह में होना ही निश्चित मान लिया जाता था

मिश्र, अरब, हिब्रू और ग्रीकों में प्रसव कराने का काम सदा स्त्रियां ही करती थीं भारत वर्ष में भी खूब संभव पुरुष इस कार्य को नहीं करते थे। आयुर्वेदिक पोथियों में प्रसव कराने के प्रसंग में सदैव स्त्री की ही चर्चा आती है। * ज्योतिष के ग्रन्थों में सूतिका गृह में स्त्री के होने के ही अधिक फलादेश पाये जाते हैं। जहां तक इन पंक्तियों के लेखक को स्मरण है, किसी भी ज्योतिष शास्त्रीय फलादेश में, सूतिका गृह में, पुरुष वैद्य के होने का उल्लेख नहीं है। इसीलिये यह अनुमान असंगत नहीं है कि स्त्रियां ही इस विज्ञान की आविष्कारक हैं, पुरुष नहीं, हिलब्राण्ट के इस अनुमान में सचमुच सत्य का अस्तित्व है कि आजकल हिन्दू स्त्रियाँ सूतिका गृह में देव देवियों के साथ जिन सतियों का नाम लेती हैं, उन में से अनेक इस विद्या की पथ प्रदर्शिका रही होंगी ग्रीस में प्रतिष्ठित गृहस्थ स्त्रियां प्रसव का कार्य कराती थीं। ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व सुकरात की माता स्वयं यह सेवा कार्य करती थीं। ग्रीस के वैद्यों में कुछ धात्रियों के नाम भी पाये जाते हैं।

आगस्टस के राज्य में ही सब से पहिले इस बात का पता लगता है। कि किसी राज महिषी को प्रसव कराने के लिये पुरुष वैद्य बुलाया गया था। इसी समय आपरेशन करके बच्चा पैदा कराने का भी सर्व प्रथम उल्लेख है। पर अब तक धात्री विद्या को अलग नहीं समझा जाता था, इसी को दूसरी शताब्दी में सोरेनस soranus ने सर्व प्रथम "धात्री विद्या विज्ञान" पर पहली पुस्तक लिखी, यह बात ध्यान देने की है कि इस पुस्तक में गर्भाशय uterus और योनि को एक ही चीज मान लिया गया है, मैं ठीक नहीं कह सकता, कि किस आयुर्वेदिक ग्रन्थमें इन दो चीजों में भेद होने का सर्व प्रथम उल्लेख है।† इसी समय moschine (मोशिन) नामक वैद्य ने भी एक आम कोटि की पुस्तक लिखी इस पुस्तक की महिमा सोलहवीं शताब्दी तक ज्यों की त्यों थी। छापे के कल का जब आविष्कार हुआ तो यही पुस्तक सबसे पहिले छपने वाली वैद्यक पुस्तक थी।

ईसा की नवीं शताब्दी में यूरोप का चिकित्सा शास्त्र अरबों से बड़ी दूर तक प्रभावित हुआ। इस युग में रोमन चिकित्सा ने जहां यूरोप की तात्कालिक चिकित्सा में बड़ा वेग ला दिया वहां यह बात कुछ आश्चर्य की है कि धात्री विद्या की चर्चा अत्यन्त शिथिल हो गई मगर १२ वीं शताब्दी में अनुवादित अरबी पुस्तकों में यह चर्चा बड़े प्रबल वेग से दिखाई पड़ी।

१२ वीं शताब्दी में अबुलकासिम की पुस्तक में सर्व प्रथम सन्तान प्रसव कराने वाले छुरिका यन्त्र की चर्चा है। इसी समय एक अप्राकृतिक प्रसव या अस्वाभाविक प्रसव (Extra utarine pregnency) का भी उदाहरण पाया जाता है, यह एक आश्चर्य की बात है कि अरबी चिकित्सा शास्त्र इस युग में इस नवीन साधन से कैसे युक्त हो गया।

बात असल में यह है कि आठवीं शताब्दी में अरब के हारु अल रसीद (७८६–८०९) ने दो भारतीय वैद्यों को अपने दरबार में बुलाया था। वे वैद्य इतने सफल और यशस्वी निकले कि अरबी शासकों के राज्य में भारतीय वैद्यों का तांता बंध गया। बगदाद के प्रधान चिकित्सालय का भार एक (इब्र धन) (जो सम्भवतः

* शस्त्र शस्त्रार्थ विदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत्।
(योग रत्नाकरः मूढ़गर्भ चिकित्सा)

† हरएक आयुर्वेदिक संहितायों ने गर्भ और योनि को पृथक माना है, इनमें सुश्रुत संहिता प्राचीन है। सम्पादक—

धन्व या धन्वन्तरि का अरबी रूपान्तर है) नामक भारतीय वैद्यपर था, शायद अत्रि और कनक शायद कंकायन के अरबी रूप हैं। इस प्रकार नवीं शताब्दी को अरबी चिकित्सा भारतीय चिकित्सा से प्रभावित हुई। चरक और सुश्रुत की संहिताओं का अनुवाद भी हुआ। सम्भवतः यही कारण था कि अरबी चिकित्सा उस युग में सारे यूरोप को नया प्रकाश देने में समर्थ हुई।

मगर ऊपर की बात इसलिये नहीं लिखी जा रही है कि इन पंक्तियों का लेखक हिन्दू है और वह येन केन प्रकारेण हिन्दू शास्त्रों की महिमा बखानने जा रहा है। हमारे ऊपरी कथन के पोषक ऐतिहासिक कारण हैं। आगे हम इस विषय को स्पष्ट करेंगे।

भारतीय चिकित्सा शास्त्र में मृत संतान को मातृ गर्भ से निकालने के लिये गर्भ शंकु नामक शस्त्र का उल्लेख है। यह यंत्र आगे को झुका हुआ होता था। और शंकुओं की भांति यह भी दस या सोलह अंगुल का हुआ करता था, चौड़ाई इसकी आठ अंगुल की होती थी। इस यंत्र का उल्लेख सुश्रुत ने भी किया है। * हिपोक्रिटिक लेखों में जो ईसा से पहले ही लिखे जा चुके थे, इस प्रकार के यन्त्र की चर्चा है। सोरेनस ने अपने ग्रन्थ में उक्त प्रकार के यन्त्र का वर्णन दिया है। अरबी लेखकों ने भी ऐसे यंत्र की चर्चा की है।

(मुखोपाध्याय का सर्जिकल इन्स्ट्रूमेंट आफ दि हिन्दूज) पर सत्रहवीं शताब्दी तक यूरोप में जीवित सन्तान को निकालने का यंत्र अपरिचित ही था (सर्जिकल इन्स्ट्रूमेंट आफ दि हिन्दूज पृष्ठ १६६-७) उन दिनों प्रसव कराने के जो यंत्र व्यवहार में लाये जाते थे उनका उद्देश्य सदा मूढ़ गर्भ के उद्धार का ही होता था। कुछ भाष्यकारों ने ग्रीक ग्रन्थों में से ऐसे यन्त्रों के सिद्ध करने की कष्ट कल्पना की है, जो जीवित सन्तान को कुशल पूर्वक निकालने के काम आते थे। पर स्मेली (Smelli) ने धात्री विद्या पर लिखी गई अपनी विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक (Treaties on midwifery) में इस बात को असंगत माना है। हिन्दुओं की पुरानी पोथियों में भी इस प्रकार के यंत्रों की चर्चा नहीं है। पर अपेक्षाकृत नवीन ग्रन्थों में इस प्रकार के यंत्रों का आभास पाया जाता है। अरब के पंडितों को यह बात निश्चय ही हिन्दू वैद्यों से ज्ञात हुई होगी। यूरोप में इस यन्त्र का आविष्कार किस प्रकार हुआ, ? यह बात आगे बताई जायगी।

सोलहवीं शताब्दी वैज्ञानिक शान्ति की शताब्दी थी, इस शताब्दी में पहली बार वैज्ञानिकों ने पुरानी पोथियों के अंधानुकरण से अपने को मुक्त किया, इस शताब्दीमें सबसे बड़ा प्रमाण मनुष्य की

---

* नतोग्रे शंकुना तुल्यो गर्भ शंकुरिति स्मृतः।
अष्टांगुलायतस्तेन मूढ़ गर्भं हरेत् स्त्रियाः ॥१६॥
(अ० हृदय संहिता १-२५)

* तत्र स्त्रियमाश्वास्य मंडलाग्रेण अंगुली शस्त्रेणवा शिरो विदार्य शिरः कपाल्यान्याहृत्य शंकुना गृहीत्वा उरसि कक्षायां वापहरेदभिन्ने शिरसि चाक्षि कूटे गंडेवा।

॥ सुश्रुत संहिता ४-१५)

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY.
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No. .....

बुद्धि को माना जाने लगा। कुछ युगान्तरकारी ज्योतिषिके आविष्कारों ने विज्ञान की काया ही पलट दी। वैद्य विद्या तो इस युग में बड़े वेग से उन्नति की, ओर अग्रसर हुई। मनुष्य के शव और कंकाल की परीक्षा स्वतन्त्र रूप से हुई। धात्री का कार्य अब तक स्त्रियों के हाथ में था। पर अब धीरे धीरे पुरुष भी इस कार्य से परिचित होने लगे थे। अब प्रतिभाशाली चिकित्सकों को इस विद्या की पक्की जानकारी मिलने लगी, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस प्रसंग में कुछ ऐसी बातें जानी गईं, जो तब तक असंभव मानी जाती थीं। रोयसलिन Eroesslin और अम्ब्रोसेपारे Ambrosepare की पुस्तकोंमें अनेक नई ज्ञातव्य बातों की सूचना मिलती है। पारे ने प्रथम बार शीर्षोदय Head presntetion को साध्यबताया था। बादको स्त्री धात्रियोंने भी इस विषय की अच्छी पुस्तकें लिखी। फ्रांसकी Louis bourgeous (सन्१६२१ इंग्लैण्डको (Jainsharp) १६७१ और जरमनी की Justinesiegemund का नाम इस प्रसंग में आदर के साथ लिया जाता है। सन् १७२१ में Delamotte नाम के स्पेनिश पंडित ने धात्री विद्या सम्बन्धी एक ऐसी-उत्तम पुस्तक लिखी कि आज भी उसका आदर कम नहीं हुआ है। इस युग में एक मजे की बात यह हुई, पुरुष वैद्यों ने धात्री का पेशा करना शुरू किया पर तात्कालिक यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से जान पड़ता है. कि इस पेशा के करने वाले वैद्य समाज में में निकृष्ट, समझे जाते थे।

यूरोप में पेशा यापता "धात्री वैद्यों"का एक बड़ा ही शुभ फल हुआ। कितने ही वैद्य अपनी पालियों के साथ इस पेशा को करने लगे। हालैण्ड के डाक्टर हेनरिच वनडेवेन्टो Henerich von devent और उनकी पत्नी इस पेशे को करने लगी और आधुनिक धात्री विद्याको इन्होंने इतना समृद्ध किया कि आधुनिक 'धात्रीविद्या" सम्पूर्णतः इन की ही देन है। इन्हें आधुनिक "धात्री विद्या" का पिता' कहा जाता है। सन् १६२६ में इन्होंने अपनी पुस्तक की पहली जिल्द प्रकाशित कराई, और १७०१ में दूसरी जिल्द, जिस में और भी अनेक नूतन तथ्य थे, छपाई। इग्लैण्ड में विलियम चेम्बर लेन के एक पुत्र पीटर ने १७२१ में सुप्रजन के लिये एक उत्तम यन्त्र बनाया। यह आदमी फ्रांस का निवासी था और किसी कारणवश भाग आया था पर एक विशेष प्रसव में असफल होने के कारण उसको उस समय अच्छी कीर्ति नहीं मिली१७२३ में एक दूसरे वैद्य की यह कीर्ति मिली। पर शीघ्र ही उसके यन्त्र की अकृत कार्यता का पता लग गया। कुछ दिनों के बाद पीटर का यन्त्र ही सर्व मान्य हो उठा, इस समय तक इस विद्या ने यथेष्ठ उन्नति कर ली थी, सब से पहिले एडिनवरा विश्व विद्यालय के अधिकारियों ने इस विद्या को सुव्यवस्थित रूप से पढ़ाने का प्रयत्न किया। बाद को यूरोप के विश्वविद्यालयों में इस की चर्चा जोरों से चल पड़ी।

इस प्रकार धात्री विद्या की महिमा प्रतिष्ठित हुई। सभ्य जगत् ने देखा कि सन्तान प्रसव कराना कुछ हंसी खेल नहीं है। इस लिये उन देशों में इस काम को करने वाले पुरुषों और स्त्रियों पर कड़ी नजर रखी जाने लगी, अन्य नाना क्रान्तिकारी आविष्कारों के समान इस विद्या का अगुआ भी फ्रांस ही था, अतः वहीं सर्व प्रथम का-

नून बना कर धात्रियों का नियमन किया गया। फ्रांस में इस समय दो श्रेणी की धात्रियां होती हैं। दूसरी श्रेणी की धात्रियों को दो वर्ष का एक कोर्स पढ़ना पड़ता है, इस में शरीर शास्त्र और औषधि विज्ञान का ज्ञान कराया जाता है, प्रथम श्रेणी की धात्रियों को सारे फ्रांस में काम करने का अधिकार होता है। ये अधिक प्रभावशाली मानी जाती हैं। प्रत्येक प्रसव की सूचना धात्रियों को सेण्ट्रल आफिसर के आफिस में भेजनी पड़ती है। स्पेन में कोई भी स्त्री यह कार्य नहीं कर सकती, यदि उसने ४ अर्धवार्षिक कोर्सों को पढ़ कर प्रमाण पत्र न पाया हो, पास करने के बाद भी उन्हें पुलिस का प्रमाण पत्र ले कर किसी विशेष जिले में काम करना पड़ता था, आष्ट्रिया और इटली में भी परीक्षा का विधान है। रूस की पिछली सरकार ने तो कुछ ही विश्व विद्यालयों को इस विद्या के प्रमाण पत्र वितरण का अधिकार दिया था। वहां की धात्रियां सरकारी मेडिकल डिपार्टमेण्ट के अधिकार में रहती थीं वहां प्रत्येक प्रान्त में एक प्रधान धात्री रहा करती है, और हर जिले और महकमों में उसकी सहायकायें काम करती है, धात्री का प्रमाण पत्र मिलते ही उसे सब प्रकार के टैक्सों से मुक्त कर दिया जाता है,

नार्वे में धात्री विज्ञान की परीक्षा नियत है यह विभाग हेल्थ डिपार्टमेंट के अन्तर्गत है, स्वीडन में धात्री का केवल प्रमाण पत्र पा जाना ही पर्याप्त नहीं है। उसे कार्य आरम्भ करने के पहले सरकारी तौर पर शपथ लेना पड़ता है, इन धात्रियों को अगर कहीं स्थान परिवर्तन करना हुआ तो सब से निकट वर्ती सरकारी मेडिकल अफसर को एक मास पूर्व सूचना देना जरूरी होता है. हालैण्ड में तो कुछ चुनी हुई लड़कियों को हर साल धात्री विद्या की मुफ्त शिक्षा दी जाती है। अमेरिका के संयुक्त राज्य की बहुत सी रियासतों ने धात्रियों के नियमन का कानून बनाया है। सन् १९०२ तक इंग्लैण्ड में इस विषय का कोई कानून नहीं था बड़े आन्दोलन के बाद अब वहां भी कानून बन गया है? कोई भी धात्री बिना प्रमाण पत्र के यह कार्य नहीं कर सकती।

इन देशों के साथ भारतवर्ष की तुलना की जाय तो निराश होना पड़ेगा। हम अपनी धात्रियों के संबन्ध में कुछ भी नहीं कहेंगे। यदि पाठकों में अगर मानसिक दुःख सहन करने का साहस हो, तो उन्हें इस तुलना के लिये मसाला खोजने दूर नहीं जाना होगा।

गर्भविज्ञान और प्राकृतिक रहस्य

[ले०—पं० कालीचरणदुबे वैद्यशास्त्री, नागपुर]

ऋतु काल में शुद्धवीर्य पुरुष के संग, शुद्धयोनि, शुद्धरज और शुद्ध गर्भाशय सम्पन्ना स्त्री का संयोग। होने पर यदि शुक्र और शोणित मिल कर गर्भाशय में प्राप्त हों, तो उसी शुक्र शोणितमें जीवात्मा मनोवेग से आकर मिलने से गर्भ प्रकट होता है। आत्माकर्मवश से मन के समान वेग—विशेष के वशीभूत होकर, अणिमा प्राप्त (अति सूक्ष्म रूप धारण कर) चारों भूतों के साथ मरे हुये देह से प्रकट होने वाले देह में गमन करता है,यह प्राणी बिना दिव्य द्रष्टि के उस आत्मा को देहान्तर में प्रवेश करता हुआ नहीं देख सकता, वह अत्यन्त सूक्ष्म शरीरयुक्त आत्मा सर्वगामी, सर्व शरीर भरण करने योग्य, विश्व कर्म करने को समर्थ, विश्वरूप वही आत्मा ही चेतना धातु, अतीन्द्रिय, मोक्ष न होने पर्यन्त शरीर के साथ नित्ययुक्त तथा सुखासुखासु बोध-सम्पन्न है। रस, आत्मा, पिता, और माता से उत्पन्न चतुर्भूत दश इंद्रिय तथा देह की छः धातु, ये २० तत्व देह में वर्तमान है। इन में सूक्ष्म चतुर्भूत आत्मा के आश्रित और आत्मा उन सूक्ष्म चतुर्भूतों के आश्रित है।अर्थात् आत्मा और सूक्ष्म चतुर्भूत परस्पर ऐसे गठे हुये हैं, कि स्वतन्त्र हो नहीं सकते । गर्भस्थ शुक्र और रजकोई पितृ मात्र जनित चतुर्भूत कहते हैं और यह सब भूत उन्हीं शुक्र रक्त का पोषण करते हैं वे चतुर्भूत उसके आहार रस से उत्पन्न होते हैं। जो आत्म संश्रित चतुर्भूत गर्भ में प्रवेश करते हैं। वे प्राचीन कर्मज है, वे ही भूत समुदाय बीज रूप तथा वारम्बार देह से उत्तम देह में अथवा निकृष्ट देहान्तर में जाते हैं ।

बीज अपने सदृश अंकुर को उत्पन्न करता है, इसी कारण गर्भ का रूप उसी बीज के सदृश होता है। इस प्रकार प्रसिद्ध है, कि पूर्व जन्म के कर्मवश मन से ही गर्भ के मन उत्पन्न होता है, आकृति भेद और बुद्धि भेद कर्म हेतु, रजोगुण तमोगुण से होते हैं। उन अतीन्द्रिय अतिसूक्ष्म भूतगणों से आत्मा कदापि विमुक्त नहीं, उनको कदापिनहीं छोड़ता और वे भूतगण कर्म, बुद्धि और अहंकार से भी वियुक्त नहीं होते।रज और तमोगुण के साथ मन, का नित्य सम्बन्ध है, इसी से ज्ञान के अतिरिक्त उस में सर्व दोष ही संघटित हैं। सदोष मन और बलवान कर्म ही गति और प्रवृत्ति के निमित्त माने गये हैं। इस प्रकार उत्पन्न गर्भ सात्म्यरस के सेवन, और उत्तम सुश्रूषा सेवित होने पर, सर्वेन्द्रिय सम्पन्न पूर्ण सर्वांगऔर बलवर्ण सत्व दृढ़ता युक्त होकर इन सब द्रव्यों की संपूर्णता के कारण यथा (समय जो गर्भ के जन्म लेने का समय है) पृथ्वी में सुख पूर्वक जन्म लेता है ।

गर्भ विज्ञान स्तम्भ

१-गर्भ विज्ञान और प्राकृतिक रहस्य ... ... [ले० श्री पं० कालीचरण जी शास्त्री]
२-श्रोणि गह्वर और उसकी रचना ... ... [शास्त्राचार्य श्री पं विश्वनाथ शास्त्री]
३-गर्भाधान ... ... [कविराज रामदास जी आयुर्वेदाचार्य]
४-गर्भाधान और भ्रूण वृद्धि ... ... [रसायनाचार्य कविराज प्रतापसिंह जी, काशी
५-गर्भावस्था में सावधानी ... ... [डा० शिव प्रसाद शर्मा वैद्यभूषण, उन्नाव]
६-गर्भ और गर्भाकृति रोगों में भेद ... [ले० पं० हरिश्चन्द्र जी वैद्यभूषण बीसलपुर]
७-मूढ़ गर्भ व तत्सामयिक उपचार ... ... [ले० श्री बुद्धसेन वैद्यभूषण]
८-गर्भावस्था के रोग और व्याख्या ... [ले० श्री पं रामगोपाल जी अवस्थी वै० भू०]
९-गर्भ कला के अंकुर वेष्टक आदि रोग ... [शास्त्राचार्य श्री केदारनाथ मिश्र, बलिया]
१०-गर्भावस्था के रोगों की चिकित्सा ... ... [ले० श्री उमंगूलाल शर्मा, भिषग्भूषण]

गर्भ के विषय में भगवान पुनर्वसु का कहना है, कि यह पितृज, मातृज, आत्मज और रसज है, और सत्वसंज्ञक मन, इनका संबन्धोत्पादक है, परन्तु महर्षि कुमारशिरा भरद्वाज का मत बिल्कुल विपरीत है, आपका कहना है कि नहीं ऐसा नहीं हो सकता न माता, न पिता, न आत्मा, न सात्म्य न पान भोजन, और भक्ष्य, लेह्य, सेवन, गर्भ को उत्पादन कर सकते हैं और न परलोक से आकर सत्व संज्ञक मन ही गर्भ से मिलता है। यदि पिता, माता ही गर्भ के प्रकट करने में समर्थ हों, तो फिर इस संसार में न के चाहने वाली स्त्री और पुत्र के चाहने वाले स्त्री पुरुष अनेकहैं, वे पुत्र.त्पति की चाहना से मैथुन धर्म का अवलम्बन कर केवल पुत्र को, अथवा कन्या की कामना से केवल कन्या को ही प्रगट कर लेवें। ऐसा होने से कोई स्त्री अथवा पुरुष निःसंतान नहीं हों, सबही संतान वाले हो जाना चाहिये, और संतान के लिए उन्हें नहीं रोना चाहिये।

आत्मा ही, आत्मा को किस प्रकार उत्पन्न कर सकता है? यदि ऐसा हो मानो कि आत्माये ही आत्मा को उत्पादन करता है तो यह जानने की इच्छा होती है कि जन्म जिसका हो चुका वह आत्मा, आत्मा को प्रकट करता है। अथवा अजात आत्मा आत्मा को, प्रकट करता है क्यों कि जात आत्मा आत्मा को प्रगट कर नहीं सकता, इसका कारण यह है कि जो एक वार जन्म लेचुका है वह फिर किस प्रकार जन्म ले सकता है? और अजात आत्मा भी आत्मा को प्रगट नहीं कर सकता, क्योंकि जिसमें सत्ता नहीं है वह किस प्रकार अपने को प्रगट कर सकता है? इसी से दोनों ही हेतु विरुद्ध होते हैं, यदि आत्माक आत्मा के प्रगट करने की शक्ति हो, तो वह अवश्य अपनी मनमानी उत्तम योनि में अपने को प्रगट करे। क्यों कि आत्मा अपने को वशी, अप्रतिहतगति, काम रूपी, तेजः संम्पन्न, बलवेगवर्ण सम्पन्न सत्वदार्ढ्य संपन्न, अजर, अरोग अमर तथा इसी प्रकार अन्यान्य गुण संम्पन्न अथवा इसकी अपेक्षा से भी अधिक तर गुण संपन्न देखने की इच्छाकरे। किन्तु अपनी इच्छा पूर्वक नीच योनि में गमन नहीं करें।

गर्भ सात्म्यज भी नहीं हो सकता, यदि सात्म्यज हो तो केवल जो सात्म्य का सेवन करते हैं। उनके ही संतान हों और असात्म्य सेवी यावन्मात्र प्राणी हैं। वे संतान हीनहोने चाहिये। परन्तु दोनों प्रकार के प्राणी संतान युक्त और संतान हीन देखने में आते हैं। इस लिये गर्भ को सात्म्यज भी कहना उचित नहीं है।

गर्भ रसज भी नहीं हो सकता, क्यों कि रसज होने से कोई स्त्री पुरुष निःसंतान न होते। कारण ऐसे स्त्री पुरुष कोई भी नही हैं, जो रसों को सेवन न करते हों और यदि उत्तम रस सेवन करने ही से गर्भ रहता हो तो जो सदैव बकरा मेढ़ा, मृग और मगर के मांस का यूष, गौ का दूध, दही, घी, शहद, तेल, सेंधव, नमक ईख का रस, मूंग और चावल भोजन करके हृष्ट पुष्ट हुये हैं उनके ही संतान हों और जो साठी धान, जव, कोदों कोर दूषक (कूटू) कंद और मूल भक्षण कर जीवन धारण करते हैं। उन सब के सन्तान नही होनी चाहिये। परन्तु जो उत्तम भोजन और निकृष्ट भोजन करते हैं? उन दोनों के संतान हैं और दोनों निःसंतान भी देखने में आते हैं।

अब रहा सत्व संज्ञक मन परलोक से आकर गर्भ से मिल जाता है, सो भी सत्य

नहीं है। क्योंकि परलोक से आने वाले उसको पौर्व दैहिक का कोई सा व्यापार भी अविदित और अश्रुत अथवा अदृष्ट नहीं है परन्तु वह इस जगह आकर उनमें से किसी का भी स्मरण नहीं करता। इससे गर्भ न मातृज है, न पितृज, न आत्मज, न सात्यमज, न रसज एवं न सत्व संज्ञक मन उसका संबन्धोत्पादक हो सकता है। परन्तु इस विषय में भगवान् पुनर्वसुका कहना है कि कि नहीं ऐसा नहीं है तुम्हारा कहना न्याय संगत नहीं, "सर्वेभ्य एभ्यो भावेभ्यः समुदितेभ्यो गर्भोऽभिनिर्वर्त्तते" अर्थात् इन समस्त भावों के भले प्रकार मिलने से ही गर्भ होता है। यही मत भगवान् धन्वन्तरि का भी है। अतः इस मतवादमें भगवान् पुनर्वसुका ही मत अधिक प्रशस्त और मान्य हो सकता है। आपका कहना है, कि गर्भ मातृज है, क्यों कि माता के विना गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती तथा जरायुज आदि का जन्म कदापि नहीं हो सकता। गर्भ के मातृज अंग त्वचा, रुधिर, मांस मेदा नाभि, हृदय, क्लोम प्लीहा, वृक्क, वस्ति आमाशय, पक्वाशय, उत्तर गुद, अधोगुद, मेद और मेदा वाही आदि हैं।

गर्भ पितृज भी है, क्यों कि पिता के विना गर्भ की उत्पत्ति नहीं हो सकती तथा जरायुज आदि का जन्म भी नहीं हो सकता। गर्भ के पितृज भाग केश, श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) नख, लोम दांत, हड्डी, शिरा, स्नायु धमनी और शुक्र आदि हैं। अर्थात् यह भाग पिता से उत्पन्न होते हैं।

गर्भ आत्मज भी है, गर्भात्मा को शास्त्रमें अंतरात्मा जीव कहते हैं, इसे शाश्वत (प्राचीन) नीरोग अजर, अमर, अक्षय, अभेद्य, अच्छेद्य, अलेह्य विश्वरूप विश्वकर्मा, अव्यक्त, अनादि अनिधन और अक्षर कहते हैं। यह गर्भाशय में अनुप्रवेश अर्थात् गर्भ धारण के पश्चात् प्रवेश कर जब शुक्र शोणित के साथ संयुक्त होता है, तब गर्भ उत्पन्न होता है, तथा उसको गर्भत्व होता है, इसी से यह आत्मा द्वारा अपने को उत्पन्न करता है। सुतरां आत्मा ही आत्मा को उत्पन्न करता है, ऐसा कहा जाता है, गर्भ में इसी की आत्मा संज्ञा होती है अन्यथा इस आत्मा को अनादि और नित्य होने से इसका जन्म होना युक्ति सिद्ध नहीं हो सकता इस प्रकार यह अजात होकर भी जात गर्भ को उत्पादन करता है तथाजात होकर भी अजात गर्भ को प्रकट करता है, क्यों कि वही गर्भ कालान्तरमें बाल, यौवन और वृद्धत्व को प्राप्त होता है यह गर्भ जिस २ अवस्था में वर्तमान है' उसी अवस्था में वह जन्मा है' और जो अवस्था इसकी अब होने वाली है' उस अवस्था में यह जनिष्यमाण (जन्म लेवेगा) अर्थात् गर्भ एक ही साथ ही जात और अजात हो सकता अर्थात् इसका जातत्व और जनिष्य माणत्व दोनों ही हैं। इस प्रकार जात गर्भ भी जनित होता है, एवं वही गर्भ ही जनित होता है एवं वही गर्भ ही अनागत अवस्थान्तर में जात होकर आत्मा द्वारा आत्मा को उत्पन्न करता है। अस्तित्ववान् पदार्थ का अवस्थान्तर ही जन्म कहलाता है, जैसेः—अस्तित्ववान् शुक्रशोणित और जीवके संयोग के प्रथम जीवत्व नहीं होता, संयोग होने के पश्चात् गर्भत्व होता है, और पुरुष अस्तित्ववान् होने पर भी अपत्य (संतान) के जन्म होने के पहिले उसको पितृत्व (पितापना) नहीं होता।

संतान होने के पश्चात् ही उसको पितापना होता है, इसी से गर्भ अस्तित्ववान् होनेपर भी उसकी उसी २ अवस्था में जातत्व और अजातत्व संज्ञा होती है। गर्भ सम्बन्ध में माता पिता अथवा आत्मा किसी का ही सर्व भावसे यथेष्ट कारित्व नहीं है, अर्थात् ये अकेले अपने वश होकर गर्भ को प्रकट नहीं कर सकते। वे कुछ स्ववश से करते हैं, और कुछ करते हैं कर्मवश से। किसी किसी स्थल में इनकी करण शक्ति को (बुद्ध्यादि शक्ति को) कार्यता और अकार्यता होती, और किसी जगह नहीं भी होती है, अर्थात् सत्वादि करण के उत्कर्ष (बढ़ने से) से उनकी यथाशक्ति इच्छानुरूप कार्य होता है। अन्यथा विपरीत होता है, और करण दोष होने से आत्मा गर्भोत्पादन का करण नहीं हो सकता। योगी लोग चेष्टा, योनि, ऐश्वर्य और मोक्ष को अपने आधीन देखते हैं, अर्थात् चेष्टादि उनके स्वाधीन हैं, आत्मा के भिन्न सुख दुःख का और कोई कर्ता नहीं है। तथा अन्य से गर्भ उत्पन्न नहीं होता। आत्मा, आत्मा से ही प्रगट होता है। सदृश कारण होनेसे सदृश कार्य होता है, विना बीज के अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती। गर्भ की निम्न लिखित वस्तुएँ आत्मा ही से प्राप्त होती हैं, जैसेः—जिस समय यह जिस योनि में जन्म ग्रहण करता है, उस समय उसी योनि से इसका जन्म, आयु, आत्मज्ञान, मन सर्वेन्द्रिय, उच्छ्वास, निःश्वास, प्रेरण, धारण आकृतिभेद, स्वरवर्णभेद सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, चेतना, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार, और यत्न ये उत्पन्न होते हैं।

गर्भ सात्म्यज भी है। स्त्री पुरुष असात्म्य सेवी न हों तो उनको वन्ध्यत्व अथवा गर्भ में अनिष्ट भाव उत्पन्न ही न हों। जब तक स्त्री पुरुष के तीनों दोष कुपित होकर सर्व शरीर में विचरते हुए शुक्र शोणित और गर्भाशय में विघ्न प्रकट नहीं करते तब तक ही असात्म्य सेवन ही गर्भोत्पत्ति कर्ता हो सकता है और असात्म्यसेवी स्त्री पुरुषों का शुक्रशोणित और गर्भाशय शुद्ध होने से ऋतुकाल में उनका मिलाप होता है। परन्तु जीवात्मा जब तक अनुप्रवेश न करे, तब तक कदापि गर्भ प्रगट नहीं होता। केवल सात्म्य से ही गर्भ उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं है, किन्तु सात्म्य कारण समष्टि के बीच यह भी एक कारण है, गर्भ के अनालस्य, अलोम, इन्द्रियों की प्रसन्नता, स्वरवर्ण बीज का उत्कर्ष और प्रफुल्लित चित्त की अधिकता, ये वस्तुएँ सात्म्य से उत्पन्न होती हैं।

गर्भ रसज भी है, क्योंकि गर्भ की उत्पत्ति तो दूर रही, किन्तु आहार रस के बिना माता का भी प्राणयात्रा नहीं चल सकती। सर्वरस उत्तम रूप से सेवित होने से गर्भ उत्पन्न कर सकते हैं, परन्तु केवल सर्वरस उत्तम प्रकार से सेवन से ही गर्भ नहीं रहता, किन्तु कारण समष्टि के बीच यह भी एक कारण है। शरीर की उत्पत्ति और वृद्धि, प्राण संबन्ध तृप्ति, पुष्टि और उत्साह ये गर्भ की वस्तुएँ इससे ही उत्पन्न होती हैं।

सत्वसंज्ञक मन सम्बन्धोत्पादक है। वही अतिवाहिक शरीर और जीव का सम्बन्ध करता है। वही सत्व शरीर से अलग होने के प्रथम ही प्राणी के स्वभाव और इच्छा का [illegible]

तथा इन्द्रियों को उपताप (खेद) होता हैं, बल-हीन होता है और सर्व व्याधियां बढ़ने लगती हैं, शरीर सत्वहीन होने से प्राण को भी परित्याग कर देता है, इसी सत्व को इन्द्रियगण का अभिग्राहक मन कहते हैं, यह तीन प्रकार का है। यथाः—सात्विक, राजस और तामस। सत्व, रज और तम इन तीन गुणों में जो गुण अधिक हो उसी गुणका द्वितीय गुण के साथ संयोग होने से पूर्व जन्म का भी स्मरण रहता है। मन का यह स्मार्त (स्मृतिज्ञान) मनके साथ आत्मा के अनुबन्धवश से दूसरे जन्म में भी आत्मा के अनुवर्ती होता है तथा उसी स्मार्त ज्ञान बलसे पुरुष जातिस्मर कहा जाता है। गर्भ के भक्ति, सुशीलता, शौच, द्वेष, स्मृति, मोह, त्याग, मात्सर्य शूरता, भय, क्रोध, तन्द्रा, उत्साह, तीक्ष्णता मृदुता, गांभीर्य और अनवस्थितत्व ये पदार्थ और इसी प्रकार अन्यान्य गुण सत्वाधिक्य से उत्पन्न होते हैं।

मनके सफल गुण सात्विक राजस और तामस के भेद से अनेक प्रकार के हैं (यह पुरुष कभी धर्म के कार्यों को करने से सात्विक होता है, कभी काम चिन्ता से राजसी होता है और कभी तमोगुण के आवेश से मोहयुक्त होता है, इत्यादि जानना) ये सकलगुण एक पुरुष में मिलते हैं। परन्तु एक काल में सकल गुण नहीं होते इसलिये पुरुष को जो केवल सात्विक या राजस अथवा तामस कहा है उसका तात्पर्य यह है कि जो जो गुण अधिक हों उसी के अनुसार ही सात्विक राजस आदि नाम कहा जाता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के गर्भकर्ता द्रव्यादिकों के समुदाय से ही गर्भ उत्पन्न होता है, जैसे रथ अनेक अंग समष्टि (अनेक धुरा, चक्र आदि समुदाय) से बनता है उसी प्रकार गर्भ द्रव्यों के समवाय (इकट्ठे होने) से उत्पन्न होता है। इसीलिये कहते हैं कि गर्भ मातृज, पितृज आत्मज सात्म्यज और रसज तथा सत्य संज्ञक मन उसका सम्बन्धोत्पादक है।

गर्भ के विषय में यथार्थ प्रमाण मिलने पर भी महर्षि कुमारशिरोभरद्वाज भगवान् आत्रेय से फरमाते हैं, कि नहीं अपका कहना अनर्थक है, यदि यह गर्भ अनेक प्रकार के गर्भकर्ता द्रव्य समुदाय से उत्पन्न है तो यह किस प्रकार एकत्र मिलित है ? और यदि मिलित नहीं है, तो फिर इसको मनुष्य देह से जन्म धारण किस प्रकार है तथा किस प्रकार मनुष्य, मनुष्यका उत्पन्नकर्ता हो सकता है ? यदि आपको यही इष्ट है, कि मनुष्य मनुष्य से प्रगट होता है, इस वास्ते यह प्राणी मनुष्य निग्रह से होता है, जैसे गौ से गौ होती है, और घोड़े से घोड़ा उत्पन्न होता है, अथवा गर्भ समुदायात्मक अर्थात् द्रव्य समष्टि से उत्पन्न होता है, परन्तु यह अयुक्ति जंचती है. क्योंकि यदि मनुष्य के कहने से ही मनुष्य का देह के समान उत्पन्न हो, तो जड़, अंधा, कुबड़ा, गूंगा, बहरा, मिम्मिन, व्यंग, उन्मत्त, कुष्ठी तथा किलास रोगी की उत्पन्न की हुई संतान क्यों नहीं उसके समान होती ? कदाचित ऐसा कहो तो इस प्रकार आपत्ति आती है, कि पिता माता मनुष्य होने से संतान को भी मनुष्यत्व ही सिद्ध होता है, किन्तु माता पिता के इन्द्रिय वैकल्यवश (इन्द्री बिगड़ जाने) से जो सब हानि होती है, संतान उसकी

भागों किस प्रकार हो सकती हैं वह आत्मा अपने नेत्रों से रूप, कानों से शब्द, नासिका से गन्ध, त्वचा से स्पर्श, जिह्वा से रस, और बुद्धि के द्वारा बोद्धव्य(जानने योग्य)सर्व विषयों को ग्रहण कर ज्ञानी होता है, इसी से जड़ आदिकों की संतान उनके समान होनी चाहिये, इस प्रकार का कारण नहीं है, यदि इस प्रकार मानोंगे तो प्रतिज्ञा हानि होगी, अर्थात् इन्द्रियहीन आत्मा को मूर्ख कहेंगे और इन्द्रिययुक्त आत्मा को ज्ञानी कहा जायगा जो आत्मा में इस प्रकार अज्ञत्व और ज्ञत्व दोनों ही हों, तो वह विकार प्रकृति का भी होगा, तथा निर्विकार भी है। यदि आत्मा इन्द्रिय के बिना अज्ञ हो, तो जो हेतु वह अज्ञ अतएव वह अकारण तथा जिससे अकारण हैं, उसी हेतु से अब अनात्मा होता है, अतएव आपने कहा, वह कथन कहना मात्र है, वस्तुतः वह अतर्थक ही है।

+इस प्रकार का स्पष्टी करण करते हुये। भगवान् आत्रेय कहते है, कि यह पहिले ही कहा गया है, कि जीवात्मा का अतिवाहिक शरीर के साथ संबन्ध है, प्राणिमात्र की चार प्रकार की योनि है, जैसे:—जरायु, अंड स्वेद और उद्भिद। इन चार प्रकार की योनियों में से एक २ योनि के असंख्य भेद हैं। क्यों कि जीवों के आकृति भेद असंख्य हैं। इनमें जरायुज अंडजादिकों के ये गर्भ कर समग्रभाव, जिस २ योनि में जाकर प्राप्त होते हैं। तदनुसार ही उनका गठन होता है, जैसे मनुष्यादिक आकृतियुक्त मोम के सांचे में स्वर्ण, रूपा, तांबा, रांगा अथवा सीसा गलाहुआ डालने से उनमें मनुष्यादिक की आकृति बन जायगी, उसी प्रकार गर्भ कर सकल द्रव्य मनुष्य योनियों में प्रवेश कर मनुष्य के स्वरूप में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार द्रव्य समष्टि से प्रकट गर्भ मनुष्यदेह को प्राप्त होता है, इसी लिये मनुष्य से मनुष्य उत्पन्न होता है।

बीज के सर्वांग में ही बीज भाव है, उसमें यदि कोई अंगावयव का बीज भाव उत्पन्नहो जाय (बिगड़ जाय) तो संतान के भी उसी अवयव की विकृति होगी, और यदि बीज भाव उत्पन्न नहीं हो, तो विकृति भी नहीं होगी। इसीलिये जड़, अंधे आदि की उत्पन्न की हुई संतान जड़ और अंधी नहीं होती। सब की ही सकल इन्द्रिय आत्मज है, उनके साथ प्राक्तन कर्म का संबंध है। अतएव दैव, इन्द्रि आदिके भावाभाव का हेतु है, अतएव जड़ादिक से जो संतान होती है, वह जड ही होनी चाहिये, ऐसी कोई बात नहीं है। आत्मा इन्द्रिय होने से ही (ज्ञात) और इन्द्रिय न होने से ही अज्ञ नहीं होता, आत्मा कदापि मनोहीन नहीं होता, और बाहर की इन्द्रियों के न होने से बाहरी ज्ञान नहीं हो सकता परन्तु इससे मनोयुक्त

+पुरस्तादेतत् प्रतिज्ञातं सत्वं, जीवस्पृक् शरीरेणाभि संबन्धातीति, यस्मात्तु समुदायप्रभवः सन गर्भो मनुष्यविग्रहेण जायते, मनुष्यो मनुष्य प्रभव इत्युच्यते, तद्वक्ष्यामः। भूतानां चतुर्विधायोनिर्भवति—जराय्वण्ड स्वेदोद्भिदः। तासां खलु चतसृणामपि योनीनामेकैका योनिरपरिसंख्येभेदा भवति, भूतानामाकृतिविशेषापरिसंख्येयत्वात्। तत्र जरायुजानामण्डजानां चप्राणिनामेते गर्भ करा भावा यां यां योनिमापद्यन्ते तस्यां तस्यां योनौ तथा तथा रूपा भवंन्तित्यादि।

॥ चरक ॥

आत्मा को आत्मज्ञान का अभाव नहीं हो सकता। इन्द्रियों के अभाव से कर्त्ता के बाहरी कर्म में प्रवृत्ति जनक विषय ज्ञान कदापि नहीं हो सकता। जिसके द्वारा जो क्रिया हो उसके अभाव से वह क्रिया किस प्रकार हो सकती है? कुम्भकार घड़ा बनाने में सुचतुर होने पर भी मिट्टी के अभाव से उस कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता। आत्मज्ञ प्राणी देहेन्द्रिय आदि के विषय से प्रत्यावृत्त (लौटे हुये) चंचल मन को संयुक्त कर अध्यात्म तत्व में प्रवेश पूर्वक आत्मज्ञान में पयवसित अर्थात् आरूढ़ होता है। इद्रियों के विना केवल समाधि बल से ही सर्वज्ञ होता है। आत्म ज्ञान और विषय ज्ञान से प्रभेद है। मनुष्य निद्राके बशी भूत होनेपर उसके इंद्रिय वाक चेष्टा सब जाती रहती है। उस समय वह विषय ज्ञान और सुख दुःख का अनुभव नहीं करता। इसी से उसको अज्ञ कहते हैं। आत्म ज्ञान के अतिरिक्त और दूसरा कोई स्वाधीन ज्ञान नहीं है, और कोई भाव भी इस प्रकार स्वाधीन भाव में नहीं रहता ऐसा निष्कारण और कोई भी भाव नहीं है इसीसे हे भरद्वाज! 'ज्ञ' प्रकृति, आत्मा द्रष्टा और कारण इन सब समुदाय का विशेष रूप से वर्णन किया है, इससे अब तुम निःसंदेह हो जाओ।

+ गर्भमाता की पीठ की तरफ मुखकरके ऊपर की तरफ मस्तक और सब अँगों को संकुचित जरायु से लिपटा हुआ कोख में रहता है। गर्भ को भूक प्यास नहीं लगती। यह माता के आधीन माता के आश्रित होकर हो जब तक परिपूर्ण अंग नहीं होता तब तक उपस्नेह और उपस्वेद के योग से जीता रहता है। फिर रोमांचों के मार्ग से इसका उपस्नेह होता है, गर्भ की नाभि से जोनाड़ी लगी हुई है, उसका नाम अमरा नाड़ी है, यही नाड़ी माता के हृदय और संतान के हृदय से मिली हुई होती है, और स्पन्दमान (हिलने वाली) नाड़ियों के योग द्वारा माता के आहार रस से गर्भ का पोषण होता है, माता के आहार रस से गर्भ के सर्व वर्ण और बल उत्पन्न होते हैं। जिससे गर्भ की वृद्धि होती है, गर्भिणी जो सब रस युक्त आहार करती है उसका रस तीन प्रकार का होता है, उनमें से एक प्रकार के रस से तो माता के शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे प्रकार के रस स्तनों में दूध प्रकट होता है, और तीसरे प्रकार के रस से गर्भ का पालन पोषण होता है।

इस स्थल पर गर्भ की वृद्धि तथा माता के स्तनों में दूध का प्रगट होना, इस सम्बन्ध में भी आचार्यों में गहरा मतभेद पाया जाता है, महर्षि सुश्रुताचार्य का कहना है, कि कि गर्भ की वृद्धि माता के आहार रस से होती है, और पवन के आध्यमान से भी होती है। यथाः—

+ तदनन्तर ह्यस्य लोमकूपाय नैरुपस्नेहः कश्चि नाभिनाड्ययनैः, नाभ्यां ह्यस्य नाड़ी ये प्रसक्ता नाड्यां चापरा, अपराचास्य मातुः प्रसक्ताहृदये, मतृहृदयं ह्यस्य तामराम मिसंप्रुक्ते शिराभिः स्पंदमानाभिः स तस्य रसो सर्वबल वर्ण करः सम्पद्यते, सच सर्वरस वानाहारः स्त्रिया ह्यापन्न गर्भाया स्त्रियां रसः प्रतिपद्यते स्व- शरीर पुष्टये स्तन्याय गर्भवृद्धये च, सतेनाहारे णो- पस्तब्धः परतन्त्र वृत्तिर्मातर माश्रित्य वर्तयत्य न्तर्गतः। चरक० शा०अ०६

गर्भस्य खलु रस निमित्ता मारुताध्यमान-निमित्ता च परिवृद्धिर्भवति।" सु० शा० अ० ४

+नाभिस्थान में ध्रुव (निश्चल) ज्योतिः प्रकाशक अग्निका स्थान है, वहां वायु गमन करता रहता है, जिससे शरीर बढ़ता है। जब वह वायु गरमीसे मिलता है, तब ऊपर, तिरछा और नीचे को जहां २ यथा योग्य है वहां २ स्रोतों को खोलता है, वैसे ही शरीर बढ़ता है।

इसी प्रकार स्तनों में दूध के विषय में भी महर्षि सुश्रुताचार्य का कहना है कि * गर्भवती स्त्रियों के आर्तव रक्त को बहाने वाले छिद्रों का मार्ग गर्भ से रुक जाता है, इस से उनका आर्तव दिखाता नहीं, और गर्भ में जब तक बालक होता है, वे रजस्वला नहीं होती। गर्भवती स्त्रियों का आर्तव रक्त जबनीचे को प्रवृत्त नहीं होता और रुक जाता है, तब ऊपर जाकर गर्भाशय में प्राप्त हो जाता है, फिर उसमें और कफादिक संचित हो कर मिल जाते हैं, वही अपरा(जरायु) जेर कहलाती है, तथा उस आर्तव का ही आधा शेष भाग अधिक ऊपर जाकर स्तनों में प्राप्त होता है जिससे गर्भिणी स्त्रियों के स्तन पुष्ट, ऊंचे और दूध वाले होते हैं, अर्थात नव महीने के संचित हुए रज के आधे भाग से जेर बनती है, और आधे भाग से दूध बनता है।

इन महर्षियों के मत भेदों का निर्णय आयुर्वेद संसार "शारीर सुश्रुतःश्रेष्ठः" कर रहा है, जो वस्तुतः योग्य ही है। पाठकों को भी महर्षि सुश्रुताचार्य हीका मतमान लेने में कोई आपत्ति न होगी॥

+तस्यांतरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवंस्मृतम्।
तदाधमति वातस्तु देह स्तेनास्य वर्द्धते॥
उष्मा सहितश्चापिधारयत्यस्य मारुतः।
ऊर्द्ध तिर्यगधस्ताच्च स्रोतास्यापि यथा तथा॥

* ततस्तदधः प्रतिहतमूर्द्ध मागतमपरं चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते, शेषं चोर्द्ध तर मागतं पयोधरावभि प्रतिपद्यते तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नत पयोधरा भवन्ति॥ सु० शा० अ० ४

शुभ सम्वाद

इस अङ्क में धातु विद्या के इतिहास के लेखक, शास्त्राचार्य पं० हजारी प्रसाद जी द्विवेदी प्रोफेसर शांतिनिकेतन बंगाल, वाले को एक पुस्तक सूर साहित्य लिखने के लिये हिन्दी साहित्य समित मध्यभारत ने, स्वर्ण पदक व कई सौ रुपये पुरस्कार में दिया है, सूरसाहित्य के इतिहास के अन्वेषण के लिये यह पुरस्कार प्रदान किया गया है। आगे से आपने आयुर्वेद के इतिहास के संबंध में भी लेख देने कहा है, जो राकेश में समय २ पर प्रकाशित होंगे।" सम्पादक

श्रोणि गह्वर और उसकी रचना

[ले०-शास्त्राचार्य पं० विश्वनाथ शास्त्री, पीलीभीत]

श्रोणि चार दृढ़ अस्थियों से बने एक अस्थि का ढांचा है, जिसमें के बने मार्ग द्वारा प्रसव हुआ करता है, प्रसव क्रिया के इसके निमित्त मार्गों द्वारा होने के कारण ही प्रसव क्रिया विज्ञानवाले इसको महत्व की दृष्टि से देखते हैं। उपर्युक्त चारों अस्थियां ये हैं।

१-दाहिनी नितम्बास्थि (Right hip bone)
२-बांयी नितम्बास्थि (Left hip bone)
३-त्रिकास्थि (पृष्ठ प्रांतके नीचे त्रिकोणाकारअस्थि)
४-गुदा के पीछे की गुदास्थि, अधः त्रिक वा पुच्छास्थि।

इन अस्थियों द्वारा निर्मित ढांचा मांसपेशियों के संयोग से जिस गह्वर की रचना करता है, उसे "श्रोणि गह्वर" के नाम से पुकारते हैं। प्रसव में भ्रूण इसी मार्ग द्वारा जन्म लेता है।

इसमें दृढ़ बन्धन लगे होते हैं जो इसमें दृढ़ता प्रदान करते हैं। इन अस्थियों के मिलने से चार "संधियां" बनती हैं।

१-दाहिनी त्रिकफल संधि (Right sacro iliac joint,
२-बांयी त्रिक फलक संधि (Left sacro iliac joint
३-विटप संधि (Symphysis pelvis)
४-त्रिकपुच्छ संधि (Sacro coccy gealjoint)

दाहिनी त्रिक फलक संधि-त्रिकास्थि के दोनों धारों पर नितम्बास्थि जहां मिलती है उन सन्धियों को त्रिक फलक सन्धि के नामसे पुकारते हैं। इन प्रत्येक अस्थियों के सन्धिस्थल पृष्ठ दृढ़ कार्टिलेज (मृद्वस्थि) से बने होते हैं। दोनों सतहोंपर गद्देदार परदे लगे होते हैं जिससे दोनों अस्थियों के बीच एक थैली (Cavity) सी बन जाती है। गर्भ के दिनों में यह विशेष रूप से देखने में आती है।

विटप सन्धि—त्रिक के दाहिने और बायें तरफ से नितम्बास्थियों के आये हुये प्रदेश में जो आपस में मिलते हैं, विटप सन्धि कहते हैं। सन्धि के नीचे पुरुषों में मूत्र प्रणेक नली व स्त्रियों में मदन मन्दिर होता है। युवाकाल में यहांपर बाल उग आते हैं।

त्रिक पुच्छास्थि-यह त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि के संयोग से बनता है, तथा बन्धनों द्वारा बंधा होता है।

प्रसव काल में सब सन्धियां ढीली पड़ जाती हैं। क्योंकि भ्रूण के मार्ग के बनने में स्थान छोटा होने से लचीली सन्धियों द्वारा मार्ग फैल जाता है। और बच्चा सरलता से इस गह्वर में होता हुआ भूमिष्ठ होता है।

श्रोणि को प्रसव के वैज्ञानिकों ने दो भागों में विभक्त किया है।

तिर्छी श्रोणि

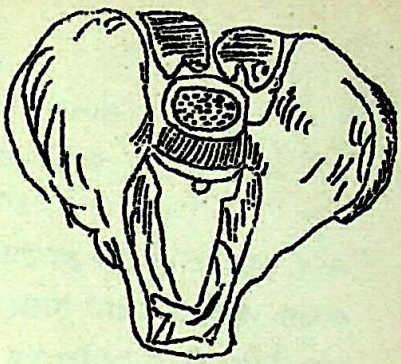

अनुप्रस्थ व्यास पर दबी हुई श्रोणि

स्फिकोदय (मूढ़गर्भ) में परिवर्तन

पुरुष श्रोणि की आकृति

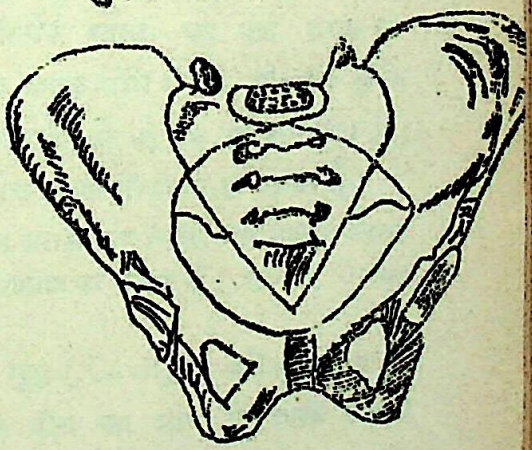

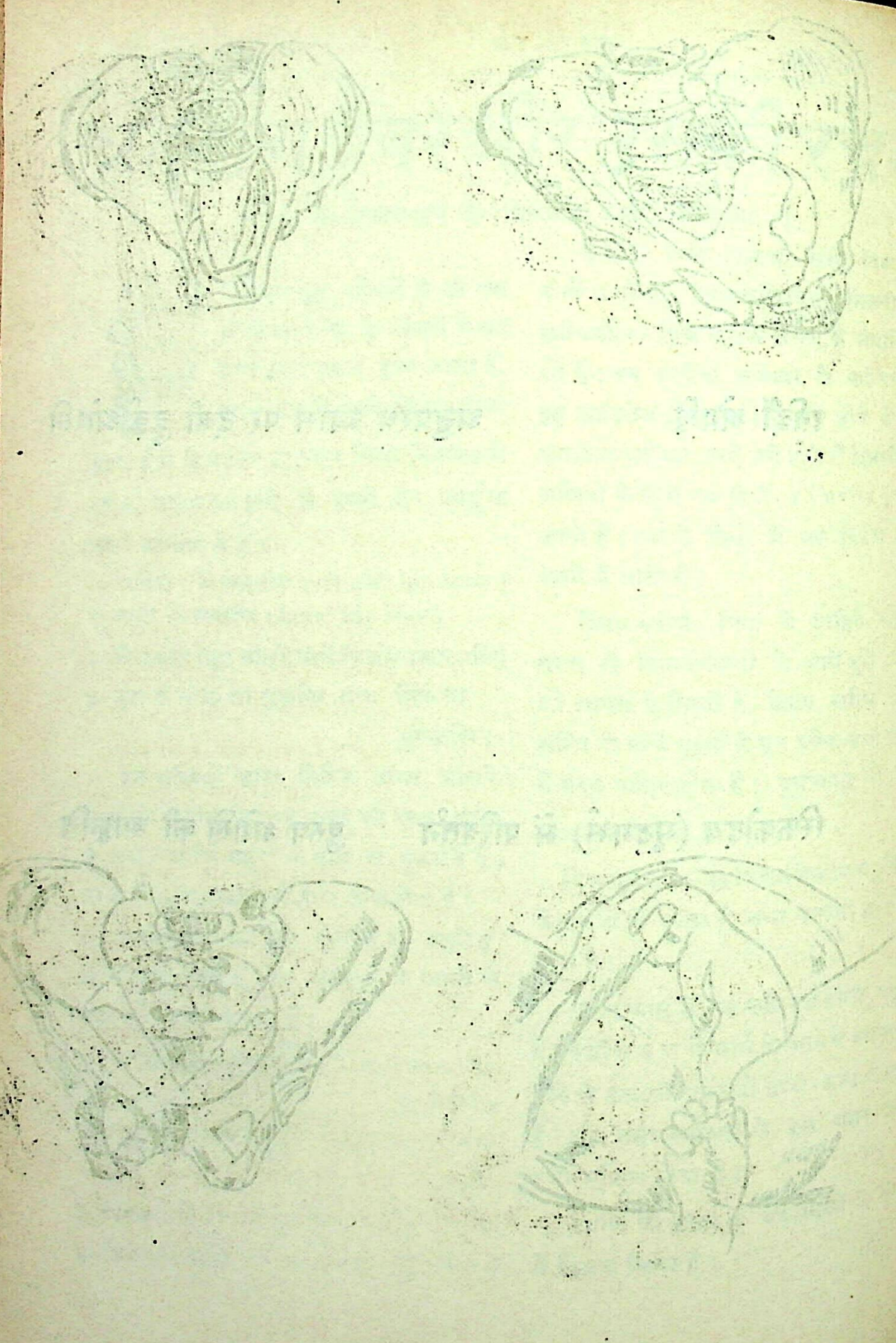

(१) असत्य श्रोणि

(२) सत्य श्रोणि

असत्य श्रोणि—FalspelVis श्रोणि केऊपर वाले चौड़े भाग को कहते हैं। इसे वृहत श्रोणि (Greator pelvis) भी कहते हैं यह भाग दोनों फलकास्थियों अर्थात जघनास्थियों के बीच में होता है, इसके पीछे कटि कशेरुका और सामने उदर की दीवाल का भाग होता है, मास पेशियों तथा उदर की दिवालों से ढका रहने के कारण यह गर्भयुक्त गर्भाशय को सम्हालने के लिए एक गद्दी सा काम करता है। साथ ही इसकी आकृति पोक की तरह ढालू होती है, अतः इसमें श्रोण का शिर प्रान्त अपने आप ही ढकेल दिया जाकर सत्य श्रोणि में पहुंच जाता है,। इसके अतिरिक्त यह आंतों को भी सम्हाले रहती है। प्रसव विज्ञान में इसकी विशेष महत्ता नहीं है क्यों कि यह भाग स्वयमेव चौड़ा होता है। इसके अंतः कूट व्यास (Interspinous Diameter) की लम्बाई एक तरफ के पूरोर्ध्वकूट से दूसरे तरफ के पूरोर्ध्व कूट तक ६॥ इंचसे १०॥ इंच होती है, और अंतः जघन चूड़ा व्यास (IntercristolDiameter) दोनों जघन चूड़ाओं के बाह्य ओष्ठों के बीच में १०॥ से ११॥ इंच होता है, इससे स्पष्ट समझा जा सकता है, कि प्रसव कर्म में इतना चौड़ा मार्ग विशेष महत्व नहीं रख सकता।

सत्य श्रोणि व लघु श्रोणि (Lssepelvis) यहभाग बहुत बड़े महत्व का है, अतः इसकी व्याख्या के लिये शारीर शास्त्रके ज्ञाताओं ने तीन भाग किये हैं। यथा:—

१-प्रवेश द्वार (Brim or inlet)

२-श्रोणि गुहा (Pelvis cavity)

३-प्रसव द्वारा (Out Let)

प्रवेश द्वार-यह वह स्थान है, जो सत्य व असत्य श्रोणि को अलग अलग करने का कारण होता है। जिसे एक कल्पित चपटी सतह के नाम से भी कह सकते हैं। इसका आकार कुछ गोंलाकार (अण्डाकृति) हुआ करता है। गर्भ प्रसव के वक्त इसकेद्वारा ही सत्य श्रोणि में प्रवेश करता है। अतः इसे प्रवेशद्वार कहते हैं। इसका वास्तविक आकार हृदय की तरह या गुडूचीपत्र वत माना जा सकता है, जो पीछे को अपेक्षा आगे को झुका होता है। इसके २, ३ व्यास हैं। १-अग्र पश्चात् व्यास (Antero posterior diameter

२—वाम तिर्यक व्यास (Leftoblique diameter) अनुप्रस्थ व्यास (Transvers diameter अग्र पश्चात व्यास-इसके सत्य संयुक्त व्यास(Anatomical) यह दो व्यास हैं। पहला ४। इञ्च तथा दूसरा ४ इंच लम्बा होता है।

वाम तिर्यक व्यास—यह बाईं तरफ की त्रिक श्रोणि कपाल संधि से दाईं श्रो० भ० संधि तक का अन्तर है. जो ४॥ इञ्च लम्बा होता है। दक्षिण तिर्यक व्यास भी इतना ही लम्बा है।

अनुप्रस्थ व्यास-यह व्यास अग्र पश्चात व्यास के साथ समकोण पर होता है। लम्बाई ५ इञ्च होती है।

श्रोणि गुहा (Cavity)—प्रवेश द्वार व प्रसव द्वार के बीच का भाग है। इसके सामने भगास्थि (Pubicbone) पार्श्वों पर कुकुन्द-

रास्थि (Ischi) तथा त्रिक कुकुन्दर बन्धन होते हैं। पिछली दीवाल पुच्छास्थि या अनुत्रिकास्थि से बनती है। यह टेढ़ी तथा दीर्घ होती है। लम्बाई ४॥ से ५ इञ्च होती है। भगास्थि वाली दीवार १॥ से २ इञ्च गहरी होती है। पार्श्विक दीवारें इनके बीच की हैं। इसका आकार गोल होता है।

प्रसव द्वार–यह इस सत्य श्रोणि में बहुत ही महत्व पूर्ण भाग है। इसका आकार सम चतुर्भुज से कुछ कुछ मिलता जुलता है। इसके आगे की सीमा भगास्थि, संधि के नीचे का किनारा है। दोनों पार्श्वों में दाहिनी व बाईं भगास्थि से बने हुए महराब की भुजायें, कुकुन्दर पिण्ड तथा लघु व बृहत कुकुन्दर बन्धन Great and lesser sacro sciatic ligaments) होते हैं। पीछे की तरफ अनुत्रिकास्थि होती है, इसको समझने के लिये इन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

पूर्व–पश्चात् व्यास–(Antero posterior diameter) यह विटप सन्धि के निचले किनारे के मध्य स्थान से त्रिक के अन्तिम कशेरुका तक का अन्तर होता है। अनुत्रिकास्थि के आगे झुके रहने पर इसकी लम्बाई चार इञ्च, और पीछे रहने पर पांच इञ्च भी हो सकती है।

अनुप्रसत्त व्यास–यह दोनों कुकुन्दर पिण्डों के अभ्यन्तरीय पृष्ठों को मिलानेवाली रेखा है। लम्बाई चार इञ्च होती है।

करण संयुक्त व्यास (Diagonal conjugate diameter)–यह त्रिक प्रान्त के अग्रभाग के ठीक बीच से लेकर विटप सन्धि के निचले किनारे के मध्य तक की दूरी है। लम्बाई प्रायः ४॥ इञ्च होती है।

बाह्य संयुक्त व्यास–(External conjugate diameter) यह अन्तिम कशेरुका के कशेरुकंटक की नोक (Spine) विटप सन्धि के सामने तक का माप होता है। इसकी लम्बाई ७॥ इञ्च से कम नहीं होती, इसमें ३॥ इञ्च अस्थियों व मांस पेशियों की लम्बाई भी मिश्रित है। बाकी ४ इञ्च प्रवेश द्वार के संयोग को प्रकट करती है।

ऊपर के इन व्यासों की लम्बाई (असत्य व सत्य) क्रमशः ऊपर से नीचे की तरफ घटती जाती है। इसके अनुसार ही श्रोणि गुहाका, प्रवेश द्वार चौड़ा तथा प्रसव द्वार तङ्ग होगा यह स्पष्ट समझा जा सकता है। जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, चार अस्थियां मिलकर मांस पेशियों के साथ श्रोणि गह्वर की रचना करती हैं, वैसे उनमें कई सतहें भी (Plans) प्रसव विज्ञाता स्थिर कर लेते हैं। जो समझने के लिये इसके आकार को स्पष्ट बतला सकें।

श्रोणि गह्वर का वर्णन (भीतरी सतह) तो प्रायः हो चुका। यदि हम श्रोणि के बाह्य आयतन को नापें तो अधो लिखित लम्बा पड़ेंगे।

१–श्रोणि कपाल के सामने व नीचे के कंटकों की दूरी १० इञ्च।

२ श्रोणि कपाल धारा के बीच की दूरी (Inter crista measurment) ११ इञ्च

३–श्रोणिचक्र के पश्चात् दीवार की ऊंचाई ५॥ इञ्च

४–श्रोणि चक्र के पश्चात आगे की दीवार की ऊंचाई १॥ इञ्च

५–कटि के अन्तिम कशेरुका और भगास्थि के ऊपरी किनारे की दूरी ७॥ इञ्च।

६–त्रिक के नोक और विटप सन्धि के नीचे

के किनारे के बीच की दूरी ४॥ इञ्च—

७-उर्वस्थि महा शिराओं की दूरी १२॥ इञ्च।

८-दोनों श्रोणि कपालों के पश्चात ऊर्द्ध कंटक के नीचे की दूरी ३॥ इञ्च इत्यादि।

यह पहले के वर्णन, स्वस्थ स्त्री के श्रोणि के हैं। अस्वस्थ तिर्यक चिपटी, टेढ़ी तथा पक्षाघातिक श्रोणियों में यह स्थान व लम्बाई पृथक स्थलों पर पृथक हो होगी। जिन रमणियों के श्रोणि इस आकार के होते हैं, उनमें प्रसव सरलता से होता है, किन्तु अप्राकृतिक श्रोणि रचना वालियोंमें प्रसव कठिनाई से होता है बहुतों में तो श्रोणि रचना ही गर्भ स्राव को हेतु होती है। जिन स्त्रियों को गर्भ रह कर हमेशा स्राव हो जाता हो उन्हें अपने भाग्य को खराब न समझ कर इस की परीक्षा चतुर स्त्री चिकित्सक (लेडी डाक्टर) से दिखला कर करवाना उचित है, इनका वर्णन करने के पहिले यह उचित है, कि श्रोणिका का पूर्ण विवरण बतला दिया जावे।

सत्य श्रोणि की प्रधानता प्रसव कर्म में अधिक है। इसकी स्थिति को ठीक रखने के लिए इसमें नरम तन्तु व मांस पेशियां अधिक भाग लेती है। प्रवेशद्वार में (Brim) कटिल घिनी पेशियां (PSOASMUSELES) श्रोणि के दोनों ओर से आकर अनुप्रस्थ व्यास को कुछ तंग कर देती है, अतः प्रसव में मार्ग विस्तार भी करना इनका ही कार्य है, श्रोणि गुहा में मांस पेशियों के होने के कारण पीछे के दोनों पार्श्वों में तंगी आ जाती है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय की दीवार व मलाशय कानिकट वर्ती होना भी उक्त प्रभाव पैदा करता है, इन में के प्रसव द्वार में श्रोणि तली होती है। इसको समझने के लिये योनि वा गुदा का प्रदेश समझना चाहिए। इसमें तीन स्रोत होते हैं, मूत्रनाली, योनि व गुदा जो त्वचा झिल्ली व मांस पेशियों से बनते हैं। पुरुष में यह वह भाग है, जिससे गुदा या मूत्र प्रवेक नली है। स्त्रियों में इस प्रान्त का आधे से अधिक भाग योनि प्रान्त घेरता है। इसको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। मूत्रजननेन्द्रिय विभाग व गुदा प्रान्त (URO-GENITAL and Ischior e TALI I ISION——

इस प्रसव द्वार की पेशियों में सर्व प्रधान मलद्वारोत्थापिका पेशियाँ हैं। प्रसव में इनका कार्य भी सबसे अधिक है। यह विटप संधि से होती हुई पीछे अनुत्रिकास्थि पर जा लगती हैं, इनके मिलने से वह प्रान्त घोड़े के नाल के आकार का अर्द्ध गोलाकार होता है, यहां पर कुछ तन्तु और भी लगे होते हैं। जो योनि प्रान्त में भी जाकर लग जाते हैं।

गर्भावस्थामें ये मलद्वारोत्थापिका पेशियां मोटी व दृढ़ हो जाती है, उस समय परीक्षा करने पर ये मोटी रस्सी की तरह मालूम पड़ती हैं। इनके संकोच से मलद्वारा तथा योनि दोनों कुछ २ ऊपर व आगे को उठ जाते हैं। इस तरह इस स्थल के श्रोणि आधार में गर्भाशय, मल व मूत्राशय इन सबों का आधार स्वरूप है। यह आधार यदि दुर्बल हो जाय, तो गर्भ अपने स्थान से भ्रष्ट हो सकता है, इस तरह सत्य श्रोणि के प्रत्येक प्रान्त प्रसव कर्म में बड़े महत्व के हैं।

यदि स्त्री (प्रसवा) की श्रोणि गह्वर प्राकृतिक न होकर, अप्राकृतिक है, जैसे नीमत्व श्रोणि—

(RoverTPeLvis) अथवा – कुबड़ी श्रोणि KYPHOTicPeLvis तो पूर्ण कालके गर्भ प्रसव में शल्य क्रिया द्वारा उदर विदारण करने परही प्रसव कराना पड़ेगा। अतः चिकित्सक को प्रसव के पूर्व (२ या ३सप्ताह) ही प्रसवा के प्रसव-मार्ग की परीक्षा कर लेना उचित है। चपटी श्रोणि मार्ग (FLaTpeLvis) अस्थि माई व इत्यादि कारणों से जैसे बाल्य काल में अस्थि-मृदुता (RiCKeTs)—इत्यादि का हो जाना जिससे चलते वक्त या बैठते वक्त इस पर ज़ोर पड़ने से श्रोणि की अस्थियां चपटी हो जाती हैं। अतः इन अप्राकृतिक श्रोणियों के ज्ञान न होने से कभी २ चिकित्सक को बहुत कठिनाइयां उठानी पड़ती है। अतः परीक्षा द्वारा इसकी नाप लेकर समझ कर, तब प्रसव कर्म में प्रवृत्त होना प्रत्येक चिकित्सक का कर्त्तव्य है। इस के न जानने से वह प्रसूता तथा भ्रूण दोनों के प्राणों का नाश कर सकता है। अतः इसका ज्ञान अवश्य होना हिये।

—*—

गर्भाधान—

ले०—कविराज, रामदास जी, आयुर्वेदाचार्य

शुक्राणु और डिम्ब के संयोग को "गर्भाधान" कहते हैं, गर्भाधान से जो चीज बनती है, वही गर्भ है। वैसे तो गर्भाधान के बहुत से उपकरण हैं। योनि गर्भाशयादि किन्तु यहां पर मुख्य प्रयोजन २ से है।

१—शुक्र—(spemotosoon)

२—शोणित या रज (Ovum)

स्त्री पुरुष के संसर्ग से पुरुष का वीर्यपात होता है, फिर यह वीर्य स्त्री के गर्भाशय में पहुंच कर शोणित से मिल कर एक कोष बनाता है। जिसको गर्भया (Fertilisedovum) शुक्र शोणित कोष कहते हैं। पाश्चात्य मतानुसार मैथुन के बाद शुक्राणु गर्भाशय में पहुंच कर शनैः २ डिम्ब प्रणाली में पहुंचते हैं।

गर्भाधान के लिये केवल एक ही शुक्राणु की आवश्यकता समझी जाती है, इन बहुत से शुक्राणुओं में से केवल वही शुक्राणु डिम्ब तक पहुंच पाता है, जो कि सबसे प्रबल हो, फिर यह शुक्राणु डिम्ब से चिपट जाता है, और डिम्ब के चारों तरफ लगी हुई सेलों के भीतर जाकर डिम्ब में पहुंच जाता है।

यह शुक्राणु व डिम्ब मिलाप अधिकतर डिम्ब प्रणाली में ही होता है, कभी २ गर्भाशय में भी हो जाता है, इन शुक्राणु व डिम्ब से मिली सेल को गर्भ सेल या भ्रूण सेल कहते हैं। इसके बाद यह सेल डिम्ब प्रणाली से गर्भाशय में आजाती है, और गर्भाशय की श्लेष्मिक कला से चिपट जाती है। फिर इस भ्रूण सेल से कट कर दो सेलें

बन जाती हैं। फिर २— से ३—३से ४ इस तरह बहुत सी सेलें बन कर तैयार हो जाती हैं, परिणाम स्वरूप इस सेल समूह से एक गोलाकार भाग बन जाता है, आयुर्वेद ने इस गोलाकार सेल समूह को कलल संज्ञा दी हैं। यथा—"तत्र प्रथमे मासि कललं जायेत" इसकलल के कई स्वरूप होते हैं। जिसको आगे जाकर स्पष्ट करूंगा, कभी २ इस कलल को वायु, दो वा इससे भी ज्यादा भागों में विभक्त कर देता है, परिणाम स्वरूप २—३ वा इससे भी अधिक गर्भ पैदा हो सकते हैं, यथा—

बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षि मागतौ यमावित्यभिधीयते धर्मेतर पुरः सरौः सु० श० अ० ३॥

आज कल भी प्रायः यमल गर्भ सर्वाङ्ग से पूर्ण जीवितावस्था में पाये जाते है।

सूक्ष्म गर्भ वाउसके अंग प्रत्यङ्गादि

स्त्री पुरुष के रज और वीर्य के अनुकूल तथा जीव के कर्मानुसार अङ्ग प्रत्यङ्ग व अवयव उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद मतानुसार गर्भ में आरम्भ होते ही कुल सूक्ष्म शरीर(EmBryo nicBody) विद्यमान रहता है यथा—

"सर्वाङ्ग प्रत्यङ्गानि युगपत्संभवन्ति गर्भस्य— भ्रूणस्य सूक्ष्म त्वात्रोपलभ्यन्ते वंशाङ्कुर चूत फल वृक्ष,, और फिर यही सूक्ष्म गर्भ वायु द्वारा विभक्त होता है, अर्थात् दोष धातु मल व अंग प्रत्यङ्गों को जुदा २ यथावस्थित करता है, और फिर तेज अग्नि तत्वइसे पकाता है। तथा जल तत्व क्लेदन पचहुंता है, और पृथ्वी तत्व" कड़ा मूर्तिमान्, कर देता है, तथा आकाश,, तत्व द्वारा इसमें बुद्धि प्राप्त होती है,

इस प्रकार बढ़ा हुवा गर्भ हाथ पांव, जिह्वा, नासिका कर्ण और नितम्बादि अङ्गों से युक्त हो जाता है, अब इसको ६अंगों में विभक्त करते हैं २, ऊर्ध्व शाखा, २ अधोशाखा, १ धड़ १शिर, इस तरह यह ६ अंगों वाला हुआ। यूनानी वाले अंड कोष और लिंग को सातवाँ अङ्ग मानते हैं। अतयेव "हफ्तअंदाम"—अर्थात् सात अङ्गों वाला शरीर कहते हैं।

गर्भ पोषण— यह दो प्रकार से होता है,

१—जब कि भ्रूण कलल रूप में विद्यमान रहता है, तथा नाभि नाड़ी भी स्पष्ट नहीं होती ऐसी अवस्था में गर्भ स्थिति से १ मास पर्य्यन्त गर्भिणी की रस बहाने वाली धमनियों के सारभूत द्रव पदार्थ से गर्भ का पोषण होता है, एक १ मास पश्चात् दूसरे मास में भ्रूण के बाह्यावरण में रक्त बाहिनियां बनने लगती हैं। जिनमें रक्त बहता हैतथा इन रक्त बाहिनियों में गर्भ कला के गढ़ों से रक्त के आवश्यकीय पदार्थ का आचूषण होकर रक्त बाहिनयों द्वारा भ्रूण के गात्र में पहुंचता है।

२—यह पोषण उस दशा में होता है जब कि कमल द्वारा गर्भ का पोषण होता रहता हैं, जो आगे स्पष्ट हो जावेगा।

नाभिनाल

(NAVELCORD)

उत्पत्ति—यह गर्भ के प्रारम्भ में गर्भित रज कोष OVUM के बीच के परत— MESODCRMORBLAZT के आदि नाभिनाल VENTRALSTALK से बनाता है, तथा—

३ मास के भीतर नाल में सूक्ष्म गर्भ EMBRYOके नीचे दिये अवयव भी प्राप्त होते हैं।

१—आदि नालके रक्तस्रोत BLOODVESSELS यह गर्भ से शिरा अंकुरों के भीतर तक जाते हैं।

और ये ही कालान्तर में पुष्ट होकर नाल की की शिरा और धमनी हो जाते हैं। नाल एक तरफ भ्रूण की नाभि से और दूसरी तरफ कमल से लगा रहता है, आयुर्वेद में इसका नाम नाभि नाड़ी आता है, यथा—"गर्भस्तु नाभि नाड्ययनैः नाभ्यांहि अस्य यनाभि नाड़ी प्रसक्ता सा नाभ्याञ्च अमराअमराचअस्यमातुःप्रसक्ता हृदये" च०शा०अ० ६

वास्तव में नाल कई नालियों से बनता है, किन्तु इसके मुख्य अवयव २ धमनी और १ शिरा हैं, इसकेअतिरिक्त और भी कई चीजें होती है जो एक प्रकार के लसदार पदार्थ से आपस में मिली रहती हैं, और इन सबके ऊपर आवरण चढ़ा रहता है।

नाभि नाल की लम्बाई सामान्यतः उतनी ही होती हैं, जितनी भ्रूण की। इन धमनी व शिरा की कमल में जाकर अनेक सूक्ष्म शाखायें हो जाती हैं, तथा—कमल के वाह्यावरण के प्रत्येक अंकुर में ये छोटीं २ शाखायें विद्यमान रहती हैं।

कमल—वह स्थान जहां से भ्रूण नाल द्वारा गर्भाशय से लटका रहता है, कमल कहते हैं। यह कमल गर्भकला से जिससेकि अंकुर विशष्टावरण चिपटा रहता है, उससे बनता है,

इसका उत्पत्ति स्थान—यह गर्भाशय के गात्र के उपरले भाग या सामने या पीछे की दीवार में बनता है, कभी गर्भाशय के अन्तमुख के निकट बन जाता है, ऐसी अवस्था में गर्भवती व गर्भ दोनोको हानि बहुत कम होती है,

कमल की आवश्यका या कार्य

१—यह भ्रूण धारक अंग है। इसके जरिये भ्रूण माता के शरीर से जुड़ा रहता है,

२—कमल द्वारा भ्रूण का पोषण होता है,

३—कमल भ्रूण के लिये फुफ्फुसों का कार्य करता है अर्थात् कमल भ्रूण का श्वासोच्छ्वास यन्त्र है।

४—कमल के ही द्वारा भ्रूण अपने मलिन पदार्थों को त्यागता है, अर्थात् कमल रक्त शोधक यन्त्र का काम देता है,

पूर्व लिखा जा चुका है कि नाल में २ धमनी और १ शिरा होती हैं इन्ही २ धमनियों द्वारा रक्त भ्रूण के शरीर से कमल में पहुंचा करता है। तथा शिरा द्वारा अशुद्ध रक्त कमल को भ्रूण के शरीर से लौटता तथा पुनः शुद्ध होता है।

गर्भ का वृद्धि क्रम

प्रथम मास—प्रथमे मासि कललं जायते" अब यहां पर कलल के कई भागकरना होते हैं, क्यों कि शुक्र शोणित के संसर्ग के परिणाम स्वरूप १ मास तक कलल के कई रूपबदलते हैं। यथा पांच रात्रि या दूसरे सप्ताह तकबुद्बुद वत् तथावागभट्ट मतानुसार" "प्रथमे-मासि सप्ताहात् कलली भूत"वा० शा० अ० १, तृतीय सप्ताह में अर्बुद एवं प्रथम मासतक शनैः २कलल का उत्तरोत्तर घन पिंड होता हैं।

द्वितीय मास—इस मास में शीत उष्ण तथा वायु से परिपाक हुये पृथिव्यादिक महाभूतों का कड़ा संघात होकर पिंड़ सा बनजाता है यदि यह पिंडा गोलाकार हो तो पुलिङ्ग यदि पेशी हो तो

लिङ्ग और यदि रसोली या अर्बुद बत्आकर हो तो नपुंसक लिङ्ग का बोध हो जाता है, इस दूसरे मास का गर्भ प्रायः मुर्गी के अंडे के बराबर होता है, इस समय आदि नाभि नाल की रक्त बहाने वाली सूक्ष्म नाड़ियां Blood Vessels इस बक्त जरायु के भीतरी आवरण के अंकुरों Chorionic villi में पहुंच जाती हैं, और नाभि कमल को बनाने वाले शिराङ्कुर बढ़ने लगते हैं। हँसली अस्थि, और हनु की तरुणास्थियों में अस्थ्युत्पादक केन्द्र Ossification centres उत्पन्न हो जाते हैं तथा जबड़ों के दायें बायें भागों के मिल जाने से मुख भी बन जाता है

तृतीय मास—"तृतीयं हस्त पाद शिरसां पंच पिडका निर्वर्तन्ते।" अर्थात् हाथ, पैर और सिर यह सूक्ष्म रूप से प्रकट हो जाते हैं। इस मास के गर्भ का व्यास प्रायः ४ इंच के लग भग होता है, देखने में नारंगी के बराबर मालूम होता है. इसका वजन डेढ़ छटाक के लगभग होता है, नाभि कमल पूरा बन जाता है, तथा स्त्री पुरुष चिन्ह भी प्रगट होने लगते हैं। नख बनना आरम्भ हो जाते हैं। शरीर की भिन्न २ तरुणास्थियों में अस्थ्युत्पादक केन्द्र बनने लगते हैं। नाल भी साढ़े तीन इंच के लगभग हो जाता है, आयुर्वेद मतानुसार इस समय तक धमनी के उपस्नेह By-osmosis से गर्भ जीता है, बाद में सत्वाहिनी नाड़ियों से गर्भ का हृदय माता से बँध जाता है, यथा "मातृजञ्चास्य हृदयं मातृ हृदयाभिसम्बद्धं रस वाहिनीभिः" च० शा० अ० ४ धमनी नामुप स्नेहो जीवयति सु० शा० अ० ३

इस तृतीय मास में गर्भ स्राव Adortion का अधिक भय रहता है संक्षेप से इस मास माता के हृदय व गर्भ के हृदय का घनिष्ट सम्बन्ध न होना ही है।

चतुर्थ मास-- इस महीने में समस्त अंग प्रत्यंग प्रगट हो जाते हैं, और गर्भस्थका हृदय भी प्रगट हो जाता है। हृदय के प्रगट हो जाने से तथा चैतन्य धातु व जीव का स्थान होने से शीघ्र ही गर्भ को इन्द्रियों में भी चैतन्यता आजाती है। अर्थात् जीवानुकूल भोग की इच्छायें माता में प्रगट होने लगती हैं, इस समय से प्रसव पर्यन्त गर्भवती स्त्री दौहृदिनी या दो हृदय वाली Doudiehertaed कहते हैं।

पंचम मास— इस में मन अधिक चैतन्य हो जाता हैं वजन लगभग आध सेर, और गर्भ की लम्बाई करीब १० इंच होती है, सिर पर केश तथा शरीर पर रोम दिखाई देने लगते हैं, शरीर की त्वचा पर रोम कूप स्नेह भी मालूम होने लगता है। आंतों में अन्त्र मल Meconium भी पया जाता हैं।

षष्ठ मास— में बुद्धि उत्पन्न होती हैं, लम्बाई १२ इंच के करीब और वजन १। सेर के लगभग होता है।

सप्तम मास— में सर्वाङ्गप्रत्यंग स्पष्टतया पूर्ण हो जाते है यथा—"सर्वे सर्वाङ्गसम्पूर्णं सप्तमेव।" वा०शा० अ० १,

इस माह में लम्बाई १४ इंच के करीब वजन १॥ सेर के लगभग होता है पुतली व नेत्र के तिल Pupils of the eye परदे से बन्द मालूम होते हैं लड़के में वंक्षण तक मुष्क में

कृष्ण 'फोते' Testes प च जाते हैं। सामान्यतः इस मास के गर्भ की लम्बाई १७ इञ्च और वजन २। सेर तक हो सकता है, इस मास में बच्चा कुछ और मोटा हो जाता है, लोम भी कम हो जाते हैं। आयुर्वेद मतानुसार इस मास का गर्भ यदि उत्पन्न हो तो जीवित नहीं रहता क्योंकि ओज स्थिर नहीं रहताअर्थात् माता में रस वाहिनयों और संवाहिनियों Vessels of placnte के द्वारा माता के रुधिर रस के साथ २ ओज भी लौट जाया करता है।

अष्टम मास—अष्टमेऽस्थिरो भवत्योजस्तत्र जातश्चेन्न जीवते ओजोऽष्टमे संचारति न जीव त (वा-शा० अ० १) अष्टमे मासि ओजः परस्य रत आददाति गर्भस्य जन्म कार्यातमत ओज सो प्रनवस्थित्वात् च० शा० अ० ४

नवम मास—Time of delibery 9 the and 10 th months of pregnancy

नवम दशम मास में गर्भ २० इंच तक लंबा और ३॥ सेर तक वजनी हो सकता है और इन महीनोंमें प्रसव होजाता है किन्तु कभी कभी ११ वें १२ वें मास में भी बालक जन्मता है यदि इसके बाद उत्पन्न हो तो यह गर्भ नहीं होता किन्तु कोई विकार होता है।

गर्भाधान और भ्रूण वृद्धि

(ले० रसायनाचार्य कविराज पं० प्रतापसिंह जी प्रेसिडेंण्ट अ० भा० वर्षीय वैद्य सम्मेलन)

रज और वीर्य के जो जीवित कण हैं, उनके परस्पर सम्मेलन से ही भ्रूण का शरीर बनता है। भ्रूण गर्भाशय में २८० दिन या या साधारणतया ९ मास तक रहता हैं यह दिन मासिक धर्म के अन्तिम दिन से गिनने आवश्यक हैं।

गर्भवती के लक्षण

१—गर्भवती के जननेन्द्रिय का परिवर्तन।

२—उसके स्तनों की अभिवृद्धि और चूचक के आस पास नीले रङ्ग का घेरा सा बन जाना।

३—पेट का परिवर्त्तन अर्थात् बढ़ना।

४—मूत्राशय के लक्षण अर्थात् मूत्रका कष्ट के साथ आना इत्यादि।

५—रज कणों का परिवर्त्तन।

१—जननेन्द्रिय के अवयवों का परिवर्त्तन।

साधारण दशा में गर्भाशय ३ इञ्च लम्बा और ३। तो० के लगभग वजन में होता है, गर्भ रहने के पश्चात रज और वीर्यके कणोंका परस्प संयोग होकर जो भ्रूण बनता है वह ज्यों २बढ़ताहैत्यों २ गर्भाशय का आकार भी बढ़ता है, यहां तक कि लम्बाई में वह १२ से १४ इञ्च तक लम्बा हो जाता है, और वजन में १॥ से ३ पौण्ड तक भारी हो जाता है, इससे ज्ञात होता है कि गर्भ का

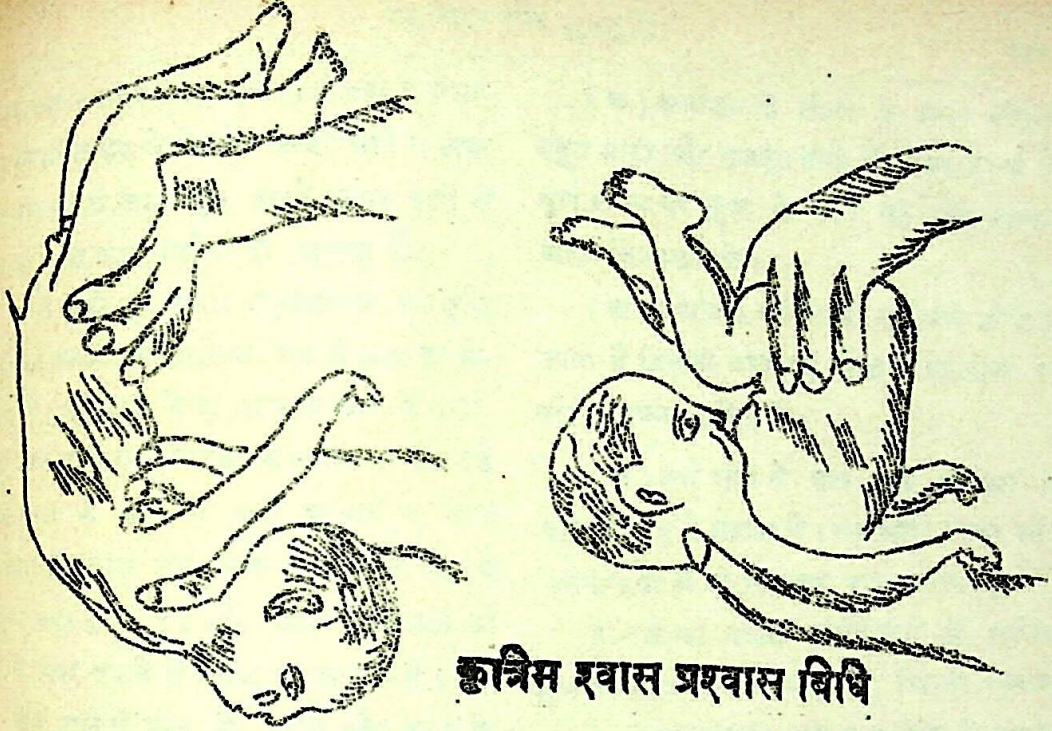

कृत्रिम श्वास प्रश्वास विधि

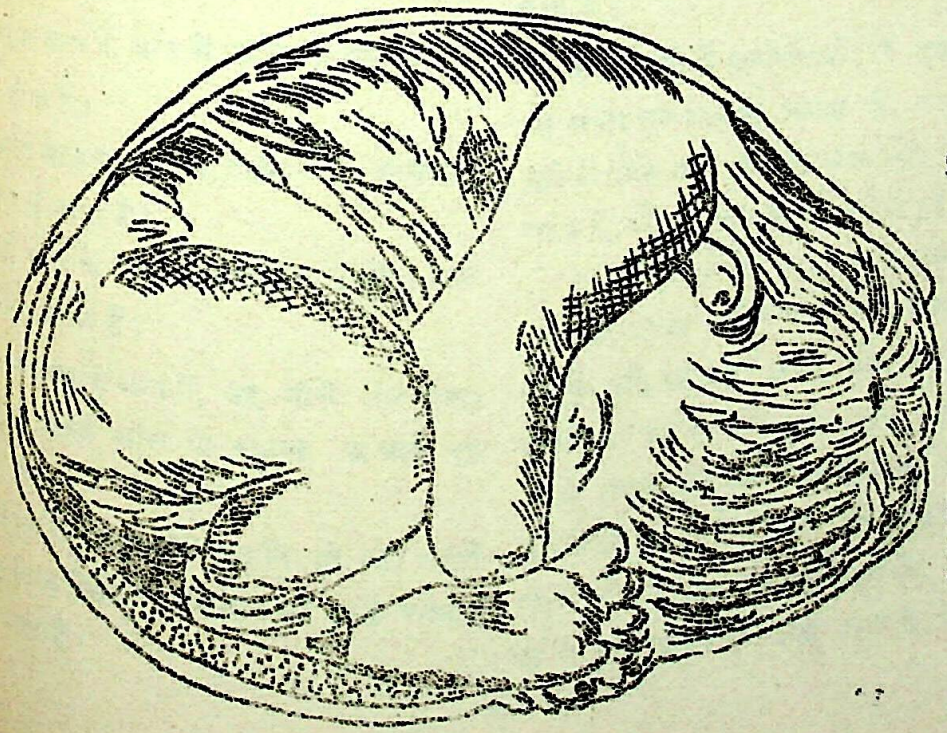

गर्भ में भ्रूण का स्वाभाविक आसन

WAFABAR PRESS
ETAWAH

समय ज्यों २ अधिक होता जाता है, त्यों २ गर्भाशय नियमित रूप से पेट के अन्दर धीरे २ ऊपर की ओर बढ़ता जाता है। इसके ऊपर बढ़ने से गर्भ का वृद्धि काल विदित हो सकता है।

नीचे लिखे हुए नकशों से गर्भाशय की वृद्धि की दशा का मासानुमासिक रूप से बोध हो सकता है। गर्भ रहने के दो मास के अन्त में गर्भाशय आकार में बड़ा नारङ्गी के समान हो जाता है तीन मास के अन्त में वही बढ़कर ६ मास के अन्त में उत्पन्न हुए स्वस्थ बच्चे के शिर के समान बड़ा होता है। और कमर के सामने की हड्डी के ऊपर दबाने से प्रतीत हो सकता है।

चार मास के अन्त में, नाभि और कमर के सामने की हड्डी के बीच में दृष्टि पड़ता है।

पांच मास के अन्त में, नाभि से १ इञ्च नीचे रहता है।

छः मास के अन्त में, नाभि के बराबर होता है।

सात मास के अन्त में नाभि, से तीन अंगुल ऊपर होता है।

आठ मास के अन्त में, नाभि और आमाशय के बीच में रहता है।

नौ मास के अन्त में, आमाशय के मध्य भाग के बराबर होता है।

दस मास के अन्त में, वह नीचे गिर जाता है, और आठवें मांस के समान ऊंचाई रह जाती है।

केवल गर्भाशय की आकृति ही नहीं बढ़ती किन्तु निम्न लिखित परिवर्तन भी उनके बनावट में हो जाते हैं।

(क) गर्भाशय के भीतर के मांस पेशियां बहुत मोटी और मजबूत होती हैं, जिससे गर्भ के पूर्ण समय पर भ्रूण के नीचे की ओर दबाकर बाहर निकाल सके।

(ख) गर्भाशय की ग्रीवा मृदु और छोटी हो जाती है जिससे बच्चा इस छिद्र से आसानी से बाहर निकल सके।

(ग) गर्भ रहने के बाद जब गर्भाशय में परिवर्त्तन होने लगता है। तब श्रोणि गह्वर और जननेन्द्रियों में भी रूपान्तर हुआ करता है।

१–रक्त का प्रवाह जननेन्द्रियों में अधिक होने का कारण योनि मार्ग की झिल्ली गुलाबी रङ्ग से अपना जामनी रङ्ग बदल लेती है, अर्थात् पहले जो रङ्ग गुलाबी था, वह गर्भाशय में जामनी हो जाता है, गर्भ रहा है या नहीं ऐसा संदेह उत्पन्न होनेपर इस रङ्ग के परिवर्तन को देखकर अपना सन्देह निवारण किया जा सकता है।

२–गर्भिणी के जननेन्द्रियों से एक चिकना सा सफेद द्रव निकला करता है, उसके निकलने से योनि मार्ग खूब मुलायम और फैला हुआ रहता है, और उसकी दीवारें उभरी हुई रहती हैं।

३–योनि मार्ग में बड़ी २ शिरायें मुड़ी हुई रहती हैं, इनको बड़े ध्यान से देखना चाहिये। क्योंकि यदि यह फट जाय, और रक्त का क्षय अधिक हो तो गर्भिणी की दशा शोचनीय हो जाना सम्भव है। जब शिरायें मोटी और खींची हुई फटने को होती हैं तब उनके ऊपर सफेद २ धारियां सी दीख पड़ती हैं जैसा कि गर्भिणी के पेट के ऊपर प्रायः देखादेखी जाती है, ऐसी दशा

में होनेपर तुरन्त ही विद्वान चिकित्सक की सम्मति प्राप्त करे।

४-श्रोणि गह्वर के अस्थियों के बहुतसे जोड़ और बन्धन गर्भाशय में कोमल और शिथिल हो जाते हैं। ऐसी दशा में आवश्यकता होनेपर त्रिकास्थि और अनुत्रिकास्थि जोर देकर पीछे हटाई जा सकती है। इस संधि शैथिल्यके कारण गर्भिणी को चलने फिरने में कुछ कष्ट होता है। और कुछ दिनके लिये वह चलने में लड़खड़ाने लगती है।

२—स्तनों का परिवर्तन

१—गर्भ रहने के २ मास के अनन्तर गर्भिणी के स्तन मोटे और कठिन होने लगते हैं और उसमें गांठें सी प्रतीत होने लगती हैं।

२-गर्भवती के स्तनों में कभी २ दर्द भी होता है।

३-स्तनों के ऊपर की शिरायें (Veins) बढ़ती रहती हैं और गर्भ के अन्तिम दिनों में इनकी वृद्धि अत्यधिक हो जाती है।

४—स्तनों के आग्रभाग (चूचक) खड़े रहते हैं। और उनके आस पास के रंगीन स्थान का रंग बहुत गहरा हो जाता है,

५—यदि स्तनों को दबाया जाय तो दूध जैसा गाढ़ा विकृत २ पदार्थ उसमें से निकलता है।

३ उदर गुहाकी दीवार का परिवर्तन

जब गर्भ बढ़ने लगता है। तब उदर के चर्म की चौड़ाई अधिक होने लगती है, और भीतर का चर्म फट जाता है, जिसे मांसके अन्दर गुलाबी रंग की लकीरें उदर के चारों ओर एवं जंघा के अन्दर की ओर दिखाई देने लगती हैं, बच्चा उत्पन्न होने के पश्चात यह लकीरें सफेद भी हो जाती हैं, और आजन्म फिर नहीं मिटती।

४—मूत्राशय के लक्षण

गर्भ के प्रथम तीन मास में, और दसवें मास में गर्भाशय मूत्राशय की ओर अधिक झुका हुआ रहता है, जिससे गर्भवती को बार २ पेशाब करने की इच्छा होती है, और कभी २ पेशाब भी बन्दहो जाया करता है। जब पेशाब बंद हो जाय, तो मूत्र निकालने की नली (कैथेटर) डाल कर मूत्र निकाल देना चाहिये बार २ पिशाब करने की इच्छा होना कोई रोग नहीं है, यह एक गर्भिणी की स्वाभाविक दशा ही समझी जा सकती है। कभी २ गर्भाशय के नीचे की ओर गिर जाने से भी यही दशा होती है।

५—बीज में परिवर्तन

गर्भ रहने के बाद वीर्य और रज के कण परस्पर मिल कर गर्भाशय की भीतरी कोमल झिल्ली तक चले जाते हैं और वहांपर पोषित होकर पूर्ण शिशु के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

गर्भपात- गर्भ स्रावकी दशामें परिचारिका को यह जानना आवश्यक है, कि बीज कण कितने दिन का गिर गया, उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये गर्भ के प्रति मास का स्वरूप वर्णन करते हैं।

प्रथम मास-प्रथम मास के आरंभ में बीज कण समुदाय एक छोटी सी झिल्ली का गोला सा बना हुआ बिना किसी अवयव के दिखाई पड़ता हैं, किन्तु चतुर्थ सप्ताह के अन्त में एक दर्पण विमल थैली कबूतर के अंण्डे के समान हो जाती हैं, उसमें श्वेत शुद्ध द्रव रहता है, इस द्रव

में एक श्वेत रंग का मटर के समान आधे इंच लम्बा अवयव फिरता हुआ सा दिखाई पड़ता है,

द्वितीय मास—द्वितीय मास के प्रारम्भ में, दर्पण विमल थैली बतक के अंडे के समान बड़ी हो जाती हैं, आठवें सप्ताह के अन्त में इस थैली का ऊपरी भाग खरदरा और झुर्रीदार हो जाता है, और इसके अंदर जो कठिन अवयव होता है, वह एक इंच से अधिक लंबा और उसके दोनों बाजू पर आंखों के दो काले धब्बे से दिखाई पड़ते हैं, और हाथ पैरों के अंकुर भी प्रतीत होने लगते हैं।

तीसरा मास—तीसरे मास में थैली नारंगी के समान मोटी हो जाती है, और उसके ऊपर की झुर्रियां अदृश्य हो जाती हैं, और वास्तविक आलनोल (Plaecanta) बनना आरम्भ हो जाता है, बच्चा ३ इंच लम्बा. और वजन में ३ औंस यानी (साढ़े ७ तोला) हो जाता हैं। उसके हाथ पैर साफ २ दृष्टि आने लगते हैं। किन्तु कन्या पुत्र का भेद नहीं मालूम हो सकता हैं।

चौथा मास—चौथे मासमें भ्रूण ६ इंच लम्बा और वजन में आधा पौंड अर्थात् २० तोला के लगभग हो जाता है, इस समय कन्या और पुत्र का भेद भी स्पष्ट प्रतीत हो सकता है, इस मास के भ्रूण के शरीर पर रोएं होते हैं।

पांचवां मास—पांचवें मास में भ्रूण ९ या १० इंच लम्बा और वज़नमें १ पौण्ड (अर्थात् ४० तोला) के लगभग हो जाता है, बच्चे के शिर पर बाल आने भी आरम्भ हो जाते हैं, और उसके शरीर पर एक चिकना पदार्थ लगा रहता है। जो साधारणतया नवजात शिशु के शरीर पर भी लगा रहता है।

छटामास—छटे मास में बच्चा १२ इञ्च लम्बा और वज़न में २ पौण्ड अर्थात् ८० तोला के लगभग हो जाता है, मुख और—पालक बनने आरम्भहोते हैं, किन्तु पलक आपस में बराबर मिले रहते हैं।

सातवां मास—सातवेंमास में बच्चा १५ इञ्च लम्बा ढाई से तीन पौण्ड यानी (१२० तोला से १३० तोला के लगभग।) तक हो जाता है, इस समय नेत्रों के पलक खुल जाते हैं। बच्चे की जीने की सब से पूर्ण यही अवस्था है अर्थात् २८ सप्ताह का शिशु अगर सुरक्षित रक्खा जाय, तो वह सुरक्षित रह सकता है।

आठवां मास— आठवें मास मेंबच्चा १६ इञ्च और और बजन में ४ पौण्ड अर्थात् (१६० तो० के लगभग) हो जाता है। और मोटाभी होने लगता है, इसके ऊपर को चमड़ी पूर्ववत् झुरी दार नहीं रहती, एवं शरीर के सब रोएं मिट जाते हैं।

नवां मास—नवें मासमें बच्चा १८ इंच लम्बा और वजन में ४॥ पौण्डअर्थात् (१८० तोला के लगभग) हो जाता हैं। और उसके नाखून अंगुली के अन्तिम किनारे तक नहीं पहुंचते।

दसवां मास—दसवां मास बच्चा उत्पन्न होने का पूर्ण समय गिना जाता है। इस समय बच्चा २० इंच लम्बा, और वजन में ७ पौण्ड (अर्थात् २८० तोला के लगभग) हो जाता है, नाखून अंगुली के आगे के किनारे से और बढ़ जाते हैं, शिर के बाल एक से २ इंच तक लंम्बे हो जाते हैं।

नोट— बच्चे की लम्बाई जानने के लिये साधारणतया महीनों को दो से गुणा देने पर इंचों में लंम्बाई जानी जा सकती है, पूर्ण मास के बच्चे के शरीर की बनावट भली भांति जानलेनी चाहिये उस में निम्न लिखित वस्तुयें होती है।

(१)—अपरा (Placanta) आलनोल
(२)—झिल्ली (गर्भ कला)
(३)—नाल (४) गर्भजल (५) बच्चा

(१)अपरा या आलनोल यह वह झिल्ली है जिस के द्वारा भ्रूण माता के शरीर से खुराक प्राप्त करता है। गर्भ के पूरे दिनों में यह झिल्ली मोटी गोल और वज़न में १ पौण्ड के लगभग हो जाती है। इसके मध्य केन्द्र में सब से अधिक मोटाई होती है इस मोटाई का नाप लगभग सवा६ इंच के होता है। इस के किनारे वाले भाग पतले होते हैं।

यह कला या झिल्ली गर्भ कलाके साथ संयन्ध रखती है। इसका भीतरी अंग चिकना और गर्भ कला से घिरा रहता है, इस झिल्ली के केन्द्र से ही गर्भ नाल निकलती है। इसका बाहरी भाग जोकि गर्भाशय से लगा रहता है खुरदरा होता है और अनेक असम भागों में विभक्त रहता है।

२— गर्भकला— गर्भ कला उस थैली को कहते हैं। जिसके द्रव में बच्चा गर्भाशय के अंदर तैरता रहता हैं यह झिल्ली दो तहों में बनी हुई होती है। इस की दोनों तहे अगर तुम चाहों तो हाथ से अलग करके देख सकते हो बाहर जो तह है वह आल नाल के किनारों पर रुकी रहती है, और दूसरी भीतर वाली तह अपरा के अभ्यान्तर में पहुंच कर गर्भ नाल के मूल में समाप्त हो जाती है।

३—नाल—यह नाल बच्चे की नाभी से चल कर अपरा के मध्य भाग में पहुंचता है, और यह रक्त वाही धमनी शिराओं से रस्सी की तरह बंधा हुआ रहता है, इसी नाल के द्वारा माता के शरीर से शिशु के शरीर में पोषण द्रव्य पहुंचता है, इस की लम्बाई २२ इञ्च के लगभग होती है।

४ गर्भजल— गर्भजल, उस जल को कहते है, जो उपरोक्त झिल्ली से बनी हुई थैली में भरा रहता है, और जिसके अन्दर बच्चा गर्भाशय में तैरता रहता है, यह जल वज़न में २ से ४ पाइन्ट (अर्थात् १०० से २०० तोले) तक होता है।

५- बच्चा— भ्रूण के शरीर की बनावट प्रति मास के (परिवर्तन के रूप) पहिले लिखे जाचुके है, किन्तु इसके सिरकी विचित्र बनावट के विषय में कुछ लिखना विशेष आवश्यक है। सुख पूर्वक प्रसव होने में बच्चे के शिरकी ही प्रधानता रहती है। गर्भ के पूरे दिन होने पर बच्चे का शिर लगभग ४॥ इंच लंबा और पौने चार इंच चौड़ा होता है। बच्चे का तालू Roofofthe skull युवा मनुष्यों के भांति दृढ़ अस्थिओं की संधि वाला नहीं होता है। इसकी संधियों के मेल के स्थान पर एक झिल्ली चढ़ी रहती है, जिसके द्वारा अस्थियां प्रायः ढीलीसी जुड़ी रहती है। इनके इस भांति के मिलाव में प्राकृतिक रहस्य यह है, कि प्रसव के समय बच्चे के शिर दबा कर चाहे जैसी शकल में बाहर निकाला जा सकता है।

शिर के ऊपरी हिस्से में दो गड्ढे दृष्टि पड़ते है, उन में एक सामने तालू के ऊपर, और दूसरा चोटी के स्थान के पीछे की ओर होता है। अगला गड्ढा ईंट Diamonp की शकल

का होता है। और पिछला त्रिकोणाकार होता है। प्राचीन लोग अगले को ब्रह्मरन्ध्र और पिछले को शिवरन्ध्र कहते हैं। इन दोनों गड्ढों का पारस्परिकसंबंध बहुतध्यान के साथ स्मरण रखना आवश्यक है, क्योंकि जब प्रसव के समय आभ्यन्तरिक परीक्षा करोगे तब उन्हीं को स्पर्श करके यह बतला सकोगे कि बच्चे का शिर किस दशा में बाहर आ रहा है।

बच्चा गर्भाशय में किस प्रकार रहता है ?

गर्भ के पहिले तीन चार मासों में बच्चा स्वतन्त्रता के साथ सब तरफ घूमता रहता है, किन्तु जब परियात लंबा हो जाता है। तब शिर छाती से लग जाता है। पीठ अगली ओर झुक जाती है और हाथ छातीको क्रास करके (अर्थात् सतिये की भांति काटकर) दोनों बगलों में लग जाते हैं पैर सिकुड़कर ऊपर की ओर हो जाते हैं। और यहभी एक दूसरे को सतिये की भांति क्रास करते हैं। उस समय बच्चा ऐसा बन जाता है कि अमरूद की शकल वाले गर्भाशय में भली भांति समा सकता है। यह प्राकृतिक नियम है, कि बच्चा गर्भाशय में उल्टा शिर रहता है, प्रायः १०० में से ९७ बच्चे शिर के बल ही पैदा हुआ करते हैं, और तीन पैरों के बल और दो सौ प्रसवों में लगभग एक बच्चा आडा (क्रोस बना) उत्पन्न होता है। गर्भाशय में रहने पर बच्चा माता की पीठ की ओर या सामने की ओर देखता रहता हैं। और बायें या दायें ही हटाया जा सकता है। इस प्रकार की चार भिन्न दशायें गर्भाशयमें देखी जाती हैं, इन चारों में ठीक वह दशा मानी जाती है जब गर्भाशय में बच्चे की पीठ सामने और बाईं ओर हो

गर्भावस्था में सावधानी

[ले०—डा० शिवदत्तप्रसादजी शर्मा, वैद्यभूषण, उन्नाव]

स्त्री के लिये गर्भावस्था बड़ी नाजुक अवस्था होती है। इस कारण बड़ी सावधानी और सरलता की आवश्यकता रहती है। मुख्यतः गर्भस्थ बालक की शरीरिक तन्दुरुस्ती और सुन्दरता आदि का सम्पूर्ण उत्तर दायित्व गर्भिणी पर ही है। माता के स्वाथ्य वर ही गर्भस्थ बालक का स्वास्थ्य अवलम्बित है। यदि माता का रक्त शुद्ध और निरोगी है, तो बालक भी सर्वाङ्ग हृष्ट पुष्ट और सुन्दर होगा, यदि माता रोगिणी और दुर्बल है, तो बालक भी जीर्ण शीर्ण और रोगी उत्पन्न होगा। इस लिये गर्भिणी का कर्तव्य है, कि अपना स्वास्थ्य बिलकुल ठीक रक्खें, किसी प्रकार को असावधानी न करे ? खास कर आहार विहार पर बिशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। गर्भावस्था में सदैव शुद्ध पौष्टिक और ताजा भोजन करने योग्य है।

अधिक चरपरी खट्टी वस्तुयें त्याग देनी चाहिये, गरम मसाले तथा मिठाई का विशेष प्रयोग भी सर्वदा हानि कर होता है। गुरुपाक तथा वादी, भोजन गर्भिणी को कदापि न करना चाहिये। मादक पदार्थ, तम्बाकू इत्यादि को तो ज़हर ही समझना चाहिये।

गर्भिणी को अधिक तर सात्वकी भोजन करना उचित है। दाल, चावल, गेहूं, जौ की रोटी हरे साग, फल और दूध का आहार विशेष हित कारी है। वास्तव में पूछिये तो दूध और उत्तम फल गर्भिणी और गर्भस्थ बालक के लिये अमृत ही हैं। इस लिये कम से कम दूध का प्रयोग तो अवश्य ही होना चाहिये। बच्चा पैदा होने के निकट वर्ती दिनों में रोजाना गर्भिणी को थोड़ा २ कर के कई बार दूध का इस्तैमाल करना विशेष लाभ दायक है। दूध उत्तम और निरोगी गाय का होना चाहिये। अभाव में भैंस का भी काम में लाया जा सकता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि गर्भिणी को मल बंध कभी न होना चाहिये। और यदि कारण वश कभी हो भी जाय तो उसको किसी योग्य औषधि द्वारा एक साफ दस्त करा देना चाहिये। किन्तु यह ध्यान रहे, कि कोई जुलाब की औषधि न हो, जिससे कि दो चार दस्त लगातार हो जाने की सम्भावना हो।

गर्भिणी को अधिक शारीरिक परिश्रम करना बोझ उठाना, अधिक मार्ग पैदल तय करना इत्यादि सर्वदा निषेध है, पति सम्मिलन (प्रसंग) भी मना है, विशेष कर गर्भावस्थाकेपहले औरपिछले महीनों में तो कतई प्रसंग न करना चाहिये। शोक, भय इत्यादि मानसिक व्याधियों से विशेष कर बचने का प्रयत्न करना चाहिये। हारीतसंहिता में लिखा हुआ है। कि:—

व्यायामं मैथुनं रोषं शोषं चंक्रमणं तथा।
वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुख सम्पदः॥

अर्थात्—कसरत, मैथुन, क्रोध, शोक तथा अधिक चलना यह सब बातें गर्भिणी को छोड़ देना चाहिये। तब सुख की प्राप्त होतीहै।

गर्भिणी सप्तमान्ता सादु परिष्टाद्विशेषतः।
निषिद्धात्वष्टमे मासे मैथुनं न समाचरेत।
(बृहन्निघंटु रत्नाकर)

अर्थात्— सातवें महीने के बाद गर्भिणी स्त्री से मैथुन करना निषिद्ध है, विशेषतः आठवें मास में मैथुन करना ही न चाहिये।

परिच्छति दुमध्या काम मोहाद चेतनः।
विपद्यते तदा गर्भ एतत्ते नात्र संशयः॥
(रस रत्नाकर)

अर्थात्— यदि कोई निर्बुद्धि मनुष्य कामान्ध होकर आठवें मास में गर्भिणी से संभोग करे, तो गर्भ निश्चय नष्ट हो जाता हैं। अतएव गर्भिणी को बहुत बिचार पूर्वक शान्ति चित्त से रहना चाहिये, और ऊपर लिखे हुये नियमों का पालन अवश्य करना चाहिये।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त कुछ नियम और भी हैं। जोकि गर्भस्थ बालक को योग्य, सुन्दर और तन्दुरुस्त बनाने में बहुत ही उपयोगी है। इन्हीं नियमों के पालन से माता, पिता मन चाही संतान उत्पन्न कर सकते हैं।

गर्भवस्था के छः मास तक गर्भस्थ बालक की पोषण क्रिय के लिये विशेष प्रबन्ध रखना चाहिये क्योंकि इसी समय के अन्दर बालक के सर्वाङ्ग संगठित हो जाते हैं, और शेष तीन मास में बालक के मस्तिष्क का बिकास होता है। अतः इस समय शिशु के बुद्धिमान तथा बिचार शील बनाने का समुचित प्रबन्ध करना चाहिये। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि गर्भस्थ बालक या माता पिता

के आहार विहार रहन सहन का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ता है।

आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपि तादृशः॥
(सुश्रुत शारीर स्थान अ० २

अर्थात्—जैसे आहार विहार और चेष्टाओं से युक्त स्त्री-पुरुष गर्भाधान संस्कार करें वैसे ही वैसे गुणों वाला बालक उत्पन्न होता है,

जिस प्रकार गर्भाधान संस्कार के समय के आहार विहार इत्यादि का असर गर्भस्थ बालक पर पड़ना शास्त्रकारों ने कहा है, उसी प्रकार गर्भावस्था में माता के आचरणों और मनन शक्ति का प्रभाव भी विशेष पड़ता है। इसके सम्बन्ध में अपने यहां एक सच्चा ऐतिहासिक प्रमाण महाभारत में अभिमन्यु का मिलता है, जिस समय अभिमन्यु अपनी माता के गर्भ में था। उसी समय एक दिन अर्जुन चक्रव्यूह भेदन का सम्पूर्ण हाल विस्तार पूर्वक अपनी स्त्री से बतला रहे थे। वह भी बड़े ध्यान पूर्वक कथा सुन रही थी, किन्तु समयाभाव के कारण कुछ अंश बतलाना शेष रह गया, और अभिमन्यु का जन्म हो गया। उसी वृत्तान्त के सुनने से अभिमन्यु का चक्रव्यूह भेदन का उतना अंश स्मरण था जितना कि उनकी माता ने गर्भावस्था में सुना था, उपरोक्त प्रमाण के अतिरिक्त वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों ने परीक्षा कर सिद्ध कर दिया है। यथा:—

एक इथोपियन जाति की रानी ने समुचित आहार इत्यादि का प्रयोग कर पूर्ण सफलता प्राप्त की। इथोपियन जाति में गौर वर्णीय व्यक्ति नहीं होते, अतः उस रानी की इच्छा गौर वर्णीय सन्तान की हुई। इस लिये उसने गर्भावस्था में उज्वल वर्ण का आहार करना उज्वल वस्त्रों का पहिनना, उज्वल रंग से पुते हुये हुये कमरे में निवास करना, तथा उज्वल वस्तुओं का ही प्रयोग और मनन करना आरम्भ किया उसका परिणाम यह हुआ, कि उसके सुन्दर गौर वर्ण वाला बालक उत्पन्न हुआ। यथा और भी:—

एक यूरूपियन महिला का घुंघुराले बाल विशेष प्रिय थे इसी कारण वह अपनी सन्तानों के भी बाल घुघुराले देखना चाहती थी, इस लिये अपने अभीष्ट सिद्ध करने के निमित्त उक्त महिला ने अपने शायनागार में एक सुन्दर घुंघुराले बालों वाले अफ़रिकन युवक का चित्र लगाया, और गर्भावस्था में उसी चित्र को प्रायः देखा करती थी, तथा चित्र के सुन्दर बालों का मनन किया करती थी। इस युक्ति का परिणाम यह हुआ, कि उसने जो बालक प्रसव किया, उसके ठीक उसी चित्र वाले अफ़रिकन युवक के से सुन्दर घुंघुराले बाल थे।

कहनेका तत्पर्य्य यह है, कि गर्भावस्था में जैसी रुचि तथा आचरण माता के होंगे, वैसा ही प्रवृत्ति और आचरण उसकी उत्पन्नहुई सन्तान के होंगे। यदि माता के विचार शुद्ध और पवित्र हैं तथा धर्माचरणोंकी ओर उसका विशेष अनुराग है तो उसका पुत्र भी सुन्दर सदाचारी और धर्मनिष्ठ होगा। यदि माता दुराचारिणी, कुत्सित विचारों वाली, झूठी और चोर है, तो उसकी सन्तान भी इन्ही आचरणों वाली, चोर और दगाबाज़ होगी। इस लिये यह प्रमाणित हुआ कि माता फोटू खींचने का कैमराऔर गर्भस्थ बालक फोटू उतरने का शुद्ध प्लेट है। यानी बालक अपने माता-पिता के आचरणों का एक जीता जागता सच्चा चित्र है।

गर्भ और गर्भाकृति रोगों में भेद

लै० पं० हरिश्चन्द्र वैद्य भूषण, बीसलपुर

आधुनिक वैज्ञानिक युग में प्राचीन चिकित्सकों को सर्वाङ्गपूर्ण कहने में बहुत से पाश्चात्य पण्डित हिचकते करते हैं। कुछ अंश तक उन लोगों की भावना सत्य भी प्रतीत होती है। उसका कारण केवल हम लोगों की बुद्धि विपर्यता या आलस्यता है। क्योंकि पिछले कुछ शताब्दियों में जिसे आयुर्वेद का अन्धयुग कह सकते हैं, हम लोग अपनी निद्रा समाधि में मग्न रहकर इसको बिलकुल भूल गये थे, या देश विप्लव होने के कारण हम लोगों के बहुत से ग्रन्थ रत्नों को भस्मीभूत कर दिया गया जो केवल उन विप्लव कारियों की मूर्खता ही मात्र थी। वह ही हम लोगों की उज्वल चिकित्सा के भाग्याकाश में कारिख बनकर उसे बिलकुल अन्धकार में डाल गई, नहीं तो आज यह विवेचन करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि गर्भ और तत्सदृश रोगों में क्या अन्तर है? उदाहरण के लिये अब भी हम लोगों की बची बचाई आर्ष संहिताओं में इनका वर्णन बड़े विस्तार के साथ, किन्तु अस्तव्यस्त पाया जा रहा है, यदि इनका नामोल्लेख किया जाय तो अधो लिखित नाम संक्षेप में इनकी जगह पर गिनाये जा सकते हैं। जैसे डिम्ब का गुल्म Overiancyst

रक्तगुल्म गर्भाशयका मूत्रार्बुद या मांसार्बुद (Dibromo & myoma) उदर को मेद वृद्धि या मेदोदर (Abdomina fabd) विस्तृत मूत्रशय (Hyperbrophyof the bloddee जलोदर, अफाराव आध्मान, प्लीहोदर, मिथ्या या काल्पनिक गर्भ, यह उपर्युक्त रोग गर्भ के लक्षणों से इतने अधिक मिलते जुलते हैं। अतः यहां पर इनके केवल लक्षणों के अंतर को ही दर्शाया जायेगा क्योंकि ऊपर लिखे हुये रोगों के निदान, व संप्राप्ति, आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पर्याप्त और पूर्ण रूप से लिखे मिलते है। संदेहास्पद केवल लक्षण साम्यता ही है। अतः इनका विवेचन करना यहां निश्चित समझा गया है।

डिम्ब का गुल्म व गर्भ को पहिचानने की रीति

डिम्ब गुल्म के लक्षण

(१) इस रोग में गर्भाशय की ग्रीवा में मृदुता नहीं होती, है, अर्बुद गर्भाशय से परे होता है।

(२) भ्रूण की प्रतिहत क्रिया उत्प्लावन क्रिया अनुपस्थिति रहती है।

गर्भ के लक्षण

(१) गर्भाशय की ग्रीवा मृदु होती है अर्बुद के कोई लक्षण नहीं होते।

(२) गर्भ में गति होती रहती है जो कि भ्रूण के हिलने डुलने से होती है।

(३) हृदय स्पन्दन नहीं सुनाई पड़ता ।	(३) माता की नाभीके पास कर्णश्रवण नलिका से सुननेपर हृत्स्पन्दन (भ्रूण में) स्पष्ट सुनाई पड़ता है।
(४) स्तन मंडल व श्वेत रेखा (नाभी के नीचे के प्रान्त तथा जंघा) पर रंग नहीं जमने पाता।	(४) स्तन मण्डल कृष्ण पुष्ट व स्तन (चूचक) के रंग गाढ़े, बैंजनी रंगके तथा श्वेत रेखायें लाल हो जाती हैं।
(५) गुल्म पर अर्बुद की प्राचीनता के कारण तनिक सी शोथ पाई जा सकती है।	(५) गर्भावस्था में पांचवें छठवें महीने के समय प्रपद या पैरों के अग्र भाग में क्वचित हाथों में भी सूजन हो जाया करती है।
(६) उदर पृष्ठ की शिरायें फूल जाती हैं।	(६) उदर पृष्ठ की शिरायें न फूलती और न तनी हुई दिखाई देती हैं।

निश्चिती-कभीर उदर पृष्ठ की शिराओंमें शोथ हो, साथ ही गर्भ स्थिती भी हो, तो रोग निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसका एक मात्र उपाय हृदय स्पन्दन को स्टेथिस कोप के द्वारा माता के नाभी के नीचे बाम पार्श्व में सुनना ही है। यदि हृदय स्पन्दन न सुनाई देवे, तो पेट की अति वृद्धि का कारण गर्भ के साथ २ गर्भादि की मात्रा वृद्धि (Hydramnios) ही समझी जाती है। उदर दोनों अवस्थाओंमें प्रायः एक साही बढ़ता है। तथा स्थान भी लगभग बहुत थोड़ी दूर के फासले पर होता है (गर्भ के साथ डिम्ब ग्रन्थि २ इञ्च के फासले पर होती है)।

गर्भाशय का मूत्रार्बुद व मांसार्बुद—

कभी २ गर्भ के अन्दर उसके सौत्रिक तंतुव मांस तन्तु बढ़कर अर्बुद का स्वरूप धारण करते हैं, जो कि गर्भ की तरह से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। गर्भ से अलग समझने के लिये। अधो लिखित लक्षणों पर ध्यान दें।

मूत्रार्बुद व मांसार्बुद के लक्षण	गर्भ के लक्षण
(१) अर्बुद असमानाकार तथा कड़े होते हैं।	(१) गर्भ समानाकार व नर्म होता है।
(२) अर्बुद मध्य रेखा में नहीं होते।	(२) गर्भ बढ़ने पर मध्य रेखा में आ जाते हैं,
(३) अर्बुद में मासिक स्राव अनियमित अपरिमित होता है।	(३) गर्भ में तो मासिक स्राव होता ही नहीं है।

(४) इसमें जरायु संबंधी चिन्ह और हैज़ा के चिन्ह उपस्थित रहते हैं। असन्तति अंकुचन नहीं हुआ करता हैं,

(५) गर्भ की तरह फुत्कार की कभी आवाज सुनाई पड़ती है।

(६) गर्भ की तरह वृद्धि आरंभ होकर वर्षों तक होती रहेगी।

(४) गर्भ के जरायु संबंधी चिन्ह विशेष तथा है हैज़ा का चिन्ह व अकुञ्चन भी उपस्थित रहता हैं।

(५) यह आवाज गर्भावस्था में हमेशा पाई जाती है।

(६) वृद्धि १० मास केबाद बंद होजाती है,

रोग विनिश्चय—

उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त उदर वृद्धि के स्थान पर हृत्स्पन्दनकी प्राप्ति विशेषनिश्चय के चिन्ह है।

मेदोदर व गर्भ

बड़ी आयु में प्रायः उदर में मेद इकट्ठी हो जाया करती है, कभी २ इससे छोटी उमर वालियों में या रक्त क्षय से पीड़ित स्त्रियों में, गर्भ का मिथ्या विचार उत्पन्न हो जाता है। इन दोनों के पहिचान के लक्षण अधोः लिखित हैं।

मेदोदर के लक्षण

(१) मेदस्वी स्त्रियों में मासिक स्राव अनियमित व अपर्याप्त होता हैं।

(२) गर्भ ग्रीवा छोटी व खरदरी (रूक्ष) होती है।

(३) उदर पर की वसा एक ओर को जा सके तो नाभि क्षेत्र पर एक गूंजता हुआ शब्द पैदा किया जा सकता है।

गर्भ के लक्षण

(१) आर्तव होता ही नहीं बंद रहता हैं।

(२) ग्रीवा (गर्भाशय की) धीरे २ बढ़ती जाती है, वह एक प्रकार के तर एकत्रित होने से मृदु रहती हैं।

(३) शब्द पैदा नहीं होता

रोग विनिर्णय

योनि अथवा गुदा के द्वारा गर्भाशय का आकार सरलता से परीक्षा करके समझा जा सकता हैं। अंगुलि परीक्षा द्वारा गर्भ ग्रीवा पर गर्भाशय का स्पर्श, गर्भावस्था में सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु इन दो वृद्धि में गर्भाशय का पता ही नहीं मिल सकेगा।

विस्तृत मूत्राशय व गर्भ—

यह अवस्था थोड़े समयके लिये रहा करती हैं। इस में मूत्र के अन्य लक्षण भी विद्यामान होते हैं। यथा—दबाने पर वेदना का अनुभव होना, मूत्र का बूंद २ या पतली धार में निकलना, स्थिती आकार व प्रतिरोध, गर्भाशय के आकार व प्रतिरोध के सदृश ही होते हैं। इस दशा में गर्भ मुक

गर्भाशय के पश्चात् झुकाव में विस्तृत मूत्राशय को ही गर्भाशय समझ लिया जाया करता है।

रोग विनिश्चय—

मूत्राशय में मूत्रनाल या कैथेटर के प्रवेश करने से हो सकता हैं।

रक्त गुल्म व गर्भ

कभी २ आर्तव स्राव होने के बाद, जब डिम्ब नलिकाओं में रक्त रुक जाता है। या साफ स्राव नहीं हो पाता, तो वहां का रुका हुआ रक्त एक गोला, की आकृति को बना कर धीरे २ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ गर्भ के साथ समता करने लगता हैं। इनके लक्षण आगे लिखित हैं।

रक्त गुल्म के लक्षण

(१) अर्बुदाकृति होकर धीरे २ बढ़ता हैं।

(२ गर्भ स्पन्दन हुआ करता हैं। किन्तु शूल के साथ।

(३) योनि मार्ग से चिकना २ सफेद मैल निकला करता हैं।

(४) शरीर का वर्ण लाल होता है। साथ ही साथ ज्वर पिपासा भी रहती हैं।

(५) भोजन पचते वक्त शूल बड़े जोर से होता है।

(६) स्पर्श करने पर दर्द मालूम पड़ता है,

(७) आर्तवस्राव बंद हो जाता हैं। किन्तु प्रारम्भ में अत्यल्प व अनियमित रहता है।

(८) दस मास बीतने पर भी दर्द होता रहता है।

(९) गुल्म वृद्धि चार महीने के बाद बहुत कम होती है।

(१०) वमन की इच्छा नहीं होती है।

(११) गर्भ ग्रीवा शुष्क होती है।

गर्भ के लक्षण

(१) गर्भ भी पिण्डाकृति होकर धीरे २ बढ़ता है।

[२] शूल रहित स्पन्दन होता हैं।

(३) इस में भी मैल निकलता है।

(४) शरीर का वर्ण ईषत् पीलापन लिये होता है। ज्वरादि लक्षण नहीं होते, शरीर में भारीपन मालूम होता है।

(५) इस में शूल नहीं होता है।

(६) दर्द छूने से नहीं मालूम होता है।

(७) आर्तव स्राव एक दम बंद हो जाता है।

(८) दस महीने से पूर्व ही प्रसव हो जाता है।

(८) नियमित वृद्धि होकर १० वें महीने में गर्भ प्रसव हो जाता हैं।

(१०) वमन प्रारंभ और अंत में अवश्य होती हैं।

(११] गर्भाशय; ग्रीवास्थल फैला होता हैं।

व्याधि विनिश्चय—

हस्त क्षेपण द्वारा गर्भ का स्पर्श आठवें नवमें महीने, में स्पष्ट जाना जाता है, हृदयस्पन्दन नाभि के अधो भाग में; गर्भवस्था में स्वस्थ सुनाई पड़ता हैं। गुल्म में नहीं सुनाई पड़ता है। यही खास पहिचान है।

जलोदर व गर्भ के अन्दर।

जलोदर में गर्भावस्था के प्रायः सभी चिन्ह अनुपस्थित होते हैं। गर्भाशय की ग्रीवा व गात्र अपने स्वाभाविक अवस्था में होते हैं। उदर सामने से दबा हुआ चपटा तथा पार्श्वों पर फूला हुआ होता हैं। गर्भ की आकृति ऐसी नहीं होती हैं।

उदर के जल की तरंग स्पष्ट प्रतीत होती है। किन्तु गर्भावस्था में तरंग प्रतीत नहीं हुआ करती है। स्त्री के स्थिति के परिवर्तित होते ही जल का स्थान भी बदल जाता है। इसके सीधे लेटे हुये होने की दशा में क्षेपण क्रिया द्वारा पार्श्वों पर मन्द स्वर पैदा होगा। गर्भावस्था में यह कोई चिन्ह नहीं पाये जाते। जलोदर में साथ ही साथ यकृत् और प्लीहा वृद्धि भी पाई जाती है, किन्तु गर्भावस्था में यकृत् प्लीहा वृद्धि नहीं होती।

रोग विनिर्णय—.

गर्भस्थ भ्रूण की हृत्स्पन्दन जलोदर में नहीं सुनाई देती।

आध्मान और गर्भ में अन्तर

आध्मान के प्राचीन हो जानेपर कभी २ सन्देह हो जाया करता है। अतएव उनके स्पष्ट चिन्ह यहां पर लिखे जा रहे हैं।

आध्मान के लक्षण

(१) क्षेपण क्रिया द्वारा उदर प्रान्त में सर्वत्र गूंजता हुआ शब्द पैदा होता हैं।

(२) उदर वृद्धि एक सी रहती है।

(३) मुख विरसता रहती है।

(४) स्पर्श में उदर रूक्ष तथा फूला हुआ सा मालूम पड़ता है।

(५) उदर वृद्धि चारों तरफ एक समान होती है।

(६) जरायु पर कोई गूँज पैदा नहीं होती है, क्योंकि आंते उस समय उसके पीछे के भाग पर हुआ करती हैं।

गर्भ के लक्षण

(१) गूँजता हुआ शब्द नहीं होता।

(२) उदर वृद्धि हर महीने में पृथक् तथा नियमित होती हैं।

(३) वमन होता हैं।

(४) नाभि के नीचे के प्रदेश कठिन मालूम पड़ते हैं।

(५) गर्भावस्था में पहले मास में आगे से पीछे को होती हैं।

(६) जरायु बढ़ जाने से गूँज पैदा होती है।

व्याधि विनिर्णय

उदर की ओर से दबाकर यदि पृष्ठवंश मालूम किया जा सके तो गर्भ की अनुपस्थिति समझनी चाहिये।

विधि—स्त्री से कहो कि अपना सारा श्वास निकाल कर रोक ले और चिकित्सक अपने आप एक हाथ को दूसरे हाथ पर रख कर उदर की दीवाल को बलपूर्वक दबावें। पृष्ठ वंश स्पष्ट मालूम पड़ेगा।

प्लीहोदर व गर्भ

प्लीहोदर से भी गर्भ का धोखा लग सकता है। यह अवयव प्लीहा, ऊपर से बढ़ता २ नीचे को आया करता है, और ऊपरकी ओर ढकेला भी जा सकता है। यकृत कोण के तरफ की प्लीहा खात सरलता से मालूम हो सकती है। ठेपन परीक्षा में गूँजता हुआ शब्द नहीं सुनाई पड़ेगा। अतएव गर्भ को प्लीहोदर से इन लक्षणों द्वारा पृथक किया जा सकता है। क्योंकि गर्भ नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ता है। तथा ऊपर कभी नहीं ढकेला जा सकता। प्लीह खात की तरह कोई भी खात स्पर्श करने पर मालूम नहीं हो सकता। इनके और लक्षण बिलकुल दूर २ के हैं, केवल यही उपर्युक्त लक्षण गर्भ के साथ समता कर सकते हैं।

मिथ्या या काल्पनिक गर्भ व गर्भ का अन्तर

यह अवस्था उन स्त्रियों में देखी जाती है, कि जिनकी रजोनिवृत्ति का समय निकट हो अथवा युवा स्त्रियों में कि जिनको सन्तान उत्पत्ति की अधिक आकाँक्षा हो। इसमें स्त्री सर्व गर्भ लक्षण व चिन्हों को अनुभव करेगी, साथ ही उदर ही उदर वृद्धि भी देखने में आयेगी। वसा वृद्धि के अधिक होने पर अथवा अफारे से या जलोदर के कारण हुआ करती है। जब यह जीवन के शुरू वर्षों में ही उपस्थित हो जावे, तो इसके साथ साथ मासिक स्राव प्रायः आता ही रहता है। किन्तु इसके कुछ विकार अवश्य पैदा हो जाते हैं, जिसको उक्त स्त्री अपनी दशा के कारण ही समझ बैठती है वह कहती है कि उदर में बच्चे के हिलने की गतियां भी होती है। वास्तव में यह गतियां आंतों के हिलने या स्थानीय मांस पेशियों के सकोच से पैदा होती हैं।

परीक्षा—गर्भाशय छोटा होता है, जो दोनों हाथों से परीक्षा द्वारा शीघ्र ही अनुभव किया जा जा सकता है।

सन्देह—चूँकि स्त्री अपने को गर्भवती न होने के प्रति कभी मानने के लिये उद्यत नहीं होती। अतः इस सन्देह के निवारण के लिये उसकी किसी सहेली को इन सब बातों से सूचित कर देना चाहिये।

विशेष परीक्षा—यदि उपर्युक्त क्रियाओं के द्वारा किसी तरह निर्णय न हो सके तो सम्मोहन क्रिया (क्लोरोफार्म देकर) द्वारा बेहोश करके निर्णय कर लेना चहिये। सम्मोहन क्रिया द्वारा माँस पेशियां शिथिल और ढीली पड़ जाती है, अतः परीक्षा सरलता से हो जाती है।

चिकित्सा—इन प्रत्येक दशाओं में सुयोग्य वैद्य की ही शरण लेनी समुचित है।

मूढ़गर्भ व तत्सामयिक उपचार

[ले०—श्री बुद्धसेन जी, वैद्यभूषण]

मूढ़ गर्भ का अर्थ है, गर्भ की मूढता अर्थात् जिन प्रसवों में गर्भ स्वाभाविक रीति से वहिर्गत न हो कर, अस्वाभाविक रीति से बाहर आनेकी चेष्टा करे, आचार्यों ने इस के कई कारण बतलाये हैं, जैसे गर्भिणी की असावधानी अकाल तथा विरुद्ध रीति से सहवास, मन चले युवकों की इच्छा पूर्ति की आवश्यकता, मिथ्याहार, विहार हृदय द्रावक घटनायें,(क्रोध शोक अनभ्र वज्रपात इत्यादि) तथा वर्तमान सभ्यता के कारण मातृ जाति के अन्दर असहिष्णुता इत्यादि जो आगे चल कर परिणाम स्वरूप हो कर मूढ गर्भ का रूप धारण करने तथा जच्चा और बच्चा दोनों के जान के गाहक हो जाते हैं, आयुर्वेद शास्त्र इन्हीं बातों को परिष्कृत करके समझाता है, उसने सबों के लिये समय तथा आहार विहार का निरूपण किया है, सुश्रुत *

महर्षि ने प्रारम्भमें ही प्रत्येक विवाहित दम्पतियोंके लिये सहवास के नियमों को बनाया है जिसके अनुसार चलने से कभी भी आपत्तियों का सामना नहीं करना पड़ता। परन्तु अफसोस तो यह है, कि आज कल के सज्जन सन्तान की इच्छा से प्रसंग नहीं करते हैं वे तो सिर्फ अपने मजे की खातिर करते हैं।

यदि गर्भ रह जाय, तो अपनी बद किस्मती से गर्भिणी की असावधानी तथा अनियम से वायु गर्भ को आड़ा तिरछा टेढ़ा उलटा कर देता है। जिसके कारण गर्भवतीकी योनि तथा पेटमें पीड़ा कमर में पीड़ा इत्यादि अनेक भयङ्कर कष्ट होते हैं कोई मूढ गर्भ हाथ या पैरोंसे तथा मस्तक से योनि में आकर अटक जाता है, कभी २ दो बालक एकही में जुड़े हुये उत्पन्न होते हैं, पति तथा पत्नी के अज्ञानता के संभोग से भी कभी २ दो बालक आ जाते हैं इससे भी कभी२ प्रसव के समय स्त्री का जीवन समाप्त हो जाता है, कोई मूढ़ गर्भ मस्तक से योनि द्वार को आकर रोक देता है, कोई अपने शरीर से टेढ़ा होकर योनि द्वार में आकर योनि द्वारको बन्द कर देता है, कोई कुबड़ा होकर योनि द्वार में आकर अटक रहता है, कोई केवल एक हाथ योनि द्वार में निकल कर अपने कंधे से योनि द्वार को रोक देता है कोई मूढ़ गर्भ दोनों हाथों को योनि द्वारमें, निकाल कर योनिद्वार को बन्द कर देता है, कोई कोई विचित्र प्रकार से ति-

---

* प्रथम दिवसे ऋतुमत्यां मैथुन गमनं मायुष्यं पुंसां भवति यश्चतत्राधीयते गर्भः स प्रसव मानो विमुच्यते। द्वितियेऽप्येवं सूतिका गृहेवा तृतीयेप्येव मसंपूर्णाङ्गो ऽल्पायुर्वा भवति नच प्रवर्त माने,रक्ते बीजं प्रविष्टं गुणाकरं भवति यथा नद्यां प्रति स्रोतः प्लाविद्रव्यं प्रक्षिप्तं प्रतिनिवर्तते नोर्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम्। तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्रं परिहरेत्।

रुका हो कर योनि के रास्ते को रोक देता है, कोई मुख को तिर्छा करके योनि मार्ग में अटक रहता है, कोई पसलियों के बल आकर योनि द्वार का मार्ग अवरोध कर देता है, इत्यादि अनेक प्रकार से मूढ गर्भ स्त्रियों को बड़ा कष्ट देते हैं, यदि मूढ़ गर्भ के प्रसव समय में चतुर दाई हो, तो जननी की प्राण रक्षा हो सकती है, यदि मूर्खा दाई हुई, तो शिशु तथा जननी दोनों के जीवन में सन्देह रहता है। कभी २ गर्भाशय में दो बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं, यह यमल गर्भ (Twin births) कहलाता है, पर कभी २ तीन चार पांच गर्भ एक साथ स्थापित हो जाते हैं, १०० प्रसवों में एक प्रसव यमल गर्भ का वा ६००० के लगभग में एक प्रसव त्रि-गर्भ Triplets का देखा जाता है,

उक्त संख्या भिन्न २ जातियों वा देशों में भिन्न २ होती है, जैसे आयरलैंड में ६५ में एक और इङ्गलैंड में ११० में एक, यमल गर्भ की प्रवृत्ति कई २ कुलों में परम्परा से विद्यमान होती है, यह बात उक्त कुटुम्बी की प्रत्येक स्त्री में देखी जावेगी। यमज गर्भ दो डिम्बों से विकसित होता है, एक २ डिम्ब प्रत्येक ग्रन्थि से अथवा दोनों ही एक ग्रन्थि से आ सकते हैं, कभी २ मीगी वाले एक ही डिम्ब से विकसित हो जाते हैं, पहले को द्विडिम्ब यमज गर्भ Binoular और दूसरे को एकडिंब यमज गर्भ Unioular कहा जाता है, एक डिम्ब यमज गर्भ की अपेक्षा द्विडिम्ब यमज गर्भ पांच से ६ गुना अधिक देखे जाते हैं। दोनों बच्चे लड़का या लड़की (दोनों लड़के या दोनों लड़की) अथवा एक लड़का, और लड़की हो सकते हैं, तथापि प्रायः यमज गर्भों में या तो दोनों लड़के ही होते हैं, या दोनों लड़कियां ही होती हैं। प्रत्येक शिशु का अपना २ कमल तथा कलायें अलग २ होती हैं, जो डिम्ब एक दूसरे के अति निकट स्थिति होते हैं, उनके कमल यद्यपि दो होते हैं, परन्तु पास २ होने के कारण एक ही मालूम होते हैं, परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे, तो दोनों के रक्त भ्रमणों में आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता यमल गर्भ एक गर्भ से भार में कम होते हैं, पर दोनों का इकट्ठा भार उस के भार से बढ़ सकता है, कभी २ वे समय से पूर्व जन्म लेने के कारण भी छोटे होते हैं, उनके परिमाण में अधिक भिन्नता होती है, कभी २ ऐसा भी हो जाता है, कि एक का भार, दूसरे से द्विगुण हो जाता है, इसलिये गर्भाशय तन जाता हैं, अतः प्रसूति ठीक समय से कई २ सप्ताह पूर्व ही हो जाती है, यह भी देखा जाता हैं, कभी २ यमल गर्भ में एक भ्रूण अपने स्थानच्युत होकर गर्भावस्था के प्रारम्भिक समय में ही मर जाता हैं, और दूसरा विकसित होता रहता है, परन्तु कभी २ वह वहीं चिपका रहता है, ऐसी अवस्था में वह सूख जाता है, और दूसरे जीवित भ्रूण के दबाव से चपटा सा होकर दीवार के साथ लगा रहता हैं, प्रसव के समय यह निकल पड़ता हैं, इसको शुष्क भ्रूण शव (Papyraceous foetus) कहते हैं।

जोड़ेवाले बालक प्रायः दुर्बल और प्रसव की कठिनाइयों को सहने के योग्य नहीं होते हैं, उनकी मृत्यु संख्या ५% मानी गई हैं, माता के लिये भी परिणाम दुष्ट ही रहता है। पहिले बालक का जन्म प्रायः साधारण ही होता है, लेकिन

प्रथमावस्था में किंचित कठिनता और संकट अवश्य होता है * प्रथम शिशु होने के पश्चात् गर्भाशय कुछ समय के लिये विश्राम करता है, तब द्वितीय बालक उसी पूर्व वाले मार्ग से बिना किसी रोक टोक के करीब आध घण्टे ही में निकल आता है, परन्तु कभी २ द्वितीय गर्भ कई २ घंटे तक रुका रहता है।

चिकित्सा—पहिले बालक की प्रसूति में, साधारण प्रसूति की तरह क्रिया करानी चाहिये, इसके जन्म लेने पर ही गर्भाशय का बढ़ा हुआ आकार दूसरे बालक के होने को प्रगट करेगा, यदि पहिले निश्चयन भी हुआ होगा, तो अब निश्चय हो जाता है, नाल काटने से प्रथम उसको दो स्थानों से बाँध लेना चाहिये। ताकि दूसरे बालक का रक्त भ्रमण स्थगित न हो, इसके उदय भाग को योनि संबन्धी परीक्षा द्वारा मालूम करके तुरन्त झिल्लियों को फाड़ डालना चाहिये। तब बच्चा शीघ्रता पूर्वक निकल पड़ता है, अगर बच्चा न निकले तो गर्भाशय को पेड़ू के ऊपर दबा कर उत्तेजित करना चाहिये। पौन घंटे के करीब हो चुकने पर भी यदि बालक न पैदा हो, तो या तो पेड़ू को दबाना चाहिये, या संदंश यंत्र का प्रयोग करना चाहिये। यदि ऐसा न होगा, तो मार्ग संकुचित हो जायगा। और उसको फिर दुबारा विस्तृत होना पड़ेगा कमलों की विशेष परीक्षा करनी चाहिये। और यह देखना चाहिये, कि उनका कोई भाग अन्दर तो नहीं रह गया है, यदि पहला बच्चा चूतड़ों के बल आता है, और दूसरा शिर के बल आता हो, तो नीचे उतरते समय बालकों की ठोडियां आपस में फँसना संभव हो सकता है, अगर दूसरा आड़ी दशा में हो और प्रथम की स्फिक् दर्शन भाग में हो, तो प्रथम की ठोड़ी दूसरे के लिये प्रतिबन्धक का कारण बन जाती है,

उसका उपाय यह है। जिस बालक का शिर कंधे तक बाहर निकला हुआ है। उसका शिर काट दिया जावे, फिर दूसरे की प्रसूति कराना चाहिये। पश्चात् पहले का कटा हुआ शिर भी निकाल लेना चाहिये।

नाभि तक धड़ निकल चुकने के पश्चात् यदि बच्चे का शिर कुछ समय तक भीतर रुका रहे तो फिर उसको शीघ्र से शीघ्र उपायों द्वारा बाहर निकालने की कोशिश करना चाहिये, बच्चों की दोनों टांगों और हाथों को पकड़ो और जननी के के दोनों साँथलों के बीच में आगे को खींचो द्वितीय हस्त की तर्जनी अथवा मध्यमा अँगुली को बच्चे के कंधों पर उसके शिर को आश्रय देने के लिये रक्खो, पैरों को माता के उदर के साथ बनाने के वाली समकोण रेखा पर खींचो, इस प्रकार पश्चात् कपाल का दबाव भग संधि पर पड़ेगा, और शिर वक्ष पर अधिक झुक सकेगा ऐसा कार्य करने से शिर सरलता पूर्वक निकल आवेगा।

कभी २ शिर के साथ एक हाथ अथवा एक पैर निकल आता है, कभी २ दोनों हाथ कभी

*इसके कारण ये हैं। १—गर्भाशय की जड़ता (Inentia) वा गर्भोदक की अति वृद्धि के कारण देरी, २—प्रसव के बाद रक्तस्राव, ३—कमल भूमि के लम्बे होने से उसमें विषाक्त पदार्थों का प्रवेश, ४—बच्चे के निकालने के लिये यन्त्रादि का उपयोग करना।

दोनों पैर निकल आते हैं। ऐसी दशा में बच्चे का शिर अपने वास्तविक परिमाण में नहीं होता है, ऐसी हालत में हस्ताक्षेप नहीं करना चाहिये, यदि उचित हो तो हाथ या पैर को पीछे हटा दिया जावे, यदि यह शंका हो कि प्रसव में कष्ट अवश्य होगा, तो परावर्त क्रिया का अवलम्बन करना चाहिये।

सामान्य उपचार

वैद्य को उचित है, गर्भ के जिस २ अंग को काटै, उन सब को बाहर खींच ले, भीतर कुछ न रहने देवे, फिर नारी की भी यत्न पूर्वक रक्षा करै वैद्य को चाहिये, कि मरे हुये गर्भ की उपेक्षा न करै, इसी को महर्षि सुश्रुत ने लिखा है,।

नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः।
सद्याशुजननीं हन्ति निरूच्छ्वासं पशुं यथा॥

एक मुहूर्त्त अर्थात् दो घड़ी भी मरे हुये, गर्भ की उपेक्षा न करै, जैसे श्वास रुकने पर पशु मर जाता है, वैसे ही मृत गर्भ भी अपनी माता को मार डालता है॥

मृतगर्भ को निकालने की विधि

यदि गर्भमें बालक मर जाय तो स्त्री को चित्त शयन करा के पांवों को उकड़ूं कर देवैं, और वस्त्र की गद्दी लगा कर कटिको किंचित ऊँचोकर देवै, और जवासा, नगवृत्ति, सेमर, मिट्टी और घी हाथ में लगा कर हाथ को योनि में प्रवेश करके गर्भ को खींच लेवें, जो पांवों की ओर से बालक निकले तो उसे अनुलोमन करै। जिस बालक का एक पांव निकल आया हो उसके दूसरे पांव को प्रसारण करके निकाले, प्रथम कूल्हे चमकने लगें तो कूल्हों को पकड़ कर बालक को ऊपर की ओर ढकेल देवै, और उसकी टांगों को लम्बी करके फिर बालक को निकालदेवें, जो बालक परिघा के समान टेढ़ा हो कर योनि के मुख पर आया होवै तो पीछे आधे को ऊंचा करके पूर्वार्द्ध को योनि के मुख पर लाकर खींच लें, जिसका पसवाड़े की ओर से सिर उल्टा हो गया हो उसके कंधों को खींच कर ऊपर को उठावें फिर गर्भ मार्ग में शिर को लाकर खींच लें, जिसकी दोनों बाहु निकल आई हों, उसके कंधों को पकड़ कर बाहु को ऊँची करदे, और शिर को सीधा करके खींच ले यदि इन उक्त कर्मों से गर्भ न निकाल सकें तो शस्त्र कर्म करना उचित है।

शस्त्र कर्म विधि

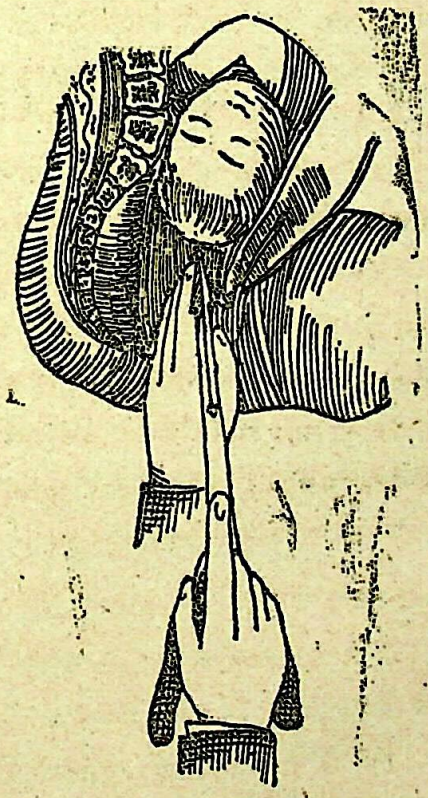

मरे हुये गर्भ से जब शस्त्र क्रिया करना हो तब मण्डलाग्र अथवा अंगुली शस्त्रसे शिरको चीर

कर हड्डियों के टुकड़े २ करके निकाल ले, पश्चात् शंकु नामक शस्त्र से छाती और कूंखको पकड़ कर खींच ले। जो सिर न काटा जाय तो अक्षि कूट अथवा गण्ड में कंधों में संसक्त कंधों को काट कर बाहु निकाल लेना चाहिये। और मशक की तरह जो हवासे पेट फूल गया हो तो पेटको चीर कर आंतों को निकाल लेवे और फिर शिथिल होने पर सब को खींच लें, जो बालक जांघ की ओर से अड़ गया हो उसकी जांघ काट कर हड्डियों को खींच लेवे। उदर के भीतर छेदन कर्म मण्डलाग्र शस्त्र से करना चाहिये। वृद्धिपत्र अत्यन्त तीक्ष्ण होता है। उससे स्त्री के मरने का डर रहता है।

अन्य उपद्रवों की चिकित्सा

इनके अलावा जो अन्य उपद्रव हों, उनकी उचित चिकित्सा करे। सब रीति से शुद्ध होनेपर चिकना हितकारी और थोड़ा भोजन करे। प्रति दिन स्वेदन और मर्दन करावें, क्रोध को त्याग देवे। वायु नाशक औषधियाँ डाल कर औटाया हुआ दूध दस दिन तक देवें फिर दस दिन तक रस देवे, जब यह ज्ञात हो जाय, कि स्त्रीके सब उपद्रव दूर होगये हों और उस में पहिले का सा बल तथा रूप आगया तब करीब चार मास पीछे यथेष्ट आहार विहार की आज्ञा देवे, योनि संतर्पण, अभ्यञ्जन, पान, वस्तिकर्म और भोजन में वायुको दूर करने के निमित्त वाला तैलका उपयोग करावे।

गर्भावस्थाके रोग व उनकी व्याख्या

[ले०-पं० रामगोपालजी अवस्थी, वैद्य भूषण]

इस समय हम आप लोगों को संक्षेप रूप से उन भयङ्कर समस्याओं को बतलाना उचित समझते हैं। कि जिनका प्रभाव गर्भ पर पड़ता है, या जिन पर गर्भ दशा का प्रभाव पड़ता है।

इन बातों पर प्रत्येक मनुष्य को ध्यान देना चाहिये, कि प्राचीन रोगों पर प्रायः खराब ही प्रभाव पड़ता रहता है, क्योंकि गर्भ दशामें मातृक अङ्गों को बहुत ही ज़्यादा कार्य सम्पादन करना पड़ता है, अतः यह अङ्ग रोग ग्रसित होने के कारण पहले ही से दुर्बल हो जाते हैं, या अधिक दुर्बल होना प्रारम्भ हो जाता है, कभी ऐसा भी देखा जाता है, कि जब रोग अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है तब इसका असर इतस्ततः भिन्न रूप में परिवर्तित हो जाता है, किन्तु इतना खराब नहीं होता है, जितना असर प्राचीन रोगों पर होता है।

इन रोगोंकी चिकित्सा हमेशा साधारण अथवा सिद्धान्तों ही पर करना चाहिये, जो कि हमारे पूर्वज या वृद्ध वैद्योंने बतलाई हो, किन्तु सर्वदा इस बातपर अवश्य स्मरण रखना होगा, कि जो चिकित्सा की जावे, वह गर्भाशय या उसके अवयवों पर कोई खराब असर न पहुंचा सके।

पहिले कुछ पूर्वजों का यह ख्याल था, कि ग. र्भवती नारियोंके देह में विष या कीटों से मिश्रित दुःखों के प्रति सहन शीलता हुआकरती है। परन्तु इस बात की पुष्टि करने के लिये स्पष्ट प्रमाण कोई नहीं मिलता, और नमिलने की सम्भावना पाईजा सकती है, गर्भवती स्त्रियोंमें रोगका संक्रमण उसी वेगही से होजाता हैं जिस वेग अथवा चाल से वह रोग सामान्य स्त्रियों में भी होजाता हैं। प्रसूता वस्था में रोगों की सहन शीलता बहुतही कम हो जाती है इसलिये बहुधा स्त्रियां रोग ग्रसित होजाया करती हैं। किन्तु हम यहां पर प्रसूता की दैहिक निर्बलता के प्रति दो बातें कहना चाहते हैं. वह पहली बात तो यह है, कि उसका खून ज्यादा परिमाणमें निकल जाता है। और दूसरी बात यह कि वहां पर के कमल उखड़ जाने के बाद स्थान की स्थिति ऐसी हो जाती है। जिसके द्वारा विष अथवा रोगों को उत्पन्न करने वाले कीटाणु सरलता के साथ भीतर जा सकते हैं।

यद्यपि— गर्भावस्था का असर भी बहुत अधिक कीटाणुओं के प्रवेश करने पर भिन्न २ प्रकार का ही पाया जाता हैं तिस पर भी रोग की दशा न ज्यादा अच्छी ही पाई जाती, या न ज्यादा खराब ही पाई जाती हैं।

यद्यपि— विना समय प्रसूतावस्था का प्राप्त होना या गर्भपात, या गर्भ स्राव होना भी दुस्तर परिणाम का कारण हो सकता है। कभी २ तो ऐसी दशा में गर्भिणी मृत्यु को भी प्राप्त हो जाती है।

रोगों का प्रभाव तो गर्भ दशा में एक दूसरे से भिन्न रूप में पाया जाता है। सामान्यतया यह भी कहा जा सकता है। कि गर्भपतन या गर्भस्राव या समय के बिना भी प्रसूति की संभावना बहुत ज्यादा दिनो तकभी पाई जा सकतीहैं,

यथा—तापमान का १०४० फा० तक भी वृद्धि को प्राप्त होना, या बहुत दिनों तक रहना भ्रूण की मृत्यु का हेतु हो जाता है, (२) माता के खून में घूमते हुये रोगों को पैदा करने वाले। कीटाणु या विष भी मरण का कारण हो जाते हैं (३) कभी २ ऐसा भी देखा जाता है, कि शोणित रोग से भ्रूण अपने आप व्याधि ग्रसित हो जाता हैं। और फिर कुछ काल अनन्तर जरायु ही में उसकी मृत्यु हो जाती है। (४) और कुछ ज्वर ऐसे होते है। कि उन ज्वरों में गर्भाशय से रक्त निकलने लगता है। ऐसी दशा में कभी २ भ्रूण भी साथ ही में निकल आता है। यह बात जरूर हैं, कि कमल को भ्रूण का एक प्रकार का पोषक ही समझा जाता है, तिस पर भी कई प्रकार के ऐसे भी रोगोत्पादक कीटाणु होते है, कि जिन को यह रोकने में समर्थ नहीं होता है,

माता के देह में घूमने वाले फिरंग कीट, मोतीझरा कीट, भ्रूण के शोणित प्रवाह में भी देखे जा चुके हैं। जिन रोगों का असर स्त्री के उत्पादक स्थान वा जननेन्द्रियों पर हो जाता हैं, उन रोगों के काल में यदि गर्भ का गिरना अथवा स्राव हो जावे तो नतीजा बहुत ही भयकरहोता है, विष रोहिणी या गलकलौष Diptheria मोतीझरा फुप्फुसौष इसके सम्बन्ध में भयदायक होते हैं। प्रायः इन रोगों में हुआ गर्भ पात या स्राव बुरा वही परिणाम वाला होता है।

शीतला Smallpox गर्भावस्था में ऊँचे

दर्जे की शीतला के कारण गर्भाशय से खून निकलने लगता है। अतः गर्भस्राव होजाता हैं। कमजोर व हलकी शीतला में गर्भ कुछ सुरक्षित रह सकता है। यदि मासिक रोग काल ही में हो तो शिशु के शरीर पर छोटे २ दाने निकले हुए रहेंगे अथवा जन्म होने के बाद फौरन निकल आवेंगे यदि प्रसूति कुछ समय के बाद हो तो उस की देह पर दाने से तो निकले हुये जरूर होंगे। किन्तु अपनी रोपणावस्था में होंगे। गर्भ काल में शीतला टीकाका कोई विशेष निषेध नहीं हैं, परन्तु प्रसूत समय में नहीं लगाना चाहिये। क्योंकि इस समयमें छोटे से छोटे वा दुर्वल से दुर्वल ही कीटाणुओं के प्रवेश से बुरा असर पड़ सकता हैं। इस समय रोगिणीं को पूर्ण विश्राम देनाचाहिये।

लाल बुखार Scretfever

यह पहिले विकार था, कि गर्भवती नारी में लाल बुखार का अव्यक्त काल में अक्सरलम्ब पाया जाता है और वह प्रसूतावस्था के पहिले प्रगट नहीं होता यह भी माना है कि इसकी तेजी प्रसूताओं में ज्यादा होती है, सम्भव हो सकता हैं। कि ऐसी कल्पना करने वाले सज्जनों ने ही सूतिका कीट रक्तता को ही लाल बुखार समझ लिया हो की रक्तता में भी देहपर लाल बुखार की तरह लाल २ धब्बेसे निकल आया करते है, और कंठ प्रभावित हो जाता है लेकिन अब निष्कीटताके नियमों को अच्छी तरह पालन करते हुये साबित हो चुका है कि वास्तविक लाल बुखार गर्भावस्था या प्रसूति काल की उपस्थिति से इतना घोर उपद्रव युक्त हो उग्ररूप नहीं करने पाता है।

विसर्प

समया भाव में प्रसूति की विद्यामानताओं से स्ट्रैप्टोकोक्स नामक कीटाणुओं द्वारा अपत्यपथ के बुरी दशा में प्रभावित होने की शंका है। अगर ऐसा हो जावे, तो इसका बहुत ज्यादा ख्याल न रखना चाहिये, कि कहीं रोग का विष भग तक तो नही पहुंचा है। योनि को प्रतिकीट धावन से आवेष्टित गद्दी द्वारा आवृत रखना उचित है।

मोतीझरा Entrisfever

अक्सर बहुत ज्यादा गर्मी से गर्भस्राव हो जाया करता है। औरत को सूतिका समय के कीटावेश सेबचानेका प्रयास करना परमावश्यक हैं। मृत्यु संख्या १५% होती हैं।

रोमान्तिका—

रोमाविन्तका—रोमांतिका अथवा इंलफ ऐंजा में गर्भ के गिरने की भारी शंका रहती हैं, लेकिन स्त्रीके प्रसूति रोंगों ग्रसित होनेकी सभावनाहोती हैं

गलकलौप या रोहिणी (Diptheria)

इस को बीज योनि में फैल जाय या प्रसूति ही उपस्थित हो जावे, तो वहाँ रोहिणी, कला में सर्वतः बन जाती है। इससे गल प्रदेशके कलाओं में शोथ दाह सहित हो जाता है।

विशूचिका—(Cholera) खल्ली अथवा तुशनज से स्राव हो जाता हैं। कभी २ प्रसव उपस्थिति से पहिले ही गर्भवती स्त्री चल बसती है। जिनको गर्भपात हो जाता है, उनके स्वस्थ रहने की सम्भावना शीघ्र रहती हैं। इस लिये न हीं कि उन्हें गर्भस्राव हो जाता हैं बल्कि इस

लिये कि इन्हें हैज़ा शुरूसे ही नीचे दर्जे का होता है,

उग्र-फुफ्फुस खण्डौष-इस रोग में बुखार की अधिक तेजी के कारण तथा खूनके लिये ओषजनन मिलने के कारण अधिक तर गर्भावस्था के आखिरी मासों में गर्भपात अथवा गर्भश्राव हो जाता है। इसके द्वारा न्युमोकीट सूतिका में उपस्थित हो सकता है। बीमार प्रसूता का दुर्बल हृदय प्रसव की कठिनाई को नहीं सह सकता, अतः उस की मृत्यु भी हो जाती है। इस लिये यदि हो सके, तो असामयिक प्रसूति अवश्य ही रोकनी चाहिये यदि यह उपस्थित होही जाय तो उद्योग करना चाहिये कि प्रसूति में बहुत कम समय खर्च हो और प्रसवा को अधिक कांखना न पड़े।

गर्भावस्था के अन्तिम मासों में इस रोगसे पीड़ित स्त्रियों की मृत्यु संख्या ५०% होती है।

विषम ज्वर

यानी मलेरिया (मौसिमीबुखार) गर्भ की स्थिति बुखार के वेगोंको नियम बद्ध नहीं रहने देती वे स्त्रियां जो कुछ वर्ष पहिले इससे पीड़ित हुई थीं, गर्भ धारण करते ही फिर इससे प्रभावित हो जाती हैं। इसमें गोदन्ती हरिताल इत्यादि न प्रयोग कर काष्ठादि दवायें घृत या क्षीम अथवा गिलोयसत्व इत्यादि को देना चाहिये गोदन्ती यद्यपि विषमज्वर को रोकने में रामबाण है तथापि इसमें एक मौलिक संखियाका भाग है* जो कि गर्भके लिये मृत्युदायक हो सकता है एलो पैथिक विद्वान इसमें कुनीन प्रयोग करते हैं। बहुतों का मत है, कि इस दशा में कुनीन नही देनी चाहिये लेकिन डाक्टर,, वाईटीस विलयम सहश विद्वान ने लिखा है, कि कुनीन जरूर देनी चाहिये, क्योंकि मलेरिया की विद्यमानता में इसके प्रभाव से गर्भपात या श्राव होने की कोई भी सम्भावना नहीं है।

सूजाक—गर्भावस्था में श्रोणि अवयवों में इस रोग की सम्भावना अधिक होती है। चूँकि रक्त श्रोत या रक्त प्रणाली में घने जाल रहते हैं। यह ग्रीवा मार्ग से फैलता हुआ ऊपर की तरफ अंकुरवेष्ठन की तरफ पहुंच कर गर्भ श्राव का कारण हो जाया करता है। यदि ऐसा नहो, तथा इस की कुछ भी चिकित्सा इत्यादि न हो तो फिर सूतिका काल में गर्भ स्थान के दूषित या कीटाविष्ठ होने की सम्भावना होती है, यह रोग ज्यादा बढ़ कर डिम्ब प्रणाली तक पहुंच कर उनमें पीप युक्त शोथ पैदा करता है।

गर्भाशय में केवल सूजाक कीट से पैदा हुआ सूतिका कीटावेश अथवा विष संक्रमण इतना तीव्र नहीं होता, और उसके साक्षात् होनेमें भी करीब ७ दिन के ले लेता है। पर प्रणालियों के सूजन युक्त होने की शंका ज़रूर हो जाती है। इस लिये उनके बचाव का प्रयत्न करना ज़रूरी है, इससे भी ज्यादा हानि नव जात बच्चे के नेत्रों को हुआ करती हैं। अतः पैदा होते ही उनके नेत्रों को सुरक्षित तथा साफ रखने की कोशिश करनी चाहिये।

उपचार-पैदा होते ही शिशु की आंखों में १% सिलवर नाईट्रेट लोशन को ११ बूँद आंखों में छोड़ देवे इस से आँख सुर्ख हो जायगी, किन्तु चन्द मि

* गोदन्ती में संखिया है, यह बात ग़लत सिद्ध हो गई है। "खनिजविज्ञान" कविराज प्रताप सिंह द्वारा लिखित देखो। यह श्वेत गंधक का भाग है। इस मत से हम असहमत हैं। —संपादक

नट में अपने आप ठीक हो जायगी। अथवा विशुद्ध गुलाब जलमें १० प्रतिशत फिटकरी और १ प्रति शत तूतिया को मिला कर रख लो, इसमें से १ बूँद डालो। इससे नेत्र रक्षित रहेंगे, उनमें कोई विकार नहीं होगा।

यक्ष्मा रोग

यह बात मशहूर हैं, कि यक्ष्म रोग से ग्रसित औरतों का स्वास्थ्य उनके गर्भ धारण के बाद अच्छा हो जाया करता है। लेकिन गर्भवती नारियों के फेफड़ों की परीक्षा से उक्त विचार बिलकुल झूठ तथा निर्मूल ही साबित हुआ, रोगों में उल्टी वृद्धि ही देखी गई, तथापि गर्भवती के चेहरे पर ऐसा नहीं मालूम होता है, और न ऐसा वह अपनी दशा को रोग ग्रसित समझती हैं।

प्रसूत समय में बहुधा दूध देने समय में ऐसी स्त्रियाँ जल्दी दुर्बल हो जाती हैं। और उनका रोग वृद्धि को प्राप्त होता है। इन की सन्तान प्रायः हृष्ट पुष्ट होती हैं। लेकिन किसी २ बच्चे के वास्तविक यक्ष्मारोग के चिन्ह भी मौजूद रहा करते हैं। ऐसे ही यक्ष्म को "कमल का यक्ष्म,, कहा करते हैं ऐसी स्त्रीको (क्षय से पीड़ित) विवाह की आज्ञा नहीं है। क्यों कि इससे उनके पति को भी इसी रोग का शिकार बनना पड़ता है। यदि शादी हो भी जाय, तो उन्हें गर्भधारण का उपदेश देना नहीं चाहिये, यदि गर्भ रहजाय तो फिर यक्ष्म रोग की साधारण सीधी चिकित्सा पद्धति से तर चिकित्सा ही करना उचित होगा, जहाँ तक हो प्रसूति में अल्प समय व्यतीत होना चाहिये।

प्रसवाको कोखने का निशेध करना उचित है, और अवस्था के शुरू होते ही संदंशों का प्रयोग करना चाहिये इन यत्नों, के अलावा इसकी माता कोशिशकरे कि, वह बच्चे को स्तन न पिलावे सूतिका समय तथा कुछ समयान्तर भी फेफड़ों की परीक्षा ज़रूर करते रहना चाहिये।

फिरंग रोग

का असर गर्भ समय में कई तरह का होता है। और यह गर्भ धारण के पहिले ही हो तो ७५% स्त्रियों को गर्भ पतन या असामयिक प्रसूति हो जाती है। क्यों कि समय के नष्ट हो जाने से तथा चिकित्सादि द्वारा रोग का ज़हर व प्रभाव कुछ न कुछ हलका जरूर हो जाता है। इसी लिये आगे होने वाली गर्भस्थितियों में गर्भपात होने की शंका कम होती है। और गर्भावस्था का समय क्रमशः बढता जायेगा। आखीर में बच्चा अपने ठीक वक्त पर जन्म लेगा, बच्चे की हालत भी भिन्न है, शुरू में यह प्रायः मृतक या रोगी होता है। परन्तु बाद में जीवित व रोगी बच्चे पैदा होंगे। कुछ कालानन्तर बच्चा जीवित, या कुछ स्वल्प होगा, परन्तु यह भी जल्दी रोग का घर बन जाता है। अतः एकाध बच्चा ऐसा भी उत्पन्न हो सकता है, कि जिसका शरीर रोग के चिन्हों वाला न हो, पर गुप्त रूप से उसके शरीर में बीज हो, ऐसी दशा में रोग स्थायी, दांत पैदा होने के समय या यौवनावस्था के प्रारम्भ में ही अपनी दशा (रूप) प्रगट कर देता है,।

यदि गर्भधारण समय स्त्री को फिरंग हो जाती है, तो उसके बच्चे को ज़रूर होगी, या तो इसका बीज सीधा माता द्वारा पहुंचता है, या स्थित होने वाले शुक्र कीट से आता है। इसी

तरह की दशा में गर्भस्राव व पात होता है, यह रोग यदि स्त्री को पहले महीने में हो, तो भी बच्चे को भी होता है। कि जिससे असामयिक प्रसूति होती है।

यदि यह रोग गर्भावस्था के बाद हो तो बच्चा या तो इससे सर्वथा बच जाता है। अथवा कुछ प्रभावित हो जाता है। जितना रोग देर में होगा उतना ही बच्चा रोग ग्रस्त कम होगा, परन्तु कभी कभी बच्चा गर्भावस्था में तो सुरक्षित रहता है। पर आक्रान्त योनिमार्ग से गुजरते हुए, वहां के स्थानीय दोष के कारण रोग बीज से प्रभावित हो ही जाता है, उस समय अर्याजित फिरंग के से लक्षण प्रगट होते हैं।

फिरंग से संतप्तरोगी के शुक्र से कभी २ रोगी बच्चा पैदा हो सकता है, पर स्त्री एक प्रकार से सुरक्षित रहती है। उसके ऊपर साक्षात् असर फिरंग का कोई भी नहीं पड़ता। ऐसी दशा में स्त्री बच्चे को स्तन पिला सकती है, कीटावेश का भय नहीं होता परन्तु धिमाता इस तरह दूध नहीं पिला सकती, इस का उत्तर इस तरह से हो सकता है, कि पूर्वोक्त माता गुप्त फिरंग से पीड़ित होती है, लेकिन उसके शरीर के ऊपर मालूम नहीं होता डा० कौलस (Colles) का विचार है कि माता के शरीर में इस रोग के प्रति रोग क्षमता संचित हो जाती है, डा० जान्सटन के विचार से यह ठीक नहीं है।

गर्भपात या स्राव के सब से प्रधान कारण केवल फिरंग ही है, यदि स्त्री का कई बार गर्भपात या स्राव हो जाय, तो उसका साफ कारण फिरंग ही समझना चाहिये, संदिग्ध व्यक्तियों में वासरमैनटेस्ट द्वारा परीक्षा करना चाहिये। परन्तु याद रहे कि यदि गर्भावस्था में शोणित परीक्षा के परिणाम में यदि फिरंग सिद्ध न हो, तो फिरंग से वह रहित है, ऐसा न समझना चाहिये, थोड़ी २ मात्रा में स्त्री के शिरा द्वारा संखिये के यौगिकों को देना चाहिये। जो यौगिक फिरंग के लिये हैं। अब फिर रक्त की जांच करना चाहिये। यदि अब साफ फिरंग सिद्ध हो जाय, तो पति पत्नी को कम से कम दो साल तक चिकित्सा कराना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों को नियमानुकूल चिकित्सा कराते हुए गर्भाधान न करने देना चाहिये, यदि गर्भ रह जाय, तो स्त्री को सिर्फ बच्चे के रक्षार्थ चिकित्सा कराना चाहिये।

यदि बच्चा जीवित पैदा हो तो उसे स्तन पान कराना चाहिये, ऐसी दशा में धात्री को भी यह रोग लग जाने के कारण स्तन पान के लिये नियुक्त न करना चाहिये।

रक्त प्रवाह के रोग

गर्भकाल में हृदय को बहुत काम करना पड़ता है, यदि हृदय पहिले से ही पुरातन रोग वाला हो तो उसका नतीजा खराब होता है। हृदय की कमजोरी मालूम होने लगती है जोकि पहिले नहीं मालूम होती थी हृदय के रोगों का प्रभाव गर्भावस्था पर प्रगट नहीं होने पाता। यदि हृदय उस ह्रास को पूरा अपनी ताकत से कर दे। यदि यह ह्रास पूर्ति न हो तो शिराओं को रक्त के पीछे की ओर दबावें यह गर्भ स्राव या असामयिक

प्रसूतिकी सम्भावना को और भी बढ़ा देता है। जिन रोगों में रक्त प्रवाह को रुकावट होवे ऐसे समय में अधिक खातरनाक हो जाते है। जिस स्त्री को कोई ऐसा रोग हो, कि जिसके कारण हृदय के दोषज कार्य की क्षति की पूर्ति न हो तो उसके प्रसव में बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। इस में हृदय का दाहिना भाग ज्यादा फैल जाता है। और प्रसार में ही रुक जाता है। सबसे ज्यादा चिन्ता वाली बात यह है, कि जिसमें हृदय के बांये ग्राहक कोष्ट वा क्षेपक कोष्ट का छिद्र तंग हो जाता हैं, इस में हृदय के बाँये भाग पर भार पहिले से होता है, महा धमनी के द्वारा का तंग होना इस की दूसरी खराबी है।

सबसे ज्यादा खतरे के समय ये हैं—

१-प्रसव की द्वितीयावस्था की समाप्ति, जब कि मांस पेशी पर ज्यादा भार पड़ना है,

२-जब कि कमल अलग होता है, और कमल के रक्त प्रवाह का गर्भाशय में का शोणित शारीरिक रक्त प्रवाह में मिलता है। तो इस समय प्रसवोत्तर स्राव का भी भय होता है, ऐसे घोर रोगों से दुखी स्त्रियों की शादी न करनी चाहिये, अथवा उसे गर्भाधान से बचना चाहिये, यदि वह गर्भवती हो, तो उसको साधारण दवा इत्यादि करना चाहिये। किन्ही घोर भय वाली दशा में गर्भ स्राव कराने की जरूरत होती है। प्रसवा स्त्री को ऐसे समय तकलीफ नही पहुंचानी चाहिये, प्रसावावस्था में तो आराम से लिटाना चाहिये, बहुत तेज दर्द के समय काँखने के रोकने के लिये उसे सम्मोहन करना चाहिये इधर उत्तम सम्मोहक चीज है। जब ग्रीवा विस्तृत हो जाय तो संदंशों के प्रयोग से प्रसूति करा देना चाहिये। प्रसव समय में शुरु से अन्त तक हृदय की गति के ऊपर जरूर ध्यान देना चाहिये, और क्षणिक सूचनामिलते ही जल्दी से जल्दी कुचला सत या (Strophanthin) का अन्तक्षेप करने के लिये, तैयार रहना चाहिये, अथवा किसी शिरा को काट कर थोड़ासा खून निकाल लेना उचित है, ताकि बाँया हिस्सा अधिक दबाव से सुरक्षित रहने के जब कि कमल गर्भाशय से पृथक होने लगता है तब उसकी जरूरत होती है। प्रसवोत्तर रक्तस्राव की अल्पमात्रा कुछ अंश तक तो लाभप्रद होती है इससे हृदय का भार घट जाता हैं। इसका ज्यादा मात्रा में आना जाना भयंकर होता है ऐसी स्त्री को सूतिका काल में बहुत देर तक बिस्तरे पर लेटे रहना उचित है, अपने बच्चे को स्तन न पिलाना चाहिये,

गिल्लड़ या घेघा—

इस रोग पर गर्भावस्था का असर भिन्न२ होता है, तोभी यह पीड़ा दायक होताहै, साम्वेदनिक नाड़ियों की साधारण अस्थिरता और चालक नाड़ियों की उत्तेजकता गर्भ स्राव की आशा को ज्यादा कर देती हैं।

प्रसवोत्तर रक्त स्राव की अधिक सम्भावना होती है हृदय विराम का प्रसूति के समय, विशेष कर उस समय जब कि सम्मोहक दवा को प्रयोग किया गया हो ख्याल रखना चाहिये।

शस्त्र साध्य रोग—

जहां तक हो सके गर्भवती के ऊपर शस्त्र क्रिया न करनी चाहिये। उदर की शस्त्र क्रियाओं

में गर्भ स्राव होने की सम्भावना २०% है दूसरे जगह शस्त्र क्रियाओं की कम, । यदि किसी शस्त्र-साध्य व्याधि को सूतिका काल तक छोड़ देने से कोई नुकसान हो, तो उस समय तक स्थगित रखनेमें कोई हानि नहीं ।

उपांत्रोष—यह गर्भ के बहुत ज्यादा भयानक उपद्रवों में से है, गर्भप्रसव के पूर्वार्द्ध में तत्क्षण शस्त्र क्रिया कर देना चाहिये । आखिरी महीनों में भी कर सकते हैं, इस समय सिर्फयही कठिनाई है, कि गर्भयुक्त गर्भाशय उपांत्र क्षेत्रके समक्ष आया होता है, प्रसूत काल तक इसे स्थगितरखनेसे प्रसव समय की उदर सम्बन्धी आंतरिक आकुञ्चन गतियां उपांत्र क्षेत्र के स्थित, व पक्वव्रण शोथको फाड़ डालती हैं। फल स्वरूप परिविस्तृत तौष प्रत्यक्ष हो जाता है ।

"शिरा स्फीति"-[शिराओं का फूल जाना) निम्न शाखा की शिराओं पर गर्भयुक्त गर्भाशय का दबाव पड़ता है । अतः पैरों की शिखाओं का फूल जाना देखा जाता हैं, उन स्त्रियों में यह जरूर देखने में आता हैं कि जिन स्त्रियों में पहिले से ही इसकी प्रवृत्ति मौजूद हो। गर्भावस्था में शस्त्र क्रिया करना व्यर्थ है । किसी २ स्त्री की भग की शिरायें ज्यादा फूल जाती हैं, और प्रसूति में रुकावट डाल देती हैं। ऐसी औरतों को सीधा लेटना चाहिये, पैरों पर मोजे व पट्टी बांधना अच्छा होगा । यदि शोथ अधिक हो जाय तो—

(१) रास्ना, गुड़ची, अमलतास, पुनर्नवा का काथ ३-३ तोले की मात्रा में दिन में २ वार देना चाहिये

(२) पूनर्नवाके काथ में घी डालकर पिलावें ।

पथ्य-मूँगकी दाल, अरहर की दाल, गेहूं की रोटी, बथुवा, पालक, चौलाई, मूली, का शाक ।

अपथ्य-खट्टे, तीखे, कड़वे, पदार्थ चावल, उड़द और विष्टम्भी आहार ।

अर्श—पेट की शिराओं पर वृद्धि युक्त गर्भाशय के दबाव पड़ने से गुदा की शिरायें फूल जाती हैं, और वे मस्सों के रूप में प्रकट हो जाती हैं। यदि मस्से पहिले से ही हों, तो गर्भकाल में और भी मोटे होकर दुखदायी होते हैं ।

उपचार

(१)—सौंफ और मिश्री का चूर्ण १ माशे १ पाव गाय के दूध से पीवें ।

(२)—गुलकंद रातको दूध के साथ १ तोला खावें,

(३) मक्खन १ तोला, नागकेशर २ माशे मिश्री ६ माशे मिला कर सेवन करें ।

(४)यदि खूनी होतो-सौंफ, जीरा, धनियां, अष्टावशेषित काथ १ छ० में १ तोला घी मिला कर पिलावें ।

(५) कमल केशर शहद मक्खन मिश्री प्रत्येक ३ मा०, नागकेशर ३ माशे, लेकर १५ गोलियां बना लेवे, प्रातः सायं सेवन करें ।

पथ्य—गेहूं की रोटी, मूंगकी दाल, हरे शाक, घी, दूध मक्खन, मूली, मट्ठा ।

शोफ—भार की वजह से अधो शाखा में थोड़ी बहुत शोफ आ जाया करती हैं। परन्तु इसे ऊपर लिखित दबाव का कारण न समझ कर मूत्र परीक्षा द्वारा निदान स्थिर करना ठीक है, सर्व शरीर की साधारण शोथ तथा मुखकी शोथ या तो वृक्क के ही कारण हुआ करती है, या कोट

रक्तता के कारण से समझो, इसमें मूत्र परीक्षा की नियमानुकूल परीक्षा उचित है, साधारण दशा में खाट का विश्राम ही काफी है, परन्तु कीटरक्तता में व वृक रोग में चिकित्सा आवश्यक है, कभी २ भग की शोथ इतनी बढ़ जाती हैं, कि दोनों भगोष्ट पानी से भरे व ज्यादा सूजन वाले दिखायी देते हैं।

चिकित्सा

(१) पुनर्नवा व दशमूल में से किसी के क्वाथ को योगराज गुग्गुल के साथ सेवन करें।

(२) त्रिफला चूर्ण २से४ माशे रात को सोते वक्त गर्म दूध से सेवन करें।

आहार विहार—लघु आहार तथा पूर्ण विश्राम देना चाहिये।

योनि शोथ में—पञ्चक्षीरी वृक्षों के क्वाथ में घी मिलाकर कपड़े में भिगो करके योनि प्रदेश को तर रक्खें।

कोष्ठ बद्धता

यह भी दबाव का कारण है, गर्भवती को वेग के रोकने से, तथा कोष्टबद्धता के नुकसानके प्रति सूचित करना चाहिये, भोजन उत्तम हलका उचित है, किसी हलकी दवा का प्रयोग जरूर हो, तेज जुलाब (रेचनादि) गर्भस्राव के कारण होते हैं।

कोष्ठबद्धता का उपचार

१—हिंगाष्टकचूर्ण, लवणभास्करचूर्ण, को मट्ठ के साथ सेवन करना चाहिये।

२—सोंठ और गुड़ या हरड़ और गुड़ का सेवन होना चाहिये।

पथ्य—मट्ठा और फलोंका सेवन उचित है।

वृक्क क्षय

यह रोग प्रायः गर्भकाल के ५ या ६ मास ही में होता है, रोग वाम वृक की अपेक्षा दायें में अधिक होता है। दोनों का एक साथ रोग ग्रस्त हो जाना, कम दिखाई देता है।

तीव्र क्षय—(Acute pyltitics यकायक प्रारम्भ हो जाता है, रोगिणी के पार्श्व में फाड़ने का सा दर्द होता है, शरीर ताप भी बढ़ता है, प्रायः कंपकंपी भी होती है, कुछ समय या घण्टे बाद मूत्र गंदला हो जाता है, पीड़ा कुछ समय को बन्द हो जाती है। यदि चिकित्सा न की जाय तो वृक्क या उसकी नलिकाओं का प्रदाह हो जाता हैं, इसी दशा के साथ कभी २ प्रवेश द्वार के समतल के ऊपर अस्वस्थ पार्श्व की ओर गर्भाशय कुछ फैला हुआ भी पाया जाता हैं, इसका कारण (Bacillus coli communis) नामी कीटाणुओं को मानते हैं, परन्तु कभी २ भिन्न २ श्रेणियों के मिले जुले कीड़े भी पाये जाते हैं, रोग की उत्पत्ति या तो रक्त प्रवाह द्वारा होती है, यानी कीटाणु इस मार्ग से व्यथित जगह पर पहुंच जाते हैं, या मूत्राशय से ऊपर की तरफ चढ़ जाते हैं। इसे उपांत्रोप से गौर से पहिचानना चाहिये, कारण कि इन दोनों में मेल पाया जाता है, यानी एक से होते है। तोभी इस में वृक्क क्षेत्र से कुछ पीड़ा मालूम होतीहै, दवाने से जल्दी ज्ञात होता हैं, मूत्र परीक्षा से इस में पीप वा कीटाणु ज्यादा होते हैं, B. Coli नामी कीटों की उपस्थिति से मूत्र की प्रति क्रिया प्रायः अम्ल प्रधान होती है।

चिकित्सा—

किसी योग्य चिकित्सक की सहायता लेना चाहिये।

यकृच्छूल—

भयंकर यकृत् वेदना का प्रधान कारण पित्ताशयमें पित्ताश्मरी के रुकावट हो जाना ही मुख्य कारण समझा जाता है। अश्मरी भी पित्ताशयक नली के समीप ही होती है। इसकी पीड़ा अधिकतर रात्रि में ही होती है और अकस्मात यह पीठ की तरफ होने लगती है। या बाम कन्धे की ओर पहुंच जाती है। पेट में दबाने से अच्छा भी मालूम होता हैं, वृक्क पीड़ा में तो वृक्क स्थान से वेदनाआरम्भ हो, नीचे के भाग में कुछ तिरछी रूप में मूत्राशय की तरफ चली जाती है। शौच में तो अकस्मात् पीड़ा वक्षस्थल के किसी भाग में होने लगती है। और बिलकुल सूचिकाच्छेदन की तरह प्रतीत होती है, यहां तक कि श्वास लेने की गति में भी बहुत वेदना वृद्धि होती है।

रोग निश्चिति

इस रोग में अगर बिना मथित मूत्र की बिन्दु को अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा की जावे, तो उस बिन्दु में मवाद अथवा कीटाणु का एक साथ होना ही निदान है, यदि केवल पीप ही या कीटाणु ही पाये जांय, तब तो ऐसी दशा में उस रोगी के यह रोग नहीं है, यही समझना चाहिये।

चिकित्सा—

ऐसी अवस्था में औरत को बिछौने पर आराम से लिटा देना चाहिये, फिर उसके बाद जल अथवा और कोई द्रव जलीय वस्तुओं कोसेवन कराना चाहिये।भोजन भी हलका देना चाहिये, और क्षारीय पदार्थ जैसे कि (सोडावाटर) इत्यादि खारी पदार्थ के सेवन कराने से मूत्र की भी प्रति क्रिया क्षारीय हो जावेगी, मूत्र के क्षारीय होने से कुछ दिनों में आराम हो जावेगा।

यदि रोग बहुतायत से हो, गया हो तब तो गर्भपात कराना ही उचित होगा ऐसी चिकित्सा करने से प्रायः अधिक संख्या में रोगी आराम हो जाते हैं।

बहुमूत्र या शार्करिक मूत्रता

गर्भावस्था में कुछदिन व्यतीत होने पर स्त्रियों के मूत्र में प्रायः शर्करा देखी जाती हैं। अधिक पेशाब के अलावा और भी कितने हेतु होते हैं। जोकि यह हैं १–मधु मेह २-दुग्ध की तरह शर्करा से मिश्रित मूत्र,–३ आहार से संबंध रखने वाली शर्करा युक्त मूत्र–४ गर्भाधान संबंधित शार्करिक मूत्रता — यथार्थ में तो ऐसी दशा में बहुमूत्र की परीक्षा करनी चाहिये।

१–मधुमेह–जिस में कि गर्भाधान के पहले ही से मूत्र में शर्करा पाई जावे, या शर्करा युक्त मूत्र के साथ यूरियां वृद्धि या अत्यंत क्षीणता के लक्षण मौजूद हों। बहुमूत्र का रोग तो बड़ा ही भयानक है। इस रोग में अधिकतर गर्भ पतन भी हो जाया करता है। और और तन्द्रा इत्यादि रोग से ग्रसित हो, कराल मृत्यु के गृह की अथिति हो जाया करती है, मृत्यु गर्भावस्था के समय में ही होती है। या बच्चा जनने के समय में होती है,ऐसे समय में सन्तान भी मृतक ही पाया जाता है।

२—दुग्ध मूत्रता

ऐसी दशा में दुग्धौज मूत्र युक्त की यदि फेलिङ्ग द्वारा अथवा किसी दूसरे विधान से परीक्षा करने पर शर्करा देखी जावे, तो उसको उसी समय यह जानना ज़रूरी है, कि यह कौन सी शर्करा हैं, दुग्ध की है, या कोई (दूसरी अंगूरी इत्यादि) ऐसे समय में प्रसूता औरतों को बच्चों के लिये दुग्ध नहीं पिलाना चाहिये। क्योंकि उनके पेशाब में दुग्ध शर्करा पाई जाती है। इसलिये: दुग्धौज का मिलना हानि कारक समझा जाता है।

३—आहार सम्बन्धी श्वेत मूत्रता

यह वेदना गर्भ युक्त और औरतों की अपेक्षा में बहुतायत से देखी जाती हैं। उनके लिये कर्बोज अथवा शर्करा का प्रयोग नहीं करना चाहिये। और इसका मुख्य कारण मन्दाग्निही समझा जाता हैं।

४—गर्भावस्था जनित बहुमूत्रता

इसके विषय में हम यथार्थ रूप से नहीं कह सकते हैं। कि इसका प्रधान कारण क्या हैं? न इसके संग में शर्करा प्रमेह अथवा बहुमूत्र के ही और चिह्न मिलते हैं, न भोजन के बदलने से ही इस में कुछ भेद पाया जाता है। और किसी उपयोग के बिना ही शान्त हो जाता है।

उपचार

(१) बसंत कुसुमाकर, मालतीबसंत, तारकेश्वर रस में से किसी एक को आधा रत्ती मात्रा में सेवन करावें।

(२) लौह, मुक्ता, प्रवाल, शंखभस्म इन सबों को मिलाकर गुडूची के रस की भावना ७ देवे तैयार होने पर १ रत्ती मात्रा में सेवन करें, मधु व मिश्री के साथ, पथ्य लघु होना चाहिये।

दन्त शर्करा

यह रोग बालकों को तो होता है, किन्तु गर्भवती स्त्रियों में भी देखा जाता हैं। इसका मुख्य हेतु तो दांतों पर मैल का इकट्ठा हो जाना अथवा सोते समय मुंह खोलकर सोना भी समझा जाता है, क्योंकि जो अन्न ठीक मुंह साफ न करने से रह गया हो फिर उसका सड़ जाना ही प्रधान कारण है। क्योंकि माधवाचार्य ने लिखा भी है—

मलोदन्त गतो यस्तु पित्त मारुत शोषितः।
शर्करे व खरस्पर्शा साज्ञेया दन्त शर्करा।

सड़ाव होनेसे दांतोंमें वेदना भी इतनी अधिक होती है, कि उस दांत से अन्न का दबाना भी दुस्तर हो जाता है, इस तरह से अजीर्ण भी हो जाता है। एसी दशा में किसी सुयोग्य वैद्य (दन्त चिकित्सक) की दवा करनी चाहिये।

चिकित्सा

१— लाख या शहद को दांतों में लगाना चाहिये।

(२) सेंधानमक व कड़वा तेल दांतों में मले गर्म पानी से मुह धो लें।

(३) एलादि मंजन, कालक, पीतक, कोई योग चरक के मुँखरोग में का प्रयोग करें।

त्वचा के रोग—

बहुतायत से यह भी देखा जाता है, कि गर्भवती स्त्रियों के चर्म रोग भी कभी २ हो जाया करते हैं। जैसे अर्क अरूंषिका इत्यादि और यह अपना भयङ्कर रूप धारण कर लेते हैं। इस लिये इस का उपाय बहुत जल्द करना चाहिये। स्त्रियों के देह पर कुछ काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। जो कि बच्चा जनने के बाद कई साल पर्यन्त रहा

करते हैं, इनको कोई झाई के भी नाम से पुकारते हैं।

उपचार— (१) मंजिष्ठार्क को २ से ४ तोला मात्रा में सेवन करें।

(२) सरसों. वच, चिरौंजी, पिस्ता, कमलफूल, सत्यानासी की मूल इन सबोंको पीसकर उबटन लगावे। योनि में यदि खुजली, होती हो तो उसे कार्बोलिक वा नीम के सोप से धोकर मरिचादि तेल का फाया रख दें। या- सरसों के तेल को लगादेवें। या घी चुपड़ देवे। या—यशद मलहर- (Zine oint ment) को लगावें।

अधिक स्ठीवन

गर्भावस्था में यह वेदना तो बहुत ही भयङ्कर होती हैं, यह गर्भावस्था के कारण उत्पन्न होती है, २४ घंटों में लगभग १ सेर के थूक निकला करता है, अगर यह पीडा नाड़ियों के प्रभाव से हुई हो, तो दवा करने से कोई भी लाभ प्रायः नहीं देखा जाता हैं। यदि किसी और हेतु से पैदा हुई हो, तब तो भोज्य पदार्थों में दूध देने से लाभ पहुंचता है, या कोष्ट को शोधन करने वाली अन्य औषधियों के प्रयोग से भी लाभ देखा जा चुका है। कभी यह बढ़ कर बमन का रूप धारण करता है, तब इसकी चिकित्सा यह है।

(१) ३ माशे मोरपंखभस्म, १ मासे बड़ी इलायची के छिल्के, की भस्म शहद, के साथ दिन में कई बार चाटे।

(२) इन्द्र यव, इलायची, वायविड़ंग के दस दाने भुना करके शहद के साथ सुबह शाम चटावे,।

(३) सोंफ के अर्क के साथ चंदन घिसकर पिलावें।

(४) जब बमन तीव्र होवे सोड़ा ५ रत्ती, धान की खील १ तो० को जलमें मिला कर ऐसे योग ३ बार दिनमें पीवें।

(५) यदि व मन के साथ रक्त दिखलाई पड़े। मुलहटी चूर्ण २ माशे, सफेदचंदन का बुरादा २ माशा दूध के साथ पीवे।

(६) प्रवाल व मुक्ता भस्म १॥ रत्ती मात्रा में शहद व पोदीना की चटनी के साथ पीवे।

राशा रोग

इस रोग को "राशा" के नाम से संसार में व्यवहार किया जाता है। कई औरतों को तो यह रोग प्रथम गर्भ समय में ही हो जाता है, इसका मुख्य कारण तो गर्भ काल में कोई विषान्वित वस्तु हुआ करती है। इस लिये यह और भी भयङ्कर दशा को ग्रहण कर लेती है। पहले स्वभाव के अपेक्षा कुछ चिड़चिड़ाहट, भीरुपन स्थिरता होती रहती हैं। स्मरण शक्ति का कम होना, कुत्सित विचारों का प्रादुर्भाव होना, रक्त क्षीणता दुर्बलता और भोजन का अनियम रूप से वृद्धि होना, ओष्ठ प्रक्षेपण पलकों को इतस्ततःघुमाना, अंगुलियों काहिलाना इत्यादि बातें पैदा हो जाती हैं। यदि रोग वृद्धि अधिक हो गई हो तब हाथों को इधर उधर पटकना, सोते समय भी अंगों में स्फुरणता का पैदा होना गर्भस्राव का हो जाना, इत्यादि पाया जाता है। इसके बाद फिर ज्वर भी आने लगता है, ऐसी दशा में सामान्य चिकित्सा से कोई भी लाभ नहीं होता मृत्यु संख्या २०% होती हैं।

हमेशा ऐसी हालत में सुख पूर्वक लिटा देना चाहिये, और रेचक तथा कोष्ट को शोधन करने वाली दवाइयां तथा मृत्रल पदार्थों का सेवन अत्यन्त हितकारी होगा ऐसे, समय, गर्भ पातन से कोई फायदा भी नहीं देखा गया है, लेकिन इस का ख्याल जरूर रखना चाहिये। यदि गर्भावस्था के कोई विषैले पदार्थ हो तो साधारण चिकित्सा जारी रखना चाहिये।

गर्भ कला के अंकुर वेष्टक अन्तराचरण आदि रोग

ले० शास्त्राचार्य श्री केदारनाथ शर्मा, मिश्र, बलिया

अंकुर वेष्टन Chorion

गर्भाशय की कलाओं में अपरा बनने के प्रारंभ में छोटे २ अंकुर पैदा होते हैं। यह ही भ्रूण के लिये आवश्यक खाद्य सामग्री तथा रक्षा के कार्य को करते हैं। इनमें कभी कभी कई कारण से अंकुर वेष्टन के अंकुर (Villi) तन्तुवत या गुच्छोंमें एकत्रित होकर के बहुत से बन जाते हैं। इन की आकृति शुष्क द्राक्षा से लेकर के अंगूर के बराबर तक हो जाती हैं। गुल्माकृति होने के कारण इस रोग को *गुल्माकृति पिंड समूहया स्थूल कोषीय गुल्म (Hydatidi erom mole) कहते हैं। यह २००० या ३००० में १ प्रति पाया जाता है। अनेक बार प्रसूताओं में अधिक पाया जाता हैं।

कारण—मिथ्या हार विहार तथा पुनः पुनः गर्भ धारण करना है, अधिक तर पिंड अंकुरों की पर्णकता के दूषित होने से यह रोग देखा जाता है। जो गर्भाशय में शोणित एकत्र होने से ही होता है।

लक्षण—गर्भ स्थित के लक्षणों में से आर्तवानुपस्थिति, स्तनवृद्धि का होना। २–गर्भाशय का वेग पूर्वक बढ़ना। ३ मास के गर्भ की बाढ़ ६ मास के गर्भ के बराबर होना।

३--अनियमितरक्तपात। कभी अल्प मात्रा में कभी अधिक मात्रा में, पुनः पुनः होना। (४) रक्त स्राव में स्नेहित तरल Serous fluid का होना। (५) गर्भाशय स्पर्श में मृदु व लचकदार होना। (६) भ्रूण के अंग प्रत्यंङ्गो के उभारों का अभाव (७) भ्रूण का हृदयस्पंदन सदृश शब्द (नितान्त अश्राव्य) की प्राप्ति। (८) बमनादि का कभी कभी होना। (९) गर्भाशय दबाने से दर्द का होना।

व्याधि विनिश्चय

यह रोग अतिगर्भोदक वृद्धि, यमज गर्भ, गर्भार्व्बुद की तरह का ही होता हैं। अतः इसे अच्छी तरह समझ कर चिकित्सा करे अति गर्भोदक वृद्धि (Hydrannios) इस में उदक अन्दर तरंग प्रतीति की जा सकती है। तथा उदक की अधिकता की हालत में गर्भाशय तना-हुआ, लचकदार होता है। और में नहीं।

यमल गर्भ Jwin

में गर्भ के अंगों के उभार अनुभव किये जा सकते हैं, तथा भ्रूण का हृदस्पंद सुनाई देता है

---

* गुल्म के अर्थ यहां पर समूह के हैं, कोई गुल्म रोग न समझे गुल्म रोग से यह बहुत पृथक रोग है।

गर्भार्ब्बुद

शल्य चिकित्सक क्लोरोफार्म देकर इस रोग की परीक्षा कर सकता है।

फल-इस के होने से गर्भ स्राव अवश्य हो जाता है। यदि प्रारम्भ में नहो, तो ४ या ५ मास में अवश्य हो जाता है। कभी २ ये गुल्म शोणित होकर कई उपद्रव पैदा कर देते हैं, जैसे—(१) रक्तपात (२) उदरावरण दाह (३) आवरणार्बुद (४) गर्भस्राव।

रक्तपात

अचानक व अधिक होता हैं। कभी२ अधिक दिनों तक निकलता रह कर भी घातक होता है।

उदरावरणदाह

उदरावरण दाह में गर्भाशय फट जाता है और यह रोग (Perilonitis) पैदा हो जाता है।

आवरणार्बुद

आवरणार्बुद-कभी २ अंगूर (अंकुर) दानों के निकलने के प्रदेश पर रक्तरोध होकर अर्ब्बुद भी बन जाया करता है, इसे कोरियन एपिथलियोमा मैलिगनम Chorion Epithelioma malignum कहते हैं।

चिकित्सा-पता लगते ही गर्भ स्राव करा दो, गर्भाशय खाली रहे और गर्भिणी को बिल्कुल आरामसे रखो। अधिक रक्तपात होने की हालत में सुयोग्य चिकित्सक की सम्मति लो। अन्यथा यह भयानक हो तुलेगा।

अंतरावरण Amnion

भ्रूण के आभ्यंतर के आवरण और उस के बीच में कभी २ गर्भोदक अपने मात्रा से अधिक इकट्ठा हो जाया करता है, इसे गर्भोदक अति वृद्धि (Hydram nious) कहते हैं। स्वाभाविक गर्भ में जल अधिक से अधिक ३० छटांक रहता है जब यह इस से अधिक हो जाय तो रोग समझते हैं। यह रोग २०० गर्भवतियों में किसी एक के होता है।

कारण—माता के हृदय, फुफ्फुस, व वृक्क के रोग कारण होते हैं। रक्त भार अधिक होता है, अतः हृदय इत्यादि की कमजोरी से तरल अधिक इकट्ठा हो जाता है, अथवा कमल की कमजोर नाभिनाल का अधिक बल या टेढ़ा मेढ़ा होना।

लक्षण-श्वास फूलना, हृत्स्पन्दन का अधिक होना, अजीर्ण, उदर की मांसपेशियों में दर्द, हाथ पैरों में शोथ, वृक्क रोगों के कारण मूत्र में अलब्युमिन (Albumin) का होना इत्यादि।

परिणाम—गर्भस्राव या असामयिक प्रसूति।

रोग निर्णय-यह रोग यमज गर्भ डिम्बिका गुल्म, जलोदर, वस्ति, विस्तृत व अन्य गुल्माकृति पिण्डों से समता रखता है। अतः रोग निर्णय के वक्त अधिक सावधानी रखनी चाहिये।

यमल गर्भ

इसमें हृत्स्पंदन व अङ्गों के उभार मालूम किये जा सकते हैं। किन्तु यह दोनों रोग कभी कभी एक साथ ही होते हैं, अतः शल्य चिकित्सक की शरण लेवे।

डिम्ब का गुल्म (Overioncyst)

अधिक गर्भोदक में गर्भाशय अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक बढ़ता है, और तना रहता है, डिम्ब गुल्म में की भांति श्रोणि क्षेत्र में ही नहीं होता। न

बारबार आकुंचित व विस्तारित होता है।

जलोदर

अनेक आसनों द्वारा समझा जा सकता है। मूत्राशय विस्तृत-इसमें मूत्र निकाल कर Catheter परीक्षा सरलता से की जा सकती हैं

फल-गर्भाशय का फटना, प्रसवपूर्ण होने के पहले ही शक्तिहीन हो जाना, प्रसवोत्तर रक्त घात, विकृतोदय, आक्षेपों का आना। यह माता के हो सकते हैं,।

शिशु के लिये-अकालिक प्रसव, विकृत दर्शन नाल का प्रथम निकलना कभी कभी श्वासा वरोध व मृत्यु ।

चिकित्सा

लक्षणानुरूप चिकित्सा करे । उदर पर एक चौड़ी व मजबूत पट्टी बांधे रहे। विशेष हालत में शल्य चिकित्सक की सम्मति सम्मति लेवे। श्वास अधिक बढ़ जाय व निद्रा गर्भिणी को न आवे तो या मूत्रके साथ अलब्युमिन दिखलाई पड़े प्रसव करा देवे। कभी कभी चिकित्सक के आने से पूर्व या देर होने पर शिशु मृत मालूम हो तो गर्भोदक की थैली को फाड़कर धीरे धीरे जल निकाल दे। एका एक निकलने से गर्भिणी वेहोश होगी व श्वास फूलेगा, प्रसव के बाद रक्तपात अधिक होगा।

गर्भोदक हीनता(Oligo hydramnious)

इसमें गर्भोदक की मात्रा अत्यन्त होती है, कमसे कम सचापाव का होना रोग से बचा सकता हैं। कम हो तो रोग समझो, यह रोग १००० में १ को ही प्राप्त होता हैं।

परिणाम—प्रसव देरसे व दुःख पूर्ण होता है

"चिकित्सा"—सुयोग्य स्त्री चिकित्सक की शरण ले।

नाभिनाल Umbilical cord

नालग्रन्थियां Knotr यह भ्रूण की गति होने से या कभी २ गर्भस्राव कर औषधियों को देकर गर्भ में उत्तेजना फैला कर के उसे गतिशील बनाते हैं। तो गाँठे बँध जाती हैं। यह सत्य व असत्य दो तरह की होती है।

सत्य—ग्रंथि जब गति से गांठ लग जाय यह अधिक कस जाने से रक्त परिभ्रमण रुक कर भ्रूण को मार डालता है।

असत्य—इस में ग्रंथियां तो नहीं पड़तीं किन्तु नाल मुड़ कर गांठ की आकृति का हो जाता है। इसका कारण वारटनजेली हैं। इसे असत्य False knotr कहते हैं। कभी २ नाल प्रसव के वक्त शिशु के गले में लग कर श्वासावरोध भी कर देता हैं

अतिदीर्घ व अति क्षुद्र नाल—इसरोग में अधिक से अधिक लम्बाई ५ फीट चौड़ाई दो इञ्च की होती हैं।

परिणाम-भ्रूणपोषण कठिनता से होता है, बच्चा दुर्बल कभी मृत वश्वासावरोध की सी हालत में पैदा होता है।

कमल के रोग

कमल में गांठ पड़ना Infaretion यह साधारण तया हर एक गर्भिणी में पाया जाता है।

गर्भावस्था के रोगों की चिकित्सा

[श्री ले०—उमंगूलाल जी शर्मा भिषग भूषण, बिजनौर]

१—ज्वर

महुआ, चन्दन, खस, सारिवा, मुलहठी, पद्माख इनके क्वाथ में मधु तथा मिश्री डाल के पीवे, तो गर्भवती स्त्री का ज्वर शान्त होता हैं।

अथवा

क्षीरकाकोली, अनन्तमूल, पाढ़, नेत्रवाला मोथा, पित्तपापड़ा इनका क्वाथ कर शीतल होनेपर पीवे तो गर्भवती का ज्वर शान्त होजाता हैं।

२—पित्त ज्वर

दाख, पद्माख, खस, कायफल, चन्दन, महुआ क्षीरकाकोली, सारिवा' आमले, इनका क्वाथ गर्भवती का पित्तज्वर, शान्त करता है।

३—विषम ज्वर

सोंठ का का चूर्ण बकरी के उष्ण दुग्ध से पीवे, तो ज्वर दूर होता है।

४—ज्वरातिसार

लज्जालु (छुईमुई) मुलहठी, लोध इनके फांट में मिश्री मिला के पीवे, तो गर्भवती को प्रवाहिका जो आम और रुधिर युक्त हो, तत्काल नष्ट होती है।

५—ग्रहणी

आम, जामुन की छाल के क्वाथ में खीलों का सत मिला के चाटें, तो गर्भवती स्त्री की संग्रहणी दूर होती है।

६—उलटी और अतीसार

सोंठ, बेलगिरी दोनों का क्वाथ कर उस में जौ का सत्त मिला के पीवे, तो गर्भिणी को वमन होना और अतीसार नष्ट होते हैं।

७—कामला सूजन और रक्त पित्त

अडूसा, पिलखन, खरैटी (पील पुष्पी) इनका यूष बना के पीवे, तो गर्भवती के रक्तपित्त कामला, सूजन आदि सम्पूर्ण रोगोंको आराम होताहैं,

८—वान्ति

धनियें को चावल के धोवन में मिला मिश्री डाल पीवे, तो हृदय को हितकारी है, और गर्भावस्था को वमन को दूर करता हैं।

पृष्ठ ५७६ से आगे का... ... ...

किन्तु जब अधिक होता है, तो इससे रोग पैदा हो जाता है, कभी २ खटिका का भरण Colification भी कमल में होता है। जो अकसर पुरातन कमल में ही पाया जाता है, यदि माता पिता उपदंश से पीड़ित हैं, तो इससे स्थित गर्भ में के कमल साधारण परिमाण से बड़े फीके वर्ण के होते हैं। स्वाभाविक अवस्था में इसका भार शरीर (भ्रूण के) का ६ वाँ होता है, किन्तु उपदंश की हालत में तीसरा ही रह जाता है।

कमल में अर्बुद—कभी २ कमल में अर्बुद भी देखे जाते हैं जिनका कारण अभाव है।

चिकित्सा-योग्य चिकित्सक की शरण लेवें।

९—श्वास, कास

भारंगी, सोंठ, पीपर इनके चूर्ण में गुड़ डाल के खाय तो गर्भावस्था में होने वाले श्वास तथा कास का दूर करता है।

१०—वायु वादी

बेलगिरी तथा अरणी से परिपक्व किया हुआ जल अथवा सोंठ, डाल कर सिद्ध किया हुआ, शीतल जल पीवे तो गर्भवती के वादी के रोग दूर होते हैं।

११—मंदाग्नि

अजमोद, पीपल, जीराश्वेत, सोंठ समान ले चूर्ण करें गुड़, शक्कर मिलाय के खाय तो गर्भवती की जठराग्नि दीपन होती है।

१२—गर्भपातोपद्रव

गर्भवती के शूल दाहादि रोगों में सचिक्कण और शीतल चिकित्सा करनी चाहिये, जैसे कुश काश, अंड की जड़, और कसेरू, इनको दूध में डाल औटावें उस में मिश्री मिला पीवे तो गर्भिणी का शूल नष्ट होता है।

१३—आनाह

वच मीठी, लहसुन, हींग, सोंठ कालालवण को दूध में औटाकर पीने से गर्भवतीका अफरा नष्ट होकर सुखी होती है।

१४—मूत्ररोध

तृण पंचकको जड़ के कल्क से दूध पका कर पीने से मूत्र रोध दूर होता है।

१५—रक्त स्राव

यदि गर्भवती के गर्भ से बारम्बार रुधिर गिरे तो उसके रोकने को उत्पलादि जो सुश्रुत में लिखा है। काथ करके पीना बहुत हितकर है।

१६—गर्भपात

लज्जालु, धायकेफूल, कमलगट्टा, मुलहठी लोध इनको जल में पीस के जो शीतल जल में खड़ी होकर पीवे तो गर्भपात दूर होता है। या कुम्हार की मिट्टी (काबिस)जल में घोल कर पीवे तो गिरते गर्भ को रोक देती हैं।

१७—मृतगर्भ, मूढ़गर्भ—

घी से हाथ चिकना करके, जननेन्द्रिय में से गर्भ निकाल लेना चाहिये गर्भगत बालक मृत हुआ हो तो शस्त्र चलाने के काम में कुशल निर्भय होके जननेन्द्रिय में शस्त्र डाल के काटा हुआ गर्भ निकाले परन्तु यह भी पूरा ध्यान रहे, कि जीते हुये गर्भ को शस्त्र से कभी भी न मारे, यदि जीते गर्भ को काटेगा, तो वह गर्भ अपनी माता को भी मार डालता है, इसी प्रकार वैद्य मरे हुये बालक को दो घड़ी भी पेटमें न रहने दे, अतएव वह माता को मार डालेगा। जैसे अधिक मात्रा में अन्न खाया हुआ पशू को मार डालता है।

मृत गर्भ छेदन प्रकार

मूढ़ गर्भ का जो जो अंग योनी मार्ग में अटकता हो, उसी को काट २ कर निकाले। यही उत्तम वैद्य का मुख्य कर्म है। कि मूढ़ गर्भ को सावधानी से निकाल के गर्भवती का यत्नपूर्वक रक्षण करे, जहां तक हो सके शस्त्र क्रिया न करके औषधि द्वारा ही पतन करना उत्तम उपाय है।

× नोट—इसके आगे पृष्ठ ५७९ के आखिर में देखो

प्रसव विज्ञान स्तम्भ

१-सूतिका गृह ... ... [वैद्यवर पं सतीश चन्द्र जी मिश्रा वैद्यभूषण]
२-सूतिका गृह निर्माण ... ... [वैद्यराज दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी, सागर]
३-धातृ का प्रसव गृह में प्रथम कर्तव्य ... [ले० श्री खगेन्द्रनाथ पन्त, वैद्यभूषण]
४-प्रसव सिद्धान्त ... ... [वै० भू० पं० विपिन विहारीजी "शान्त"]
५-प्रसव के पूर्व रक्तश्राव ... ... [ले० श्रीमती सरलादेवी वैद्य M. B. E. H.]
६-प्रसव के लक्षण व भेद ... ... " " "
७-जाति व्यवस्था ... ... [ले० कविराज हरिकृष्ण जी सहगल, वैद्यराज]
८-जाति की उत्पत्ति ... ... [ले० पं कुबेर नाथ जी द्विवेदी वैद्य]
९-अस्वाभाविक प्रसव ... ... [ले० कविराज रामदास वैद्य भूषण]
१०-यमल या अधिक प्रसव ... [ले० पं उमादत्त पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य]
११-प्रसव कालिक उचित उपचार ... ... [ले० प्रो० पं० धर्मानन्द जी शास्त्री,]
१२-प्रसव कालिक उपचार ... ... [ले० वैद्यराज डा० धरणी धर जीशास्त्री]
१३-प्रसव समय की घटनायें ... ... [ले० वै रा० पं० हरिदत्त जी पाण्डेय]
१४-प्रसवतिथि का ज्ञान ... ... [प्रो० वसन्त लाल जी महर्षि आयुर्वेदाचार्य]
१५-प्रसवान्तकर्म ... [ले० डा० पं० रामेश्र प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य]
१६ प्रसूता क्षेप ... ... [ले० प्रो० पं० बालकराम जी शुक्ल शास्त्री, शास्त्राचार्य]
१७-सूतिका रोग व चिकित्सा ... ... [प्रि० पं० विश्वनाथ जी शास्त्री]
१८-अनुभवसार ... ...

सूतिका गृह

[ले०—वैद्यवर पं० सतीशचन्द्र मिश्रा, वैद्यभूषण]

सूतिका गृह ऐसी अपवित्र भूमि नहीं होती, जैसा कि आज कल हम लोगों ने समझ रक्खा है। जिस कारण कि इस को घर में गन्दे से गन्दा स्थान नियुक्त किया जाता है। सूतिका गृह को प्रचिलित देश भाषा में 'सौरी' या 'सोबर' कहते हैं, इसको प्रायः वह स्थान दिया जाता है। कि जो मकान में सब से अलग हो, तथा वहां कोई रहा भी न करता हो, भारत वर्ष में मूर्खता वश अथवा अज्ञानता वश, उस स्थान के लिये, एक ऐसी कोठरी नियुक्त की जाती है जिसको यदि (Blackhole) अथवा काल कोठरी कहा जाये, तो अनुचित न होगा। उस कोठरी के हवा जाने वाले सूराख भी इस प्रकार बन्द कर दिये जाते हैं, जिससे कि जो कुछ थोड़ी बहुत हवा आकर जाती हो, वह भी बन्द हो जाये।

बड़े खेद की बात तो यह है, कि अब भी भारत वासियों को यह पता ही नहीं है, कि सूतिका गृह कैसा होना चाहिये। और यही कारण है, कि हमारे बहुत से होनहार बच्चे सूतिका गार में ही काल के गाल में चले जाते हैं। और जो यदि भाग्यवश जीवित भी निकल आये तो स्वस्थ्य और निरोग अवस्था में तो रहना उसके लिये असम्भव होता है।

इस विषय में कभी यह नहीं कहा जा सकता है, कि इस विषय पर हमारे प्राचीन वैद्यों ने कोई

× × × × × × ×

छेदनान्तर चिकित्सा

जब सब मूढ़ गर्भ निकल जावे, तो गर्भवती की योनी को गर्म जल से सेंके, तथा तेल का फाहा उस की योनी में रख दें जिस से योनी तथा मल भी दूर हो।

मृत गर्भ पातन औषधि

राई, हींग दोनों को कांजी में पीस पीवे, तो उस स्त्री का मृत बालक बाहर निकल आवेगा।

तथा

बंदाल के १ तो० चूर्ण को जल में पीस के पीवे तो उस स्त्री का गर्भ तत्काल गिर जावेगा।

१८-प्रसव कष्ट

पीपल, बच कड़ुवी, इन को जल में पीस अंडी का तेल मिला के नाभि पर लेप करें, तो स्त्री सुख पूर्वक बालक को जनती है।

तथा

तज, इलायचीछोटी, वंशलोचन का बारीक चूर्ण ६ मासे, ताजे जल तथा गोदुग्ध द्वारा सेवन करने से शीघ्र आराम होता है।

नोट—गर्भावस्था के रोगों के लक्षण आदि विवरण इस लेख में विस्तार रूप से नहीं दिये गये, केवल नाम ही दिये हैं। चिकित्सा भी बहुत संक्षेप से कर दी गई है। अतः फिर कभी सेवा करूँगा।

ध्यान नहीं दिया, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है, कि हमारे देश की आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण वे लोग उसका उचित प्रबंध तथा प्रचार अवश्य न कर सके, जिसके लिये वे दोषी साबित नहीं किये जा सकते ।

सूतका गृह अत्यन्त ही साफ और सुथरा तथा जिसमें प्रकाश और हवा भलीप्रकार आ और जा सके, ऐसा कमरा होना चाहिये नवीन मतानुसार इसकी निर्माण विधि आगे बर्णन की जायगी, परन्तु हमारे प्रचीन मतानुसार पूज्य सुश्रुत इस प्रकार लिखते हैं:

"नवमेमासि सूतिकागार मेंवां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ तत्रारिष्टं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राणां श्वेत रक्त पीत कृष्णेषु भूमि प्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोध तिन्दुक भल्लातक निर्मितं सव्वागारं यथा शङ्खं यंतन्मय पर्य्यङ्क मुपलिप्त भित्तिं सुविभक्त परिच्छदं प्रागद्वार दक्षिण द्वारंवाष्ट हस्तायतञ्चतुर्हस्त विस्तृतं रक्षा मङ्गल सम्पन्न विधेयम् ॥

लेखक का अभिप्राय यह है, कि गर्भिणी को नवें मास में सूतिकागार में प्रवेश कराना चाहिये सूतिका गृह की भूमि ब्राह्मण को श्वेत, क्षत्री को को लाल, वैश्य को पीली, और शूद्र को काली पुतवाना चाहिये। भीतों को भी पुतवाना चाहिये प्रत्येक सामान जुदा २ होना चाहिये। सूतिका गृह आठ हाथ लम्बा, और चार हाथ चौड़ा हो, तथा उसका द्वार पूर्व या दक्षिण की ओर होना चाहिये। उस में ऐसी वस्तुयें होना चाहिये, जिनको देख कर चित्त प्रसन्नता को प्राप्त हो।

सूतिका ग्रह नित्य प्रति के रहने के स्थान से अच्छा ही होना चाहिये। भली भांति लिपा पुता होना चाहिये। यदि मकान कच्चा हो, तब उसको अच्छी तरह लिपवा देना चाहिये, और यदि पक्का मकान हो, तब उसको भली भांति पुतवाना और धुलवाना चाहिये। तदुपरान्त उसमें अंगीठी जला कर रख देना चाहिये, और उस अंगीठी में कुछ सुगन्धित द्रव्य भी अवश्य डाल देना चाहिये। ऐसा करने से विषैले कीटाणु मर जांयगे, और कमरे में भी सुगन्ध आने लगेगी। हम लोग यह समझा करते हैं। कि प्रसूता को खूब हवा से ढक ढका के रखना चाहिये, कहीं ऐसा न हो, कि प्रसूता को हवा लगे, और रोग उत्पन्न करदे,

अतः सब से प्रथम बात जिस पर हमें ध्यान देना चाहिये, वह यह है, कि हमें देखना चाहिये, कि मकान हवादार हैं, अथवा नहीं Blackhole काल कोठरी है, अधिक हवा प्रसूता को अवश्य हानिकर होती है। अथवा बादल की शीतल हवा भी हानिकर होती है, इसलिये- कमरे में सीधी हवा न लगने का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये, इन सब उचित बातों पर घर वालों को ध्यान रखना चाहिये, और समयानुकूल इन सब बातों का यथेष्ठ प्रबंध भी करना चाहिये।

उदाहर्णार्थ यदि जाड़ों के दिन हों, और बादलों की ठंडी हवा चल रही है, उस दशा में प्रसूता को हवा पहुंचाई जायगी, तो वह लाभ प्रद होने के स्थान में हानिकर होगी, इस लिये उस दशा में घर वालों को चाहिये, कि वह उस स्थान में एक अंगीठी सुलगावें जिस से वह मकान गर्म हो जावे। परन्तु बड़ा भारी दुख तो यह है, कि हमारे देश वाले एक बात को सुन उस को ले उड़ते हैं। और उसके दुरुपयोग अथवा सदुपयोग

प्रयोग पर ध्यान न देकर प्रत्येक स्थान में प्रयोग करने लगते हैं। इसी लिये तो किसी उर्दू के शायर ने लिखा है।

नीम हकीम खतरे की जान,
नीम मुल्ला खतरे ईमान।

इसी का अर्थ यह है, कि एक दफा का ज़िक्र है कि एक ऊंट बेल निगल गया, वह उसके गले में जाकर फंस गया। वह ऊँट एक वैद्य के पास ले जाया गया। वैद्य ने ऊंट के चारों पैर बँधवा कर पृथ्वी पर लिटवा दिया, उस के बाद उसकी गर्दन के नीचे निहाई रख कर ऊपर से हथौड़े मार उस अन्दर के बेल को कुचल दिया। वह टूट हुआ बेल ऊंट निगल गया, और अच्छा हो गया,

यह सब कार्रवाई एक सज्जन खड़े २ दूर से देख रहे थे, उन्हों ने सोचा कि चलो यह नुसखा तो हाथ अच्छा लगा भविष्य में काम देगा, कुछ ही दिनों बाद उन्होंने किसी गलगण्डी को देखा, और उस से कहा कि हम तुम्हारी चिकित्सा बिना कोई औषधि और बिना मूल्य के ही कर देंगे।

बस फिर क्याथा, वहतैयार हो गया,उन्हों नेउस ऊंट की ही तरह उन के भी हाथ पैर बंधवा कर पृथ्वी पर लिटा दिया, और निहाई पर उनकी भी गर्दन रख, हथौड़े चलाना प्रारम्भ किये, बस तब क्या था, उस रोगी का तो एक ही हथौड़े में दम निकल गया। क्यों कि न तो वह ऊंट के बराबर मजबूत ही था, और न उसे बेल हिलगे हुये का रोग ही था। परन्तु वैद्य जी को भी यह सब बातें सोचने की आवश्यकता ही क्या थी।

इसीप्रकारलोगअग्निकाअधिकतरकुप्रयोगकरते हैं, उन्हें या सोचने की आवश्यकता नहीं होती, कि कि जून जुलाई का तो महीना है, इसमें अग्नि का प्रयोग क्यों किया जाय, उसका एक खास कारण यह भी होता है, कि लोग स्त्रियों को गुलाम समझ कर उनके सुख का ध्यान नहीं रखते। गर्मी के दिनों में सूतिकागार में आग जलाने से प्रसूता और कोमल शिशु को अत्यन्त कष्ट होता है, जच्चा और बच्चा, दोनों को ही उस जली हुई आग के धुयें से उस सड़ी हुई गरमी में, जब कि लोग बाहर खुली हवा में नहीं रह सकते, बहुत ही परेशानी ही नहीं होती, वरन उन दोनों को अपनी आंखों से हाथ धो बैठने का भय रहता है,

मनुष्य को जिस प्रकार हवा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार प्रकाश का मिलना भी उसे परमआवश्यक ही होता है, यदि किसी वृक्ष को प्रकाश हीन स्थान में बन्द कर दिया जाये, तब उसकी बढ़त बिलकुल मारी जाती है, वह पीला पड़ जाता है।इसी प्रकार प्रकाश जिस मनुष्य को न मिलता हो वह भी स्वस्थ नहीं हो सकता, इस लिये जिससे कि प्रकाश प्रसूता के कमरे में भली भांति पहुंच सके। सूतिका गृह बनाने के लिये पूर्व की तरफ द्वार वाला कमरा पसन्द करना चाहिये, सूतिकाग्रह में प्रकाश के लिये कोई धुआं पैदा करने वाली वस्तु नहीं जलाना चाहिये। और न मिट्टी के तैल को ज़ला कर प्रकाश करना चाहिये, इसके जलाने से वायु तो दूषित होती ही है. परन्तु इससे जो एक प्रकार का विष निकलता है, वह तो शिशु के प्राण हरने वाला ही होता है। अतः सूतिका गृह में ऐसा प्रकाश करना चाहिये, कि जो न तो धुआं देता हो, और न अत्यन्त आंखों में चका चौंध पैदा करने वाला हो।

सब से प्रथम ध्यान देने योग्य बात सूतिका गृह में सफाई होती हैं, अभाग्यवश हमारे यहाँ कुछ ऐसी प्रथा होती है, कि उस समय प्रसूता को गन्दा से गन्द कपड़ा पहिनने को दिया जाता हैं। उनके कपड़ों के मैल में प्रायः कई प्रकार के कीटाणु पड़े रहते हैं। जो प्रसूता के निकलते हुये रक्त से मिल कर उसके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। फिर नाना प्रकार के ज्वर और अनेकानेक रोग उत्पन्न कर देते हैं। बड़ी शोचनीय बात तो यह है, कि हमारे बहुत से शौक़ीन बन्धुवर एक बच्चे के होनेकी खुशी में हज़ारों रुपये यार दोस्तों की दावतों में उठा देते हैं। परन्तु बच्चे की मां 'जच्चा' को टूटी हुई खाट के अतिरिक्त बिस्तर तक दे नहीं सकते। तकिया इत्यादि का तो नाम लेना व्यर्थ ही सा है, इन सब बातों के ऊपर हम लोगों को पूर्णतया ध्यान देना चाहिये, और उस समय के लिये एक बहुत अच्छी खाट बिस्तर और तकिया इत्यादि का उचित प्रबन्ध करना चाहिये जिस से जच्चा को कोई शारीरिक पीड़ा न हो।

हमारे बहुत से नवजात शिशुओं की मृत्यु की कारण प्रायः अनपढ़ दाइयां होती हैं नहीं २ यों कहना चाहिये कि स्त्री और शिशु की जीवन रक्षा दाई के कार्य कौशल पर निर्भर है। जैसे कि श्री मान् कविराज शिवशरन जी वर्मा, भिषगाचार्य की सम्मति है। कि:-

"Just as a raw horse can compare ill with a trained and broken one similarly a stupid ignorant Dai is no match a trained one and can not but bring about some fatel complications in handling abnormal Delivery cases."

अतः वैद्यों अथवा घर वालों को चाहिये, कि वह दाइयों की भली भांति परीक्षा करलें, तत्पश्चात् उनको सूतिका ग्रह में घुसने की आज्ञा दें अन्दर जाने से पहिले उससे पूछ भी लें कि उसने निम्न लिखित तथा अन्य प्रसव कराने की वस्तुयें भी संग्रह करलीं हैं, अथवा न की हों तो कर लेना चाहिये।

१- दो ओम जामेकी ३ × ४॥फुट चौड़ी चादरें
२- १५ गज मलमल।
३- आधा गज फलालैन।
४- शोषक रुई ३-४ सेर।
५- दो सफेद धुली हुई चादरें।
६- रेशम की डोर दो फुट अथवा ढाई फुट
७- तीन उदर बन्ध बकसुये लगेहुये ४×२फु०
८- तैल एरंड ४, ५ तोला बादाम रोगन ५ तो०
९ टंकण खील—शहद "
१०—केशर ४ माशा ११,-जायफल ४ माशा १२-गोघृत ४ तोला १३-वर्क सोना चाँदी २, १४-मृत संजीवनी सुरा ६ तो०, १५- अर्क दशमूल १ बोतल १६-कत्थे का बारीक चूर्ण नालपर छिड़कने को, १७-तिलतैल बच्चे के मलने के लिये, १८-थोड़ा गरम जल १९-नीम का साबुन२०- दोतीन अंगोछे २१- कोयला लकड़ी का

पाश्चात्य मतवाली (Nurses) दाइयाँ इन चीज़ों के अतिरिक्त निम्न लिखित वस्तुओं का संग्रह और अधिक कर लेती हैं:—

१-गमगीटिशु,Gamgee Tissue २-तैल जैतून, ३-ग्लिसरीन ४-बोरो ग्लिसीन, ५-बराण्डी, ६-टिंचर आयोडीन, लाईसोल, ८-क्लोरोफार्म, ९-बोरिकएसिड १०-वैसलीन, ११-औषध मापक (Measupeg-lass) १२-बिन्दु मापक, (Minim measure) १३-मूत्रीयन्त्र (Aneama) १४-डूशकी पिचकारी, १५-मूत्र करानेवाली नलिका Cathoter १६-कैंची, १७-थर्मामीटर १८-रेशम का सूत्र १९-Mercury soloid) पारे की टिकियां। (इत्यादि)

तत्पश्चात इन सब चीजों को यह और देख लेना चाहिये, कि यह सब साफ और स्वच्छ भी है, दाई के नाखून वगैरह भी भली भांति कटवा देना चाहिये, तथा उसके हाथ भी नीमके साबुन अथवा कार्बोलिक सोप से खूब साफ करा के धुलवा देना चाहिये। दाई को चाहिये, कि वह अपने गन्दे कपड़े बदल कर स्वच्छ वस्त्र पहिनकर सूतिका गृह में दाई के अतिरिक्त घर की एक या दो चतुर स्त्रियों का उपस्थित रहना अत्यन्त आवश्यक होता है, जो प्रसूता को साहस दिलाती रहें।

परन्तु बहुत सी स्त्रियों की भीड़ वहां इकट्ठी नहीं होना चाहिये, जो हवा बन्द कर दें। बच्चे का नाल काटने के लिये एक बहुत तेज़ चाकू अथवा कैंची होना चाहिये, जिससे बच्चे को कुछ तकलीफ न हो। नाल काटने के पश्चात् उसपर बहुत बारीक पिसा हुआ कत्था अथवा सफेदा लगा देना चाहिये।

प्रसूता के वस्त्र बहुत हलके परन्तु काफी गरम होना चाहिये। उसके शिरपर रूमाल बांध देना चाहिये, और जहां तक हो सके तुरन्त ही उसको सफेद मोजे पहना देना चाहिये, पैरों पर भी चादर अथवा कम्बल डाल देना चाहिये।

स्त्री जब प्रसूता होती है, उस समय में उस को कुछ ऐसे रोग हो जाते हैं, जो क्षणिक हुआ करते हैं, और कुछ समय के बाद में वह स्वयं ही जाते रहते हैं। उस समय में जो प्रसूता को कष्ट होता है, उससे शरीर का ताप बढ़ जाता है, परन्तु वह ज्वर [illegible] ही होता है। कभी २ कोष्ठ बद्धता के भी कारण ज्वर उत्पन्न हो जाता है। इसलिये उस दूध के निकालने का प्रयोग करना चाहिये। दूध निकालने के पश्चात हमेशा बाद में भी यह ध्यान रखना चाहिये, कि दूध कभी फिर न इकट्ठा हो जाय। स्तन पर रुई रखकर पट्टी बांध देना चाहिये।

अतः वैद्य को उचित है कि वह प्रसूता की इन सब रोगों से रक्षा करे। यदि रोग उसे कोई हो जाय तो उसका भली प्रकार निर्णय कर चिकित्सा करे। रोग की अधिक प्रतीक्षा न करे, क्योंकि एक रोग और रोगों को भी उत्पन्न कर देता है। जैसा कि लिखा है।

निदानार्थं करो रोग रोगस्याप्युप जायते।
तद्यथा ज्वर संतापा द्रकपित्त मुदीर्यते॥
रक्त पित्ताज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युप जायते।
प्लीहा विवृद्धया जठरं जठराच्छोफ एवच॥

लेखक का कहने से यह तात्पर्य है, कि एक रोग से अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अन्त में यह परिणाम होता है, कि वे ही मृत्यु के कारण होते हैं, जैसा कि लिखा है, कि:—

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थ कारिणः।
कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति॥

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपिच।
एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यते व्याधि संकराः॥

परन्तु यह ध्यान रखते हुए भी कि एक रोग अन्य रोगोत्पादक होता है, तब भी उसकी चिकित्सा करने में उतावली नहीं करना चाहिये। उस रोगिणी का बल मांस आयु देश और काल पर भली भांति ध्यान देकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

बहुत से पाश्चात्य सभ्यता में पले रहने वाले युवक तथा चिकित्सा भी सूतिका एक की प्राच्य निर्माण प्रणाली को देख कर हंसते हैं। किन्तु उन्हें यह मालूम नहीं है, कि आचार्यों ने ऐसा क्यों कहा। ध्यान पूर्वक सांचे ने देखते कि बेल तेंदू, वह और भल्लातक खदिर की लकड़ियों से बना भवन हमेशा निष्कीट (Antiseptie) होते हैं। वर्षा ऋतु के लिये तो ऐसा भवन बन ही नहीं सकता। जहांपर प्रसव गृह (Meternity house) में पुनः चूने द्वारा पुतई करके Antiseptie बनाते है, वहां पर यदि अवकाश न मिलने से सफाई नहीं न हो पाई तो, भी ये भवन निष्कीट रहते तथा वायु को परिष्कार रखते हैं। सूतिका गृह के रोग ज्वर, उन्माद, दुग्धज्वर, उन्माद वात रोग ऐसे भवन में इन काष्ठों के प्रभाव से नहीं हो पाते, होने पर भी शीघ्र ही आराम स्वयं हो जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इनकी लकड़ियां सर्वत्र नहीं पाई जाती है वह भवन में रहने पर काम में लाई जाती हैं। श्वेत रक्त पीत कृष्ण भूमि का प्रभाव ही उत्तम है। इनके लिये जो शास्त्रकारों की आज्ञा है, वह अवश्य पूरी करनी चाहिये। न मिलने पर कमसे कम सूतिका गृह का तल भाग (फर्स) अवश्य ही इन मृत्तिकाओं से वर्णों। ब्राह्मण, क्षत्रिय इत्यादि)के विभाग सेभूमि निर्देश का अर्थ हैं, जाति गत प्राकृतिकता से है, जिन पर मृदु खर रूक्ष व कठिन भावों के सामंजस्य को मधुर अम्ल, लवण, कटुतिक्त कषाय इनषड्रसों के साथ रख कर चिकित्सा विभागका आश्रय लिया गया है। इन मृत्तिकाओं में वही शक्ति पाई जाती है। जो इनके प्राकृकि रोगों तक को दूर करे। द्वार निर्माण से मतलब है, प्रकाश की उपस्थिति जैसा पहले कहा गया है। पूर्व और दक्षिण दिशाओं में सूर्य का प्रकाश अधिक होता है। अतः इन विचारों पर ध्यान देकर सुश्रुतादिक आचार्यों ने सूतिका गृह को सूतिका ग्रह होने से बचाने का प्रयत्न किया है।

अपूर्ण धातृ–कर्म (नाल छेदन)

एक वृद्धा अशिक्षिता धातृ (दाई) मोथरे छुरे से नाल काट रही है बच्चा मूर्छित पड़ा है, जच्चा छटपटा रही है।

(धन्वन्तरि के चित्र के आधार पर)

सूतिका गृह निर्माण

[ले०—वैद्यराज श्री दुर्गाप्रसादजी त्रिवेदी, सागर]

नवमे मासि सूतिकागार मेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौतत्रारिष्ट ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राणां श्वेत रक्त पीत कृष्णेषु भूमि प्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोधि तिंदुक भल्लात क नमित सर्वागारंयथा तथ्यंतन्मय पर्यङ्क मुपलिप्त भित्ति सुविभक्त परिच्छदं प्रागद्वारं दक्षिण द्वारंवाऽष्ट-हस्तायतं चतुर्हस्त विस्तृतं रक्षामंगल सम्पन्नं विधेयम् ॥सुश्रुत शा, अ० १० सू० १२

अर्थात्—गर्भिणी स्त्री को नवें महीने में सूतिकागार में (प्रसव के स्थान में) शुभ तिथि वार आदि देखकर प्रवेश कराना चाहिये। वह प्रसव स्थान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को क्रम से श्वेत, पीत, रक्त, और काली पृथ्वी में बिल्व गूलर, तेंदू और भिलावे की लकड़ी से बनावे, और उस में फिर उसी क्रम से उन्हीं बिल्वादि वृक्षों की लकड़ी के पलङ्ग (खाट) बिछवाने तथा भित्तियों (दीवारों) को भली प्रकार लिपवा कर प्रसवोपयोगी सामग्री से उपयुक्त पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुख आठ हाथ लम्बा, और चार हाथ चौड़ा, रक्षा मंगल सम्पन्न ऐसा सूतिकागार (प्रसूति ग्रह) बनाना चाहिये।

उपरोक्त भगवान धन्वन्तरि का उपदेश है। जो उन्होंने अपने परम शिष्य सुश्रुत को दिया था, और जिसे महर्षि सुश्रुत ने संहिता बद्ध किया। आज भारत वर्ष में इन बातों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता बहुमत तो ऐसे लोगों का है, जो इन बातों को प्रपञ्च मात्र कह कर टाल देते हैं, और जो समझाने पर इन बातों को मान भी जाते हैं वे कह देते हैं कि "है तो साहब ठीक" परन्तु क्या करें, आज कल इस का चलन नहीं है, लोग देखेंगे तो आश्चर्य करेंगे, सोचना चाहिये यह क्या उत्तर में उत्तर है! इन्हीं भूलों के कारण आज आर्य (हिन्दू) जाति की सब प्रकार से अवनति हो रही है। यह आर्य जाति संसार की मुख्य जाति थी, और इस के मान्य का कारण इस की विद्वत्ता, ईश्वर भक्ति, व संस्कार थे। इन्हीं तीनों बातों की ओर आज यह जाति ध्यान नहीं दे रही है। परिणाम स्वरूप गिर रही है! ठोकरें खा रही है!!

इस लेख में सूतिकागृह निर्माण, पर ही वैज्ञानिक विचार प्रगट करने का प्रयास किया गया है। आशा है, पाठक ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे, और जो कमी हो उसे पूर्ण करेंगे।

(१) प्रायः प्रसव नवें महीने में ही हुआ करता है, प्रसव होते समय स्त्रियों को कितना कष्ट होता होगा, यह वही जानती होगीं।

जड़ लेखनी इस बात को प्रगट करने में असमर्थ है। परन्तु यह स्पष्ट दृष्टि गोचर हो रहा है कि प्रसवार्थ प्रसूतागार निर्माण न करने से आजकल १०० में ६६ स्त्रियां किसी न किसी

प्रकार प्रसूति रोग से पीड़ित हुआ ही करती है। महर्षियों ने अपनी सूक्ष्म बुद्धियों से विचार २ कर जो सिद्धान्त निश्चित किये थे। उसको जो पालन किया करते हैं, और करेंगे, वे सुख पावेंगे, इतर दुःख। लेखक का निश्चित मत है कि यदि प्रसव शास्त्रोक्त प्रसूतागार में सुयोग्य दाई के द्वारा कराया जाय तो आर्य रमणियां जो जो कष्ट प्रसवान्तर भोगती हैं, न भोगें। नवां मांस प्रारम्भ होते ही अच्छे दिन (जिस दिन आकाश स्वच्छ हो वर्जित तिथिन हो) गर्भिणीको प्रसूतागार में रखना चाहिये, प्रसूतागार कैसा हो? ब्राह्मण वर्ण के लिये श्वेत मिट्टी(खड़िया या चूना)से पुती हुई, क्षत्रिय वर्ण के लिये पीत मिट्टी (गेरू या लाल रङ्ग) से पुती हुई, व शूद्र वर्ण के लिये कृष्ण मिट्टी या (काले रङ्ग) से पुती हुई धरती वाला हो,

ऐसे तोयहकहनासाधारणलोगों को वास्तव में कम जंचेगा, परन्तु इस पर विचार करने की आवश्यकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, चारों वर्णों की प्रकृति भिन्न २ कर्मों के कारण भिन्न २ होती है, उनकी प्रकृति समगुण वस्तुओं को चाहती है, ब्राह्मण वर्णवाली स्त्री सत्वगुणी श्वेत रङ्ग वाला, वस्त्र स्थनादि अन्यसे अधिक पसन्द करेगी, सत्वरजगुणी क्षत्राणी पीतरङ्ग वाले वस्त्र स्थानों को, व रज- तम गुणी वैश्य, रक्तवर्ण वस्त्र स्थानों को, एवम् तमोगुणी शूद्रा कृष्ण वर्ण वस्त्र स्थानादि को। आजकल केवल जन्म से जाति मानी जाती है। कर्म से नहीं इसी लिये ये बातें हंसी सी लगती है, परन्तु जिस समय की ये बातें हैं उस समय जाति जन्म व कर्म दोनों से मानी जाती थी संस्कारों का वह युग था, संस्कारों ही से जब जाति बनती थी।

जन्मतो जायते शूद्रः संस्कारा द्भवेद्द्विजः।
वेदपाठी भवेद्विप्रः ब्रह्मज्ञानेति ब्राह्मणाः॥

आसन्न प्रसवा चतुर्वर्णीय स्त्रियों के मस्तिष्कों पर भी उपरोक्त रङ्गों का प्रभाव पड़ने से विचित्र परिवर्तन होकर प्रसव वेदना कम होती होगी।

२—वैद्यक शास्त्र में कोई औषधि खाने से कोई स्पर्श करने से, कोई देखने तकसे, गुण दिखलानेवाली कही कई हैं। इसी प्रकार जैसे रङ्ग के विषय में कहा गया है, आसन्न प्रसवा चातुर्वर्णीय स्त्रियों को बिल्व, गूलर, तेंदू, मिलावे की लकड़ियों से निर्मित प्रसूतागार व पर्यङ्क [पलंग खाट] भी वैज्ञानिक प्रभाव [वमानसिक भी] डालते होंगे, जिससे उनको प्रसव वेदना अधिक न होती होगी। और सम्भव है, उन, रङ्ग, भित्ति खट्वादिका विलक्षण प्रभाव नव जात शिशु पर भी पड़ता हो, तभी तो प्राचीन काल में (जब यह नियम पालन किये जाते थे,) बड़े २ प्रभाव शाली विद्वान एवं बीर पुरुष हो गये हैं, आज तो प्रयः सशंक हृदय, देखने को मिलते हैं, मिले क्यों ना संस्कार भी तो हों, उस समय अकेले विभिन्नरङ्ग रञ्जित धरती व बिल्वादि काष्ट निर्मित सूतिकागार व पर्यङ्कों का ही प्रभाव नव जात शिशुपर न पड़ता था, पैदा होने से लेजाकर मरण पर्यन्त तक उसके सोलह संस्कार, कये जाते थे, और उन संस्कारों का प्रभाव ही उनके आदर्श जीवन का कारण था, । इस लेख में अन्य संस्कारों पर भी प्रकाश डाला जाता, परन्तु चूंकि यह

धातृ का प्रसव ग्रह में प्रथम कार्य

[ले०—श्रीखगेन्द्रनाथ पन्त वै० भूषण]

सब जनों को यह चाहिये, की अपनी सन्तान की विधि पूर्वक परिचर्या करें जब तक कि वे अपने आप इस योग्य न बन जावे कि वे अपनी शरीर रक्षा स्वयं कर सकें।

प्रथम जब स्त्रियां आसन्न प्रसवा होती हैं, तब प्रसव जन्य व्यथा से अत्यन्त पीड़ित होती हैं। प्रायः उन्हें अपनी शरीर की सुध तक नहीं रहती है, इस हालत में अपनी सन्तान की समयानुकूल परिचर्या करने में असमर्थ रहा करती हैं। यही कारण है, कि उस समय कार्य चतुरा व सुशीला एवं धातृ विद्या को पूर्णतः जानने वाली

(पृष्ठ ५८६ से आगे]

सूतिका गृह निर्माण विषय पर ही लिखाजा रहा है, अतः हमें इसकी विषय में लिखना है:—

(३) सूतिका गृह आठ हाथ लम्बा, चार हाथ चौड़ा हो जिसमें अधिक भीड़ भाड़ भी न हो सके और प्रसूतिका का निवास सुभाँति हो सकें।

(४) उसका द्वार पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिणाभिमुख होना चाहिये, उससे क्या होगा? कि प्रायः पलङ्ग का पाँयता पश्चिम या उत्तर की ओर किया जाता है और द्वार उससे विपरीत दिशाओं में होगा, तो सीधी वायु न आवेगी।

(५) प्रसूतिकागार सब प्रसवोपयोगी सामग्रियों से युक्त होना चाहिये, जिससे आवश्यकता पड़ने पर किसी भी वस्तु के लिये इधर उधर न दौड़ना पड़े।

(६) रक्षा मंगल सम्पन्न मकान के किसी सुरक्षित व साफ सुथरे स्थान पर ही प्रसूतिका गृह बनाना चाहिये, जहां पर किसी प्रकार की बाहिरी (जानवर आदि) का भय न हो, वहां दैनिक स्वस्ति वाचक, शान्तिपाठ, एवंम् महा पुरुषों के जीवन की महत्व पूर्ण बातों की चर्चायें होना चाहिये, जिसका प्रभाव गर्भिणी व उसके गर्भ पर भी पड़े (देवी सुभद्रा ने चक्रव्यूह का वर्णन सुना था, जो उसके गर्भस्थ बालक अभिमन्यु को यथावत् ज्ञात हो गया था) और ऐसे उपदेश भी आसन्नप्रसवा को दिये जायें जिससे उसको प्रसव कालीन कष्टसे अधिक भय न होकर एक प्रकार की हार्दिक प्रसन्नता है।

आज कल के समयमें आजूल प्रथानुसार बड़े बड़े अस्पतालों में सूतिकागार बनाये गये हैं, क्या ही अच्छा हो? आयुर्वेदिक औषधालयों के अन्तर्गत उपरोक्त प्रकार के सूतिका गृह रहें, जिस से सभी का निर्वाह हो सके।

मेरा तो दृढ़ निश्चय है कि ऊपर लिखित प्रकार से सुनिर्मित प्रसूतिकागृह में प्रसव करने वाली प्रसूता सुख प्रसव करेगी, व ऐसे स्थान पर जन्म लेने वाला व संस्कार सम्पन्न शिशु आदर्श गुण वैभव, आदि युक्त बनेगा।

धात्री (नर्स) की आवश्यकता पड़ती है, तथा वह उस बालक की भली प्रकार शुश्रूषा कर सकती है, तथा उस शिशु का भावी जीवन सुखमय व स्वास्थ्य संपन्न करना उसका कर्तव्य होता है, प्रसवावस्था में उस सन्तान का कार्य भार सब धात्री के ऊपर निर्भर रहता है, तथा धात्री को माता बन उस सन्तान की परिचर्या करनी पड़ती हैं,

यही कारण हैं, कि शास्त्र ने उसे "उपमातृ" की संज्ञा दी है, उसका कर्तव्य प्रसव पर्यन्त ही निर्भर नहीं, वरन् समृद्धि शाली ऐश्वर्य संपन्न मनुष्यों के यहां तो उसका बालक की देख रेख का भार बहुत दिन तक रहता है। जैसा कि रघुवंश काव्य में लिखा है, "उवाच धात्र्या प्रथमो दितश्चौ ययौ" तदीयाम् वक्तव्यं चारु लीयम्"— इत्यादि कथनों से स्पष्टतः उसकी उपयोगिता की पूर्णतः आवश्यकता पड़ती है।

धात्री का कर्तव्य यह है, कि जब किसी गर्भिणी के यहां से उसका बुलावा आवे, तो उस को तुरन्तही गर्भिणी के यहां जाना चाहिये। तथा वहां पहुंच कर यह जानना चाहिये, कि उस समय उसकी आवश्यकता है, या नहीं, यदि तुरन्त ही धात्री की आवश्यकता न हो, तो उसको चाहिये, कि गर्भिणी को भली प्रकार देख कर तत्कालीन उपयुक्त सामग्री को प्रस्तुत कराना चाहिये। प्रसवावस्था की हालत में जब कि गर्भिणी अन्यत्र व्यथित एवं अकिञ्चन रहती हैं, उस समय धात्री को क्षण मात्र के लिए भी वहाँ से अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहिये, क्यों कि उस समय संम्पूर्ण कार्य भार उसी के ऊपर निर्भर रहता हैं, जब कि प्रसव हो जाय, तथा आलोबाल (अपरा) गिर जाय, तब उस बच्चे के शयनादिक का समुचित प्रबन्ध कराना चाहिये। प्रसव काल में जब कि गर्भिणी के यहां धात्री की खास आवश्यकता पड़ती हैं, उस समय उसे चाहिये, कि अपना शरीर पूर्णतया साफ कर तथा, कपड़े धुले हुए स्वच्छ पहिन कर, तथा उपयुक्त सामग्री भी सफाई के लिये साथ ले जाकर जाना चाहिये। आवश्यकीय सामान किसी Hend bag या यास्वच्छ कपड़े कोझोलीं में रख कर ले जाना चाहिये। धात्री के सर्व गुण संपन्नता के विषय में सुश्रुताचार्य नेविवरण किया भी। हैं, जेसा कि:— धात्री परीक्षा में धात्री के लक्षण दिये हैं, ये निम्न हैं,

"ततो यथावर्णं धात्री मुपेयात् मध्यम प्रमाणां मध्यमवय समरोगां शीलवती मचेपला मलोलुपाम कृशामस्थूलांप्रसन्नक्षीरां मलम्बोष्ठी मलं बोद्धं स्तनीमव्यङ्गामव्यसनिनी जीवद्वत्सां दोग्धीं वत्सलाय क्षुद्रकर्मिणी कुले जाता मतो भूयिष्ठैश्त्व गुणैरन्वितां श्यामामारोग्य बल वृद्धये बालस्य ॥

अर्थात् धात्री समान कद की, मध्यमावस्था (प्रौढा वस्था) की हो, किसी रोग से संक्रमित न हो, सुशीला हो, चंचल न हो, लोलुपा न हो, तथा ज्यादा दुबली व मोटी न हो, जिसका दुग्ध परीक्षा करने पर शुद्ध हो, बड़े ओष्ठ तथा स्तन न हों, व्यङ्ग व व्यसन रहित हो, जिसका बच्चा मौजूद हो, बच्चे के हित चाहने वाली, श्रेष्ठ काम करने वाली, अपने कुल में उत्पन्न एवं आरोग्य हो, इत्यादि गुण युक्त धात्री श्रेष्ठ होती हैं, उपर्युक्त सुश्रुताचार्य ने जो धात्री परीक्षा दी है, वह युक्ति युक्तएवं विज्ञान सम्मत है। तथा उक्त

लक्षणों वालों से प्रसवावस्था की परिचर्या ठीक तौर पर हो सकती है, उन लक्षणों में मध्यमा वस्था से विशेष रस रक्त की परिपुष्टी तथा व्यसन रहित होने से, तज्जनित कोई विकार स्व-कुलोत्पन्ना होने से इतर जातीय संबन्धी आहार विहार अन्य विकार नहीं आ सकते हैं, इत्यादि पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षण युक्ति युक्त श्रेयस्कर हैं, तथा प्रायः इन लक्षण युक्ति धात्री से प्रसूति परि-चर्या एवं बालक की देख रेख भली भाँति हो स-कती है, इन बातों के अतिरिक्त भी देश काल ऋतु इत्यादि के अनुसार सब काम अपनी बुद्धि से ठीक २ करना चाहिये।

अब प्रथम गर्भिणी के यहां उसकी बाह्य तथा आभ्यन्तरिक परीक्षासे निश्चय करना तथा यथा संभव खास २ साधन एवं तत्कालीन उचित अन्य आवश्यकीय बातें जाननी चाहिये—

प्रथम-प्रसवावस्था में गर्भिणी की परीक्षा कर ने का यह आशय होता है, कि बच्चा गर्भाशय से प्राकृतिक अवस्था में आ रहा है। और उसका कौनसा अङ्ग प्रथम आ रहा है, यह परीक्षा दो प्रकार से की जाती हैं:—१ बाह्य २-आभ्यन्तरिक

बाह्य विधि आसान तथा श्रेष्ठ है, यह क्रिया इस प्रकार है।

गर्भिणी स्त्री को उत्तान लिटाकर श्रेणी गह्वर सीधा करके पैरों को ऊपर की ओर कर हाथों से गर्भिणी के पेट को ऊपर से इस प्रकार लावे, कि गर्भाशय गोल सा बन जाय उक्त क्रिया के वास्ते हाथ स्वच्छ एवं शुद्ध होने चाहिये। अब यह विचार करना चाहिये कि यदि उपयुक्त गर्भ उस अवस्था में उदर गुहा का मांस सख्त मालूम पड़े, इसी प्रकार स्पर्श से कुछ गोलासा जान पड़े तो मालूम हो सकता हैं कि गर्भ का शिर हैं। और अन्य हिस्से शिर की अपेक्षा मुलायम एवं आकृति में भिन्न ज्ञात होवे, दूसरा विधान सिद्ध करने के लिये हाथों को उपर्युक्त तरीके से सावधानी से गर्भाशय के नीचे की ओर तक लाना चाहिये, इस हालतमें स्पर्श में बच्चे की पीठ के अस्थि मा-लूम पड़ेगी, क्योंकि यह हिस्सा कुछ कठिन मा-लूम पड़ेगा।

कटि के केन्द्र भाग के कुछ ऊपर अंगुली से दबाना चाहिये, और दूसरी ओर अंगूठे से फिर कुछ हिलाने का प्रयत्न करना, चाहिये इसे हालत पर यदि चालन ठीक से न हो तो यह ज्ञात हो सकता हैं। कि बच्चा श्रोणिगह्वर में रुका हुआ हैं। इस प्रकार बच्चे की प्रत्येक स्थिति को अर्थात् अपनी स्वाभाविक अवस्था में हैं या मूढ़ गर्भ की हालत में हैं, यह बात बुद्धि मती परिचारिका को जान कर तदनुसार कार्य करना चाहिये,

वास्तविक बच्चे का शिर नीचेकी ओर ठोड़ी माताकी छाती की तरफ पीठ नाभीकी ओर होना चाहिये बस इसीप्रकार परीक्षाकर निश्चय करना चाहिये— यह क्रिया बहुत सावधानी एवं सु-चारु रूप से होनी चाहिये, परिचारि को हाथ हल्के मुलायम तौर पर लगाना चाहिये, जिससे पेट पर किसी प्रकारका दबाव न पड़े। आभ्यन्त-रिक परीक्षा इसके करनेके लिए उक्त प्रकार गर्भि-णी को लिटा कर उसके घुटनों को ऊपर की ओर कर, सावधानी से अपनी प्रथम व द्वितीय अंगुलियोंको अपत्य पथमें प्रवेश कराकर परीक्षा द्वारा निम्न बातों का पता लगाना चाहिये, गर्भ

का मुख खुला हैं, या नहीं, बच्चे का बाहर आने वाला भाग विचलित तो नहीं हैं, प्रसवावरक कला फट गई हैं, बच्चे का प्रथम कौन अवयव बाहर की ओर आ रहा हैं। गर्भनाल अपत्य मार्ग में सामने गिर गया है? श्रोणि गह्वर में या उसके आस पास कोई सूजन वगैरह तो नहीं हुई है इत्यादि बातों का पता लगाना चाहिये।

जब प्रथम मुख आने लगता है, तो जिह्वा आँख आदि स्पर्श से मालूम किये जा सकते हैं। इसी प्रकार ललाट प्रान्त प्रथम आवे तो तत् स्थान के भाग अर्थात् कोई भी भाग आयेतो उसके साथ अङ्गों का पता चल सकता हैं।

उपर्युक्त बाह्य और आभ्यान्तरिक परीक्षा में सुलभता एवं विशेष कष्ट प्रद न होने के कारण बाह्य परीक्षा उत्तम है। दूसरी परीक्षा बहुत ही आवश्यकता पर करनी पड़ती हैं। अतएव बाह्य परीक्षा ठीक प्रकार से जानने की कोशिश करनी चाहिये।

निम्न लिखित बातों पर भी यथा योग्य उचित ध्यान देना चाहिये। निम्न लिखित सामान न स्वच्छ व साफ धात्री के पास होने चाहिये।

(१) साफ कारबोलिक साबुन अथवा नीम का जो जन्तुघ्न हो।

(२) स्वच्छ तेज़ कैंची नालच्छेद के वास्ते

(३) मलमूत्राशय साफ व करने के लिये पिचकारी एवं तत्कालीन आश्यकीय साधन।

(४) नाखून साफ करने के वास्ते बुरुश।

(५) हाथ साफ करने के वास्ते तौलिया।

(६) जन्तुघ्न एवं सुगन्धि-द्रव्य युक्त धूप।

(७) आवश्यकीय बर्तन इत्यादि अन्य सामान पूर्वोक्त उपयुक्त सामिग्रीसहित गर्भिणी के स्थान पर जाने के बाद गर्भिणी से यह पूछताछ करनी चाहिये कि उसको किस प्रकार की वेदना हो रही है, अन्दरूनी हालत कैसी है। प्रसव का पेट के अन्दर इधर उधर सञ्चालन तो नहीं हो रहा हैं? यदि इसके पूर्व भी वह बच्चा जन चुकी हो तो उस समय कैसी हालत होती थी? कोई विशेष पीड़ा तो नहीं हो रही है।

यदि गर्भ शूल हो रहा हैं, तो वह किस प्रकार का है, उपर्युक्त प्रश्न पूछकर सब बातों को निश्चय करने के बाद यथा समय उस गर्भिणी के अपत्य पथ को शुद्ध करना चाहिये।

तदनन्तर इस बात की सुचारु रूपसे परीक्षा करनी चाहिये व ध्यान पूर्वक देखना चाहिये, अथवा प्रसव ठीक तौरपर होने में कोई असमञ्जस तो नहीं हैं? फिर यह देख भाल कर निश्चय करे कि श्रोणिगह्वर के मार्गसे प्रसव का सुचारु रूप से निःसरण तो हो रहा है? तथा किसी अन्य प्रकार की मूढ़गर्भ (बच्चे के नियमित अङ्ग वा प्रथम न आकर अनियमित अङ्ग हस्त पादादि का आना या श्रोणिगह्वर के आस पास रुक जाना अथवा पेट के बल मुड़े रहना) इत्यादि कोई बात तो नहीं है? बच्चा साधारणावस्था में उक्त मार्ग से ठीक तौर पर आ रहा हैं, इत्यादि बात निश्चय करने के बाद फिर अन्दरूनी हालत की विशेष परीक्षा करने की जरूरत नहीं।

प्रसवावस्था में जब कि कुछ ही समय में बच्चे के उत्पन्न होने की संभावना हो तो प्रथम

धात्री गर्भिणी को इधर उधर टहलने के लिये कहे, तथा यथासाध्य टहलता रहे, क्योंकि इससे प्रसव का भार अपनी स्वाभाविक अवस्थानुसार योनि मार्ग के तरफ नीचे आता है, तथा गर्भाशय व बच्चे के आने के मार्ग विस्तृत होने लगते हैं, यदि गर्भिणी का उदर विस्तृत हो या नीचे की तरफ झुका हुआ हो तो किसी अच्छी पट्टी या कपड़े से ठीक अपनी स्वाभाविक अवस्था पर लाने के लिये लगावे। तथा किसी प्रकार का दर्द या गर्भशूल को हाथों से दबाने का प्रयत्न न करे। पूर्वोक्त बातों को स्मरण रखते हुए तत्कालीन आवश्यक कर्म करे, इस हालत पर योनि मुख खोलने का या आभ्यान्तरिक बात जानने का प्रयत्न न करे। इस समय गर्भ तभी आयगा, जब कि गर्भाशय का मुख पूर्णतया खुलकर गर्भकला फटती हैं।

यदि गर्भिणी को विशेष व्यथा से यह ज्ञात हो कि गर्भ शूल हो रहा हैं तो उस हालत पर स्वच्छ कपड़े के बिस्तरपर लिटा देना चाहिये। तथा रक्त गिरने से बिस्तर खराब न हो,जावे, इसका भी प्रबन्ध करलें।

तत्कालीन परिचर्यासे पीड़ा को दूर करने का प्रयत्न करें। यदि अपत्य पथ में बच्चे के आने में कोईरुकावट हो,तथा प्राकृतिक सिलसिले वार निकल रहा हो, तो प्रथम यह देखें की शिर निकल रहा है, तथा उसमें यदि नाल की कोई रुकावट या नाल लगी तो नहीं हैं? उसको ठीक करने का प्रबन्ध करें।

अप्राकृतिक प्रसवावस्था में यदि कोई शिरके अलावा अन्य अङ्ग दिखलाई दे या ऐसे ही कारण से विशेष रुकावट हो तो सावधानी से तत्कालीन क्रिया द्वारा बुद्धि मती धात्री ऐसा प्रबन्ध करे। कि जिससे बच्चा निकल जावे।

बच्चे के उत्पन्न होते ही उसी समय अच्छे मुलायम वस्त्रसे उसके नेत्रोंको तथा मुखपर लगी श्लेष्मा को पोंछ दे। बालक पैदा होते ही रोने लगता है। यदि वह न रोवे तो मुख को मामूली तौर पर हिला डुलादे, एवं शुद्ध शीतल जल के छींटें फेंके। जिससे वह रोने लगेगा तदन्तर जब देखें कि नाल में स्पन्दन होना बन्द हो गया है तो सावधानी से पकड़ कर बच्चे के नाभी से २ इञ्च दूरी पर तथा अपत्य पथ के पास आधे इञ्च की दूरी पर दृढ़ रेशम के धागेसे बांध कर कैंची से काट देना चाहिये जब यह ज्ञात हो जाय कि रक्त स्राव नहीं हो रहा हैं तब बच्चे को अच्छे व मुलायम वस्त्र से यथायुक्त आवरित कर शुद्ध एवं सुरक्षित जगह पर लिटा देना चाहिये।

प्रसव सिद्धान्त—

[ले०—वेदभूषण श्री पं० त्रिपिनबिहारीलाल "शान्त" साहित्यशास्त्री]

यों तो आयुर्वेद विषयक कोई छोटे से छोटा अंश भी ऐसा नहीं हैं, जो कि सूक्ष्म, दुर्विज्ञेय एवं अगम न हो, परन्तु "धातुविद्या" जो कि आयुर्वेद का प्रधान अङ्ग हैं, एवं दुर्घट तथा सूक्ष्म है, इसके आभ्यन्तरिक किसी भी विषय को "इदमित्थमेव" कहना केवल अतिशयोक्ति ही हैं, परन्तु इतना सूक्ष्म होनेपर भी आज वैज्ञानिक प्रवृत्ति इस ओर अधिक बढ़ चुकी हैं, औरदिनोंदिन वह विषयक सूक्ष्माति सूक्ष्म खोज की जा रही हैं,

यह धातु विद्या वह विद्या है, कि जिसके वैज्ञानिक प्रचार के अभाव के कारण सैकड़ों भारत के लाल अपनी शिशु अवस्था में ही धूलि में मिल जाते हैं, सहस्रों भावी सपूत अज्ञानता की धधकती हुई आग में आहुति कर दिये जाते हैं। असंख्यों ललनायें सूतिका गृह में ही दुःख सोपान से होकर परलोक का मार्ग लेती हैं। सहस्रों घर तबाह होते चले जाते हैं। सहस्रों की बनी बनाई गृहस्थियाँ ऊजड़ होती जा रही हैं। इसका करण यदि हृदय पर हाथ रख कर पूछा जाय तो सर्वसाधारण को मुक्तकण्ठ होकर कहना पड़ेगा कि पथार्थ रूप से सूतिकोपचार अथ च धातु विद्या का अभाव ही इसका कारण है, इसी के फल स्वरूप साँसारिक असीम दुःख पर दृष्टि पात करते हुए कलेजा मुँह को आता है। फिर भी पाषाण हृदय रूप,लोग इस ओर ध्यान नहीं देते। हम उच्च शिक्षित जन समाज इस कार्य को छूत समझने लगे। अपनी स्त्रियों को इस सर्वोच्च कार्य में भाग लेना सभ्यता के प्रतिकूल एवं विरुद्ध समझने लगे, इस गवेषणीय कार्य की गवेषणा में अपना समय लगाना केवल निरर्थक ही नहीं वरन् हास्यास्पद तथा मूढ़ता का पद समझने लगे। क्या हो अच्छा हो, कि प्रत्येकव्यक्ति अपना ध्यान इस ओर आकर्षित करके इसकी प्रत्येक झंझटों को सुलझाने में प्रवृत्ति को सम्पूर्ण जगत् की दृष्टि में सिद्ध कर दे कि अब यह भारत वह भारत नहीं, अब इस की विज्ञान कला सारे जगत् के मुकुट पर नाच रहीं है,

इस धातु विद्या के विषयमें आज मैं जिस बात को बतलाने के लिये जा रहा हूं। वह है "प्रसव-सिद्धान्त" इस प्रसव सिद्धान्त का अभिप्राय यह नहीं है, कि गर्भ किसर अवस्था में बदलता हुआ प्रसव रूप को प्राप्त होता है। किन्तु मेरा अभिप्राय यह है कि—"शुक्रशोणित जीव संयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भ संज्ञा भवति।"

इस चरकोक्त सिद्धान्तानुसार सजीव डिम्ब बुदबुदरूप तथा अंकुर रहित अवस्था में गर्भाशय की परिकला को फाड़ते हुए गर्भाशय में घुस कर गर्भकला से वेष्टित होने के पश्चात् ४० सप्ताह के बाद गर्भ की उत्पत्ति का स्पष्टीकरण तथा आभ्यन्तरिक कलाओं द्वारा परिपक्व अवस्था

में इसका बहिः निर्गमन का ढङ्ग भली प्रकार आप लोगों की दृष्टिकोण में समुपस्थित करूं। अस्तु

चूंकि प्रसव का बहिः निर्गमन ठीक उसी प्रकार होता है, या यों कहिये कि प्रसूति के समय बच्चा ठीक उसी प्रकार बाहर निकलता है, तथा अपत्य पथ में वा बच्चे के शरीर में वही रूपान्तर हुआ करते हैं जिस प्रकार कि प्रतिदिन प्रत्येक मानव व्यक्ति के मूत्रोत्सर्जन एवं मलोत्सर्जन में हुआ करते हैं, अतएव "प्रसवसिद्धान्त को समझाने के लिये पाठकों को सर्व प्रथम मूत्र वा मलोत्सर्जन क्रिया को बतलाना उचित होगा।

मूत्रोत्सर्जन, मलोत्सर्जन अथवा प्रसव निर्गमनादि सब क्रियाओं में तीन २ बातें पाई जाया करती हैं।

प्रथम- 'शक्ति" द्वितीय 'पथ" तृतीय पथिक,

१-शक्ति—यह कोई वस्तु अथवा कोई विशेष पदार्थ नहीं है किन्तु यह एक ऐसा विलक्षण बल है, जिसका प्रभाव सदैव स्वाभाविक भीतरी वस्तु को बाहर निकालने में व्यय हुआ करता है।

२ पथ—अर्थात् मार्ग। यह वह मार्ग है, जिसमें से होकर पथिक अर्थात् निकलनेवाला पदार्थ अन्दर से बाहर निकला करता है। प्रकृति के लिये पथ को पथिक के अनुरूप ही बनाना पड़ता है।

३ पथिक- यह ठोस, अर्द्ध तरल, एवं तरल भी हो सकता है जो कि स्वयं लम्बे मार्ग से होकर निकलने के कारण लम्बा होकर बाहर निकला करता है।

बिना इन तीनों बातों के कोई भी मलमूत्र प्रसवादि की क्रिया होना नितान्त असम्भव है। जैसे कि मलोत्सर्जन क्रिया को ही लीजिये-

सुश्रुतोक्त शारीर विवरणानुसार शरीरान्तर्गत सात कलाओं में से पांचमी कला "पुरीषधरा" संज्ञन मानी जाती है। यथा- "पञ्चमी पुरीषधरा मान्तः कोष्ठे मलं विभजते पक्वाशयस्था" भवति चात्र।

यकृत्समन्तात्कोष्ठच तथान्त्राणि समाश्रिता।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला॥

अर्थात् पाँचवी पुरीषधरा सँज्ञक कलापक्वाशय में रह कर, मल मूत्रादि का विभाग किया करती है, आशय यह है, कि:—

स्थानान्या मान्नि पक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च,
उण्डुकं फुप्फुसश्चकोष्ठ इत्यभिधी यते"

इसके नियमानुसार आमाग्निपक्व मूत्र रुधिर आदि सब जिसमें उपस्थित रहता हैं उसे कोष्ठ कहते हैं। कोष्ट में से पुरीषधरा रस के किट्ट पुरीष अथ च मूत्र को अलग किया करती हैं, वहाँ से अलग किया हुआ मल, गुदा, जो तृतीय वलि के तले वाली सुषुम्ना नाड़ियों के प्रभुत्व में होती है, उसमें आकर उपस्थित होता है, यहाँ आते ही मल स्थानीय श्लैष्मिक कला द्वारा तत्काल अनुभूत कर लिया जाता हैं। इस कला में मलानुभव होने के कारण इस में एक प्रकार की विलक्षण स्वीयानुभव अशान्ति सी पैदा हो जाती है, अब चूंकि वहिर्द्वार गतिकेन्द्र प्राकृतिक नियमानुसार कुछ उदासीन हो जाता है, अतः स्वाभाविक मल ढीला पड़ जाता है। मलाशय संकुचित हो जाता है, और तृतीय वलि के किनारे पास २ आ जाते हैं। तथा अधो भाग के ऊपर एक प्रकार की छत सी बना देते हैं। अब यह एक प्रकार का कोटर सा बन जाता हैं

और इसका शिथिल मलद्वारा से बना हुवा नीचे का मुख खुला रहता है, जब तक कि मनुष्य स्वयं मलोत्सर्जन की इच्छा नहीं करता, तब तक विचलिता पैदा करता हुआ भी वह वहीं रुका रहता है।

मलोत्सर्जनेच्छा की प्रवृत्ति होते ही उदर का आभ्यान्तरिक दबाव उसको सरलता से ढकेलना आरम्भ कर देता है, और प्रवाहिणी वलिके अधोवर्ती मलाशय की मांसपेशियां उसको लम्बा सा बनाती जाती हैं, और मल गुदा में से अपने मार्ग से होता हुआ, नीचे को उतर आता हैं, ठीक यही ढङ्ग मूत्रोत्सर्जन क्रिया का भी है।

कटि प्रदेश के अधःस्थल में वस्ति, जिसे मूत्राशय कहते हैं, मूत्र इकट्ठा होने का स्थान हुआ करता है। यह स्थान आहार की आर्द्रता से पृथक हुआ मूत्र को, मूत्रमार्ग से सहसा बाहर जाने से रोके रहता है, और मूत्रमार्ग को दृढ़ता से संकुचित रखता है, जब मूत्राशय भर जाता है तब चूंकि सुश्रुतोक्त "वस्ति पूरण विक्लेद कृन्मूत्रं" इस सिद्धान्तानुसार मूत्र उसमें एक प्रकार का विक्लेद अर्थात् अशान्ति पैदा कर देता है। इससे वस्ति मध्यवर्ती सम्वेदना केन्द्र के मूत्रावरोध कार्य में रुकावट पड़ जाती है। मूत्राशय को संकुचित रखना उसकी ताक़त के बाहर हो जाता है, और शिश्नपथ असंकुचितावस्था में हो जाता है। अब चूंकि शिश्न मार्ग से होकर ही इसे निकालना पड़ता हैं अतएव आभ्यान्तरिक दबाव के कारण वह धारावत् हो जाया करता है।

इन उदाहरणों से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है, कि मलोत्सर्जन एवं मूत्रोत्सर्जन में बिलकुल सादृश्यता है। बस ठीक इसी प्रकार प्रसूति काल में बच्चे का बाहर निकलना भी, इस से किञ्चित् भिन्न नहीं है। गर्भावस्था में गर्भाशय की दीवार में एक प्रकार कीपरिवर्तित लिए जलन हुआ करती है। जो कि, जैसे २ गर्भ जीर्ण होता जाता है, अर्थात् इस के परिपक्व होते हुए जैसे उत्तरोत्तर समय बढ़ता जाता हैं, वैसे अधिकाधिक होती जाती हैं॥ और यही जलन गर्भाशय में असंतत आकुंचन उत्पन्न करने का कारण हुआ करती हैं अन्त में जाकर यही जलन इतनी तीव्र आ जाया करती हैं कि गर्भाशय की दीवार के लिये असह्य हो जाती है। अतएव यह जोर से मिचना आरम्भ हो जाता है जिसका कि प्रभाव यह होता हैं कि सर्व प्रथम गर्भाशय का निम्नांश वा ग्रैव गुहा प्रणाली बार लम्बायमान हो जाती है, और गर्भाशय के अन्वायतन तन्तु, जो कि गर्भाशय के संकोच वा प्रसार से प्रभावित हो जाया करते हैं, गर्भाशय के अधोभाग व ग्रैव गुहा पर लम्बाई के रुख खिचाव डालते हैं। जिसका कि फल यह होता है, कि दोनों स्थान लम्बे हो जाते हैं। वलयाकार तन्तुओं से खिचने के कारण गर्भ स्थित भ्रूण पर दबाव पड़ता है, और वह गर्भाशय के अधोभाग में चला जाता है। इस प्रकार का प्रभाव जिसमें कि जल की थैली तथा भ्रूण भी हिस्सा लेते हैं। ग्रैव गुहा की दीवारों पर ठीक इसी प्रकार समकोण पड़ता है, जिससे कि वे दूर २ हट जाती हैं।

झिल्लियों के फटने के कारण निकलने से अवशिष्ट जल गर्भाशय के सबसे ऊपरी भाग को घेर लेता है। इसका व ऊर्द्धांश का दबाव बच्चे पर उसकी प्रष्ठ वंश के सीध में पड़ता है। वृहतांश नीचे की ओर मोटा हो जाता है, और बच्चे का उदय भाग नीचे ही नीचे सरकता जाता हैं, अब चूंकि शिर को प्रवेश द्वार वा प्रसव द्वार होकर निकलना पड़ता है, अतः उसके छोटे से छोटे व्यास वाला धरातल उन द्वारों पर आ जाता हैं, उदय भाग को उनमें से निकल आने के पश्चात् शेष शरीर भी निकल आता हैं। संकोच वा आकुंचन की बलि इस क्रियाको बहुत अंश में अपने ही प्रभुत्व में रखती हैं, भ्रूण को अपत्य पथ के अनुरूप हो जाना पड़ता है,

हम पहिले ही बतला चुके हैं। कि जिस प्रकार गुदा मल पर कार्य किया करती हैं, और जिस प्रकार मल बाहर ढकेला जाता हैं, तथा मूत्र मार्ग भी जिस प्रकार मूत्र पर कार्य किया करता है। ठीक उसी प्रकार अपत्यपथ भ्रूण पर कार्य किया करता है, और जिस प्रकार कि मलोत्सर्जन अथच मूत्रोत्सर्जन में १ शक्ति २ पथ ३ पथिक इन तीन बातों की आवश्यकता हैं। इन तीन सामग्रियों के बिना कार्य सिद्धि नहीं हो सकता, प्रसव के समय पूर्व काल से ही होती रही, सूक्ष्म असन्तत आकुंचन अधिक होने के कारण तीव्र वेदना के फल स्वरूप ग्रीवा के फैल जाने पर गर्भाशय में स्थित भ्रूण बल पूर्वक जो बाहर को धकेला जाता हैं, यही शक्ति का कार्य है, वह अपत्य मार्ग जिसमें से होकर भ्रूण को निकलना पड़ना है, और जिसके कि अनुरूप भ्रूण को होना पड़ता है, यही पथ है।

भ्रूण के पोषण व शारीरिक वैकृत धर्म पर उन परिवर्तनों का, जो कि कमल के पुराने होने से आ जाते हैं, ऐसा प्रभाव पड़ता है, जिसके कि कारण भ्रूण को कमल से प्रथक होना पड़ता है। और बाहर निकाल दिये जाने पर लम्बायमान पथ से होकर आने के कारण लम्बायमान स्वरूप में जो निकला करता है, वही पथिक हैं। बस यही है, "प्रसव सिद्धान्त"। यही कारण है, कि प्रायः ४० सप्ताह के बाद उन असह्य वेदना हो जाने के कारण स्त्री प्रसूता हुआ करती है,

यों तो चालीस सप्ताह के बाद ही प्रसव होने के कारणों में अनेकानेक मतभेद हैं। परन्तु चाहे गर्भ के कारण गर्भाशय में कार्बन द्विऔषित गैस की मात्रा बढ़ जाने से—अथवा प्रणाली विहीन ग्रंथियों के पदार्थों से उत्पन्न किये हुए उत्तेजक प्रभाव से उत्तेजित होने के कारण—अथवा ४० सप्ताह में बिना माता की सहायता के शरीर पालन करने में पर्याप्त ओज एकत्रित हो जाता है। एकत्रित हो जाने से या यों कहिए कि गर्भाशय के तन जाने से तनावट दूर के लिये उसकी दीवार के सिकुड़ने के कारण से यथार्थ सारांश केवल यही है, कि प्रायः प्रत्येक कारणों को शनैः २ चालीस सप्ताह भर एकत्रित होते हुए एतावन्मात्रा में इकट्ठे हो जाने से जिससे कि वेदना असह्य हो जाय, प्रसव हो जाया करता है।

इत्यलम्।

प्रसव के पूर्व रक्त स्राव

[लेखिका-श्रीमती सरलादेवी वैद्या M. B C H]

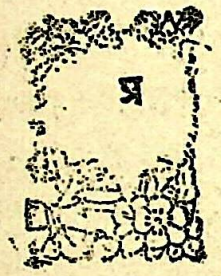

प्रसव के पूर्व रक्तस्राव होने के कई कारण हैं। प्रसव के पूर्व की अवस्था को गर्भावस्था कह सकते हैं। इस समय में रक्तका स्राव हरप्रकार से गर्भिणी स्त्री के लिये हानि कारक होते है। यहां तक कि कई बार तो गर्भ से हाथ धोने के अतिरिक्त गर्भिणी को अपने प्राण से भी हाथ धोने की नौबत आजाती हैं। बहुतसी बहिने यदि किसी तरह बच भी जाती हैं तो शोष व यक्ष्मा की शिकार बनकर अनन्त काल तक परितापाग्नि में झुलस कर अपने जीवन यात्रा को समाप्त करती है। यदि कुछ सामयिक चिकित्सा हो भी गई तो फिर वह सौन्दर्य और कांति पुनः नहीं देखी जाती जो कि स्वस्थावस्था में थी। वह तो केवल जीवन को भार रूप समझतीं तथा दुर्बल व उदासीन बनकर शोक समुद्र की लहरों के साथ अठखेलियाँ करती दृष्टिगोचर होती हैं। अस्तु इस काल में रक्त स्राव के कई कारण होते हैं, इन में प्रधान ये हैं। यथाः-

(१) ऋतुकाल, गर्भस्राव, गर्भपात, भ्रूण वैकृति, अमराव नालकी स्थान च्युति, अस्वाभाविक स्थान पर नाल की स्थिति का होना, अस्थानीय, गर्भ, जरायु व योनि के रोग इत्यादि।

ऋतु काल— ऋतु काल मेंस्वभाविक शारीरिक क्रियाओं के कारण ३से ५ दिनों तक रक्तका स्राव होता रहता है। किन्तु ऋतु बन्द होकर यदि गर्भ की शंका हो तो या, कटि पृष्ठ, पार्श्व में शूल होकर वा वृक्कप्रांत में शूल होकर रक्तस्राव हो उस अवस्था में किसी सुयोग्य चिकित्सक की शरण लेनी चाहिये।

गर्भ स्राव-गर्भस्राव से मतलब है ३ महीने के अपूर्व तथा कललस्वरूपवाले गर्भ का स्राव होना। क्योंकि ३ रे मांस तक शरीर के दृढ़ अंश अस्थि इत्यादि नहीं बने होते हैं। केवल रक्त और मास का मुलायम लोथड़ा होता है। जो गर्भिणी के मिथ्याहार बिहारों से नष्ट हो जाता है, और रक्त रूप में बाहर आजाता है। जैसे—

कारण—(१) भयंकर रोगों का होना। जैसे गर्भवती के चेचक दमा, उपदंश सुजाक आमाशय का स्फोट, उदरावरण शोथ Peritonitis जरायु रोग, वृक के शूल, व्रण तथा सदाह शोफ Nouphritis इत्यादि

(२) जरायु ग्रीवा का फटना, या आघात लगना, भारी वस्तुऐं उठाना, दौड़ना, बार बार सीढ़ियों पर उतरना चढ़ना, पैर फि सलना।

(३) अतिरिक्त स्वामी सहवास। (४) उद्वेग (५) भीषण लक्षण पैदा करने वाली औषधियों का सेवन यथा जैपाल (जमाल गोटा] कलिहारी कुनीन, अरगट, रसकपूर दालचिकना इत्यादि का सेवन करना (६) गर्भ स्रावार्थ प्रयत्न भ्रूण का शोथ (ख) पति देव का

उष्णवात व उपदंश, मधुमेह, यक्ष्मा इत्यादि रोग (ग) पति की कम अवस्था तथा अधिक शराब पीना।

गर्भपात—चौथे महीने से लेकर छः व सातवें मास तक के भ्रूण काल में प्रसव हो जाना, गर्भपात के नाम से पुकारा जाता हैं। इसके कई कारण हैं जिनसे गर्भपात हो सकता है। इसके अनुसार इसके कई भेद हो सकते हैं। यथा

(१) भयज गर्भपात) या आकस्मिक पात। Threatenedabortion

(२) निश्चित गर्भपात (Inevilable)

(३) पूर्णगर्भोपादान सहित गर्भपात Complete

(४) अपूर्ण गर्भपात Incomplete

(५) शोषज पात (Missed) या भूतहृत गर्भपात।

भयज गर्भपात— वज्र पात, भय, शोक, दुश्चिन्ता इत्यादि के कारण अचानकगर्भपात हो जाया करता है। अथवा गर्भ रहनेपर भी चिन्तित रहना कि गर्भ अवश्य गिर जायगा इत्यादि लक्षण—अल्प व्यथा, अल्प रक्त स्राव इन दोनोंका अनियमित होना। गर्भकला के द्रव का अदर्शन।

परीक्षा—इस समय गर्भ का मुख बहुत कम फैला होता है। यदि अंगुली प्रवेश की जाय तो भीतर जाकर भी कला का स्पर्श न कर सके।

उपाय—गर्भिणी को शान्त रक्खें। बिस्तरे से उठने न देवें। मल मूत्र का त्याग तक खाटों पर ही करावे। गर्भस्थापनीयगण के क्वाथ का प्रयोग २ तोले की मात्रा में प्रति घन्टे देवें।

इलायची ब्राह्मी, दूर्वा, सफेद दूर्वा, पाठा, आंवला, हरड़, कुटकी, खरैटी, फूल प्रियंगु) यह गर्भ स्थापक गण है। अथवा, (मधु, मुलहटी, रक्त चंदन, मोचरस, मिट्टी पकी हुई लोधि, गैरिक, प्रियंगु, मिश्री इनका क्वाथ बना कर प्रति घंटे १ तो० के हिसाब से देवे इसे रुधिर स्थापक गण कहते है।

पथ्य— हल्का पेय, भोजन, दूध, सागूदाना, मंड, बिलेयीं कृशरा इत्यादि देवें।

विहार— इस अवस्था में उसे ५ या ६ दिन तक रक्खें। जिस प्रकार के शब्द या बातें गर्भिणी को भय करने वाली मालूम हों उन्हें छोड़ देवे।

प्रिय तथा मन प्रसन्न रखने योग्य बातें करें, विशेष अवस्था में चिकित्सक की शरण लेवे।

निश्चित गभपात— गर्भ ठहरने की कोई उम्मीद न हो। इस समय ये लक्षण होंगे।

(१) रक्तस्राव का अधिक होना (२) गर्भाव्यथा (आवी) का बार बार उठना (३) गर्भ मुख का प्रसार हो जाना। (४) गर्भकलासे कुछ २ जल का निकलना।

परीक्षा—हाथकी अंगुली प्रवेश करते ही गर्भकला का स्पर्श होजाय।

चिकित्सा— हर एक दाइयां इसकीऔषधि नहीं कर सकती अतः उचित चिकित्सक या लेडी डाक्टर की इसके लिये बुलाना चाहिये। आने तक रुधिर स्थापक की या पंचक्षीरी कषाय को विशुद्ध वस्त्र के साथ (उबला हुआ वस्त्र) भिगोकर योनि मार्ग और गर्भ मुख पर रक्खें। या—लाई

सोल द्रव बना कर अपत्य मार्ग के बाहर, और भीतर के भाग को शुद्ध कर गर्भ मुख पर रख कर पट्टी बांधना चाहिये।

आहार विहार पूर्ववत ही रहें।

पूर्व गर्भपात—इसमें अपरा, नाल के भाग के साथ ही बालक बाहर आजाता हैं। इस में प्रसवोत्तर जो क्रियायें प्रसूता के लिये होती हैं वही होनी चाहिये। कमसे कम १० या १५ दिन का आराम करना चाहिये। पथ्य— पौष्टिक, बल प्रद तथा सुपाच्य होना आवश्यक है। जो स्त्री इस काल में अपनी दृढ़ता केकारण काम काज में लग जाती है। वह प्रायः अपने लिये मौत को न्योता देती है,औरअपना स्वास्थ्यहमेशा केलिये गंवाती हैं

अपूर्ण पात — इस में गर्भ केकुल हिस्से न गिर कर नाल या अपरा के कुछ भाग भीतर ही रह कर सड़ जाते है। जो कि गर्भिणी के लिये बहुत हानि कारक हैं। इसके कारण से पूय मय रक्तता (प्राइमिया) ज्वर (सैपसिस) इत्यादि भयंकर रोग हो जाते है।

लक्षण—बार बार रक्त का थोड़ा २ कई दिन निकलते रहना। उस में दुर्गंध अधिक हो छिछड़े मिले हों दर्द होता हो।

उपचार- इस की परीक्षा करा कर सुयोग्य धात्री द्वारा निकाल देना ही उत्तम है। या स्त्री चिकित्सा (लेडी डाक्टर) से उपचार करवाना ठीक हैं। इस में रोग निर्णय ठीक न होने से बहुत सी आपत्तियां उठानी पड़ती है। जैसे—

एक दुखिता बहिन मेरे चिकित्सालय में आई उस ने रक्त स्राव होना कमर में दर्द, छिछड़े निकला, दुर्गन्धित रक्तस्राव होना, इत्यादिलक्षण बतलाए।

साथ ही उसने कहा, कि मैंने कई वैद्यों से दवा कराई,मुझे कोई फायदा न हुआ; पत्राङ्गासव पुष्यानुग, आशोकारिष्ट, आर्तव शोधक कुमारिका बटी इत्यादि दवाओं में से प्रत्येक को तीन २ दिन सेवनकियाहै कोई फायदा नहींहुआमुझे आज पंद्रहवां दिन है। मै मरीजा रहीं हूं। बस जीवन आपके हांथों है। जो चाहो करो। इस की मैंने परीक्षा की। किन्तु ठीक पता न चला।

अतः मैंने उसे तीन खुराक दशमूलारिष्ट के देकरउस दिन बिदा किया। दूसरे दिन मैंने ज्योंही उसे देखा, मुझे ये लक्षण याद आये। मैने पुनः परीक्षा की और उससे पूछ ने लगी। स्त्री के साथ स्त्री पूछ रही थीफिर भी उस ने शर्म को ही हाथ पकड़ाया। मैंने प्रश्न किये— कितने दिन हुये जब कि तुम्हें ऋतु स्राव हुआ था

रोगिणी— आज साढ़े ५ महीने हुये जबकि ऋतु हुआ था। तब सेबंद रहा अब अचानक गर्भ से रक्त स्राव हुआ था। आज बीस दिन हुए जब से बराबर रक्तस्राव हो रहा हैं।

मैं- क्या गर्भ गिराने की कोई दवा खाई थीं?

रो०- नही बहू जी, इतना कह कह कर लज्जित हो गई। मैं पूछती गई-

अंत में स्वामी का सहवास ही कारण स्वरूप उसने बतलाया। अतः मुझे अपूर्ण गर्भस्राव के लक्षण ठीक जंच गये। मैने पहले दिन उसके गर्भाशय की परीक्षा ऊपर से की, और कुछ कड़ा भाग पाया, अतः लेकर लेडी डाक्टर के पास गई, दिखलाया, उस के पेट से बच्चे की अपूर्ण अस्थि वगैरह के भाग निकले।फिर "अरगट" का प्रयोग कराया गया, मैंने पंचक्षीरी कषाय द्वारा गर्भाशय

और अपत्य मार्ग दोनों धुलाये। साफ होते ही रक्तस्राव व दर्द बंद हो गया। दशमूलारिष्ट के साथ सूतशेखर, और गर्भ चिन्तामणि का सेवन कराया वह अब भली चंगी है।

"शोषजपात"—गर्भिणी के अन्दर भयानक रोगों (यक्ष्मा, शोष) के कारण गर्भ का बढ़ना बन्द होकर, केवल त्वचा भाग ही रह जाता है,

लक्षण—गर्भ बराबर बढ़ता जाता है, अचानक बाढ़ रुक जाती है, और भार में भी कमी मालूम पड़ती है, यहां तक कि गर्भिणी कुछ दिन में समझती हैं, कि उसे गर्भ रहा ही नहीं है। या भूत इस गर्भ को खा गये, इत्यादि।

चिकित्सा—इसका ज्ञान होते ही शीघ्र शस्त्र क्रिया कराना उचित है, अन्यथा कोई दूसरा रोग होकर गर्भिणी के स्वास्थ्य व प्राण तक का घातक हो जायगा।

भ्रूण वैकृति—

भ्रूण की विकृति ही इसकी निदर्शक हैं, इसमें भ्रूण के अंदर रक्त काजमाव हो जाता है, या गर्भ बढ़ कर उसमें अंगूर दाने बन जाते हैं। इस तरह इस के दो भेद होते हैं।

१—(फ्लेशि मोल) या रक्त गुल्म २—वैसी क्यूलर मोल या (गर्भकला में अंगूरदानों की उत्पत्ति) इनके लक्षणों में अन्तर यों है॥

रक्तगुल्म—

(१) गर्भ के लक्षण प्रतीत होना।

(२) भ्रूण की मृत्यु से गर्भ वृद्धि का रुक जाना।

(३) योनि २ में रक्त स्राव होना।

(४) गर्भस्रावन हो कर रक्त का रंग कृष्ण और गाढ़ा होता है, (गर्भ स्पंद का होना)

अंगूरदानों की उत्पत्ति

१—गर्भ के लक्षण हो तो जैसे वमन होना, ऋतु बन्द होना।

(२) गर्भ का बढ़ते जाना नाभी तक तीन मास में ही पहुंच जाना।

(३) रक्त स्राव नहीं होना।

(४) पेट का कठिन प्रतीत होना।

(५) स्पंद का न होना

(६) हृदय की धड़कन सुनाई देना।

(७) रक्त पात दो मास बाद होना उसमें अंगूर के दानों का दिखाई देना।

चिकित्सा—बहुत भयंकर रोग है (अतः सुयोग्य शस्त्र चिकित्सक इत्यादि की शरण लेनी चाहिये, अन्यथा रोगिणी प्राण से हाथ धो बैठेगी, इसमें बच्चेदानी को निकाल दिये जाने पर ही गर्भिणी बच सकेगी।

आकस्मिक रक्तपात

इसमें गर्भ के अंतिम दो मासों में चोट इत्यादि लगने से रक्तस्राव होता हैं, व जरायु संकोच होकर गर्भपात तक हो जाता हैं, अथवा बार २ हर साल बच्चे का पैदा होना। रक्त स्रावाधिक्य से, बेहोशी, मूर्छा, नाड़ीक्षीणता, श्वांस, कण्ठ व मुख का नीला पड़ना, इत्यादि लक्षण होते हैं।

इस समय उचित उपचार योग्य चिकित्सक के द्वारा ही हो ना चाहिये। कभी कभी स्राव झिल्ली के अन्दर ही होता हैं, और बहुत कड़ी मालूम होती है। इसमें शल्य चिकित्सक द्वारा रक्त निकलवाना ही उत्तम चिकित्सा हैं।

प्रसव के लक्षण व भेद-

लेखक— श्री मती सरलादेवी वैद्या M. B. C. H.

प्रसव क्रिया उसे कहते हैं, जिसके द्वारा भ्रूण गर्भाशय से प्राकृतिक नियम के अनुसार ४० सप्ताह के अन्दर बाहर आता है, साधारणतया यह क्रिया तीन अवस्था में विभक्त होती है।

१—प्रथम अवस्था

जब भ्रूण परिपक्व हो जाता है, तब गर्भाशय उसको निकालने के लिये अधिक संकुचित होता हैं, इस दशा में जो कष्ट होता है, उसे गर्भशूल कहते हैं, यह गर्भशूल जब गर्भाशय में उठता है, तब से उसके मुख का विकाश होनेतक बराबर जारी रहता है, गर्भाशय के मुख विकास होनेपर गर्भोदक (गर्भ का जल) निकलने लगता है। प्रथम प्रसव में यह शूल लगभग ११-१२ घण्टे तक रहता है, परन्तु पिछले प्रसवों में यही शूल ६-७ घण्टे तक ही रहकर प्रसव होने में सहायक होता है।

२—द्वितीय अवस्था

यह अवस्था गर्भाशय के मुख का पूर्ण विकास होनेपर प्रारम्भ होती है, और बालक उत्पन्न होने के पश्चात् इसका अन्त हो जाता है। प्रथम प्रसव में १ से २ घण्टे तक इसका समय होता है,और दूसरे प्रसवो में केवल १०,२५ मिनट इस अवस्था के लिये पर्याप्त होते हैं।

[पृष्ठ ५१६ से आगे]

अस्वाभाविक अपरास्थिति

इसमें अपरा गर्भाशय के ऊपरी दिवाल में न होकर दांयें बायें या गर्भ मुख पर ही होती है, इसके लक्षण—गर्भाधान के ६ मांस बाद रक्त स्राव बिना दर्द या कारण के प्रसव काल तक निकलता रहता है।

परीक्षा—अँगुलि परीक्षा द्वारा गर्भमुख पर बच्चे के शिर या झिल्ली के स्पर्श होने के बदले स्पंज की तरह की एक वस्तु का स्पर्श होता हैं। यह अपरा का होता है। यदि वह गर्भ मुख के पास है।

चिकित्सा—सुयोग्य चिकित्सक द्वारा इसकी चिकित्सा की जा सकती हैं, नहीं तो प्रसवा और गर्भिणी दोनों की हालत खतरनाक होगी। कभी कभी जरायु में आघात इत्यादि कारणों से वहाँ पर रैपवट हो जाता हैं।

लक्षण—तलपेट में असह्य वेदना होना, सिर में चक्कर,, आंखों में अंधकार, मुख का पीला, व नीला पड़ना, पसीना अधिक आना, व नाड़ी की गति का खराब होना तथा गुप्त रक्त स्राव के लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—रोग ज्ञान होते ही शीघ्र योग्य चिकित्सक की शरण में जाना चाहिये, इस तरह यह रक्तस्राव कई तरह के होते हैं। कभी जरायु के फटने, अपत्यमार्ग के फटने से भी स्राव होता है, इसकी समयोचित चिकित्सा होना चाहिये।

३—तृतीय अवस्था

यह अवस्था शिशु के उत्पन्न होने के पश्चात आरम्भ होती है, और आलनोल के गिरने पर इसका अन्त होता है इसका समय सब प्रसवों में १५ से ३० मिनट तक होता हैं।

प्रसव के भेद

प्रसव तीन प्रकार का होता है।

१—प्राकृतिक।

२—सुदीर्घ कालिक।

३-अप्राकृतिक।

(१) प्राकृतिक प्रसव—उसे कहते है, कि जिसमें बालक का शिर सब अङ्गों के पूर्व बाहर आता है, और प्रसव क्रिया २४ घण्टे के अन्दर बिना किसी चिकित्सक की सहायता के समाप्त हो जाती है। प्राकृतिक प्रसव के लक्षण निम्न लिखित प्रकार से विभक्त किये जाते हैं।

१—पूर्वकालिक या गर्भाशय का नीचे आना

२-प्रथम अवस्था के लक्षण।

३-द्वितीय अवस्था के लक्षण।

४-तृतीय अवस्था के लक्षण।

पूर्वकालिक लक्षण अर्थात गर्भाशय का नीचे आना

(१) यह क्रिया प्रसव होने के दो सप्ताह पूर्व होती है। कारण यह है, कि उस समय भ्रूण का सिर श्रोणिगह्वर के छिद्र की ओर आने लगता है। जिससे गर्भवती के शरीर में हलकापन प्रतीत होता हैं, तब श्वांस प्रश्वास क्रिया सुख पूर्वक होती है। मूत्र त्याग की इच्छा बार २ होती है। इसका कारण यह हैं।

(२) गर्भाशय का दबाव मूत्राशय पर पड़ता हैं। क्योंकि इस समय नीचे की ओर आने लगा है।

(३) झूठी पीड़ा—वह पीड़ा मरोड़े की भांति सारे पेट में होती हैं। यह सच्ची पीड़ा की भांति पीठ से प्रारम्भ नहीं होती है। और न नियमित विलम्ब से पीड़ा होती हैं, एवं प्रतिक्षण तीक्ष्णता के साथ भयंकर पीड़ा भी नहीं होती, इस कारण उसका गर्भाशय के मुख पर कोई भी प्रभाव नहीं होता।

(४) प्रसव होने के एक या दो दिन पूर्व अल्प रक्त दर्शन होता है। इस कारण गर्भाशय के मुख की कला का फटना आरम्भ होता हैं।

२—प्रथम अवस्था के लक्षण

सच्चे शूल के प्रारम्भ होते ही गर्भ क्रिया आरम्भ हो जाती है। यह शूल गर्भाशय के शरीर के संकुचित होने से होता हैं। यह शूल पीठ से प्रारम्भ होकर उदर गुहा में फैलता हुआ जाँघों की ओर आता है। शूल के समय गर्भाशय का शरीर बहुत सख्त प्रतीत होता हैं, और उसका मुख खुल जाता है। उसकी झिल्ली में खिचाव और सख्ती प्रतीत होती हैं। प्रारंभ में शूल मन्द होता है। और ३से४ सेकन्ड रहता है, दूसरी बार शूल उठने के बीच में लगभग १ घन्टे का विलम्ब होता है। इस कारण गर्भिणी अपना साधारण शौच आदि कर्म कर सकती है। ज्यों २ समय व्यतीत होता जाता है त्यों २ शूल शीघ्र होने लगता हैं। और अधिक देर तक भी रहता है। वह शूल काटने जैसा प्रतीत होता है। और इतनी भयंकर पीड़ा होतीहै कि गर्भवती चिल्लाने लगती हैं। इसके अन्त में या गर्भ जल फूटने के पूर्व प्रायः बमन भी हुआ करती है।

३—दूसरी अवस्था के लक्षण—

इस अवस्था में शूल पूर्व की अपेक्षा अधिक भयंकर, लगातार और शीघ्र २ होने लगती है। इसका दौरा आधी मिनट से क मिनट तक रहता है। और प्रत्येक बार शूल का दौरा ५ ,७ मिनट के विलम्ब से शिशु के उत्पन्न होने पर्यन्त होता रहता है। जब बच्चा होने के समीप होता हैं तब शूल निरन्तर जारी रहता है। पूर्वकी अपेक्षा शूल अधिक भयंकर और नीचे की ओर अर्थात् अपत्य पथ की ओर आने लगता है. इस कारण गर्भवती के समीप उस समय जो वस्तु होती है। उस को पूर्ण शान्ति से पकड़ा कर वह सहारा लेनेका प्रयत्न करती है। जब बच्चा श्रोणी गह्वर में नीचे की ओर आता हैं, तब मलाशय पर दबाव पड़ने के कारण शौच जाने की इच्छा होती है।

४—तीसरी अवस्था के लक्षण—

जब बच्चा सुख पूर्वक उत्पन्न हो जाता हैं तब १० से १५ मिनट तक प्रसूता चुपचाप शान्ती पूर्वक लेटी रहती है, कुछ समयके बाद रुक २ कर गर्भाशय में शूल उठता है। और आलनोल के गिरने तक बराबर जारी रहता है, यह शूल अधिक तीक्षण और दुखदाई नहीं होता।

२—सुदीर्घ कालिक प्रसव—

इस प्रसव का अर्थ यह हैं, कि सुख पूर्वक स्वाभाविक प्रसव होने के लिये भी प्रसवा को चिरकाल तक पीड़ित रहना पड़े, स्वभावतः भी बहुत सी स्त्रियों की अपेक्षा किसी स्त्री का सुख पूर्वक प्रसव होनेमें अधिक समय लग जाता हैं, परन्तु उससे कुछ हानि नहीं होती है, इस में तीन चार बातों के दृष्टि गोचर होते ही सुचिकित्सक की शरण लेवे।

(१) नाड़ी की गति ७० या ८० के बदले १०० या इससे अधिक हो।

(२) शूल का लगातार बिना श्रम के होते रहना, व एकायक बन्द हो जाना।

(३) चेहरा उतरा हुवा व चिन्तित हो।

(४) अपत्य पथ के बाह्य भगोष्ठों पर शोथाधिक्य होना इत्यादि।

३—अप्राकृतिक प्रसव

इस से उस प्रसव को समझते हैं जिस में पैर व शिर इत्यादि हिस्सों के अतिरिक्त अन्य अंगों का दर्शन होना ज्ञात पड़े, और माता व बच्चे को बिना अधिक कष्ट दिये न होवे, इन में कई अवस्थायें दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) शिर पैर के अतिरिक्त अंगों का प्रसव में दर्शन (२) प्रथम प्रसव के अपत्यपथ में पैरों का दर्शन (३) गर्भजल स्राव होने के समय नाल का दर्शन होना या भ्रंश होना। (४) किसी कारण वस प्रसव मार्ग का पर्य्याप्त न फैलना (५) मूर्छा या बेहोशी का होना आक्षेप का आना (६) शिशु के किसी अंश का श्रोणि गह्वर में जम जाना (७) अधिक रक्तक्षय का होना। (८) रक्त स्रावाधिक्य के अधिक न होनेपर भी अपराका १ घंटे के अन्दर न गिरना। (९) श्रोणि आधार के या अन्य अपत्य पथ के भागों का फट जाना।

उपयुक्त अवस्थायें अप्राकृतिक प्रसव की हैं, इसमें के किसी भी लक्षण का दृष्टि गोचर होना भयानक है। इस हालत में उत्तम चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

जाति व्यवस्था—

[ले० कविराज हरिकृष्णजी सहगल वैद्यराज]

गर्भ में बालक हैं, या कन्या? यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न हैं। हम विद्वान् सम्पादक को, इस प्रश्न को धातृ अंक में रखने के लिये बधाई देते हैं। तथा अपनी कुछ बुद्धि से जितना हो सकता है, इस विषयपर विचार करने का प्रयत्न करते हैं।

गर्भ में बालक हैं या कन्या? आयुर्वेद इस का उत्तर इन शब्दों में देता है—

जिस गर्भवती के दाहिने स्तन में पहले दुग्ध दृष्टि गोचर हो, तथा दाहिनी आंख कुछ २ भारी जान पड़े, और दांई ही साँथल में भारीपन हो, और विशेषतः से पुरुष वाचक द्रव्यों को दोहद में चाहे। तथा स्वप्न में कमल,कुमुद,आमला आदि आदि पुरुष नाम वाले पदार्थों को प्राप्त करे, और मुख तथा रूप सुन्दर हो, तो कहना चाहिये, इसके पुत्र उत्पन्न होगा। और जो इस के विपरीत हो तो कन्या होगी, ऐसा समझना चाहिये।

जिसके दोंनों पसवाड़े ऊंचे हों, और पेटआगे को निकला सा हो, तथा पूर्वोक्त मिले से लक्षण हों तो उसके नपुंसक बालक होंगा। ऐसा जानना चाहिये। (सुश्रुत)

पाश्चात्य विचार

(१) अरिस्टोटन साहिब का कथन हैं, कि जब गर्भ में लड़का हो, तो गर्भवती को लड़की की अपेक्षा कम दुख होता है। और गर्भ आसानी से वृद्धि को प्राप्त होता है।

(२) लड़का सर्वदा प्रथम दांई ओर ही प्रतीत होता हैं। स्त्री कुर्सी से उठते समय दांये बाजू पर ज़ोर देकर उठती है। अगर ऐसा न हो, तो लड़की होती है।

(३) दांई छाती बाईं से अधिक कठोर, तथा कृष्ण वर्ण की होती हैं। दांया स्तन बाँये से अधिक रक्त वर्ण का होता है, इससे जब भिन्न अवस्था हो, तो गर्भ में लड़की होती है।

(४) अगर दांई आंख का नीचे का चक्र नीले रङ्ग का हो, साफ हो, अधिक बिगड़े हुये वर्ण वाला न हो तो निश्चय से पुत्र होगा। अगर यही चिन्ह बांई आँख में अधिक साफ हो, तो निश्चय से लड़की होती है।

(५) गर्भवती के दुग्ध की एक बूंद को साफ पानी से भरे हुए एक पात्र में डालो, अगर दूधकी बूंद जैसी की तैसी पात्र के तल प्रदेश में बैठ जावे तो लड़की होगी। जो लड़का होगा, तो दुग्ध बिन्दु फैल जावेगी, तथा तैरती रहेगी।

(६) गर्भवती के दुग्ध को कांच के आईने पर छोड़ दो, और उस पर एक जूँ रख दो जो जूं जीती हुई बाहर निकल आवे, तो लड़की होगी, अन्याथा लड़का होगा॥

(७) चौथी, छटी, आठवीं, दसवीं और बारहवीं तथा, चौदहवीं व किसी २ के मत में सोलह

चौथी, रात्री में प्रसंग करने पर पुत्र, तथा पांचवी, सातवीं नववीं ग्यारहवीं, तेरहवीं, तथा पन्द्रहवीं, रात्री में प्रसंग करने पर लड़कीउत्पन्न होती हैं, (सुश्रुत)

(८) यूनानी चिकित्सकों के मत में जो पुरुष के दायें अण्ड कोष से वीर्य स्त्री, के दायें कोष में गिरे, तो लड़का, जो बायें अण्डकोष से स्त्री के बायें कोष में गिरे, तो लड़की होती हैं, और जो स्त्री के बायें कोष में पुरुष के दांये अण्डकोष से वीर्य गिरे, तो स्त्री की चेष्टा वाला लड़का होगा, और जो पुरुष के बायें अण्ड कोष से स्त्री के दायें कोष में गिरे तो लड़की होगी परन्तु पुरुष की सी इच्छाओं वाली।

प्रतीत होता हैं, कि यूनानी चिकित्सकों ने यह विचार आयुर्वेदसे ही संग्राह किये हैं, क्योंकि अष्टाङ्ग हृदय में एक स्थल पर ऐसा आता है, कि—

कर्मान्ते च पुमान्सर्पिः क्षीरशाल्योदनाशितः।
प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया॥
आरोहेत्स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिण पार्श्वतः।
तैल माषोत्तरा हारा तत्र मन्त्र प्रयोजयेत्॥

बालक या कन्या क्यों ?

यह एक अत्यन्त महत्व पूर्ण प्रश्न हैं, हमारे ऋषियों ने इस पर बहुत गहरा विचार किया है, अब इसी विषय पर यूरोप में लैबोरेट्रीज़ Laboratrees में परीक्षण हो रहे हैं। आज कल वह देश जिस में सभी वस्तुयें पर्याप्त उत्पन्न होती हैं, तथा जो दूसरे देशों में उनकी आवश्यकता की चीज़े भेज सकता है, धनी और शक्ति शाली देश माना जाता हैं। इस प्रश्न पर इस पहलू का भी काफी असर हुआ है।

गर्भमें बालक व कन्या क्यों होते हैं? इस प्रश्न का व्यापार से भी बहुअ गहरा सम्बन्ध हैं। अगर आज किसी देश वाले इस का ठीक २ हाल निकाल लें, तो वह इसकी सहायता से अपने देश की भेड़ बकरियों की संख्या में अधिक दुग्ध देने वाली गौओं की गणना में मुर्गियों की तादाद में, घोड़ों के नस्वर में, कई गुणा अधिक वृद्धि कर सकते हैं। आज इस कार्य में मनुष्य का हाथ न होने से भारी संख्या में भेड़ तथा बकरा सांड और मुर्ग प्रकृति अपनी इच्छा से जिसे हम दैव व चान्स Chanse कह देते हैं। उत्पन्न कर देती है, अगर यही बालक व कन्या क्यों होती हैं, इसका रहस्य पुरुष को मालूम हो जावे, तो एक अंग्रेज कहता है, कि ९०% गायें, भेड़ें और बकरियां आदि उत्पन्न की जावें और १०, सांड़ मुर्ग़े आदि उत्पन्न किये जावें।

हम पाठक वृन्द से निवेदन करना चाहते हैं। कि जिसे संसार खोजता है, उस प्रश्न का उत्तर आयुवद के पास है, हम संक्षेप से उन सभी बातों का वर्णन करते हैं। तथा तत्पचात् पाश्चात्य मत का प्रदर्शन करेंगे। शास्त्र कहता हैं, कि:—

अतएव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्॥
रक्तस्य स्त्री तयोः साम्ये क्लीवः शुक्रार्तवे पुनः॥
(अष्टाङ्गहृदय)

अर्थात इस हेतु, से वीर्य की अधिकता से पुरुष उपजता है, और रक्त की बहुलता से कन्या उत्पन्न होती है, वीर्य तथा रज की समता में हीजड़ा उत्पन्न होता है।

नोट—गर्भ स्थिति के लिये शुद्ध वीर्य तथा शोणित का होना अत्यावश्यक है।।

हमारे ऋषियों ने उपरोक्त दो पंक्तियों में गूढ़ प्रश्न का स्पष्ट उत्तर दे दिया है। अगर वीर्य की बाहुल्यता होगी तो बालक होगा, अन्यथा कन्या होगी। यह हमारे पास इस प्रश्न को सुलझाने की चाबी है। अब दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है, कि पुत्र व कन्या की उत्पत्ति के लिये रुप को वीर्य वर्द्धक व वाजीकरण औषधियों का प्रयोग कराना चाहिये? व स्त्री को औषध प्रयोग कराना चाहिये?

हम वाजीकरण अधिकार की सर्व औषधियों पर दृष्टि को फैलाते हैं। कि हमें किसी औषधि के साथ यह लिखा हुआ मिले कि इसके प्रयोगसे निश्चयसे पुरुष पुत्रउत्पन्न करता है, परन्तु इस विषय में सर्वथा निराशा ही हमारा स्वागत करती हैं। कहीं भी ऐसा लिखा हुआ ढूंढ़ने में हमें सफलता नहीं होती, हां, योनि व्यापित् चिकित्सा अधिकार में लिखित औषधियों के सा अवश्य ऐसा लिखा हुआ मिलता है, कि इसके प्रयोग से अवश्य पुत्र की उत्पत्ति होगी। उदाहरणार्थ एक योग चक्रदत्त से हम उद्धृत करते हैं।

कृत्वा शुद्धौस्नानं विलङ्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः।
स्नात्वा द्विजाय दत्वाभक्त्यासम्पूज्यलोकनाथेशम्॥
श्वेत बलाऽघ्रि पिष्टं कर्षं कर्षं पलसितायाश्च।
पिष्टैक वर्ण जीवद्वत्साया गोस्तन दुग्धेन॥
समधिक घृतेन पीतं नात्र दिनेदयमन्नमन्यच्च।
सुषिते सदुग्धमन्नं दद्यादा पुरुष सन्निधेस्तस्याः॥
समदिवसे शुभयोगे दक्षिण पार्श्वावलंबिनीधीरा,
त्यक्त स्त्र्यन्तर सङ्ग प्रहृष्ट,मनसोऽतिवृद्धधातोश्च।
पुरुषस्य सङ्गमात्रालभते पुत्रंततो नियतम्।

अर्थात्—स्त्री ऋतु के चतुर्थ दिन में शुद्ध स्नान तथा उपवास करे, तदन्तर दूसरे दिन प्रातः काल में स्नान करके तथा ब्राह्मणों को दान देकर यथा विधि सूर्य की पूजा के बाद १ कर्ष श्वेत बला का मूल तथा १ कर्ष मुलहटी को एक पल परिमित खांड के साथ एक रंग वाली जीवद्वत्सा गाय के अधिक—घृत मिश्रित दूध के साथ सेवन करें। उस दिन और भोजन न करें, भूख लग जाने पर दूसरे दिन (छटे दिन) से पतिके सहवास काल तक दूधके साथ भात को खावे, तदनन्तर शुभ योग युक्त युग्म दिनों में स्त्री दक्षिण पार्श्व की ओर, धीरता पूर्वक परस्त्री गमन न करने वाले प्रसन्न चित्त तथा अति प्रगाढ़ शुक्र शाली पति के साथ सहवास करे इस प्रकार सहवास करने से स्त्री अवश्य ही पुत्र उत्पन्न करती है।

प्रिय पाठकों ने अब अनुभव कर लिया होगा, कि इच्छानुसार पुत्र तथा कन्या उत्पन्न करने के लिये स्त्री पर ही औषधि प्रयोग करना चाहिये, हम इस विचार की पुष्टि में माधव निदान से एक और पाठ भी उद्धृत करते हैं।

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया।
सवातशुक्रिरेद्बीज वामिनी रजसान्वितम्॥
प्रस्रंसिनी भ्रंशते तु क्षोभिता दुष्प्रजायिनी।
स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्त संक्षयात्॥
अन्यर्थं पित्तला योनिर्दाह पाकज्वरान्विता।
चतुर्ष्वपि चाद्यासुपित्तलिंगोच्छ्रयो भेवत्॥

अर्थात्:—जिस योनी से दाह युक्त रुधिर बहे उस को लोहितक्षया कहते हैं, जिस में से रजोयुक्त शुक्र, वायु बराबर बहें, उस को 'वामिनी'

कहते हैं। जो योनि स्थान भ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं। जिस में अंग बाहर निकल आवे और यह विमर्दित करने से प्रसव योग्य नहीं होती हैं, जिस योनि में रुधिर क्षय होने से गर्भ न रहे उस को पुत्रघ्नी कहते हैं। जो योनी अत्यन्त दाह पाक और ज्वर इन लक्षणों करके संयुक्त होवे उस को पित्तला कहते हैं। इन में पहली चार (रक्तक्षया वामिनी प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी) इन में पित्त के लक्षण अधिक होते हैं। और पित्तला में पित्त के विशेष लक्षण होते है।

प्रिय पाठकों को हमारे विचारों की पुष्टि के साथ साथ ही अब एक और वस्तु भी दृष्टिगोचर हुई हैं, वह हैं यह, चन्द शब्द कि:—पहली चार, इन में पित्त के लक्षण अधिक होते हैं और पित्तला में पित्त के विशेष लक्षण होते हैं। अर्थात् योनि दोषों में पित्त विशेष करके प्रकुपित होता हैं।

अब इस प्रश्न का उत्तर कि पुत्र उत्पन्न करने के लिये जो औषधियां प्रयुक्त होती हैं वह कहां ? और कैसे प्रभाव करती हैं ? पाने के लिये, हम प्रथम सुश्रुत का निम्न लिखित पाठ, पाठकों के सन्मुख रखने के पश्चात्, निघन्टु में से उपरोक्त योग में व्यवहृत होने वाली औषधियों के गुणों का उल्लेख करेंगे।

"सौम्यं शुक्रमार्तवमाग्नेयमितरेषाम्"

अर्थात्:—गर्भोत्पत्ति में वीर्य सौम्य और आर्तव आग्नेय है।

सुश्रुत में ही एक प्रश्न का उत्तर है कि युग्म रात्रियों में पुत्र तथा अयुग्म रात्रियों में कन्या क्यों होती हैं ? वक्तव्य में इस प्रकार दिया गया हैं कि:-

पुरुष घृत मर्दन करे और घृत युक्त आहार करे तथा स्त्री तैल मर्दन करे, और तैल युक्त आहार करे। इसका अभिप्राय यह हैं कि वीर्य का पोषक सौम्य पदार्थ घृत है, जो पुरुष को उपयोग करना चाहिये, और रज की पुष्टि करने वाला आग्नेय पदार्थ तैल है। जिससे स्त्री का शोणित पुष्ट होता है। और सम विषम रात्रियों का हेतु यह है कि विषम रात्रियों में स्त्री का आर्तव बलिष्ट होता हैं, इससे कन्या होती है, और सम रात्रियों में पुरुष के वीर्य की उत्कर्षता से पुत्र होता है।

अब पाठकों ने भली प्रकार जान लिया होगा, कि औषधों का प्रभाव आर्तव को निर्बल करने में होता है, आर्तव आग्नेय है, अगर आग्नेय पदार्थों का प्रयोग हो तो आर्तव की पुष्टि होती है, तथा कन्या उपजती हैं, और जो आर्तव की आग्नेयता कम हो जावे, उसमें सोम पदार्थों के प्रयोग से सोम रस पहुंचाया जावे तथा आर्तव को निर्बल किया जावे तो अगरचे वीर्य को हमने कुछ नहीं किया। हां वीर्य की अपेक्षा आर्तव को निर्बल अवश्य कर दिया है, तो निश्चय से लड़का होगा, अब इस बात की पुष्टि में हम निघण्टु से औषधों के गुण लिखते हैं।

यष्टीमधु

यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत्।
सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्यापित्तानिलास्रजित्।
व्रण शोथ विषच्छर्दि:तृष्णाग्लानिक्षया पहा॥

अर्थात्-मधु यष्टी, शीतल, भारी, मधुर, नेत्रों को हितकर, बल तथा वर्ण के लिये हितकर, स्निग्ध, वीर्य वर्द्धक केशों और स्वरको बढ़ाने

वाली तथा पित्त, वायु, व्रण, शोष, विष, वमन, प्यास, ग्लानि तथा क्षय को दूर करती है।

बला गुण

चारों बला–शीतल, मधुर, बलवर्द्धक, कान्ति-वर्धक, स्निग्ध, ग्राही और वातरक्त, पित्तरक्त-विकार, क्षत, इनको नष्ट करने वाली है।

प्रिय पाठक ? आपने योनि व्याधि रोगों में देखा है कि प्रधान प्रकुपित दोष पित्त हैं तथा औषधों के गुणों को पढ़कर भी यह जान लिया कि पित्त नाशक तथा कफ कारक औषधों से हमारी इच्छानुसार परिवर्तन होता हैं, अब औषधों के प्रभाव को स्पष्ट करने के अर्थ हम पाठकों के सन्मुख एक और वस्तु रखते हैं।

वीर्य स्वरूप

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधु गन्धिच।
शुक्रमिच्छंति केचित् तैल क्षौद्रनिभं तथा॥

अर्थात् वीर्य सफेद हो, पतला हो, चिकना हो, मधुर और शहद की सी गन्ध युक्त हो, तो शुद्ध समझना चाहिये।

आप देखेंगे, कि जो गुण औषधों के आते हैं, बिलकुल उन्हीं के से गुणों वाला वीर्य है, पुत्र उत्पन्न करने के लिये अगर हम उन वस्तुओं को जिनके गुण वीर्य के लक्षणों से युक्त हों, स्त्री को प्रयुक्त करावें तो लड़का होगा, अगर आग्नेय तथा आर्तव जैसे लक्षणों वाले पदार्थों का प्रयोग करावें तो कन्या होगी, इस परिणाम से दोबारा हमारी दृष्टि इस श्लोक की ओर खिंच गई है कि–

'शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान्।'

हम जब स्त्री को पुत्र उत्पन्न करने के अर्थ किसी पुत्र कारक औषधि का प्रयोग करवाते हैं, तो उससे हम उसमें होने वाले गर्भ के लिये पैतृक अङ्ग की वृद्धि कर देते हैं, हमारी औषधि स्त्री के आर्तव की आग्नेयता (पित्त) को कम कर देती है, यथार्थ में आर्तव निर्बल हो जाता हैं।

मासिक धर्म होने पर आर्तव ग्रहण किये हुये संस्कारों का योनि में से विचरते समय उसमें कुछ अंश में समावेश कर देता है, तथा इस प्रकार संस्कारित योनि, वीर्य बिन्दु पुत्र ही उत्पन्न करने के लिये उपयुक्त क्षेत्रका काम देते हैं। आर्तव गर्भ का पुष्ट करनेवाला है, उस में वीर्य के संस्कार होने से गर्भस्थित बालक के पुरुष सूचक अङ्ग बढ़ते हैं तथा परिणाम स्वरूप में पुत्र ही होता हैं, तथा इसके विरुद्ध करने पर कन्या ही होती है।

पाश्चात्य विचार

इस विषय में सर्वमान्य कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं हो सकता। हां, बहुत से विद्वान डाक्टर ऐसा समझते हैं कि स्पर्माटोज़ा (डिंब) में प्रविष्ट होने पर, अगर वह बलवान हो, तो पुत्र होता है, और अगर ऐवा का न्युक्लियस बलवान हो तो कन्या होती है।

यूरोप में इस समय साठ से अधिक इस विषय पर सिद्धान्त है। हम उन सब को छोड़ कर १९३४ में होने वाली नवीन रिसर्च (खोज) को पाठकों को जानकारी के लिये सामने रखते हैं।

शशो में इच्छानुसार पुत्र कन्या की उत्पत्ति

प्रथम यह जानना आवश्यक है कि किन कारणों से पुत्र तथा कन्या होती है तत्पश्चात्

उन पर कैसे अधिकार किया जावे इसपर विचार करना चाहिये। आधुनिक विज्ञान अनुसार पुत्र तथा कन्या का होना कुछ प्रकार के क्रोमोसोम Chromosomes के आटोसोमिज Autmoses से मिलने के आधार पर हैं॥

दुग्ध देने वाले प्राणियों में आटोसोमिज म दो प्रकार के परमाटोज्वा होते हैं एक बी० एक B. A. इनके क्रोमोसोम सोमिलने पर जो गर्भ स्थिति होती है वह पुरुष होता है, और दूसरे ऐक्स ऐ०(X. A) इनके क्रोमो सोमसे मिलनेपर जो गर्भ स्थितिहोती है वह कन्या होती है स्त्रियों में केवल एक प्रकार का ही अण्डा Eggcell होता है उसे ऐक्स ए० X. A. कहते हैं अगर हम पुत्र तथा कन्या की उत्पत्ति अपने अधिकार में लेना चाहें तो हमें इन दोनों प्रकार के स्परमाटोज्वा में से एक प्रकार के स्परमाटोज्वा को नष्ट या मूर्च्छित कर देना होगा।

रूस (Russia) के डाक्टर प्रो० निकल्स के कोल्टजफ ने बिजली की सहायता से एक ऐसा यन्त्र निर्माण किया है, कि अगर इसके एक भाग को लगा दिया जावे तो एक प्रकार के स्परमाटोज्वा ऐसा से मिलते हैं, अन्यथा इसी बिजली के यन्त्र के दूसरे भाग को लगाकर जो गर्भ स्थिति कराई जाती है उससे दूसरी प्रकार के स्परमाटोज्वाआकर्षित होते हैं।

आयुर्वेदिक औषधियां किस प्रकार पुत्र तथा कन्या को उत्पन्न करने में समर्थ हैं? अगर पाठक आयुर्वेदिक मतानुसार पूरी तरह न समझ सके हों तो उपरोक्त पाश्चात्य विचारों को सन्मुख रखकर विचारें उनको अवश्य इसका उत्तर मिलेगा।

जीवन धन

मेरेजीवन मेरे तनमन, मेरे शुभ संस्कृति के सार।
मेरे मुग्ध मनोरम आशा, के निर्मित तुम प्राणाधार॥
मातृ हृदय नंदन—कानन के, विकसित तुम मंजरी रसाल।
प्रेम पयोध आलवालों में कुसुमित तुम हो मेरे लाल॥
लख कर तुझे, सुःख परिपूरित मेरामन विकसित होता॥
प्रेम हिलोरों में रोलित हो, कुसुमित उपवन बन जाता॥
भूल सभी यातना गईं, हँसता मुखड़ा जब दिखलाता।
मेरा अनुपम जीवन धन', अम्मा कह जर जब अठिलाता॥

"व्यथित" पीलीभीत

जाति की उत्पत्ति और पाश्चात्य मत

[ले० श्री पं० कुबेर नाथ द्विवेदी वैद्यराज]

वैज्ञानिकों के लिये अभी तक जाति का प्रश्न एक गूढ़ समस्या है। इस का क्या कारण है? कि किसीवार लड़की होती है, व किसी वार लड़का उत्पन्न होता है? वे कौन सी वस्तुऐं हैं, जो जाति की भिन्नता उत्पन्न करती हैं? शुक्राणु और डिम्ब के भीतर कुछ ऐसी वस्तुयें होती हैं, जो इस जाति को बनाती हैं। अथवा कोई वाह्य प्रभाव ऐसे होते हैं, जिनके कारण जाति भेद उत्पन्न होता है? यह अभी तक एक समस्या है, जिस पर वैज्ञानिक लोग सहमत नहीं हैं।

इस प्रश्न ने सदा से लोगों को चक्कर में डाला है। गर्भवती भावी मातायें इस बात को बहुत इच्छुक रहती हैं, कि उनको उनके आगामी संतान की जाति मालूम हो जाय। कभी २ भावी पिता, तो डाक्टरों से यह प्रश्न पूछ भी बैठते हैं। पच्छिमी देशों में स्त्रियाँ इस प्रश्न के सम्बन्ध में साधारणतया डाक्टरों की सलाह लेती हैं। किन्तु हमारे देश की स्त्रियाँ लज्जा के वस इतना साहस नहीं करतीं, तो भी उन को इस बात के जानने की उतनी ही अधिक इच्छा रहती है।

इसके सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त अनेक व्यक्तियों द्वारा बने हैं। इतने अधिक सिद्धान्तों का बनाना ही बता रहा है, कि कोई भी सिद्धान्त संतोषजनक उत्तर देने के योग्य नहीं हैं। कुछ सिद्धान्तों को नीचे उल्लेख किया जाता है।

१—जाति को उत्पन्न करना, शुक्राणु का काम है, वह डिम्ब न केवल गर्भाधान ही करता है, किंतु जाति भी वही उत्पन्न करता है।

२—जाति को उत्पन्न करने का काम केवल डिम्ब का है, इसमें शुक्राणु कुछभी भाग नहीं लेता।

३—हिप्पोक्रेटीज़ Hippocrates का कहना है, कि आगामी संतान की जाति माता पिता के शुक्र और रज की अधिकता व उनके शक्ति पर निर्भर करती है। यदि पिता का शुक्र अधिक है, और अधिक शक्ति वान् हैं, तो पुत्र होगा किन्तु यदि माता का रज अधिक है, और शक्ति में अधिक हैं, तो पुत्री होगी।

४—यदि पिता अधिक बलवान है। तो पुत्री होगी किन्तु यदि माता का बल अधिक है, तो पुत्र होगा।

५—ल्यूविन होक Leeuwenhoock यहाँ तक कहता है, कि उसको शुक्राणु में भावी संतान की जाति दिखाई देती हैं।

६—यदि दाहिनी ओर के अंड से उत्पन्न हुये शुक्र का दाहनी ओर की डिम्ब ग्रन्थि से आये हुए डिम्ब के साथ संयोग होता है। तो उससे पुत्र होता है। यदि बाईं ओर की ग्रन्थि के डिम्ब का

बायें अंड के शुक्र से संयोग होता है, तो पुत्री होती है,

इस सिद्धान्त वाले यहाँ तक कहते हैं। कि दाहने ओर का शुक्र बाईं ओर के डिम्ब से नहीं मिल सकते। उनके मिलने से गर्भाधान नहीं होगा।

७-कैनेस्ट्रिनी Canesstrini का कहना है, कि यदि कई शुक्राणु एक डिम्ब के भीतर प्रवेश करेंगे तो पुत्र होगा। यदि एक ही शुक्राणु प्रवेश करेगा तो उसके पुत्री होगी।

८--डाक्टर रोस का कथन इससे बिल्कुल उल्टा है। उनके अनुसार थोड़े शुक्राणुओं से पुत्र और बहुत से शुक्राणुओं से पुत्री होगी।

९-होफ्चर और सेडलर Hofacker and Sedler कहते हैं। कि माता और पिता में जिसकी आयु अधिक होगी बच्चा उसी की जाति का होगा।

१०-बर्नर और स्टोयडा Berner and stoida की सम्मति बिल्कुल ही इसके विरुद्ध हैं। उनकी राय में बच्चे की वही जाति होगी जो माता और पिता में छोटी आयु वाले की है। यदि माता की आयु छोटी हैं, तो पुत्री होगी। यदि पिता छोटा है, तो पुत्र होगा।

११-यदि पिता बलवान है, तो पुत्र होगा। किन्तु यदि माताका बल अधिक है तो पुत्री होगी।

१२—दूसरे महाशय इस के बिल्कुल ही विरुद्ध कहते हैं। उनके अनुसार पिता के बलवान होनेसे पुत्री और माता के बलवान होने से पुत्र होगा।

इस प्रकार के और भी कई सिद्धान्त है। उन में से बहुत से ऐसे हैं, जो एक दूसरे के विरुद्ध है। इन में कोई भी ऐसा सिद्धान्त नहीं है, जो विषय पर किसी प्रकार का भी प्रकाश डालता हो। सब से पहले इस प्रश्न का वैज्ञानिक अध्ययन यूरोप में पिछली शताब्दी के अन्तिम दिनों में आरम्भ किया था ५९३,५०, ०० बच्चों के जन्म का पूरा हाल मालूम किया गया। इस से यह मालूम हुआ कि संसार में स्त्रियों के अपेक्षा पुरुष अधिक उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक सौ पुत्रियों के लिये १०६ पुत्र जन्म लेते हैं। दूसरे देश की गणना से भी यही पाया गया है। किन्तु लड़कों की लड़कियों की अपेक्षा मृत्यु भी अधिक होती हैं, जिस का परिणाम यह होता हैं कि स्त्रियों की संख्या मर्दों की अपेक्षा अधिक हो जाती हैं। सन् १९०१ में इंगलैंड और वेल्स में १८,००० लड़के लड़कियों से अधिक जन्मे थे, किन्तु उसी वर्ष में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की २०००० अधिक मृत्यु हुई। इस प्रकार सन् १९०१ में, उन देशों में, १०० पुरुष और १०७ स्त्रियों की निष्पत्ति थी।

पुरुषों और लडकों की अधिक मृत्यु होने के कई कारण हैं। अन्वेषण से यह मालूम हुआ है कि गर्भ काल में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों का अधिक नाश नहीं होता। किन्तु जन्म के समय अर्थात् प्रसव में और उस के पश्चात् लड़कों की अधिक मृत्यु होती हैं।

प्रसव के समय अधिक मृत्यु का कारण लड़कों के शरीर का बड़ा आकार है। प्रसव के पश्चात् जो अधिक मृत्यु होती है, उसका कारण डाक्टर हेरी केम्पबेल के अनुसार, लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में सहन शक्ति की कमी है, इन

का कहना हैं कि लड़कियों का जीवन लड़कों की अपेक्षा अधिक कठिन होता है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा सहन शक्ति अधिक होती है। प्रकृति ने यह सहन शक्ति उस को गर्भ और प्रसव के कष्ट को सहन के लिये दी है। इस के अतिरिक्त पुरुषों का जीवन ही ऐसा होता है कि उन को बहुत विपरीत व भयानक अवसरों का सामना करना पड़ता हैं। स्त्रियाँ अधिकतर घर ही पर रहती हैं उन को जीवनोपार्जन के लिये वह सब दुस्तर और दुस्साहस पूर्ण कार्य नहीं करने होते, जो पुरुषों को करने होते हैं। ऐसे कार्यों में बहुत की मृत्यु होती है। भयानक घटनाओं में पुरुष ही मरते हैं।

इसी कारण प्रकृति ने पुरुषों को अधिक उत्पन्न करने का प्रबन्ध किया है। किन्तु अधिक पुरुष क्यों उत्पन्न होते हैं, प्रकृति ने इस का प्रबन्ध किस भांति और कहां किया हैं कि स्त्रियों के अपेक्षा पुरुष अधिक उत्पन्न हों इस सम्बन्ध में मिस्टर डौसन के सिद्धान्त की कुछ व्याख्या करनी आवश्यक मालूम होती है।

मिस्टर डौसन E. R. Dawson का कहना है कि पिता संतान की जाति पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं डालता। जाति को उत्पन्न करने वाली माता हैं? यह महाशय यह मानते हैं कि दाहिनी डिम्ब ग्रंथि के जितने डिम्ब हैं, वे सब पुरुष उत्पन्न करती हैं, और बांई ग्रंथि के डिम्ब स्त्री उत्पन्न करते हैं। यह दोनो ओर के ग्रन्थिओं का कर्म भिन्न मानते हैं। एक ग्रंथि का काम लड़के उत्पन्न करने का है। और दूसरी ग्रंथि का काम लड़कियां उत्पन्न करना है। पिता का काम केवल डिम्ब को गर्भित कर देना हैं। इस प्रकार शुक्राणु का कार्य केवल यह है कि वह डिम्ब को इस प्रकार उत्तेजित करदे कि वह वृद्धि करने लगे।

पहले कहा जा चुका है कि जिस समय कन्या उत्पन्न होती है तो उसके डिम्ब ग्रन्थिमेंउपस्थित होते हैं। जन्म के पूर्व ही ग्रन्थि में सब डिम्ब रहते हैं। जन्म के पश्चात् जीवन में कोई नया डिम्ब नहीं बनता। केवल वही डिम्ब जो पहले से वहां पर रहते हैं, परिपक्व होते रहते हैं। जन्म के समय प्रत्येक ग्रन्थि में कोई ७०,००० डिम्ब होते हैं। समय २ पर डिम्ब परिपक्व होकर मासिक स्राव के समय पर ग्रंथि से प्रनाली में आते हैं बहुत से डिम्ब आयु पर्यन्त परिपक्व नहीं होते।

एक और बात जो ध्यान देने योग्य है और बहुत से लेखकों ने जिस को लिखा है वह यह है कि दाहनी ओर की ग्रंथि,बाईं ग्रन्थि से कुछ बड़ी होती हैं। मिस्टर डौसन के अनुसार दाहनी ग्रंथि के डिम्ब से पुत्र और बाई ग्रन्थि के डिम्ब से पुत्री होती है, इस प्रकार लड़कियों के अपेक्षासेन अधिक लड़को का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है, क्योकि दाहनी ग्रन्थि ही बाईं से बड़ी है, इस से अनुमान किया जा सकता हैं कि उस में डिम्ब भी अवश्य ही अधिक होते हैं। मिस्टर डौस अधिक लड़कों के उत्पन्न होने का यही का बताते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार यदि एक मासिक स्राव में एक ग्रन्थि से डिम्ब आता है, तो दूसरे स्राव में दूसरी ग्रन्थि डिम्ब भेजती है, दोनों ग्रन्थियां बारी २ से काम करती हैं। बहुत से अन्वेषण और

प्रयोगों द्वारा इस मत का समर्थन किया गया है, इस प्रकार इस मत के अनुसार एक मास के गर्भ से लड़का होगा और दूसरे मास के गर्भ से लड़की सिद्धान्त कर्त्ता इस बात को बड़े जोर के साथ कहता हैं, कि सारे जीवन भर यह चक्र चलता है। मासिक स्राव में यदि दाहिनीं ग्रंथि से डिम्ब आता है तो उसके गर्भ से लड़का होगा और दूसरे मास में दूसरी ओर की ग्रंथि से जो डिम्ब आयेगा, उससे कन्या उत्पन्न होगी।

इसी सिद्धान्त का आधार रखते हुये मिस्टर डौसन का कहना है कि हमको यदि प्रथम संन्तान की जाति मालूम हो और उसका जन्म दिवस और तिथि का पता हो, तो भावी संतान की जाति सहज में बताई जा सकती हैं। स्त्रियों को अधिकतर मासिक स्राव २८ दिन पर होता हैं इस प्रकार वर्ष भर के ५२ सप्ताहों में १३ मासिक स्राव होते हैं। जिनका मासिक काल कम होता हैं, उनको अधिक बार मासिक स्राव होता हैं। ऐसी दशा में मासिक काल मालूमहोने सेमासिक स्राव की संख्या सहज में निकाली जा सकती है।

यदि हम को उत्पन्न होने वाले बच्चे की जाति मालूम करनी है तो अंतिम बार जन्मे हुये बच्चे का जन्म दिवस जानना आवश्यक हैं। साधारण तया स्त्रियों का गर्भ काल २८० दिन अथवा ४० सप्ताह पूर्व का दिन मालूम करलें तो हमें वह दिन मालूम हो जायगा जब उस बच्चे कोउत्पन्न करने वाले डिम्बका गर्भाधान हुआ था। यदि यह बच्चा लड़का है। तो ४० सप्ताह पूर्व ग्रंथि से आने वाले डिम्ब दाहिनी ग्रन्थि से आया था, और वह पुरुष डिम्ब था। अतएव इस स्राव से अब आगे की ओर गिरना चाहिये, और इसी आधार पर, कि एक मास में एक ग्रंथि से, और दूसरे मास में दूसरीं ग्रंथि से डिम्ब आताहै, और दाहिनी ग्रंथि का पुरुष और बाई का स्त्रीं डिम्ब होता हैं। उस समय तक गिनते हुये चले जाना चाहिये, जब तक कि हम उत्पन्न होने वाले बच्चे के संभव जन्म दिवस से ४० सप्ताह पूर्व के मासिक स्राव पर पहुंच जावें, अर्थात् यदि हमारे हिसाब के अनुसार २० दिसम्बर को बच्चे का जन्म होना है, तो हमको २० दिसम्बर के ४० सप्ताह पूर्व वाले मासिक स्राव का पता लगाना चाहिये, और देखना चाहिये, कि इस स्राव में कौन सा डिम्ब आया है। बस, भावी संतान की वहीजाति होगी इस गणना में प्रत्येक दिसम्बर और जनवरी के बीच में एक स्राव का अधिक हिसाब लगा देना चाहिये।

इस प्रकार यह विदित होगा कि यदिएक वर्ष के अक्टूबर या दिसम्बर मास का गर्भ लड़का हैं, तो दूसरे वर्ष के उसी मास का गर्भ लड़की होगी, क्योंकि हमको तेरह मासिक स्राव का हिसाब लगाना पड़ता हैं। इस कारण जिस मास में किसी स्त्री के एक बच्चा हुआ है। उसी मास में दूसरे वर्ष में दूसरी जाति का बच्चा उत्पन्न होगा, मिस्टर डौसन इस गणना को बिलकुल सच मानते हैं। उनके अनुसार इस में त्रुटि होने की कोई संभावना नही है, किन्तु दूसरे वैज्ञानिक लोग इसको संदेह की दृष्टि से देखते है। अभी तक यह सिद्धान्त भी उसी अवस्था मे हैं जिसमें कई दूसरे हैं।

इस सिद्धान्तके समर्थन में डौसन महाशय ने अनेक उदारण लिखे है, जहाँ उनकी गणना के अनुसार परिश्रम ठीक निकले है क्वीन विक्टोरिया Queen Victoria के परिवार का उन्होंने उदारण दिया हैं। प्रथम संतान प्रिंसेस विक्टोरिया जन्म दिवस २१ नम्बर १८४०। दूसरी सन्तान किंगएडवर्ड, जन्म दिवस ९ नवम्बर १८४१।

ड्यूक आफ एडिनबरा का परिवार:

प्रथम संतान— पुत्र— जन्मदिन—अक्टूबर १८७४ दूसरी— पुत्री— ,, अक्टूबर १८७५—

ड्यूक आफ के नाट का परिवार—

प्रथम संतान–पुत्री–जन्म दिन जनवरी१८८२

किन्तु यदि बच्चा तीसरे वर्ष उसी मास में होगा। तो उसकी जाति भी वही होगी। जो प्रथम वर्ष में उत्पन्न हुये बच्चे की जाति थी। साधारणतया इस प्रकार भी हिसाब लगाते हैं, कि अन्तिम बच्चे के जन्म मास से गिनना आरम्भ करके उत्पन्न होने वाले बच्चे के जन्म लेने के मास तक गिनते हैं। उससे बच्चे की जाति का पता लग जाता हैं। किन्तु मिस्टर डौसन के अनुसार यह गणना उतनी ठीक नहीं होती। जितनी कि मासिक स्राव के अनुसार की गई गणना होती है इन महाशय ने अपने पक्ष में बहुत से उदाहरण दिये है। जिन में से निम्न लिखित उदाहरण विशेष हैं

रूसके अंतिम जार के परिवार में जारीनासे निम्न लिखित बच्चे उत्पन्न हुये

Princess olga प्रिंसेज ओलगा जन्म दिवस १५ नम्बर १८९५

Princess Totiona प्रिंसेज टोटियाना जन्म दिवस १० जून १८९७,

princess Mare (प्रिंसेज़ मेरी जन्म दिवस २६ जून १८९९।

princess Anastasia (प्रिंसेज़ एनेस्टीजिया) जन्म दिन १८ जून १९०१।

prince Alexis (प्रिंसेज एलेक्सिज़) जन्म दिन १२ अगस्त १९०४।

इस प्रकार स्पेन के राजघराने का भी उदाहरण दिया गया है:—

1–prince of Asturias पुत्र जन्मदिन १० मई १९०७।

2–prince of jaine पुत्र जन्मदिन २३ जून १९०८।

3–princess Beatrice पुत्री जन्मदिन २२ जून १९०९।

4–मृत बच्चा पुत्र जन्मदिन २१ मई १९१०

इस बच्चे के उत्पन्न होने को जून सन १९१० में जून आशा थी।

5–qrincess Maria पुत्री जन्मदिन १२ दिसम्बर १९११।

6-Prince juan पुत्र जन्मदिन २० जून १९१३

7–princeGouzale पुत्र जन्मदिन २४ अक्टूबर १९१४।

मिस्टर डौसन के अनुसार यह गणना उन बच्चों के सम्बन्ध में है जो समय से पूर्व ही जन्म लेते हैं, प्रायः ठीक नहीं होती हैं, किन्तु यदि बच्चा २ मास पूर्व जन्म लेगा, तो गणना के अनुसार निकाली हुई जाति ठीक होग। यदि बच्चा

केवल १ मास पूर्व ज़न्म लेगा तो वह ठीक नहीं होगी। इसके अतिरिक्त दूसरी बात जिसका संतान की जाति मालूम करनेपर प्रभाव पड़ता है, यह माता का मासिकस्राव हैं। किन्हीं स्त्रियों के स्राव २४ या २५ वें दिन हो उठता है। किन्हीं को २८ वें दिन होता है। किसी २ को ३० वें दिन तक होते देखा जाता हैं। इस प्रकार वर्ष भर में मासिक स्रावों की संख्या में बहुत अन्तर पड़ सकता है। गणना करते समय इन सब बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

किसी स्त्री और पुरुष को आगामी संतान की जाति बताने से पूर्व निम्न लिखित प्रश्नों का उत्तर जान लेना चाहिये।

१—मासिक धर्म कितने दिन पर होता है?

२—प्रत्येक बार स्राव कितने दिन तक रहता है?

३—क्या उनमें कभी गड़बड़ी भी हो जाती है।

४—पिछला बच्चा कौन सी तारीख को ज़न्मा था? वर्ष महीना और तारीख सब मालूम होना चाहिये।

५—बच्चा लड़का था या लड़की?

६—वह उचित समय के पूर्व अथवा उसके पश्चात् जन्मा था। अथवा उसका जन्म ठीक समय पर हुआ था? यदि उसने कुछ दिन थोड़े या अधिक लिये तो वह कितने दिन थे?

७—कितने दिन तक बच्चे को दुग्ध पिलाया गया था?

८—अंतिम प्रसव के कितने दिन पश्चात् मासिक धर्म आरम्भ हुआ था?

९—यदि हो सके तो अंतिम बच्चे के जन्म पश्चात् सब मासिक स्रावों को तारीख़ मालूम कर लेनी चाहिये।

१०— अगले स्राव की तारीख।

११—अंतिम बच्चे के जन्म के पश्चात् क्या कोई गर्भ गिरा?

१२—दूसरे बच्चे के जन्म की तारीख़ और उनकी जाति।

मिस्टर डौनसन का कथन है, कि इन सब बातों का ज्ञान प्राप्त करके भावी बच्चे को ठीक जाति के बताने में उनको कभी असफलता नहीं हुई है, वह कहते हैं, कि उनका कथन ९७प्रतिशत सदा ठीक निकला है, ३ प्रतिशत की त्रुटि इस कारण होतीहै, कि उनको सारी आवश्यक सूचना ठीक २ नहीं मिलती। बहुधा मातायें व पिता उपर्युक्त प्रश्न का उचित उत्तर नहीं दे पाते, और कभी २ उनको गलत सूचना मिल जाती हैं,

अभी तक किसी वैज्ञानिक ने डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब को निकालते हुऐ नहीं देखा हैं, और न शुक्राणु द्वारा उसका गर्भाधान होते ही देखा हैं,। इसकारण इतने प्रकार के अनुमान किये जाते हैं। छोटे जंतुओं में यह दूसरी गणना देखी जा चुकी है, और उसी के ऊपर मनुष्य में भी होने वाली घटनाओं का अनुमान किया जा सकता है।

यह समझा जाता है, कि जैसा वहां होता है, वैसा ही मनुष्य में होता होगा। किन्तु कौन कह सकता है, कि मनुष्य के डिम्ब और शुक्राणु में दूसरे पशुओं के डिम्ब और शुक्राणुओं से कुछ भिन्नता नहीं होती हैं, भिन्नता कुछ न कुछ अव-

श्य हैं। मनुष्य के डिम्ब और शुक्राणु के मेल से वही मनुष्य उत्पन्न होते हैं। और पशुओं के डिम्ब और शुक्राणु के मेलसे पशु उत्पन्न होते हैं। जिनके वह डिम्ब शुक्राणु हैं। उनसे दूसरे पशु नहीं उत्पन्न होते। मनुष्य में किसी डिम्ब और शुक्राणु से लड़का उत्पन्न होता है, किन्तु दूसरे से लड़की होती है, इससे मालूम होता हैं, कि किसी प्रकार का अंतर अवश्य है, किन्तु अभी तक हम उस अंतर को नहीं जान सके हैं। सम्भव है, वह दिन शीघ्र ही आजावे, जब हमें वह अंतर दीखने लगे और डिम्ब के परिपक्व होने को भी हम देख सकें ऐसा होने पर इच्छित जाति का बच्चा उत्पन्न करना कुछ कठिन न होगा।

छोटे पशुओं और वैज्ञानिकों ने जो अन्वेषण किये हैं, उनके परिणाम इन सिद्धान्तों से भिन्न हैं। उनके अनुसार जाति का निश्चय करना किसी प्रकार की बाह्य दशा पर निर्भर नहीं करता, भोजन इत्यादि के घटाने बढ़ाने व मातापिता की आयु इत्यादि का प्रभाव चाहे कुछ लड़के और लड़कियों के संख्या केनिष्पत्ति पर पड़े, किन्तु स्वयं बच्चे की जाति बनाने में उन दशाओं का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। आज कल वैज्ञानिक लोग उत्पादक सेलों में क्रोमोसोमो ChromoSomte को मानते हैं, यह क्रोमोसोम सूक्ष्म दर्शक यंत्र के द्वारा डंडे की भांति दिखाई देते हैं। प्रत्येक जाति में उनकी एक विशेष संख्या होती है पुरुष के उत्पादक सेलो में इनकी संख्या ४७ होती हैं। जिस समय शुक्राणु अपने पूर्वज सेलों से, जिनको Spermotocyte कहते हैं, बनते हैं। उस समय पूर्वज सेलों के परिपक्वीकरण में इन क्रोमो सोम के प्रबन्ध में कुछ परिवर्तन होता है, ४७ क्रोमोसोम २३ जोड़ों में एकत्रित हो जाते हैं, और एक क्रोमोसोम अलग रह जाता है, जिसको×—क्रोमोसोम कहते हैं, जिस समय सेलों के शुक्राणु बनते हैं। तो यह जोड़े भिन्न २ होकर दोनों शुक्राणुओं में चले जाते हैं, क्यों कि एक पूर्वज सेल से केवल दो ही शुक्राणु बनते हैं। इस प्रकार प्रत्येक शुक्राणु में २३ कोमो सोम हो जाते हैं। किन्तु वह× क्रोमोसोम केवल एक ही ही शुक्राणु में जाता है।

उधर डिम्ब में इस प्रकार का को×कोमो-सोमनहीं होता। उसके क्रोमोसोम विभाजित हो करपूर्वज सेलों से दोनों डिम्बों में समान संख्या में चले जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक डिम्ब में समान क्रोमों सोम रहते है, वैज्ञानिकों को प्रयोगों द्वारा यह मालूम हुआ है, कि कि जब + क्रोमोसोम वाला शुक्राणु डिम्ब से मिलता हैं, तो स्त्री जाति का बच्चा उत्पन्न होता है। किन्तु यदि दूसरे शुक्राणु का डिम्ब से संयोग होता हैं तो उससे लड़का उत्पन्न होता हैं।

यह प्रयोग छोटे श्रेणी के उन जन्तुओं पर किये है, जिनके जनक सेल पारदर्शी होते हैं। उन में देखी हुई घटनाओं ही पर मनुष्य के संबंध में भी सिद्धान्त निर्धारित किये गये है। साधारणतया विद्वान यही मानते हैं। कि एक डिम्ब के लिये केवल एक ही शुक्राणु की आवश्यकता होती हैं। एक शुक्राणु से संयोग होते ही उसका गर्भाधान हो जाता है। किन्तु यह एक गूढ़ समस्या है, कि जहाँ एक ही शुक्राणु से काम

चल सकता था, वहाँ प्रकृति ने इतना फिजूलखर्चा क्यों दिखाई है। सारे स्थानों में तो प्रकृतिअत्यन्त कंजूसी के साथ काम लेती है, किन्तु यहाँ इतनी दानी क्यों बन गई है ? जहां केवल एक का काम है वहाँ लाखों का खर्च करना तो बुद्धिमत्ता नहीं कहीं जा सकती। किन्तु वास्तव में शुक्राणु और डिम्ब का गर्भाधान करने के लिये केवल एक ही शुक्राणु काफी हो किन्तु इससे विरुद्ध होने की भी संभावना हो सकती हैं। वास्तव में इस बात का पूर्णतया निपटारा तभी हो सकता है, जब शुक्राणु और डिम्ब के संयोग को देखा जाय।

मिस्टर डौसन अपने सिद्धान्त में यहाँ तक विश्वास रखते है। कि उनका कथन हैं कि मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार संतान उत्पन्न कर सकता है। वह चाहें तो पुत्र हो, चाहें पुत्री हो। वह कहते है कि बहुत से लोगों ने उनकी सलाह से काम किया है और संतोष जनक परिणाम हुये हैं। नहीं कहा जा सकता कि इन महाशय का दावा कहां तक ठीक हैं। यद्यपि इनको अभी तक मानने के लिये पूर्णतया प्रस्तुत नहीं है।

जाति का यह प्रश्न एक महान गूढ़ समस्या हैं, जिस दिन यह प्रश्न हल हो जायगा, और यह मालूम हो जायगा कि अमुक कारणों से पुत्र व पुत्री उत्पन्न होते हैं और उन कारणों को वश में करने का साधन भी मनुष्य के हाथ मेंआजायगा, उससमय कदाचित् बड़ी ही हलचल मच जायगी, प्रत्येक मनुष्य पुत्र ही उत्पन्न करना चाहेगा, पुत्री कोई भी उत्पन्न न करेगा। ऐसा होना असंभव प्रतीत होता हैं, क्योंकि प्रकृतिके नियम अटल हैं, और उसका चक्र अटूट है।

विदग्ध वैद्य के अनुभूत योग

चटपटी वाणी को बनाता वज्र धातु तत्व,
मार के कचूमर सत्व रोगी की निकालता।
उष्णनिःश्वासों से उनके कर भानुपाक,
फोस बड़ी बड़ी लेकेस्थालीपाक मानता॥
प्राणाभिसरों को निन्दा भावना लगाता वहां,
अपने अज्ञान अग्नि पुटपाक डालता।
ऐसे तैयार भस्म में कर अनुपान एक,
आडम्बर, योग, रोग कोसों दूर भागता॥

मन्मथ

अस्वाभाविक प्रसव

[Ab. Normal or Difficultilabaur]

(ले०—कविराज रामदासजी, वैद्य भूषण)

प्रकृति के नियमानुसार बच्चा सिर के बल जन्म लेता है, किन्तु कभी कभी गर्भिणी की अनियमित चेष्टा तथा कुण्ठित वायु से गर्भ तिरछा टेढ़ा हो जाया करता है। यह स्थिति बहुत भयङ्कर मानी जाती है, ऐसे समय पर्याप्त धैर्य व सावधानता की आवश्यकता होती है। आजकल १६ प्रति शत भ्रूणों की स्थिति स्वाभाविक मानी जाती हैं. अर्थात् शिर नीचे चूतड़ ऊपर, और शिर के बल उत्पन्न होते हैं।

गर्भाशय में गर्भ की स्थिति

साधारणतया गर्भाशय में गर्भ थोड़ी सी जगह में गर्दन पर सिर को सिकोड़, तथा हाथ पैरों को सिकोड़ कर छोटी गठरी की तरह पड़ा रहता है, गर्भकी इस स्थिति को साधारण स्थिति या गर्भासन Normal attituve of flexon कहते हैं। गर्भाशय में स्थित गर्भ की ठोड़ी छाती पर लगी होती है दोनों भुजा छाती पर संलग्न रहती हैं तथा मुंह हाथों से ढका हुआ सा प्रतीत होता है, उदर पर जांघें मुड़ी रहती हैं, टांगों पर पांव मुड़े होते हैं।

रीढ़ या पृष्ठ वंश भी धनुषवत् कुछ आगे को झुका होता है गर्भ की इस स्थिति या आसन को साधारण स्थिति या स्वाभाविक स्थिति Normal attituve कहते हैं। स्वाभाविकतया बच्चे का शिर नीचे की तरफ़ छाती पर इस ढंग से झुका रहता है। जिस से पैदा होने में कोई कष्ट नहीं होता। किन्तु कभी २ इस स्थिति में खराबी आ जाती है परिणाम स्वरूप गर्भ के शिर का वक्ष स्थल पर कम झुकाव के कारण या पीछे को तरफ ज्यादा झुकाव के कारण, अपत्य मार्ग में रुकावट पैदा कर देता है।

कभी टांग कंधा या चूतड़ आदि के कारण गर्भ अपत्य मार्ग में फंस जाता है। एवं आयुर्वेद में ऐसे गर्भों की स्थिति को आठ प्रकार की संज्ञा दी हैं यथाः—

१—कोई पेट से। २—कोई मस्तक से।
३—विपरीत भाव से। ४—एक हाथ से।
५—कोई दोनों हाथों को बाहर निकाल कर।
६—कोई गर्भ तिरछा लेकर।
७—कोई मन्या नाड़ी के मुड़ाव से नीचे को गर्दन करने से।
८—कोई हाथ पैरों को ऊपर उठा कर शिर से योनि मार्ग को रोक देता हैं। या हाथ पैरों को बाहर निकाल देता है, और शरीर भीतर अटक जाता है इस तरह ऐसे गर्भों के उदय Presentation को अस्वाभाविक या कठिन प्रसव कहते हैं।

स्फिगुदय वा इस के भेद

चूतड़ के बल जो गर्भ उत्पन्न होता है, इस को स्फिगुदय Pelvic presentation गर्भ कहते

हैं, ऐसे गर्भ प्रायः १०० में ३ उत्पन्न होते हैं। स्फिगुदय गर्भ के २ भेद हो जाते हैं।

१-पूर्ण स्फिगुदयगर्भ Breech E feettogether

२-अपूर्ण स्फिगुदय गर्भ-

पूर्ण सिद्धान्त में चूतड़ और पैर आते हैं। अपूर्ण स्फिगुदय में खाली चूतड़ (Breech) एक या दोनों जानु घुटने (Knees) तथा एक या दोनों पैर (Feet) पूर्व दिखाई देते हैं।

पार्श्वोदय गर्भ

Transverse presentation

इसमें धड़ का कोई भाग पूर्व दिखाई दिया जा सकता है। प्रायः एक कन्धा या भुजा अंसकूट दिखाई देता हैं। ३०० प्रसवों हैं। १ बार ऐसी स्थिति होती है। मुख्यतया इन अस्वाभाविक गर्भों की स्थिति का कारण निम्नोक्त ६ कारणों पर निर्भर है—

क—रोग से।

ख—अधिक गर्भोदक से।

ग—एकाधिक गर्भों सेMul tiplepregn-ancils

घ—कई बार की प्रजाता का गर्भाशय plu-ri parousuterns होने से।

ङ—गुल्मों से।

च—संकुचित श्रोणि चक्रों Contracted polvesसे

गर्भाशय में पार्श्वोदयादि गर्भ के स्थान

position

गर्भ के एक अंग या अधिक अंगों का माता के शरीर की मध्य रेखा के सम्बन्ध से गर्भाशय में गर्भ का स्थान जाना जाता है।

जैसे एक ध्रुव के बल आने वाले गर्भ palar presentartion का हाल लिखने से गर्भ के पृष्ठ भाग को स्थिर किया जाता हैं, और माता के मध्य शरीर की रेखा के दाहिने बाँये सामने या पीछे की तरफ गर्भ कीपीठ होने से इन ध्रुवीय गर्भोदयों के ४-४ भेद या स्थान हो जाते हैं।

पार्श्वोदय गर्भ के ४ स्थान

(Transverse presentation)

प्रथम स्थान (Firstposition) इसमें गर्भ शिर माता की मध्य रेखा के बांई तरफ, और पीठ सामने की तरफ होती है।

द्वितीय स्थान (Second position)-इसमें शिर मध्य रेखा के दाहिनी तरफ और पीठ सामने की तरफ होती है।

तृतीय स्थान (Third position) इसमें शिर मध्य रेखा के दाहिनी तरफ, और पीठ पीछे की तरफ होती है,

चतुर्थ स्थान (Fourth position) इसमें गर्भ की पीठ पीछे की तरफ रहता है।

स्फिगुदय

Pelvic presentation के४ स्थान होतेहैं प्रथमावस्था (First position) में गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा से बांई तरफ और सामने की ओर होती है।

द्वितीयावस्था (Second position) में गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा को दाहिनी और पीछे की ओर होती है।

तृतीयावस्था (Third position) में गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा के दांई तरफ और पीछे की ओर होती हैं।

चतुर्थावस्था (Fourth position) में गर्भ की पीठ माता की मध्य रेखा के बांईं तरफ, और पीछे की ओर होती है,

उपचार

अवस्था विशेष से इसके उपचार होते हैं। चूँकि यह शल्य साध्य व्याधि है। आयुर्वेद ऋषियों ने मन्त्रोपचार का भी वर्णन किया है, किन्तु आज कल मन्त्रोपचार निष्फल ही है, यह किसी कारण से हो सकता है, मन्त्र तन्त्रों की असफलता से यह शास्त्र लुप्त प्राय हो गया है, अवस्था भेद से अस्वाभाविक गर्भों के उपचार निम्नोक्त विधान पर निर्भर हैं। यथा—

उत्कर्षणम्—अधोगतस्य ऊर्ध्वी करणम्। अपकर्षणम्-ऊर्ध्व गतस्याधः कर्षणम् स्थानापवर्तनम् स्थानेषु सक्तस्य गर्भशय्यात उत्तानस्यात वाङ्मुखी करणम्॥

उद्वर्तनम्—अवाङ्मुखस्योत्तानी करणम्। गर्भशय्यायां तिर्यगादि स्थितस्योत्तानस्य अधो व्यावृत्या स्थापनम्॥

ऊर्ध्वस्य कस्य चिद्गर्भस्य उत्कर्तनम् इत्यादयः सन्त्येते उपचाराः।

शुभ संकल्प

होते जन्म अनेकों निशिदिन, भूतल पर, हे दया निधान।
किन्तु स्वस्थता की लहरों में, कोई ही पलता मतिमान॥
भार स्वरूप देश की छाती, पर नित ताण्डव होता है॥
कोई लाल मातृ बंधन को, कभी तोड़ न पाता है!
कभी नहीं, वह दीन यथावत, आता है, औ जाता है।
व्याधि उदधि के गोते में, अपने जीवन को खोता है॥
वैद्य बंधुगण! धातृ निरीक्षण, का होता यदि सुन्दर ज्ञान।
स्वास्थ्य सरित तरंग में, उठता होता अनुपम मंगल गान॥
किन्तु आज खोकर बैठे हो, कैसे जच्चा औ बच्चा॥
मुसुकाते दिखलाई देते, है, विज्ञान अगर कच्चा॥
है भविष्य जिस पर भारत का, येही निर्बल हैं प्यारे॥
कैसे विपदा में माता के, प्राण लुटावें वे प्यारे॥
सजग हो उठो अतः वैद्यगण! आवो चयन करें सब अंग।
जिससे नत मस्तक ऊँचा हो, स्वास्थ्य उदधि में उठें तरंग॥

एक दुःखित सेवक

यमल प्रसव या अधिक प्रसव

[ले०—आयुर्वेदाचार्य पं० उमापति पाण्डेय वैद्यराज]

आज यह देश के सौभाग्य का शुभाचिह्न है कि भारत में चारों ओर उन्नति के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं, सहस्रों वर्षों की स्वप्नावस्था के पश्चात् जागृतावस्था आई है। देशोद्धार तथा जात्युद्धार की आकांक्षा से प्रत्येकभारत वासी का चित्त प्रफुल्लित तथा आह्लादित हो रहा है। और उनकी मुरझाई हुई आशा लता पुनः लहलहा उठी है। कार्यकर्ता प्रत्येक क्षेत्र में उतर पड़े हैं।

कुछ लोग देश की उन्नति, इसकी आर्थिक तथा राजनीतिक दशा ही पर निर्भर मानते हैं। और कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो बिना सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के भारत की उन्नति दुराशा मात्र समझते हैं। विद्वानों का विचार है, कि बिना धार्मिक ज्ञान को प्राप्त किये, तथा समझ के गूढ़ तत्वों को समझे हुये मनुष्य किसी महान कार्य में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। मनुष्य के कार्य उसके विचारों पर निर्भर करते हैं। तथा उसके विचार उसके धार्मिक ज्ञान तथा अंतरात्मा द्वारा संचारित होते हैं। क्योंकि मनुष्य सामाजिक जीव है, इस कारण उसके आतिरिक विचार समाज विशेष के प्रचिलित विचारों तथा भावों के प्रतिबिम्बित होते हैं। एवं राष्ट्र निर्माण के प्रशाक कार्य तथा सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये सामाजिक सुसंगठन के तत्वों के समझने की चेष्टा करना अत्यावश्यक हैं, क्योंकि जब तक समाज सत्य तथा न्याय की नींवपर स्थापित नहीं किया जाता, उस के कार्य स्वभावतया दृढ़ तथा सिद्धान्तानुकूल होने की अपेक्षा स्वार्थमय तथा अंधपरंपरा के वशीभूत हो उन्नति के मार्ग को सुगम बनाने की अपेक्षा कंटकाकीर्ण कर देंगे।

यहाँ पर हम समाजशास्त्र के अन्य विषयों पर विचार न कर उसके अंग मात्र गर्भमें एक ही साथ दो या दो से अधिक इत्यादि बच्चे कैसे और क्यों प्रादुर्भूत होते हैं। इसी पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करना चाहते हैं। अस्तु कामवासना ही सृष्टि की जननी है, इसी पर सारी सृष्टि का चक्र चल रहा हैं, प्रकृति ने पहले स्त्री पुरुष की रचना करके ही सृष्टि का आयोजन किया है। स्त्री पुरुष के संयोग से ही संतानोत्पत्ति की आशा होती हैं मानव समाज के विकास ने ही विवाह प्रथा को जन्म दिया है। तरुण तरुणी के विवाह में संतानोत्पत्ति का गूढ़ उद्देश्य अन्तर्हित रहता है।

अपनी जीवन शृंखला को भविष्य में संबद्ध रखने की प्रबल इच्छा सभी प्राणियों में रहती है। मनुष्य तो एक सामाजिक प्राणी हैं। उसकी संतानेच्छा सहज और अनिवार्य है। दम्पति पारस्परिक प्रेम के कारण संतान के रूप में उस स्वर्गीय, सर्वोत्कृष्ट एवं पवित्र उपहार को एक दूसरे के प्रति अर्पण करते हैं। जिसमें उन्हीं के समान

अपने अस्तित्व से नवीन सृष्टि क्रम चलाने की ईश्वरीय शक्ति विद्यमान रहती हैं, दम्पति का संतानके लिये इच्छुक होना, आवश्यक और स्वाभाविक है।

स्त्री प्रसंग के दो उद्देश्य हैं। १– विषयानन्द और २– सन्तान। परन्तु यहांपर विषयानन्द को छोड़ कर रति क्रिया के मुख्य उद्देश्य सन्तान का ही सूक्ष्म वर्णन किया जाता हैं। कि गर्भाशय में दो जीव कैसे और किस क्रिया द्वारा प्रादुर्भूत होते हैं स्त्री संभोग का अर्थ गर्भ धारण हैं, रज और वीर्य के संयोग से ही गर्भ धारण होता हैं। किन्तु रति क्रिया सर्वदा गर्भधारण का कारण नहीं होती,कुछ लोगों का मत है कि पुरुष का वीर्य स्त्री के रज युक्त विकसित डिम्ब में मिलने से गर्भ धारण होता है, पर यह ठीक नहीं,वास्तव में पुरुष वीर्य का एक अणु मात्र स्त्री रज के साथ गर्भाशय में प्रवेश करने से गर्भाधान होता हैं। किन्तु वीर्य कीटाणु का गर्भाशय में सम्यक् सन्निवेश होना आवश्यक हैं। वीर्य के एक दम निकल जाने पर कभी गर्भ धारण नहीं होता। पुष्ट एवं परिपक्व रज वीर्य का संमिलन ही गर्भाधान का कारण होता हैं। नियमित तथा स्वाभाविक रूप से स्त्री संभोग के समय पुरुष का वीर्य स्खलित होकर,स्त्री के काममन्दिर में प्रवेश करता हैं। सहवास के समय निकले हुये शुक्राणु योनिडिम्ब और गर्भाशय में कई दिन तक जीवित रह सकता है। और गर्भाशयसे धीरे २ येडिम्ब प्रणालीमें पहुंचते हैं, शुक्राणु को डिम्ब से विशेष अनुकर्षण होता है। इस कारण जिस डिम्बप्रणाली में डिम्ब होता हैं, उसी में शुक्राणु घुसते हैं। केवल प्रबल शुक्राणु ही डिम्ब तक पहुंच पाते हैं।

पुरुष के वीर्य में अनेक कीटाणु होते हैं, और प्रत्येक में उत्पादन शक्ति वर्तमान रहती है, एक बार पुरुष के वीर्य स्खलन से करोड़ों कीट उत्पन्न होते हैं। परन्तु स्त्री में सब के धारण करने की शक्ति नहीं होती। गर्भाधान के लिये केवल एक ही शुक्राणु की आवश्यकता समझी जाती है। शुक्राणु और डिम्ब के संयोग। को ही गर्भाधान कहते हैं।

स्त्री पुरुष को प्रत्येक मैथुन क्रिया में शुक्र गर्भाशय में नहीं पहुंच पाता। वह बहुधा योनि के बाहर निकल आता है, और जब शुक्र भीतर ही रुक जावे,तभी गर्भाधान हो सकता है। शुक्र का थोड़ा सा भाग भी भीतर रह जाने से गर्भ स्थिति हो जाती है,शुक्र कीटाणुओं के कई दिनों तक जीवित रहने से मैथुन से कई दिन पीछे भी गर्भाधान हो सकता हैं। किन्तु रोग केकारण स्त्री की योनिमें अम्लत्व रहने से गर्भ स्थिति नहीं हो सकती प्रायः एक शुक्राणु का एक ही डिम्ब से संयोग होता हैं, अतः स्त्री एक बार एक ही बच्चा पैदा करती हैं।

कभी २ एक ही साथ या कुछ दिनों के अनन्तर से दो शुक्राणुओं का दो डिम्बों से संयोग हो जाता है उस अवस्था में दो गर्भ साथ ही साथ उत्पन्न होते हैं। और कभी कभी दो शुक्राणुओं का एक ही डिम्ब से संयोग हो जाता है, ऐसे गर्भ से जो बच्चा पैदा होता है, उसके दो शरीर आपस में जुड़े रहते हैं। ऐसे बालक प्रायः अल्प जीवों की तरह होते हैं, इसी को सुश्रुताचार्य ने अपनी सुश्रुतसंहिता में शारीरिकद्वि० अ० २५ श्लोक में यों दर्शाया है। कि:—

"बीजेऽन्तर वायुना भिन्ने द्वौजीवौकुक्षि माग-तौयमा वित्यभिधीयेते धर्मेतर पुरस्सरावित्यादि।"

अर्थात्-शरीरस्थ वायु स्त्री पुरुष के संयोग के समय वहां व्याप्त होकर वीर्य को भिन्न भिन्न अर्थात् दो विभागों में जब विभक्त कर देता हैं, तो दो गर्भ साथ ही साथ दृष्टि गोचर होते हैं। और इस विषय को इसी तरह से चरकादि ग्रन्थों में स्पष्टी करण किया गया हैं। और इसका मुख्य कारण एक यह भी है कि हमारे प्राचीन भारतीय आचार्यों एवं ऋषि महर्षियों ने जिस प्रकार मानव समाज के हितार्थ धर्म कर्म का निर्माण किया है, उसी प्रकार उन्होंने गर्भाधान संस्कार पर भी बहुत कुछ लिखा हैं। आज कल हमारे देश वान्धव गर्भाधान संस्कार को भूल गये हैं और सृष्टि की जन्मदात्री नारी ज्योति को स्वकाम वासना की निर्झरिणी बना डाले हैं।

आज कल लोग यह सुन कर आश्चर्य करते हैं कि स्त्री पुरुष मन चाही सन्तान पैदा कर सकते हैं। इसका मुख्य कारण यही हैं, कि इस युग में विषय वासना की प्रचुर अभिवृद्धि हो गई हैं, और इन कामान्ध पुरुषों ने गर्भाधान इत्यादि संस्कारों को मटियामेट कर डाला हैं अतः इस युग में तो साथ ही साथ दो चार इत्यादि बालकों की उत्पत्ति होना सम्भव हैं, क्योंकि सुश्रुत संहिता में जो 'बीजेऽन्तर वायुना' इत्यादि जो दर्शाया है, वह पूर्व युगों में जब धर्म नष्ट होता था, और अधर्म की वृद्धि होती थी, तो साथ ही साथ एवं यमज बालकों की उत्पत्ति दृष्टि गोचर होती थी क्योंकि 'धर्मेतरपुरस्सरौ' इत्यादि लेखों से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि अधर्म बढ़ने से ही ऐसा होता है। अर्थात् दो बालकों का साथ २ होना, और गर्भाधान संस्कारादि को भूल जाने से जैसे कि बीज बोने के पूर्व क्षेत्र का संस्कार किया जाता है, एवं सबल निर्बल बीज का विचार किया जाता है, उसी प्रकार गर्भाधान के लिये भी दम्पती को अपना संस्कार कर डालना चाहिये।

सृष्टि के प्रत्येक जीवधारी पशु पक्षी प्रकृति के नियम की ओर ध्यान रख कर अनुकूल ऋतु में ही समागम करते हैं। इस के विपरीत वे कभी आचरण नहीं करते, किन्तु मनुष्य जो प्रकृति की सृष्टि में सब से चतुर और सभ्य जीव माना जाता है। वह संभोग क्रिया में किसी नियम का अनुसरण नहीं करता। यही कारण है, कि आज उन की सन्तान दिन प्रति दिन क्षीण रोगी युग्मोत्पत्ति पर्व अल्पायु होती जा रही है।

आडम्बर योग

विद्या, वपु, बल, बुद्धि कुछ भी न होवे मित्र, कोई पर्वाह नहीं फैशन बनता हूं।
प्रेलुपट लाखों जिसपर निसार होते रहें, कोट पैण्ट, हैट टाई बाच को बंधता हूं॥
वैद्यों में डाक्टर अरु डाक्टरों में वैद्य का, सभीको दे धोका, चपर चट्टू बनाता हूं।
छाप २ स्तेहार निशदिन, बँटवाता मै तो, पोथे पेथियों को आज वैद्य कहलता हूं॥

"मन्मथ"

टेस्ट ट्यूब बेबीज [असंगज बालक]

[ले०—वैद्य कविराज श्री हरिकृष्णजी सहगल]

सन्तान रहित घर सूना होता है, सन्तान रहित माता पिता की गति नहीं होती। इसी लिये सन्तान का होना आवश्यक है, अंग्रेज़ी में एक कहावत है there is nogy without boy अर्थात बालक के बिना आनन्द ही नहीं, यह कारण है। कि शादी के बिना एक दो वर्षों के पश्चात् हो अगर सन्तान न हो, तो दाइयों हकीमों डाक्टरों के दरवाज़े खटखटाये जाते हैं, पीरों, फकीरों की मिन्नतें मानी जाती हैं। देवी देवताओं का पूजन आरम्भ होता है। गंडे तावीज़ धागों से नाता गांठा जाता हैं।

केवल इतने पर ही बस नहीं, भोले भाले मुख को निहारने के लिये बच्चों की तोतली २ बातों से दिल बहलाने के लिये सन्तान रहित माता पिता बहुत कुछ दे डालते हैं। पाठकों ने कई सन्तान रहित पुरुषों को कई शादियां करने, और पतिव्रता स्त्रियों को भी कुकर्म की भट्टी में जलते देखा होगा।

नैपोलियन बोनापार्ट एक वीर पुरुष, था वह फ्रांस का राजा था, उनको एक अति सुन्दर केन्थेराइन नाम की रानी थी, मगर वह बांझ थी सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थी, नैपोलियन बोनापार्ट नें केवल इसी से उसे छोड़ दिया। टर्की कमालपाशा एक वीर पुरुष है। उसने भी अपनी सुन्दर पतिभक्ता स्त्री को इसी लिये परित्याग किया है। क्यों कि उसकी स्त्री बांझ है। कहने का अभिप्राय यह है, कि सन्तान रहित माता पिता की आत्मा बहुत दुखी होती है,

सन्तान का न होना, व अधिक होना। व होकर मर जाना, यह सब बातें ईश्वर के आधीन समझी जाती हैं, कविवर "बजीदा" जो पंजाब के मशहूर शायर हो गुजरे हैं। एक स्थल पर कहते हैं।

इकला घर पुतर, पुतरां घर पोतरे।
इकनां घर धियां धियां घर दोहतरे॥
इकना घर होवे अकला, ओह वी जावे मर।
बजीदा कौन साइयें नूं आखें दूं जनहींताइं जकर॥

समझा जाता था, कि सन्तान रूपी फल का पाना पुरुष आधीन नहीं (अगरचे आयुर्वेद ऐसा नहीं मानता)यह दैव इच्छा पर निर्भर है। परन्तु अमरीका की लेडीडाक्टर सैमूरफ्रांसस ने एक नवीन अविष्कार किया हैं। एक यन्त्र की सहायता से पुरुष के वीर्य को लेकर स्त्री संग के बिना ही गर्भ तथा सन्तान से युक्त किया है।

लेडी डाक्टर फ्रासेससैमूर का कहना है, कि इस आविष्कार की सहायता से १०० सन्ताने न्यूयार्क में कुछ मांसों में ही उत्पन्न की जा चुकी हैं। और उनमें से १३ का श्रेय उसे ही प्राप्त है, न केवल व्याहिता स्त्रियां ही किन्तु दो क्वारी ल-

ड़कियां भी इसी आविष्कार की सहायता से बिना पति दर्शन व पुरुष संग के माताये बन चुकी हैं।

डाक्टर फ्रांसेससैमूर ने पहले पहल लारेन्स को मिस ऐस० लोरीसीला पर इस आविष्कार का प्रयोग किया। उक्त-मिस के आठ वर्षों से सन्तान न हुई थी, वह सन्तान पाने पर अपने आनन्द को छिपा न सकी, तथा इस आविष्कार की सूचना पत्रों में पहुंच गई। पत्राकारों के प्रति निधियों के भेंटे करने पर डाक्टर सैमूर ने उपरोक्त व्यान दिया। और बताया कि उसने शुद्ध वीर्य के लिये शुद्ध रक्त बेचने वाले मनुष्यों की लिष्ट में से मनुष्यों को छांटा। और उनकी शुद्ध वीर्य की३०० से ५०० रुपया तक कीमत दी हैं,

इस अभिनय आविष्कार ने अमरीका यूरोप में धूम मचा रक्खी है, लोगों और डाक्टरों के लिये एक नई और आश्चर्य जनक वस्तु प्राप्त हो गई हैं। परन्तु भारतीय ऋषियों के मस्तिष्क ने भी कभी इस का विशद विच्छेदन किया था।

डाक्टर नौरमाहैल जो कि इंग्लिस्तान के सरकारी जाति शोद्धलीग के प्रधान हैं। इनका कहना है। कि इंग्लिस्तान के सरकारी कर्मचारी इस प्रकार की कृत्रिम गर्भित स्त्रियों की सन्तान हैं तथा स्वर्गीय जरनैलऐरोष नें भी बहुत से ग्रहस्थों को इसी विधि द्वारा सन्तान से युक्त किया था।

पेरिस के प्रोफेसर चोनलूइस कहते हैं। कि यह कोई नवीन वस्तु नहीं। यह कृत्रिम गर्भ करने को विधिसैकड़ों वर्ष पहले से मालूमथी। पम्पाई (रोम) के खण्डहरों से इसी काम में प्रयुक्त होने वाली पिचकारियां मिली हैं। यूरोप के डाक्टरों को यह विधि ५० वर्षपूर्व मालूम थी। फ्रास में इसका प्रयोग केवल ब्याहता स्त्रियों पर किया जाता था।

डाक्टर ऐच० एस बाबा कहते हैं। कि गौओं और घोड़ियों पर इस विधि का प्रयोग बहुत काल से रहा हैं। और इसमें अधिकततर सफलता मिली है। पशुओं में पुरुष के तरीका से वीर्य ग्रहण नहीं किया जाता, किन्तु घोड़ी और घोड़े का संग करा कर पिचकारी जैसे एक यंत्र से वीर्य को इकट्ठा किया जाता हैं। तथा उसका थोड़ा२ भाग गर्भित होने वाली घोड़ियों में जो कि पहले से त्यार रखी होती हैं। प्राविष्ट कर किया जाता है। इसमें इस विधि को बहुत अपनाया गया हैं। अगरचे भारत वर्ष में इसका प्रयोग नहीं हुआ। डाक्टर ऐच० ऐस० बाबा के कथन का भारतवर्ष इस का प्रयोग नहीं हुआ, कहाँ तक ठीक है, अब हम इस पर विचार करते है। आयुर्वेदिकग्रंथों में निम्न लिखित विधि बस्ति निर्माण की लिखी है।

सुवर्णं रूप्यत्रपुताम्ररीति,
कांस्याय सास्थिद्रमवेणुदन्तैः।
नलै विषाणैभणि भिश्च तैस्तैः,
कार्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानिः॥
यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठकाभ्यां,
मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्तिः।
ऋजूनि गोपुच्छ समाकृतीनि,
श्लक्ष्णानिच स्युर्गुडिका मुखानि॥
स्यात् कर्णिकैकात्र चतुर्थ भागे,
मूलाश्रिते बस्ति निबन्धने द्वे।

जारद्गवो माहिष हारिणै वा,
स्याच्छौकरो वस्ति रजस्य वापि ॥
"चक्रदत्त"

आप देखें ? क्या अच्छा वस्ति निर्माण का वर्णन किया गया हैं। अगर रोम के पम्पाई नगर के खण्डहरों से पिचकारियों अर्थात् वस्तियों के प्राप्त होने से, पैरिस के प्रोफेसर जीन लूइस हजारों वर्ष पूर्व "टैस्टट्यूब बेबीज" के होने की सम्भावना कर सकते हैं, तो वैद्य भी निश्चय से उपरोक्त वस्ति निर्माण प्रकरण को सामने रखते हुये कह सकते हैं, कि टैस्ट ट्यूब बेबीज़ की थ्यूरी वैद्यों को मालूम थी, चक्र दत्त में एक जगह पाठ मिलता हैं।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्।
वस्त्यभ्यङ्ग परिषेक प्रलेपाः पिचु धारणम् ॥

अर्थात्:—योनि व्यापद नामक रोगों में विशेषतया वात नाशन चिकित्सा, उत्तरवस्ति अभ्यङ्ग परिषेक, प्रलेप तथा तैल आदि सिक्त तूल अथवा वस्त्रखण्ड का धारण करना अति प्रशस्त है।

योनि रोग होने पर गर्भ नहीं रहता, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति जानता है, इसलिये योनि चिकित्सा में, सन्तान उत्पत्ति के अर्थ, तथा दूसरे शब्दों में गर्भ स्थिति के लिये, हमारे ग्रन्थों में वस्ति प्रयोग का परिचय मिलता है। चक्र दत्त में ही हमारे इस भाव को पुष्टी के लिये, एक और श्लोक मिलता है, और हम समझते हैं, कि इस को पढ़ कर आयुर्वेद में टैस्ट ट्यूब थ्यूरी को न मानने वाला या तो मूर्ख है, या सिड़ी हैं।

चारकादौ समुद्दिष्टा वस्तयो ये सहस्रशः।
व्यवहारो न तैः प्रायो निबद्धा नात्र तेनते ॥

अर्थात्:—यद्यपि चरक आदि ग्रन्थों में अन्य हज़ारों प्रकार की वस्तियां लिखी हैं किन्तु वह आज कल व्यवहार में नहीं आतीं, इस लिये इन का वर्णन यहां नहीं किया गया।

"टैस्ट ट्यूब बेबीज़" की थ्यूरी वैद्यों को चिरकाल से मालूम है। इस थ्यूरी को पत्रों में आये अभी कुछ मास ही हुये हैं। और इस के पहले, और शायद अभी डाक्टर फ्रांसैससैमूर ने पहला प्रयोग भी न किया होगा, वैद्य इसी पत्र में वैद्य अत्रिदेव द्वारा लिखित "न्याय वैद्यक विज्ञान" में पढ़ चुके हैं कि भग में कृत्रिम रूप से पिचकारी के द्वारा शुक्र च्युति से भी गर्भ हो सकता है, इस से सिद्ध हो गया, कि टैस्टट्यूबबेबीज़ की थ्यूरी नवीन नहीं, यह भी पुरानी है और इतनी ही पुरानी है, जितना यह आप का आयुर्वेद पुराना हैं। परन्तु अब प्रश्न उठता है, कि इसको कार्य रूप में क्यों नहीं लाया गया ? इस के लिये बहुत सी युक्तियां दी जा सकती हैं, हम उन में से कुछ एक का वर्णन करेंगे।

१—संग के समय स्त्री और पुरुष पूर्ण हर्षित होते हैं। स्त्री का मन एकाग्रता से पुरुष और उस के प्रेम का अनुभव करता है। तथा पुरुष का मन स्त्री और उस के प्रेम अनुभव में मग्न होता है। दोनों एक जैसे प्रेम में बँधे होने से एक होते हैं। गर्भ स्थित बालक का बीज प्रेम होता है, तथा उस का सिंचन भी प्रेम रस से ही होता हैं, इसलिये बड़ा होने पर वह माता से प्रेम करता है, पिता से प्रेम करता हैं। भाइयों

से प्रेम करता है, सब से प्रेम करता है। परन्तु वह दूसरा बालक जिसकी माता ने औषधि के रूप में योनी में शुक्रच्युति कराई है। जिस के पिता के मन में सन्तान उत्पन्न करना नहीं, धन उपार्जन करना था, और जिसके पिता का मन, वीर्य पात के समय प्रेम शून्य था, प्रेम रहित होता है, उस के मन में किसी के लिये प्रेम नहीं होता, आप ही सोचें, और कल्पना करें कि प्रेम शून्यमन वाला व्यक्ति कैसा होगा, उस से पुरुष समाज का क्या भला होगा। इसीलिये अगर वैद्यों ने इसे कार्य रूप में व्यवहृत न किया, तो इस से वैद्यों का सौजन्य ही टपकता है।

पाठक अनुमान लगावें, कि अधिक सन्तान के नाम पर, स्त्रियों की निर्बलता के नाम पर, जो गर्भ निरोध के उपाय, गोलियां व लोशन, डूश तथा यंत्र, फ्रेंचलैदर तथा स्पाज़िट्रोज़ आदि के निर्माण किये गये हैं, उन का अधिक प्रयोग कहाँ हुआ है। विवाहिता तथा निर्बल स्त्रियों पर नहीं, कमज़ोर औरतों पर नहीं, विधवाओं पर हुआ है कुकर्म करने वाली काम प्रिया, व्यभिचारिणी युवतियों ने ही इन गर्भ निरोध के उपायों को अपनाया है, वही बहु संख्या में इन उपकरणों की ग्राहक हैं, इसी प्रकार टैष्ट ट्यूब बेबीज़ की थ्यूरी भी संसार में व्यभिचार को फैलाने का कारण बन सकती है। वह कुकर्मों को छिपाने के लिये ढाल का काम दे सकती है। कुकर्म से उत्पन्न बालकों को वह टैष्ट ट्यूब बेबीज का नाम देकर इस काले मुख के कार्य को तथा अपने को पवित्र कह कर सुसायटी में रख सकती हैं। तो इस अवस्था में अगर वैद्यों ने इस थ्यूरी को जानते हुये भी कार्य रूप में परिणित न किया तो इस में कारण, उन का स्वार्थ त्याग तथा जनता का हित ही दृष्टि गोचर होता है।

मनोकामना

(१)

भारती, भव्य चिकित्सा सार,
खिल उठें, भावों के अनुसार।
हृदय की प्रतिमा जिनकोमान,
हरे हो उठें सरस-विद्वान !

(२)

सुनहले कर से रवि भाल, मति
लुटाते हैं सोने का भार॥
देव, मेरे ये अनुपम भाव,
लुटाया करें स्वर्ण सा प्यार!

(३)

फिरादो निज कर करुण सहास,
व्यथित मेरे मस्तक पर नाथ।
जगादो, मेरे सोये भाव,
वैद्यकुल कैरव दीनानाथ !

(४)

निशा तमसी विस्मृति में देव,
खो गये मेरे रत्न अनूप।
सुकर, कमलों से उन का हार,
सजा दो तारों के अनुरूप!

(५)

चिकित्सा भाव भरों से सजा,
उदधि ज्ञानों में उठे तरंग।
हिलादे, हिलकर विश्व विराट,
स्वस्थता की लेकर उत्संग!!

"व्यथित"

प्रसव कालिक उचित उपचार

[ॐ० प्रोफेसर पं० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, गुरुकुल कांगड़ी]

प्रसव के द्वारा परिस्राव या गर्भित पदार्थ अर्थात् कमल, गर्भोदक, भ्रूण-वरण, तथा भ्रूण ये सब गर्भाशयसे अलग होकर बाहर आते हैं। यदि प्रसव के समय उचित उपचार किये जाँय तो इनके निकलने में कोई कठिनाई नहीं होती है। और न कोई प्रसव कालीन प्रसूत रोग आदि भयानक व्याधियाँ ही उपस्थिति हो सकती हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये हमारा यह प्रयत्न है, ताकि जान कर चिकित्सक या धात्री इन बातों पर विशेष ध्यान दें और और प्रसूता को भावी आपत्तियों से बचा सकें।

सुविधा के लिये प्रसव कालिक उपचारों को प्रसव की अवस्थानुसार हम तीन भागों में बाट देते हैं। १-प्राथमिक उपचार २--द्वितीयावस्था सम्बन्धी उपचार तथा ३-प्रसूतोत्तर तात्कालिक उपचार। क्योंकि प्रसव की भी प्रथम द्वितीय तथा तृतीय इस प्रकार तीन अवस्थायें होती हैं, जो संक्षेपन निम्न प्रकार है।

१- प्रथमावस्था—प्रसव की यह अवस्था वेदना आरम्भ होने से लेकर गर्भाशय ग्रीवा के पूर्णतया चौड़े होने तक मानी जाती है। प्रायः इसी अवस्था के अन्त में ही गर्भोदक थैली फटती है। विरलावस्था में इससे पूर्व ही फट जाया करती है। जिससे प्रसव में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

२- द्वितीयावस्था— गर्भाशय के ग्रीवा के पूर्णतया चौड़ा होने से लेकर बालक के भूमिष्ट होने तक मानी जाती है।

३- तृतीयावस्था— बालक जन्म होने से लेकर फूल बाहर निकलने तक मानी जाती है। किन्तु कहीं २ अपरा द्वितीयावस्था के अन्त में ही निकल जाती है।

प्रसव काल ज्यों २ समीप आया जाय, उतना ही उपचारों के विषय में सतर्क रहना चाहिये। प्रसव आरम्भ होने के पूर्व निम्न कतिपय लक्षण उदय होते हैं। जिनका ज्ञान होना धात्री के लिये नितान्त आवश्यक है।

लक्षण— प्रसव के १५, २० दिन पूर्व गर्भवती अपने में पहिले से कुछ लघुता अनुभव करने लगती है। और इस समय कुक्षि के शिथिल होने से गर्भाशय की ऊँचाई भी पूर्वापेक्षा न्यून हो जाती है। परन्तु मूत्राशय में भार पडने से मूत्र बार २ आने लगता हैं। प्रथम गर्भवतीमें लघुता के अतिरिक्त भ्रूण शिर भी वस्ति प्रवेश द्वार में स्थिर हो जाता हैं। परन्तु प्रजाताओं में प्रसवारम्भ होने पर ही स्थिर होता हैं। और कुछ दिन पहिले योनि से श्लेष्मिक स्राव होने लगता है। चरक में भी इसी बात को स्पष्ट रूप से लिखा है। "तस्या खल्विमानि लिंगानि प्रजनन कालमभितो भवन्तीत्यादि" इसके बाद प्रसवारम्भ हो जाता

है। इन्हीं दिनों कोई योग्य चिकित्सक या धातृ नियुक्त कर लेनी चाहिये, जो प्रसव सम्बन्धी उपकारणोंका सञ्चय तथा तत्कालीन नियमों का पालन कराती रहे। इसके साथ ही एक स्वच्छ तथा शुद्ध वायु युक्त प्रसूतागार भी निश्चित कर लेना चाहिये, और उस में से अशुद्ध तथा व्यर्थ भीड़ करने वाली चीजें निकाल लेनी चाहिये।

अब प्रसवारम्भहोने पर वास्तविक वेदना का ज्ञान करके उपचार आरम्भ कर देने चाहिये। क्योंकि वास्तविक वेदनारम्भ से ही प्रसवारम्भ समझा जाता है, इसमें गर्भाशय संकोचन के साथ कटि प्रदेश से वेदनारम्भ होकर पेडू और जाँघों की ओर आती हैं। साथ ही इसके गर्भोदक थैली भी धीरे २ नीचे लटकने आरम्भ हो जाती है, और योनि परीक्षा करने पर गर्भाशय ग्रीवा खुली हुई प्रतीत होती है।

योनि द्वारा मिश्रित रक्त श्लेष्मा स्राव होता हैं, और बालक का सिर स्थिर प्रतीत होता है, और गर्भाशय ग्रीवा के अन्तर्मुख का चौड़ा होना भी ज्ञात होता हैं, इस तरह वास्तविक वेदना ज्ञान करके अवस्थानुसार क्रमशः उपचार आरम्भ कर देने चाहिये।

प्रथमावस्था में—

स्त्री को आसन पर लेटे रहना चाहिये, या इच्छानुसार साधारण चलना फिरना या बैठना चाहिये।

"भावी प्रादुर्भावेतु शयनं विदध्यात्, मृद्वास्तरणोपपन्नम्। तदध्यासीन सा पुनर्जृम्भणं चक्रमणमानुष्ठेयम्।

यदि बालक विषमासन हो, या माता की वस्ति संकुचित हो, अथवा किसी प्रकार की उपस्थिति हो, तो किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करना चाहिये, किन्तु लेटे रहना आवश्यक है।"

"दारुण व्यायाम वर्जनाहि गर्भिण्यः सततमुपदिश्यते, विशेषतश्च प्रजननकाले प्रचलित सर्वधातु दोषायाः।

और इस अवस्था में प्रवाहण नहीं करना चाहिये। हां! प्रसव में सहायक साधारण उपचार जैसे कुष्ठ, लाँगली, चव्य, चित्रकादि औषधियों की पोटली सूँघना तथा वात हर गुनगुने तैल नारायणतैलादि, की धीरे २ कमर, पीठ, पसुली तथा साथलों में नीचे के रुख से मालिश आदि करनी चाहिये, और गुनगुने जल से स्नान कराना चाहिये।

और मलाशय को साफ करने के लिये साधारण विरेचन देना आवश्यक होता है। क्योंकि मलाशय के भरे रहने पर प्रसव में बाधा होने का डर रहता है। कारण कि प्रसव के समय जब बालक का सिर बाहर निकलता है, तो सिर के दबाव से मल त्याग भी हो जाता है, जिससे भग तथा योनि में रोगोत्पादक आन्त्र कीटाणु प्रवेश होने की आशंका रहती हैं, और ये अनेक रोगों के कारण बन जाते हैं, अतः विरेचन द्वारा मलाशय खाली करना योग्य है। इस के लिये प्रसवारम्भ में १ औंस शुद्ध एरण्ड तैल दूध के साथ दिया जाता है। इसी तरह स्त्री को बार २ मूत्र त्याग करने के लिये भी कहना चाहिये। यों तो प्रसव काल में, मूत्राशय में दबाव पड़ने पर मूत्र स्वभावतः बार २ आता रहता है

परन्तु यदि किसी कारण मूत्र त्यागने की शक्ति कम हो तो मूत्र शलाका से मूत्र निकालना चाहिये। और इसी समय प्रसव कर्म सम्बन्धी अन्यान्य उपकरण, उष्ण जल, प्रक्षालन, द्रव सूची वेधन यन्त्र कृमि हर द्रव वस्त्र रबड़ के दस्ताने, पेट में बांधने की पट्टी नालच्छेदन के उपकरण, मलपात्र गरम पानी की बोतल या सेकटी पिन, और निद्रा करक औषधि आदि तैयार कर लेनी चाहिये, इसके अनन्तर स्त्री की नाड़ी, ताप तथा उदर परीक्षा करके गर्भ हृदय स्पन्दन की संख्या भी देख लेनी चाहिये। जब प्रथम अवस्था समाप्त होने को हो, या समाप्त हो जाय, या योनि गर्भोदक थैली फट जाय, और वेदनायें तीव्रता से होने लगें तो स्त्री को एक पर्यंक (समपृष्ठ तख्तपोष) में लिटा देना चाहिये, और द्वितीयावस्था सम्बन्धी उपचार आरम्भ कर देने चाहिये।

"सयदाजानीयान् विमुच्य हृदये मुदरमस्या स्त्राविशति वस्तिशिरोऽवगृह्णाति त्वरपन्त्येन्तमार्य्यः परिवर्तते धोगर्भ इति अस्याभवस्थायाँ पर्यंकमेनामारोप्य प्रवाहितु मुपध्यांमेत्।"

द्वितीया वस्था में—

प्रसूतिका को प्रवाह के लिये कहना चाहिये। और उसके शिर की ओर रस्सी में एक कपड़ा या तकिया बांधकर लटका देना चाहिये, जिसे पकड़ कर वह श्वास रोक करके जोर लगाती रहे।

इस प्रकार प्रवाहण केवल वेदना के समय ही करना चाहिये। अन्यथा जोर लगाने से अनेक आपत्तियों का डर रहता हैं चरकने लिखा हैं, कि

ताश्चैना यथोक्तं गुणाःस्त्रियोऽनुशिवपुरनागनावोर्मा प्रवाहिष्ठाः या ह्यनागताःवीः प्रवाहने व्यर्थ में धस्यास्तत्कर्म भवति प्रजा चस्या विकृति मापन्ना श्वास कास शोषप्लीहमसक्ता भवति।

वेदना होने पर पहिले साधारण जोर लगाना चाहिये, ज्यों २ वेदना बढ़ती जाय, अधिक जोर लगाना चाहिये, गर्भोदक थैली के फटने के पूर्व यदि बालक का शिर स्थिर न हो तो योनिपरीक्षा आवश्यक होती हैं। योनि परीक्षा से चिकित्सक को पता लग जाता है। कि भ्रूण का उदय, आसन तथा स्थित ठीक है, या नहीं, अथवा नालभ्रंश तो नहीं हो रहा हैं। योनि परीक्षा करते समय कृमि हीनता की विशेष सावधानी रखनी चाहिये, अन्यथा ज़रासी असावधानी से महान् दुःख उठाना पड़ता हैं। प्रसव में माता के प्रवाहण के अतिरिक्त चिकित्सक भी गर्भाशय के मुख पर हाथ से दबाये रखने सेसहायता पहुंचा सकता है।

गर्भाशय मुख पूर्णतया चौड़ा होने पर भी यदि थैली न फटी हो तो उसे किसी स्वच्छ कृमि हीन तीक्ष्ण आलपीन तार या नाखून से फोड़ देना चाहिये। भ्रूण शिर के वस्ति में होने पर यदि थैली भग में ही दिखाई दे, तो भी उसे छेदन कर देना चाहिये। कभी थैली के बिना ही बालक उत्पन्न होने लगता हैं। या हो जाता हैं ऐसी दशा में तुरन्त थैली को छेदन कर बालकको निकाल लेना चाहिये। अन्यथा बालक की मृत्यु हो जाती हैं, बालक का शिर भग में न दिखाई देने तक प्रसूता को सीधा पीठ के बल लिटाये रखना चाहिये, इसके बाद उसे वाम पार्श्व लिटा कर उसकी

दाहिनी टांग को एक दूसरी दाई कुछ ऊपर उठा ये रक्खे और तब चिकित्सक या धात्री प्रसूता की पीठ की ओर खड़े होकर अपना बांया हाथ उसकी दाहिनी टांग के ऊपर से भग की ओर टांग के नीचे तक ले जा कर बालक के शिरपर रक्खें, और शिरको भग सन्धि की ओर दबाये रक्खें जिससे शिर बालक की छाती की ओर पूरा झुका रहे। बालक शिर की पश्चादस्थि के भगसन्धि से नीचे आने तक इसी तरह दबाये रखना चाहिये। इस केबाद दाहिने हाथ के मुट्ठी से स्त्री की पुच्छास्थि तथा गुद द्वारके बीचमें दबाना चाहिए, इसक्रिया से बालकका सिर सीधा होने लगता, और सुगमताके साथ भगसे निकल आता है। तथा सींवन प्रदेश भी दबाव पड़ने के कारण फटने से बचजाता है। यदि बच्चे का शिर पूरा नीचे आने पर भी बालक भग चर्म की बाधा के कारण उपर्युक्त विधि से उत्पन्न न हो सके तो वेदना के समय शनैः शनैः प्रवाहण करना चाहिए, और भग को "लाई सोल" के गरम द्रव से निरन्तर सिचन करते रहना चाहिये। इस क्रिया से भग चर्म के विस्तृत होने में सहायता मिलती है। तथा शिर भग में से बाहर निकल आता हैं। बालक का शिर बाहर निकल आने पर देखना चाहिए कि कहीं उसकी ग्रीवा के ऊपर नाल का फन्दा तो नहीं हैं। यदि होतो उसे निकाल देना चाहिए। नाभिनाल के फन्दे को देखने के लिये भग में दो अंगुलिया डाली जाती हैं। और इस के पहिले बालक के शिर को सावधानी से कुछ माता की पुच्छास्थि की ओर दबा देना [illegible] होने पर [illegible] तरह मालूम पड़ जायगा। यदि नाल के फन्दे को शिर के ऊपर से खींचकर न निकाला जा सके तो उस के नीचे से काट कर तुरन्त बालक को उत्पन्न करा देना चाहिये। बाल शिर के भग से निकलने के बाद उसके नेत्रों को किसी स्वच्छ कोमल गीले वस्त्र या कृमि हर "बोरिक लोशन से" पोंछ देना चाहिए। और मुखके भीतर भी अंगुल के सहारे किसी फाये से पोंछ देना चाहिये।

शिर निकलने के बाद आगामी वेदना के साथ ही साथ बालक भूमिष्ट होता है। यदि बालक का मुख नील वर्ण होने लगे, तो उस के स्वतः उत्पन्न होने की प्रतीक्षा न करके गर्भाशय को मलना चाहिये और गर्भाशय मुण्ड पर हाथ से दबाव डाल कर प्रसव कराना चाहिये। यदि इस तरह सफलता न मिले तो योनि में एक अंगुलि डालकर उसे कक्षस्थल में आड़ाकर सामने स्कन्ध को भग सन्धि के नीचे तक खींच लेना चाहिये, न दोनों स्कन्धों को एक साथ उत्पन्न करना चाहिये नाहीं स्कन्धों को उत्पन्न करने के लिये शिर ही खींचना चाहिये, और स्कन्धों के उत्पन्न होते समय बालक के शिर को दोनों हाथों से पकड़ कर धीरे से माता के कोष्ट की ओर ले जाना चाहिये। इस से स्कन्धों से निकलने में सहायता मिलती है। बालक भूमिष्ट होने पर माता को फिर पीठ के बल लिटा देना चाहिये।

बालक भूमिष्ट होते ही रोने लगता है। यदि न रोवे, तो उसे पैरों से पकड़ कर उलटा लटका देना चाहिये, तथा मुख के भीतर की श्लेष्मा को पोंछ देना चाहिये और उस की पीठ में दो तीन

हलकी थपेड़ लगानी चाहिये। ठंडे पानी की छींटे मुख पर देने चाहिये। रोने पर उस को पार्श्व के बल माता की जांघों के बीच में लिटा कर नाल-च्छेदनविधि के अनुसार नाल के स्पन्दन आदि को देख कर नाल काट देनी चाहिये। यह स्मरण रहे कि उत्पन्न होते ही तुरन्त नाल काट देने से बालक लगभग डेढ़ छटांक रक्त से वञ्चित रह जाता है, जो उस की वृद्धि में बाधक होता हैं। नाल बन्धन सूत्रों को प्रयोग करने से पहिले मरकरीबिन, आयोडाइड (Mercury bino odide) के ५०० बार के घोल में रख छोडना चाहिये, और नाल काटने के बाद बालक को फलालैन में लपेट कर किसी परिचारिका को देना चाहिये, ताकि उस का अलग स्वतन्त्र उपचार हो सके।

तृतीया वस्था—यह पहिले बताया था, कि बालक भूमिष्ट होने के बाद से कमल के निकलने तक तृतीयावस्था होती है। बालक पैदा होते ही यह देखना चाहिये, कि इस के निकलने से कहीं योनि द्वार या सींवन प्रदेश पर घाव या छिल तो नहीं गया हैं। यदि कहीं पर फटने से घाव हो गया हो, तो उसे उसी समय देना चाहिये क्योंकि इस समय यह स्थान संज्ञा रहित होता है, परन्तु बन्धन या गांठें कमल निकलने के बाद देनी चाहिये। यदि सींवन या योनि द्वार में अधिक बड़ा घाव या विदार हो गया हो, तो उसको सीने के लिये "क्लोरोफार्म" की सहायता लेनी चाहिये।

बालक उत्पन्न होने के प्रायः ४०-५० मिनट के अन्दर आंवलनाल निकल आती है, यदि इतने में न निकले, तो गर्भाशय को एक हाथ में सामने तथा पीछे से पकड़ कर केवल तीन बार प्रसव वेदनाओं के समय दबाना चाहिये। इस से कमल नाल बाहर निकल आता हैं। इस में असफलता होने पर धात्री को अपना कृमि हीन हाथ गर्भाशय में डाल अपरा को पृथक करके निकालना चाहिये, "यदाच प्रजातास्यात्तदैवैनामवे क्षेत काचिदस्या अपरा प्रपन्नाऽप्रपन्ना वेति। तस्याश्चेदपरान प्रपन्ना स्यादर्थैनांमन्यतमाह्वी दक्षिणेन पाणिना नाभ रूपरिष्ठा द्वलवन्नि पीड्य सव्येन पृष्ठन उपसंगृह्य सुनिर्धूतं निर्धुनु मान। इत्यादि" आंवल निकलते समय उसे एक ओर घुमा २ कर निकालने से सम्पूर्ण झिल्लियां निकल आती हैं, अथवा गर्भाशय को गेंद की तरह मुट्ठी में पकड़ कर छोड़देने से भी उस में संकोचन प्रसार होता है, और उस मेंसे कमल तथा झिल्लियां बाहर निकल आती है कमल नाल निकलने बाद यदि स्त्री प्रजाता हो तो उसे गर्भाशय संकोचन औषधि अर्थात् दो ड्राम एक्सट्रेक्ट अरगट लिक्विड [Ext. Ergot liquid] एक औंस पानी में डाल कर पिलाना चाहिये। इससे गर्भाशय अच्छी तरह सिकुड़ जाताहै

कमल निकलने बाद (आध घंटे में) गर्भाशय को बाहर से पकड़ कर दबा करके उसमें जमा हुआ रक्त निकाल देना चाहिये, और भग को पोंछ कर उसके ऊपर १०" लम्बी ४" चौड़ा स्वच्छ कपड़े में चोषक (Absorbent) रुई लपेटी हुई गद्दी लम्बाई के रुख रख देनी चाहिये, परन्तु गद्दी को कृमि हीन कर लेना चाहिये। इसके लिये इसको जलते हुये कोयलों के सामने रखना और जब इसका वर्ण कुछ भूरा सा हो जाय तो ठंडा होने पर भूरा पृष्ठ भाग भग में रखना चाहिये इ-

सकेबाद पेट मे एक चौड़ी पट्टी कस कर बाँध देनी चाहिये, इसका निचला शिरा उनअस्थियों के ऊपर के बड़े उभारों से दो इंच नीचे होना चाहिये। और सेफ्टीपिन से कस देना चाहिये। पहिले निचले सिरे पर पिन लगानी चाहिये इसके लिये ४ पिन आवश्यक होती हैं, एक निचले सिरे पर दूसरी भग संन्धि, पर तीसरी नाभि तथा भग सन्धि के बीच में और चौथी ऊपर के शिरे पर,चौथी पिन लगाने के पूर्व गर्भाशय के ऊपर के भाग को सामने की ओरदबा देनी। चाहिये, ताकि पट्टी का ऊपर का किनारा उसके पीछे हो जाय,और उसे थामे रहें। पट्टी के निचले किनारे भग के कपड़े को अपने स्थान से नहीं हटने देते हैं।

गर्भाशय के अच्छी तरह संकुचित होने पर रक्तस्राव अधिक नहीं होता है। और जमा हुआ रक्त उसमें सञ्चित नहीं होने पाता है, दो घण्टे बाद यही खोल कर भग को "लाइसोल" के द्रव से साफ करना चाहिये, और मूत्रादि निकाल देना चाहिये। गर्भाशय को दबा कर उसमें जमा रक्त भी निकाल देना चाहिये फिर गुन गुने "लाइसोल" के द्रव से योनि को धोकर देखना चाहिये, कि गर्भाशय ठीक संकुचित है, या नहीं, और रक्त स्राव तो नहीं हो रहा है? इस प्रकार साफ करके फिर पट्टी और कपड़ा पूर्वोक्त विधि से लगा देना चाहिये। और प्रसूता को दूसरे बिछौने पर लिटा देना चाहिये, और नाड़ी ताप आदि की भी परीक्षा करते हुये २ घंटे तक उसके पास बैठे रहना चाहिये, जिससे रक्त स्राव आदि के विषय में पूर्णज्ञान हो सके। भग में रखे हुये कपड़े को बाहर रक्त दिखाई देने पर या हर तीन घंटे बाद अवश्य बदल देना चाहिये। और पट्टी को प्रसूता में अच्छी तरह चलने फिरने की शक्ति के आजाने के बाद खोलना चाहिये, पहिले खोलने से गर्भाशय में रक्त जम जाता है, और वातकोप से उसमें मक्कलशूल उत्पन्न हो जाता है, सामान्यतः साधारण प्रसव में इस प्रकार उपचारों कीआवश्यता होती है, किन्तु प्रसव काठिन्य या मूढ़ गर्भ आदि में विशेष उपचार करने पड़ते हैं। साधारण प्रसव में उपर्युक्त उपचारों के बाद प्रसूतोपचार करने चाहिये, जिससे सूतिका प्रसूत बाधाओं से सर्वथा सुरक्षित रहसके॥

प्रसव कालिक उपचार—

[ले० वैद्यराज डा० धरणी धर जी शास्त्री]

यह अत्यन्त गहन एवं महत्व पूर्ण विषय है। प्रस्तुत विषय को जितना हम लोग सुगम समझते हैं, वास्तव में वह उतना सरल नहीं है। संभवतः प्रसूति की असह्य वेदना से हमको कल्पना नहीं, अथवा शास्त्र से हमारा कोई परिचय नहीं है,जो कुछ हो, किन्तु कार्य चाहे बड़ा हो अथवा छोटा परन्तु उस का समस्त भार कार्यकर्त्ता पर ही अवलम्बित है, इतना अवश्य है, कि यदि वह बुद्धिमान है, तो वह अपना काम सुगम एवं सुरीति तथा युक्ति पूर्वक निर्वाह करेगा, और यदि वह मूर्ख है, तो बहुत प्रयत्न, करने पर भी नहीं सुधार सकता, वह जीवन, और द्रव्यदोनों को कष्ट कर देता हैं, अस्तुः प्रस्तुत विषय भी इसी ढंग का है। सूतिका के जीवन मरण का दीयत्व दाई के ऊपर ही निर्भर है, प्रसव के समय उचित उपचार न होने से ही संतान एवं प्रसूता, दोनों को ही प्राणघातक उत्पात होते हैं। अधिकांश इसी अनभिज्ञता से प्रसूता को सूतिकाज्वर सूतिकोन्माद योषापस्मार आदि भयंकर रोगों का आक्रमण होने का केवल भय ही नहीं आपित उक्त रोगों से ग्रस्त होकर शीघ्र काल कवलित हो जाती हैं। और नवजात शिशु का जीवन तो उस के भाग्य ही पर निर्भर रहता हैं। क्योंकि मूर्ख दाईयाँ तो उन्हे वध करने की ही सामग्री हैं।

दाई बहुत चतुर होना चाहिये, सदाचारी सरल मिलनसार, स्वच्छ आदि होना दाई का प्रथम कर्तव्य हैं, और अपने काम में प्रवीण तथा अत्यन्त सावधानता एवं सतर्कता से तत्पर रहना उचित है। दाई जब बालक के उत्पन्न होने का समय सन्निकट समझे, तो उस समय प्रसूता की कोठरी को स्वच्छ करा करके उस में का सामान दूसरे स्थान में रखवा दे और इस में चूने से सफेदी करवादे, कोठरी भी हवा दार होनी चाहिये, फर्श को झाड़ू लगवाकर धुलवा देना चाहिए, उस में केवल प्रसूता के लिये एक पलंग और उपयोगी वस्तु रखने के लिये एक मेज़ के अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं रहना चाहिये, पलंग को इस भांति रक्खें, कि जिससे दाई स्वयं आवश्यकता पड़नेपर आसानी से आ जा सकती हो पलंग पर बिस्तरा भी साधारणतः रखें, पलंग के मध्य भाग में गज भर चौड़ा मोमजामें का टुकड़ा(आइलक्लाथ,) डाल देना चाहिये। उसी पर कमली या कम्बल को दुहरा कर बिछवा देवें. इस से प्रसूता के समय भिन्न २ स्रावों से बिछौना अस्वच्छ नहीं होता, और प्रसूता के पश्चात् वह आसानी से दूर भी किया जा सकता हैं, दाई को अपने साथ एक सहायिका भी रखना अत्यन्त आवश्यकीय है। उक्त

कोठरी में दाई स्वयं तथा अपनी सहकारिका एवं २-१ और स्त्रियों के अतिरिक्त विशेष अन्य व्यक्तियों को वहां न रहने देवे। दाई को यदि अपने व्यवसाय मेंपूर्णतः ख्याति प्राप्त करने कीइच्छा हो तो वह अपने विषय का तात्विक और व्यवहारिक दोनों प्रकार की पूर्ण ज्ञाता बनै। उसे इस बात पर सदैव ध्यान देना चाहिये, कि उसके ऊपर कितना भारी भार हैं।

उसे कुशाग्र बुद्धि मती औरसिद्ध हस्ता होना चाहिये, उसे निम्नोक्त वस्तुओं की सदैव अपने पास रखने की व्यवस्था कर लेनी चाहिये। जिस से कहीं से भी बुलावा आने पर वहां शीघ्र जाकर अपने कार्य में सद्यः संलग्न हो सके,।

(१) हिजिन्सन की पिचकारी और प्रसव मार्ग में प्रवेश करने के लिये उसका मुख भाग (२) मूत्रोत्सर्जक नलिका पुरुष की, किन्तु हल्की उसे Gumelostee maleCatheter गमइलोस्टिक मल कैथेटर कहते हैं। (३) कैंची अत्यन्त शीघ्र नालच्छेदन के लिये (४) नेल ब्रुश Nail Brusth छोटी बुरुष, नाखूनों को स्वच्छ करने के लिये (५) सूतकी आंटी- नाल को बाँधने के लिये (६) सुरक्षित आल्पीने Safty pins सेफटीपिन्स पट्टी में लगाने के लिये (७) तापमापकयंत्र थर्मामेटर) ताप परीक्षा के लिये (८) जन्तु नाशक औषधियां, जैसे अर्गट का तरल सत्व- १ औंस एक्स्ट्रेक्ट अर्गट लिक्विड, परमैंगनेट पोटाश, कार्बोलिकएसिड आदि (९) क्यारबालासाइड बेसलीन (१०) मरक्यूरिड परक्लोराइड की टिकियां।

जब प्रसूता के घर पहुंचै, तो प्रथम दाई, उस से या उसके घरवालों से निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे (१) प्रथम वेदना वेग आरम्भ हुये कितना विलम्ब हुआ (२) वे वेदनायें किस प्रकार की थीं (३) वे किस स्थान तक पहुंचती थीं (४) मूत्राशय और मलाशय की स्थिति कैसी थी?

नोट-प्रसव वेदनायें २ प्रकार की होती हैं। जिनका उल्लेख आगे हुआ हैं,दाई जब यह समझ लेवै कि प्रसव अब होगा, तो शीघ्र ही निम्न वस्तुओं को सूतिका गृह में रखवा लेवे। (१) ४-५स्वच्छ चद्दरे, लगभग १ दर्जन स्वच्छ तौलिया और भी बहुत से पानी में उबले हुये साफ टुकड़े (२) दो या तीन पहनने के लिये रूमाल जो कि प्रत्येक गज भर चौड़ा और १। गज लम्बा हो (३) १ पौंड या अधिक पानी सोखनेवाली बनी रुई, श्रावित रक्त इत्यादि को स्वच्छ करने के लिये, तथा प्रसव के उपरान्त जननेन्द्रिय में गद्दी लगाने के लिये, (४) २ या तीन नवीन सूती वस्त्र के टुकड़े जोकि १० या १२ इंच चौड़े और ४फीट लम्बे हों इससे बालक उत्पन्न होने अनन्तर माता के पेट पर पट्टी बाँधें। (५) २ टुकड़े वाटर प्रूफ के प्रत्येक एक वर्ग गज के बिछौने पर नितम्बास्थि के तले के काम में लावे। (६) एक टुकड़ा लंका के फलालेन का या और कोई कोमल कपड़ा जोकि खूब धुला एवं उबला हुआ हो। इसी से उष्णता पहुंचाने के लिये, बालक को लपेट देवे। (७) सेफटीपिन्स पट्टी में लगाने के लिये, (८) तीव्र कैंची नालच्छेदन के लिये। (९) उबले हुये वस्त्र के २ टुकड़े बालक के पेट पर पट्टी बाँधने के लिये जोकि ४॥ इञ्च चौड़े एवं २ फीट लम्बे हों, (१०) साबुन छोटी कूँची अर्थात् Nail brush दाई को नाखून साफ करने के लिये,

(११) हिजिन्सन की पिचकारी अथवा धोवन नलिका (१२) १ सेर पानी में आधे चाय चम्मच के बराबर लाइसोल मिला लेवे। इसी से दाई अपना हाथ धोवे, (१३) १-२औंस बोरिक एसिड का चूर्ण नालच्छेदन के पश्चात् उसी पर छिड़कने के लिये (१४) गाभ (किन्हाई) के लिये १ साफ रकाबी इसके अतिरिक्त कुछ और भी रकाबियां (१५) मल पात्र Bed pan बेडपान (१६) कुछ छोटे टुकड़े जोकि ३ तीन इञ्च लंबे और तीन ही इञ्च चौड़े हों, उनके मध्य में भाग नाल प्रवेश हो जाने के लिये छिद्र हो, (१७) बोरिक एसिड जल, एक बोतल बालक के नेत्रों को धोने के लिये, (१ बोतल जल में ४ औंस बोरिक एसिड हो) इसी से प्रसूता का स्तन भी धो देवे (१८) आर्जिएल लोशन जोकि१०%१०० भाग जल मिला हुआ हो, इससे भी आंख धोई जाती हैं, (१९) जन्तु नाशक मरहम या क्वारवालाइजड वेसलीन [२०] मीठा तेल बालक जनने के पश्चात् उसके शरीर पर मर्दन करने के लिये। (२१) दो टुकड़े मजबूत सुतली के (१०, १२ धागों को एक में बँट कर सूतली या टेप (फीता) बना ले तो और भी उत्तम हो इनसे नाल बाँधे। (२२) सुई डोरा इत्यादि (२३) बालक को स्नान कराने के लिये उष्ण जल एवं एक चौड़ा पात्र (२४) पानी उष्णता नापने के लिये एक थर्मामेटर (२५) शीतल जल के अतिरिक्त और भी उपयोगी वस्तुएं जिससे आवश्यकता पर कोई वस्तु न ढूँढ़ना पड़े।

नोट—ध्यान रहे दाई उपरोक्त वस्तु बो को बिना भली भांति हाथ धोवे कदापि न स्पर्श करें।

प्रसव की अवस्था के उपसर्ग

दाई निम्न चिह्नों से यह समझ लेवे, कि अब प्रसव समीप हैं, जरायु का उपचार परिवर्तन बाह्य जननेन्द्रिय का तर रहना एवं उन पेशियों की शिथिलता, मानसिक चिन्ता प्रभृति प्रसव वेदना के पूर्व ही प्रतीत होने लगते हैं। बार बार मल मूत्र त्यागने की इच्छा, शरीर में कुछ दर्द वमन होना, शरीर कंप होना, जननेन्द्रिय से झाग सदृश श्लेष्मा निकलना, कटि प्रदेश में वेदना प्रारम्भ होकर उदर की ओर आकर स्थगित हो जाना, ये सभी प्रसव के लक्षण हैं, पूर्व में कहा जा चुका है। कि वेदनायें दो प्रकार की हैं।(१) प्राकृतिक (२) अप्राकृतिक क्रमशः सच्ची या झूठी निम्न लक्षण से स्पष्ट समझ में आजायगा।

प्रकृत (सच्ची)

१-पीठ कटि एवं कभी उरु तक दर्द होना,

२-प्रत्येक बार वेदना नियमित रूप से अर्थात् प्रति १५, २०, या ३० मिनट के पश्चात्, पर्याप्त क्रम से आता हैं। एवं छोड़ भी देता है।

३-प्रत्येक वेदना में जरायु का कुछ मुंह खुल कर पानी निकलता है।

अप्रकृत (झूठी)

१-केवल पेट में ही दर्द (खींच मारना) एकत्रित रहना।

२-दर्द का अनियामित होना, जैसे कभी १५ मिनट या कभी ५ ही मिनट पर होता रहता है, और कभी दर्द बराबर होता है।

३-जरायु का मुँह बिल्कुल नहीं खुलता, और पानी भी नहीं निकलता।

नोट—ज्यों २ प्रसवकाल समीप आता जायगा त्यों २ वेदनायें भी शीघ्र २ आने लगती हैं।

जब प्रसव वेग प्रारम्भ हो जाय तो उसी क्षण दाई को निम्न रीति से योनि परीक्षा भी कर लेना आवश्यक है! प्रथम प्रसूता को उस के पलंग पर बांई करवट से लिटा देवे, और उस के दोनों घुटुनों को मोड़ कर पेट के समीप रखवा दे। और उस के नितम्ब को पलंग के एक सिरे (पाटी) की ओर रखवा दे। पुनः दाई स्वयं उस के पीठ की ओर खड़ी होकर अपने हाथों को जन्तु नाशक जल जैसे परमैंगनेट पोटाशीय वाटर (पोटाशका पानी) से भली भांति प्रक्षालन कर के अपनी तर्जनी और मध्यमा इन दो उंगलियों में भी जन्तु नाशक मरहम या तैल लगा कर उन्हें प्रसूता के विटप के आगे ले आवे, पुनः वाह्यजन नेन्द्रिय तक उन्हें ले जाकर भगोष्ठों से भग मार्ग में शनैः २ प्रविष्ट करें, तदोपरान्त गर्भाशय के गर्दन तथा मुख द्वार पर्यन्त ले जाकर निम्न बातों को निश्चय करे। (१) जनन मार्ग की स्थिति (२) मलाशय की स्थिति (३) प्रसूति की अवस्था (४) गर्भ आदर्श।

(१) जनन मार्ग की स्थिति—जनन मार्ग यदि सरस और कोमल हो तो समझ लें, कि शीघ्र प्रसव होगा, और यदि वह उष्ण और रुक्ष है, तो इस के विरुद्ध स्थिति समझना चाहिये।

(२) मलाशयकी स्थिति—मलाशय यदि खाली होगा तो परीक्षा करते समय उंगलियोंसे स्पर्श नहीं होगा, और यदि वह पूरित है, तो वह उंगलियों द्वारा त्रिकास्थि की पुलाई के मध्य से भग मार्ग की पिछली दिवाल से आगे आया हुआ विदित होगा। यदि मलाशय रुद्ध है, तो वस्ति देकर मल बाहर निकाल देना चाहिये।

(३) प्रसूति की अवस्था—प्रसूति की कौन २ सी अवस्था है? इस का निश्चय गर्भाशय का मुख द्वार के प्रसरण से उसका परिणाम ज्ञात होता है। गर्भाशय का मुख द्वार जब तक पूर्णतः चौड़ा नहीं हो जाता, तब तक प्रसव की पहली अवस्था रहती है, खुलने के पश्चात् दूसरी अवस्था हो जाती है और गर्भ के प्रसव तक रहती है। उक्त अवस्था में गर्भाशय का मुख पर्याप्त विस्तृत होकर योनि मार्ग में मिल कर केवल एक ही नलिका के रूप में प्रदर्शित होती है। क्योंकि गर्भाशय की समस्त गर्दन विस्तारित होकर उसकी गर्दन भी नहीं स्पर्श होता।

(४) गर्भ दर्शन जिस समय गर्भाशय का मुख इतना चौड़ा नहीं हुआ रहता, कि उंगली का शिरा उस में प्रवेश कर सके, उसी समय गर्भ दर्शन का निर्णय करना असम्भव है।

(नोट—ऐसी दशा का विशेष वर्णन पाठक 'राकेश' के "गर्भ की तीन अवस्थायें" शीर्षक में पायेंगे) यदि गर्भ का प्रथम मस्तिष्क दर्शन होगा, तो योनि का ऊपरी भाग कठोर अन्डाकृत प्रतीत होगा, जोकि हाथ से टटोलने से स्पष्ट ज्ञात हो जायगा। प्रायः ९७ प्रति शत इसी भांति का प्रसव होता है, और यदि ऊपरी भाग इस भांति न कठोर लगै, तो प्रसव अस्वाभाविक समझना चाहिये। उस समय अविलम्ब उचित उपचार में कटिबद्ध हो जाय, ऐसी अवस्था में शिर गर्भाशय की पेंदीमें हाथ से स्पर्श करने से स्पष्ट होगा। यदि स्त्री अधिक कृश और कोम-

छांगी हैं, तो बालक का प्रत्येक अंग अलग २ ज्ञात हो सकता हैं।

उस समय यदि गर्भ में दो शिर प्रतीत हों तो यमल गर्भ समझना चाहिये। गर्भ में यदि बच्चा तिरछा न हो जाय तो उस का मस्तक दाहिने या बाँये नितम्बास्थि में भीतर और ऊपर की ओर मालूम होगा। प्रसूता के उत्तान सुला कर थोड़े अनुभव से ही ज्ञान हो सकता हैं। परीक्षा के समय सूतिका के पेट को तनने नहीं देना चाहिये। किन्तु परीक्षा प्रथमावस्था तक ही करना चाहिये और प्रसूता भी उक्त दशा तक चाहें जिस प्रकार से रह सकती हैं। दाई उक्त समय यह भी निरीक्षण करै, कि गर्भाशय का मुख चौड़ा हो रहा हैं। अथवा नहीं, जब २ वेदना वेग आता हैं तब २ उसका मुख चौड़ा होता जाता है। इस समय यदि गर्भोदक कोष नहीं फूटे होगें, तो उंगलियों में स्पर्श होंगे। किन्तु उसे विशेष कदापि न दबावें। अन्यथा फूट जायगें, फिर जो सहायता गर्भाशय के मुख के फैलने में उस कोष से प्राप्त होती है वह बंद हो जायगी, इस से जनन में कष्ट होगा। दाई, प्रथमावस्था तक प्रसूता को इधर उधर कुछ टहलाती रहे, और खाने के लिये केवल गर्म दूध के अतिरिक्त कुछ भी न देवे। जिस समय प्रसव की दूसरी अवस्था प्रारम्भ होगी उस समय गर्भोदक कोष फूट जायगें, यदि न फूटें हों तो उसे नखों से कुतर कर फोड़ देना चाहिये। गर्भोदक से बिस्तर आदि का बचाव प्रथम ही कर लेना चाहिये। इस के लिये एक चौड़े मुँह का बर्तन नीचे रख दें। ताकि उसी में साबित जल गिरता रहे। दूसरी अवस्था के समय दाई (नर्स) को चाहिये। कि प्रथमतः अपने हाथों को भली भांति स्वच्छ कर रक्खें, कोहनी तक बाँहों को खुला रहने दें, अपने नखों को कटवा कर उसमें का मल दूर करके साबुन और Nail brus अंश से स्वच्छ कर लें। पहरने के लिये परन Apran की भाँति साफ कपड़े की बड़ी कुरती पहरें। इस दशा में सदैव सतर्कता से रहै, जिस समय गर्भोदक कोष फूटता है, बस, उसी समय बालक मस्तक भाग योनि मुख से निकलता हुआ प्रतीत होगा, इस समय भी योनि परीक्षा कर लेना आवश्यक है। प्रथम यह देख ले कि गर्भ का कौन सा भाग है, साथ हीं नाल तो बाहर नहीं निकलता है, क्योंकि इसी समय नाल भ्रंश हो जाने का भय रहता हैं, प्रसूता को पलँग पर लिटा ने अनन्तर पायताने की ओर एक बेंच या स्टूल रख दे, इसी के सहारे पैर का आड लगा कर प्रत्येक वेग में प्रसूता को काँखने के लिये आदेश करे, और दाई यह देखती रहे, कि प्रसव प्रकृति के अनुकूल हैं, या नहीं, यदि प्रकृत के अनुसार होगा, तो बालक मुख भाग माता के पीठ की ओर होगा, और शिर की तोम्बी प्रथम दृष्टि गोचर होगी उक्त दशा में ध्यान रखना चाहिये, कि यदि शिर शीघ्रता से बाहर निकलेगा तो अवयव बुरी भांति फट जायगा। अतः ज्यों ही मस्तक प्रदर्शित हो त्यों ही उसे उंगलियों द्वारा पकड़ ले और प्रत्येक वेदना वेग में दृढ़ता एवं सावधानी से नीचे की ओर दबावें किन्तु अधिक बल पूर्वक खींचने से बुरा प्रभाव होता हैं, तो इस प्रक्रिया से बच्चे की छाती कुछ पीछे को दबती हैं। अतः सुगमता से बाहर आ जाता है।

दाई शिर को बाहर निकल आने पर उसे दाहने हाथ से पकड़, बायें हाथ की उंगलियों से उसके गर्दन पर नाल तो नहीं लिपटा है, यदि लिपटा हो तो नाल का फेरा सिर के ऊपर से पीछे की ओर से आगे को निकाल देना चाहिये। यदि न लिपटा होतो बालक के नेत्रों बालक के नेत्रों तथा उनके समीपवर्ती स्थानों को अवसावर्ट काटन (पानी सुखाने वाली रुई) से स्वच्छ कर देना चाहिये, और नेत्रों में १० का १०० वाँ भाग आजिराल का १-१ बूंद अप्राप्त होने पर २-३ बूंद बोरिक एसिड ही डाल देवें। बच्चे का मुख दूषित श्राव में डुबने से बचाता रहै, मुख के भीतरी श्लेष्मा साफ कोमल वस्त्र से निकाल दें ज्यों ही बालक उत्पन्न हो जाय, तो दाई अपने सहायका को आदेश दे कि वह प्रसूता के उदर पर हाथ धर कर टटोलै, इससे उसके हाथ से एक कड़ी वस्तु प्रतीत होगी, उसी को वह धीरे, धीरे, दबाती रहै, और और सचेत रहे, कि एक क्षण हाथ ढीला न होने दे थोड़ी देर में इस क्रिया से गाभ (किन्हाई) शीघ्र ही गिर जायगी, तथा रक्त प्रवाह भी बन्द हो जायगा, और दाई जब देखे, कि नाल में फड़कन नहीं है, तो नाभी से २-३ इञ्च के फासले पर उन्हीं फीतों से मजबूती से बांध कर थोड़ी दूर के अन्तर पर और भी बन्धन लगादे, उन्हीं दोनों के मध्य में तीव्र कैंची से नाल को काट दे। ध्यान रहे, कैंची और फीतों को नाल काटने पूर्व ही उबाल लेना चाहिये। इसी असावधानी से प्रायः जनुआँ रोग हो जाता है, नालच्छेदन के पश्चात् उस पर बोरिकएसिड का चूर्ण छिड़क दें अथवा मीठे तेल से भी कार्य हो सकता है। फिर वे टुकड़े जो कि पूर्व में नं० १६ में बताया गया हैं, उसे नाल में पहिना दें पश्चात् इस पर नं० ६ वाली पट्टी बांध कर सेफटी पिन लगादो। पुनः बालक को दाहिने करवट से किसी गर्म और सूखे स्थान पर लिटाकर गाभ (किन्हाई) गिराने का प्रयत्न करें। नाल के छोर पकड़ कर कभी खींचना न चाहिये, इस से गर्भाशय उलट जाने का भय रहता हैं, तथा यदि गर्भाशय में कुछ अंश टूट कर रह जायगा तो रक्त का अधिक श्राव होकर प्रसूता का प्राणान्त तक भी हो जाता है। प्रथम तो इन उपचारों द्वारा एक घंटे तक गिराने का प्रयत्न करै, नहीं तो यह समझलें कि गाभ गर्भाशय में चिपट गया हैं, अथवा आकार भारी हैं। उक्त समय अपने हाथों में जन्तु नाशक औषधियां लगाकर उसी नाल के सहारे अत्यन्त सावधानी से गर्भाशय में उंगलियों को प्रविष्ट करै, और भीतर से गाभ को शनैः २ छुड़ाने का प्रयत्न करें किन्तु उदर मर्दन का काम पूर्ववत् ही रक्खें। इस क्रिया से किन्हाई शीघ्र बाहर निकल आयेगी।

ज्यों ही किन्हाई बाहर निकले, त्यों ही माताके उदर पर नं० ४ की पट्टी बांधकर सेफ टीपिन लगा दे, बांधते समय उदर की ओर की पट्टी वाला किनारा खूब कस कर बांधे, तथा स्तन की ओर कुछ ढीला रक्खें। इससे श्वाँस लेनेमें कोई बाधा न होगी। पट्टी में सेफटीपिन तीन स्थानों में लगाना चाहिये। एक नितम्बास्थि के समीप, दूसरा उदर बन्ध के नीचे, और तीसरा सामने की ओर लगावें। तदनन्तर रुई की गद्दी से उत्पन्न

स्थान को कुछ सेंक दें, यदि स्थान रक्त आदि से लिप्त हो, तो उसे सेंक के पूर्व ही भली भांति स्वच्छ कर दें, गर्म जल या पुटाशजल से धो डालें।

प्रसूता के प्रति दाई का कार्य समाप्त हो गया, ऐसी दशा में प्रसूता यदि भोजन के लिये मांगे तो शीतल पदार्थ कदापि न दिलावे। पौष्टिक एवं उष्ण वस्तुओं का देना लाभ प्रद होगा। इसके पश्चात् सबसे भारी भार दाई के ऊपर और भी रह जाता हैं। वह यह है, कि जब बच्चा उत्पन्न होता है, उस समय कदाचित न रोवे या न श्वांस लेवे तो उसके लिये श्वांस लिवाने का कोई शीघ्र प्रबन्ध करना होगा। यह उपाय उसी समय करे जब कि बालक जन्मे। और जिस समय दाई बालक का मुख स्वच्छ करे, उसी समय उसकी जीभ उसी कपड़े से पकड़ कर बाहर की ओर बहुत धीरे २ खींचे (यह क्रिया १ मिनट में १० बार के हिसाब से करे) उक्त क्रिया करते समय किसी दूसरे के द्वारा बालक के दोनों चूतड़ों या कपड़े के सहारे धीरे २ धक्के लगवावे, अथवा एक मोटे कपड़े को शीतल जल में भिगो कर बालक की छातीको उसी कपड़े से थपथपावे इससे बच्चा शीघ्र श्वांस लेना आरम्भ करेगा। किसी २ ने गर्मजल (जोकि १०५ की उष्णता का हो) में स्नान कराना भी लिखा हैं। किन्तु इस से शिशु को ज्वर, खांसी, न्यूमोनियां आदि हो जाने का भय रहता है, चतुर दाई बहुत सावधान होकर इसे भी कर सकती है, बस उपरोक्त लेख मैंने बहुत शीघ्रता से संक्षेपतः लिखा है, संभवतः कोई विषय छूट गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं अतः आशा हैं पाठक गण सुधार लेंगे।

महिला जीवन

स्त्रियों को अमृत समान उपयोगी है।

सगर्भा स्त्रियों को सेवन कराने से धीरवीर साहसी, बुद्धिमान सुन्दर पुत्र रत्न पैदा करने में इसके समान और कोई उपयोगी औषधि ही नहीं है, परीक्षा प्रार्थनीय है। मूल्य फी बोतल ४) रु० रुपया डाक खर्च अलग।

मिलने का पता—श्री भगवत आयुर्वेदिक फार्मेसी
बरालोकपुर इटावा (यू० पी०)

प्रसव समय की घटनाएं।

(ले०—वैद्यरत्न पं० हरदत्त जी पांडेय, आयुर्वेदाचार्य प्रधानाध्यापक आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत)

प्रसव मातृ जाति के लिये एक महत्व पूर्ण अवस्था है। साथ ही उस के स्वास्थ्य को हाल करने में प्रधान घातक भी है। जो गर्भिणी स्त्री स्वस्थ होती है, उस के पक्ष में यद्यपि इतनी आशंका नहीं की जा सकती, जितनी कि नियम विरुद्ध रह कर स्वास्थ्य शून्य गर्भिणी के पक्ष में हो सकती हैं। इस समय कई प्रकार की व्याधियां घोर रूप धारण कर प्रसूता के प्राण की घातक हो, तुलती हैं। इन में प्रधान प्रायः ये हैं:—

१—रक्त स्राव

२—नाल का भ्रूण के सामने की ओर अपत्य पथ में गिरना।

३—गर्भाशय या मदन मंदिर का फटना।

४—गर्भाशय का अन्दर की ओर उलट जाना (गर्भ कुंडली) या फट जाना।

५—प्रसवा में आक्षेप के चिह्न।

यह पांचो अवस्थाएं ऐसी भयानक होती हैं कि परिचारिका या धाय को भी मार्ग च्युत कर सकती हैं। साधारण धाय (नर्स) इस को पूर्णतया सम्हालने में असमर्थ हो जाती हैं, ऐसे अवसर में सुयोग्य शल्य चिकित्सक की शरण आपेक्षित हैं। चिकित्सक के आने तक परिचारिका को इतना ज्ञान होना आवश्यक हैं, कि वह रोगिणी को खतर नाक अवस्था से रक्षा कर सके और उस का उपकार कर सके। अतः इन के कारणों के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है।

रक्त स्राव

यह प्रसव होने के समय, प्रसव के पूर्व, प्रसव के अन्त में, अपरा (आंवल) पतन के पूर्व और बाद भी अक्सर हुआ करता हैं।

(१) प्रसव के पूर्व यदि रक्त स्राव होता है तो उस का एक मात्र उपाय अपत्य मार्ग को बंद कर देना है। इस की साधारण विधि यह हैं कि अपत्य पथ को उष्णोदक से धोकर, पिचकारी दें और स्थान परिष्कार करके गर्भिणी को बिस्तर पर आराम से लिटा देवे। करवट सुलाना इस समय अच्छा होता है। पीठ के बल सोने से गर्भाशय की रक्त वहा नाड़ियों में प्रवाह ज्यों का त्यों होता रहता हैं किन्तु करवट में आगे भाग का भार शरीर के आधे भाग पर पड़ कर दबाव डालता हैं। अतः रक्त वाही शिराओं के मुख पर दबाव पड़ता है और रक्त स्राव कम होता हैं। अब विशुद्ध मलमल के पतले कपड़े को लाइसोल में या अशोक सत्व (द्रव सत्व) के द्रव में डुबो करके गर्भाशय ग्रीवा के पास रखकर दबा देवें। इस के बाद अखरोट के बराबर के रुई के फाहे को (शुद्ध रुई) पूर्वोक्त द्रव में भिगो कर उस के योनि मार्ग में लगादे।

इसी तरह एक के बाद दूसरा फाहा † रखकर अपत्य पथ को भर देवें। फिर उसे पीठ के बल लिटा कर चौड़ी पट्टी पेट पर बांध दे, और ऐसा वस्त्राच्छादन करे, कि अपत्य मार्ग अच्छी तरह ढक जावे। साथ ही शीत क्रिया करती रहे।

प्रसवोत्तर रक्त स्राव

यदि प्रसव होने के बाद और अपरा के गिरने के पूर्व रक्त स्राव होता हो तो उसकी शमन विधि यह है, कि गर्भाशय के भीतर से दबा करके अपरा निकाल दी जावे। यदि इस तरह न निकले तो विशुद्ध हाथ करके गर्भाशय में प्रविष्ट कर उगलियों से निकाल देवे। इसके अतिरिक्त प्रसवोत्तर रक्त स्राव के और भी कई कारण होते हैं। जैसे—

१- अवरुद्ध या स्तंभित प्रसव-जब प्रसव समय से न होकर देरसे होता हैं, तो प्रसूता को प्रसव वेगार्थ बार बार कुंथन करना पड़ता है। इससे वहां की पेशियाँ शक्ति रहित और रक्त वाहिनी नाड़िया ढ़ीली और अवसन्न हो जाती हैं। इधर वेदनाधिकता के कारण प्रसूता की भी शक्ति जाती रहती है। इस अवस्था में रक्त वाहिनियों का मुह खुला ही रह जाता है, और रक्त स्राव होता रहता है।

२- यमल प्रसव या भ्रूण कोष की वृद्धि-यमल गर्भ में एक के बाद दूसरे प्रसव के होने से गर्भाशय की पेशियों को द्विगुणित कार्य करना पड़ता है, वह शिथिल हो जाती हैं। तथा गर्भाशय भी फूल जाता है। अतः रक्त वाहिनियों के मुख ज्यों के त्यों फैले हुये ही रहते हैं और रक्त स्राव होता रहता है। क्योंकि बार बार आकुंचन प्रसारण से उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है, भ्रूण कोष में भी जब जल का संग्रह हो जाता है। तो उस में सिकुड़ने की शक्ति कम हो जाती हैं।

३-मूढ़गर्भ— इस में शल्य प्रयोग से बालक को बलात अपत्य पथ से बाहर निकालते हैं। गर्भाशय अपनी दशा को संभालने के पूर्व ही अचानक खाली हो जाता है। अपरा के रुक जाने से रक्त स्राव होता रहता है।

४- बहु प्रसव- संतान धारण, व प्रसव से गर्भाशय की पेशियां ढीली पड़ जाती हैं। अच्छी तरह नहीं सिकुड़ पातीं।

५-अपरा या नाल इत्यादि के अंश का गर्भ में रुक जाना-इस में रुके हुये अंश के सड़ने से गर्भाशय दूषित हो जाता हैं, तथा स्थान गत क्षत हो कर रक्त बह निकलता है। कभी २ रुके हुये अंश को निकालने के लिये मूर्खा दाइयां हाथ डालतीं तथा बल पूर्वक निकालती हैं। अतः यह अवस्था प्राप्त हो जाती है।

६- प्रसूता की कमज़ोरी-कमज़ोर होने के कारण मांस पेशियां शिथिल होती हैं अतः संकोच गर्भाशय में न्यून होता है।

७- गर्भाशय की कमज़ोरी या रुग्णावस्था (अर्बुद इत्यादि)—

८- प्रसव के पूर्व रक्त स्राव होना।

९- प्रसवोत्तर उचित उपचार का अभाव।

† रुई उतनी ही भरी जाय जितना कि मार्ग ग्रहण कर सके। अन्यथा रुग्णा तकलीफ अनुभव करेगी।

१०- अधिक विष प्रयोग (क्लोरोफार्म की अधिकता)।

इन सबों में अवस्थानुसार भिन्न २चिकित्सा होती हैं।

चिकित्सा—

सर्व प्रथम चिकित्सा तो यह हैं. कि गर्भाशय के अंदर के स्राव को दबा कर बाहर कर देवे। इसके बाद उष्ण * जल से पिचकारी लगाकर के वहां पर लाइसोलद्रव का प्रयोग करे। और अर्गटसत्व (Liquid of argo १ द्राम को कुछ जल में मिला कर पिला देवें। इससे उस में का रहा सहा अपरा इत्यादि का भाग बाहर निकल जाता है। साथ ही गर्भाशय भी संकुचित होता है। संकोच से फैली हुई शिराओं के मुख संकुचित होते हैं, और रक्त स्राव बंद हो जाता हैं।

पंचक्षीरी कषाय— रक्त स्राव में सुश्रुत में पंचक्षीरीकषाय को महत्व दिया हैं। यह प्रयोग रक्तरोध के लिये उत्तम भी हैं। अतः इसके क्वाथ में शुद्ध रुई को पिचु बना करके रखना हितकर है। शीत क्रियाओं में पेडू पर बर्फ रखना भी शैत्योपचार में पूजित हैं। शीत से नाड़ियों में संकोचहोता है, अतः रक्तस्राव जाता रहता है। क्षत की हालत में शल्य चिकित्सक को उस स्थान को सीं देना चाहिए।

इस अवस्था में कई उपद्रव भी होते हैं। क्योंकि रक्तस्राव की अधिक से क्षीणता शीघ्र स्थान जमा लेती हैं। उन में प्रधान ये हैं:

(१) मूर्च्छा। (२)शीताङ्गता (३)दौर्बल्य।

१-मूर्च्छा—यह अवस्था प्रायः रक्त क्षीणता के ही कारण से होती हैं। इसमें उपाचारार्थ कई प्रकार हैं। सबों का अभिप्राय हृदय की गति शीलता को स्थिर रखना हैं। यथा-

१-हृदय को उत्तेजित करनेवाली औषधियों का प्रयोग इस अवस्था में हितकर है। अन्यथा हृत्स्पन्द बंद होकर रुग्णा की मृत्यु निश्चित है। एतदर्थ मृत संजीवनी सुरा, ब्राण्डी को पिलाकर तथा अन्य शक्तिशाली आसव और सुराओं का मात्रानुकूल प्रयोग होना चाहिये। इससे हृदय उत्तेजित होकर कार्य करता चला जाता है।

२- प्रसवा के शिर से तकियों को हटाकर के पैरों को ऊंचा रखना। इस क्रिया द्वारा रक्त शिराओं द्वारा अल्परहने पर हृदय की तरफ प्रभावित होता है। तथा रक्त परिभ्रमण चक्र को पूरा करता रहता है। हृदय की गति नहीं रुकती

३- प्रसूता के ऊर्ध्व और निम्न शाखाओं (हाथ पैरों) को मजबूत पट्टियों से कस कर बांध देना। इस में अभ्यन्तर प्रदेशों में आवश्यकतानुसार रक्त परिभ्रमण होता रहता हैं,

४- वस्ति प्रयोग- एनीमा द्वारा उष्णोदक का मलाशय में भर देना। बज़न में सवा या डेढ़ १॥ सेर हो—

शीतांङ्ग—

रक्त क्षीणता के कारण सर्वांग शैत्य Collapse (हो जाता हैं। इस अवस्था में रोगि-

१-. कदुष्ण जल से काम नहीं चल सकता, यहाँ पर अत्युष्ण जल का प्रयोग होना आवश्यक है।

णी के हाथ पैरों को उष्ण जलसेक द्वारा उष्ण रखना चाहिये। चन्द्रोदय, मल्लचन्द्रोदय, कस्तूरी इनका प्रयोग उचित मात्रा में होना आवश्यक हैं। पूर्ण निश्चय रोगिणी को हर हालत में मिलना चाहिये, उष्ण उपचार इस में करना हितकर है॥

दौर्बल्य- इस केलिए मूर्च्छा,वाली विधियों में से मृतसंजीवनी सुरा या अन्य औषधियों का प्रयोग होना चाहिये। जोशक्ति दायक बल्य हों, और हृदय की गति अवरोध कर न हो।

१— उष्णोदक निर्माण विधि-१० छटांक जल में १ चम्मच चाय वाले चम्मच से खाने का शुद्ध नमक डाल देना चाहिये कदुष्ण हो।

२- बोतल में गर्म पानीभरकर के हाथ पैरों पर फिराना चाहिये।

नाल का स्थान च्युत होना—

नाल भ्रूण के नाभी से और अपरा तक मिला हुआ रहता हैं,भ्रूण का पोषण इसके द्वारा ही होता हैं। यह धमनी और शिराओं से ही युक्त भ्रूण के होता हैं, धमनी द्वारा विशुद्ध रक्त अपरा से भ्रूण के शरीर में जाता है, और शरीर में भ्रमण कर लेने पर शिरा द्वारा अपरा को पुनः लौट आता है। जब यह नाल भ्रूण के शरीर और श्रोणिगह्वर के बीच आ जाता हैं, तो दवाव में पड़ने से जो रक्त इसके द्वारा आता जाता रहता है, वह बाद हो जाता हैं,परिणामस्वरूप बच्चे को पोषण सामग्री न मिलने से वह मर जाया करता है। यदि धाय (नर्स) को इसकी आशंका हो, तो शीघ्र ही किसी सुयोग्य चिकित्सक की शरण में जाना चाहियेचिकित्सक के आने तक अधोलिखित कार्य करे, तो रोगिणी सुख अनुभव कर सकेगी।

१—प्रसवा को घुटने और हाथ के बल उलटी पेट के बल लिटा दें। इससे गर्भ का नाल प्रायः अपने स्थान पर आ जाता है, यह कार्य यदि गर्भकला न फटी हो तब उत्तम है।

२-गर्भकला के फटने पर यदि नालभ्रूण और श्रोणिगह्वर के बीच में आ गया है, तो धीरे से दो अंगुलियों द्वारा ऊपर को ढकेल कर शूल उत्पन्न होने तक पकड़े रहें। किसी अस्त्र शस्त्र द्वारा कभी भी नाल को भीतर करने का प्रयत्न न करें। यह गर्भिणी और शिशु दोनों के पक्ष में हानिकारकहोता है।

गर्भाशय का विदीर्ण हो जाना

प्रसव के समय गर्भ की विकृति और दाइयों की अज्ञानता के कारण कभी २ गर्भाशय फट जाता है। यह बहुत ही भयंकर तथा घातक अवस्था प्रसवा के लिये है। इसमें मृत्यु अनिवार्य हैं, किन्तु यह बहुत ही कम होता है, गर्भाशय की फटने की पहचान यह हैं कि:—

१—गर्भाशय में काटने की तरह पीड़ा होती है। प्रसवा इसे असह्य दर्द कह कर एक दम चीख उठती है, उसे ऐसा प्रतीत होता हैं कि कोई वस्तु शरीर से कट कर शरीर से बाहर हो रहा है।

२—दर्द एकायक बन्द हो जाता हैं। प्रसव वेदना इत्यादि का जो अनुभव होता था, अब वह बंद हो जाता है। अपत्यपथ में जो अंग अब दिखाई देने लगा था, वह लुप्त हो जात है, गर्भाशय निष्क्रिय और शान्त सा जान पड़ने लगता है।

३—रक्त का स्राव अत्यधिक होना आरम्भ होता है,

४—मलाशय की परीक्षा करने पर वह योनि मार्ग में स्थान च्युत होकर खिसका दिखाई पड़ता है।

५—पसीना अधिक निकलने लगता है, जो स्पर्श में शीत होता है।

६—नाड़ी की गति मंद होने लगती है, यहाँ तक उसकी गति प्रति मिनट ४० से ५० तक या, इस से भी कम रह जाती हैं।

७—श्वास प्रश्वास की क्रिया में विघात हो जाता है। यह अनियमित होने लगता है। कभी कभी रुक रुक कर कभी तीव्रता के साथ शीघ्र २ होने लगता है।

सामयिक चिकित्सा

इस दशा के इन लक्षणों को देखते ही योग्य चिकित्सक (शल्य चिकित्सक) की सहायता लेना आवश्यक है। शल्य चिकित्सा द्वारा ही इस रोग का परिमार्जन हो सकता है। चाहे वह सीवन कर्म हो या शिरावेधन। चिकित्सक के आने तक हृदय को उत्तेजक तथा बल प्रद औषधियों का प्रयोग जैसे ब्राण्डी, मृतसंजीवनी सुरा अर्जुनासव इत्यादि का प्रयोग होना चाहिये।

गर्भाशय के फटते ही इस के ऊपर की स्तम्भित आंते नीचे उतर आती हैं। मलाशय से मल निकलने लगता है। ऐसी हालत में अच्छी तरह उबले हुवे जल में विशुद्ध कपड़े को भिगो करके गर्भाशय के फटे हुए भाग की तरफ से निकले हुए आंतों को ढक देना चाहिए।

मदनागार के मुख का फटना

कभी २ प्रसव कर्म की अनभिज्ञता के कारण मदनागार योनि का मुख फट जाता है, इस से प्रसूता को अधिक तकलीफ उठानी पड़ती है।

स्राव होने से दुर्बलता के लक्षण पैदा होने लगते हैं। इसकी तत्क्षण ही चिकित्सा उचित है। यदि अपत्य पथ अधिक फट गया है, तो शल्य चिकित्सक की सम्मति लेना आवश्यक हैं। अन्यथा उसे परिष्कार करके शीघ्र ही सी देना चाहिए। ताज़ा सी दिया गया क्षत शीघ्र ही मिल (रोपित) जाता हैं।

विधि—क्षत स्थान को † लाइसोलद्रव (लाइस ल्यूशन) से बार २ धोकर परिष्कार रखना चाहिए। शल्य चिकित्सक के आने तक यही क्रिया क्षताधिक्यावस्था में करना चाहिये। आने पर उचित सहायता प्राप्त करके रोगिणी की रक्षा करना चाहिये। हमेशा ऐसे कार्यों में निष्कीट (Sterilized) सूत्र इत्यादि का प्रयोग होना चाहिये, अन्यथा सूतिका के लिये कीटावेश का भय हो सकेगा।

गर्भाशय की स्थान च्युति या सन्धि च्युत होना Distocation of leterus प्रसव कभी २ प्रसव वेदना से व्यथित होकर नाना तरह की कुचेष्टायें जैसे—भागना, दौड़ना या शरीर पीटना, हाथ पैरों को वे तरीके पटकना इत्यादि कार्य कर बैठती है। इस का परिणाम यह होता हैं कि गर्भ अपनी गुरुता के कारण स्थान भ्रष्ट होकर बाहर की तरफ दिखाई देने लगता है। कभी २ परिचारिका के अज्ञानता के

†—लाइसोल सोल्यूशन—सौ भाग जल में १ भाग लाइसोल मिलाकर धोने के काम में लाना उचित है।

कारण नाल को खींच कर निकालने से या शल्य कर्म से प्रसव कराने पर भी गर्भाशय बाहर लटकता दिखाई पड़ता है। इस के विशेष लक्षण ये हैं।

१—रक्त स्राव की अधिकता।

२—रक्त स्राव के साथ गर्भाशय के वृत्त भाग का दर्शन।

३—नाभि के पास के गर्भाशय के स्वाभाविक स्थान पर दबा हुआ ग्रीवा प्रदेश का दिखाई पड़ना, या लटक पड़ना। ४—ठंडे पसीने का निकलना।

उपचार— इस हालत में धात्री को उचित है, कि वह रक्त स्राव युक्त गर्भाशय को भीतर की तरफ ढकेल देवे, और कमर के नीचे एक तकिया रख देवे। इससे लाभ न हो, तो चिकित्सक की सहायता लेवें। और तब तक बल कारक औषधियों का प्रयोग करती रहे। इसका सर्व प्रधान कारण नालका खींचना ही है। अतः इसकी यदि नौबत ही न आने दी जाय तो रोग का निरोध स्वयं सिद्ध हो सकता है। अन्य कारणों में अवस्था कुछ भयानक हो जाती है।

प्रसूता के अक्षेप के चिन्ह

यह रोग प्रसूतावस्था में प्रायः पाया जाता है। इसमें प्रसूता एक दम बेहोश हो जाती है। और हाथ पैर ऐंठ जाते हैं। कम उम्रवाली प्रसूताओं के प्रथम प्रसव के वक्त में यह रोग अधिक होना पाया जाता है। क्यों कि उनके ज्ञान तन्तु कमज़ोर होते हैं। कभी २ वृक्क की रुग्णावस्था के कारण मूत्र विषों का परिशोधन अच्छी तरह नहीं हो पाता, अतः उसमें का का 'यूरिया नामक विष रक्त में मिलता जाता है। अधिक समय तक इसी तरह विष के संग्रह के होते रहने से चिन्ता, भय शोक, तथा, भयंकर काण्ड के देखने इत्यादि से विषाक्त लक्षण पैदा होते हैं। इसमें साधारण लक्षण यों होते हैं।

आखों से चिनगारियों की तरह प्रकाश या सामने भुनगे उड़ते हों ऐसा मालूम होता है। आँख की पुतली कुछ संकुचित होने लगती हैं। विचारों में परिवर्तन हो जाता है। रोगिणी बहकी २ बात करने लगती है। दांती लग जाती हैं। मुख से झाग निकलने लगते हैं। मर्मान्तक कष्ट होता हैं। श्वास का वेग रुकता जाता है, धीरे धीरे श्वाश चलने लगता हैं। जिसमें फुत्कार जैसे शब्द निकलते हैं। ज्ञान लुप्त हो जाता हैं, वेग शांत होते ही रोगिणी शांत हो जाती हैं। उसे ऐसा मालूम होता है, जैसे सोकर उठी होवे पूर्व कालिक मर्मान्तक पीड़ाये सब शांत हो जाती हैं। वह उसे विस्मृत सी हो जाती हैं। वह अपने को रोग मुक्त समझने लगती है,

यह वेग ३, ४ मिनट रह कर शांत हो जाते हैं, वेगों की अधिकता में अवस्था शोचनीय हो जाती है। इसकी चिकित्सा शीघ्र ही करनी चाहिये। ऐसी हालत में एक तिहारी स्त्रियां मृत्यु की शिकार बन जाती हैं। जिनका प्रधान कारण श्वासावरोध (दम घुटना) है।

चिकित्सा—रोगिणी को वस्ति क्रिया द्वारा पेट साफ कराना आवश्यक हैं। यदि इसके लिये कोई बाधा उपस्थित हो तो रेचन चूर्ण, पंचसकारचूर्ण देवें। रेचन चूर्ण यथाः—

हरड़ का वक्कल ऽ हरड़जलापा ।ऽ कालानमक २तो०, इन तीनों का कपड़ छान किया हुआ चूर्ण ३ माशे उष्णोदक से से देवें दो घंटे में २ या ३ दस्त आकर पेट साफ हो जायगा।

यदि रोगिणी औषध निगलनेमें अस मर्थ है तो जयपाल तैल (Crotenoil) १ बूंद, शक्कर ४ रत्ती के साथ मिल कर जीभपर मसल देना चाहिये। इससे दस्त आ जाँयगे।

इससे नसों को तनावट, पुतलियों का संकुचित होना ये सब रोग ठीक हो जाते हैं, यदि इन उपयुक्त औषधियों से कुछ फायदा न हो और दस्त साफ न आवे, तो वस्ति कर्म (एनीमा) करना चाहिये,।

रोग का कारण मूत्रविष (यूरिया) न हो, या वृक्क के रोग इस समय न हों तो अहिफेन सत्व (मार्फिया)तिहाई के ग्रेन की मात्रा से त्वचागत (हाइपोडारमिक)सूची वेधन क्रिया से सहायता पहुंचानी चाहिये।

यदि उन्माद, या मूर्च्छा, या बकना, न प्रारम्भ हुये हों, और दौरा बारबार हो रहा हो तो, क्लोरो फार्म का भी प्रयोग उत्तम होगा। इसे सुघाना पड़वा है। रोगिणी के आक्षेप इसके प्रभाव से बंद हो जाते हैं।

दांतो के नीचे एक तौलिया या कार्क लगा देना चाहिये। अन्यथा जीभ दांतों के बीच में पड़ कर कट जा सकती हैं।

सबल और पुष्ट रोगिणी के लिये शिरा मोक्षण कर रक्त को निकाल देना भी फायदे मंद है, यह कार्य तब करना चाहिये, जब मस्तिष्क की मांस पेशियों में संकोच हो रहा हो, मुख नीला पड़ गया हो, नाड़ी गम्भीर व भारी चल रही हों, रक्त मोक्षण का परिणाम देश काल की अवस्था देख करके ही ठीक करना उचित है।

दौरों के शान्त होने पर वात शामक औषधियों के प्रयोग से पुनराक्रमण का संदेह दूर हो जाता है,

चिन्तामणिचतुर्मुख,रस, समीर पन्नग, वातकुलान्तकरस, समीरगजकेशरी इत्यादि में से किसी एक को दशमूल के क्वाथ के साथ सेवन कराना चाहिये, पाश्चात्य चिकित्सक दौरे को रोकने के लिये अधोलिखित औषधि योग क्रम में लाते हैं।

पोटाशियम ब्रोमाइड २ ग्रेन जिनसाई विलेरिया नेट २ ग्रेन	१ मात्रा

ज्वरावस्था में क्युनीन विलेरियन भी इस में मिला लेते हैं। विशेष खतरनाक अवस्था या दौरे के बार बार आने पर उचित है कि परिचारिका किसी सुयोग्य चिकित्सक की शरण लेवे

प्रसव तिथि का ज्ञान

(ले० प्रोफेसर, बसन्तलाल जी महर्षि B. A. आयुर्वेदाचार्य
S. D. Ayurvaidic College लाहौर

गर्भ की पूरी अवधि २९८ दिन मानी गई है। यदि प्रत्येक महीना ३० दिनका हो तो ९ महीने और ८ दिन में प्रसव होना चाहिये, परन्तु कभी २ इस समय से दो चार दिन आगे पीछे भी प्रसव हो जाता हैं। स्त्री ने जिस तिथि को अन्तिम ऋतु स्नान किया हो, तिथि से २७८ दिन लगा कर ठीक तिथि और समय तक, का भी नियत कर लिया जाता हैं।

इस प्रकार से तिथि जानने के लिये साथ ही एक चार्ट दिया जाता है, जिससे प्रसव की तिथि ठीक मालूम हो सकती है।

इस प्रकार से कुछ समय पहले प्रसव की ठीक तिथि जान लेने से जो लाभ होते हैं, उनका वर्णन करना तो यहां पर असंगत होगा। क्योंकि यह बहुत मोटी बातें हैं, और सर्व साधारण पर भली भांति विदित हैं।

प्रसवतिथि का ज्ञान

जनवरी	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	नवम्बर
अक्टूबर	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
फरवरी	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८	दिसम्बर
नवम्बर	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० १ २ ३ ४ ५	
मार्च	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	जनवरी
दिसम्बर	७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५	
अप्रेल	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०	फरवरी
जनवरी	७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४	
मई	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	मार्च
फरवरी	६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
जून	२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०	अप्रेल
मार्च	८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५ ६	
जौलाई	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	मई
अप्रेल	७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
अगस्त	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	जून
मई	८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
सितम्बर	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०	जौलाई
जून	८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
अक्टूबर	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	अगस्त
जौलाई	८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५ ६ ७	
नवम्बर	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०	सितम्बर
अगस्त	८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ १ २ ३ ४ ५ ६	
दिसम्बर	१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१	अक्टूबर
सितम्बर	७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० १ २ ३ ४ ५ ६ ७	

उदाहरण:—किसी स्त्री की मासिक धर्म की अन्तिम तिथि ८ अगस्त है—तो ८ अगस्त के अंक के नीचे १५ का अङ्क देखें, अर्थात उस स्त्री की प्रसव तिथि १५ मई होगी—अर्थात् १५ मई के लगभग अवश्य प्रसव होना चाहिये।

प्रसवान्त कर्म—

[लें० आयुर्वेदाचार्य डा० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी वैद्य विशारद]

सर्व साधारण घरों की बहुयें बहुत ही अनभिज्ञ होती हैं, वे प्रसवान्त के बाद के कर्म का ज्ञान किञ्चितमात्र भी नहीं रखतीं, उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं आता कि प्रसव के बाद प्रसूतिका का किस प्रकार परिचार्य्या करना चाहिये । विशेषतया सोंवर में उन्हीं चार स्त्रियों को नियंत्रित करना चाहिये, जिनके ३-४ प्रसव हो चुके हों, और तथा ३-४ प्रसव कार्य स्वयं कर चुकी हों, साथ ही उन के प्रति गर्भिणी संकोच तथा लज्जा रहित हो जिससे वह अपना अङ्ग निर्भीकता के साथ दिखा सकें ऐसा श्रीमान् सुश्रुत जी का उपदेश है:—

"अशङ्कनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणवयसः प्रजनन कुशलाः कर्तितनखाःपरिचरेयुः" ।

प्रसव के बाद कुछ समय तक अशुद्ध रक्त योनि मार्ग से गिरा करता है । इसके निस्सरण हो जाने के पीछे बिछी हुई शय्या पर प्रसूता को लिटा देना परमावश्यक है, कम से कम एक घंटे भर चुप चाप लेटी रहे, ऐसा न करने से रक्त अधिक निकल जाता है, और प्रसूति अधिक कमजोर होकर मूर्छित हो जाती है। जो स्त्रियां विशेष शुद्धता की भक्त हैं, वह तुरन्त ही प्रसूता के वस्त्र बदलवाने का प्रयत्न उपस्थित कर प्रसूता को महान कष्ट में डाल देती हैं।

प्रसूता को जिस किसी भी विधि से कष्ट कम हो वही विधि से वस्त्र बदलवाना धाय की बुद्धिमता की तारीफ करना है, जो इसका भली भांति पालन नहीं कर सकतीं, वे धात्र कर्म से अनभिज्ञ समझीं जाती हैं। कुछ तो कपड़ा देकर प्रसूता को स्वयं बदलने को आदेश देती हैं, इसमें उन्हें विशेष कष्ट होता है।

इस कार्य को क्रमशः एक एक करके वस्त्र बदलती जांय तो अच्छा है। विशेष कर धोती या लहँगा के ही बदलने की आवश्यकता होती है। इसी में रक्त लगने से दूषित होने की आशंका है। यदि कारणवश ऊपरी किसी वस्त्र में रक्त लग जाय, तो वह भी बदल देना चाहिये। धोती का बंद, या लहँगा का नारा खोल कर वस्त्र बदलते समय दो स्त्रियां प्रसूता की कमर और पैर में सहारा देकर उठालें, और दो नीचे वस्त्र बिछा कर और नवीन वस्त्र पहिना देवें। जो उठाने का कार्य करै वह पहिराने का न करै, ऐसा करने से झटके से कष्ट होगा। इसीलिये सुश्रुताचार्यने प्रसवगृह में चार स्त्रियों को रहने का आदेश दिया है। ऊपरी वस्त्र बदलने के लिये दो स्त्रियां प्रसूत के हाथों को अपने अपने कंधेपर रख के एक हाथ पीठ और शिर पर लगाके वस्त्र को हटा लें, पश्चात् हाथों से निकाल लें। इसी क्रम से लिखी रीति से वस्त्र पहिना भी सकती

हैं। ऊपरी वस्त्र के पहिराने में ध्यान देना बहुत जरूरी हैं, कि वस्त्र संकुचित न हो, जिससे प्रसूता का गला दब जाय और स्तन कस जांय।

दूसरा कृत्य अत्यावश्यक है, पेडू पर पट्टी बांधना, जब अशुद्ध वस्त्र दूर हो जांय, तब पट्टी बांधने का कार्य प्रारम्भ करें। प्रथम गर्म जल से स्वच्छ रुई या धुले हुये वस्त्र से योनि के ऊपरी भाग में लगा हुआ रक्त साफ कर दें, घर के मैले कुचैले वस्त्र काम में न लावें, अथवा दूषित कृमि-रक्त में पहुंचने से हानि होने की सम्भवना हैं। पुनः बिछौने पर १ वस्त्र जो कमर, पुट्ठों पर एकहरा, पेट पर दोहरा, आ सकै, ऐसा स्वच्छ वस्त्र बिछा देना चाहिये। फिर जघन स्थान के ऊर्द भाग में, व नाभि के नीचे, और इधर उधर स्वच्छ धुनी हुई रुई का चौतई किया हुआ स्वच्छ वस्त्र रख कर नीचे के वस्त्र को उलट कर कस दें। परन्तु यह ध्यान रहे कि पेट पर अधिक भार न आये।

जो स्त्रियां इस पट्टी को कस कर बांध देती हैं, या पेट पर भारी वस्तु रख, गांठ बांध देती हैं तो प्रसूता को लाभ के बदले हानि होती हैं, ऐसा न करना चाहिये। गांठ की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, कारण प्रसूता को २-३ दिन सीधे लेटे रहना ही चाहिये। इससे पट्टी खुलने का भय नहीं हैं, यदि विशेष आवश्यकता हो, तो पट्टी के छोरों पर सेफ्टीपिन लगादें, इस के बांधने का प्रयोजन यही है। कि गर्भाशय को सुव्यवस्थित करना और शोथ को बिठा देना प्रसवान्तर गर्भाशय की ग्रन्थि गेंद के समान पेडू पर ज्ञात होती है, जो हाथ फेरने से स्पष्ट ज्ञात होती हैं। यह ग्रन्थि गल कर १०-१२ दिन में शनैः शनैः ठीक हो जाती है। तब यहां हाथ फेरने से कुछ भी ज्ञात नहीं होता है।

इस विधि से सफाई तथा पट्टी बांधने के पीछे प्रसूता शय्या पर ठीक लेटी हो तो दो स्त्रियां सहारा देकर ठीक करदें, उष्ण काल में चादर, शीत काल में रजाई, या कम्बल, ओढ़ा दें। परन्तु अधिक भार का लादना उचित न होगा। ओढ़ने का वस्त्र गले तक रखना चाहिये। मुख खुला रहे यह ध्यान रहे। अब प्रसूता के भोजन का फिक्र करना आवश्यक है।

भारत एक विशाल प्रदेश हैं, इस के प्रत्येक प्रान्त के अनुसार पथ्य पृथक २ हो सकता हैं। अतएव सबका उल्लेख न करते हुये, केवल गुणानुसार लिखना ही परियाप्त होगा, सो सभी प्रान्तों में समान लाभ प्रद होगा, हमारे आचार्य प्रवर सुश्रुत जी ने प्रसूता की वायु शान्त्यर्थ बलातैल लगाने तथा रास्नादि क्वाथ से अंग धोने का उष्णोदक बनाना बताया है। साथ ही पीने को दशमूल क्वाथ की व्यवस्था की है। परन्तु जब रक्त पूर्ण रूप से शान्त न हुआ हो, तो प्रसूता को पंचकोल का क्वाथ गुड़ युक्त उष्ण ही पिलाना चाहिये। कम से कम ३ दिन पश्चात् दशमूल क्वाथ दें। या दशमूलासव दें।

विदारीकंद का पाक भी दे सकते हैं। तथा घृत, दुग्ध, युक्त यवागू की व्यवस्था करें। प्रथम ३ दिन तक केवल उष्ण दुग्ध देते रहें, अन्न की व्यवस्था न करें। यह ध्यान रहे।

परन्तु आधुनिक चिकित्सक गम चाय चिउड़ा भात खीचड़ी, शोरवा देना हितकर मानत हैं। परन्तु इस पर विचार करने से स्पष्ट बोध होता हैं, कि ये पुरुष प्राचीनाचार्यों की भांति दीर्घ दर्शी नहीं हैं। चरक ने स्पष्ट कहा है। "विशेषतो हिशून्य शरीराः प्रजाताभवन्ति" अर्थात् शरीर शून्य होकर रुक्ष गुण द्वारा वायु के कुपित होने पर पूर्ण भय रहता है, व वायु कुपित होने पर मकल शूल आदि व्याधियां उत्पन्न हो जातीं हैं, इसी से वायु की रुक्षता शांत्यर्थ घृत का विशेष व्यवहार बताया है। भारतियों के लिये यही उचित है, हमारी राय में १५ दिन तक मांस यूष देना हितकर नहीं हैं, शास्त्रों में भी यही राय मिलती है, कि १५ दिन तक भात का देना भी हानि कर है। तत्पर्य यह है, कि सद्य प्रसूता को चाय मांस भात कदापि न दें। इसी अवस्था में हमारे कुछ मित्र संकोचनार्थ तथा निद्रालु होने के कारण शराब देना हित कर बताया करते हैं। परन्तु मद्य का गुण रूक्ष, तीक्ष्ण तथा उष्ण होने से प्रसूता के लिये हित कर नहीं हैं, यदि प्रथम के ३ दिन शुण्ठीपाक, बादाम पाक, बादम हलु आ को क्रमशः सेवन कर चौथे दिन यवानीपाक खाने केपश्चात् १२ दिन रोटीदाल खाय तो विशेष अच्छा है, साधारण अवस्था का यह पथ्य ठीक है, परन्तु प्रसूता व्याधि उत्पन्न होने पर तथा देश काल स्वभाव आदि पर विचार कर विशेष व्यवस्था चिकित्सक से करानी चाहिये।

परन्तु वह रूक्षन हो यह ध्यान रहे भोजनान्तर अच्छी प्रकार सोने देना चाहिये, प्रसूता स्थान में किसी प्रकार का कोलाहल न होना चाहिये। आम बातें हैं, की बच्चा होने पर गाना बजाना आदि खूब होता है। परन्तु भोजन के कम से कम चार घंटे तक यह सब बन्द रहें, जिससे प्रसूता को नींद ठीक आजाय। यदि वह सोने न पाये तो उसका स्वास्थ्य खराब हो जायगा। हमारे यहाँ की प्रचलित बात अति लाभ प्रद है और वह जंगली पन समझी जाती है, पर वह बात ऐसी नही है।

प्रसूताके स्थानपर पुत्रोत्पत्ति के अनन्तर ४, ५ दिन अंधेरा रहना आवश्यक है न तो विशेष झोके की वायु जा सके न एकदम स्वच्छ वायु का अभाव हो वायु संचार के लिये, खिड़कियों का होना आवश्यक हैं। अंधेरा रहने से प्रसूता को नींद गहरी आती है, और बच्चे के नेत्र पुष्ट हो जाते हैं। यदि शरद ऋतु हो तो निर्धूम अंगीठी दरवाजे पर रखने की व्यवस्था कर देना चाहिये भीतर अंगीठीकी आवश्यकता नहीं किन्तु आवश्यक होने कुछ समय के लिये निर्धूम अगीठी रख सकते हैं। जैसी कि देहातों में प्रचलित है। प्रसूतागार में अग्नि जला कर धूम रख लेते हैं, यह प्रथा बुरी है ऐसा न होना चाहिये। यह जंगली पन कहलाता है।

कभी २ रक्त विकार के कारण गर्भोत्पादन के पश्चात एक सप्ताह या दो सप्ताह तक बराबर रह रह कर दर्द हुआ करता हैं, कारण इसका गर्भाशय न शुद्ध होना ही है, जिसके लिये सुश्रुताचार्य ने लिखा हैं।॥

"प्रजातायश्चनार्या रूक्षशरीरायास्तीक्ष्णैं रवि शोधितं रक्त वायु ना तद्देशगतेनाति संरुद्ध नाते रधः पार्श्वयाबस्तौ वस्ति शिरसिक ग्रंथि करोति-

नेति ततश्च नाभिवस्त्युदर शूलानिभवन्ति सूर्य भिखित स्तुद्यन्ते भिद्यते, दीर्यत इवच पक्वाशय, समन्तादाध्मानगुदो मूत्रसंगश्च, गवतीतिमक्क-लक्षणम्।' इसीकी व्याख्या करते, हुये डल्हण ने लिखा है।

प्रजनन शोणित सञ्जिनित शूलं मक्कल्लः

इस के दो भेद प्रतीत होते हैं १-साधारण जो रक्त ग्रथियों के निकालने पर स्वयं शांत हो जाता है। दूसरा असाधारण जो अधिक समय तक ठहर कर अन्य रोगों को उत्पन्न कर देता है। जिनका मुख्य लक्षण ऊपर लिख चुके हैं, साधारण लोग इस शूल की परवाह नहीं करते कहते हैं। कि गर्भाशय ग्रन्थि के संकोच विकाश का शूल हैं, अतएव यह भयावह नहीं है, यह लाभ प्रद है। परन्तु यह बात ऐसी नहीं है। यदि रक्त की गाँठें न निकलें, और शूल बाढ़ जाय, तो चिकित्सा योग्य वैद्य की अवश्य राय लेकर प्रारम्भ करदे। यद्यपि प्रसूति के पीछे २१ दिन तक कुछ कमाधिक रक्त जाता रहता है। पर दशा प्रति दिन बदलती रहती है। प्रति दिन १०।१५ बार तक मैला वस्त्र बदला देना चाहिये। परन्तु पांच छः दिन बाद दो बार से अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। रंग हलका तथा तरलता बढ़ती जाती है, या नवें दिन से कुछ नीलाभ रक्त आने लगता है। गन्ध अम्ल आती है, नासिकामें प्राप्त होने से जी मचलाने लगता हैं। अंतमें १२ दिन बाद हलका गुलाबी रंग आकर बिलकुल शांत हो जाता है, परन्तु यह समय २ पर कभी कम कभी इस से भी ज्यादा हो सकता हैं, परन्तु अधिकांश में यह ठीक ही होता है, मृत्वत्सास्त्रियों के यह कम हो जाता है, परन्तु यह सदैव ध्यान रहे कि रक्त बंद होने या प्रसूति की तबियत सब प्रकार ठीक है, यदि किसी प्रसूता के प्रथम यह रक्त पूर्ण मात्रा से होकर एकदमबन्द हो जाय, तो यह अवस्था चिंता जनक है, इससे स्वास्थ्य में बाधा उपस्थिति हो सकती हैं,

यदि यह हो तो इसे शीघ्र ही ठीक करा वे। जब तक रक्तस्राव जारी रहे, तब तक सफाई का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये, जब जब भीगा वस्त्र हटाया जाय तब उष्णोदक से योनि स्थान शुद्ध कर लिया जाय, तब दूसरा वस्त्र लगाया जाय। इस में आलस्य करना बुरा है। मैला होने से अनेक रोग पैदा हो सकते हैं। जिससे यह काम लिया जाय वह फेंक दें, दूसरा फिर नया वस्त्र या रुई ले। जो यह कार्य करे वह परिचारिका तुरंत अपने हाथ साबुन से मलकर धो डाले जिससे रक्त गंध न अवशिष्ट रहे। जहाँ धोने का कार्य किया जाय वहाँ पर यदि विशेष कष्ट हो तो अरंड पत्र या खसखस केकाथ से धीरे धीरे वहाँ धोना चाहिये। फिर पोंछ कर नारायण तैल या शतावरी तैल लगा देना चाहिये।

इस के अतिरिक्त एक और विशेष बात ध्यान योग्य यह है, कि अनेक बार यह देखने में आता हैं, कि योनि के भीतरी भागों की ठीक शुद्धता न होने से दर्द होता ही रहता है। या रक्तस्राव बात दूषित हो शूल उत्पन्न कर देता है। अतएव योनि के भीतरी भागों की शुद्धता परमावश्यक है किन्तु यह कार्य सुयोग्य धाय का है सर्व साधारण इसे पूरा नहीं कर सकती हैं। यह इस प्रकार सुयोग्य धातु से पूरा हो जाता है।

डुश में हल्का गुलाबी रंग का साधारणोष्ण जो सहनयोग्य हो, डालकर काम में लावे (परमेगनेन्टपुटास) से जल गुलाबी हो जायगा, अथवा निम्ब पत्र के क्वाथ से काम लें। दशमूल क्वाथ भी उपयोगी हैं। इस की नलिका योनि मुख में लगा कर धोना चाहिये, परन्तु यह नालिका गर्भाशय द्वार में संमुख न रहें नहीं तो संपूर्ण द्रव गर्भाशय में भर कर हानि करेगा, किन्तु यह नलिका योनि पटल में गर्भाशय के दायें या बायें होना चाहिये, ऐसा करने से यह काय आसानी से होजायगा और योनि ठीक ठीक धुल कर सब जल बाहर आ जायगा। इस काम में हिजि सन सीरिंज लेना चाहिये, दस दिन तक तो प्रसूता का आहार क्रम बद्ध रहना चाहिये, जैसा ऊपर बता आये हैं। परन्तु यदि प्यास ज्यादा लगरही हो। तो उसकी भी संभालरखनी चाहिये। दश दिन तक उबाला ही जल पीने को देना चहिये, कच्चा पानी हानि कर होता है। परंतु प्यास शान्त्यर्थ उबाला जल देते रहना चाहिये। औषधियां आवश्यकतानुसार भिन्न २ डाली जा सकती हैं। कुछ तो औट ते समय पिपरामूल या अजवायन डालते हैं। कुछ केवल जल का ही प्रयोग उत्तम मानते हैं। दोनों सम्मत उचित है, अतएव यह विषय प्रसूता की रुचिपर ही छोड़ना अच्छा है, वह जैसा कहे वैसा जल तैयार करादें। कच्चे जल से प्यास भी बढ़ेगी, और गर्भाशय व आतों को भी हानि प्रद होगा अतएव कदापि न दें। कुछ स्थलों में तृषानि वृत्यर्थ शराब का प्रयोग करते हैं पर लाभ के बदले अपने रूक्षगुण द्वारा हानि हीकरती है। हाँ जिन्हे पीने का अभ्यास हो अथवा तन्दुरुस्ती में भी पीती हो तो बात ही दूसरी है।

अधिकांश प्रसूताओं को ६ घंटे बाद मूत्र जाया करता है। जो न आये और मूत्राशय में मूत्र का भार ज्ञात हो, तो पेड़पर हथेली से थोड़ा थोड़ा दबावे, बाद पेशाब उतारना चाहिये। ऐसा करने पर भी न हो और वेग ज्ञात हो, तो धाय प्रसूता को करवट लिटा कर अपने हाथ से धीरे २ वस्ति स्थान सहराते हुए पेशाब कराना, चाहिये। ऐसा करने पर भी न उतरे, तो धाय द्वारा शलाका से मूत्र करा देना चाहिये। प्रसूत होने के दूसरे दिन बहुधा दस्त हो जाया करता है। न हो तो परंड तैल गर्म दूध के साथ बालानुमान दें। अथवा दशमूल क्वाथ गरम गरम घृत मिला कर दें, तो बिना कष्ट के पाखाना अवश्य हो जायगा। यह विषय यहीं पर समाप्त हो रहा है अब बालक की परिचर्या शेष रही सो आगे देखें।

पूर्वोक्त रीत्यानुसार प्रसूता की परिचर्य्यान्तर बालककी सुधलेनाधातृकादूसरा ये है, स्त्रियों के स्तनों का आकार प्रकार रूप भिन्न भिन्न होता है, परन्तु जिसके स्तन लम्बे हल्के आंचर दार छोटे होते हैं उन्हें बच्चे को दूध देने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती है। जिनके स्तन ढीले भारी छोटे आंचरके होते हैं; तथा दुग्ध रहित होने पर दुग्ध पिलाने में कष्ट होता है, दुग्ध पान के समय भुजा पर या रुई वगैरह पर बच्चे का शिर रखकर हिलाकर के आँचर मुख में देना चाहिये। परन्तु यह देख लें; कि आंचर बच्चे के मुख में ठीक ठीक आता है, कि नहीं? स्तन के

भार से बच्चे का मुख नासिका रुक कर श्वास तो नहीं रुक रहा है, अथवा नियम विरुद्ध ज्यादा तो दूध नहीं पिये जा रहा है।

यदि आंचर छोटे हों,तो धात्री अपनी तर्जनी व अंगूठे से स्तन भाग धीरे धीरे आगे को खींचे, ऐसा कई बार करने से आंचर बढ़ जाते हैं, अथवा ३, ४ माह के बालक द्वारा कुछ काल दुग्ध पिलाने से भी आँचर बढ़ जाते हैं।

इत्यादि कृत्रिम उपायों द्वारा आँचल बालक के पीने योग्य बनाना अत्यावश्यक हैं। जब शिशु स्तन पान कर लेगा, तो प्रसूता के स्तन हलके होकर प्रसन्नता प्राप्त होती हैं। और प्रसूता का स्वास्थ सुधर जाता है। अन्यथा दुग्ध भर जाने से स्तन अनेक रोगों के जन्म दाता बन जाते हैं।

प्रसूता को चाहिये, की प्रत्येक दुग्ध पान के पश्चात् आँचल को उष्ण जल से धो डाले, परन्तु हामारी देश मातायें न तो स्वयं करती हैं, न दूसरी बहिनों को उपदेश देती हैं। यह उनकी नितान्तभूल है, जिस प्रकार खाद्य पदार्थोंकी मलिनता जोजवान पुरुषों केस्वास्थ्यको बिगाड़ देती है। ठीक उसी प्रकार स्तन की शुद्धता न होने सेदुग्धाहारीबच्चे का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता हैं। बच्चे के दुग्ध पान के अवसर पर माता को शान्त चित्त और सद्विचार युक्त होना परमावश्यक है। इस प्रकार रहने से दुग्ध ठीक तथा सात्विक मय उतरता है,अन्यथा जैसे विचार माताओं के होते हैं वैसा ही दुग्ध बच्चे को प्राप्त होकर उसका भावी जीवन संकट मय बना जाता हैं। यहनिस्संदेह बात है, भी मन काप्रभाव दुग्ध पर होता हैं और जैसा दुग्ध होगा वैसा ही प्रभाव बालक पर पड़ेगा। यदि स्वाभाविक या कारणवश दुग्धकमहोता हो तो प्रथम तो कारण दूर करना चाहिये। यदि स्वाभाविक हैं तो अरंड केपत्ते गर्म कर बाँधना चाहिये।या अरंड पत्र की पुलटिस बनाकर बाँधना चाहिये। अथवा शतावरी स्वरस २ तोला,या क्वाथ ५ तोला उष्ण दुग्ध १० तोला, मिला कर देना चाहिये. या जीरा पिसा हुआ १॥ या दो माशा देकर गौदुग्ध पिलाना चाहिये। तब दुग्ध अवश्य उतर आवेगा। परन्तु ये सब कृत्रिम उपाय तभी सफल होंगे जब मानसिक व्यथा या चिन्ता न होगी प्रथम चिन्ता का रुकना ही चिकित्सा हैं। पश्चात् औषधि प्रयोग करें। प्रसूता को सदा ध्यान रखना चाहिये, कि पाचन के अनुसार ही दुग्ध का प्रयोग करें। कम ज्यादा न होने पावे बहुत सी मातायें समय कुसमय दूध पिलाया करती है इससे बच्चे कोमंदाग्नि अपाचन आदि विकार हो जाते हैं। उन्हे ये ज्ञान ही नहीं होता की कितना दुग्ध देना चाहिये। ऐसी असुविधा में कफ कास- अतीसार यकृत विकार आदिअनेकों रोग प्रादुर्भूत हो जाते हैं। बच्चे कोमल होने से थोड़े ही में रुग्ण हो जाया करते हैं। बहुत सी प्रसूताओं को प्रसव कष्ट की निर्बलता से क्षय का प्रारम्भहो जाता हैंक्षयके आरम्भिक लक्षणदि से सर्व साधारण अनुमान ही कर सकते किन्तु जिसे क्षय होता है, उसके पतला अधिक दुग्ध उतरता है।

उसे देखकर सभीस्त्रियाँ अपनेकोधन्य मानती है परन्तु वह दुग्ध बच्चे और प्रसूता दोनों को अ-

हित कर है। जब साधारण आहार द्वारा अधिक दुग्ध आने लगे, तो उसकी परीक्षा यन्त्र अथवा दृष्टि द्वारा अवश्य करें। क्षयाँशयुक्त दुग्ध अधिक पतला शीशी मे रख देने से हलके पीले रंग का पानी सा दृष्टि गोचर होता है। वह पौष्टिक पदार्थ रहित होता हैं। हमारे कुछ पाठक संदेह करेंगे कि क्षय वाली के दुग्ध क्यो बढ़ जाता हैं? उसका समाधान यह है क्षय द्वारा रस धातु दूषित होकर रसका मल दुग्ध भी दूषित होकर तरल बन जाता है, आशय कम जोर रहोने से दूध अधिक देर तक रुक नही सकता।

क्रोधी तथा डरपोक धाय का दुग्धभी बच्चे को क्रोधी तथा डरपोंक बना देता हैं। मनोगत भाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता हैं। यह सिद्धान्त अटल है। आकस्मिक शोक चिन्तादि तो नष्ट हो सकते हैं, परन्तु प्राकृतिक नहीं अतएव प्रसूता संबंधियों को प्रसूता की बाधायें नष्ट करने को सदैव सचेत रहना चाहिये, प्रसूता को स्वयं साधारण चिन्ताओं पर ध्यान न देना चाहिये।

कुछ स्त्रियाँ हलके पतले बदन की होती हैं, यद्यपि वे निरोग रहती हैं, परन्तु वे दुर्बल मानी जाती हैं। ऐसी स्त्रियों को भी दूध पिलाने का कार्य उसी माफिक चाहिये, जैसा चिकित्सक आज्ञा दे। यदि ऐसी स्त्री स्वयं प्रसूता हो, और अपने बच्चे का पालन भार अपने शिर आपड़े, तो दिन रात में चार बार से ज्यदा दुग्ध न पिलावे। इससे न तो आप भी कमजोर होगी न बच्चा ही दुखी होगा। इतने पर भी सुस्थ तथा चेष्टा ही न प्राप्त हो तो क्रम बदल दे।

कंठमाला, कुष्ठ, आतशक, अर्श, वाली स्त्रियों को धायका कार्य कभी भी न देना चाहिये ऐसा दुग्ध पान करने से बच्चे रोग मुक्त रहें यहअसंभव है यही रोग बच्चों के अधिकहोते हैं। कभी २ अकस्मात दुग्ध उतरते हुये, तत्काल बंद होता है। इस के: अनेक कारण होते है, यदि कारण वश यह बात होती हैं। तो कारण दूर हो ने पर २। ३ दिन बाद फिर दुग्ध आने लगता है, परन्तु कभी २ कारण विशेष होने पर एक दम बन्द हो जाता है। इस भयसे बच्चे को प्रसूता तथा गाय के दूध का प्रथम से ही अभ्यासी रखना चाहिये।

धाय को अपना मन तथा शरीर प्रसन्न स्वच्छ रखना चाहिये, उसे भली भांति यह जान लेना चाहिये, कि बच्चे की तन्दुरस्ती उसी पर निर्भर हैं। मन पर सुविचार, कुविचार, व शरीर पर मिथ्याहार विहार का प्रभाव शीघ्र पड़ता है। अतएव मनको शुद्ध और प्रसन्न रखना नितान्त बांछनीय है। चिन्ता डर, गम आदि का प्रभाव मन पर जल्द पड़ता है। इस से दूर रहना ही अच्छी है। शरीर का मुख्य साधन अहारविहार हैं। प्रसूता का आहार पौष्टिक शीघ्र पाकी होना चाहिये।

खटाई, मिर्च, गर्म, चीज़,से परहेज होना चाहिये स्वयं पौष्टिक नहीं किन्तु अधिक सेवन से अन्य आहार के पौष्टिक तत्वों को भी नष्ट कर देते हैं; और चाय सोडा, ब्राँडी–शोरबा आदि भी सत्विक गुण नहीं रखते हैं।

इससे अपने नित्योंप्रयोगी आहार में से

सात्विक व पौष्टिक आहार चुन कर रखना चहिये।

आहार के साथ २प्रसूता तथा धाय को विहार का भी उपयोग करते रहना चाहिये। शक्ति भर कार्य करना स्वच्छ वायु का सेवन स्नान, आहार का समय पर करना परमावश्यक है। स्नान एक वार तो प्रत्येक दिन में अवश्य करै। अन्यथा दो वार भी किया जा सकता हैं। भोजन से प्रथम का स्नान गुण दायकहै, उससे चित्त व शरीर दोनों स्वस्थ रहते हैं।

बलशाली होने पर तो भारतिओं को सदैव कूपादक स्नान ही उत्तम है। परन्तु आवश्यकता में शीत में उष्ण ग्रीष्म में कूपोष्ण ही उत्तम है। प्रसूताओं का तो प्रत्येक ऋतुओं में एक माह तक उष्ण जल से, पुनः वल वढ़ने पर क्रमशः शीत जल का अभ्यास वढ़ाना चाहिये। प्रसूता वहुधा निर्वल हुआ करती हैं, संभवता उस में शरदी लगने का भय है।

प्रसूता या धातृ को शीतकाल में उचित मात्रा में वस्त्रों का रखना अत्यावश्यक है। कारण शीत द्वारा जो विकार माता को उत्पन्न कर कष्ट देता है। वह दुग्ध द्वारा वालकों के भी हो जाया करते हैं। और वस्त्र अधिक कसे न हों ढीले वस्त्र प्रसूता के लिये लाभ प्रद होते हैं।

काम काज करने की धारणा पद्धति स्त्रियों में स्वाभाविक होती है, तो भी जितना परिश्रम करना चिकित्सक नियत करै, उससे ज़्यादा न करें कारण चिकित्सक प्रसूता के शरीर वल को देख कर अन्दाजा लगा कर निश्चित करता है। वह ठीक है।, जितने परिश्रम से शारीरिक और मानसिक थकावट न हो उतना ही व्यायाम परिश्रम प्रसूता तथा धात्री को हितकर है। एकदम वन्द करने पर भी हानि होती है। कुछ परिश्रम करते रहना ही श्रेयस्कर होता हैं। किन्तु अधिक श्रम से क्षय का भय होता हैं। अतएव परिश्रम वलानुसार ही करना अच्छा है।

वालकों को १०,१२ मासदुग्ध पिलाने के वाद वन्द कर देना चाहिये परन्तु धीरे २ वन्द करे। आकस्मिक कारणों से या इच्छा से एक दम वन्द हो जाने पर दुग्ध जमा होकर रोग पैदा कर देता हैं। यदि इच्छा से वन्द करना है, तो थोड़ा २ क्रम से वंद करदे परन्तु दैवी दुर्घटना में या तो दूसरे वालकों को दुग्ध, दो एक वार पिला दिया करैं। परन्तु यदि माता रोगिणी हो तो दूसरे वालक को दुग्ध पान न कराके हाथ से निकाल देना ही श्रेयस्कर है, अन्यथा वह रोग दूसरे वालक के हो जाना सम्भव है। अथवा अधिक कष्ट होने पर ब्रष्टपम्प से निकाल देना ही ज़रूरी है। इस प्रकार कई दिन तक दुग्ध निकाल देने पर फिर रोग का भय जाता रहता है, और दुग्ध वाहिनी नाड़ियाँ संकुचित हो, दुग्ध बनाना वंद कर देती हैं। जब दुग्ध रोकना हो, और अपने आप कम न हो तो दुग्ध वर्द्धक आहार का परित्याग करादें, रूक्षान्न, चना, अरहर, की दाल शोषक, तथा पतले द्रव द्रव्य देकर प्रसूता को कुछ दिन रहना चाहिये। प्रति दिन १-२ वार कत्था में भिगोकर रुई का फोहा फेरता रहे इस से आंचर संकुचित हो दुग्ध रुक जाता है, और सूख जाता है।

प्रसूताक्षेप

[प्रो० पं० बालकरामजी शुक्ल शास्त्री शास्त्राचार्य]

निर्वाचन

न अथवा, चैतन्य के अभाव से युक्त वल कारक (टानिक) और विराम युक्त (क्लोनिक) आक्षेप विशिष्ट अपस्मार के तुल्य विशेष आक्षेपिक पीड़ा को प्रसूताक्षेप (एकलैम्पसिया) अथवा परप्यूरल कन्वलशन, कहते हैं । गर्भावस्था के शेष भाग में प्रसवकालिक, अथवा, प्रसवान्त में यह पीड़ा उपस्थित होती है।

कारण कलाप

इस रोग का प्रकृत कारण आज तक सुनिश्चित रूप से निर्णीत नहीं हुआ हैं। तो भी इस के सम्बन्ध में चिकित्सक मण्डल ने जो अनुसन्धान किया है। उस का संक्षेप से आगे वर्णन किया जाता है। गर्भिणी, और भ्रूण को जीवनी क्रिया से विविध प्रकार के त्याज्य और दूषणीय पदार्थ उत्पन्न होते हैं। निःसारक ग्रन्थियों के द्वारा शरीर के आभ्यन्तर से जब ये पदार्थ बाहर नहीं निकलते हैं, तब ये पदार्थ शरीर में विष क्रिया उत्पन्न करते हैं। प्रायः निःसारक यंत्र गर्भावस्था में त्याज्य पदार्थों को बाहर निकालने में असमर्थ हो जाते हैं। उस समय में ये विष जनक पदार्थ शरीर में संचित हो करके प्रसूताक्षेप के कारण हो जाते हैं।

अतः चिकित्सकों का मत हैं कि गर्भ में एक विशेष प्रकृति वाला विष पैदा होकर जननी के रक्त में प्रविष्ट होकर के इस रोग का कारण होता है, किन्तु बहुत से चिकित्सकों का इस से विपरीत सिद्धान्त है। वे कहते हैं, गर्भाशय में विष पैदा होता हैं, गर्भ में नहीं होता हैं, किसी का मत है, जिस अधिष्ठान पर नाल द्वारा गर्भ गर्भाशय से लगा रहता हैं, वहां पर विष से नाल विकृत हो जाता हैं, और वहां की कलें (सेलें) मरण शील हो जाती हैं, जिन का विष रक्त के द्वारा गमन करता हुआ, इस रोग का कारण होता है। उपरोक्त पृथक् सिद्धान्त होते हुये भी यह निश्चित् रूप से सिद्ध है, कि विष का प्रभाव, गर्भ, गर्भाशय, दोनों पर पड़ता है, इस से प्रायः गर्भ मर जाता हैं, और इसी हेतु से गर्भपात, और अकाल, प्रसव हों, तो भी गर्भ मर जाता है। यह छः मास के पश्चात् ही सर्वदा होता है। कभी ३, आठवें, और नवें मास में भी होता है।

गर्भिणी स्त्री को जब यह रोग एक बार हो जाता हैं, फिर गर्भ स्थिति होना कठिन हैं, यह रोग गर्भवती स्त्री को, और प्रसूता को होता हैं, जब विष रक्त में गमन करता हुआ, वृक्कों में पहुंचता हैं, तब मूत्र में शुक्लाण्ड (अल्ब्यूमिन) आने लगता है, और गर्भिणी के मुख पर सूजन आ जाती है, और मस्तिष्क की धमनियां प्रबल रूप से संकुचित हो करके तरुण मस्तिष्क में रक्ताल्पता (एनी-

मिया) उत्पन्न करती हैं। इसलिये जल्दी जल्दी दौरा (द्रुताक्षेप) होने लगता है। मस्तिष्क की ज्ञान वहाँ नाड़ियों में उग्रता होने से यह दौरा होता हैं। इस रोग में पेशियों की क्रिया अधिक बढ़ जाती है। इसलिये रक्त संचालन में व्याघात होता है, और मस्तिष्क, फेफड़ा, वृक्क प्रभृति आवेशिक यंत्रों में विषम रक्त संग्रह, होता हैं। इसलिये मस्तिष्क में सन्यास (एपोप्लेक्सी) फुफ्फुस में ईडिमा, और वृक्क की सम्पूर्ण क्रिया लुप्त हो जाती हैं।

लक्षण

अधिकतर कोई पूर्व लक्षण प्रकाशित न हो करके सहसा द्रुताक्षेप उपस्थित हो जाता है। किन्तु अनुसन्धान करने से ज्ञात हुआ है, कि अधिकांश स्थल में कोई कोई लक्षण प्रकाशित होता हैं, सम्पूर्ण पूर्व लक्षणों में शिरो वेदना ही सर्व प्रधान है, कभी २ यह अत्यन्त प्रबल रूप से प्रकाशित होती हैं, और साधारणतः सम्मुख कपाल में वेदना प्रकाशित होती है। किसी किसी स्थल पर दृष्टि वैलक्षण्य उपस्थित हो जाता है। और कभी २ मुख मण्डल में सूजन आ जाती हैं, और अक्षि पल्लव सूज कर स्थूल हो जाते हैं। दौरा आरम्भ होने के पहले नेत्र, स्थिर, और, अचल हो जाते हैं, और मुख मण्डल की पेशियां द्रुताक्षेप से ग्रस्त हो जाती हैं। अक्षि गोलक घूमने सा लगता हैं। कनीनिका ऊपरी पलक के मध्य में अदृश्य हो जाती हैं।

मुख मण्डल पहले एक तरफ घूम जाता है, फिर दूसरी तरफ घूम जाता है। इस के बाद द्रुताक्षेप दूसरे अङ्गों में व्याप्त हो जाता है। क्षण भर के लिये बल कारक (टानिक) आक्षेप होता हैं। बाद में विराम युक्त (क्लोनिक) आक्षेप उपस्थित हो जाता हैं। मुख नीला पड़ जाता है। जिह्वा बढ़ जाती हैं, विशेष चेष्टा न करने पर दांतों के बीचमें आ जाने पर जिह्वा कट जाती है, और लाला में रक्त मिला हुआ टपकने लगता हैं, अगूंठा को अन्दर करके मुट्ठी बहुत ज़ोर से बंध जाती है। दोनों हांथों में बहुत खिंचावट होती है, गले की शिरायें फड़कने लगती है। पाद दण्ड के तुल्य जकड़ जाते हैं। देह की मांस पेशियों में आकुञ्चन हो वेग से होने लगता है। रोगी के मुख से फेना आने लगता हैं। इस समय रोगिणी को बहुत कष्ट होता है, यहां तक कि श्वांस की गति मन्द पड़ जाती हैं। कभी २ दौरे के अन्त में बेहोशी की दशा में पाखाना, पेशाब, भी हो जाता है। ज्ञान, और स्पर्श शक्ति का सम्पूर्ण लोप हो जाता हैं, इस के बाद कई मिनट में क्रमशः सब लक्षण घटने लगते है। मुख की मलीनता दूर होने लगती हैं। श्वास, प्रश्वास, ठीक चलने लगता है। कभी २ दौरे के बाद रोगिणी स्वस्थ हो जाती है। किन्तु यदि दौरा फिर शीघ्र ही आरम्भ हो जावे, तो शीघ्र ही मृत्यु उपस्थित हो जाती है। यदि रोगिणी को बहुत काल के बाद, अथवा, कई घंटा के बाद दौरा आवे, तो अच्छा हो जाता है।

काल—एक दौरे का समय एक मिनट से दो मिनट तक होता हैं। दौरा समाप्त हो जाने के बाद रोगिणी को कुछ भी स्मरण नहीं रहता है। अनुभूत कष्टों का स्मरण नहीं रहता हैं। वेग

शान्त हो जाने पर, रोगिणी अपने को स्वस्थ समझती है। रोगाक्रमण के समय श्वासावरोध हो जाने से चौथियाई स्त्रियां मर जाती हैं।

भावी फल—आक्षेप के वेग की प्रबलता, और शीघ्रता के ऊपर इस रोग का भावी फल निर्भर है, अर्थात् जब दौरा जल्दी २ आने लगते हैं, तब परिणाम अशुभ होता है। जब दौरे देर में आते हैं, तब भयानक परिणाम नहीं होता है, और जब हृदय दुर्बल हो जाता है, और फेफड़ों में रक्त संचार के कारण तरल इकट्ठा हो जाता है। नाड़ी भी तीव्र, वा, क्षीण, हो जाती हैं। शारीरिक ताप १०४ डिग्री हो जाता है। तब भयानक दशा होती है। कभी २ दृष्टि नष्ट हो जाती हैं। स्मरण शक्ति भी नष्ट हो जाती है, और गर्भपात के बाद जब दौरे आते हैं, तब वे मृदु, और सुख साध्य माने जाते हैं।

चिकित्सा

इस रोग की चिकित्सा चार उद्देश्यों को ले करके करना चाहिये।

प्रथम उद्देश्य--रोग का मूल कारण का विनाश हो। यथोक्तं सुश्रुते (संक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम्) और जितनी जल्दी हो सके। उतनी जल्दी रक्त से विष पदार्थ को दूर करना चाहिये।

द्वितीय उद्देश्य—द्रुताक्षेप का, प्राखर्य, स्थायित्व, रोग का पौनः पुनिकत्व, ह्रास करने के लिये पौशिक शक्ति, और नाड़ियों की उग्रता को लघु करना चाहिये।

तृतीय उद्देश्य—यदि प्रसव वेदना काल में आक्षेप उपस्थित होवै। तो गर्भिणी को किसी प्रकार से हानि न हो करके गर्भस्थ भ्रूण के जीवन की रक्षा होवै। इस उद्देश्य से चिकित्सा करै।

चतुर्थ उद्देश्य—आक्षेप की अवस्था में गर्भिणी को किसी प्रकार से आघात न पहुंचै। ऐसे उपायों का अवलम्बन करै।

प्रथम उद्देश्य

प्रथम उद्देश्य की सिद्धि के लिये, रक्त मोक्षण स्वेदोत्पादन, और विरेचन देना चाहिये। रक्त मोक्षण के द्वारा रक्तस्थ विष का बहुत अंश निकल जाता है। पेशियों में शिथिलता आ जाती है। यदि प्रसव के बाद रक्त स्राव अधिक होवै अथवा, रोगिणी क्षीण होवै।

और नीरक्तावस्था से ग्रस्तहोवै। ऐसी दशामें रक्त मोक्षण नहीं करना चाहिये, किन्तु नाड़ी पूर्ण, मस्तिस्क रक्त संग्रह से युक्त, ग्रीवा, और मुख मण्डल की सम्पूण, शिराएं स्थूल, और, उन्नत, होवे। तब रक्त मोक्षण कराना चाहिये, विरेचन के लिये, १—२ बूंद जमाल गोटा का तेल (इलाटिरियम्) शक्कर आठवीं रत्तीमें मिलाकर जिह्वा के ऊपर मल देवै।

यह प्रयोग इस समय करैं। जब स्त्री औषधि को निकालने में सर्वथा असमर्थहोवै। यदि इसकी आवश्यकता न होवै। तो जलापाकाचूर्ण २ मा० देवे। इससे पतला दस्त होता है। यदि स्त्री क्रूर कोष्ठकी होवे। तो रसपुष्य (कैलोमल) २॥ रत्ती की मात्रा में देवे। यदि रोगिणी दुर्बल हो तो वस्ति (एनीमा) का प्रयोग करना चाहिये।

कम्बल को गरम पानी में डुबोकर निचोड़ डाले, फिर उससे रोगिणी की ग्रीवा से लेकर पैर तक लपेट देवें। उस के ऊपर एक दो, शुष्क, कम्बल, और ओढ़ा देवें। इससे अधिक स्वेद निकलता है,इस प्रक्रिया के समय में मस्तिष्क में रक्त संग्रह की अधिकता को निवारण करने के लिये मस्तक के ऊपर बरफ की थैली रक्खे इस प्रक्रिया से शरीर के अन्दर से सूतिका क्षेप को पैदा करने वाला विष नष्ट हो जाता। स्वेद उत्पन्न करने के लिये, पाइलोकार्पिन त्वोचोऽध, अक्षेपण (हाइयोडीर्मक्) से प्रयुक्त हो सकता है किन्तु इससे फुफ्फुसीय इडिमा, ओर, अत्यन्त अव साद उपस्थित होने की संभावना है।

द्वितीय उद्देश्य

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये चैतन्य हारक औषधों का व्यवहार करना चाहिये। इसलिये रोगिणी के चक्षु के प्रतिलक्ष्य करके द्रुन्ताक्षेप के दौरे के आरम्भ में क्लोरोफार्म, की श्वास ग्रहण करावे, इससे व्याधि का बल कम हो जाता हैं। और रोगिणी के ऊपर उसका कम प्रभाव पड़ता है। और सुंघाते ही चैतन्य को नष्ट कर देता हैं। नाड़ियों का आकुञ्चन, श्वास की दीर्घता कनीनिका संकोच भी कम हो जाता है मुख की काली नाड़ियों में शोणित संग्रह अल्प हो जाता हैं। यदि दौरा बार २ होता होवे। वेग शान्ति के समय भी अचैतन्य होवे। शरीरिक ताप की अधिकता होवे। तो भी क्लोरोफार्म सुंघावें। पहली बार में इतनी दवा सुंघावें, जिससे पूर्ण अचैतन्य हो जावें। फिर दूसरी बार में अल्पमात्रा में सुंघावें। यदि भयंकर लक्षण होवें, स्वास वेग अचैतन्यता अधिक होवें,;तो मात्रा में अधिक सुंघावें।किन्तु शरीर की अवस्था देख कर प्रयोग करना लाभ दायक होता हैं। किन्तु, सायानोसिस की दशामें क्लोरोफार्म, हानि कारक होता हैं।

इस रोग में, ईथर, का श्वास, नहीं लेना चाहिये। इस का कारण यह है। कि ईथर, की क्रिया बहुत विलम्ब से प्रकाशित होती है।

मस्तिष्क में रक्त संग्रह उपस्थित हो जावें। और वृक्कों में उग्रता उत्पन्न हो जावें। तो रोगिणी को पूर्वोक्तरीति से कम्बलों को ओढ़ा कर शीघ्र ही मलाशय के मध्य में एक ड्राम क्लोरेल, २० ग्रेन द्रव, पिचकारी में पहुचावे। ग्राह्य प्रयोग-क्लोरेल २० ग्रेनब्रोमाइड् आफपोटासियम् आधा ड्राम,विधि-इन को एक में मिलाकर चार, या छः घंटा का अन्तर देकर के प्रयोग करें। प्रयोजन होने पर एक घंटा के बाद फिर भी प्रयोग किया जा सकता है। और, मर्फाइन, विराट्रम विरिड, नाइट्रेट् आफ् एमिल् का श्वास भी उपादेय है।

तृतीय उद्देश्य

यदि प्रसव की वेदना की अवस्था में रोग का आक्रमरण होवे। तो जरायु मुख को सम्यक रूप से प्रसारित होने पर प्रसव करा देवे। किन्तु जरायु मुख यथोचित प्रसारित न हो। तो उसको प्रसारित करने चेष्टान करे। क्योंकि इससे द्रुन्ताक्षेप बढ़ जाता है यहाँ तक कि इस में प्रसारण करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। इस का कारण यह हैं, इस रोग में स्वयं ही अति शीघ्र जरायु मुख में फैल जाता है।

चतुर्थोद्देश्य

द्रुता क्षेप की अवस्था में दांतों से जिह्वा के कटने की संभावना रहती हैं। इस विपत्ति से बचने के लिये रोगिणी के दाँतों के मध्य में कार्क, वा, खद्दर के रुमाल की कई तह करके, रख देवें। इससे जिह्वा सुरक्षित रहती हैं, द्रुताक्षेप निवारण करने के लिये किसी प्रकार से रोगिणी के ऊपर बल प्रकाश करना अयुक्ति युक्त है। प्रसूता क्षेप का कारण यदि यूरिया (मूत्र विष) न होवै तो अहिफेन सत्व (मार्फिया) तिहाई ग्रेन का त्वचा के नीचे इंजेकशन करे। गर्भ समय में रोगाक्रमण होने पर मामूली दशा में जब कि एक या, दो दौरा आने को हों। और चैतन्यता रहती होवै, तो कोष्ठ शुद्धि साधारण रूप करके ब्रोमाइड् संयुक्त क्लोरल का प्रयोग करैं।केवल दूध ही पिलावै। इस रोग में ज्वर तीक्ष्ण वेग वाला हो जाता है उस समय दशा भयानक होती है, १०४ डिग्री के ऊपर जब ज्वर होवै। तब पूर्वोक्त स्वेद कारक चिकित्सा का अवम्बल करे। शिर पर हिमस्थाली का प्रयोग करें।

रोग का पुराक्रमण न होवै इसलिये, आयुर्वेदिक चिकित्सा का अवलम्बन करे। इस के लिये, निम्न लिखित प्रयोग व्यवहार में लावै। वृहद वातचिन्तामणि,चतुर्मुखरसब्राह्मी वटी, मल्लसिन्दूर, इन में किसी रस का जटामाँसी १ तोला, नेत्रवाला, १ तोला, अजवाइन ३मा० इनको डेढ़ पाव पानी में पकावै। जब एक छटाँक क्वाथ अवशिष्ट रह जावै। तो उपरोक्त रस उचित मात्रा में मधु से चटा कर ऊपर से क्वाथ पिलावै। भोजन के एक घंटा के बाद दशमूलारिष्ट २ तोला पिलावें प्रसूतावस्था में यदि रोग होवै तो शरीर पर नारायण तैल की मालिश भी करावै। और गर्भिणी दशा में आक्षेप होवै। तो मुक्ता भस्म आधा रत्ती, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, अकीक भस्म आध रत्ती सितोपलादि चूर्ण २ माशा इस को शर्वत ब्राह्मी १ तोला, के साथ सुबह, शाम, चटावैं। और भोजन के बाद सारस्वतारिष्ट १॥ तोला पिलावैं। और लाक्षादि तेल की मालिश करावें। पथ्य— लघु आहार, दूध, लाभदायक है।

मस्तिष्क और जीवाणु

मनुष्य का मस्तिष्क असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओं का बना हुआ हैं, और प्रत्येक अणु में असाधारण सामर्थ्य है। रेडियम के अणु में जो प्रचंड शक्ति हैं, वही मस्तिष्क के अणु में भी है। एक जर्मन विद्वान् ने गणना की हैं, कि मस्तिष्क के जीवाणु कीसंख्या ३०,००,००, ००० तीस करोड़ के करीब है और उन में से ५०,००, ००० पचास लाख से अधिक नित्य जीवाणु क्षीण हो जाते हैं। इस हिसाब से सारे मग़ज के जीवाणुओं का दो माह में क्षय हो जाता हैं, फिर नवीन जीवाणुओं से मस्तिष्क का निर्माण नियमानुसार होता रहता है।

सूतिका रोग व चिकित्सा

ले० प्रिंसीपल पं विश्वनाथ जी शास्त्री,

प्रसूता कब तक रहती है ?

प्रसव होने के बाद से लेकर मासिक स्राव होकर विशुद्ध हो जाने तक की अवधि में होने वाले प्रत्येक रोगों को सूतिकारोग या प्रसूता रोग कहा जाता है, बहुत से आचार्य प्रसव के बाद १ माह तक की अवधि को कोई ३ या ४ माह तक की अवधि इसके लिये बतलाते हैं। किन्तु यह रोग अपनी अवधि स्त्री की (प्रसूता) प्रकृति के अनुसार ही बनाता है, कोई ३ या ४ मास में मासिक स्राव को प्राप्त होती है, कोई कोई स्त्री विनास्राव के ही पति सहवास से गर्भ धारण कर लेती है, अतः इन दोनों में से कोई भी हालत हो तो प्रसवा का प्रसूत्व धर्म नष्ट हो जाता है।

कारण

इस अवसर में प्रायः उन्हीं स्त्रियों को यह रोग लगता है, जो कि आहार विहार को मन माना करती तथा प्रसव के बाद की अवहेलना करती हैं। कुछ धात्री की या चिकित्सक की असावधानी के कारण भी रोग की शिकार बनती हैं। जैसे प्रसव में देर या विघात होने पर प्रसव बलपूर्वक या संदंशों के प्रयोग से कराया जाता है। इस समय भीतर के प्रदेश क्षत विक्षत होकर कीटाणु के रहने या प्रविष्ट होने योग्य बन जाते हैं।

अथवा अपरा के अपूर्ण पात होने से उसका अंश कुछ भीतर रह कर सड़ जाता है, रोगों के एजेंटों (कीटाणु इत्यादि) को निमंत्रित करता हैं। अतः प्रसूता रोगिणी हो जाती है।

अब प्रसूता रोगों के नियमों का दिग्दर्शन कराते हैं। क्यों कि इसके न जानने से ही अधिक तर इस रोग का श्री गणेश होता है, और बहुत सी सीधी साधी रमणियां अकाल में ही रोग की शिकार बन अपना यौवन सौन्दर्य और स्वास्थ्य खोकर जन्म भर रोती रहती हैं। या मृत्युमुख में पतित होती हैं।

१—प्रसव के होने के बाद शीघ्र ही प्रसूता को कभी खड़ा न होने दो, अन्यथा अधिक रक्त पात होने से वह दुर्बल होजायगी। अस्तु कपड़े इत्यादि भी बदलना हो, तो सावधानी से बदलवा देवे।

२—प्रसव के बाद प्रसूता अति दुर्बल व क्षीण हो जाती है, क्योंकि प्रसव वेदना या अन्य कारणों से जिसमें रक्त स्राव इत्यादि होता हैं। उसे क्षीण बना देता है। इस समय उसके प्रत्येक गुह्याङ्गों को निष्कीट धोवन के साथ धोकर पट्टी कस कर बाँध दिया जाता है, जिससे रक्त स्राव बंद हो जाता है। अथवा तीव्र सुरा या पंचक्षीरी वृक्षों के कषाय या लाइसोल का फाहा (पिचु) रख देते हैं। रक्तस्राव रुक जाता हैं। प्रसव वेदना से सारे अंग शिथिल हो जाते हैं। सारे शरीर में दर्द होता रहता है इस

समय नारायणतैल, बलातैल, दशांगतैल, या कोई भी वातहर तैल जिसे चिकित्सक सम्मति दे, मालिश करना चाहिये। प्रधानतया नारायण तैल को उष्ण कर उसकी मालिश करना उचित है।

३—मौसम के अनुसार गर्म व सर्द किन्तु परिष्कार वस्त्र उसे देना चाहिये।

४—जब तक प्रसूता का रक्तस्राव न बंद हो जाय, या साफ न हो जाय, कोई चीज़ खाने को न दो, उस समय केवल, गुड़ अजवायन, पीपल, हल्दी सोंठ, अजवायन, मिर्च, ममीरा, बालछड़, दालचीनी, नागकेशर व काश्मीरीकेशर के चूर्ण को बराबर भाग लेकर कूट कपड़छान कर २ तोले खिला कर ऊपर से गर्म दूध १ पाव (२ तोले दश मूलघृत, गो घृत कल्याण घृत या पुराना २ वर्ष का भैंस का घी मिला हुआ दूध) पिला दो।

५—लौंग, अजवायन, वायविडंग पीपलामूल, या पंचकोल (सोंठ मिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल) के द्वारा जल पका कर प्रसूता को पिलाओ उपर्युक्त ४ तोले द्रव्य को १ सेर जल में पकाओ. आधा सेर रहने पर छान कररख लो यही साधारण विधि है।

६—यदि पेट में कोई विकार मालूम हो या तबियत एक दम ठीक होती न मालूम पड़े, तब रसी ऊपर वाले जल में पांच या ७ बांस की पत्तियां, २ पान के पत्ते, पकाकर पिला दो। सब दोष शांत हो जांयगे। अब तबियत ठीक होनेपर खाने को दो।

७—प्रसवाको हमेशा पौष्टिक और वातघ्न और पौष्टिक पथ्य ही देना उचित है क्योंकि प्रसवसे खिन्न रमणी जब तक पौष्टिक आहार न पायगी, कभी भी अपने शरीर की हालत सम्हाल न सकेगी।

८—खाने के लिये पथ्य—मूंग की दाल, अरहर की दाल, गेहूं की रोटी, परवल, बथुआ और बैंगन का शाक दो। यदि विशेष पौष्टिक सामान देने में असमर्थ हो तो, नीचे लिखे योग कम से कम अवश्य सुबह शाम दो।

(अ) दस बादाम कागजी की मिंगी (छिलका बादामी रङ्ग का छुड़ाकर) कमलगट्टा, मुनक्का बड़ी इलायची, छुहारा, मिश्री सबको पीसकर घी देकर भून लो, बाद ठण्डा होनेपर खिलाओ।

(ब) घी, मिश्री, बादाम, पिस्ता, अखरोट मुनक्का, , किशमिस बबूल का गोंद, यह सब घी, में भूनकर लड्डू बनालो। इस में का बना हुआ कमसे कम २-३ तोले तक खिला करके ऊपर से थोड़ा दूध पिला दो।

(स) इनके अभाव में सूजी या मैदे के आटे का पतला हलुआ काफी घी देकर बनालो, और बनाते वक्त उसमें नागकेशर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, मिर्च, लौंग, छरीला, जमोरा, सोंठ, नागरमोथा, अतीस, इत्यादि का चूर्ण एक सर में २ तोले डालकर उतार लो इसे खिलाओ।

(द) प्रत्येक देशों, में इस समय न कोई पौष्टिक द्रव्य या औषधियां प्रयुक्त होती हैं। यू० पी० के पूर्वीय प्रान्तों में इस समय जिस योगका प्रयोग होता है उसे ओछवानी कहते हैं। इसे पंसारी लोग तैयार कर रखते हैं, और साधारण से साधारण आदमी भी अपने घर की प्रसूता के

सेवन के लिये ऊपर के ओछवानीं योग को थोड़ा या अधिक ले जाता है,और हलुआ में मिलाकर सेवन कराता है।

योग ये हैं:-सोंठ, मिर्च, पीपल, नागकेशर इलायची बड़ी, नागरमोथा, अतीस, असगन्ध सुगन्धवाला, कुटकी, बहेड़ा, आँवला, मूर्वा ममीरा, पुनर्नवा, बालछड़, तज, दालचीनी तेजपात, धाय पुष्प, लोध्र, हरड़, मंजीठ, शतावर लौंग, केशर इत्यादि मिलाकर रख छोड़ते हैं। बहुत से केशर नहीं मिलाते। केशर मिलाने से यह योग अपूर्व हो जाता है।

गुण-यह योग पाचन, पौष्टिक, उष्ण बल-दायक गर्भाशय संकोचक पेट के अफरा को दूर करनेवाला है।

अतिसार, अजीर्ण, विष्टाब्धाजीर्ण, विवन्ध, (पाखाने का साफ न होना) इत्यादि सब रोगों को दूर करता है। तथा रक्तस्राव को रोकता है, गर्भाशय में उत्तेजना देकर उस के अंदर के मैल को निकाल देता है।

९—वातहर तैलों से शरीर में दिन में ३ वार मर्दन करावे।

१०—प्रसूता से स्वस्थ होने पर ७ वें या १० वें दिन उष्णोदक से स्नान करावें।

अपथ्य—अधिक गरम, अधिक शीतल, कफ कारक, वात कारक, भारी देर में पचने वाला, भोजन न करे। पति सहवास, शोक, क्रोध, भय चिन्ता का परित्याग कर दे।

११—मल मूत्र के वेग को न रोके।

यह प्रसूता के साधारण नियम हैं, जिन्हें छोड़ कर या इस के विरुद्ध चलकर वह रोगों के साथ मैत्री कर लेती हैं। अस्तु विषय परिवर्तन हो रहा है। पुनः सूतिका रोगों का वर्णन करके पाठकों के समय को अधिक न लेकर मैं अब लेख को समाप्त करूंगा।

प्रसूत रोग

प्रसूत रोगों को दो श्रेणी में बांटा जा सकता है।(१) कीट द्वारा व (२) अन्य कारणों द्वारा।

कीट द्वारा—इस से रोग तब प्रवेश कर पाता हैं जब कि भग, योनिग्रीवा, गर्भाशय ग्रीवा या अन्य आभ्यंतर स्थानों के क्षत होने से भयानक लक्षण वाले रोग पैदा होते हैं। इस को भी २ भागों में विभक्त करते हैं। (१) स्थानिक कीटावेश in Localinfection (२) शारीरिक कीटावेश General fection

स्थानिक कीटावेश

इस में गर्भाशय के भीतर के भाग के सड़ने से कीटाणु अपना स्थान बना लेते हैं। ये कीट मृतक तन्तुओं या रक्तसिक्थ Bloodebot पर जीवन व्यतीत कर शरीर में विष फैलाते हैं।

लक्षण

यदि प्रसव के समय कीटावेश हुआ है, तो लक्षण तीसरे रोज पैदा होंगे, यदि देर से हुआ है। तो रोग देर से होगा। इस में सूतिका स्राव मात्रा से बढ़ जाता है। रंग भूरा या मटमैला, गंदा अति दुर्गंधित होता है। गर्भाशय परीक्षा द्वारा संकुचित नहीं पाया जाता। देखने पर बड़ा व छूने से नरम व दर्द युक्त वेदना पैदा करता है।

अन्य शारीरिक लक्षण—ज्वर हो जाता है।

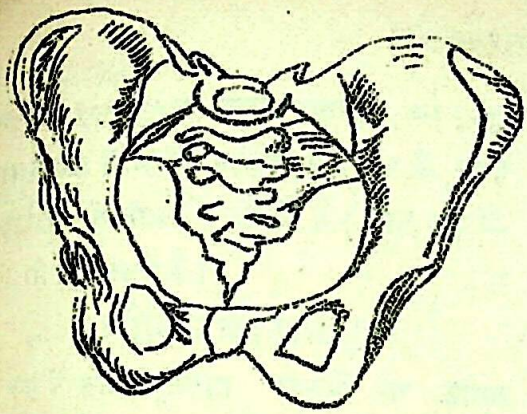

साधारण श्रोणि

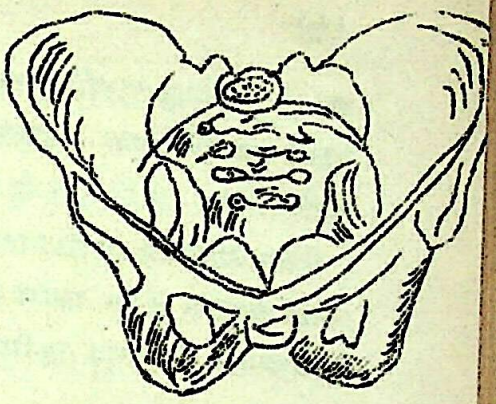

स्त्री श्रोणि

Pelvis with Ligaments

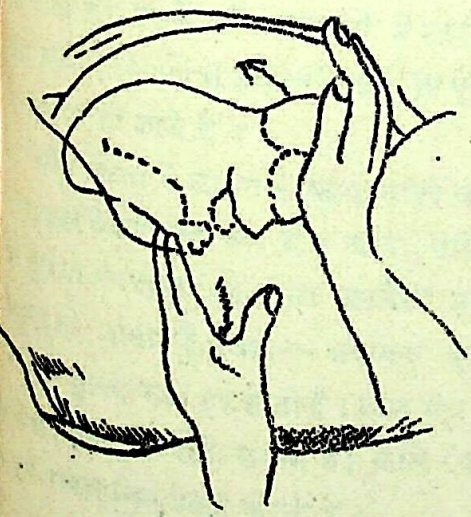

स्फिकोदय (मूढ़ गर्भ) परिवर्तन

स्तन पम्प या दुग्धोच्छोषक यन्त्र

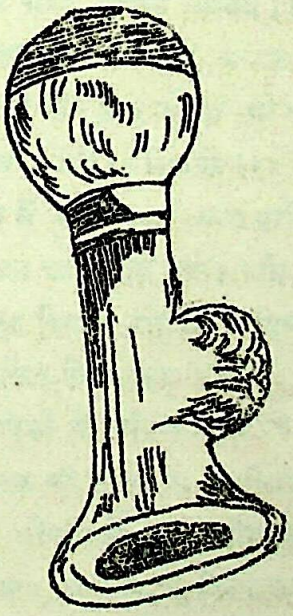

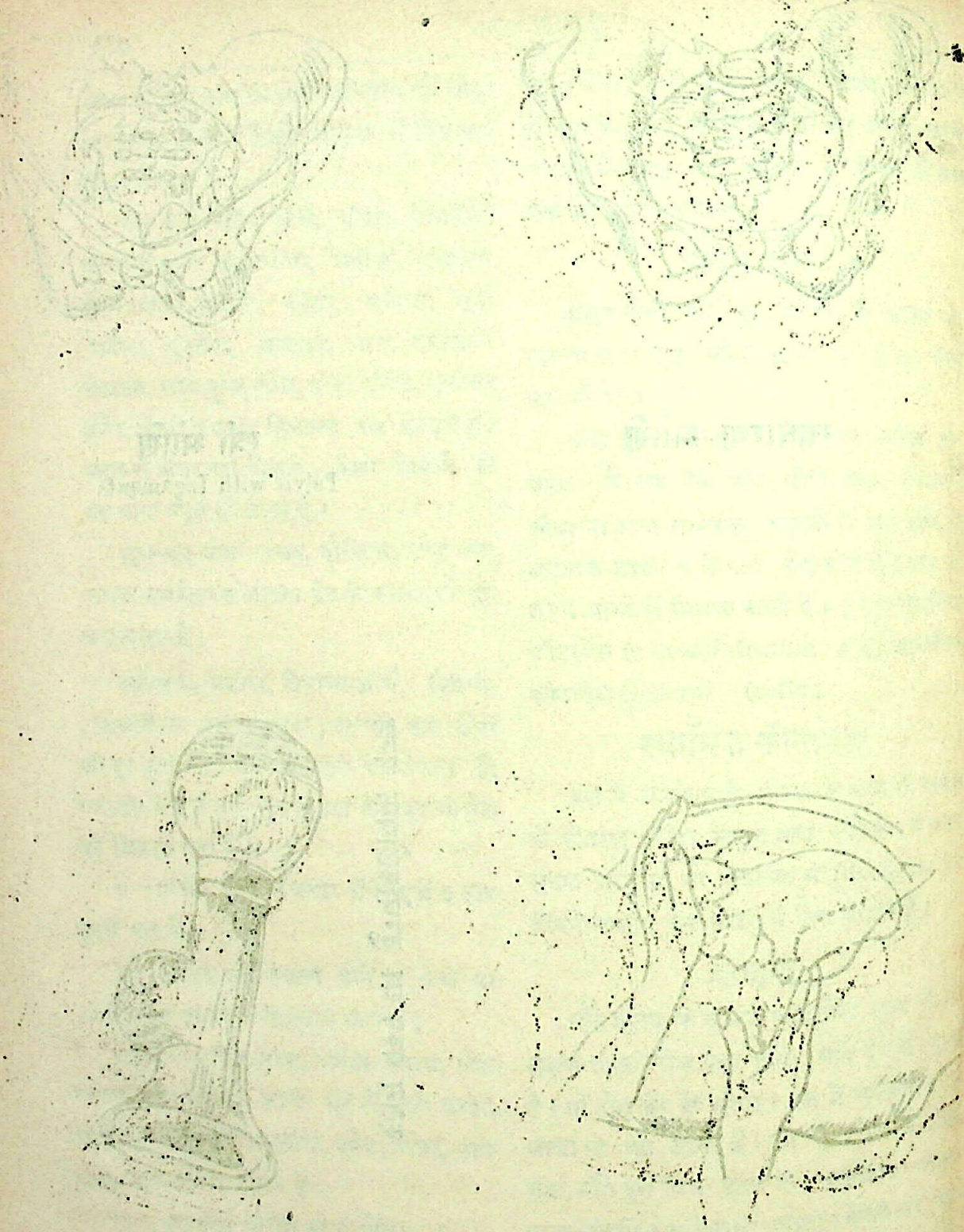

ताप माप १०२ फा० हाईट होता है। या १०३, ठंडक लगती हैं, शरीर कांपता हैं। ताप के साथ नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। शिर दर्द, बेचैनी, भी पाई जाती हैं।

शारीरिक कीटावेश

इस के कीट जीवित तन्तुओं पर जीवन निर्वाह करते हैं। धीरे २ रक्त में फैल जाते हैं। ये जीवाणु रक्त घटित द्वारा प्राप्त भी हो जाते हैं।

लक्षण

पूर्वोक्त स्थानीय कीटावेश के ही लक्षण होते हैं, किन्तु इसमें भयंकरता तीव्रता अधिक हो जाती हैं। ज्वर १०३ या १०४ तक हो जाता है। पसीना आ कर ताप कम हो जाता हैं, पुनः हो जाता है। नाड़ी तीव्र हो जाती है। ताप कम रहने पर भी नाड़ी तीव्र ही रहती है। गर्भाशय बढ़ा रहता है। दबाने पर पीड़ा होती हैं। सूतिका स्राव कम व कभी २ बिल्कुल बंद हो जाता है। इसके तीव्र दशाओं में शारीरिक कीट रक्तता(General sept Caemia)व पूयमय रक्तता भी हो जाते हैं।

कीट रक्तता के लक्षण— कम्प, नाड़ी व ताप तीव्र, उदर वेदना, नेत्र का धँस जाना, नासिका पर झुर्रिया रंग त्वचा का पीला मटमैला, प्रलाप, बेहोशी हो जाती है, जिह्वा— भयानक हालतों में मैली, शुष्क, फटी हुई होती है। दस्त गंध युक्त होते हैं। वमन भी होने, लगता है। काले रंग का वमन घातक चिह्न प्रकट करता है।

पूयरक्तता के लक्षण—बार बार जाड़ा लगना नाड़ी व ताप का तेज होना, ज्वर के कम होते ही नाड़ी की गतिकी कमी होना।

उपद्रव—अंतर हृदयौष,फुप्फुसौष, फुप्फुसावरण दाह, इत्यादि व्याधिविनिश्चय-प्रसूता को कोई भी ज्वर हो १२ घंटे या इससे अधिक समय तक लगातार रहे तो कीटावेश समझें। सूतिका स्राव की परीक्षा करके स्थानीय समझ सकते हो। रक्त परीक्षा द्वारा भी इसे पहचाना जा सकता है।

परिणाम—साधारण अवस्था में मृत्यु ३०% उग्र हालतों में ७०-प्रतिशत होती हैं।

चिकित्सा—स्थानिक कीटावेश में कम्प बेचैनी व सूतिका स्राव दुर्गंधित हो तो यहचिकित्सा करें। गर्भाशय को उत्तेजित कर उस में के इकट्ठे स्राव को निकाल दो। योनि के भीतर के सड़े भाग को निकाल दिया जावें। व एक तीव्र रेचन दो, इससे गर्भाशय में उत्तेजना पैदा होती व विषैले पदार्थ रक्त के साथ निकल आवेंगे। दिन में ३ बार अशोक का तरल सत्व या अरगट का प्रयोग करो। योनि को दिन में २ ३ बार धो दो। पञ्चक्षीरी कषाय के उष्णता(१०० डि० से ११० तक की हालत में प्रयोग में लाओ या अन्य परमेगनेट या पारद बिलयन का प्रयोग करो। यदि इस के करने से १ या १॥ दिन में रोग मे निवृत्त न पावो। तो अधो लिखित चिकित्सा करो।

(१) भीतरी प्रदेशों के परिष्कार करने के लिये योग्य चिकित्सक की शरण लो चिकित्सक के आने तक तिक्त औषधियों का प्रयोग करो जैसे-कुनीत, चिरायता, अरगट, कुचिला सत्व, सप्तपर्ण सत्व कुटकी सत्व, पंचतिक्त कषाय या अन्य औषधियोंके साथ हृदय को ताकत देने वाली औषधियों का प्रयोग करो। जैसे— द्राक्षारिष्ट

घृत संजीवनीसुरा, द्राक्षासव ब्रांडी या अन्य उत्तेजक औषधि।

आहार—पतला आहार, जैसे बार्ली, साबूदाना, मूंग की दाल दूध अंडे व मांसरस।

सेवा सुश्रुसा-सेवा के निमित्त अच्छे जानकार व्यक्ति को रखे। जोहर हालतों में सेवा कर सके व आराम पूर्वक उसे रख सके। समयानुसार उसकी चिकित्सा भी कर लेवें। जैसे—

ज्वर की तीव्रता में-शिर पर गुलाब रोगन गुलाब जल या सिरका या बकरी का दूध पिला कर तिल तैल लाक्षादि तेल, गुलाब रोगन के साथ साथ मले, बर्फ की थैली रखे। या कांजी से तर कर के निचोड़ा हुआ कपड़ा पृष्ठ वंश पर रखे।

(२) श्वेत पाद Whiteleg पैरया उरू की किसी एक शिरा में रक्त की गांठें बंध जाती हैं। पैर सूज जाते हैं, शोथ प्रदेशपर दबाने से गढ़ा बन जाता हैं।

(२) कभी कभी वंक्षण की लसीका ग्रंथियां सूज जाती हैं, दबानेसे पीड़ा व सख्ती मालूम होती है। त्वचा का रंग श्वेत हो जाता है अतः इसे श्वेतपाद कहते हैं।

लक्षण—दूसरे सप्ताह के अंत में प्रायः ज्वर एकायक आजाता हैं शीत लगती है, पैरों में दर्द होता है शिरायें रज्जु की तरह सूज जाती हैं। शोथ, ज्यों ज्यों होने लगती है। दर्द बढ़ने लगता हैं, रंग सफेद हो जाता है।

चिकित्सा— अंग बिल्कुल न हिलाओ पैर के नीचे तकिया रख दो।

पीड़ा को कम करने के लिये पलाश पुष्प क्वाथ या सुहागे की खील बनाकर अफीम या लोड लोशन मिलाकर उसे सेंको (उष्ण सेक) पश्चात् रुई या ऊन में पैरों को लपेट दो। उत्कट लक्षणों की हालत में चिकित्सक की सहायता लो

प्रसूता ज्वर

कभी कभी कीटावेश के अतिरिक्त भी दुर्बलता या पीड़ा की असहन शीलता के कारण ज्वर हो जाया करता है। यह २ घंटे के बाद उतर जाता हैं बहुत से वैद्य इसे ही प्रसूत ज्वर कहकर चिकित्सा प्रारंभ कर देते है। और व्यर्थ में रोगिणी को तङ्ग करते है। इसके अतिरिक्त भी यदि दौर्बल्यता अधिक हो तो भिन्न २ लक्षणवाले ज्वरों में भिन्न भिन्न दवायें देवें। ऐसे ज्वरों में हमेशा अरुचि कब्जियत, शरीर का रूक्षपन इत्यादि लक्षण बने रहते हैं, ज्वर हमेशा मंद २ रहता है। २ बजे के बाद वातज विकार में, दोपहर को पित्तज में सुबह के वक्त कफज में बढ़ जाया करता हैं। ज्वर के दीर्घ कालिक अवस्था में यकृत और प्लीहा की भी वृद्धि पाई जाती है। कास भी यदि इस समय हो जाय तो यक्ष्मा भी आ जाता हैं और रोगिणी असाध्यावस्था में प्राप्त हो जाती है।

चिकित्सा—(१) दशमूल के क्वाथ में घी मिला कर देवे। वात प्रधान ज्वर में।

(२) दश मूल के काढ़े के अनुपान से सूतिका वल्लभ रस देवे। यह प्रलाप, अंगमर्द, ज्वर, दौर्बल्य, सबों को दूर करता हैं।

(३) तुलसी के पत्र स्वरस से हिरण्य गर्भ व मकरध्वज देवे। वह शीघ्र ही बल देता है।

तथा हृत्स्यंद को ठीक करता है। प्रलाप, को दूर करके होश में लाता है।

४ अष्टादशांग क्वाथ या अवस्थानुसारदोषों के अंशांश विकल्पना से उचित औषधि देवे।

यदि ज्वर के साथ कोष्ट बद्धता हो तो सोंठ, हरड़ अजवायन, चीता, पुदीना, काला नमक, वायविरङ्ग सब बराबर लेकर के महीन चूर्ण बनावे। ६ माशे चूर्ण को गर्म जल या दूध के साथ सेवन करे।

५— दौर्बल्य की हालत में स्वर्ण, रौप्य लोह मुक्ता, प्रवाल, अभ्रक को अलग अलग २ माशे लेवे। वंश लोचन छोटी इलायची चार २ माशे गुलाब जल में ४ घंटे तक घोटे।

मात्रा-१ रत्ती शहद के साथ यह दवा हमेशा ज्वरावस्था के बीत जाने के बादही देना चाहिये।

६ हृदय की दुर्बलता व कमजोरी की हालत में- अर्जुनासव सुबह शाम भोजन के पश्चात् २ तोले को ३ तोले पानी में मिलाकर पीं लेवे।

साथ ही तुलसी स्वरस के साथविषम ज्वराँ तक लोह, मृत संजीवनी रस का सेवन करे।

७-सांगमर्द ज्वर (चिर कारी) व कास में आनंद भैरवी वात, चिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्मुख, जय मंगलरस, राज मृगांक, मृगाँक, मुक्ता, प्रवाल, पंचामृत का सेवन दशमूलारिष्ट के साथ करे। इन औषधियों के अभाव में अकेला दशमूलारिष्ट भी उपयोगी होगा।

बीस पत्ती तुलसी की व आधे माशे चाय व ३ माशे सुदर्शन चूर्ण को मिलाकर चाय निर्माण विधि से पकालेवे अर्थात् १ छटाँक खौलते हुये जल में उपर्युक्त, चीजों को डाल कर २ मिनट तक से ५ मिनट तक डाल कर रखदे। फिर छान कर रोगिणी को पिला देवे।

(६) पंच भद्र क्वाथ, या पद्म काष्ट, देवदारु नागर मोथा, गुडूची, कटेरी छोटी व शालि पर्णी का क्वाथ बना कर पिला देवे। यह ज्वर को पसीना देकर उतार देता है। ठंड़े पसीना आने को रोक कर ज्वर को भी रोक देता हैं। शत शोनुभूत है।

(३)-केवल देवदारु पदाकाष्ठ के छाल का क्वाथ पुराने ज्वर व कास तथा अंगमर्द्दन को दूर करता है। अनुभूत हैं।

(४) महाज्वरांकुश व लघुज्वरांकुश का प्रयोग भी उत्तम है।

पथ्य—गेहूं की रोटी, मूंग अरहर की दाल, परवल, पपीता, बथुआ चौलाई का शाक। ज्वर की हालत में घी मत दो। अतिसार की हालत में बथुआ मत दो। कब्जियत की शिकायत हो तो अनार, सेव, संतरा, मुनक्का अधिक मात्रा में दो। यह पाचन शक्ति को बढ़ा कर कब्जियत दूर कर देता हैं। दूध हर हालत में दो। एनीमा हमेशा गर्म दो, कम से कम १५ दिन तो अवश्य ही, जब तक वह प्रसव गृह में रहे और दो एक दिन बाहर की हवा भी प्राप्त करे।

साम्वेदनिक ताप—कीटावेश के अतिरिक्त अन्य कारणों से होने वाले रोगों में यह भी एक है। इसका कारण यह है, उत्तेजना भय चिन्ता क्रोध वा शोक करने से भी शारीरिक ताप शरीर के साम्वेदनिक भागों पर प्रभाव डाल कर बढ़ जाता है। इस ज्वर की अवधि क्षणिक होती है;

नाड़ी की गति उतनी तक नहीं होती जितनी कि ताप के अनुसार होनी चाहिये।

चिकित्सा–अपने आप उत्तर जाता है। केवल विश्राम ही इसकी दवा है।

कोष्ट बद्धता

यह प्रसव के पश्चात् गर्भाशय में सफाई ठीक न होने से पैदा होता है। इसमें लक्षण ये होते हैं। पेट में भारीपन, भूख की कमजोरी, दस्त का साफ न होना, शरीर भारी बना रहना मलाशय के समीप भारीपन या साधारण चुँभन सी होना, इत्यादि कभी २ यह बढ़ कर ज्वर भी कर देता हैं, यद्यपि यह निर्णय नही हो पाया है, किन्तु कब्ज ज्वर को भी करता है। किन्तु इतना तो निश्चय ही है कि ज्वर की हालत में रेचन देने से ज्वर उतर जाता है।

चिकित्सा

रेचक औषधियाँ इसमें प्रधान काम करती हैं, इसके खाने से गर्भ मल भी औषधि उत्तेजना के कारण निकल कर साफ हो जाता है। तथा गर्भाशय संकुचित हो जाता है।

१–सौंफ, मुनक्का, मुलहटी, अमलतास, सोंठ का चूर्ण या क्वाथ (३ माशे चूर्ण ५ तोला क्वाथ) साफ दस्त लाता हैं।

२—अंजीर, मुनक्का, वेदमुश्क, अनारदाने, सनाय सोंठ, कालानमक, इनका चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक उष्णोदक स सुन्दर रेचन कराता है, इससे एक या दो साफ दस्त आते है। और कमज़ोरी भी नहीं आती हैं।

३–सोंठ सनाय, सौंफ सुबर्चला (काला नमक) हरड़ इनका चूर्ण ३, से ६ माशे उत्तम रेचक, आमपाचक व बल्य है।

स्तन व्यथा

स्तनों में दुग्धाभरण (Engorgement) साधारणतया स्तनों में दूध भरता रहता है, और वह पिला दिया जाता है। अतः कोई फर्क नहीं हो पाता। इस हालत में शारीरिक ताप या नाड़ी गति में कोई फर्क नहीं आता, बहुत से लोग जो यह कहा करते हैं। कि दुग्ध ज्वर Milkfever हो जाया करता है, यह सत्य नहीं प्रतीत होता। कुछ लोग इस ज्वर के लिये तीसरा दिन बतलाते हैं। प्रारंभिक अवस्थाओं में कभी २ ऐसा हो जाता है। कि स्तन में दूध अधिक हो जाता है, और बच्चा कम पीता है। तो वहाँ स्तनों में कुछ कड़ापन तथा दबाने से दर्द का अनुभव भी होता हैं, इस समय कुछ शरीर भारी होकर ज्वर भी हो आता है, किन्तु यह अवस्था बहुत थोड़े समय ही रहती हैं। और अपने आप जाती रहती है।

चिकित्सा

तीव्र रेचन देने से यदि रोग स्वयं जाता रहता हैं। (१) दशमूल के क्वाथ में तेल डालकर एरण्ड पिलाओ। इससे आँते साफ हो जायगी। (२) दशमूल के क्वाथ में अमलतास का क्वाथ डाल कर पिलाओ। यदि अब भी आराम प्राप्त न हो तो (३] अहिफेन मिली औषधि का प्रयोग करो किन्तु याद रखो, कब्ज न होने पावे (४) स्तनों पर गर्म तेल की मालिश करना चाहिये। धीरे २ दबाना चाहिये। जिससे दूध नि-

कल जाय, (५) स्तन पेय Brestpump का प्रयोग कर दूध एक दो तोले निकाल दो किन्तु यह क्रिया तब करो जब किसी और चिकित्सा से कोई फल न पा सको, इसके बाद रूई रख कर स्तन पर पट्टी बांध दो अन्यथा पुनः दूध भर आयगा।

स्तनचूचुक का फटना Cracked nipples चूचुक रगड़ खाकर या छिद्रों के भर जाने से या अन्य कारणों से स्तन चूचुक में शोथ हो जाती है और वह फट जाता है।

चिकित्सा

पहले से ही ध्यान रखने पर कोई तकलीफ नहीं बढ़ पाती। इसकी त्वचा को दृढ़ करने के लिये पहले गर्भावस्था से ही उसकी जगह मेथिलेटड स्प्रिट या अलकोहल का फाया लगाया जाता है, इस समय जब उपर्युक्त रोग जान पड़े प्रत्येक दूध पिलाने के बाद, सौभाग्य द्रव से धो दो। मृतसंजीवनी सुरा या अलकोहल का पाया लगादो इसके बाद उसे रुई या नर्म कपड़े से सुरक्षित रक्खो।

स्तन शोथ

Mastilis—कभी २ बालक मर जाने पर दूध न पिलाने और दूध के भरे रहने से या बालक के बीमार रहने या दूध न पीने से यह रोग हो जाता है, स्तन कड़े होकर सूज जाते हैं, इस हालत में एकत्रित दूध इकट्ठा होकर जमने लगता है और पीड़ा बढ़ जाती हैं, कभी ज्वर भी हो जाता हैं या कभी चूचुक कटने से भी शोथ हो जाती है, बहुत से चिकित्सक कीटों की छूत से भी इस रोग की उत्पत्ति मानते हैं।

लक्षण

स्तन सूज जाते हैं। शारीरिक ताप बढ़ जाता है, (ज्वर हो जाता है) नाड़ी तीव्र हो जाती है, अस्वास्थ स्तन लाल, वेदना, युक्त, स्पर्श सह हो हो जाता है। बेचैनी भी हो जाती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तो स्तन विद्रधि (abscess) होकर पूय पड़ जाती है।। यह बच्चे के सिर से स्तन में बार बार लगने से भी हो जाता हैं।

चिकित्सा

अस्वस्थ स्तन बच्चे को मत पिलावो समय समयपर स्तनपम्प से दूध निकल वादो, तीव्र रेचन रस कर्पूर इच्छा भेदी या किसी अन्य योग को स्तन पर रुईबांधकर सुरक्षित रक्खो। यदि बच्चा मर गया है। तो दूध तोड़ने के लिये (१) अशुद्ध हरताल ३ रत्ती की मात्रा में शहद से दो।

(२) रसमाणिक्यय २ रत्ती की मात्रा में दिन में ३ बार दो दूध सूख जायगा।

(३) स्तन पर अरहर की पत्ती का रस लगावो।

४—सौफ, सेंधा नमक जल में पीस का स्तन पर लेप करो।

५—बच्चा जीवित होने की हालत में उपयुक्त कोई योग न दो।

(१) पलाश पुष्प, अमर बेल, सम्हालू के क्वाथ से उष्णसेक करो।

(२) एरण्ड पत्र से तैल मालिश कर सेक करो।

(३) आक के पत्तों से सेंको और रुई बांध दो।

(४) कोई रेचन देकर लघु आहार दो।

यदि स्तन विद्रधि हो आई हैं तो उसे चीरा लगवा कर साफ करा दो। चीरा स्तनपृष्ठसे शुरू कर लम्बाई के रुख में स्तन मूल की तरफ करना चाहिये, तथा व्रणके उस भागपर लगाना चाहिये, जो सबसे नीचे स्थान पर हो।

पुनः मलहम या चूर्णों का अवचूर्णन Powdering करो और पट्टी बांधो। विशेष हालतों में शल्य चिकित्सक की शरण लो। शोथ की हालत में यह लेप उपयुक्त हैं।

१—सौंफ १ तोला, सेंधा नमक, ६ माशे, ईख के सिरके में पीस कर दिन में तीनबार लेप करो।

२—कालाजीरा, कुचला, अफीम, निशोथ, पुनर्नवा, एरण्डकी जड़, पलास बीज को गोमूत्र में पीसकर लेप करो।

३-पलास के नरम पत्तों को घी में चुपड़कर के स्तन को सेंको।

इन्द्रायण की जड़ का उष्ण लेप काली मिर्च के साथ करना हितकर है।

पथ्य—भोजन के लिये मामूली सादा ताजा हलका भोजन देना चाहिये।

दुग्ध विकृति भी होती हैं जिसको अलग लिखा गया है।

इन रोगों के अतिरिक्त और भी रोग सूतिका रोग के नाम से होते हैं। जिनमें प्रधान अचानक मृत्यु, आक्षेप, उन्माद व गर्भाशय का कम सिकुड़ना इत्यादि है। इनका ही वर्णन करके यह विषय समाप्त किया जायगा। यों तो अतिसार, संग्रहणी, प्रदर, गुल्म, ज्वर, कास इत्यादि अनेकों रोग हैं किन्तु यहां पर के वर्णित रोगोंसे मतलब हैं, सूतिका को अधिकतर प्रसूतकाल में होनेवाले अचानक मृत्यु हृद्विराम Heart failaur या फुफ्फुसीय अवरोध इसके कारण होते हैं। सन्यास या मूत्ररक्तता तो इसके हेतु हैं।

चिकित्सा—हृदय को उत्तेजित करनेवाली दवा देवें।

आक्षेप (Eclampsia) यह भी हालत प्रायः हो जाती है और हाथ पैर ऐंठ जाते हैं रोगिणी को गश आ जाता है। धीरे २ सन्यास की हालत उपस्थित हो जाती है।

चिकित्सा—सुयोग्य चिकित्सक की शरण लो।

उन्माद—यह तीन प्रकार का है (१) गर्भावस्था का (२) प्रसवकालका (३) दुग्धप्रदानकाल काउन्माद। इनमें गर्भावस्था का प्रतिशत प्रसूतिकाल का ५ प्रतिशत तथा दुग्धकाल का ३ प्रतिशत देखा जाता है।

कारण—दुर्बलता व पर्दा प्रथा है। थक जाना प्रसवोत्तर रक्तपात अधिक दूध पिलाना भी इस का हेतु है। मद्य या विष से भी हो जाता है। या बड़ी आयु में गर्भाधान होनेपर या अविवाहिता स्त्रियों में गर्भावस्था में शोच व लज्जा के कारण भी होता हैं, प्रसूतकाल में कीटावेश ही कारण है।

गर्भकालोन्माद

Insanity of pregnancy

दूसरे तथा छठे मास में पैदा होता है। रुग्णा आत्मघात करना चाहती है। चित्त उदासीन प्रति व बच्चे से घृणा होती है।

चिकित्सा-प्रसव होते ही दूर हो जाता हैं। साधारण रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये जिससे वह आत्मघात न कर पावे।

सूतिकालोन्माद

(Insanity of perperium)

इस रोगसे व्यथित स्त्रियाँ ५० प्रतिशत होती हैं लक्षण—इस रोग से पीड़ित स्त्री अपने बच्चे को मार डालने तक को उद्यत हो जाती हैं। अपनी आत्महत्या का विचार कम करती है, निद्रा कई दिनों तक नहीं आने पाती। निद्रा आनेपर भयानक स्वप्न देखती हैं। कपड़े अपने फाड़ती, अङ्ग दांतों से काटती, भूख नहीं लगती कभी कभी देनेपर कुछ खा लेती हैं कब्जियत रहती तथा दुर्बलता बढ़ जाती है।

८० स्त्रियां अच्छी हो जाती हैं। कभी कभी बहुत दिनों तक चलता हैं। मासिक स्राव होने से भी लाभ हो जाता है।

दुग्धकालोन्माद

Lactational Insanity

यह गर्भकालोन्माद के सदृश ही होता हैं। दशा अधिक शोचनीय हो जाती है। यह चार मास बाद पैदा होता है। धीरे धीरे व लगातार बढ़ता हैं। ७० प्रतिशत स्त्रियाँ चिकित्सा से अच्छी हो जाती हैं। यह नौ मास से अधिक नहीं रहता।

चिकित्सा-अवस्था व लक्षणानुरूप चिकित्सा होनी चाहिये, इससे उत्तम आहार व शुद्ध वायु का अवश्य प्रबन्ध होना चाहिये। गर्भावस्था या प्रसवावस्था में बच्चे को मां से पृथक कर देना चाहिये। दूध भी उसका न पिलाना चाहिये। नींद लाने के लिये निद्राकारक औषधियां देनी चाहिये। प्रायः पञ्चकर्म करके स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, आस्थापन इत्यादि) शरीर शुद्ध करके उसे पैशाचिक घृत, ब्राह्मीघृत, कल्याणघृत क्षीरकल्याण घृत का सेवन कराना चाहिये।

कब्ज इत्यादि दूर करने के लिये पूर्वोक्त औषधियों को ही देना उचित है।

(१) प्रतिदिन सुबह शाम मुक्तापिष्टि अनार रस के साथ २ रत्ती दो।

(२) मुक्ताभस्म और अभ्रक सहस्रपुटी १ रत्ती की मात्रा में शर्बत अनार के साथ हितकर है। या मक्खन, छोटी इलायची मिश्री का अनुपान।

(३) अधिक तीव्रता रोग की हो तो अनार रस से या शंखपुष्पी या ब्राह्मी स्वरस में सिद्ध मकरध्वज दो।

पथ्य—मूंग की दाल, रोटी, घी, दूध, पटोल बथुआ, चौलाई, पालक इत्यादि दो। अन्न कम तथा फल अधिक दो। अधिक गरिष्ठ भोजन भी न दो। लघु भोजन हर हालत में हितकारी हैं।

अन्य अतीसारादि लक्षणों वाले रोगोंकी चिकित्सा उनके अनुरूप करलो। यदि प्रत्येक के लिये योग लिखे जांयगे तो लेखका कलेवर बढ़ जायगा रोग की तीव्रावस्था में हमेशा योग्य वैद्य की शरण लो।

सर्वे च सुखिनः सन्तु, सर्वेसन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित दुःख भाग्भवेत

अनुभवसार

प्रसूत रोग पर बत्तीसा

शतावर १॥ तो०, असगंध १॥ तो०, सालव मिश्री १ तो०. मूसली श्वेत १॥ तो० वंशलोचन १ तो०, तोदरीश्वेत १ तो०, तोदरी सुर्ख १ तो०, वहमन सुर्ख १ तो०, वहमन श्वेत १ तो०, जावित्री १ तो०, चीनियां गोंद १ तो०, ताल मखाना २ तो०, इन्द्र जौ मोठा १ तो०, इलायची लघु २ तो०, मोचरस १। तो०, सत गिलोय १ तो० गोखरू छोटा १ तो०, गोखरू बड़े १ तो०, समुद्र शोष १ तो०, बीजबन्द १ तो०, दालचीनी १ तो०, सेमल मूसला २ तो०, गोंद बबूल २ तो०, गुलाबांस के पत्ते १ तो०, बांस के पत्ते २ तो०, कास की जड़ २ तो०, कौंच बीज १ तो०, कमर कस १ तो०, चिड़िया कन्द १॥ तो०, जायफल २ तो०, बायविडंग १ तो०, हालों १ तो०, नारंगी का छिलका २ तो०, सिंघाड़ा १ तो०, छोटी माई १॥ तो०, बड़ी माई १॥ तो०, रास्ना १॥ तो०, छोटी पीपल १॥ तो०, वायु सुरही १॥ तो०, सुपारी के फूल १ तो० कलमी तज १ तो०, पत्रज १ तो०, सोंठ १ तो०, कायफल १ तो०. मोथा १ तो०, धनियां १ तो० गजपीपल १ तो०, छोटी कटैया १ तो०, बड़ी कटैया १ तो०, अतीस १ तो०, काकड़ा सिंगी १ तो०, जवासा १ तो०, देवदारु १ तो०, मीठे कूठ की जड़ १ तो०।

विधि

विधि–सम्पूर्ण औषधियों को कूटकर सात पोटली बनावें एक पोटली तीन दिन तक चरुये में, जो दिन भर गर्म होता रहता है, पड़ी रहने के बाद में इस को पिलाने से बड़ा लाभ होता है, और प्रसूत सम्बन्धी कोई रोग नहीं होने पाता। कहने को तो यह बत्तीसा है, लेकिन इस में दवायें बहुत हैं, यदि कुछ दवायें न मिल सकें तो कोई हर्ज नहीं, जो प्राप्त हो सके, उन से ही काम लेना चाहिये। फायदा बराबर दिखलायगा। इस के सेवन से किसी प्रकार का भय नहीं रहता। पाठकों को समय पर अवश्य अजमाना चाहिये कभी फैल नहीं होगा।

प्रसूत रोग नाशक

देवदारु १ तो०, बच १ तो०, कूठ १ तो०, पीपल १ तो०, सोंठ १ तो०, नागर मोथा १ तो० जायफल १ तो०, चिरायता १ तोला, कुटकी १ तो०, गजपीपल १ तो०, धनियां १ तोला, धमासा १ तो०, लालधमासा १ तो०, खरेंटी १ तो०, गोखरू १ तो०, अतीस १ तो०, गिलोय १ तो०, काकड़ा सिंगी १ तोला, काला जीरा १ तोला।

विधि–इन सब दवाओं को कूट कर जौकुटकर एक एक तोला की पुड़िया बनाले १ पाव पानी में मिट्टी की हांडी में धीमी २ आंच से पकावे। जब ढाई तोला के करीब पानी रह जाय तब उतार मल छान कर आधा शहद डाल कर दे। इस प्रकार दोनों समय सेवन करने से २१ या ४१ दिनमें नया या पुराना कैसा ही प्रसूत रोग हो अवश्य दूर होगा, ज्वर शरीर की पीड़ा हड्डियों

का शूल खांसी, श्वास, मूर्च्छा कंप वायु शिर की पीड़ा शरीर का दर्द मंदाग्नि यह सब दूर होते हैं।

प्रसूत वाली स्त्री को भोजन के साथ औषधि

पाढ़, कचूर, हाऊवेर, पुहकरमूल, जवाखार समुद्रनोन, अनारदाना, बड़ी हर्र, अजमोद, व तुलसी, बच, सेंधानमक, अनार दाना, धनियां काली मिर्च, तंतरीक, चव्य, सोंचर नून, सोंठ चीते की छाल, पीपल, जीरा, सज्जीखार, विड नोन, अमलवेंत।

इन सब दवाओं को एक एक तो०, लेकर कूट छान कर फिर हींग ३ माशा भून कर चूर्ण में मिलावे, और ३-३ मा० की पुड़िया प्रति दिन भोजन के साथ पहिले ग्रास में दाल मिला कर खावे। इसी प्रकार दोनों समय खावे।

प्रसवावस्था में खाने की दवा

समुद्र नमक ४ तो०, धनियां १ तो०, काला जीरा १ तो०, तालीस पत्र १ तो०, जीरा ॥) भर दाल चीनी ३ मा०, विडनोन १ तो०, पीपल १ अमलवेंत १ तो०, सोंठ ॥) भर इलायची ३ मा० सेंधानोंन १ तो० पिपरामूल १ तो०, नाग केशर १ तो०, कालीमिर्च ॥) भर, अनार दाना २ तो०, सब दवाओं को कूट पीस कपड़ छान कर चूर्ण करे। तीन २ माशे की पुड़िया इस को प्रति दिन सोते समय १ पुड़िया ताजे पानी से सेवन करें। तो प्रसूत रोग वात कफ से उत्पन्न होने वाला गोले का रोग प्लीहा रोग उदर रोग क्षय, बवासीर, संग्रहिणी कब्ज भगंदर, सूजन, शूल, श्वास खांसीओमवात हृद्रोग और मंदाग्नि ये सब दूर हो, भूखबढ़े।

प्रसूत पर

गोखरू २॥ तो०, कुचल कर आध सेर पानी में औटावे जब १ छटांक रह जाय। तब छटांक भर बकरी का दूध मिला कर सात दिन तक दोनों समय पिये इस से अवश्य ही आराम होगा।

स्त्री का दूषित दूध तथा न्यून दूध का उपाय

प्रथम दुग्ध की परीक्षा यह है कि, जिस स्त्री का दूध जल में डालने से मिलकर एक हो जाय पाँडु वर्ण वाला हो जाय, जिसमें मीठापन हो, और कुछ अन्तर न पड़े तो शीतल निर्मल पतला शंख के समान श्वेत हो झागदार न हो जो पानी में न तैरे न डूबे तो जानना कि दूध निर्दोष है। इसके बाद जिस दूध के पीने से बच्चे का उदर ही न भरे और अर्थात् पीता ही चला जाय और वह दुर्बलहोताजाय तो उसको दूषित दूध सम तो झना चाहिये यदि इससे भिन्न लक्षण देख पड़ें तो तीन तोला नीम के पत्तों को ½ पाव पानी में गरम करके जब आध पाव रह जाय उस में १ तोला शहद और तीन पीपल मिलाकर चार व ६ दिन मिलाकर तीसरे पहर को वमन करावे, और कै हो जाने पर नित्य प्रति मूंग का रस खवावे अथवा त्रिफला छैं माशा और घी १ तो० पान करावे, अथवा भारंगी ४ माशा, वच २ मा० अतीस ४ माशा, देवदारु ४ माशा, पाढ़ ४ माशा, मोथा ४ मा०, मुलहठी ४ मा०, कुटकी ४ मा०

इन द्रव्यों को एकत्रित कर सोलह गुने पानी में पकाकर अष्टमांश शेष रहने पर पिलावे, दूध का शोधन हो जायगा, यदि वमन कराना उचित न हो तोगोवी ४माशा, झाऊ ४ मा०,देवदारु ४ मा० चिरायता ४ मा०, वनमूली ४ मा०, कुटकी ४ मा० गुर्च ४ मा०, सोंठ ३ माशा, नागर मोथा ४ मा०, इन्द्र जौ ४ मा०,इनसबको अध कुचला कर ऽ। भर पानी में औटा कर जब पौन छटांक शेष रह जाय तब पिलावे, इस के अतिरिक्त क्रोध शोक करना बालक पर प्रीत न होना, इन कारणों से दूध नष्ट हो जाता है, यदि दूध नष्ट हो गया हो तो इन कारणों को दूर कर आगे का प्रयोग सेवन करें।

फल घृत

हरड़, बहेड़ा, आंवला, मुलहठी, कूठ, हल्दी, कुटकी, वाय विडंग पीपल, नागर मोथा, इन्द्रायण की जड़, कायफल, वच, मेदा, महामेदा, (अभावे मुलहठी) काकोली, क्षीरकाकोली, (अभावे असगंध) श्वेत शारिवा (अनंत मूल) प्रियंगू फूल, सोंफ, भुनी हींग, रास्ना श्वेत चंदन लाल चंदन, जावित्री, वंशलोचन, कमल, खाड़, अजमोद, दन्ती, ये तीस औषधें १-१ तोला ले सब का कल्क कर एक वर्ण वाली तथा जिस का बछड़ा जीवित हो, ऐसी गौ का घी एक प्रस्थ लें उसमें उस कल्क को मिलाय, कल्क का उत्तम पाक होने के लिये घी से चौगुना जल डाले। फिर सब को एक तावे के पात्र में अथवा मिट्टी के पात्र में भर कर जिस दिन पुष्य नक्षत्र होऔर शुभ दिन में आरने उपलों की अग्नि दें। जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार कर छान ले। इस को उत्तम दिन में स्त्री को सेवन करा वे। इस से स्त्री के सर्व दोष दूर होकर दुग्ध शुद्ध हो जाता हैं, तथा बढ़ता हैं, यह फल घृत वन्ध्या रोग पर कहा गया है, किन्तु बहुत से रोगों पर फायदा हुये देखा गया है।

असगंध, शतावर, खिरैंटी, सहदेवी का चूर्ण कर दूध में पकावे, जब आधा दूध रह जाय, तब पिये। इसके लगातार १५ दिन पीने से बहुत दूध बढ़ता है। लक्ष्मणा से परिष्कृत घी के पिलाने से भी अनेक रोग नष्ट होकर वन्ध्यत्व भी नष्ट हो जाता है।

पं० शक्तिप्रसादजी शुक्ल वैद्यराज दिबियापुर

क्षीर शोधक क्षीर वर्धक अनुभूत योग,

देर में पचने वाले अनेक प्रकार के अन्नों के खाने से दोषों से दूषित हो जाने के कारण माता (अथवा दूध पिलाने वाली धात्री) का स्तन्य (दूध) दूषित हो जाता है। इस प्रकार के दूषित दूध के पीने से कुमार के अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। अतः उस दूषित दुग्ध की जांच करके उस के दोष को दूर करने की आवश्यकता होती है।

(१) यदि वात के कारण दूषित हो तो दूध का स्वाद कषैला हो जाता है, और जल में छोड़ने से ऊपर ही तैरता है। ऐसे दुग्ध को शुद्ध करने के लिये माता को रात में सोते वक्त गा दुग्ध में अश्वगन्धाद्य घृत या दशमूलाद्य घृत अभाव में केवल गो घृत मिला कर पिलावें। उस के दूसरे दिन से नित्य प्रायः सायम् दशमूल (सनिबन

पिठवन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, बेल के जड़ की छाल, स्योनाक, गंभारी, पाढ़ल, और अरणी) का काढ़ा नित्य ५ दिन तक पिलावें। इस प्रकार दूध शुद्ध हो जाता है।

(२) यदि पित्त के कारण दूषित हो तो स्वाद कड़ुवा, खट्टा अथवा नमकीन हो जाता है, और उस दूध में कुछ पीली २ लकीरें दिखलाई पड़ती हैं। ऐसी अवस्था में नीम पर की गुर्चि, शतावरी, परवर पत्ती, नीम की अन्तर छाल और लाल चन्दन प्रत्येक समभाग लेकर काढ़ा बनाकर शकर मिलाकर प्रातः सायम् ५ दिन तक पिलावें।

(३) यदि कफ से दूषित हो तो वह दूध पिच्छिल और गाढ़ा हो जाता हैं, तथा जल में छोड़ने से डूब जाता है। ऐसी दशा में मुलहठी और सेंधा नमक मिलाकर गोघृत मिलाना चाहिये। वमन द्वारा कफ निकल जाने से दोष दूर हो जाता है। बाद को पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता और सोंठ का काढ़ा ५ दिन तक पिलाना चाहिये।

(४) एवं यदि दो २ दोषों की विकृति से क्षीर दूषित हो तो दो २ के लक्षण प्रकट होते हैं। अतः दो २ प्रकार के तन्त दोष नाशक योगों को मिलाकर पिलाना चाहिये।

(५) त्रिदोष की विकृति से दूषित होने पर तीनों दोषों के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। विशेषतः कुमार के दस्त जल के समान पतले, आम युक्त, अनेक वर्ण और पीड़ा युक्त होने लगतेहैं। उस समयपाठा (पाढ़ा) मूर्वा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, अनन्त मूल, मोथा और कुटकी प्रत्येक सम भाग लेकर काढ़ा बना कर माता को पिलावे। इन उपायों से स्तन्य दोष रहित हो जाता है।

यदि बच्चे को भी थोड़ी २मात्रा में इन काढ़ों को दोषानुसार पिलाता रहे तो उसके दुष्ट स्तन्य पान के कारण उत्पन्न रोग दूर हो जाते हैं। जो स्तन्य जल में छोड़ने से उस में मिल कर एक रूप हो जाय और जो स्वादु (मीठा) अविवर्ण हो उसे शुद्ध निर्दोष समझना चाहिये।

यदि माता का स्तन्य बच्चे को पिलाने के लिये पर्याप्त न हो तो निम्नाङ्कित औषधियों का सेवन करना चाहिये। अवश्य दूध बढ़ जायगा।

(१) सफेद जीरा को नाम मात्रगाय के घी में हल्का भून कर कपड़ छान चूर्ण ना कर रख लेवे। चार २ माशा चूर्ण समभाग शकर के साथ मिला कर सुबह शाम और रात में सोते वक्त फाँके।

(२) ताजी शतावर का रस २ तोला मिश्री २ तोला पाव भर गौ दुग्ध में मिलाकर प्रातः सायम् पिये। यदि ताजी न मिले तो १ तो० सूखी शतावर को दूध में पीस कर मिश्री मिला कर पीना चाहिये।

(३) कपास के बीज (बिनौले) की गूदी का चूर्ण १ तोला को मिश्रीऔर गो दुग्धके साथ प्रातः सायम् और रात में सोते समय पिये।

(४) विदारी कन्द (पातालहैंड़ा) के ६ मा० चूर्ण को मिश्री और गोदुग्धके साथ प्रातः सायम् और रात में सोते समय पिये।

(५) पीपरि (पिप्पली) के चूर्ण डेढ़ मा० को पाव भर उष्ण गोदुग्ध से प्रातः सायम् पिये

नोटः—नं० १ और नं २ बाला योग अग्नि मान्द्य वाली स्त्री के लिये विशेष लाभ प्रद है।

श्री पं० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री काशी

सुख प्रसव के लिये उत्तम

अपरा पातन योग

१—करंज के बीज २ छटाँक, पत्र २ छटांक, को बकरी के दूध में पीस कर कल्क बना लेवें। तिल का तैल १ सेर, बकरी का दूध ४ सेर, सब को मिलाकर तैल पाक विधान से तैल पका लेवें तैल मात्र बाकी रह जाय तो छान कर साफ बोतलों में रख देवे।

सेवन विधि—प्रसव काल में इस तैल को अपत्य मार्ग में लेपन कर देवे। इस से प्रसव शीघ्र होता है। किन्तु दुर्गा को स्मरण करलें।

लेपनमंत्र—हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शर्वरी नाम यक्षिणी। तस्या नूपुर शब्देन विशल्या भवति गर्भिणी स्वाहा॥

२—छोटी कटेरी की जड़ (उत्तर तरफ स्थित) को वैद्य ताजी २ उखाड़ कर जल से पीस कर योनि प्रान्त भर सर्वत्र लेप करदे। इससे प्रसव तत्क्षण ही हो जाता हैं।

३—सूर्य की तरफ मुख करके धत्तूर (कृष्ण) की जड़ ले आवें, और स्त्री के सिर पर रखने से प्रसव सुख पूर्वक होता है।

४—अपामार्ग की जड़ को पूर्व की तरफ मुँह करके प्रसव के दिन उखाड़लावे, इसके प्रलेप करते ही प्रसव हो जायगा। कमल के निकलने के बाद इसे शीघ्र ही धो देना चाहिये।

५—कृष्ण सर्प की केंचुलीकाभस्म, शहद के साथ अंजन करते ही प्रसव सुख पूर्वक हो जाता है।

६—सफेद पुष्प के सरफोंका की जड़ को कमर में बाँधते ही प्रसव सुख पूर्वक हो जाता हैं। प्रसव होने के बाद इसे खोल देना चाहिये।

७—गुग्गुल और सांप केचली का धूपन अपत्य पथ में देते ही प्रसव सुख पूर्वक हो जाता हैं।

८—कलिहारी की जड़ को पैर के तलवे और योनि पर लेप करे। तो शीघ्र ही बहुत कालों का रुका हुआ गर्भ प्रसव हो जावे।

९—शालि पर्णी के मूलको चावल के धोवन के संग पीस कर नाभि प्रदेश व योनि प्रदेश पर का किया हुआ लेप सुख प्रसव कराता है।

१०—साँप की केंचली, मनुष्य के शिर के बाल, सिरस के बीज, कड़वी तुम्बी, अमलतास को कड़वे तेल में मिलाकर आग में जलावें और धुयें को योनि प्रदेश में लगाने देवें। शीघ्र सुख पूर्वक और अवश्य प्रसव होगा।

११—मोरशिखाकीजड़, विजयसार, सहिंजनाकीजड़, पाठा. छोटी कटेरी, खरैंटी, इन सबका ही कांजी में पीसकर किया हुआ लेप शीघ्र बालक प्रसव कराता तथा अपरा पातन कराता हैं।

१२—बांस की जड़ या पित्त पापड़े का रस नाभि के चारों तरफ लेप करे, तो प्रसव सुख पूर्वक होता हैं।

(१३)—लाङ्गली, वमकोय की जड़ का नाभि पर लेप, सुख पूर्वक प्रसव कराता है।

१४—बिजोरे की जड़, मुलहटी शहद इन को पीस कर जल के साथ घी मिला पीने से सुख प्रसव होता है,

१५-लाल रंग के सूते को स्त्री की लम्बाई भर का ले करके ७ गांठ बनावे, उसे उक्त लिखित मंत्र से १ सौ बार अभिमंत्रित करे। और सूतिका गृह के दरवाजे पर बांध देवे, तो प्रसव सुख पूर्वक होता है। कोई कष्ट नहीं होता।

नोट—ऊपर लिखित औषधियां और धूप गर्भाशय के शिथिल मांस पेशियों में उत्तेजनायें फैलाती हैं। और उससे संकोच करने की शक्ति आ जाती है। और प्रसव की क्रियायें पूरी हो जाती हैं। अतः इसमें किसी को अविश्वास करना, पत्थर पर तीर मारना मात्र ही है।

प्रि० पं० विश्वनाथ शास्त्री पीलीभीत

प्रसूति रोग पर अनुभूत प्रयोग

(१) ह्रीवेरादि क्वाथ-हाउवेर, सोनापाठा, लालचन्दन, खरैटी, धनियां गिलोय, नागरमोथा, खस, यवासा, पित्तपापड़ा अतीस, यह सब ३-३ माशा ले, आध सेर जल में क्वाथ करें, आध पाव शेष रहने पर उतार कर छान लें। ठण्डा होने पर पिलावें प्रसूतिका के रोगों पर यह क्वाथ अच्छा काम करता है।

(२) अमृतादि क्वाथ—अमृता (गिलोय) सोंठ, खरैटी, भद्रमोथा, दालचीनी पंचमूल, तेजवाला, तेजपात, ३-३ माशा लेकर पाव भर पानी में क्वाथ करें, चतुर्थांश (छटांकभर) रहने पर उतार छान ठण्डा होने पर पिलावें, प्रसूति ज्वर पर लाभ दायक हैं।

(३) देवदार्वादि क्वाथ—देवदारु, वच, कूठ पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियां, जङ्गीहरड़, गजपीपल, लालधमासा, गोखरू, धमासा, कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिङ्गी, और कालाजीरा इन बीस औषधों का अर्द्धावशेष क्वाथ पिलाने से प्रसूति रोग नष्ट हो।

(४) सूतिकारिरस—शुद्धपारा, शुद्धगंधक, कृष्णाभ्रकभस्म प्रत्येक १-१ तो०, ताम्र भस्म आधा तोला, इन सब को एकत्र पीसकर गोरखमुण्डी के रस में मर्दन करके एक से दो रत्ती तक की गोली बना कर छायामें सुखा लें, दूधव त्रिकुटा के चूर्ण के साथ सेवन करने से सूतिका रोग नष्ट होते हैं।

(५) सूतिकाघ्न रस—शुद्धपारा, शुद्धगन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, जावित्री, काला नमक १-१ तोला लेकर बकरी के दूध में खरल करके दो रत्ती की गोली बना सेवन करें इससे ज्वर अतिसार व सूतिका रोग नष्ट होता है।

(६) दशमूल क्वाथ-शालपर्णी, पृष्टपर्णी दोनों कटेरी, गोखरू, बेल,, अरनी, श्योनाक गम्भारी, पाढल, सब मिला कर २ तोले, पाव भर पानी में डाल औटाना एक छटाँक रहने पर छान लेना, ४ रत्ती छोटी पीपल का चूर्ण डाल कर पीने से प्रसूतिका। रोग नष्ट हो।

ले०-पं० जानकी प्रसाद वैद्यराज

हटा (सागर) सी० पी०

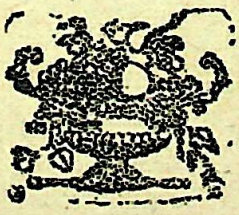

नव जात शिशु का सामयिक उपचार

ले०—प्रि० पं० विश्वनाथ जी शास्त्री, पीलीभीत

माता के गर्भाशय से अपत्य पथ को पार करके जब पूर्ण काल का भ्रूण वाह्य जगत में अवतीर्ण होता है, तो उनकी संज्ञा नवजात शिशु' की हो जाती हैं, अब यह अपनी हर प्रकार को क्रियाओं के लिये दूसरे का सहारा लेने लगता है। गर्भाशय को एक निश्चित ताप मान पर रहकर बाहर निकलते ही प्रथम बार उसके शरीर में अपेक्षाकृत ठंडी वायु का स्पर्श होता हैं,। ठंडक जैसे हर एक प्राणियों के त्वचा और मांस पेशियों पर प्रभाव डाल कर उनमें संकोच प्रारम्भ करती हैं, श्वास लेने का प्रथम प्रयास करना पड़ता है। बस इस लिये बच्चा प्रथम बार रो उठता हैं। उसे श्वास इत्यादिके लिये पहले माता के अपरा द्वारा ही प्रवन्ध या अब उसकाअपने आप मुंह खुल जाता हैं। क्रंदनवत एक ध्वनि निकल पड़ती है, हिन्दू धर्मशास्त्र इस समय जातकर्म्म संस्कार कराने की सम्मति देते हैं। जो व्यक्ति इन प्रथाओं से घृणा करते हैं। वे भी किसी न किसी रूप में इसे करते ही हैं जिसके ऊपर आगे प्रकाश डाला जायगा प्रसव होते ही बच्चे को स्नान कराने की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि इस समय इसके (बच्चे) शरीर में गर्भोदक नाल परिस्राव इत्यादि गर्भ की सहयोगी चीजों का भाग लगा रहता हैं।

स्नान

इसके लिये १०० फार्नहाईट की उष्णता वारले जल की आवश्यकता पड़ती हैं। एक खुले हुये गहरे वर्तन में उपर्युक्त उष्ण जल ४ या ५ अंगुल ऊचाई में भर दो। हाथ डाल कर यह परीक्षा अवश्य कर लो कि जल कहीं अधिक उष्ण तो नहीं है? अब शिशु को सावधानी से पकड़ करके धीरे २ शरीर में तेल लगा कर एक मिनट ठहरो। इससे त्वचा का मैल कुचैल नर्म पड़ जायगा। इसके वाद साबुन के फेना को रुई के फोहे से मलो। शरीर पर साबुन कभी न रगड़ो यदि हाथों से लगाना पड़े तो धीरे २ लगाकर जल से (पूर्वोक्तउष्ण जल) धो डालो, धोते वक्त ध्यान रहे कि जल पीठ की तरफ गिरे मुख की तरफ न आने पावे। शिर का जल आंख मुंह में न पड़ने पावे। अब शिशु को स्वच्छ नर्म वस्त्र तौलिया या मलमल के रूमाल से पोंछ कर वस्त्र में (सूखे व स्वच्छ से) लपेट करके साफ स्थान या विस्तरे पर रख लो।

नालच्छेद

स्नान कराने के पहले ही नालच्छेद करना व मुँह से अंगुलि डाल करके झिल्ली को पृथक कर देना चाहिये। नाभि से आंठ अंगुलि नाप करके शुद्ध धागे से एक बंध लगाकर बीच में २ अंगुलि फासला छोड़ करके एक और गांठ या

शिशु विज्ञान स्तम्भ

१–नवजात शिशु का सामयिक उपचार ··· [प्रि० पं० विश्वनाथ जी शास्त्री पीलीभीत]
२–नवजात शिशु पालन व सामयिक दुग्ध कल्पना [प्रो० आयुर्वेदाचार्य पं जयदेव जीमिश्र]
३– बच्चों के सम्बन्ध में कुछ स्मरण योग्य बातें ··· [श्रीशिवशरण जी शर्मा]
४–नव जात शिशु के रोग ··· [वैद्यराज पं० जयदेव जी मिश्र शास्त्री]
५–बालग्रह और उनकी अनुभूत चिकित्सा ···[पं देवदत्त शर्मा वैद्यशास्त्री (शंकर गढ़)
मनोरञ्जन ··· ··· ··· ··· [ले०–पं० विपिनविहारी दीक्षित शास्त्री 'शान्त'

बंध धागेसे लगा देना चाहिये, और बीच में काट देना चाहिये, दो बँध लगाने के कारण यह हैं, कि नाल के बीच से काटने के बाद रक्त का भाग नाल द्वारा बाहर न आवे। जो बच्चे की दुर्बलता व मृत्यु का कारण स्वरूप बन जावे। माता के तरफ के बंधन का मतलब यह है, कि अपरा के द्वारा नाल मार्ग से गर्भाशय का रक्त अधिक न बाहर निकल जावे। यह माता के अंदर दुर्बलता पैदा करेगा। अथवा यदि गर्भ में एक और बालक है तो रक्तस्राव होने से उस की मृत्यु भी हो जायगी।

नोट—नाल काटते वक्त कुछ बातों को ध्यान में रखना उचित हैं। १—जब तक नाल में स्पन्द हो रहा हो गांठ, या बंधन न लगाना ही उचित हैं, क्योंकि रक्त का वह भाग जो बालक के लिए अपरा से आ रहा हैं, नहीं आकर दुर्बलता पैदा कर बच्चे में शिथिलता पैदा करेगा, अतः नाल के स्पंद के बंद होने पर काटना उचित हैं।

नाल में बंधन लगाते तथा काटते वक्त यह ध्यान रखना चाहिये, कि वह खिंच न जाय। अन्यथा नाभि पर पाक हो कर शिशु को तकलीफ देगा। अब दोनों बंधनों के बीच तेज छुरी से कैंची या चाकू से काटना चाहिये दूसरों को भी ऐसा ही करने का उपदेश देव।

ज्ञातव्य

स्नान के बाद चिकित्सक या दाई को यह देख लेना चाहिये, कि शिशु की सब इन्द्रियां ठीक है या नहीं? क्योंकि बहुत से नवजात शिशुओं में गुदा केछिद्र, मूत्रमार्ग, नहीं होते या अपूर्ण व छोटे होते हैं। ओष्ठ अलग २ न होकर जुड़े रहते हैं। पलक जुड़े या कम फैले रहते हैं। पांव मुड़े हुये या सीधे होते हैं। अंण्ड कोष उदर गुहा से निकलकर थैली में आ गये हैं या नहीं? इस में अपूर्णता होने पर यथा योग्य सुचिकित्सक की सहायता लेना चाहिये। या उचित कर्त्तव्य करना चाहिये। यदि माता उपदंश पीड़ित है। तो यह संदेह होते हो कि योनि स्राव का भाग आंखों में पड़ गया है सिल्वर नाईट्रेट १ एक प्रति शत द्रव में से १ बूंद डाल कर धो डालो। नेत्र यद्यपि शिशु का इस के डालने से लालरंग का हो जायगा। किन्तु इस को चिन्ता न करो, अपने आप अच्छा हो जायगा। नाल से यदि रक्त निकल रहा हो, तो धोकर साफ करके वहां पर बोरिक एसिड छिड़क कर पट्टी बांध कर गले में (शिशु के) एक तागे के साथ बांध कर लटका दो। यदि पहले पट्टी बांध दी गई है, तो स्नान कराते वक्त उसे भीगने न देना चाहिये यदि अब भी रक्त निकलता पाया जाय, तो बोरिक एसिड या वेसन से सुखादो। बच्चे के वज़न को अब लेना उचित है। क्योंकि स्वस्थ बालक ३-३॥ सेर भार में होगा, भार यदि कम है, तो इस के प्रति सतर्क रहना आवश्यक होगा।

नाल

जन्म से दूसरे और पांचवे दिनों के बीच में नाभि शिरा धमनी और उस की शाखाओं के मुख बंद हो जाते हैं। अब यह भाग एक शुष्क रस्सी की तरह रह जाता है। मुख बंद होते ही नाभि मुख स्थान से नाल प्रथक हो जाता है। सूज कर

नाल के गिरने के बाद नाभि में एक खरदरा खुंड होता है। वह भी शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

शिर

दो एक दिनों के बाद ही शिर की आकृति ठीक हो जाती हैं। शिर इस समय मृदुहड्डियों का होता है। अतः जिस तरह का हो, बनाया जा सकता हैं। बहुत सी फूहड़ और नासमझ माताएं बच्चों के ऊपर ध्यान न देकर जैसे का तैसा रख देती है। ग्रीवा के भार न सहने के कारण शिर चौड़ाई की रुख में पड़ा रह कर चपटा लम्बा हो जाता हैं। अतः माताओं का प्रथम कर्तव्य है। कि शिशु के शिर की अवस्था की देख भाल करती रहें, जिससे उनका शिरः प्रान्त भद्दा होनेके बदले सुन्दर हो सके। दाइयोंको भीउचित है, कि शिर की आकृति को ठीक करने के लिए दिन में दो एक बार हाथ से दबा दिया करें।

त्वचा

कुछ दिनों तक त्वचा का रंग लाल रहता हैं, इस पर एक सफेद भुसी सी उडती दिखाई पड़ती हैं। कुछ दिनों के बाद ठीक अपने वर्ण पर आती है। कभी २ शिशु के (बालक या बालिका के) स्तन फूल जाते हैं, और दबाने से उन में से सफेद तरल पदार्थ निकलता हैं। तरल निकालने के लिए बार २ कोशिश नहीं करना चाहिये। क्योंकि शिशु इस से कष्ट अनुभव करता हैं। इस की चिकित्सा—इन्द्रायण की जड़ का लेप काली मिर्च के साथ करे अथवा पिप्पली का लेप लवण के साथ अच्छा हैं। किन्तु यह शोथ अपने आप जाती रहती है। अतः अधिक चिन्ता न करना चाहिए।

शौच—जन्म लेने के बाद कुछ दिनों तक शिशु को आँतों से एक प्रकार का या भूरा पूरा हरा सा निकला करता है। इसे गर्भमल के नाम (Meconium) से पुकारते है। इससे आहार पथ की परिकला के टूटे फूटे सूत्र तथा सेले रहती है। जो गर्भोदक के साथ पाई जाती है माता के दूध के पान करने पर इसके रेचक शक्ति के कारण यह मल वास्तविक शौच का रूप धारण करता हैं। यह हल्के पीत वर्ण का विशेष गंध युक्त होता हैं।

भार—बच्चे का भार ३-३॥ सेर होता हैं, जब वह पैदा होता हैं। एक से तीन दिनों तक प्रर्याप्त दूध के न मिलने से उसका भार ४ छटांक घट जाता हैं। पुनः दूध के ठीक होते ही भार उन्नति करना आरंभ करता है। दस दिन के बाद स्वभाविक हो जाता है। इसके बाद प्रति दिन भार २२ माशे के हिसाब से बढ़ना चाहिये। पांच मास के बाद इस का भार ७ सेर हो जाना स्वस्थता के लक्षण को बतलाता हैं। इस में यदि कोई कमी हो तो चिकित्सक की शरण लेनी चाहिये।

लेहन या जात कर्म संस्कार

प्राचीन संहिताओं में यह कर्म, जात कर्म संस्कार के नाम से पुकारा जाता है। जिसमें श्राद्ध हवन इत्यादि होते है। आर बच्चे को सोने की सलाईके साथ मधु से जीभ पर "ओ३म्" लिखा जाता है। यह क्रिया नालच्छेदन के पश्चात् हुआ करती है। अब के प्राचीन बातों को नहीं मानते हुये

भी यह कर्म करते हैं। यह क्रिया भारत वर्ष के कोने २ में पाई जाती है। भले ही स्वरूप दूसरा होवे। प्रत्येक जाति कोई न कोईमिष्ट वस्तु अपने शिशु की जिह्वा पर इस समय रखती है। पंजाब में यदि सीरे या गुड़ का प्रयोग है तो युक्त प्रान्त में शहद का विलायत में ग्लिसलिका। किन्तु हम यदि चिकित्सा की दृष्टि कोणों द्वारा विचार करें, तो देखेंगे आयुर्वेदिक की सम्मति सत्य वैज्ञानिक तथा उपयुक्त है। हर एक चिकित्सक शहद को जानते हैं कि यह त्रिदोष नाशक अधिक तर कफ विच्छेदक द्रावक और निष्काशक है। इस में बल कारक, रेचक, बुद्धि वर्द्धक, मेधावर्द्धक रक्त शोधक व कई रासायनिक, गुण मौजूद, हैं। ग्लिसरिन और गुड़ सीरे की इसके सामने ताकत ही क्या है। अब यदि आयुर्वेद की यह सम्मति है तो पाठक बतलावें इस पर दोषारोपण किस दिमाग की बातें होंगी। अतः आप भी आज से इस समय शहद का ही प्रयोग करें।

विधि–पवित्र, खालिश शहदको लेकर सुवर्ण की शलाका द्वारा जिह्वापर 'ओ३म्' ॐ का पवित्र मंत्र लिख देते हैं। और उस के कान में, त्वंवेदोसि, का पवित्र वाक्य उच्चारण कर देते हैं। ओ३म् के लिखने का मतलब यह है कि, हे वत्स, तू अब इस संसार में आ गया है। इसका मालिक जो है। जिसने तुझे निरापद प्रसव होने दिया हैं, उसके इस पवित्र नाम को न भूलना यह इस संसार रूपी समुद्रको पार करानेके लिये तुम्हें नौका होगा। यह मधुर मधु जो हजारोंमधुमक्खियों द्वार सैकड़ों फूलों के रसों द्वारा लेकर के एकता पुट पाक से तैयार हुआ हैं इसीकी तरह तेरी जिह्वा से निकाली हुई वाणी मधुर होकर सब को प्रिय लगे जो देश के प्रत्येक कोने में अपनी शक्ति द्वारा एकता का शंख नाद कर देश की दुर्वस्था को सम्हाल सके। तू अपने कुटुम्ब में, ग्राम, देश व जाति में एकता पैदा कर सके। मधु मक्खियों की तरह तू भी श्रम जीवी होकर अपने गृह, परिवार तथा गरीब भाइयों का पोषण कर सके। जैसे यह मधु रोग विध्वंसक है, तूभी अपने गरीबभाइयों की व्याधियों का विध्वंसक बन, और अपने यशो गौरव से देश को आह्लादित कर एकता की सुरसरिल बहा स्वर्ण जैसा अपना भविष्य उज्वल सुदृढ़ बना, जो तेरे पूर्वजों की कीर्तिकी रक्षा कर सके।

वैज्ञानिक रहस्य– सोने की सलाई के साथ शहद के संयोग से एक प्रकार की रासायनिक क्रिया उत्पन्न होती है। जो शिशु के शरीर में बिजली की शक्ति पैदा कर जीवन की बाढ़ में एक नव स्फूर्ति पैदा करती है। कहीं कहीं स्वर्ण भस्म का शहद के साथ चटाना लिखा है। इस से प्रसव व्यथा से खिन्न शिशु में बलसंचार होकर रोग क्षमता बढ़ती है। शिशु के स्वर विकृति इत्यादि नहीं हो पाते। स्वर रज्जुवों में जिह्वा में की कमजोरी दूर होती हैं। यदि श्लेष्म का विकार है तो वह भी दूर हो जाता है। बहुत से बालकों में तुतलाहट की उत्पत्ति अधिक दिनों तक देखी जाती है। जिसका कारण जीह्वामूल के साथ की झिल्ली का तंग होना होता है, जो जीभ को फैलने नहीं देती परिणाम स्वरूप जीभ की क्रिया पूरी नहीं होती और वाक्यया शब्द आस्फुट निकलते हैं। इसकी चिकित्सा

झिल्ली को काट देना ही है, यदि जीभ पर लिख ते समय देखने में यदि संकोच मालूम होता होतो साफ मालूम हो जायगा। कि शिशु तुतलायगा अतः आगे प्रतिकार भी सरलता से किया जा सकता है। विना जीभ देखे यह ज्ञान नहीं हो सकता। यह क्रिया विद्वान पुरोहित या सुयोग्य चिकित्सक द्वारा होनी चाहिये और होती भी थी जिससे ये देख कर इस विकृति को पहचान सके। सोने की सलाई के अभाव में चांदी की याकनिष्ठा अंगुलि का प्रयोग हैं। सलाई इसलिये ही प्रयुक्त की गई है कि शिशु का मुख छोटा होगा। और यह कर्म सलाई द्वारा या कनिष्ठा अंगुली द्वारा सरलता के साथ संम्पादित हो सकेगा।

वक्ष—

नवजात शिशु के अग्र,पश्चात् और व्यत्यस्त व्यास करीब २ एक होते हैं। बढ़ने के साथ ही वक्ष का व्यास अंडाकार होता जाता है, इस समय वक्ष का घेरा शिर के घेरे से आध इञ्च छोटा होता है। शिशुकाल में दोनों बराबर रहते हैं। तीसरे वर्ष में वक्ष का घेरा शिर के घेर से बड़ा हो जाता हैं, यदि इन मानों में कोई कमी मालूम हो तो समझा जा सकता है, शिशु अपेक्षाकृत दुर्बल्य है। छोटावक्ष यह बात साफ बतलायगा। उस समय चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिये।

अन्न मार्ग

नवजात शिशु के आमाशय की लम्बाई आध छटाक होती है। तीन मास में कोई २ छटाक के लग भग हो जाती है। अतः नव जात शिशु को एक बार में दूध का मान इससे अधिक न बढ़ाना चाहिये। वह ठीक २ २ तोले से ढाई तोले की होना चाहिये।

अन्त्र

नवजात शिशु के अंत्र की (क्षुद्रांत) लम्बाई ६ फुट वृहदंत्र की डेढ़ फुट के लगभग होती है। उदर का घेरा प्रारंम्भ में करीब २ वक्ष के बराबर ही रहता है दूसरे वर्ष के अन्त में शिर, वक्ष और उदर के घेरे करीब २ एक से ही रहते हैं। पश्चात् बढ़ने लगता है। उदर का बड़ा होना व फूलना रोगों का साक्षी है।

शिशु की ज्ञानेंद्रियां

प्रथम सप्ताह तक शिशु की आँखे इतनी कोमल होती हैं। कि वह प्रकाश को सहन नहीं कर सकतीं। प्रकाश देखते ही मिच जाती हैं। सौर्य गृह का प्रबन्ध इसी लिये ही किया जाता है। कि शिशु की भी नेत्र शक्ति धीरे २ प्रकाश को सहने योग्य हो जावे। तथा माता भी अपने स्वास्थ्य को प्राप्त कर सके। इस समय शिशु को प्रकाश में ले जाना ठीक नहीं हैं। प्रथम सप्ताह के बाद आँखे इस योग्य हो जाती है। कि वह प्रकाश की तरफ फिर सकें, नेत्र की पेशियां भी ठीक २ अभी अपना काम नहीं करती जिधर घुमानी चाहिये उधर नहीं घूमती, चौथे मास से नजर घूमने तथा ठहरने लगती है। इनमें गति भी पहले से अच्छी होने लगती है। छैः मास के बाद शिशु देखी हुई वस्तु को पहचानने लगता है।

श्रवण शक्ति

पैदा होने के २४ घंटे पीछे तक कभी २ शिशु को कुछ सुनाई नहीं पड़ता। धीरे २ शक्ति बढ़ती

नवजात शिशु पालन व सामयिक दुग्ध कल्पना

[ले०-प्रो० आयुर्वेदाचार्य पं० जयदेवजी मिश्र वैद्यराज]

मनुष्य जाति कितनी ही उच्च श्रेणी की क्यों न मान ली जाय, किन्तु उस की संतति उतनी ही निरीह होती है, यह हर एक व्यक्ति अच्छी तरह समझते हैं। जानवरों के बच्चे पैदा होते ही उठ खड़े हो, मां के स्तन की तरफ बढ़ते हैं। किन्तु शिशु के पक्ष में यह क्रिया बिना मां की सहायता के नहीं हो पाती। नवजात शिशु पैदा होने के साथ ही अपनी हर एक प्रकार की साधनों की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्ति या माँ की कृपा का भिखारी होता है। प्रकृति इस की रक्षा के सर्वोपरि खाद्य सामग्री दूध को माता के स्तनों में तैयार किये बैठी रहती हैं। यह इसकी रक्षा के लिए अमूल्य पदार्थ हैं। शरीर की वृद्धि के लिये हर प्रकार की उचित सामग्रियों का मिश्रण इस में पाया जाता है। इन सबों का परिमाण भी एक उचित मात्रा में होना चाहिये। यदि ये उचित मात्रा में न होंगे, तो इस का व्यवहार करने वाला शिशु रुग्ण हो जायगा। जैसा कि आज कल के रोग ग्रसित

[पृष्ठ ६८२ से आगे]

जाती हैं फिर वह इतनी हो जाती है। कि जिधर से शब्द आ रहा हो उधर वह मुंह फेर ले। तथा आहट पाते जग उठे।

बहुत समय बच्चों की दुर्व्वलावस्था में उनके संज्ञा शून्य होने पर भारी शब्दों का प्रयोग (शंख बन्दूक) होता था। जिसे सुन कर वह चेतन शक्ति प्राप्त करें। इसके लिए पूजा विधि में शंख नाद का प्रयोग होता था। गरीबों के यहां कुछ दिनों के बाद पुरोहितों के लोलुपता से यह क्रिया लुप्त हो गई थी, अतः कहीं कहीं यंत्रा भाव से घण्टे घड़ियाल व शंख के बदले थाली पिटकर ही यह क्रिया संपादित की गई। जिसके परिणाम स्वरूप देखा देखी सबों ने इसे प्रारम्भ किया यहां तक कि यह प्रथा बच्चा पैदा होने पर थाली बजाना एक विधान हो चुकी। अस्तु इस कथन का तात्पर्य यह हैं। कि भारी व दीर्घ शब्दों के सुनने की शक्ति नवजात शिशु में भी होती है। किन्तु कर्मेंद्रिय इस समय बहुत कमजोर होती है,

स्पर्श

स्पर्श शक्ति जन्म से ही होती है जैसा पहले कहा जा चुका है कि शीत जल स्पर्श से पेशियों में संकोच होता हैं। ओष्ठ जिह्वा में भी जो चूसने के काम में आती है। कमजोर होती है। तीसरे मास में यह शक्ति सर्व त्वचा में प्राप्त हो जाती है। शिशु गर्मी सर्दी को अच्छी तरह पहचानने लगता हैं, जिह्वा और कर्ण की भी शक्ति अब बढ़ जाती हैं, माथे और कर्ण जलि में स्पर्श की शक्ति सब से अधिक होती है।

स्वाद

स्वाद तो जन्म से ही शिशु पहचानने लगता हैं वह मीठी चीजों को अधिक पसन्द करता हैं।

गंध

गंध की शक्ति भी थोड़े जन्म से ही होतीहैं।

बालकों की संख्या हजारों की गिनती में इस कारण ही रोग ग्रसित होकर संसार सागर से अल्प काल में ही विदा ले लेने को बाध्य हो रही हैं। अतः क्षीर के विशुद्धता के लिये हर प्रकार का ध्यान रखना उचित हैं। क्षीर पान करना जितना ही शिशु के पक्ष में हितकर है। उतना ही मां के पक्ष में पान कराना भी उपादेय हैं। जब मां दूध पिलाती हैं, बच्चा स्तन चूसता है। तो गर्भाशय संकुचित होना प्रारम्भ होता है, और अपनी स्थिति में आ जाता है। माता की स्वास्थ्य रक्षा भी होती है और बच्चे के लिये पालक भी। माता का स्तन्य (क्षीर) प्रथम तीन दिनों का कुछ रेचन होता है। इस से पेट में एक तरह की प्रति क्रिया प्रारम्भ होती है, और शिशु के गर्भ मल को निकाल देता है। एतदर्थ किसी रेचक औषधि के प्रयोग की आवश्यकता नहीं हो पाती, स्तन के अन्दर का दूध सुरक्षित रूप से शिशु के मुख में चूस लिया जाता है, अतः रुग्णावस्था प्राप्त हो नहीं होने देता। साथ ही शिशु की पाचक शक्ति बढ़ती जाती है और वह इस योग्य हो जाता हैं, कि किन्हीं कारणों द्वारा स्तन पान न भी कराया जा सके, और अन्य बाहरी दुग्धों का प्रयोग करना आवश्यक समझा जाय, तो वह उसे शीघ्र ही पूर्ववत पचासके। इस तरह यह क्रियाजननी और शिशु दोनोंके लिये हितकर, पोषक तथा स्वास्थ्य रक्षक है।

किन्तु कई अवस्थाओं में यह दूध हानि कर हो जाता है, और त्याज्य समझा जाता हैं। अधोलिखित अवस्थायें, स्तन क्षीर पान के लिए निषिद्ध हैं।

१—माता का यक्ष्मा से पीड़ित होना।

२—कंपवात (Chorea) में।

३—प्रसव व उसके बाद के भयानक उपद्रव जैसे रक्त पात (Haemorrhagia) प्रसूत ज्वर, विषाक्त ज्वर इत्यादि।

४—क्षीरानुपस्थिति।

५—दुग्ध प्रदान काल में गर्भस्थिति।

६—दुग्ध प्रदान काल में किसी उग्र व्याधि की उपस्थिति (ऊपर की दशायें माता के शरीर की सम्बन्धिनी हैं जिन में दूध पिलाना अनुचित है।)

शिशु काअवस्थायें जिनमें दूध न पीना चाहिये—

दूध पान करते रहने पर भी शिशु के भार का कम होते जाना या दुर्बलता की वृद्धि का होना। अजीर्ण या उदर रोगो की स्थिरता यह दशायें दुग्ध पान के लिये हानिकर है। अतः ऐसे अवसरों पर जहां तक हो सके अन्य धात्री का या बाहरी दुग्धों का उपयोग हित कर होता हैं। धात्री के लिये उचित विचार करना आवश्यक है। क्यों कि यदि उसमें भी ऐसे रोग से या वह शास्त्रीय विचारोंसे असहमत हों तो ऐसी धात्री भी शिशु को निरोग नहीं कर सकेगी यदि इसका भी प्रबन्ध न हो सके तो गाय बकरी ऊंट या बड़वा (घोड़ी) या गदही इत्यादि के दूध का समुचित प्रबन्ध करना उचित है। अथवा माता के दूध की कमी होने पर भी ऊपरी दूध का कुछ प्रयोग किया जाना चाहिये अन्यथा शिशु के पोषण के पर्याप्त खाद्य सामग्रियों की कमी उसे दुर्बल बना सकेगी।

भारत वर्ष में धात्री के या माता के क्षीराभाव में अधिक तर गाय का ही दूध प्रयुक्त होता है। इसका कारण यह है। कि इसमें उचित सामग्रियों का मिश्रण स्तनक्षीर की तरह ही करीब २ पाया जाता है। यद्यपि गर्दभी (गदही) घोड़ी दुग्ध बिल्कुल माता की दूध की समता रखता है किन्तु वह शास्त्रकारों की सम्मति से मंद बुद्धि करने वाला होता है। और गो दुग्ध इस विकार से रहित है। अतः पार्थक्य होते हुये भी गो दुग्ध ही प्रयोग में उचित समझा गया है, उदाहरणार्थ कुछ दुग्धों के मिश्रणों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

किस्म	प्रोटीन	वसा	कार्बोज या शर्करा	लवण	जल	विशेषता
स्त्री क्षीर	१. ५	३. ८०	५. ६०	०. २४	८६. ८६	
गाय	३. ५	४. ०	३. ५	०. ७५	८७. २५	प्रोटीन और शर्करामें अ तर है
घोड़ी	२. ०	१. २०	५. ६५	०. ३६	९०. ७९	वसा कम है
गधी	२. २५	१. ६५	६. ००	०. ५०	८९. ६०	बहुत मिलता जुलता है
बकरी	४. ३	४. ६८	४. ४६	०. ७६	८५. ७१	
भैंस	६. ११	७. ४५	४. १७	०. ८७	८१. ४०	

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि गर्दभी के दूध की समता बहुत कुछ स्त्री दुग्ध से है किन्तु दोषकर हैं।

यदि यह हानिकर न होता तो अत्युत्तम स्वस्थावस्था के लिए था यकृत की विकृतावस्थामें जब कि वसाकी पाचन क्रिया कम हो जाती है, अवश्य ही इसका दूध सेवन करने योग्य हैं, स्वास्थ्य बालक के लिये तब गो दुग्ध ठीक रहेगा। इसमें व माताके दुग्धमें केवल प्रोटीन और शर्करा में ही अंतर पाया जाता है,। शेष भाग ज्यों के त्यों है। स्त्री दुग्ध में प्रोटीन कम व शर्करा अधिक है तथा गो दुग्धमें प्रोटीन अधिक और शर्करा कम है। इन दोनों की प्रोटीनों में कैजिन (Caslia) नामक एक पदार्थ पाया जाता है जो आमाशय में। जाकर दही की तरह कठिन रूप धरण कर लेता है। दूसरा पदार्थ दुग्ध श्वेत Laetalatbumen पाया जाता हैं जो तरलावस्था में ही रहा करता है, अतः शीघ्र पच जाता हैं। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य दुग्धों में यह क्रम अपूर्ण रहता हैं। अतः ये दुष्पाच्य होते है। आयुर्वेद की सम्मति इसलिए ही मातृ दुग्धाभाव में गो दुग्ध के लिये ही पाई जाती हैं, गो दुग्ध में एक भाग दुग्ध श्वेत का बाकी ३ भाग के जीत का होता है। स्तनक्षीर में आधे से अधिक भाग

दुग्ध श्वेत का होता है इसलिये गो दुग्ध पिलाने के पूर्व दुग्ध के स्तन क्षीर वन पतला करने की आवश्यकता पड़ती है।

अब यदि इसे पतला करते हैं तो यद्यपि तरलता में यह सब हो सकेगा किन्तु शर्करा जल मिश्रण से कम हो जायगी वसा भी तदपेक्षा कम हो हो जायगी। अतः उसकी मधुरता तथा पाचकता को कायम रखने के लिए मलाई Creaw वा दुग्ध शर्करा Gugan of milkका प्रक्षेप आवश्यक है।

प्रारम्भ ही में यदि बाहरी दूध का सेवन करना पड़े तो वल्य स्तन का प्रयोग हितकर नहीं होता प्रारम्भ में माता का क्षीर भी उचित क्षीर नहीं होता पहले ३ दिनोंतक दूध की उपस्थित कम तथा हल्की होती है। साथ ही वास्तविक नहीं होती। अतः इसके अनुसार ही गर्म जल में थोड़ी सी दुग्ध शर्करा मिला कर पिला देना चाहिये। तीसरे दिन से एक व दश के हिसाव से मिला हुआ गो दुग्ध व जल के २ छोटे चाय वाले चम्मच से थोड़ी शक्कर मिला लेनी चाहिये। अब से दूध दिलाने का प्रबन्ध नियमित व समय के सङ्कठन के ध्यान से देना उचित है।

मात्रा—वही बच्चे के अयु के अनुसार तथा सब माता के दूध पीने का ही होना चाहिये। मध्यवर्ती परिमाण वाले शिशु के लिए प्रथम २४ घण्टे में २॥ तोले दूधसे वजन अधिक न होना चाहिये। इसको धीरे २ बढ़ाकर पहले मास के अंत पर एक छटांक, दूसरे मास के अन्त पर १॥ छ० देना चाहिये। अन्यथा अधिक पिलाने से स्वस्थ शिशु भी दुग्ध वमन कर देगा।

उदाहरणार्थ कुछ दुग्ध के मिश्रणों का उल्लेख किया जाता है।

तीसरे से पांचवे दिन तक के दिये जाने वाले मिश्रण

दुग्ध ६ से ९ माशे। दुग्ध शर्करा १ माशा जल २ तोला।

विधि—दुग्ध शर्करा को पानीमें पहले मिलालो अब इसे दुग्ध में मिला दो इसे दिन में प्रत्येक दो घण्टे।के बाद और रात में केवल दो बार ही दो। प्रत्येक तीसरे दिन इनकी मात्रा बढ़ाते जाएं। इसी क्रम से बढ़ाते रहने से दशवेंदिन यह नुस्खा बनेगा। जो कि मात्रानुकूल शिशु के पथ में हित कर होगा।

(२) दूध ६तो० १२ माशे दुग्ध शर्करा २ माशे मलाई २ माशे जल २ तोले।

विधि—दुग्ध शर्करा को पानी में मिलाकर मलाई मिला दूध मिला लो।

इसी तरह धीरे धीरे प्रत्येक बस्तुओं में बढ़ती करते रहना चाहिये। और उसे काम में लाते रहना चाहिये। इस तरहबालक का स्वास्थ्य ठीक रहेगा। उदाहरणार्थ दो एक मिश्रण दिखलाए जाते हैं।

(३) दूसरे मास दिया जाने वाला मिश्रण: दुग्ध २ तोला, दुग्ध शर्करा ३ माशे, मलाई ४ मा० जल ३ तोला।

विधि—मिश्रण के बनाने की विधि पूर्ववत् ही है।

(४) तीसरे मास दिया जाने वाला मिश्रण-

दूध ३ से ४ तोला, दुग्ध शर्करा ४ माशा, मलाई ६ माशा, जल ४ तोला।

विधि—पूर्ववत तैयार कर लो।

ऐसे ही मिश्रण के बढ़ाते वक्त समय को बढ़ाना भी उचित है। धीरे धीरे बढ़ाते हुए दूसरे मास में २ घंटे के स्थान प्रत्येक २॥ घंटे के बाद दिन में तथा रात्रि में १ बार ही दो। योंहीं बढ़ाते जाओ। प्रत्येक मिश्रण के लिये ताप मान १०० डिग्री फा० हीट ही होना चाहिये।

बहुत से चिकित्सक डेढ़ मास के बाद ही जल मिश्रण रहित दूध देने की सम्मति देते है। दिन में एक या दो बार जल या अर्क गजुवां या अर्क वेदमुश्क देना चाहिये। इसके ऊपर कथित मिश्रणों के अतिरिक्त चूर्णोदकLimi wa ter या बाली वाटर (Barley water) का भी उपयोग करना बहुत सी माताऐ अच्छा समझती हैं। किन्तु इस विचार से बहुत से लोग असहमत हैं। क्योंकि यह जल आँतों में होता हुआ शीघ्र ही बाहर निकल आता है, क्यों कि बच्चों के आँतों में ऐसे निशास्ते के वस्तुओं के पचाने को शक्ति बहुत ही कम होती है। यह दोष के बल बारलीवाटर तथा ओट मीट Dat Malwater के ही सम्बन्ध की है। चूर्णोद क तो पाचक तथा मल बन्ध कर Prodacing Conslipehing eppect होने से दूध मिश्रण को सुपाच्य बना देता है। किन्तु इसकी अधिक उपयोगिता तो तब ही हैं। जब शिशु मंदाग्नि या आमातिसार का शिकार बन गया हो। इस काल में ५ भाग उपर्युक्त दुग्ध मिश्रण में १ भाग चूर्णोदक का होना उपयुक्त है।

चूर्णोदक निर्माणविधि—सवा सेर पानी में ताज़ा बुझा हुआ चूना ३- ४ तो डालो। चूने मिले जल को खूब हिला कर किसी साफ वर्तन या बोतल में रख छोड़े। मलमल को या फलालैन को तीन चार तह करके छान लो। बस काम में लाओ। शिशु की आयु ज्यों बढ़ती जाय, उसे बार्लीवाटर, ओट मील वाटर, त्तादु-लोदक इत्यादि का प्रयोग धीरे २ कराना चाहिये इससे उसकी आँतें अन्न संबंधी रसो कों भी सहने योग्य हो जावें।

बार्ली वाटर निर्म्माण विधि—सवा तोला पर्ल बार्ली को १० छटांक शीतल जल में मिला दो। दो घंटे तक धीरे २ उबालो। जितना पानी पकते वक्त घटता जाता हो अन्दाज़ से उतना जल मिलाते जावो। जिस में वह १८ छटांक ही बनी रहें। फिर छान कर काम में लावो।

यही विधि ओट मील जल बनाने की है। ओट या यव चूर्ण की मात्रा २ तो० के बदले २॥ तोले होवे। पाचन काल २ ही घन्टा रहेगा।

कृत्रिम आहार अब विज्ञान की उन्नति काल में दुग्ध भाव में कई तरह के निर्मित कृत्रिम दुग्धहारकाम में लाये जाते हैं। जिन में देश के लाखों रुपयों की हानि है। ये दुग्ध कुछ काल के लिये व्यवहृत हो सकते हैं किन्तु इन के व्यवहार से पोषण संस्थान के बहुत से रोग हो जाते है। जिनके द्वारा शिशु दुर्बल होकर मृत्यु का चिरसंगी बनता है। इन में प्रसिद्ध हरलिक्स मेलरेड मिल्क नेसल्ज मिल्क, मेलिज फूड़, न्यूजफूड़ ग्ले-क्लों इत्यादि हैं। दूध भाव में इनका प्रयोग भले ही हानि कर हो किन्तु धात्री इत्यादि को न रख सकने वाले तथा गरीबी के व्यवहार के लिये ये दूध कुछ हद तक सहायक है। यद्यपि इनका गुण

माता के दूध या ऊपर वर्णित विधियों द्वारा जल मिश्रित गाय के दूध की तरह नहीं होते, किन्तु बनाने की सरलता तथा झंझटों से रक्षा पाने के निमित्त मातायें इनका ही प्रयोग करती हैं। इन पर प्रयोग विधि लिखा रहता है। अतः उनको देशी चिकित्सक बतलाते हैं ठीक है, किन्तु उनके नुसखे जबानी होने से मातायें भूल जाती हैं। अतः उनको क्रम से मिश्रणों को लिखकर ही माताओं या बच्चों के अभिभावकों को देना चाहिये। अस्तु:— इन कृत्रिम आहारों में दुग्ध के साथ कर्बोज व शर्करा का अधिक भाग होता है। मधुर रस पोषण होने के कारण उसका पोषण होता है। शरीर बढ़ता है। किन्तु शरीर की मांस पेशियाँ दृढ़ न होकर पिल पिली ही रहती हैं ६ मास के बच्चों को, धान के खील का जल, खिचड़ी इत्यादि देना चाहिये। इन में अब लाला स्राव होने से वह अन्न पचाने योग्य हो जाता है।

शास्त्रों में अन्न प्राशन का काल जो ६ मास के बाद बतलाया है, उस का अभिप्राय यह ही है, कि दांतो का निकलना लाला ग्रन्थियों के स्राव को बढ़ाने के चिह्न है। लाला Saliva एक प्रकार का क्षारीय रस है, जो कर्बोज को शीघ्र पचाता है। यद्यपि लाला का स्राव छोटे शिशु (नवजात) में भी होता है, किन्तु कम होता है, उस की ताकत जलीय पदार्थों को बचाने में ही पर्याप्त हैं। दंतोद्गम के बाद का लालारस कर्बोज पर भी काम करता है।

दुग्ध पान की विधि

नव जात शिशु कभी भी अपने हाथों निर्मित दुग्ध को पान नहीं कर सकता। अतः उस के लिये प्रबन्ध करना उचित होता है। साथ ही एक साथ नव जात शिशु को दूध पिला देने पर वह काबिज़ हो जाता है, अतः दुग्ध चूसने की बोतलों की आवश्यकता पड़ती है। प्रकृति भी बालक को दूध चुसाने का ही प्रबन्ध किये रहती है। इस में चुसाने की विधियों में दूध चुसाने वाली बोतलों का प्रयोग किया जाता है। चूसने से धीरे २ दूध आमाशय में जाता है, वह लाला मिश्रित होता है, अतः शीघ्र पचता है। जब तक यह बोतलें नहीं थी, तब तक रुई (शुद्ध) की बत्ती द्वारा दूध मातायें चुसाती थीं, किन्तु विज्ञान के उन्नति काल में यह घृणित समझा जाता है।

बोतलें

यह बोतलें कई किस्म की होती हैं। शीशे की या बिल्लौर की कोई लम्बी सीधी नाली की व कोई किस्ती नुमा छोटी नाली की। इन के सिरे पर रबर की चूसनी लगी होती हैं। इन में किस्ती नुमा बोतल ही अच्छी होती है। उस पर तोले माशे के भी अंक खुदे होते हैं। अतः और भी सरलता दूध भरते वक्त होती है। साथ ही भूक का ज्ञान भी होता है। ऊपर की चूसनी ऐसी लगी होनी चाहिये। जो सरलता से निकाली जा सके व साफ की जा सके। चूसनी में एक ही छेद होता है, अन्तर मां के चूचूक में ७ छिद्र होते हैं। जिस से बच्चा सरलता से पर्याप्त दूध खींचने की कोशिश करता है। एक छिद्र होने से दूध कम आता है। अत इस में सुई द्वारा तीन चार छिद्र और कर देना चाहिये। यदि

अधिक दूध आने लगे, तो भीतर से विशुद्ध रुई का फाहा रख देना चाहिये, जिस से छन कर दूध थोड़ा २ जावे।

विशुद्धता

१—बोतलों को साफ रखने के लिए खौलते पानी में डाल देना चाहिए, और ब्रुश सेसाफ करना, और व्यवहार में लावें, या सौभाग्य द्रव (सुहागा मिश्रित जल ६ माशे सोहागे को ३ पाव जल में मिला कर बना लेवें) से भर करके रखना चाहिये। कई लोग साबुन से ही धो देते हैं। चूसनी को भी प्रयोग में लाने के बाद उष्ण जल या सौ भाग्य द्रव से धोकर रखना चाहिये।

२—दूध पिलाने के बाद बचे दूध को फेंक कर नयादूध प्रयोग में लाना चाहिये।

३—हर बार प्रयोग में लाने के बाद बोतल और चूसनी साफ कर लेना चाहिये।

४—चूसनी उत्तम पौन इंच बोतल के मुख से आगे को होनी चाहिये। अधिक लम्बी होने पर बच्चे के तालू पर जोर पड़ता हैं, और तालु कंटक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह अधिक कीमती होनी चाहिए। साधारण चूसनी मुख में की गर्मी से पिघलकर इस का कुछ अंश शिशु के पेट में जाकर रोग उत्पन्न कर देता है।

दूध की विशुद्धता—

वैज्ञानिक उन्नति के साथ हर तरफ उन्नति हुई रोगोत्पादक कीटाणुवों कीसंख्या भी आविष्कृत हुई। जिनमें इनकी संख्या हजारों लाखों की पाई गई। कीटाणु वाद के आविस्कारक चिकित्सकों की सम्मति हैं। कि हर प्रकार के कीटाणु वायु मण्डल में उपस्थित रहते हैं। अतः विशुद्धता न रखने से ये दुग्ध में मिल कर शिशु के पेट में जाकर अतीसार यक्ष्मा इत्यादि पैदा कर देते हैं, बाहरी दूध पीनेवाले बच्चों में अतीसार की प्राप्ति माताके दूध पीनेवाले बच्चोंकी अपेक्षा अधिक होती हैं, साथ ही अतीसार का स्वरूप भीउग्र ही रहा करता हैं। इन कीटाणुओं से बचने का एक ही उपाय है। वह हैं उबाल लेना एक नियमित तापमान तक दूध को गर्म कर लेने से कीटाणु से रक्षा प्राप्त की जा सकती है।

विधि--दूध को शुद्ध पात्र में डाल करके गरम करो। जब उबलने लगे तो दो मिनट तक उबलने दो। पश्चात् उतार कर ठंडा करलो। दूध साफ वस्त्र द्वारा ढका रहना चाहिये। अधिक उबालने पर इस में की जीवक शक्ति Vetamtn नष्ट हो जाती हैं। जिसकी कमी से स्कर्वी इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। शिशु के शरीर की बाढ़ कम हो जाती है, इस प्रकार के दुग्धों (कृत्रिम दुग्ध) से शिशु को पोषण संस्थान के रोग होकर उन्हें दुर्बल कर देते हैं। इन कृत्रिम दुग्धों की निर्माण विधि यह है।

कार्बोनेट आफ सोडा २माशे, विशुद्ध जल १ छटाँक, दूध १ पाव, शर्करा ३ छटाँक।

विधि—सोडा को जल में घोल कर अलग रख लो। दूध को आग पर चढ़ा करके शर्करा डाल कर थोड़ा २ सोडा मिश्रित जल डाल कर चलाते जावो। यह बुरादा सा बन जायगा इसको कई तरह का स्वरूप देकर डिब्बों में भर कर बेचा जा सकता है, इस तरह के बने दूध पाठक स्वयं विचारे कहाँ तक बच्चों के लिये हित कर हो सकते हैं। अतः उन्हें उदरसंम्बन्धी रोग धर दबाते हैं।

वमन

निदान-अधिक दूध, पिलाकर, अधिक, झुलाना, गोद में लेकर दौड़ धूप करना इत्यादि हालतों में शिशु दूध फेंक देता है। यदि वमन दूध पिलाने के बाद एक घण्टे के आवे, तथा ऊपर वाले कारण न हों तो ये आमाशय में अम्ल अधिक बनने से होते हैं।

चिकित्सा

पहली दशा में हेतु का परिवर्जन (अधिक पिलाना या झुलाना) कराना उचित है, यदि दूध कम पचता हो तो दूध का मिश्रण और हल्का करना उचित हैं। इसको जल अधिक डाल करके किया जा सकता है। इसमें अम्लफलता रहे तो चूणोदक या कार्बोनेट-सोडा (Sodabicarb) पौन रत्ती मिला लो। यह मात्रा प्रत्येक ढाई तोले में होनी चाहिये।

अजीर्ण—माता के वसा मिश्रित आहार की कमी के कारण क्षीर पायी शिशुवों में यह रोग होता है। क्योंकि दूधमें भा इसकी अनुपस्थिति हो जाती है। और शिशु उसे पचाने में असमर्थ रहता है। बाहरी दूधों की हालत में मलाई का कम होना कारण है।

चिकित्सा

प्रथम हालत में माता के आहार में वसा मिश्रित भोजन का प्रयोग कराना तथा दूसरे में मलाई का भाग बढ़ाना उचित हैं।

दिन में एरण्ड तैल की १ बूंद की मात्रा एक या दो बार दी जा सकती हैं। दूध में सौंफ, मुनक्का उबाल कर दुग्ध पाक विधी से दिया जा सकता हैं। सौंफ का अर्क या गुलाब का अर्क भी देसकते हैं, आध्मान अधिक हो तोएरण्ड तैल या नारायण तैल कुछ बूंद गर्म करके मालिश करके (पेट पर) गर्म हाथों द्वारा सेंकना उचित है।

अतीसार—कारण, माता के मिथ्याहार विहार करते तथा दुग्ध मिश्रण में उचित सामग्रियों का न होना व अविशुद्ध दूध ही कारण होता है।

चिकित्सा—ऐसे समय में माता के आहार विहार में नियंत्रण रखना चाहिये। उसे संग्राहक व पाचक औषधियां दी जानी चाहिये। बच्चे को १२ घंटा तक दूध नहीं पिलाना चाहिये। बीच में चूर्णोदक या अल्युमिन वाटर(Albuminwater) एक तोले की मात्रा में देना उचित है यदि दशा सुधर जाय तो २४ या ३६ घंटे के बाद पुनः स्तन पान कराना या दुग्ध चुसाना चाहिये। उग्रावस्था में चातुर्भद्रावलेह धातक्यादि चूर्ण का प्रयोग आधी रत्ती की मात्रा में माता के दुग्ध, के साथ कराना उचित है। यह हर प्रकार के दोषों को शीघ्र ही दूर कर देते है।

आमातिसार की हालत में—मंजीठ, १ तो० धाय का फूल १ तोला लोध (पहिका) १ तोले, काला सारिवा १ तोले, को १ सेर जल में उबाल कर चतुर्थांसावशेष कर लेना चाहिये। फलालेन से छान कर इस जल को १% २तोला की मात्रा में देना चाहिये।

अथवा

मृतसंजीवनीसुरा, को २ बूंद मिलाकर पिलाने से भी पाचन शक्ति ठीक हो जाता है। अवस्था यदि सुधरती न मालूम पड़े तो एरण्ड तैल का प्रयोग वस्ति द्वारा करना उचित है। किन्तु यह प्रयोग हमेशा चतुर चिकित्सक द्वारा ही होना चाहिये।

बच्चों के सम्बन्ध में कुछ स्मरण योग्य बातें

[ले०—श्रीशिवशरणजी वर्मा]

१—एक स्वस्थ शिशु दिन भर के २४ घंटे में १८, २० घंटे सोया करता है।

२—यह मानी हुई बात है, कि बच्चा दो तीन मास से पूर्व अपना शिर तकिये पर से नहीं उठा सकता, और पांचवें मास के पूर्व सीधा बैठ नहीं सकता।

३—दसवें मास में बच्चा चलना शुरू करता है, इस में देरी का हो जाना किसी रोग का प्रमाण नहीं है।

४—शिशु को स्तन्य पान नियमानुकूल वा सीमा बद्ध समयों पर कराना चाहिये, और बीच बीच में जल भी देना चाहिये। स्तन्य पान छुड़ाने का समय १० से १४ मास के बीच २में होता है। पर शुरू गर्मी में नहीं छुड़ाना चाहिये।

५—छः मास के पूर्व बच्चा डर कर नहीं रोता।

६-यदि नाड़ी प्रति मिनट १४० बार चले। और अस्वस्थता हो तो इस का कारण प्रायः अधिक दूध का पिलाया जाना जाता हैं। यदि चाल ७० तथा बच्चा अस्वस्थ हो, तो कारण मस्तिष्क के परदों की शोथ Meninigtis होता है।

७—यदि जिह्वा पर श्वेत मल जमा हुआ हो, तो आंतों में जलन होगी। यदि जिह्वा लाल शुष्क या गर्म हो, तो अंतड़ियों में सोज़श होगी।

यदि पांडु वर्ण वा शिथिल हो, तो अत्यन्त दुर्बलता होगी। यदि कंपती हो तो संवेदना सस्थापन की दुर्बलता होगी। श्वेत मैल ज्वर को प्रगट करता है। पीली यकृत वा अमाशय की खराबी, को भूरी का शुक्र आंत्रिक ज्वर वा रक्त के विशाक्त को हो जाने को चमकता हुआ स्ट्रावेरी का सारंग लाल ज्वर को स्निग्धता युक्त जिह्वा अजीर्ण को तथा स्निग्धता युक्त नीला रंग सहज फिरंग को प्रगट करता है।

८—गालों में अधिक रक्त आने के कारण उन का अधिक लाल हो जाना (बच्चे को कोई पुराना गेडा, न हो) सूजश को अथवा ज्वर को प्रगट करता है, चेहरे कानों वा ललाट की सुर्खी जो कि थोड़े ही समय से पैदा हुई हो साथ भैंगापन हो, पुतली की असमानता उपतास की इधर उधर गति ऊपर ले ओष्ट का लटक जाना, दिमागी खराबी को प्रगट करता है।

९—बच्चे का क्रमशः पतले या दुर्बल होते जाना उस के किसी अप्रगट रोग या पुरातन रोग को प्रगट करता है।

१०—अंगुलियों की कंदाकार स्थूलता अर्थात् उनका ठूंठ सा हो जाना, तथा नखों में वक्रता आ जाना रक्त भ्रमण में रुकावट का साक्षी है। अस्थिओं के स्पञ्जी भागों की स्थूलता अथवा हांथ पावों की नीलाहट के साथ सैत्रिक तन्तुओं की स्थूलता अस्थि दुर्बलता (Pickets) नामी रोग को प्रगट करता है।

११—स्थायी नीलाहट अथवा क्षोभ वा उत्तेजना से पैदा की गई, नीलाहट यदि श्वास प्रश्वांस साधारण हो हृदय के रोग को प्रगट करती है। स्थायी नीलाहट श्वांस प्रश्वास संस्थान के किसी रोग को प्रगट करती है।

१२—छः मास या उस से अल्पायु वाले बच्चों में यदि आंसू बिल्कुल न निकलें। तो समझना चाहिये, कि कोई खतर नाक व्याधि होने वाली है। बच्चे का यकायक ऊंचे स्वर से चीखें मारना उस के दिमाग़ वा सुषुम्ना की ख़राबी को प्रगट करता है।

१३—नेत्रों के पलकों तले गाढ़ा का पीपवत गीद आ जाना एक खतर नाक लक्षण है। नेत्र श्लैष्मिका की रक्त प्रणालियों का फूल वा सूज जाना बच्चे की शीघ्र मृत्यु का प्रमाण है।

१४—मांस पेशियों की असमान गतियां जिन को मन वश में नहीं कर सकता, राशा (Chorea) को प्रगट करता है। जब बच्चा अपने शिर को बार २ दबाने अथवा शिर को अपनी माता या खिलानी के शरीर पर बार २ दबावे तो उस को कोई कर्णरोग होगा, यदि क्षोभ या वेग से बच्चा अपनी अंगुलियों को मुख तक ले जावे तो देखना चाहिये कि कहीं उस का गला तो खराब नहीं है। यदि शिर बार २ इधर उधर पटके वा घुमावे तो श्वास मार्ग में रुकावट होगी।

१६—कर्कश या अस्फुट आवाज़ स्वरयंत्र वा कण्ठे के प्रदाह को प्रगट करती है। शोकार्त्त और नरम कमज़ोर आवाज़ उदर विकार की साक्षी हैं।

१७—तेज़ और ऊंची खाँसी तुशनजी कास का लक्षण है। रूक्ष कर्कश वा सूखी गल कलौप की कास का लक्षण है। वेदना युक्त, फुफ्फुसौप में शुष्क वा वेदना रहित कास कभी २ अजीर्ण, कठिन दन्तउद्गम वा साधारण ज्वरों का साक्षी है,

१८—सविराम व मन्द श्वास जिसके साथ जभाइयां आवें दीमागी बीमारी को प्रगट करती हैं। यदि सविराम वा तेज़ २ आवे तो श्वास प्रणालियों का प्रदाह होगा यदि ऊपर २ से (Superficial) व रोज़ २ आवे तो स्वर यंत्र वा श्वास मार्ग का प्रदाह होगा।

१९—बच्चों के उत्कट ज्वर, बीच २ में हल्के हो जाते हैं। और पुरातन ज्वर बीच बीच में उतर जाया करते है।

२० छोटी आयु में (Ineorly child hood) रोग के लक्षणों की प्रचन्डता वा शारीरिक अवयवों के विकार में कोई अनुपात नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रचंड लक्षण अवयवों के भयानक विकार को प्रगट करते हैं। तेज ज्वर जिसके साथ २ अधिक बेचैनी रोना वात शनज भी होता है। कभी २ चौबीस घण्टों में भी उतर सकता है।

भिन्न २ आयुओं में बच्चे के शरीरका लगभग परिभाष या लम्बाई

आयु	परिमाण	लम्बाई
जन्म के समय	६ पा ३३	१८ इञ्च
१४ दिन में	६ पा० ६ औंस	२०॥ "
३ मास में	११ पाउण्ड	२२॥ "
६ मास में	१३॥ पाउण्ड	२४॥ "
९ " "	१६॥ पाउण्ड	२६ "
१ वर्ष में	२० पाउण्ड	२८ "
२ "	२७ "	३१ "
३ "	३३ "	३४ "
४ "	३८ "	३७ "
५ "	४२ "	४० "

परिमाण में साप्ताहिक वृद्धि

आयु	साप्ताहिक वृद्धि
पहिले या दूसरे मास में	५-७ औंस
तीसरे से चौथे मास में	३-५ औंस
पांचवें से छठे	२॥-४॥ "
सातवें से आठवें	२-३॥ "
नवें से बारहवें	२-३॥ "
दूसरे वर्ष में	१॥-२॥ औंस

बच्चे के दांत निकलने का समय

दन्तोद्गम [Dentition Table]

निम्न की तालिका में बच्चे के दुग्ध दंत वा स्थाई दंत के निकलने का समय वा क्रम दिखलाया गया है, यह कोई जरूरी नहीं कि प्रत्येक बच्चे में ठीक २ यही समय लागू हो सके व इसी क्रम से दांत निकलने में बहुत कुछ आगा पीछा वा भिन्नता हो सकती है।

दूध के दांत या (पतन शील दंत)

दूध के दाँत छठे या सातवें मास में निकलने शुरू होते हैं, और बच्चे के २ वर्ष के हो जानेपर प्रायः सारे के सारे ही निकल पड़ते हैं। दुर्बल बच्चों के दाँत ११-१२ मास में जाकर निकलने शुरू होते हैं और २॥, ३ साल में जाकर पूर्ण होते हैं।

अन्तः कर्तनक— १ नीचे के छटे मास
Centralincisons— २ ऊपर के सातवें मास

वाह्य कर्तनक— १ ऊपर के नवां मास
Lateral incisons— २ नीचे के दसवां मास

प्रथम चर्वनक पश्चिम—बारहवां मास
First molans

भेदक दन्त— अठारहवाँ मास
Canines

द्वितीय चेर्वनक पश्चिम—दूसरा वर्ष,
Second molans।

नोट—दूध के दांत कुल २० होते हैं हर एक जावड़े में दस दस।

स्थायी दांत(Permanent (Teeth)

प्रथम चवनक पश्चिम	First molans	६॥ वर्ष
निम्न अंतः कर्तनक	Lawer Centralincisons	७ वर्ष
अर्द्ध अन्न कर्तनक	Upper " "	८ वर्ष
वाह्य कर्तनक	Naturae incisons	९ वर्ष
प्रथम अग्नचर्वनक	Eirst bicuspid	१० वर्ष
द्वितीय "	Second bicuspid	११ वर्ष
भेदक	Canines	१२ वर्ष
द्वितीय पश्चिम चर्वनक	Second molans	१३ "
तृतीय पश्चिम चर्वनक	Third molons	१७

बुद्धि के दांत

२५ वर्ष या इससे भी पश्चात्—

स्थायी दांत कुल ३२ होते हैं प्रत्येक जबड़े में १६। १६

(भिन्न २ आयुओं में श्वास प्रश्वास)

२ मास से २ वर्ष	३५ प्रति मिनट
२ वर्ष से ६ वर्ष	२३ प्रति मिनट
६ से १२ वर्ष	२० प्रति मिनट
१२ से १५ वर्ष	१८ " "
१५ से २१ वर्ष	१६-१८ "

नोट-युवा स्त्री का श्वास, प्रश्वास विशेषतया उस के गर्भवती होने की दशा में उसी आयु के एक पुरुष की अपेक्षा तनिक तेज होता है।

भिन्न २ आयुओं में नाड़ी की गति

आयु	प्रति मिनट चाल-
भ्रूण	१५० वा १४० के बीच

नवजात शिशु के रोग

[ले०—वैद्यराज पं० जयदेवजी मिश्र शास्त्री]

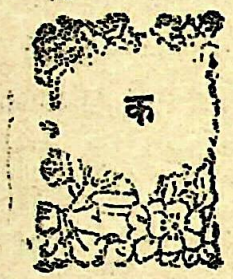

कभी कभी बच्चे विशेष हालत में पैदा होते हैं जिन को कि मूर्खादाइयां मृत्यु कह करके, कोई उपचार नहीं करती और बच्चा मर जाता है। इस अवस्था को मृत्यु नहीं कह सकते। उन में प्रधान ये हैं।

(१) श्वासावरोध या अर्द्ध मृत शिशु।

(२) शीर्षरक्तार्बुद (Cephalhae matama

(३) नेत्र नाश

(४) स्तनौघा– वास्तन शोथ (Masttis)

(५) गुद छिद्रानुपस्थिति (Inper forate anu

(६) कामला (Joundrce)

(७) नाभिपाक (Umbibcal Inpcetion

इन में श्वासावरोध घोर भयानक है और इस अवस्था में परिभूत शिशु पैदा होने पर मृत वत दिखलाई पड़ता हैं इन की चिकित्सा व लक्षण अधो लिखित है—

श्वासा वरोध (Asphyxa) कारण– रक्त प्रवाह का भ्रूण के अन्दर समुचित प्रकार से न होना ही है। इसके कई प्रकार है। माता के पेट में रहने पर बच्च के लिये प्राण वायु Oxygen) हमेशा नाल के द्वारा प्राप्त होती रहती है। जो कारण इससे बंध विच्छेद करने वाले होगें वे ही इसके भी कारण होगे यथा–

१–कमल का समय से पूर्व ही उखड़ कर रक्त स्राव होना Accedeulelhaenorrhage या अधः स्थित कमल।

२–गर्भाशय का उत्तेजित अकुंचन (Tonic contraction) यह भी अपनी गति शीलता के कारण कमल के प्रवाह को रोक देता है।

३– नाभि नाल पर का दबाव– (इसका कारण नाल में ग्रंथि पड़ना, स्फिकोदय का होना

[६६३ पृष्ठ से आगे]

नवजात शिशु	१४० वा १३० के बीच
प्रथम वर्ष में	१३० से ११५ तक
द्वितीय वर्ष में	११५ से १०० „
तृतीय „	१०५ से ९५ „
सातवें से चौदहवें तक	९० से ८० „
१४ वें से २१ वें तक	८५ से ७५ : „
२१ वर्ष के बाद	७५, ६५ तक
वृद्धावस्था में	७० से ६० तक

नोट—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में नाड़ी तनिक तेज चला करती हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न २ हालतों में भी तेज चलती हैं :– मिहनत, का कार्य करते समय, वा उस के पश्चात् यदि उस को अधिक देर तक कियाजावे, भोंजन पचते समय व दिमाग के उत्तेजित हो जाने पर। यदि लेटा हुआ व्यक्ति यकायक उठ बैठे या खड़ा हो जावे तो भी नाड़ी तेज़ हो जाती है।

नाल भ्रंश, नाल के ऊपर ग्रंथियों के दवाव या नाल का भ्रूण और गर्भाशय के बीच दब जाना।

४-समय से पूर्व श्वास लेने का प्रयत्न पैर से उत्पन्न होने वाले बच्चे का शिर भीतर रहता है, बाकी अंग में शीतला हवा लगने से वह श्वास क्रिया मांस पेशियों के उत्तेजन के कारण प्रारंभ हो जाती है।

५-शिर पर अधिक चोट लगना इन कारणों से २ प्रकार के लक्षण युक्त बच्चे पैदा होते हैं

१-श्याम शिशु-२-श्वेत शिशु प्रसव

श्याम शिशु प्रसव-(Cyonotie livid) अधिक देखा जाता हैं। बच्चा पैदा होते ही श्याम या नीले रंग का होता है। हृदय व नाभि स्पंदन धीमा किन्तु बल शाली रहता है। नाभिनाल—भरा हुवा, स्थूल व मांस पेशियां दृढ़ व तनी होती है।

श्वेत श्वासावरोध-Pallid-white

यह अवस्था विरले ही जगहपायी जाती है। बच्चा सफेद व मृत बत होता है। हृदय व नाभि स्पंद अत्यन्त मृदु व सूक्ष्म होता है। नाल खाली व पिल पिली होती है।

कारण-कार्वन द्विओषित के इकट्ठा होने से मस्तिष्क की दसवीं नाड़ी फुफ्फुस आमाशयिक नाड़ी पर प्रभाव पड़ता है। अतः हृदय मंद हो जाता है। भ्रूण की नाड़ी प्रतिदिन १०० से कम चलने लगना प्रारंभ हो मंद हो जाती है। अतः शीघ्र उपाय करना चाहिये। नहीं तो मृत्यु अवश्यम्भावी है। इससे श्याम श्वासावरोध में बहुत से बच्चे बच जाते हैं, किन्तु श्वेत में अवस्था के बिगड़े रहने के कारण अच्छा परिणाम बहुत कम मिलता हैं।

चिकित्सा:—

बच्चे के पिंडलियों को पकड़ कर उठालो। जिस में शिर लटका रहे। कनिष्ठा अंगुली में परिष्कार वस्त्र खंड लेकर नासिका व मुख की श्लेष्मा को पोंछ डालो, या कैथेटर द्वारा कफ चूस लो। कंठ साफ होते ही श्वास के लिये उत्तेजित करो जब तक मुख की श्लेष्मा न निकली हो, श्वासार्थ क्रिया करना व्यर्थ हैं। इसके पहले मुख और शरीर पर शीतल जल के छींटें देनेसेउसके श्वास चलने लगते है और वह रोने लगता है।

पीठ व नितंम पर हल्के थप्पड़ लगावों। वक्ष स्थल को सहलावें इन क्रियावों से श्वास पुनः लौट आता हैं। अब नाल काट लो। श्वास न आने के पूर्व नाल न काटो।

इस अवस्था के बिगड़ते ही श्वेत श्वासावरोध हो जाता है।

नाभिनाल धीमे २ स्पंद कर रहा हो तो समझो, रक्त प्रवाह शेष हो चुका है अतः झटपट नाल काट कर उसे कृतिम श्वास प्रयोग के लिये उपयुक्त बनाना चाहिये। जिससे उसके उठाने इत्यादि में सरलता हो सके।

कर्त्तव्य- शिर को छोड़ कर शेष भाग को गर्म जल में डुबो दो, हाथ से स्पर्श कर देख लो जल सहने योग्य है या नहीं यह अधिक उष्ण नहीं होना चाहिये। हाथ जिसे गर्म न अनुभव करे। इतना ही उष्ण जल हो। हृदय के स्थान पर धीरे २ रगड़ो, छाती को कुछ २ रह रह कर हल्का दवावो। आवश्यकतानुसार कंठ को वार वार साफ करते रहो। मृत संजीवनीसुरा या वरांडी के कुछ बूंद होंठ और तालु के ऊपर मलते

जावे। अब भी श्वास न आवे, और हृदयस्पंद करता हो तो अभी क्रिया किये जावो, छोड़ न दो जीवन से निराश न हो जावो। भले ही धड़कन बहुत मंदी हो चिन्ता न करो।

गर्म तौलिए से पोंछे कर कृत्रिम श्वास प्रश्वास कर्म को करो। मुँह में फूँक मारो। पुनः पूर्ववत गर्म पानी में रख कर उस के ताप (गर्मी) की रक्षा करते रहो। वार २ कृत्रिम विधि करके गर्म जल में डुबो कर सीने को मसलो। जब तक कि हृदयस्पंद कर रहा हो। यह अवस्था बहुत देर तक रहती है। अतः घबराना नहीं चाहिये। डा० जान्सटन का विचार पियूष रस (Pituitriu) के १ बूँद का त्वचा गत इंजेकशन भी देने का हैं।

कृत्रिम श्वासोच्छास विधि

(१) मुँह में फूक मारना—बच्चे के फेफड़े में हवा पहुंचाने के लिये सब से प्रधान विधि हैं, इस से स्वर यंत्र और फेफड़े खुल जाते हैं।

विधि—बच्चे के मुख पर शुद्ध मलमल का टुकड़ा रखो। एक हाथ नासिका पर व अन्य आमाशय पर रहे। अपने तीन चार गहरे श्वांस लेकर मुख की वायु शुद्ध कर लो। धीरे २ फूंको याद रहें। अधिक वायु भरने से आमाशय फट जायगा। अब फूंक मारने पर उसमें श्वांस जाने से आमाशय पर का हाथ सीने के फैलने का अनुभव करेगा। अब उसे दबाओ। फूंक मारते वक्त नासिका बंद किये रहे। अन्यथा श्वास निकल जायगी। छाती दबाते वक्त छोड़ दो। ऐसे १ मिनट में १८-२० बार करते जावो।

वायर्ड की विधि

बच्चे को दोनों हाथों से इस प्रकार उठाओ, कि एक हाथ कंधों के नीचे दूसरा चूतड़ों के नीचे रहे। अब उस को दोनो हाथों से दबाओ व फैलावो। इस से श्वास निकलता तथा भरता है, श्वास चक्र के जारी रहने पर भी ध्यान रक्खो जिस से यह अवस्था पुनः न आ जावे।

शीर्ष रक्तार्बुद

सन्देश प्रयोग या कठिन प्रसव में शिर के दबजाने या आघात लगने से रक्त इकट्ठा हो जाता है।

चिकित्सा

यह अपने आप एक या दो सप्ताह में ठीक हो जाता है। यदि पक जाय तो व्रण विधि द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

नेत्रोव्याधि

सन्देश यंत्र के प्रयोग या माता के योनि स्राव के नेत्र में लग जाने से होता हैं। इस में नेत्र लाल हो जाते हैं। सुजाक से पीड़ित माताओं के सन्तानों में ६५ प्रति शत नेत्र रोगी इस रोग के कीटावेश से ही होते हैं।

चिकित्सा

कीट सम्बन्धी ज्ञान के होते ही सिल्वर नाइट्रेट के एक प्रति शत द्रव या पारद द्रव(१ ॰ २०००) को एक २ बूंद डालना चाहिये। प्रत्येक दो घंटों पर बोरिक द्रव या शुद्ध गुलाब जल से धोते जावो। यदि दशा सुधारने के बदले खराब होती जा रही हो तो

WAFADAR PRESS ETAWAH.

श्वासावरोध में वायु मार्ग का प्रसार

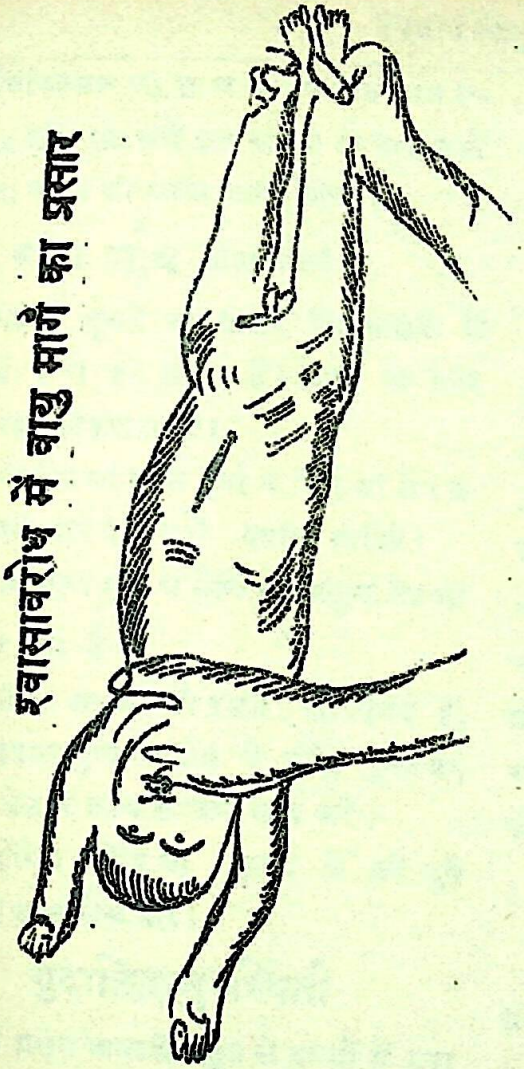

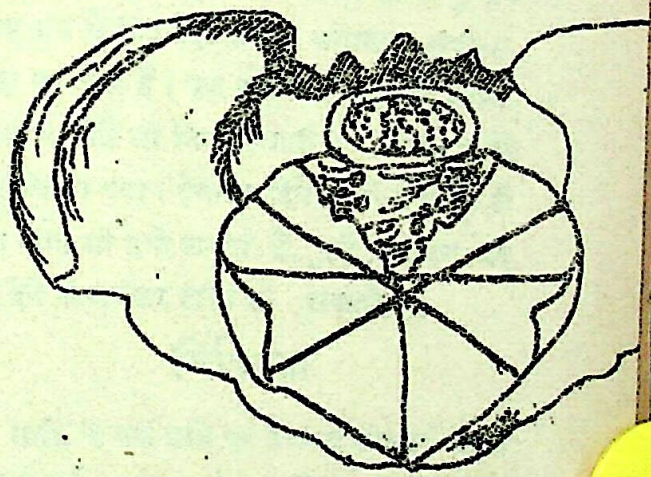

सत्य श्रोणि—प्रसवद्वार

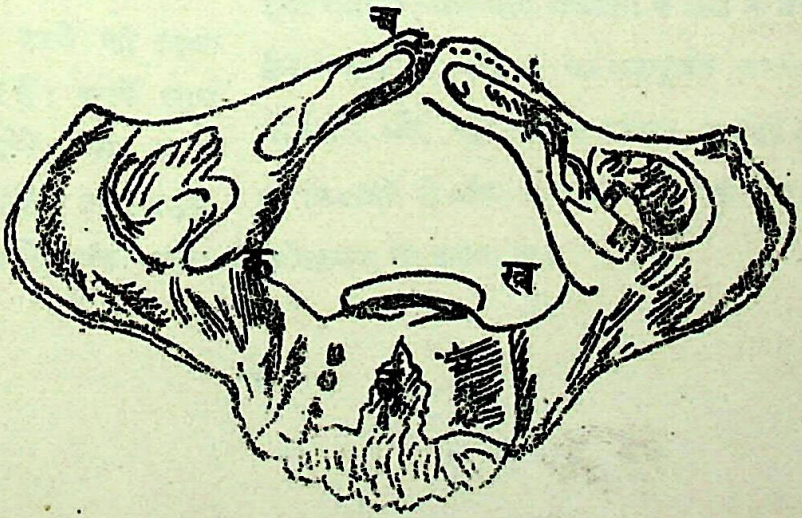

क ख=४ इंच—च छ=४ से ५ इंच

योग्य चिकित्सक की शरण लो। क्योंकि आज १५ या २० प्रति शत अंधे इस कारण ही पाये जाते हैं। अतः बच्चे की आंख जाती रहेगी।

स्तन शोथ Mastitis)

जन्म के दूसरे या तीसरे दिन बालक के स्तनों में शोथ हो जाता हैं। दबाने से क्षीर वत तरल निकलता है।

१-चिकित्सा श्वेत दूर्वा व मिर्च का लेप लगावे। इसे बार बार नहीं दबाना चाहिये।

२-इन्द्रायण मूल व मिर्च का कटुष्ण लेप आराम कर देता है।

३-पीपल का लेप भी इसमें फायदेमंद है,

४-पलास पुष्प, अफीम के डोड़े, पुनर्नवा, आकाश बेल के क्वाथ से उष्ण सेंक करे।

५-बोरिक एसिड या सुहागे के बने हुये धावन से उष्ण सेक करे।

गुदाछिद्रानुपस्थिती

इसमें प्रसव काल में बहुत से बच्चों में गुदा के छिद्र की अनुपस्थिति या अपूर्णता पाई जाती है, इस समय उचित योग्य शल्य चिकित्सक द्वारा छिद्र करा लेना ही उत्तम है।

कामला

पैदाहोने के कुछ दिन बाद बच्चे की त्वचा व नेत्र पीले दिखाई पड़ने लगते है। इसके साथ कामला के अन्य लक्षण नहीं होते अक्सर यकृत कार्यरोध द्वारा उत्पन्न यह नहीं देखा जाता इससे साध्य है, यह कुछ दिनों में अपने आप अच्छा हो जाता है, यदि यकृत निरोध जन्य हो तो भयानक होता हैं।

नाभिपाक

नाभिनाल के ठीक उपचार न करने से जैसे उसे शुष्क न रखना, साफन रखनाखींच जाना, खुरंड को शीघ्र ही हटा देना इत्यादि से होता हैं, इसमें नाभि पक जाती है, पूय पड़ने या उसमें जीवाणु प्रविष्ट होने से विष पैदा होकर भयानक अवस्था पैदा कर देती हैं। पक कर छिद्र बड़ा हो जाकर कभी २ आंते भी निकल आती है। अतः इसके प्रति विशेष ध्यान देना चाहिये, कभी २ नाभि से रक्त स्राव भी होने लगता है, इसे, तत्क्षण बंद कर देने से भयंकर हानि हो सकती है।

चिकित्सा

नाभि के पक जाने पर व्रणवत उपचार करना चाहिये जैसे रुग्ण स्थान पर निम्ब क्वाथ, बोरिक लोशन उष्ण जल या हाइड्रोजपर (ओक्साइड के द्वारा उसे साफ करके वहाँ पर मलहम (Oint mint) लगाना चाहिये, साथ ही स्थान को परिष्कार रखने के लिए पट्टी विशुद्ध वस्त्र की बांध देनी चाहिये। ऐसे यदि सफलता न मिले तो धो लेने के बाद आइडोफार्म का अवचूर्णन करना चाहिये। और पट्टी पूर्ववत लगानी चाहिये। इन क्रियाओं से यदि उपकार न हो तो योग्य चिकित्सक की शरण लो।

बालग्रह और उनकी चिकित्सा

[ले०—पं० देवदत्तजी शर्मा वैद्य शास्त्री]

आयुर्वेद के अष्टाङ्गों में से ग्रह विद्या या भूत:विद्या भी एक अङ्ग है, आज के इस लेख में इसी के एक असाधारण भेद "बाल-ग्रह" पर उचित चर्चा होगी। आज से कुछ वर्ष पूर्व आधुनिक शिक्षा दीक्षा सम्पन्न सुशिक्षित ग्रह विद्या के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे, पर जब से समय ने पल्टा खाया है, तब से पाश्चात्य जगत के बड़े २ धुरन्धर विद्वान और प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की देखा देखी वह भी इन के अस्तित्व को धीरे २ स्वीकार करने लगे हैं।

जब से योरुप के प्रसिद्ध २ वैज्ञानिकों का ध्यान इस विद्या की ओर आकर्षित हुआ है, तब से इस के अन्वेषण के लिये, वहां पर अनेक संस्थायें स्थापित हो चुकी हैं। इन संस्थाओं से अनेकों पत्र पत्रिकायें निकलती हैं, और खूब अन्वेषण कार्य होता है। वहां के इस विद्या विशारदों और अन्वेषकों ने अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण दिखा कर यह सिद्ध कर दिया है कि ग्रहों भूतों का अस्तित्व सत्य हैं। हमारे देश में भी अब पाश्चात्य विद्वानों की देखा देखी वो० डो० ऋषि जैसे विद्वान देश के कोने कोने में घूमकर इस विद्या का प्रचार करने लगे हैं, आप ही की देख रेख में "परलोक" नामक पत्र का अभी देहरादून से जन्म हुआ, यह पत्र भारत में अभी इस विद्या के प्रचार के लिये सब से पहला अपने विषय का एक ही है, जो भारत के कोने २ में पहुंच कर इस विद्या का प्रचार कर रहा है।

भारत का वैद्य समाज अधिकांश में इस विद्या से अभी अनभिज्ञ सा ही है, इसी कारण वह इस विद्या को चिकित्सा रूप में परिणित नहीं करता। जो आयुर्वेदज्ञ चिकित्सकइस विद्या में कुछ ज्ञान रखते भी है, वह भी इसकी चिकि-चिकित्सा अयुर्वेद सिद्धान्तों से न करके निम्न जाति के अनपढ़ और असभ्य लोगो की चिकित्सा से काम लेते हैं।

साधू—फ़कीरादि जो भी ग्रहवाधा की चिकित्सा करते हैं, उन्हें सुशिक्षित समाज सन्मान की दृष्टि से इसलिये नहीं देखता, कि उन का उपचार किसी शास्त्रीय विधि या किसी भी प्रचलित वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार नहीं होता वह लोग जिस चिकित्सा प्रणाली का आश्रय लेते हैं, अधिकांश में वह आडम्बर पूर्ण, कपट युक्त और अवैज्ञानिक होती है। उनके प्रायः सभी उपचार ऊट पटांग होते हैं, इससे किसी को भी कुछ लाभ नहीं होता।

आयुर्वेद के आरम्भ काल से ही भूत (ग्रह) विद्या आयुर्वेद के आठ अङ्गों में से एक प्रधान अङ्ग रहा हो. ऐसा प्राचीन आयुर्वेद संहिताओं से पता चलता है। सुश्रुतचार्य ने अपनी संहिता में ग्रह विद्या की व्यवस्था इस प्रकार की है:—
"भूत विद्यानाम देवा सुर, गन्धर्व, यक्ष, रक्ष, पितृ, पिशाच, नाग, ग्रहाद्युप सृष्ट चेतसाम शान्ति कर्म वाले हरणादि ग्रहोप शमनार्थम् ॥" सुश्रुतसंहिता

अर्थ—देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृश्वर, पिशाच, और नागादि ग्रहों से ग्रसा हुआ चित्र है। उन प्राणियो के हितार्थ शान्ति कर्म उन ग्रहों की शांति के लिये वस्ति आदि देना ऐसा भूत तंत्र नामक तंत्र कहा गया है।

प्राचीन ग्रह विद्या विशारद आचार्यों ने इस विद्या के अनेक भेद, उपभेद खण्ड उपखण्डादि किये हैं, जिनका वर्णन सर्वत्र सूत्र रूप से अभी तक आयुर्वेद की संहिता ग्रन्थों में उपलब्ध है। हैं, स्वतंत्र रूप से कोई भी ग्रन्थ इस समय इस विद्या पर उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु तन्त्र शास्त्र के अनेक ग्रंथ इस समय भी ऐसे उपलब्ध जिनमें खूब विस्तार के साथ इस विया का विवरण मिलता हैं। आयुर्वेद के अष्टाङ्गों में से जहां अन्यान्य विषय के ग्रन्थ प्रायः लुप्त हो चुके हैं, वहां इस विश्वा के भी स्वतंत्र ग्रंथ अप्राप्य हैं। इसीलिये प्रत्यक्ष शरीर के उपोद्घात में कविराज गणनाथ सेन सरस्वती ने जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। वह लिखते हैं "अद्यथेदं भूत विद्याख्या आयुर्वेदाङ्ग कदाचिदति प्रसिद्ध मथि सम्प्रति चिराय विलुप्त मेव तथा, चदानी भूत विद्या तन्त्रागां नामान्यपि नलभ्यते किमुत ग्रन्था प्रत्यक्ष शरीर—

यह उन के इस विद्याके सम्बन्ध में सच्चे उद्गार हैं, जो अक्षाश सत्य हैं, फिर अवशिष्ट ग्रन्थों के अध्यन, अनुसंधान और मनम करने से हमें काफी से अधिक सामग्री इस विद्या पर प्राप्त हो सकती है, इसलिये हमें उस से अवश्य लाभ उठ ना चाहिये।

गृह विद्या, भूतविद्या का विशेष सम्बन्ध मन और मस्तिष्क से है। इसी से इस विद्या द्वारा मन और मस्तिष्क को निरोग और बलिष्ट बनाया जाता है। प्रत्येक ग्रह व्याधि का प्रभाव सीधा मन और मस्तिष्क पर सब से प्रथम होता है, उस के बाद शरीर के भिन्न २ अङ्ग उपाङ्गों में भी इन्हीं के विकार युक्त हो जाने से अनेक विकार देखे जाते हैं। इस विद्या द्वारा जब मन और मस्तिष्क पर बलिष्ट मानसिक शक्ति द्वारा प्रभाव शाली पूर्ण बलिष्ट वैष्णवी शक्ति की विद्युत धारा, योग तत्व रूप सिद्ध उपचार यंत्र मंत्र-तंत्रादि को अभिमानी देवों का सूक्ष्म दिव्य प्रभाव डाला जाता है। तब सब से प्रथम इन्हीं पर प्रभाव होकर अन्य सब कुलक्षण शान्त हो जाते हैं।

ग्रह बाधा में मन और मस्तिष्क में ही वेदना सम्बन्ध विकार उत्पन्न होते हैं, इसलिये इन्हीं पर सब से प्रथम प्रभाव इस चिकित्सा द्वारा उत्पन्न किया जाता हैं। यह एक मानी हुई बात है, कि कार्य का नाश हो जाने पर कारण का नाश अवश्य हो जाता है। जैसे वस्त्र तन्तु के नष्ट हो जाने से वस्त्र नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार मानसिक और मस्तिष्क विकार दूर हो जाने पर अन्य विकार जो दिखाई देते हैं। वह स्वयं दूर हो जाते हैं। क्योंकि, मन और मस्तिष्क में ही विकार उत्पन्न होने से यही प्रधान केन्द्र अन्य बिकारों को उत्पन्न करते हैं। जब इन के विकार शान्त हो जाते हैं, तो अन्य विकार जो इन के विकृत होने से उत्पन्न होते हैं। स्वयं ही शांत हो जाते हैं। फिर उन्हें किसी प्रकार के अन्य उपचारों की कोई आवश्यकता नहीं रहती। मन को स्वस्थ करना ही इस विद्या का

प्रधान लक्ष्य है। मन के स्वास्थ्यहोते ही शरीर स्वस्थ लाभ—स्वयं करलेता है।

फिर उसे किसी औषधोपचार की आवश्यकता नहीं रहती। कभी कभी इस विद्या में औषधोपचार और मंत्र, यंत्र, वाले, होमादि गृह शान्ति के अन्य उपाय साथ २ चालू होते हैं, और कभी २ एक ही प्रकार के उपचार से काम लिया जाता हैं। कभी २ओषधों पचार से ऐसी बाधा उपस्थित होती हैं कि, जिस से दुष्ट शक्तियां (जो स्वस्थ मनुष्यों पर आक्रमण कर उन्हें रोगाक्रान्त बनाती हैं) का दमन करना भी कठिन हो जाता है। वह शक्तियां कुछ होकर ऐसा उग्र रूप धारण करती हैं, कि जिससे चिकित्सक रोग बढ़ा हुआ समझ कर स्वयं रुग्ण को छोड़ कर चलता बनता है। ऐसे समय में ग्रह विद्या विशारद चतुर चिकित्सक बड़े ही धैर्य से काम होता है। वह उस समय विशेष न घबरा कर धैर्य का आश्रय लेता है, और ऐसे कठिनसमय में सब प्रकार की औषधि चिकित्सा बन्द करके ग्राहों को प्रसन्न करने के लिये इच्छानुसार वस्तु, बलि कर्म यंत्र, मंत्र,तंत्र, पूजा, होम उचित उपचार करता है। जिसका फल यह होता है। कि ग्रह प्रसन्न (शमन) होकर रोगों से विदा हो जाते है; और रोगी स्वास्थ लाभ करता है। कभी २ चिकित्सक को रोगाक्रान्त मानसिक शक्तियां अपनी निरोग दिव्य पूर्ण प्रभाव शाली वैष्णवी शक्ति की धारा प्रवेश करनी होती है। और तब कहीं जाकर रोगी स्वास्थ्य करता है। कभी वह योगतत्व रूप सिद्ध उपचार का आश्रय लेता हैं और फिर कहीं जाकर रुग्ण को पूर्ण निरोग कर पाता है।

यही भूत विद्या (ग्रह विद्या) का रहस्य है, जिसे प्रत्येक को समझ लेना असंभव नहीं तो कठिन तो अवश्य है। साधारण बुद्धि के मनुष्य न तो इसे समझ सकते हैं। और न इसके अनुसार कार्य कर सकते हैं। यही कारण हैं कि, यह विद्या एक दम लुप्त प्रायः सी है भारत मे इस समय इस विद्या का पूर्णतया ज्ञान रखने वालों का प्रायः अभाव सा ही है, जो इसे जानते हैं। वह अधिकारी न मिलने से इस विद्या का ज्ञान नहीं देते। हम में कितने अधिकारीऐसे हैं, जो संसार के कल्याण के लिये इसे सीखना चाहते हैं? पाठक। जरा आप ही हृदय पर हाथ रख कर बताइये? संसार छल कपट पूर्ण है फिर ऐसे समय में इस विद्या का पूर्ण ज्ञान रखने वाले यदि संसार के सन्मुख मौन रख कर ही जीवन पूर्ण करते हैं। तो आश्चर्य की बात नहीं। इस विद्या के जानने के अभिलाषी में सत्य दया अहिंसा आदि के स्वाभाविक धर्म होने चाहिये। वह गुरु भक्त और कर्मेष्ठी होना चाहिये, आजन्म ब्रह्मचर्य कर्म व्रत रखने वाला होना चाहिये। इस प्रकार का शिष्य जो संसार के कल्याण की पूर्ण अभिलाषा अपने हृदय में रखता हो इस विद्या का अधिकारी है। हम में कितने ऐसे हैं? कोई है? " नहीं।

फिर क्योंकर इसका प्रचार सर्वत्र हो सके, और क्यों यह विद्या दिन दिन छिपती जाय? इस कलिकाल में ठगी का बाजार खूब गरम हैं जिधर देखो उधर ही लुटेरों का हाथ है. जो भारत किसी समय ज्ञानागार था वे ही इस समय चोरागार या धूर्तागार हो रहा हैं, फिर भारत

क्योंकर इसका अधिकारी रह सके, और वह क्यों कर इस विद्या का अब भी गृह माना जाय।

हाँ, तो इस विद्या द्वारा चिकित्सा करना तो कठिन है ही, पर साथ २ रोग निर्णय करना भी अति कठिन काम है। विना गुरु कृपा और अभ्यास के यह नहीं हो सकता, क्योंकि कभी २ व्याधि उत्पादक दुष्ट गृह रोग निर्णायक चिकित्सक को भी अपने चक्कर में लाकर भारी भ्रम उत्पन्न कर देते हैं, जिससे चिकित्सक "किं कर्तव्यं विमूढ़ होकर अपने पथ से गिर जाता है, इस लिये धैर्य श्रद्धा और दृढविश्वास जो इस चिकित्सा के मूल मंत्र हैं जब तक प्राप्त नहीं होते, कोई भी चिकित्सक भूतविद्या में हाथ डालने का अधिकारी नहीं है।

लेखक एक असाधारण वैद्य की हैसियत से निःसन्देह अपने स्वल्प अनुभव के सहारे पर और दार शब्दों में यह बात कह सकता है। कि इस समय अनेक प्रचलित व्याधियों में भी कभी कभी थोड़ा बहुत प्रभाव गृह बाधा का होता है यही कारण है, कि ऐसी व्याधियोंकी चिकित्सक शिर तोड़ चिकित्सा श्रम से भी कोई विशेष सफलता नहीं पाते। और अन्त में चिकित्सक को निराशित होकर रोगी और उसके सुजनों को जवाब देना होता है। लेखक ने प्रायः सभी रोगों में भिन्न भिन्न रोगियों पर अनेक वार यह बाधा देखी है, इसी से वह यहां यह शब्द लिख रहा है उसका दृढ़ विस्वास है कि ग्रह बाधा जन्य सभी रोग हो सकते हैं। और प्रत्येक रोग में ग्रह बाधा होती है।

"लप्सयज्ज्ञान विज्ञान वाक्येष्टा बल पौरुषम्।
पुरुषे षऽपौरुष्यं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत्॥

इस श्लोक पर वर्षों के अनुभव और अभ्यास से अक्षरशः विश्वास है।

वाग्भटाचार्य ने भूतविज्ञान नामक अध्याय में भूतों के १८ भेद लिखे है। जिसमें से १४ के नाम और लक्षण भी लिखे हैं। परन्तु सुश्रुताचार्यने इसकी व्याख्या कुछ अधिक की है, और भूतादिकों को ग्रह संज्ञा दी है। वह लिखते हैं:—

अज्ञा नावत विज्ञान मनवस्थाऽसहिष्णुता।
क्रियादाऽमनुषी यस्मित् सग्रह परिकीर्तते॥

अर्थात "जो गुप्त और भविष्य की बातों को जानता हो, जिसमें अभहिष्णुता और सहन शीलता दोनों ही तथा जिसमें आमानुषी क्रिया Supper humanpawar (जैसे वह लंघन प्लवनादि) हों, उसे ग्रह कहते हैं। हमने अपने शीर्षक में भूतशब्द को छोड़ कर जो ग्रह शब्द लिया है, इस का कारण भी यही है, ग्रहों के आठ भेद सुश्रुताचार्य इस प्रकार किये हैं। यथा—

"देव स्तथा शत्रु गणाश्चतेषां गन्धर्व यक्षा पितरो भुजङ्गा। रक्षोसि पाचापि पिशाच जाति रेषोऽष्टधादेव गण ग्रहाख्या।" अस्तु

यह सब कुछ हुआ पर यहां यह स्वभाविक प्रश्न बराबर अभी तक हल नहीं हो पाया कि भूत व्याधियां होती ही क्यों हैं? और यदि हो जाती हैं, तो किस प्रकार उनसे जान शीघ्र छुड़ाया जा सकता है, प्रश्न सहज सा है, पर उत्तर कठिन है। फिर भी स्वल्प बुद्धि के अनुसार यहां इस पर कुछ विचार किया जाता है आशा है, पाठकों को इससे अधिक आनन्द

होगा। हमने जहाँ तक अनुभव और विचार किया है, वहां तक हम निः संकोच भाव से नहा कह सकते हैं कि, जब मनुष्य के ग्रह अनुकूल होते हैं, एवं शुभ दिवस होते हैं. तब जीवनीय शक्ति [वैष्णवीयशक्ति)प्रवल होती है। इस ईश्वरीय शक्ति की प्रवलता,में मनुष्य जो कुछ करता जाता है। सीधे दिन होने से सब शुभ ही होता चला जाता है। उसे उस समय संसार की कोई भी प्रवल से प्रवल शक्ति कोई कष्ट नहीं पहुंचा सकती। उस समय कोई किसी का कुछ बुरा कर भी नहीं सकता। यदि कोई बुरा करने का कुछ उद्योग भी उसके प्रति करता है, तो वह बुराई उस समय उसके लिये भलाई के रूप में परिणित हो जाती हैं, चारों ओर उसे लाभ और सुख ही दिखाई देता है, दुःख उस समय उसे नाम मात्र को स्मर्ण भी नहीं रहता। ऐसे समय में भूत व्याधियों की क्या बात, यदि संसार की अन्य शक्तियां भी प्रवल वेग से एकत्रित हो कर उस पर आधमके तो उसका कुछ विगाड़ नहीं सकतीं उस समय तो—

"बार न बाँका करि सके जो जग वैरी होय।"

यह कहावत सोलह आने अक्षरशः चरितार्थ होतीहैं, पर जब ग्रह प्रतिकूल होकर बुरे दिन लाते हैं तब वैष्णवी शक्ति सबसे प्रथम दुर्वल हो जाती हैं, दुर्वल होते ही हृदय और मस्तिष्क भी दुर्वल हो जाता है, चिन्ताओं का पहाड़ सिरपर गिर जाता है, ऐसे समय अपना पराया कुछ नहीं सूझता चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार नजर आता हैं, मुनाफे के कामों में हाथ डालते ही घाटा ही घाटा नज़र आता है, । स्नेही भी कट्टर शत्रु जान पड़ते है, किसी से कोई सहायता नहीं मिलती। जब किसी नेक काम में भी हाथ डाला जाता हैं तो बस चारो ओर से बुराइयां सुनाई देती है। कोई अच्छे कार्य को भी अच्छा नहीं कहता, सब बुराही बुरा बताते हैं। ऐसे कहावत चरितार्थ हैं, अक्षरशः होती है। एसे कठिन समय में भला मनुष्य क्योंकर भूत व्याधियों से बच सकेगा ? एक बात और वह यह है, कि अपवित्र और धर्म मर्यादा रहित पुरुषों को चाहे वह क्षत युक्त हो या अक्षती, ग्रह हिंसा विहार अथवा अपने सतकार के निमित्त उन्हें मार डालते हैं। यह वातशास्त्रों में इस प्रकार लिखी है—

" अशुचि भिन्न मर्य्यादं क्षदं वा यदि वाऽक्षतम्।
हिंस्युर्हसि विहारार्थं सत्कारार्थं मथापिवा॥

सुश्रुताचार्य ने उत्तर तन्त्र के भूत विद्या नामक अध्याय में, भूता वेश के विषय में लिखा हैं, कि "देवगणों ने अपने अनुचरों की वृत्ति उन मनुष्यों में नियुक्तकरदी हैं, जो मिथ्या भासी, पापाचारी और धर्म मर्यादा भ्रष्ट है। हिंसा ही में सदा विहार करने वाले जीव (जो किन्हीं विशेष कर्मों के प्रभाव से) जो देव भाव को प्राप्त हो गये हैं। भूत कहलाते हैं।"

वाग्भटाचार्य ने अष्टाङ्ग हृदय में लिखा हैं। कि:—"जो व्यक्त पापारम्भ करके अकेला शून्य घर में रहे, और रात्री में श्मशानादि में स्थित नग्न रहे गुरुकीनिन्दा करे, रति का सेवन अविधि से करे, अशुद्ध होकर देवताओं की पूजा करे

पराये सूतक में मिला रहे, होम, मंत्र, बलि, पूजन, इनको उलटी तरह सेंकरे, इस प्रकार धर्म विरुद्ध और शास्त्र विरुद्ध रहने से मनुष्य की आत्म शक्ति, मानसिक शक्ति, एवं जीवनीय शक्ति क्षीण होने से भूतप्रेतादि की ग्रह बाधा होती रहती है, इस प्रकार की भूत या ग्रह बाधा के अनेक उदाहरण समय २ पर हमें समाचार पत्रों द्वारा मिलते रहते हैं। अभी तारीख १० अगस्त सन् १९३४ श्रावण कृष्ण ३० सम्वत १९९१ के श्री वेङ्कटेश्वर समाचार (बम्बई) "प्रेत लीला सम्बन्धी विचित्र घटना,, शीर्षक एक छोटा सा बड़ा ही रोचक लेख अभी हाल में छपा है।

एक बात याद करने लायक और हैं और वह यह है, कि सदैव ग्रह ही मनुष्यों को नहीं मारते, न वह सदैव मनुष्यों को कष्ट देते हैं, उन से कोई निकृष्ट कर्म भी नहीं हो सकता, क्योंकि उनके विषय में स्पष्ट लिखा है।

"तपांसितीव्राणि तथैव दानं,
व्रतानि धर्मोनियमश्च सत्यम्॥
गुणास्तथाऽष्टावापि तेषु,नित्या
व्यस्ताः समस्ताश्च पद्याप्रभावम्॥

अर्थात्–तीव्र तप, दान, व्रत, धर्म, नियम और सत्यादि आठ गुण सदैव ग्रहों में बने रहते हैं, (यह आठ गुण कभी इनमें नष्ट नहीं होते) इसी प्रकार ग्रहों के आठ ऐश्वर्य भी बताये हैं।

"आत्मनाचेतसाज्ञा मर्थानां दहन क्रिया।
दृष्टिः लोभ स्मृतिः कान्तिरिष्ट पद्याप्य दर्शनम्॥

इस प्रकार महान ऐश्वर्य और गुण युक्त ग्रह कभी अनायास ही स्वाभाविक कुटिलता करके अकारण ही साधारण मनुष्यों पर आक्रमण नहीं कर सकते। वह कभी साधारण कोटि के मनुष्यादि क्षुद्र जीवों के अशुद्ध शरीर में नहीं आते हैं। जो आते हैं। वह ग्रहों के असंख्य गणों के अनुचर है, यही बात शास्त्रों में स्पष्ट इस प्रकार लिखी है—

"नते मनुष्यैः सहसं विशन्तिनवा मनुष्याकचिदा विशन्ति, येत्या विशन्तीति वर्दन्ति मोहातेभूतविद्या विषया दयेद्यः। तेषां ग्रहाणो परिचारिकाये, कोटी सहस्तायुत पद्म संख्या, असृग्वसा मांस भुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तमा विशन्तिः"॥ माधव०॥

ग्रहों के ये अनुचर मनुष्यों को कष्ट देते हैं। एवम् आवेश करते हैं, इनको भी ग्रह ही कहते हैं। इनके विषय में कहा है।

"ये निशाचर आपने २प्रभुके गुणों से संयुक्त हैं। वे इन्हीं के लक्षणों से और सत्य संसर्ग से जाने जाते हैं, इस लिये उन्हें उनके स्वामी के नाम से ही पुकारते हैं। वही पूजा को ग्रहण करते हैं। और:—

"देव ग्रह कुछ अपकार नहीं करते, और जो अपवित्र हैं वे ही नमस्कार और पूजाओं को करें, देवताओं की तरह ग्रहण करते हैं देवादि गणों में अपने स्वामी की शील कृपा और आचार होता हैं, परन्तु राक्षसों के पितामह नैऋत भी मुनियों से उत्पन्न हुए हैं, इससे माँसादि भोजन का अपरित्याग नहीं कर सकते।" ॥ सुश्रुत॥

भूत प्रेतादि ग्रह बाधाओं के लक्षण माधवाचार्य ने माधवनिदान के उन्माद निदान में खूब विस्तार के साथ लिखे हैं, जिन्हें देखने की इच्छा हो वह वहां देख लें। ग्रहों के, शान्त्यर्थवाले विधान

वाग्भट्टाचार्य ने खूब विस्तार के साथ लिखे हैं, पर हम यहां उसे भी लेख बढ़ाने के भयसे नहीं दे सकते हैं। भविष्य में कभी भूत विद्या शीर्षक में चर्चा करेंगे।

साधारण विषय समाप्त हुआ। अब यह अच्छा जान पड़ता है, कि आगे चलने से पूर्व सिंहावलोकन कर लिया जाय। लेख के आरम्भ में पाठकों को विषय में प्रवेश करके ग्रह, आस्तित्वता उसका महत्व उसका वर्तमान और प्राचीन रूप ग्रहबाधा के कारण और उनकी शान्ति आदि पर संक्षेप में चर्चा की गई है। अब आगे अपने असली विषय की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

बालग्रह और उनकी चिकित्सा

आरम्भ में ग्रह क्या है? इनका आवेश क्यों और किस प्रकार होता है? आदि आदि बातों की उचित चर्चा की जा चुकी हैं। वह चर्चा इसलिये की गई है, कि जिससे ग्रहों के विषय में कुछ ज्ञान हो सके। अब यहां बालग्रहों के विषय में उचित चर्चा की जाती है।

बालकों को पीड़ा देनेवाले ग्रहों को बालग्रह कहते हैं। जिस प्रकार बड़ों पर ग्रहों का आवेश होता है, इसी प्रकार बालकों पर भी 'बालग्रह' का कोप होता है। बाल ग्रहों की उत्पत्ति की कथा शास्त्रों में बड़ी ही विचित्र और रोचक ढंग को लिखी गई है। वह कथा हम यहां संक्षेप से देते हैं।

भूत भावन भगवान शङ्कर के घर में जब स्वामि कार्तिक का जन्म हुआ, तब उन्होंने कार्तिकेय की सेवा और रक्षा के लिये, बारह ग्रहों की रचना की। उन में से स्कन्द, विशाख मेषाख्य श्वग्रह और पितृग्रह यह पांच परिचारिक पुरुष शरीर धारी थे। शकुनी पूतना, शीतपूतना, दृष्टिपूतना, मुखमण्डलिका, रेवती और शुष्क रेवती यह सात ग्रह स्त्री शरीर धारी सेविका का काम करती थीं। जब तक कार्तिकेयजी बालक रहे। और सेवा की आवश्यकता रही, तब तक तो यह सब के बाहर वहीं रहे, और अपना निर्वाह करते रहे, पर जब कार्तिकेय जी युवा हो गये और इन सेवकों की आवश्यकता न रही तब इन्हें कष्ट होने लगा। उस समय भगवान शङ्कर ने इन्हें जीविकार्थ यह उपदेश दिया।

"कुलेषु येषु तेज्यन्ते देवाः पितर। ब्राह्मण साधना वापि गुरवो तिथ पस्तथा ॥१॥

निवृत्त शौचा चारेषु तथा कुत्सित वृतेत्तिषु। निवृत्त भिक्षा वलिषु भग्न कांस्य गृहेषुवा ॥२॥

ते वैवालश्च तांस्तान्हि गुहा हिमन्त्य शङ्किता। तत्रवो वित्तिः पूजा चैव भविष्यति ॥३॥

अर्थात्—जिस कुल में देवता, पितर, ब्राह्मण साधु, गुरु और अतिथियों की पूजा नहीं होती, पवित्रता और आचार से भ्रष्ट तथा निन्दित जीविका करने वाले देवताओं की पूजा न करने वाले एवं कांसे के फूटे पात्र में भोजन करने वालों के बालकों को तुम लोग निःशंक होकर पकड़ो, ऐसा करने से (अब आगे) तुम्हारी अच्छी तरह से आजीविका चलेगी, और तुम्हारा पूजन भी होगा।

तब से यह ग्रह संसार में बालकों को कष्ट देने लगे। यह ग्रह समय २ अपनी वलि न मिलने से बालकों को पीड़ा पहुंचाते हैं। जब यह ग्रहण

करते हैं, तब अन्य रोगों की तरह पूर्वरूप में कुछ लक्षण भी प्रकट होते हैं। (जैसे—ज्वर, निरन्तर होना; उदविग्न रहना, बेचैन रहना, निद्रा में भय करना आदि आदि) जो ध्यान पूर्वक देखने से स्पष्ट दिखाई देते हैं। यही लक्षण अन्त में भयानक रूप धारण कर लेते हैं, जिस से बालकों को बहुत कष्ट होता है। यहां सब से प्रथम ग्रहबाधा के सामान्य लक्षण लिखे जाते हैं:—

बालक अनायास ही रोता है। चिल्लाता है, या चीखें मारता है। टकटकी बांध कर आकाश की ओर देखने लगता है, भौहें चढ़ जाती हैं, और बार-बार जंभाई आती हैं। बालक दांतों से होठों को चबाता है, माता को नख या दांत से खरोंचता है। गला घर घराता है शरीर कांपता है, रात को नींद नहीं आती। शरीर पर कभी कभी विचित्र रङ्ग बिरङ्गे धब्बे भी देखे जाते हैं, बालक स्तन पीना छोड़ देता है और बहुत दुर्बल जान पड़ता है। उस समय सुन्दरता नष्ट हुई सी जान पड़ती है और वह बहुत अपवित्र सा दिखाई देता है। शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध सी आती हैं, जिसे चतुर भूत वैद्य सूंघते ही जान लेता है। कि, इसे ग्रह बाधा है। उस समय और भी अनेक लक्षण दिखाई देते हैं, पर वह इतने सूक्ष्म होते हैं, कि जिन्हें सभी वैद्य नहीं समझ सकते, इसी से उन का यहां उल्लेख किया गया हैं, जिस से सब प्रकार सज्जन समझ कर लाभ उठा सकें।

अब विशिष्ट ग्रह बाधा के लक्षण लिखे जाते हैं। साथ ही साथ चिकित्सा क्रम का दिग्दर्शन भी कराये जांयगे। बालकों के ग्रह ग्रसित होने के लक्षण और प्रत्येक ग्रह की शक्ति बलि प्रदान आदि का विस्तार पूर्वक वर्णन 'भाषा बाल तंत्र' में है। जिन्हे देखने की इच्छा हो वह देख लें अथवा सुश्रुत संहिता, धन्वन्तरि संहिता, अष्टाङ्ग हृदय और भावप्रकाशादि ग्रन्थों में इसका विस्तार पाठक गण अवलोकन करे। आधुनिक अनेक, वैद्य, गृह बाधा, को विशिष्ट रोगमानते हैं, परन्तु हमारा यह विचार नही हैं। जो वैद्य इन्हे विशिष्ट रोगों का नाम देते है। वह भारी भूल करते है, कारण, यही है। कि यदि यह रोग होवे तो अवश्य प्राचीन आचार्य इन्हे रोग संज्ञा देते। पर प्राचीन आचार्यों ने ऐसा न करके ग्रह बाधा ही इनके लिये स्थिर किया है, इससे हम आधुनिक वैद्यों के विचारों में सहमत नहीं है। अस्तु—

(१) स्कन्ध ग्रहबाधा के लक्षण और चिकित्सा

स्कन्ध नामक ग्रह से बालकों की पीड़ित होने पर बालक शिर को इधर उधर पटकता और हिलाता है। उस समय एक आंख से जल निकलता है। और शरीर का आधा हिस्सा मृत प्रायः सा होता हैं। शरीर जकड़ा हुआ तथा पसीने से तर रहता है। गर्दन नीचे को अन्दर की ओर झुक जाती है, दूध पीना छोड़ देता है, दांतों को चबाता है। बार बार चौंकने लगता है, और विचित्रता से रोता है। मुँह से लार गिरती हैं, मुंह टेढ़ा होजाता हैं। दृष्टि ऊपर को खिंच जाती है, शरीर से चर्बी और रक्त की दुर्गन्ध आती है, मन उदास रहता है, मुट्ठियां बँधीं रहती हैं, और दस्त कड़ा आता है। उस समय एक ओर का गाल, भौंह, और आंख फड़कती

हैं। दोनों ही आंखे प्रायः लाल दिखलाई देती हैं। इन सब लक्षणों से बालक बहुत बेचैन हो जाता है। ग्रह का ठीक २ ज्ञान न होने से कभी कभी मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

मंत्र-तंत्र होम-बलि प्रयोग और जप द्वारा ग्रह को शान्त करें। वात नाशक औषधों (संभालू) आक, एरण्ड, रासना, असगंध आदि २ के क्वाथ बनाकर बालकों को नित्य स्नान करावें साथ ही पीली सरसों, सांपकी केंचुली बच कौ आडोडो, ऊंट के बाल, बकरी के बाल, गाय के बाल, इन सब को घृत में मिला कर धूप दें। देवदारु रास्ना, असगंध, विदारीकंद बाराहीकंद शतावरी, मुलहटी, जावित्री मूंगपर्णी, माषपर्णी, इन औषधों को पाव भर लेकर कल्क कर और १ सेर घृत में चार सेर, गाय का दूध मिला कर घृत विधान से घृत सिद्ध कर सेवन करावें। गिलोय अर्जुन, छोटीकटेली, बेल की छाल, शमी और इन्द्रायन की जड़, इन सब को माला बना कर बालकों को पहनावे। इन्हीं सब उपयों से स्कन्द ग्रह की बाधा अवश्य दूर हो जाती है। यह अनुभूत हैं।

स्कन्दा पस्मार (विशाख ग्रह)

विशाख ग्रह द्वारा बाधा होने पर, बालक बेहोश रहता हैं। हाथों से अपने बालों को बार बार २ नोचता है, ग्रीवा सीधी नहीं रहती, शरीर में खिचाव के साथ जंभाई आती है, मूत्र निकलने लगता हैं। मुख से झाग निकलते है। और शिर हाथ पांव, आंखें यह सब हिलती रहती है, स्तन पान कराते समय माता के स्तनों को तथा अपनी जीभ को दबादेता है। कभी २ भयानक डरावनी सूरत बना लेता है। ज्वर हर समय बना रहता है। और नींद बहुत ही कम आती है, पीव और रक्त की विचित्र दुर्गन्ध बालक के शरीर में से आती है। प्रचलित भाषा में इसे तड़का, रोग कहते हैं। खास लक्षण इसका यही है कि, जरासी वमन कर के बालक बेहोश हो जाता हैं। होश आने पर चीखमार कर रोता है, और उसके मुंह तथा शरीर से दुर्गन्ध आती हैं। बेहोशी में हाथ और पैर कांपते हैं। कभी २ होश आने पर भी कंपन देखा जाता है।

चिकित्सा—

इस में भी मंत्र,यंत्र तंत्र, होम, बलि आदि का प्रयोग करना। बाद बेलकीछाल, सिरस, गोरोचन, सफेद तुलसी, पाढ़, मजीठ, महुआ, कतृण राई, कायफल, अजवाइन, कसोंदी, वायविडंग, संभालू, कचनार, गूलर,खरैटी, मकोय, और कुचला इनका क्वाथ बना कर उससे बालकों को स्नान करावे। और मूत्राष्टक तैल का मर्दन करें

नैगमेय अथवा मेषाख्य ग्रह बाधा के लक्षण—

मेषाख्य ग्रह से पीड़ित होनेपर बालक के मुख से झाग निकलते हैं। पेट फूल जाता हैं, हाथ, पेर और मुख में कभी २ फड़कन होती है, मुट्ठियां बधी रहती हैं, प्यास बहुत लगती है, विरेचन होते हैं, ज्वरमें द पड़ जाता है। शरीर का रंग

बदल जाता है, बालक चीखता है, बार २ वमन के साथ खांसी और हिचकीआती है, बाद बहुत ही कम आती है, बालक होठों को चबाता तथा सिकोड़ता हैं, शरीर से दुर्गन्ध आती है, शरीर के मध्य भाग में खिचावट होती हैं, ज्वर भी साथ २ रहता हैं, मूर्छा की अधिकता से एक आंख में शोथ भी ध्यान पूर्वक देखने से जान पड़ती है, यही इसके मुख्य लक्षण है।

चिकित्सा

ग्रह को होमादि तथा बलि, से शान्त करके प्रसन्न करे। बाद प्रियङ्गु,देवदारु, अन्म मूल, सौंफे, मोथा, केवड़ा, इनका पाव २ भर कल्क सेर भर तिल का तैल,और २ सेर दही का पानी(दही का तोड़) मिलाकर तैल शुद्ध करले और इसका शरीर पर मर्दन कर। बेल और अर्णी के क्वाथ से स्नान करावें।

वच, गिलोय, जटामांसी, गोरोचन इन सब को तावीज में भरकर हाथ या गले में बाध दें।

पित्र ग्रह

पितृ ग्रह से पीड़ित होने पर बालक के शरीर में हर समय रोंगटे खड़े रहते हैं, वह बार २ चौंक पड़ता है, अकस्मात रोने लगता हैं. ज्वर, खांसी, बमन, जंभाई उस में बराबर देखी जाती है। शरीर से मुर्द को सी गंध आती है, और बालक इधर उधर हाथ पैर पटकता है। शरीर जकड़ा जाता है,रंग बदल जाता है, मुट्ठियाँ बंध जाती हैं और आखों से पानी गिरता है।

चिकित्सा

बलि कर्म के बाद नैगमेय ग्रह की तरह बालक के तैल मर्दन करे, और स्नान करावे। स्नान के बाद कछुआ, उल्लू और गीध की सूखी विष्टा (इन में से जो २ समय पर मिल जाय) घृत में मिला कर धूप दें।

शकुनि ग्रह

शकुनी ग्रह से पीड़ित बालका शरीर ढीला हो जाता है, जीभ तालू और गले में घाव होते हैं. रात्री के समय सन्धि स्थानों में दाह और पीड़ा के साथ पाक युक्त फफोलियाँ फोड़े होते हैं. जो दिन में प्रायः शान्त रहते हैं। गुदा और मुख पक जाता है, तथा ज्वर की दशा में बालक हर समय डरता है।

चिकित्सा

शान्ति कर्म के बाद बेंत, आम की छाल और कैथ इन के क्वाथ में बालक को स्नान करावे। साथ ही नेत्रवाला, खस, मुलहठी, कमल अनंतमूल, पद्माख, लोध, प्रियंगु, मजीठ, गेरू बिधि इन सब को जल के साथ पीस कर शरीर पर मर्दन करादे। स्कन्द ग्रह में लिखित धूप और घृत का बराबर साथ २ व्यवहार करें।

शतावरी, छोटी कटेली, इन्द्रायन की जड़, नागदौन, लक्ष्मणा, सहदेवी, और बड़ी कटेली इन को तावीज में बँधा कर गले या हाथ में बाँध दें।

पूतना

पूतना ग्रह से पीड़ित होने पर बालक का शरीर ढीला रहता है, रोंगटे खड़े होते हैं, शरीर में काक सदृश दुर्गन्ध आती है, वमन, तन्द्रा, रात्रीजागरण, हिचकी, पेट में अफारा, पतले दस्तादि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं प्यास लगती है, और साथ ही मूत्राघात (मूत्रकष्ट) या मूत्र अवरोध होता है।

चिकित्सा

मंत्र प्रयोग के बाद ब्राह्मी, वरुण, नीम, कोपल इन के क्वाथ से स्नान करावे। कुष्ट, तालीस पत्र, विजयसार, अर्जुन, कटहल, मुर्गी के अण्डे का छिलका, पीलोसरसों इनमें घृत मिलाकर धूप दें। कौआडोडी, कुंदरू, घूंगचू इन्हें तावीज़ में भरवा कर गले में डलवा दे। क्षीर का कोली, गोरोचन, हरिताल, मनशिल, कुष्ट राल इन के कल्क में घृत सिद्ध कर पीछे से वंश लोचन और शहद मिलाकर बालक को सेवन करावें। साथ ही कुष्ट, तालीस पत्र, खैर, चन्दन, विजयसार, देवदारु, बच, हींग, कदम्ब, इलायची सँभालू के बीजों की धूनी दें।

शीत पूतना

इस ग्रह से पीड़ित होने पर शरीर में से कच्ची मछली की सी गंध आती है, एक ओर का पसवाडा गर्म और दूसरी ओर ठंडा रहता है। दृष्टि टेढ़ी हो जाती है। बराबर रोता, और कांपता है। तृषा के साथ आंतों में गुड़ गुड़ाहट तथा दस्त होते हैं।

चिकित्सा

शान्ति कर्म केबाद—नागरमोथा, देवदारु, कुष्ठ और सर्वगन्ध पावभर लेकर कल्क करले। १ सेर तैल में यह कल्क और २ सेर गौ मूत्र तथा इतना ही अजामूत्र मिलाकर तैल साधन करें। इस तैल का मर्दन करें। पूर्वोक्त तिक्त वृक्षों के क्वाथ से स्नान करावें। कुटकी, नीम ढाक, खैर, और अर्जुन की छाल का ४ सेर क्वाथ करके उसे ४ सेर दूध और सेर भर घृत डाल कर घृत सिद्ध कर लें। इस घृत को हर रोज खिलावें। गीध, उल्लू इन दोनों की विष्ठा, सांप की केंचुली और नीम के पत्ते इन का धूप बराबर देते रहें। घुंगची और खरहटी तावीज में रख कर पहना दें।

अन्ध पूतना

अन्ध पूतना ग्रह से पीडित होने पर बालक ज्वर, सर्दी और खांसी से पीड़ित रहता है पाचकाग्निमन्द पड़जाती है, पतला, दुर्गन्धित, अस्वभाविक रंग का दस्त आता है, बालका प्रत्येक अङ्ग सूखता चला जाता है। दृष्टि कमज़ोर हो जाती है, आंख में पीड़ा खाज के साथ रोहे पैदा हो जाते हैं, दूध पीना बंद कर देता है। बीच २ में उसे हिचकी आती है चित्त उदास रहता है, शरीर के रंग में परिवर्तन हो जाता है, स्वर क्षीण हो जाता है, शरीर हर समय कांपता रहता है, शरीर में से मछली जैसी गंध अथवा खट्टी दुर्गन्ध आती है। इसे दृष्टि पूतना रोग भी कहते हैं, क्योंकि इस के होने से दृष्टि शक्ति नष्ट हो जाती है

चिकित्सा—

मंत्रोपचार के बाद तिक्त रस वाले वृक्षों की छाल के क्वाथसे बालकको स्नान करा कर सम्पूर्ण शरीर में और आँखों में ठंडे सुगंधि द्रव्यों का लेप करना चाहिये। विशेष कर नेत्रों में गाय का घृत का तर्पण प्रयोग करना हित कर है। फिर मुर्गे की विष्ठा बाल, साँप की केंचुली, पुरानी फटी हुई, धोतीं इन सब का धूप देवे।

पीपल, पिपलाला मूल, असगंध, शतावर, विदारीकंद, बाराहीकंद, मुलहठी, जावित्री, मूँगपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, छोटी कटेली,

इनके पावभर कल्क को चौगुने जल एवं सेर भर घृतमें पकाकर घृत सिद्ध करें, प्रतिदिन इसका व्यवहार करें।

मुख मण्डलिका—

इस ग्रह से पीडित होने पर बालकों के हाथ पैर, एवं मुख पर अच्छी चमक और कान्ति पैदा हो जाती हैं। पेट काले रंग की शिराओं से व्याप्त हो जाता है। साथ ही साथ स्वल्प ज्वर रहता हैं, जिससे शरीर बहुत ढीला हो जाता हैं। और बालक बहुत सुस्त रहता है। शरीर से गौ मूत्र, की सी गन्ध आती हैं।

चिकित्सा—

शान्ति कर्म के बाद कैथ, बेल, अरलू अडूसा एरंड की छाले, पाढ़ा इनका क्वाथ कर स्नान करावे। तथा भाँगरे के ४ सेर स्वरस में १ सेर तेल पका कर उसका मर्दन करावें। बच, राल कूठ, इनको घृत में मिलाकर धूप दें।

रेवती औ शुष्क रेवती

रेवती- ग्रह से पीडित बालक का रंग काला, नीला हो जाता है। वह अपने कान, नासिका, और आंखों को बराबर मलता हैं, खांसी हिचकी, आंखों का फड़कन, मुख का टेढ़ापन और लालिमा आदि उपद्रव देखे जाते हैं, उसे ज्वर सदा बना रहता है, जिससे दिन दिन बालक सूखता जाता हैं। उस के शरीर में से बकरे जैसी गन्ध आती है, तथा, पतले, पीले दस्त आते हैं। शुष्क रेवती इस ग्रहा से पीड़ित होने पर धीरे २ बालक का सम्पूर्ण शरीर सूख जाता है, अस्थि पिञ्जर ही शेष दिखाई देता हैं। थोड़ा बहुत ज्वर हर समय बना रहता हैं। किसी प्रकार की औषधों से भी शरीर पुष्ट नहीं होता। अनेक चिकित्सक इसे सूखा रोग कहते हैं।

चिकित्सा—

रेवती और शुष्क रेवतीग्रह से पीड़ित बालक पर यंत्र मंत्र बालेह मादि करा कर कुष्ट और राल को तैल में मिलाकर पाक करलें, और इसी का मर्दन करे। असगंध, काकड़ासिंगी, अनन्त मूल पुनर्नवा, माषपर्णी, और विदारीकंद इनके क्वाथ से बालक को स्नान करावे। साथ ही का कोल्यादि गण से घृत सिद्ध कर उसका पान प्रतिदिन करावें। प्रातः सायं- गीध और उल्लू की विष्टा में समान भाग अजवायन, और इन्द्रज मिलाकर घृत में मर्दन कर धूप दें।

कुछ और चर्चा—

इन ग्रहों की चिकित्सा के लिये यंत्र, मंत्र बलि होम और जपादि के साधन हैं, किन्तु साधारण मनुष्यों के लिये उनका साधन असंभव हैं, क्योंकि वह अन्य साधन से भी कठिन है। उनकी साधारण भूल से बड़ी २ हानियां हो सकती हैं, इसी लिये उन्हें यहां नहीं लिखा जाता भविष्य में कभी "हमारा मंत्र शास्त्र" शीर्षक लेख में हम उनका विस्तार पूर्वक उल्लेख करेंगे।

विनम्र निवेदन

प्रिय पाठको ! दुःख है, कि "धातुविज्ञानाङ्क", हम ३० सितम्बर की सूचनानुसार आपकी सेवा में भेंट न कर सके, इस विलम्ब का कारण, नया टायप बदलना, तथा अन्य नवीन साधन प्रेस सम्बन्धी ठीक करना है। इस प्रबन्ध में समस्त सितम्बर मास समाप्त हो गया, किन्तु अब "राकेश" बराबर नियत समय पर निकलेगा, यह हम प्रतिज्ञा पूर्वक निवेदन करते हैं। आशा है कि पाठक हमें क्षमा प्रदान कर अनुग्रहीत करते हुये "राकेश" पर पूर्ववत् प्रेम बनाये रहेंगे। आगामी दूसरा वृहत विशेषाङ्क—

राकेश का "सिद्धोपचार पद्धति अङ्क"

होगा। लेखकों और पाठकों को अपने २ चिकित्सा विषयक स्वानुभव विस्तार पूर्वक लिखकर शीघ्र भेजना चाहिये, सर्वोत्तम लेखों पर पुरस्कार दिया जायगा।

हम अपने मान्य सुलेखक, और इसअङ्क के विशेष सम्पादक प्रिंसीपल पं० विश्वनाथ जी शास्त्री शास्त्राचार्य महोदय को हार्दिक धन्यवाद देते हैं। जिन्होंने धातु विज्ञान जैसे गहन विषय पर पर्याप्त संख्या में अन्वेषण पूर्ण सुन्दर लेख, अपने बहुमूल्य समय को नष्ट कर संसार की हिताकांक्षा से भेजे।

किन्तु हमें इतना खेद है, कि कई कृपालु लेखकों के अत्युत्तम लेख होते हुये भी स्थान और समयाभाव के कारण इस अङ्क में न जा सके, उन उपयोगी लेखों को पाठक आगामी अङ्कों में देखेंगे।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY,
Jangamwadi Math, VARANASI,
Acc. No. 3614

सूचना

प्रस्तुत विशेषाङ्क १५ व ३० सितम्बर का अङ्क है। शीघ्र ही १५ व ३१ अक्टूबर का संयुक्ताङ्क इस सप्ताह के अन्त तक प्रकाशित होकर, पाठकों की सेवा में उपस्थित होगा। और प्रत्येक अङ्क १५ व ३० तारीख को ठीक समय पर पहुंच जाया करेगा।

मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर

पाक्षिक राकेश का उद्देश्य

१—आयुर्वेद साहित्य का पूर्ण प्रचार करना।

२—सन्दिग्ध विषय का निर्णय करना व कराना।

३—प्राचीन सिद्धान्त में शल्य तन्त्र व पशु रोग चिकित्सा का पुनरोद्धार करना।

४—आङ्गिल औषधियों की जगह आयुर्वेदीय सिद्ध औषधियों का अन्वेषण कर 'राकेश' द्वारा प्रचार करना।

५—समस्त वैद्य समाज से आग्रह कर छिपे अनुभूत योग प्राप्त कर प्रकाशित करना।

६—सचित्र शारीरिक अवयव सहित खोज पूर्ण लेख सुप्रसिद्ध प्रोफेसरों से प्राप्त कर आयुर्वेद शिक्षार्थियों के हितार्थ प्रकाशित करना।

७—गृहस्थों के लिये तथा साधारण जन समूह को स्वास्थ्य उपदेशमयी लेख भेंट करना, तथा रोग सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर देना।

८—प्राकृतिक चिकित्सा, जैसे—जल चिकित्सा, मृत्तिका चिकित्सा, उपवास चिकित्सा आदि द्वारा प्राकृतिक स्वास्थ्य साधन जुटाना।

९—आधुनिक वैद्य समुदाय को समयानुसार उन्नति करने का सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा ध्यान आकर्षित करना।

१०—आयुर्वेद संसार में कहां क्या हो रहा है, आयुर्वेद महामण्डल तथा इण्डियन मेडिसन बोर्ड की कार्रवाई प्रकाशित कर घर बैठे सन्देश पहुंचाता है।

पाक्षिक राकेश के नियम

१—यह पत्र महीने में दो बार ता० १५ व ३१ को पर निकलता है।

२—राकेश का वर्ष शुरू जनवरी से आरम्भ होता है शुरू वर्ष से ही ग्राहक बनाये जाते हैं।

३—आयुर्वेद साहित्यके अतिरिक्त अन्य विषय नहीं शित होते हैं।

४—इसका वार्षिक मूल्य ३) है और वर्ष में १ उप वृहद् विशेषांक २) रुपये के मूल्य का मुफ्त दि किया जाता है।

५—समय २ पर ग्राहकों को उपहार भी दिया जाता

६—ग्राहकगणों को निश्चित समय पर पत्र भेज जाता है। फिर भी मार्ग की असावधानी से पत्र होजावे तो निश्चित तिथिसे १० दिन के बाद कार्यालय को सूचना दें। दुबारा पत्र भेजा जा इसके बाद हम जिम्मेवार नहीं हैं।

७—पत्र लिखते समय ग्राहकगण अपना पूरा पता हि या अंग्रेजी में लिख भेजें, अथवा ग्राहक नं० लि

८—लेख भंजने के लिये लेखक महोदय आयुर्वेदीय सा सम्बन्धी पशु चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा सम अचित्र व सचित्र लेख भेज सकते हैं, अन्वेषण होने पर पुरस्कारित किये जावेंगे।

९—आङ्गिल प्रयोग व आङ्गिल साहित्य-संबंधी लेख इ में छपने का नियम नहीं है, अतः भंजनेका कष्ट न

१०—समालोचनार्थ पुस्तकों की दो प्रतियां भेजी जानी हिये, एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति ही छपेगी

पता—मैनेजर—"राकेश भवन"
बरालोकपुर, इटावा यू० पी

छप गई ! राकेश किरण-माला की द्वितीय किरण. छप गई

सचित्र वृहद्—

मूल्य २॥) सादा जिल्द

"प्राच्य शल्य तन्त्र"

मूल्य ३) उत्तम सजिल्द

[प्रथम भाग]

आयुर्वेद के प्रगाढ़ विद्वान पं० बालकराम जी शुक्ल शास्त्री शास्त्राचार्य द्वारा—
खोजपूर्ण, उपयोगी तथा परिश्रम सहित लिखित।

पता—मैनेजर—राकेश किरणमाला आफिस—बरालोकपुर, इटावा (यू० पी०)

Printed by Babu Ram Sharma at the Rakesh Printing Press R. K. D. Collectorganj, Baralokpur, (Etawah)